साहित्य-संसार, पटना

की

राजेन्द्र-ग्रन्थावली

का

प्रथम-ग्रन्थ

मुद्रक

के० के० मित्रा,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड,

प्रयाग

विषय-सूची

आत्मकथा

१—मेरे पूर्वज

सयुक्त प्रान्त मे कोई जगह अमोढा नाम की है। सुनते है कि वहाँ कायस्थो की अच्छी बस्ती है। बहुत दिन बीते, वहाँ से एक परिवार निकलकर पूरब चला और बलिया मे जाकर बसा। एक बडे जमाने तक बलिया मे रहने के बाद उस परिवार की एक शाखा उत्तर की ओर गई और आजकल के जिला सारन (बिहार) के एक गाँव जीरादेई मे जाकर रहने लगी। दूसरी शाखा गया मे जाकर बस गयी। जीरादेई-शाखा के कुछ लोग वहाँ से थोडी ही दूर पर एक दूसरे गाँव मे भी जाकर बस गये। जीरादेईवाला परिवार ही मेरे पूर्वजो का परिवार है। शायद जीरादेई मे आनेवाले मेरे पूर्वज मुझसे सातवी या आठवी पीढी मे ऊपर थे। जो लोग जीरादेई मे आये थे, गरीब थे और रोजगार की खोज मे ही इधर आ गये थे। चूँकि उस गाँव मे कोई शिक्षित नही था और उन दिनो भी कायस्थ तो शिक्षित हुआ ही करते थे, इसलिए गाँव के लोगो ने उनको वहाँ रख लिया। प्राय उसी समय से उन लोगो का सम्बन्ध हथुआ-राज से भी हो गया, जहाँ कोई छोटी-सी नौकरी लिखने-पढने की उनमे से किसी को मिल गयी। हथुआ उन दिनो इतना बडा राज नही था और न उसकी इतनी आमदनी ही थी। उसके रईस का मुख्य स्थान भी हथुआ मे पीछे बना, उन दिनो कही अन्यत्र ही था।

हथुआ-राज के साथ मेरे पूर्वजो का सम्बन्ध कई पीढियो तक चलता रहा। मालूम नही कि वे लोग किस पद पर थे, पर जहाँ तक खबर है, वह कोई ऊँचा पद नही था। गाँव के घर भी फूस के छप्पर के ही थे। जीरादेई मे वे लोग एक दूसरे कायस्थ जमीन्दार के, जिनकी बडी जमीन्दारी थी, रैयत थे और हम लोग आज-तक कभी भी अपने गाँव की जमीन्दारी मे हिस्सेदार नही हुए, यद्यपि पीछे हमारे पूर्वज और कई गाँवो के जमीन्दार हो गये।

मेरे दादा दो भाई थे। उनका नाम था मिश्री लाल। उनके बडे भाई थे चौधुर लाल। मिश्री लाल का देहान्त बहुत छोटी उम्र मे ही हो गया। उनके केवल एक लडके थे महादेव सहाय जो मेरे पिता थे। चौधुर लाल जी के भी एक पुत्र थे जगदेव सहाय। मिश्री लाल की आकस्मिक मृत्यु कम उम्र मे होने के कारण मेरे

पिता के साथ चौधुर लाल जी का वडा स्नेह-प्रेम था। जगदेव सहाय और महादेव सहाय दोनो को उन्होने अपने पुत्र के समान ही पाला-पोसा और तैयार किया। जगदेव सहाय वडे थे और उनके भी कोई पुत्र नही रहा, केवल एक लडकी हुई जो भी जाती रही। महादेव सहाय जी के तीन लडकियाँ और दो लडके हुए। एक लडकी तो वचपन मे ही जाती रही। दो की शादी हुई जिनमे वडी भगवती देवी थोडे ही दिनो के वाद विधवा हो गयी और उस समय से आज तक मेरे ही घर मे प्राय अपनी सारी जिन्दगी काट रही है। दूसरी वहन भी, जो दोनो भाइयो से वडी थी, विना किसी सन्तान के जाती रही। मेरे वडे भाई वावू महेन्द्र प्रसाद हुए और सवसे छोटा लडका घर मे मै हुआ।

हथुआ-राज मे चौधुर लाल जी ने वडी ख्याति पाई। वहाँ वह दीवान के पद पर पहुँच गये और प्राय २५-३० वर्षो तक दीवान रहे। उन दिनो महाराज छत्रधारी साही गद्दी पर थे। उन्होने अपने लडके को राज्य न देकर पोते राजेन्द्र प्रताप साही को वसीयतनामा के जरिये राज्य दे दिया। उनका चौधुर लाल पर वडा विश्वास था और छोटे पोते की रक्षा का भार मरते समय उन पर डाल दिया। महाराज की मृत्यु के वाद छोटे कुमार पर वडी आफने आई। कुटुम्ब के लोगो ने राज पर दावा करके मुकदमा कर दिया जो प्रीवी-कौसिल तक गया। प्रीवी-कौसिल मे फैसला हुआ कि हथुआ-राज अविभाज्य (Impartible) है और अविभाज्य राज को वसीयत करने का अधिकार राजा को है, इसलिए राजेन्द्र प्रताप साही राज्याधिकारी है। इस मुकदमे के दौरान मे राजेन्द्र प्रताप साही की जिन्दगी पर भी आफत थी और उनकी रक्षा करना कोई सहज काम न था। हमने सुना है कि उनकी रक्षा के लिए चौधुर लाल जी उनकी चारपाई के पास ही स्वय सोया करते थे और जो कुछ उनको खाने को दिया जाता था वह पहले जहर के भय स्वय खा लिया करते थे।

चौधुर लाल जी ने राजा की केवल रक्षा ही नही की, उन्होने राज के इन्तजाम मे भी काफी तरक्की की। गैर-आवाद जमीन को आवाद कराकर और दूसरे प्रकार की भी उन्नति करके उन्होने राज की आमदनी प्राय तिगुनी कर दी। महाराज राजेन्द्र प्रताप साही इन सव कारणो से उनको वहुत मानते थे और उनकी वडी प्रतिष्ठा किया करते थे। सुना है कि उनके सामने महाराज कभी तम्वाकू नही पीते थे और जव सुनते कि वह आ रहे है तव हुक्का हटवा दिया करते थे।

उन दिनो कर्मचारियो का मुशाहरा वहुत कम हुआ करता था। चौधुर लाल को शायद दीवान होने के जमाने मे भी ५०) या १००) मासिक मिला करता था। साथ ही जितने लोग वहाँ डेरे पँरे रहते थे सवके लिए सीधा—चावल, दाल, घी इत्यादि—राजभडार से रोजाना आया करता था। राज्य के कई गाँव भी, जिनमे जीरात की जमीन थी, उनको ठेके मे राजा ने दे रखा था। जीरात की जमीन मे धान की खेती होती थी और उससे काफी आमदनी हो जाया करती थी।

चौधुर लाल जी वडे मुन्तजिम आदमी थे। राज की आमदनी तो उन्होने

प्राक्कथन

श्री राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा को प्राक्कथन की आवश्यकता क्या? तिस पर मेरे-जैसा आदमी—जिसने कभी विद्वत्ता का या साहित्यकार होने का दावा नही किया—प्राक्कथन क्या लिखे? सन् १९१८ के खेड़ा-सत्याग्रह की लडाई के दिनो मे हम पहली बार मिले थे। उसी समय से राजेन्द्र बाबू के प्रति मेरे दिल मे जो आकर्षण उत्पन्न हुआ और हम दोनो के बीच प्रेम की जो गाँठ बँधी, वह मुझे इस काम को सिर-माथे चढाने के लिए विवश कर रही है।

श्री राजेन्द्र बाबू को देखते ही उनकी सरलता और नम्रता की जो छाप हमारे दिल पर पडती है, उसका प्रतिबिम्ब इस आत्मकथा के पन्ने-पन्ने मे पाया जाता है।

प्राय पिछले पच्चीस वर्षों से हमारा देश किस स्थिति से किस स्थिति को पहुँच गया है, इसका सजीव और एक पवित्र देश-भक्त के हृदय के रग मे रँगा हुआ इतिहास पाठकों को इस आत्मकथा मे मिलेगा।

इस आत्मकथा मे हमे राजेन्द्र बाबू के बाल्यकाल के बिहार के सामाजिक रीति-रिवाजो का, सकुचित प्रथाओ से होनेवाली हानियो का, उस समय के ग्राम-जीवन का, धार्मिक व्रतों, उत्सवो और त्योहारो का, उस जमाने के बच्चो के जीवन का और उस समय की शिक्षा की स्थिति का हू-बहू चित्र देखने को मिलता है। उस चित्र मे सादगी और खानदानियत के साथ विनोद और खेद उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियों का मिश्रण हुआ है। साथ ही, आजकल हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भाव की जो खाई बढ़ी हुई नजर आती है, उसके अभाव का और दोनों जातियो के बीच शुद्ध स्नेह का जो चित्र इस आत्मकथा मे है, वह आँखों को ठण्डक पहुँचानेवाला होते हुए भी दुर्भाग्य से आज लुप्त होता जा रहा है।

सन् १९०५ मे वग-भग के जमाने से ही राजेन्द्र बाबू पर देशभक्ति का रग चढने लगा था। उसी समय से वे अपने जीवन मे इस ओर क्रम-क्रम से बराबर आगे ही बढते गये हैं। सन् १९१७ मे चम्पारन की लडाई के समय उन्होने गाधीजी के कदमो पर चलकर फकीरी अपनायी। उसके बाद की उनकी आत्मकथा हमारे देश के पिछले तीस वर्षों के सार्वजनिक जीवन का इतिहास बन जाती है। जो कोई इस पुस्तक को पढेगे, वे इससे जीवन को उन्नत बनानेवाली प्रेरणा प्राप्त करेगे। कोई देश-प्रेमी इसे बिना पढे न रहे।

नयी दिल्ली

—वल्लभभाई पटेल

प्रस्तावना

१९४० में मैं स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज के साथ थोड़े दिनों के लिये आराम के वास्ते सीकर गया था। वहां ही अपनी जीवनी का आरम्भ बिना कुछ सोचे विचारे मैंने कर दिया। इसका एक छोटा अंश ही वहां लिखा जा सका था। वहां से चले आने के बाद बहुत दिनों तक इस ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिला। शायद यह फिर लिखी भी नहीं जाती। १९४२ में जेल में मेरे साथी भाई श्री मथुरा प्रसाद, चक्रधर शरण, और वाल्मीकि चौधरी ने बहुत आग्रह किया कि इसे पूरा कर देना चाहिये। वहां समय भी मिला। इस प्रकार इसका अधिकांश बांकीपुर के जेल में लिखा गया था। जो कुछ बाकी रह गया था वह बिड़ला भवन पिलानी में लिखा गया था। बाद में दिल्ली में, वाल्मीकि ने प्रेस के लिये प्रति तैयार की। श्री शिवपूजन सहायजी ने इसकी भाषा को छपने के पहले बहुत परिश्रम से ठीक किया। 'साहित्य संसार' के आग्रह से उन्होंने छापने और प्रकाशित करने का निश्चय किया था। यद्यपि प्रकाशक नये हैं, उन्होंने प्रकाशन का काम बहुत तेजी और बड़ी खूबसूरती के साथ किया है। मैं इन सबका कृतज्ञ हूं। पाठक इसे पढ़कर कोई भी लाभ नहीं पावें तो जानें।

राजेन्द्र प्रसाद

दिल्ली
२ जनवरी १९४७

प्रकाशक का निवेदन

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजी की 'आत्मकथा' के प्रकाशन की हमारी उत्कट अभिलाषा ने ही हमे 'साहित्य-ससार' की स्थापना करने को प्रेरित किया है। हमारे सौभाग्य से, देशरत्न के सामने जब साहित्य-ससार की 'राजेन्द्र-ग्रन्थावली' की योजना प्रस्तुत की गयी तो उन्होने, अपने कल्याणप्रद आशीर्वाद के साथ, प्रकाशन की अनुमति देने की कृपा की।

फिर क्या था, हम इस पुनीत कार्य मे अग्रसर हो गये। आत्मकथा की पाण्डु-लिपि देखने मे अध्यापक शिवपूजनसहायजी ने तथा छपाई के कार्य मे इडियन प्रेस, प्रयाग ने हाथ बँटाया। कागज की दिक्कत भी इडियन प्रेस की सहायता से हल हो गयी। हमे प्रकाशन का अधिकार सरकार ने दे दिया। साथ ही, आत्मकथा के मुख्य-वितरण की जवाबदेही 'भारती सदन, मुजफ्फरपुर' (विहार) ने लेकर, हमे राजेन्द्र-ग्रन्थावली के अन्य ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए फुर्सत दे दी। इन सबके हम हृदय से आभारी है।

'आत्मकथा' हमारी राजेन्द्र-ग्रन्थावली' का प्रथम ग्रन्थ है। इसे हम अन्य देशी भाषाओ तथा अँगरेजी मे समयानुकूल प्रकाशित करेगे। इसके अलावा, देशरत्न के लेखो, भाषणो आदि को हिन्दी तथा अन्य भाषाओ मे प्रकाशित करना हमारा मुख्य कार्य होगा। देशरत्न की 'सस्कृत-अध्ययन की उपयोगिता' भी हम प्रकाशित कर रहे है। हमे दृढ विश्वास है कि हिन्दी तथा अन्य भाषा-भाषी सज्जन हमारे इस उद्योग से लाभान्वित होंगे।

हमने जान-बूझ कर देशरत्न के प्रति कृतज्ञताज्ञापन नही किया है। हमारे प्रति उनका जो वात्सल्य-भाव है उसके कारण हमारा मूक रहना ही वाछनीय है।

पटना
१०-१-१९४७

व्यवस्थापक
साहित्य-संसार

दुगनी-तिगुनी बढा दी, तो भी वहाँ की रियाया उनसे प्रेम रखती और उन पर विश्वास करती जिसका सबूत मुझे अपने अनुभव मे भी मिला। जब मै असहयोग के दिनो मे उस इलाके मे दौरा करने लगा, मै जहाँ जाता वहाँ के बूढे लोग मेरा स्वागत विशेष करके इस कारण से भी करते कि मै चौधुर लाल जी का पोता हूँ। चौधुर लाल जी ने अपने कुटुम्ब की भी उन्नति की। उन्होने ७-८ हजार वार्षिक आमदनी की जमीन्दारी अपनी भी खरीदी। यह जमीन्दारी विशेष करके चावल बेच करके ही ली गयी थी। कई गाँव तो हमारी दोनो दादियो के नाम से ही लिये गये, क्योकि चावल तो घर मे वे ही तैयार कराती, बेचती और रुपये देती।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, चौधुर लाल जी ने अपने पुत्र जगदेव सहाय और भतीजा महादेव सहाय की शिक्षा का प्रबन्ध किया। अभी अँगरेजी की चाल नही चली थी। फारसी की ही शिक्षा दोनो को मिली। शायद एक बार छपरा भेजकर अँगरेजी पढाने का विचार भी हुआ और मेरे चचा ने दो-एक किताबे पढी भी। मगर महाराज ने इसमे प्रोत्साहन नही दिया और दोनो भाइयो को फारसी ही पढ़कर सब्र करना पडा। फारसी भी दोनो भाई उसी मौलवी साहब से पढते रहे, जो महाराज के पुत्र को—जो पीछे महाराज कृष्ण प्रताप साही हुए—पढाते थे।

महाराज राजेन्द्र प्रताप साही की मृत्यु के बाद राज का इन्तजाम कुछ दिनो के लिए कोर्ट आफ वार्ड्स के हाथ मे गया। चौधुर लाल जी अँगरेजी तो जानते न थे, इसलिए दीवान तो रह नही सकते थे, और उस पद पर पचीस-तीस बरसो तक रहकर उससे कोई छोटा पद स्वीकार करना उन्होने अपनी शान के खिलाफ समझा। तब से हम लोगो का कई पीढियो का सम्बन्ध हथुआ-राज से छूट गया। यह मेरे जन्म के पहले की बात है।

हथुआ से चले आने के बाद चौधुर लाल जी जीरादेई मे रहने लगे और कुछ दिनो के बाद गोरखपुर मे तमुकही-राज के भी दीवान थोडे दिनो के लिए हुए। पर उस समय उनकी अवस्था कुछ अधिक हो गयी थी। वहाँ का जलवायु अनुकूल न होने के कारण वह शीघ्र ही वहाँ से जवाब देकर चले आये। उनके अन्तिम दिन जीरादेई मे ही बीते। मुझे तमुकही की बाते कुछ-कुछ याद आती है। मै उन दिनो बहुत छोटा था।

२—मेरे भाई-बहन

ऊपर कह आया हूँ कि मेरे पिता की पाँच सन्तानो मे सबसे बडी भगवती देवी है। उनका विवाह मेरे जन्म के पहले ही एक बडे धनी कायस्थ-परिवार मे हुआ। बचपन मे, जब मै शायद चार-पाँच बरस का था, वहाँ गया था और उन लोगो की शान-शौकत देखी थी। मेरे बहनोई छ भाई थे। सबके लिए अलग-अलग नौकर और सिपाही थे। कई घोडे-हाथी पाले जाते थे और कई किते की बडी हवेली थी। न मालूम किस तरह से चार-पाँच वर्षो के भीतर देखते-देखते ही सारी जमीन्दारी,

जिसकी आमदनी सुनते है कि ७०—७५ हजार सालाना की थी, बिक गयी। मेरे बह-नोई की मृत्यु भी उन्ही दिनो मेरे ही घर पर, जीरादेई मे ही, हो गयी। मै छोटा था, फिर भी उस समय का कोलाहल और दादा, चचा, पिता जी और घर की स्त्रियो की करुण दशा का चित्र अभी तक नही भूलता। मैने मृत्यु का दृश्य पहले-पहल वही अपने होश मे देखा।

उनसे छोटी बहन की शादी उसके बाद हुई। भाई साहब की भी शादी हुई। इन दोनो शादियो को भी मैने देखा। भाई की शादी मे मै बरात गया था। उस समय शायद चार बरस का था और वहाँ जाकर माँ के लिए रोने भी लगा था। उस समय तक शायद ही माँ से अलग होकर एक-दो दिनो के लिए कही गया होऊँ। भाई साहब मुझसे आठ बरस बडे थे। इसलिए मुझे बहुत बातो की सुविधा हुई। जो उनकी शिक्षा का क्रम हुआ वही मेरे लिए भी स्वभावत हो गया और मै उनके पीछे-पीछे बिना किसी विशेष कठिनाई के चलता गया।

घर मे चौधुर लाल जी रहते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि मै और मेरे चचा की लडकी, जो मुझसे पाँच-छ महीने छोटी थी, उनके बदन पर लोटपोट करके खेला करते और वह बहुत प्यार से हम दोनो को खेलाया करते। मेरे चचा साहब जमीन्दारी का इन्तजाम करते और अक्सर छपरे आया-जाया करते जहाँ जमीन्दारी के मुकदमे, जो हमेशा कुछ-न-कुछ लगे ही रहते है, हुआ करते थे। मेरे भाई साहब छपरे अँगरेजी पढने के लिए भेज दिये गये थे। जब-तब उनको देखने के लिए भी वही जाया करते। जब कभी उनके छपरे से आने की खबर मिलती, हम बच्चे घर से कुछ दूर जाकर ही उनका स्वागत करते। स्वागत का अर्थ था उनसे मिठाई, फल इत्यादि की माँग पेश करना और जो कुछ मिल जाय उसे ले उनसे पहले ही दौड़कर घर पहुँच माँ को दिखलाना।

मेरे पिता जी घर पर ही रहा करते थे। जमीन्दारी के इन्तजाम से उनका कम ही सरोकार रहता। उनको बाग लगाने का शौक था। वह बहुत समय बाग-बगीचे लगाने मे ही बिताते। आज भी उनके लगाये आम के दो बडे-बडे बगीचे हम लोगो के कब्जे मे है जिनमे अच्छे-अच्छे आम पैदा होते है। वह फारसी के अच्छे विद्वान् थे। कुछ-कुछ सस्कृत भी जानते थे। आयुर्वेद और तिब मे उनकी दिलचस्पी थी। इन विषयो की पुस्तको का सग्रह भी कर रखा था और उसका अध्ययन भी किया करते थे। वह इस तरह बिना बाजाब्ता शिक्षा पाये चतुर वैद्य या हकीम हो गये थे। उनके पास तरह-तरह के रोगी आया करते। जो दवा खरीद सकते उनको नुस्खे लिखकर देते। गरीबो को अपने पास से दवा भी देते। उनके साथ एक नौकर हमेशा दवा तैयार करने के लिए ही रहता। कभी किसी की नाडी नही देखते थे और न किसी के घर जाकर रोगी को ही देखते थे, हालत सुनकर ही दवा देते और बहुतेरे आराम भी हो जाते। इससे यश फैला था। वह शरीर से भी अच्छे पुष्ट थे। बचपन से कुछ कसरत भी अखाडे मे उन्होने की थी। मुझे याद है कि जब मै स्कूल या कालेज

मे पढता था और छुट्टियो मे घर आया करता था, तो वह स्वय मुगदर भाँजने को सिखाते थे और साथ-साथ मुगदर भाँजकर तरह-तरह के खेल दिखलाते थे। घोडे की सवारी अच्छी करते थे और हमेशा एक अच्छा घोडा रखा करते थे। बचपन मे मुझे और भाई साहब को घोडे की सवारी करना भी उन्होने सिखाया था। छोटी ही उम्र मे हम दोनो भाई दो घोडो पर सवार होकर, कभी-कभी छुट्टियों मे जीरादेई आने पर, घूमने-फिरने जाया करते।

लडकपन मे हम लोग देहाती खेल भी खेला करते। खास करके वहाँ का प्रचलित खेल कबड्डी और चिक्का तो हम खूब खेलते। प्राय कोई दिन बिना खेले नही बीतता होगा। यह क्रम उस समय तक जारी रहा जब तक कालेज की पढाई खतम नही हुई। जब कभी छुट्टियो मे हम जीरादेई आते थे, खेल जरूर खेलते जिसमे भाई भी शरीक होते। एक खेल और गाँवो मे प्रचलित था। उसे 'दोल्हापाती' कहते है। उसमे गाछो पर चढना होता है। मै गाछो पर चढने से डरता था, इसलिए उस खेल मे कभी शरीक नही हुआ। इसी प्रकार, गाँव मे बहती नदी के अभाव मे, तैरना भी नही सीख सका।

माता और दादी मुझे बहुत प्यार करती। बचपन से ही मेरी आदत थी कि मै सध्या को बहुत जल्द सो जाता था और उधर कुछ रात रहते ही, बहुत सवेरे ही, जाग जाता था। घर पक्का था, पर बना था पुराने तरीके पर। बीच मे आँगन और चारो ओर ओसारे और कमरे। कमरो मे एक दरवाजा और छप्पर के नजदीक हर कमरे मे एक या दो छोटे-छोटे रोशनदान। जाडो मे खास करके, लम्बी रात होने के कारण, रात रहते ही नीद टूट जाती और उसी समय से माँ को भी मै सोने नही देता। रजाई के भीतर ही भीतर उनको जगाता। वह जागकर पराती (प्रभाती) भजन सुनाती। कभी-कभी रामायण इत्यादि की कथाएँ भी सुनाती। उन भजनो और कथाओ का असर मेरे दिल पर बहुत पडता। इसी प्रकार जबतक रोशनदान मे बाहर की रोशनी नजर नही आती, पडा रहता और माँ से भजन गवाता रहता या कथा कहलाता रहता। जब रोशनी खूब आ जाती तव घर से वाहर निकलता। सध्या को इतना पहले सो जाता कि शायद ही कभी रात का खाना जागते-जागते खाया हो। उन दिनो रात का खाना भी बहुत देर के वाद तैयार होता। बच्चे क्या, बूढे लोग भी एक नीद सोकर उठने के वाद ही खाना खाते। शायद ही किसी रात को १२-१ बजे के पहले खाना-पीना होता हो। पहले घर के पुरुष खाते, तब स्त्रियाँ खाती, और तब नौकर खाते। गरमी के मौसम मे तो नौकरो के खाते-खाते कभी-कभी सवेरा तक हो जाता। इसलिए अगर मै शाम को विना खाये सो जाता तो मै अपना कोई कसूर मानने को तैयार नही हूँ।

घर मे रसोई बनाने के लिए एक कायस्थ थे। इसलिए रसोई का भार मेरी चाची या माँ पर नही था। तो भी उन्हे तरकारी इत्यादि तो कुछ वनाना ही पडता। सध्या होते ही मै माँ को पकड़ लेता और साथ सोने के लिए रोने लगता।

अगर वह किसी काम में लगी रहती तो उसे छोड मेरे साथ उनको सोना पडता। पर मैं समझता हूँ कि यह क्रिया कुछ देर तक नही होती, क्योंकि मैं बहुत जल्द सो जाता और जब एक बार सो गया तो वह फिर उठकर चली जाती और काम करती। मुझे स्मरण है कि हमेशा रात को मुझे जगाकर खिलाया जाता। आँखे खुलती नही, पर बदन हिलाकर माँ मैना-सुग्गा के नाम और किस्से कहकर मुँह तो खुलवा देती और उसमें भोजन दे देती। एक दाई थी जिसको हम काकी कहा करते थे। वह इस प्रकार खिलाने मे बडी पटु थी। जब किसी दूसरे की हजार कोशिश पर भी आँख और मुँह बन्द ही रहते, तो भी वह किसी-न-किसी उपाय से मुँह तो जरूर खोलवा देती और भात खिला देती। साँझ के बाद ही सोने और भोर होते ही जागने की आदत मुझमे बराबर बनी रही। यहाँ तक कि जब मैं छपरे और पटने पढने के लिए गया, तब भी रात होते ही बहुत जल्द सो जाता और पाँचवे क्लास मे पहुँचने के समय तक शायद ही कभी रात में अपने हाथो खाया हो। एक ब्राह्मण रसोईदार थे, जो रात को मुझे गोद में बिठाकर उसी पुरानी रीति से, आँखे बन्द रहने पर भी, खुले मुँह मे भात के गोले रख दिया करते, जिनको मैं निगल लिया करता था।

जब मैं वकालत करता था तबतक साँझ ही सो जाने की आदत जारी रही। सध्या समय मवक्किलों का कागज लेकर देखने बैठता और उनके सामने ही, ७॥–८ बजे ही, झुकने लगता। तब काम बन्द कर देता। १९१४–१५ मे, जब मैं एम० एल० परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था, एक घटना घटी। उन दिनों कलकत्ता-हाइकोर्ट मे मैं प्राक्टिस करता था। लॉ-कालेज में प्रोफेसरी भी मिल गयी थी। कुछ मुकदमे भी हाथ मे रहा करते थे। इसलिए सवेरे का समय मुकदमो की बहस की तैयारी मे और लॉ-कालेज की पढाई की तैयारी मे लग जाता। दिन का समय कचहरी मे कट जाता। केवल रात का ही समय परीक्षा की तैयारी के लिए मिलता। इसलिए सध्या को ही पुस्तकें पढ़ता और जब पुस्तकें हाथ में आती, साथ-साथ नीद भी आ ही जाती। एक दिन सोचा कि इस प्रकार से तो परीक्षा की तैयारी मे सफलता नही मिलेगी, किसी तरह सध्या की नीद को रोकना चाहिए और कम से कम ९ बजे रात तक तो पढना ही चाहिए। जब नीद आने लगी तो किताब हाथ मे लेकर खडा हो गया। उस पर भी जब नीद का हमला कम न हुआ, तो कमरे के अन्दर टहल-टहलकर पढने लगा। मालूम नहीं, कितनी देर तक यह क्रम चला। एकबारगी हाथ से किताब नीचे गिरी और मैं भी साथ ही साथ धडाम से कमरे के फर्श पर चित हो रहा। न मालूम, सिर क्यों नही फूटा। कुछ तो चोट जरूर आई। तब से उस प्रयोग को खतरनाक समझकर छोड दिया और जो कुछ समय बैठे-बैठे निकाल सकता उतना ही पढकर सब्र करता।

३—मौलवी साहब

पाँचवे या छठे बरस में मेरा अक्षरारम्भ कराया गया था। उस समय मेरे भाई अँगरेजी पढने के लिए छपरे भेजे जा चुके थे। उस समय की प्रचलित प्रथा के

अनुसार अक्षरारम्भ मौलवी साहब ने कराया था। जिस दिन अक्षरारम्भ हुआ, मौलवी साहब आये, बिसमिल्लाह् के साथ अक्षरारम्भ हुआ, शीरनी बाँटी गयी और उनको रुपये भी दिये गये। हम तीन विद्यार्थी उनके सपुर्द किये गये—एक मैं और दूसरे दो अपने कुटुम्ब के ही चचेरे भाई, जिनमे एक यमुना प्रसाद जी सबसे बडे और मुझसे दो बरस बडे है, तीसरे अब नही रहे, वह भी मुझसे बडे थे। यमुना भाई ही हम सबके 'लीडर' थे और तमाम खेल और लडकपन की चुल्लेपनी मे आगे रहा करते थे। उनके एक चचा, जो मेरे भी चचा होते थे, बडे मजाक-पसन्द थे। वह मेरे पिता जी से छोटे होते थे, पर पिता जी के कई गुण उन्होने भी सीखे थे। वह भी घोडे की अच्छी सवारी करते, दवा करते और बाँटते और बन्दूक चलाना, गुलेल चलाना खूब जानते थे। फारसी भी पढे थे और शतरज भी खूब खेलते थे। पर इन सब चीजो मे वह मेरे पिता जी का लोहा मान लेते थे। बडे ही हँसमुख और पुरमजाक आदमी थे।

मौलवी साहब, जो हम लोगो को पढाने आये, विचित्र आदमी थे। उनका बहुत बातो पर दावा था। बलदेव चचा के मजाक के लिए वह एक बहुत ही उपयोगी साधन बन गये। चचा तरह-तरह की बाते मौलवी साहब को सुनाते और उनको उत्साह देकर उनसे कहला लेते कि वह भी, चाहे वह कोई बात या काम क्यो न हो, जानते थे या कर सकते थे। इस प्रकार मौलवी साहब का दावा था कि वह शतरज खेलना जानते थे। बलदेव चचा शतरज खेलाते, पर बावजूद दावा के मौलवी साहब कभी जीतते नही। हम छोटे-छोटे बच्चे इन सारे मजाको को भय और कौतूहल से देखते। हँसने का मौका आ जाय तो भी हँसना मुश्किल हो जाता। मजाक की बात दादा जी—चौधुर लाल जी—तक पहुँच गई। वह भी कभी-कभी उसमे शरीक हो जाते।

एक दिन बलदेव चचा ने मौलवी साहब से कहा कि बाग मे हनुमान आ गये है, उनको किसी तरह भगाना चाहिए, वे गुलेल से मारकर भगाये जा सकते है। इतना कहना था कि मौलवी साहब ने दावा पेश कर दिया कि वह भी गुलेल चलाना खूब जानते है। बलदेव चचा तो खूब समझ गये थे कि वह कुछ नही जानते, पर मजाक उनको मजूर था। वह उनको साथ लेकर बगीचे मे गये। गुलेल और गोली उनके सपुर्द कर कहा कि खूब खीचकर एक बन्दर को मारिये। मौलवी साहब ने खूब खीच-कर जो गोली छोडी और देखना चाहा कि बन्दर को कैसी चोट लगती है कि इतने मे उनके बाये हाथ के अँगूठे से तरतर खून टपकने लगा और चोट के दर्द से सहम-कर बैठ गये। गोली बन्दर को लगने के बदले मौलवी साहब के अपने अँगूठे पर ही जा बैठी थी।

एक दूसरे दिन का जिक्र है कि शाम को सब लोग, जिनमे हमारे दादा साहब भी शरीक थे, टहलने निकले। मौलवी साहब और बलदेव चचा भी थे। तरह-तरह की बाते हो रही थी। इतने मे एक साँड देखने मे आया। लोगो ने कहा कि साँड

लोगो को मारता हूँ। बलदेव चचा के इशारे पर मौलवी साहब इससे कब डरनेवाले थे, बेखौफ आगे बढे कि इतने मे साँड़ ने उनको दे पटका। इस प्रकार के मजाक बराबर ही हुआ करते।

एक दिन बलदेव चचा ने मौलवी साहब को बन्दूक चलाने की तरगीब दी। मौलवी साहब किसी चीज को न जानना कबूल करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे और उन्होने साफ कह दिया कि वह अच्छा निशाना लगा सकते है। उन्हे साथ लेकर बलदेव चचा बन्दूक के साथ गये। मौलवी साहब के दो लडके थे जो हम लोगो के साथ ही पढा करते थे। हम सब और वह दोनो लडके भी साथ हो लिये। कुछ दूर पर एक ऊँचे दरख्त पर एक गीध बैठा नजर आया। बलदेव चचा ने उसी पर निशाना लगाने को कहा। वह काफी ऊँचाई पर था और प्राय खडी बन्दूक करके ही निशाना लग सकता था। मौलवी साहब को जो बन्दूक दी गयी थी वह पुराने किस्म की थी, जिसमे बारूद ऊपर से भरी जाती थी और वजनी भी थी। मौलवी साहब ने शायद कभी पहले बन्दूक नही चलाई थी। उन्होने प्राय खडी बन्दूक अपने सीने पर रखकर निशाना लगाया। उधर बन्दूक का घोडा चटका, आवाज हुई और इधर गीध के बदले मौलवी साहब जमीन पर चित गिरे। बलदेव चचा ने झट उनको उठाया और लडको को पानी लाने के लिए भेजा। मौलवी साहब किसी तरह घर लाये गये।

इस प्रकार के मजाको के बीच हम लोग फारसी पढते रहे। कुछ छ-आठ महीनो के बाद मौलवी साहब चले गये। हम लोग शायद अक्षर सीख चुके थे और करीमा पढने लगे थे। फिर दूसरे मौलवी बुलाये गये जो ब त गम्भीर थे और अच्छा पढाते भी थे। वही दो बरसो तक रहे और करीमा, मामकीमा, खालकबारी, खुशहाल-सीमिया, दस्तूरुलसीमिया, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ तक हम लोगो को पढा सके। उसी जमाने में हम लोगो ने कैथी लिखना और गिनती करना सीख लिया, पर यह याद नही है कि यह कब और कैसे सीखा। हफ्ते मे साढे पाँच दिन फारसी पढते थे। बृहस्पतिवार के दोपहर के बाद और शुक्रवार के दोपहर तक फारसी से छुट्टी रहती थी और इसी मे कैथी अथवा गिनती वगैरह सीखते। इसके अलावा कुछ खेलने-कूदने के लिए भी अधिक समय दिया जाता।

पढने का तरीका था कि खूब सवेरे हम लोग उठकर मकतब मे चले आते। मकतब मेरे पक्के मकान से अलग एक दूसरे मकान के ओसारे मे था। एक कोठरी थी जिसमे मौलवी साहब रहा करते और सामने ओसारे मे तख्तपोश पर बैठकर हम लोग पढा करते। मौलवी साहब कभी अपनी चारपाई पर और कभी तख्तपोश पर बैठकर पढाया करते। सवेरे आकर पहले का पढा हुआ सबक एक बार आमोख्ता करना पडता और जो जितना जल्द आमोख्ता कर लेता उसको उतना ही जल्द नया सबक पढा दिया जाता। मै अक्सर अपने दोनो साथियो से पहले मकतब मे पहुँच जाता और आमोख्ता भी पहले खतम करके सबक भी पहले पढ लिया करता। यह करते सूर्य्योदय होकर कुछ दिन भी निकल आता। तब नौकर आता और साथ ले

जाकर मुँह-हाथ धुला देता और घर माँ के पास कुछ खिलाने के लिए पहुँचा देता। इसके लिए प्राय आध घटे पौन घटे की छुट्टी मिलती। नाश्ता करके लौटने पर सबक याद करना पडता और सबक याद करके सुना देने के बाद मौलवी साहब हुकुम देते, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके तख्ती निकालनी पडती। इन दोनो क्रियाओ के बीच कुछ समय खेलने-कूदने का भी मिल जाता या दोबारा घर जाकर कुछ खा लेने का भी मौका मिल जाता। तख्ती पर लिखना होता और जब तख्ती भर जाती तो उसे धोना पडता। इस क्रिया मे भी कुछ समय आपस मे हँसने-खेलने का मिलता। दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक-डेढ़ घटे की छुट्टी मिलती और खाकर फिर मकतब मे ही उसी तख्तपोश पर सोना पडता। मौलवी साहब चारपाई पर सोते। हम लोगो को अक्सर नीद नही आती और तख्तपोश पर लेटे-लेटे शतरज खेलते और जब मौलवी साहब के जागने का वक्त होता उसके पहले ही गोटियो को उठाकर रख देते। उसी जमाने मे कभी शतरज खेलना भी आ गया, पर इसका पता नही कि कब, कैसे और किससे सीखा। फिर सेपहर को दूसरा सबक मिलता और उसको कुछ हद तक याद करके सुनाने के बाद घटा-डेढ-घटा दिन रहते खेलने के लिए छुट्टी मिलती। इसी समय गेद, चिक्का इत्यादि खेल खेले जाते। सध्या को फिर चिराग-बत्ती जलते किताब खोलकर पढने के लिए बैठना पडता। दिन के दोनो सबक याद करके फिर सुनाने पडते और तब हुक्म होता, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके, कायदे के मुताबिक मौलवी साहब को आदाब करके, घर जाकर सो जाते।

सध्या को जल्द नीद आती। इससे हमेशा डर रहता कि कही झुकते देखकर मौलवी साहब मार न बैठे। जल्द छुट्टी के लिए दो उपाय थे। खेल-कूद मे जमुना भाई 'लीडर' थे और जल्द छुट्टी पाने के उपाय भी वही करते। पढने के लिए तेल देकर दिया जलाया जाता था। जमुना भाई दिन को ही कपडे मे राख या धूल बाँध-कर छोटी-सी पोटली बनाकर छिपाकर रख लेते। जिस दिन दिया मे तेल अधिक देखने मे आता, चिराग की बत्ती उकसाने के बहाने, छिपाकर पोटली दिया मे रख देते। वह देखते-देखते तेल सोख लेती और जल्द दिया बुझने पर आ जाता। मौलवी साहब दाई पर रज होते कि तेल क्यो कम लाई, पर मजबूर होकर जल्द ही किताब बन्द करने का हुक्म दे देते। किसी-किसी दिन जमुना भाई पेशाब करने के लिए छुट्टी माँगकर बाहर जाते और पेशाब करने के बदले दौडकर कभी मेरी माँ के पास, कभी-कभी अपनी माँ के पास और कभी गगा भाई की माँ के पास जाकर कह आते कि अब नीद लग रही है, जल्द दाई को हमे बुलाने के लिए भेजो, नही तो पिट जायँगे। उनके पेशाब से लौटने के थोडे ही बाद दाई पहुँच जाती और मौलवी साहब से कहती कि अब छुट्टी दे दीजिए। मौलवी साहब छुट्टी दे देते।

एक दिन, जब इस तरह जमुना भाई दौडे जा रहे थे, गाँव के एक सज्जन ने, जो रिश्ते मे हम लोगो के चचा होते थे, उन्हे देख लिया और जाकर मौलवी साहब से कह दिया कि जमुना कही दौडे जा रहे थे। तहकीकात हुई और जमुना भाई

दूकान भी आ जाती थी और जो चाहते उनको मछली-मास भी खरीदने को मिल जाते। जिनकी जरूरते इस प्रकार पूरी नही होती, वे 'सीवान' जाते। वही थाना और मजिस्ट्रेट है—कचहरियाँ है और दूकाने भी है। वह एक कस्बा है, जो देहात के लोगो के लिए उन दिनो बहुत बड़ी जगह का रुतबा रखता था। मुझे याद है कि गाँव मे बाहर से सगे-सम्बन्धियो के सिवा ब त कम लोग आया करते थे। मौलवी साहब के यहाँ दो-चार महीने मे एक बार एक आदमी फारसी की छोटी-मोटी किताबो की एक छोटी गठरी और एक-दो बोतलो मे सियाही (आजकल की ब्लूब्लैक रोशनाई नही) लिये आ जाता था। जब वह आता तो हम बच्चो के कौतूहल का ठिकाना न रहता। कभी-कभी जाडो मे कोई नारगी-नीबू की टोकरी लिये बेचने आ जाता तो हम बच्चे इतना खुश होते कि मानो कुछ नायाब मिल गया। एक दिन ऐसा ही एक आदमी आया और मै दौडकर माँ से कहने गया। वहाँ से दौडकर जो बाहर आ रहा था कि पैर मे जोर से किसी चीज की ठोकर लगी, गिर गया। ओठ मे चोट आई और खून बहने लगा। बहुत दिनो तक उसका चिह्न था। एक बार और किसी चीज के लिए दौडता हुआ गिर गया था। उसका निशान तो आज तक दाहिनी आँख के नीचे गाल पर मौजूद है। गाँव मे फल—आम के दिनो मे आम और मामूली तरह से कभी-कभी बाग से केले—मिल जाते थे। चचा साहब, जिनको हम लोग नूनू कहा करते थे, छपरे से कभी-कभी अगूर लाया करते थे। अगूर आज की तरह खुले आम गुच्छो मे नही बिका करते थे, काठ की छोटी पेटी मे रुई के फाहे के बीच मे रखकर बिकते थे और दाम भी काफी लगता था। गाँव के लोग केवल आम और केले ही मौसम मे पाते थे।

गाँव मे दो छोटे-मोटे मठ है, जिनमे एक-एक साधु रहा करते थे। गाँव के लोग उनको भोजन देते है और वह सुबह-शाम घडी-घटा बजाकर आरती करते है। आरती के समय कुछ लोग जुट भी जाते है। कभी-कभी हम लोग भी जाया करते थे और बाबा जी तुलसीदल का प्रसाद दिया करते थे। रामनौमी और विशेषकर जन्माष्टमी मे मठ मे तैयारी होती थी। हम सब बच्चे कागज और पन्नी के फूल काटकर ठाकुरबारी के दरवाजो और सिंहासन पर साटते थे और उत्सव मे शरीक होते थे, व्रत रखते थे और दधिकाँदो के दिन खूब दही-हल्दी एक दूसरे पर डालते थे। प्राय हर साल कार्तिक मे कोई-न-कोई पडित आ जाते जो एक-डेढ महीना रहकर रामायण, भागवत अथवा किसी दूसरे पुराण की कथा सुनाते थे। जिस दिन पूर्णाहुति होती थी उस दिन गाँव के सब लोग इकट्ठे होते और कुछ-न-कुछ पूजा चढाते। मेरे घर से अधिक पूजा चढती, क्योकि हम सबसे बडे समझे जाते थे। अक्सर कथा तो मेरे ही दरवाजे पर हुआ करती थी। उसका सारा खर्च हमको ही देना पडता था। जब गाँव मे पचायती कथा होती तब गाँव-भर के लोग बारी-बारी से पडित के भोजन का सामान पहुँचाते, उसमे मेरा घर भी शामिल रहता। हम बच्चे तो शायद ही कथा का कुछ ज्यादा अश सुन पाते हो, क्योकि मै तो

सँझौत के बाद ही सो जाता। पर जब आरती होती तो लोग जगाते और प्रसादी खिला देते।

मनोरजन और शिक्षा का एक दूसरा साधन रामलीला थी। वह आसिन मे हुआ करती थी। रामलीला करनेवाली जमात कही से आ जाती और पन्द्रह-बीस दिनो तक खूब चहलपहल रहती। लीला कभी जमापुर मे होती, कभी जीरादेई मे। लीला भी विचित्र होती। उसमे राम-लक्ष्मण इत्यादि जो बनते, कुछ पढेलिखे नही होते। एक आदमी तुलसीदास की रामायण हाथ मे लेकर कहता—'रामजी कही, हे सीता'—इत्यादि और रामजी वही दुहराते। इसी प्रकार, जिनको जो कुछ कहना होता उनको बताया जाता और वह पीछे-पीछे उसे दुहराते जाते। लोगो का मनोरजन इस वार्त्तालाप मे अधिक नही होता, क्योकि भीड बडी लगती और सब कारबार प्राय १००–२०० गज मे फैला रहता। मनोरजन तो पात्रो की दौडधूप और विशेषकर लडाई इत्यादि के नाटच मे ही होता। उत्तर मे रामजी का गढ और दक्खिन मे रावण का गढ़ बनता अथवा अयोध्या और जनकपुर बनता। जिस दिन जो कथा पडती उसका कुछ न कुछ स्वाँग तो होता ही। सबसे बडी तैयारी राम-विवाह, लकाकाण्ड के युद्ध और रामजी के अभिषेक—गद्दी पर बैठने के दिन होती। विवाह मे तो हाथी-घोडे मँगाये जाते और बरात की पूरी सजावट होती। लकादहन के लिए छोटे-मोटे मकान भी बना दिये जाते जो सचमुच जला दिये जाते। हनुमान-बानर और निशाचरो के अलग-अलग चेहरे होते जो उनको समय पर पहनने पडते और हम बच्चो को वे सचमुच डरावने लगते। वानरो के कपडे अक्सर लाल होते और निशाचरो के काले। राम-लक्ष्मण-जानकी के विशेष कपडे होते और उनके सिंगार मे प्राय डेढ-दो घटे लग जाते। लीला सध्या समय ४ बजे से ६ बजे तक होती। राम-लक्ष्मण मामूली लोगो की तरह नही चलते। उनके कदम बहुत ऊँचे उठते और लडाई मे पैतरे देने की तो उनको खास तालीम दी जाती। जिस दिन राजगद्दी होती उसी दिन गाँव-जवार के लोग पूजा चढाते, जो नजर के रूप मे रामजी के चरणो मे चढाई जाती। लीलावालो को भोजन के अलावा नगद जो कुछ मिलना होता उसी दिन मिलता। दूसरे दिन फिर राम-लक्ष्मण-जानकी को शृगार करके बडे-बडे लोगो के घरो मे ले जाते, जहाँ की स्त्रियाँ परदे के कारण भीड-भाड मे लीला देखने नही जाया करती। वहाँ उनकी पूजा होती और उनपर रुपये चढाये जाते।

एक चीज, जिसका असर मुझपर बचपन से ही पडा है, रामायणपाठ है। गाँव मे अक्षरज्ञान तो थोडे ही लोगो को था। उन दिनो एक भी प्राइमरी या दूसरे प्रकार का स्कूल उस गाँव अथवा कही जवार-भर मे नही था। मौलवी साहब हम लोगो को तीन-चार रुपये मासिक और भोजन पाकर पढाते थे। गाँव मे एक दूसरे मुसलमान थे, जो जाति के जुलाहा थे, मगर कैथी लिखना जानते थे। मुडकट्टी हिसाब भी जानते थे, जिसमे पहाडा, डचोढा इत्यादि मन-सेर की बिकरी और खेत की पैमाइश का हिसाब शामिल है। उन्होने एक पाठशाला खोल रखी थी जिसमे गाँव के कुछ

लडके पढते थे। अक्षर पहचानना तो बहुत थोड़े लोग जानते, पर प्राय प्रतिदिन सध्या के समय कुछ लोग कही न कही, मठ मे या किसी के दरवाजे पर, जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक से चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते। साथ मे झाल और ढोलक भी बजाते थे। वन्दना का हिस्सा तो जब रामायण का पाठ आरम्भ होता तो जरूर दुहराया जाता। इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गाँव मे बहुतेरे ऐसे लोग थे जो रामायण की चौपाइयाँ जानते और दुहरा सकते और विशेष करके वन्दना के कुछ दोहो को तो सभी प्राय बरजबान रखते थे।

त्योहारो मे सबसे प्रसिद्ध होली है। उसमे अमीर-गरीब सभी शरीक होते थे। वसन्त-पचमी के दिन से ही होली गाना शुरू होता। उसे गाँव की भाषा मे 'ताल उठना' कहते थे। उस दिन से होली के दिन तक जहाँ-तहाँ झाल-ढोलक के साथ कुछ आदमी जमा होते और होली गाते। कभी-कभी जीरादेई और जमापुर के लोगो मे मुकाबला हो जाता और एक गीत एक गाँव के लोग जैसे खतम करते, दूसरे गाँव के लोग दूसरा शुरू करते। कभी-कभी गाँव के आसपास के दूसरे गाँवो के लोग भी गोल बाँधकर आ जाते और इस प्रकार का मीठा प्रतियोग बडे उत्साह से हुआ करता। मुझे याद है कि एक बार दो गाँवो मे बाजी-सी लग गई और रात-भर गाते-गाते सवेरे सूर्योदय के बाद तक लोग गाते ही रह गये, और तब उनको कहकर हटाया गया। इस गाने मे जो आदमी ढोलक बजाता है उसे काफी मेहनत पडती है और वह पसीने-पसीने हो जाता है। एक गाँव मे ढोलक बजाने वाला एक ही आदमी था। वह सारी रात बजाता रह गया। उसके हाथो मे छाले पड गये, पर वह कहाँ रुकने वाला था, गाँव की इज्जत चली जाती! छाले उठे और फूट गये और इस प्रकार रात-भर मे कई बार छाले उठे और फूटे, पर उसने गाँव की इज्जत नही जाने दी। यह बात दूसरे दिन प्रतियोगिता खतम होने पर सवेरे मालूम हुई और सब लोगो ने उसकी हिम्मत की सराहना की।

होली के दिन बहुत गन्दा गाली-गलौज हुआ करता। उसमे बूढे और जवान और लडके भी एक साथ शामिल होते। गाँव के एक कोने से एक जमात चलती जो प्राय हर दरवाजे पर खडी होकर नाम ले-लेकर गालियाँ गाती और गन्दी मिट्टी, धूल और कीचड एक दूसरे पर डालती गाँव के दूसरे सिरे तक चली जाती। यही एक अवसर था जब बड़े-छोटे का लिहाज एकबारगी उठ जाता था। बडे-छोटे केवल उम्र मे ही नही, जाति और वर्ग की बडाई-छोटाई भी उठ जाती थी। चमार, ब्राह्मण और राजपूत एक दूसरे को गालियाँ सुनाते और एक दूसरे पर कीचड फेकते। जब कोई नया आदमी साफ-सुथरा मिल जाता तो उसकी जान नही बचती, मानो उसे भी कीचड लगाकर जाति मे मिला लेना सभी अपना फर्ज समझते थे। यह घुरखेल दोपहर तक जारी रहता। उसके बाद सभी स्नान करते और घर-घर मे पूजा होती। उस दिन का विशेष भोजन पूरी-मालपुआ है। गरीब लोग भी किसी न किसी प्रकार

कुछ प्रबन्ध कर ही लेते। भोजन के बाद सेपहर को गुलाल और अबीर से रग खेला जाता। सब लोग सफेद कपडे पहनते। उस पर लाल-पीले रंग डाले जाते अबीर और अबरख का चूर्ण छिडका जाता। गरी-छुहारा, पान-कसैली बाँटी जाती और खूब होली गाई जाती।

मैंने सुना है कि और जगहो मे लोग उस दिन खूब शराब-कबाब का भी व्यवहार किया करते है। पर सौभाग्य से मैंने यह अपने गाँव मे कभी नही देखा। राजपूत ब्राह्मण, भूमिहार तो हमारे यहाँ शराब पीना पाप मानते है। कही-कही कायस्थ लोग पीते है। पर मेरे घर मे एक बहुत पुरानी प्रथा चली आ रही है। लोगो का विश्वास है कि हमारे वश मे जो कोई शराब पियेगा वह कोडी हो जायगा। इसलिए वहाँ कायस्थो के घरो मे भी कभी शराब नही आई। बडो को देखकर छोटे भी इससे परहेज करते है और यह बात आज तक जारी है।

जन्माष्टमी-रामनौमी का जिक्र कर ही दिया है, दीवाली भी अच्छी मनाई जाती थी। कुछ पहले से ही सब लोग अपने-अपने घरो को साफ करते। दीवारों को लीपते और काठ के खम्भो और दरवाजो मे तेल लगाते। उन दिनो किरासन का तेल नही जलाया जाता था—शायद मिलता ही नही था। सरसो, तीसी, दाना अथवा रेंडी का तेल ही जलाया जाता। दीवाली मे मिट्टी के छोटे-छोटे दिये जलाकर प्राय अमीर-गरीब सब कुछ-न-कुछ रोशनी जरूर करते। बडे लोगो के मकान पर बहुत दिये जलाये जाते, केले के खम्भे गाडे जाते बाँस की मेहराबे बनाई जाती, रग-बिरग की तसवीरे दियो से बनाई जाती, जो देखने मे बहुत सुन्दर मालूम पडती। बड़े लोग तो ये नक्शे बनाते और हम छोटे उनके बताये हुए स्थानो पर दिये रखते, तेल डालते, बत्ती जलाते। बत्ती जल जाने के पहले लक्ष्मीपूजा होती। लक्ष्मी जी तथा तुलसी के पास बत्ती जलाने के बाद ही और सब जगहो मे दिये जलाये जाते। दिये जल जाने के बाद कौडी खेलने की चाल थी। हम लोग तो नाम-मात्र के लिए कुछ कर लेते; पर मैंने देखा है कि कुछ लोग पैसे हारते-जीतते भी थे। दीवाली के दिन विशेष दीप की तैयारी होती, पर यो तो कार्तिक-भर कुछ लोग तुलसी-चौतरे पर और आकाश मे कदील लटकाकर दिये जलाया करते।

दशहरा तो खास करके जमीन्दारो का त्योहार माना जाता था। पर नवरात्र मे कभी-कभी काली जी की पूजा हुआ करती थी। उसके लिए मूर्त्ति लाई जाती और बडे धूमधाम से पूजा होती। मैंने अपने गाँव मे तो काली-पूजा नही देखी, पर जवार में कालीपूजा हुई, इसकी शोहरत सुनने पर हम बच्चे वहाँ दर्शन के लिए भेजे गये थे। वहाँ जाकर हमने काली का, जो सचमुच काली थी और हाथ मे लाल खप्पर और खड्ग लिये हुई थी, दर्शन किया था। रामलीला मे राजगद्दी भी प्राय. दशहरे के दिन, या एक-दो दिन उसके आगे-पीछे, हुआ करती थी। खास दशहरे के दिन हमारे दादा साहब अपने साथ सब लोगो को लेकर एक छोटा-सा जलूस बनाकर निकलते और नीलकठ का दर्शन करते।

इनके अलावा एक और त्योहार था जिसमे सभी लोग शरीक होते थे। वह था अनन्तचतुर्दशी का व्रत। यह भादो सुदी चतुर्दशी को हुआ करता था। दोपहर तक का ही व्रत था। दोपहर को कथा सुनने के बाद पूरी-खीर खाने की प्रथा थी और सध्या को कुछ नही खाना होता था। सूर्यास्त के बाद पानी भी नही पिया जाता था। इस व्रत मे हम सब बच्चे भी शरीक होते। कथा समाप्त होने पर एक क्रिया होती जो बच्चो के लिए बहुत मजाक की चीज होती। एक बडे थाल मे एक या दो खीरे रख दिये जाते और थोडा जल उसमे पडित डाल देते। सभी कथा सुनने वाले उस थाल मे हाथ डालते और पडित पूछते—क्या ढूँढते हो और लोग जवाब देते—अनन्त फल। तब फिर पडित पूछते—पाया और उत्तर मिलता—पाया। पडित कहते, सिर पर चढाओ और सब लोग जल अपने सिर पर छिडकते। यह क्रिया समाप्त होने पर सभी लोगो को अनन्त, जो सूत मे चौदह गाँठ देकर बनाया जाता था, दिया जाता और वे उसे अपनी बाँह पर बाँध लेते। हम बच्चो के लिए सुन्दर रगीन, कभी-कभी रेशम का, अनन्त पटहेरे के यहाँ से खरीद करके आता। कोई-कोई साल-भर बाँह पर अनन्त बाँधे रहते थे, इसलिए वे अपना अनन्त अपने हाथो मजबूत और काफी लम्बा बनाते जिसमे वह सुभीते से बाँधा जा सके। इस प्रकार जो अनन्त बाँधता वह मास-मछली नही खाता था। इसी प्रकार, जो तुलसी की लकडी की माला या कठी पहनता, वह भी मास-मछली नही खाता।

कथा, रामलीला, रामायण-पाठ और इन व्रत-त्योहारो द्वारा गाँव मे धार्मिक जीवन हमेशा जगा रहता था। इनके अलावा मुहर्रम मे ताजिया रखने का भी रवाज था। इसमे हिन्दू और मुसलमान दोनो शामिल होते थे। जीरादेई और जमापुर मे कुछ हिन्दू ही कुछ सम्पन्न थे, इसलिए उनका ताजिया गरीब मुसलमानो के ताजिया से अधिक बडा और शानदार हुआ करता था। मुहर्रम-भर प्राय रोज गदका, लाठी, फरी वगैरह के खेल लोग करते और पहलाम के दिन तो बहुत बडी भीड होती। गाँव-गाँव के ताजिया कर्बला तक पहुँचाये जाते। तमाम रास्ते मे 'या अली, या इमाम' के नारे लगाये जाते और गदका इत्यादि के खेल होते। बडा उत्साह रहता और इसमे हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नही रहता। शीरनी और तिचौरी (भिगोया हुआ चावल और गुड) बाँटी जाती। सभी उसे लेते और खाते, पर हिन्दू लोग मुसलमानो से पानी या शर्बत छुलाकर नही पीते। मुसलमान भी इसे बुरा नही मानते। वे समझते थे कि यह हिन्दुओ का धरम है, इसलिए वे स्वय हट जाते।

जिस तरह हिन्दू मुहर्रम मे शरीक होते उसी तरह मुसलमान भी होली के शोरगुल मे शरीक होते। हम बच्चे दशहरा, दीवाली और होली के दिन मौलवी साहब की बनाई 'ईदी' अपने बडो को पढकर सुनाते और उनसे रुपये माँगकर मौलवी साहब को देते। ईदी कई दिन पहले से ही हम याद करते। कागज पर, मौलवी साहब की मदद से, सुन्दर फूल बनाकर उसे लाल, हरे, नीले और बैंगनी रगो से रँगते। उसी

पर मौलवी साहब सुन्दर अक्षरो मे ईदी लिख देते जिसे हम लोग पढकर सुनाते। उसमे जो लिखा जाता वह भी कुछ अजीब समिश्रण होता। जैसे, दीवाली की ईदी मे लिखा होता—'दीवाले आमदे हगाम जूला' इत्यादि, दशहरे की ईदी मे लिखा जाता—'दशहरे को चले थे रामचन्दर, बनाकर रूप जोगी वो कलन्दर' इत्यादि। मुशाहरे के अलावा मौलवी साहब को, प्रत्येक बृहस्पतिवार को कुछ पैसे जुमराती के रूप मे और त्योहारो पर ईदी के बदले मे, कुछ मिल जाया करता था।

उन दिनो गॉव मे मामला-मुकदमा कम हुआ करता था। जो झगडे हुआ करते थे, गॉव के पच लोग उन्हे तय कर देते थे। अगर कोई बात पचो के मान की न हुई, तो वह मेरे बाबा या चचा साहब के सामने पेश होती। वे लोग भी पचायत मे शरीक होकर तय करा देते। हाँ, कभी-कभी चोरी हो जाया करती थी। बनिया कुछ सम्पन्न थे। उनके घरो मे रात को सेध फोडकर चोर कुछ पैसे उठा ले जाया करते। एक बार का मुझे स्मरण है कि दूसरे गाँव के बाजार से लौटते वक्त सध्या को रास्ते मे डाकू ने पैसे और कपडे लूट लिये थे। जब कभी ऐसा वकूआ होता, थाने से दारोगा और सिपाही पहुँचते और गाँव मे एक-दो दिन ठहर जाते। उनका गाँव मे आना एक बडा हगामा था। सारे गाँव मे सनसनी फैल जाती। जिन लोगो पर शुबहा होता उनके घर की तलाशी ली जाती। दो-तीन आदमी थे, जिनके बारे मे मशहूर था कि वे चोर है, दारोगा पहुँचते ही उनको पकडकर मुश्के कसकर बाँधकर गिरा देते और खूब पीटते। आसपास के गाँव के भी ऐसे लोग, जो गलत या सही चोर समझे जाते थे, इस प्रकार पकडकर मँगाये जाते और बाँधकर गिरा दिये जाते। मैने देखा है कि इस तरह एक साथ पाँच-सात आदमी बाँधकर गिराये जाते थे और घटो तक पडे रहते थे।

हम लोगो की छोटी-सी जमीन्दारी थी। रैयतो के साथ मुकदमे तो कम होते, शायद ही कभी कचहरी मे जाने की जरूरत होती। मगर एक दूसरे जमीन्दार के साथ, जिनका भी हिस्सा एक गाँव मे था, बहुत दिनो तक कुछ जमीन के लिए मुकदमा चलता रहा। बाबा के समय से शुरू होकर पिताजी के जमाने भर चलता रहा और उनकी मृत्यु के बाद भाई ने उसे सुलह करके तय किया। नूनू छपरे जाया करते और भाई जो छपरे पढने के लिए भेज दिये गये थे उनको देखते और मुकदमे की भी पैरवी करते।

५—अँगरेजी-शिक्षा शुरू

मै पहले कह चुका हूँ कि भाई के कारण मेरे लिए सब बातो मे रास्ता साफ हो जाता था। मेरे बहुत छुटपन मे ही भाई को पढने के लिए पहले 'सीवान' भेजा गया। वहाँ कुछ दिनो तक वह रहे, मगर वहाँ कोई ठीक सुविधा नही जमी। एक तो उन दिनो सीवान मे कोई हाईस्कूल नही था। दूसरा कोई स्कूल था कि नही, मुझे

मालूम नही। मगर एक कारण यह भी हुआ कि जिनके साथ उनको रखा गया था वह उनको सँभाल नही सके। एक अग्रवाल सज्जन सीवान में रहा करते, जिनसे बाबा की बडी मित्रता थी। उनके पास भाई भेजे गये और कुछ दिनो तक वहाँ रहे। उनके मकान के पास एक नया कुआँ खोदा जा रहा था। उसमे पानी आ चुका था, पर ऊपर की जगत तक अभी बँधाई नही हुई थी। एक दिन पानी देखने या खेलने के लिए भाई वहाँ गये और कुएँ मे गिर गये—डूबते-डूबते मुश्किल से बचाये गये। उन सज्जन ने लिख भेजा कि ऐसे चुल्ला लड़के की देख-रेख उनसे नही हो सकेगी। उसके बाद ही भाई छपरे भेज दिये गये और वहाँ जिला-स्कूल मे नाम लिखाकर पढने लगे। जब छुट्टियो मे वह घर आते तो हम लोगो से छपरे और स्कूल की बातें कहते। हम बच्चे बहुत उत्सुकता से उन्हे सुनते। शायद उस समय तक मैं अपने होश मे जवार के कुछ गाँवो के सिवा, जहाँ कभी-कभी रामलीला या दूसरा कोई मेला देखने गया होऊँ, और कही नही गया था। हाँ, सुनता हूँ कि बहुत बचपन मे माँ के साथ ननिहाल गया था, जो बलिया-जिले में हमारे गाँव से प्राय १८–२० कोस की दूरी पर है, पर उसका मुझे कुछ भी स्मरण नही है।

छपरे मे मेरे पढने की बात तय हो जाने के बाद नूनू ने एक बार मुझे वहाँ ले जाकर सब कुछ दिखला देना अच्छा समझा, और साथ ले गये। मैं छपरे मे कुछ दिनो तक भाई के साथ ठहरा और फिर घर वापस चला आया। मुझे जहाँ तक स्मरण है, यही पहला अवसर था जब मैं रेल पर चढा था। पर इस यात्रा मे मैं स्कूल मे दाखिल नही हुआ। जीरादेई लौटकर मौलवी साहब के पास फिर पढ़ने लगा। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी—नूनू की मृत्यु हो गयी। हमारे खान्दान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाला एक खानदान था जिसमे आजकल बाबू फूलनप्रसाद वर्मा हैं। उनके पिता ननिहाल मे आकर अपने नाना के साथ रहते थे। उनके नाना से हम लोगो का कुछ पुराना सम्बन्ध भी था, पर उससे भी अधिक आपस की घनिष्ठता थी, जो दोनो खान्दानो के हथुआ-राज मे नौकरी करने के कारण बहुत जमाने से चली आती थी। फूलन बाबू के पिता की शादी मे नूनू बरात गये और लौटते समय रास्ते में हैजा हो गया। वहाँ तो अच्छे हो गये और घर पर आ गये, पर गाँव मे भी बहुत जोरो से हैजा फैला हुआ था। अच्छा हो जाने के प्राय दो-तीन हफ्तो के बाद उनको दोबारा हैजा हो गया। वह दिन मुझे आज भी याद है। दोपहर ११ बजे के करीब बीमारी शुरू हुई और रात को ही वह चल बसे। बाबूजी ने जो कुछ दवा हो सकी, की। दरौली से डाक्टर बुलाये गये जो प्राय छ कोस की दूरी पर है। पहली बीमारी मे इसी डाक्टर ने आराम किया था। पर उन दिनो तेज सवारी तो मिलती न थी। हाथी पर रात को बारह बजे डाक्टर पहुँचे, पर उनके पहुँचने के पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। उनकी मृत्यु से घर में बडा कोलाहल मचा। बाबा के वह एक ही पुत्र थे। घर का प्रायः सब कारबार बाहर-भीतर वही सँभालते थे। बाबा की अवस्था प्राय सत्तर बरस की थी; पर वह अभी ४५ से अधिक के नही रहे होगे। बाबूजी घर के कार-

वार मे कम ही दिलचस्पी लिया करते थे। इसलिए और भी सब कुछ अव्यवस्थित हो चला। फलत कुछ दिनो के लिए मेरा छपरा भेजा जाना रुक गया।

प्राय एक-डेढ साल के बाद मै छपरे भेजा गया। छपरे मे एक छोटा-सा मकान, तीन या चार रुपये मासिक भाडे पर, ले लिया गया था। वही भाई एक नौकर और रसोई बनानेवाले एक कायस्थ के साथ रहते थे। कुछ दिनो तक शुरू मे उनको पढाने के लिए एक मास्टर भी रखे गये थे, पर जब मै पहुँचा तब दूसरा कोई नही था। मै भी उनके साथ रहने लगा। मेरे छपरा पहुँचने के कुछ ही दिनो बाद जिला-स्कूल के आठवें दर्जे मे, जो उन दिनो सबसे आरम्भिक दर्जा था, मेरा नाम लिखा दिया गया। मैने वही ए बी सी और नागरी अ आ इ ई की एक साथ शिक्षा आरम्भ की। भाई उस समय दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर औवल दर्जे अर्थात् एण्ट्रेन्स क्लास मे पहुंचे थे। मेरे लिए कोई मास्टर नही रखा गया। मै स्कूल की पढाई के अलावा अगर कुछ पूछना होता तो भाई से पूछ लेता। घर पर मुझे पढाने के लिए मास्टर का न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढाई पर खूब ध्यान देने की आदत लग गयी। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना भी आ गया। साल के अन्त मे भाई एण्ट्रेन्स-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मै अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान मे मेरा बहुत अच्छा नम्बर आया। मै अपने दर्जे मे औवल हुआ और नम्बर भी इतना ज्यादा आया कि हेडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची।

उन दिनो स्कूल के हेडमास्टर थ श्री क्षीरोदचन्द्र राय चौधुरी। वह बडे नामी और विद्वान् हेडमास्टर समझे जाते थे। स्कूल मे उनका रोब भी बहुत था। केवल लडके ही नही, मास्टर लोग भी डर के मारे काँपते थे। परीक्षा-फल सुनाया गया। मुझे आठवें से सातवे मे तरक्की मिली। हम सब लडके खुशियाँ मना-रहे थे कि चपरासी ने आकर क्लास-मास्टर से कहा कि हेडमास्टर मुझे बुलाते है। हेडमास्टर उन लडको को ही बुलाया करते जिनके खिलाफ कोई शिकायत पहुँची रहती। मै बहुत डर गया और डरते-डरते वहाँ गया। पर वहाँ जाकर डर दूर हो गया। उन्होने पूछा, तुम डबल तरक्की लेकर सातवें के बदले छठे क्लास मे जाओगे? मै उस समय कुछ घबरा-सा गया—कुछ खुशी, कुछ विस्मय और कुछ इस बात का भय कि एक बरस की पढाई कैसे लाँघी जा सकेगी—मैने उत्तर दिया कि भाई से पूछ आऊँ तो कहूँगा। उन्होने पूछा कि भाई कौन है। मेरे नाम बताने पर वह हँस पडे। भाई को वह जानते थे, क्योकि भाई को भी तो उन्होने ही पढाकर एण्ट्रेन्स-परीक्षा देने की अनुमति दी थी, जिसके लिए वह डेरे पर तैयारी कर रहे थे। उन्होने कहा कि वह क्या मुझसे इस बात को अधिक समझ सकता है कि तू उससे पूछना चाहता है—खैर, जाकर पूछ आ। मै वहाँ से दौडता हुआ भाई के पास पहुँचा। वह, बाबू बाँके-बिहारी लाल (स्वर्गीय) और मौलवी शफी दाऊदी, तीनो एक साथ इम्तहान की तैयारी कर रहे थे। मै वही गया और तीनो ने यह खबर बहुत खुश होकर सुनी। आपस

मे कुछ सलाह भी हुई। भाई का विचार हुआ कि एक क्लास लॉघ जाने से मै पीछे कमजोर पड जाऊँगा और आगे की पढाई ठीक नही होगी। वह मेरे साथ हेडमास्टर के पास पहुँचे और उनसे अपनी राय कही। हेडमास्टर ने हँसकर फिर वही बात कही—क्या तू मुझसे इस बात को ज्यादा समझता है। फलत सातवाँ लाँघकर मुझे छठे क्लास मे उन्होने भेज दिया।

थोडे ही दिनो के बाद भाई परीक्षा देने पटने गये और परीक्षा देकर जीरादेई चले गये। मै उस समय से छपरा डेरे पर अकेले, नौकर और रसोइया के साथ, रहता। हाँ, मेरे मकतब के साथी जमुना भाई और गगा भाई भी छपरे आ गये थे और स्कूल मे नाम लिखा लिये थे। हम तीनो वहाँ भी साथ ही रहते और पढते थे। उस समय मेरी अवस्था शायद १०—११ के बीच की होगी।

भाई एण्ट्रेन्स पास हो गये। पटने मे कालेज मे उनके पढने की बात हुई और वह पटने जाने लगे। राय ठहरी कि मै भी पटना उनके साथ ही चला जाऊँ और ऐसा ही हुआ। हम तीनो सहपाठी, भाई के साथ, पटने गये और भाई ने पटना-कालेज मे नाम लिखाया और हम लोगो के नाम टी० के० घोष एकेडेमी मे, जो उन दिनो बडा अच्छा स्कूल समझा जाता था और जिसमे बहुत लडके पढते थे, लिखा दिये गये। उस स्कूल मे जाकर मैने महसूस किया कि डबल तरक्की के बारे मे भाई की राय हेडमास्टर से अधिक ठीक थी। मै प्रतिदिन महसूस करता कि दूसरे लडके कई विषय मुझसे अधिक जानते है। मै इस कोशिश मे लग गया कि इस कमी को पूरा कर दूँ। वहाँ भी कोई घर पर पढाने के लिए मास्टर नही था। जो कुछ पूछना होता, भाई या उनके दूसरे साथी लोगो से—जो वहाँ रहा करते—पूछ लिया करता।

मेरी आदत छपरे मे ही लग गयी थी कि रोज सध्या को, स्कूल से छुट्टी होने पर, डेरे पर आकर कुछ खा-पीकर, फुटबौल या दूसरा खेल खेलने फिर स्कूल मे चला जाता। फुटबौल और क्रिकेट दो खेल विशेषकर खेले जाते। ऊँचे दर्जे के कुछ लडके, और मास्टरो मे कुछ लोग—विशेष करके हेडमास्टर, टेनिस भी खेला करते। पटने मे स्कूल मे खेल का प्रबन्ध नही था। हम लोग इस कमी को बहुत महसूस करते। उसका अहाता भी बडा नही था। पर जो जगह थी उसमे अपने लोग गेद लेकर जाते और कुछ दौड-धूप करके चले आते। भाई खेल मे बडे पटु थे। फुटबौल, क्रिकेट और दूसरे खेलो मे वह बहुत आगे रहते थे। पटना-कालेज मे भी उनका नाम था। हम लोग कभी-कभी खेल देखने पटने के लौन मे जाया करते।

पटने मे सोमवारी मेला, सावन महीने के प्रति सोमवार को, धूमधाम से हुआ करता था। उस मेले मे हम लोग बडी खुशी से जाते और छोटी-मोटी चीजे खरीदने के लिए भाई से जिद करते। मुझे याद है कि एक बार एक मूर्त्ति, जो बहुत सुन्दर थी, खरीदने के लिए मैने बहुत जिद की थी और भाई को खरीद देना पडा था। एक बार उसी सोमवारी मेले मे बाबू बाँकेविहारी के पाकेट से चोर ने कुछ पैसे निकाल लिये। भाई भी साथ थे। चोर पकडा गया। उस पर मुकदमा चला जिसमे बाँकेजी को और

भाई को इजहार देना पडा। उसी मुकदमे को देखने के लिए, जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैं पहले-पहल कचहरी मे गया था।

पटने मे मेरे गाँव के एक सज्जन, भाई से जिनकी मित्रता थी, नौकरी की खोज मे हम लोगो के साथ डेरे पर ठहरे थे। वहाँ भी एक मकान भाडे पर लेकर वाबू वाँकेजी और हम लोग साथ ही रहा करते थे। वह सज्जन छोटे-मोटे पहलवान थे। कुछ कसरत वगैरह जानते थे। उन्होने आँगन मे एक छोटा अखाडा वनवाया और वहाँ सब लोगो से कुछ कसरत कराना और कुश्ती सिखाना आरम्भ किया। एक दिन वाबू वाँकेजी को कुश्ती सीखने मे कुछ चोट लग गयी और उनका पैर कई दिनो तक तकलीफ देता रहा। उसके वाद से कुश्ती और अखाडे में दिलचस्पी कम हो गयी।

जव हम लोग पटने में थे उसी समय हम लोगो ने 'प्लेग' वीमारी का नाम पहलेपहल सुना। उस समय वम्बई से ही खवर इस भयकर वीमारी की सुनी गयी थी, पर थोडे ही दिनो के वाद छपरा-जिले मे भी इसने अड्डा जमा लिया और कम-वेश अभी तक कुछ न कुछ रहता ही है। उन्ही दिनो वडा अकाल भी पडा था। छुट्टी में गाँव जाकर हम लोगो ने देखा था कि गवर्नमेंट के अफसर, लोगो की मदद करने के लिए, आये थे और हमारे घर पर ठहरे थे।

पटने में प्राय दो वरस वीत गये। भाई ने एफ० ए० की परीक्षा दी और मै छठे से पाँचवे और पाँचवे से चौथे दर्जे मे पहुँच गया। इम्तहान देकर भाई घर चले गये। मैं, जमुना भाई और गगा भाई, पटने मे नौकर के साथ अकेले ही दो-तीन महीने तक रहे। जव गर्मी की छुट्टी हुई, हम लोग घर आये।

६—विवाह

मुझे ठीक याद नही है कि मै पाँचवे दर्जे मे पढता था या चौथे मे आ चुका था जव मेरी शादी हुई—शायद मै पाँचवे मे ही पढता था। गर्मी की छुट्टी मे ही शादी हुई थी। जव हम लोग छपरे मे पढते थे तभी वावा की मृत्यु और हमारी दादी की भी मृत्यु हो चुकी थी। उन लोगो की वीमारी का हाल पाकर हम सव छपरे से जीरादेई आ गये थे और हम सवके सामने ही दोनो—थोडे ही दिनो के अन्तर मे—चल वसे थे। इसलिए अव मेरे पिताजी ही घर के मालिक थे। मेरी शादी का इन्तजाम उनको ही करना पडा था।

मेरे ससुर आरा में मुख्तार थे और उनके एक छोटे भाई वलिया मे वकालत करते थे। दोनो भाई जीरादेई आये थे। मुझे वावूजी ने अन्दर माँ के पास से वुलवाया। उन लोगो ने देखा—कुछ सवाल भी किये और पसन्द करके चले गये। कुछ दिनो के वाद तिलक आया जिसमे प्रथा के अनुसार कपडे, वर्त्तन इत्यादि के अलावा रुपये भी आये। जहाँ तक मुझे स्मरण है, रुपये के लिए वावूजी ने कुछ ज्यादा जोर नही दिया था। तो भी उन लोगो ने प्राय दो हजार, नगद और सामान मिला कर, भेजा था। मेरी अवस्था १२ वरस से कुछ अधिक की थी।

उन दिनो २,०००) का तिलक अच्छा तिलक समझा जाता था। आजकल तो पाँच हजार सात हजार भी हम लोगो की औकात के लोग कम मानते है। जितना ज्यादा तिलक हो उतनी ही अधिक बरात की तैयारी होनी चाहिए और लडकी के लिए उतना ही ज्यादा जेवर जाना चाहिए। मेरी शादी के समय पिताजी की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। एक तो तीन-चार बरसो मे एक पर एक तीन मृत्युएँ हो चुकी थी और उनमे प्रत्येक के श्राद्ध मे काफी खर्च हो चुका था। दूसरे, अकाल के कारण, जमीन्दारी से वसूली कम हो गयी थी। खर्च बढ गया था। हम लोगो के पढ़ने के लिए छपरे और पटने मे प्रतिमास कुछ न कुछ नगद भेजना ही पड़ता था। एक मुकदमा जो बहुत दिनो से चला आता था, उसकी पेशी बहुत दिनो तक चली थी और उसमे भी बहुत खर्च पड़ा था। इन सब तरद्दुदो के रहते हुए भी शादी मे खर्च करना ही था, क्योकि इसी मे घर की प्रतिष्ठा थी।

जहाँ तक जेवर वगैरह का खर्च था वह तो उन्होने खूब किया। दूसरी तैयारी मे भी वह कमी नही करना चाहते थे, क्योकि उनके जमाने मे यही पहली शादी थी। और, अगर पुरानी मिकदार से खर्च न हुआ, शान-शौकत न हुई, तो लोग कहेगे कि भैयाजी (मेरे बाबा को सब लोग इसी नाम से पुकारा करते थे) के मरने के बाद ही घर की शान में कमी आ गयी। इसलिए बाबूजी का विचार था कि किसी तरह से यह शादी शान मे कम न हो।

हमारे यहाँ शादी मे जलूस के लिए बहुत हाथी-घोडे मँगनी माँगकर लाये जाते है। और भी जलूस की चीजे मँगनी लायी जाती है। शादी का दिन ऐसा पड़ा जिस दिन बहुत कडा लगन था। गाँव की भाषा मे 'कडा लगन' उसे कहते है जिसमे ग्रह अच्छे पडने के कारण मुहूर्त्त बहुत अच्छा पडता है और बहुत लोग उस दिन को शादी करना शुभ समझते है। जिस दिन कडा लगन पडता है उस दिन मँगनी के सामान मिलने मे कठिनता होती है, क्योकि बहुत लोग मँगनी माँगते है। मेरी बरात के लिए बहुत हाथी-घोडे माँगे गये, मगर कडा लगन के कारण पहुँच नही सके। एक ही हाथी और दो-चार घोड़े पहुँच सके।

मेरी शादी बलिया जिले के दलन-छपरा मे, जीरादेई से १८—२० कोस की दूरी पर, होनेवाली थी। दो दिनो का रास्ता था। बीच मे सरजू (गोगरा) नदी थी जिसे नावो पर पार करना था। बरात जीरादेई की रस्मो को समाप्त करके रवाना हुई। हाथी-घोडे कम होने के कारण पालकी की सवारी अधिक लेनी पडी और बैलगाडियो पर सामान चला। मै एक खास किस्म की पालकी पर, जिस पर वर जाया करते है, चला। घर मे एक बडा घोडा था, भाई उसी पर चले। वह सबको रवाना करके सबसे पीछे चले, और जहाँ दोपहर को खाने का स्थान मुकर्रर था वहाँ सबसे पहले पहुँच गये। इन्तजाम मे वह बहुत भाग ले रहे थे। बाबूजी पालकी पर थे। कुटुम्ब और सम्बन्ध के दूसरे लोग पालकी या दूसरी सवारियो पर थे।

वर की पालकी बहुत बेढगी हुआ करती है। उसमे ऊपर से साये के लिए

छत नही होती, पर कपडे की छँहियाँ बाँध दी जाती है। जेठ के महीने मे शादी थी। गरमी खूब पड रही थी। गर्म हवा भी खूब चल रही थी और मुझे उस नालकी पर जाना था। हवा से वह छँहियाँ भी उड जाती। नालकी चाँदी की थी, इसलिए वजन काफी था। कहारो को वजन सँभालना ही कठिन था और उस पर हवा के मारे छँहियाँ बैलून का काम करती, बेचारे बहुत मुश्किल मे थे। मै धूप और हवा दोनो का शिकार था।

किसी तरह दिन कटा और रात को सरजू जी के किनारे के गाँव मे डेरा पडा। कच्ची पक्की रसोई बनी। सब लोगो ने भोजन किया। सवेरे सरजू पार करने का काम शुरू हुआ। सामान, पालकी, बैलगाडी, बैल, घोडे इत्यादि तो नावो पर लादे गये और हाथी को यो ही तैराकर पार कराने का प्रयत्न होने लगा। वह हाथी भी कुछ वैसा ही था, वह नदी नही पार करना चाहता था। कुछ दूर जाता और फिर वापस आ जाता। फिर कई नावो के बीच मे करके पार कराने का प्रयत्न हुआ, पर सब बेकार गया। अन्त मे राय ठहरी कि उसे छोड ही देना चाहिए और बरात बिना हाथी के चली। बाबूजी को इसका बडा अफसोस था कि बरात मे एक हाथी भी नही गया। जहाँ मेरी शादी हो रही थी उससे थोडी ही दूर पर बाबूजी की भी शादी हुई थी। उस समय बाबा हथुआ के दीवान थे और उस बरात मे पचासो हाथी गये थे। बाबूजी को यह बात बहुत अखरती कि जहाँ उनकी शादी मे पचासो हाथी गये वहाँ उनके लडके की शादी मे एक भी हाथी न पहुँच सका। मगर करना क्या था। बरात वापस तो हो नही सकती। हाथी के झमेले मे इतना समय लग गया कि उस गाँव मे पहुँचने मे रात हो जायगी, ऐसा भय मालूम होने लगा।

बरात बहुत तेजी से चली और जहाँ दोपहर को पहुँचना था वहाँ पहुँचते-पहुँचते तीन-चार बज गये। वहाँ भोजन वगैरह करके बरात आगे बढी। रात हो गयी। इस बीच मे एक घटना हो गयी। बरात जब गाँव से एक-दो मील पर थी कि दो-तीन हाथी आते हुए नजर आये। वे किसी दूसरी बरात मे गये थे और उसकी रसम पूरी करके कही जा रहे थे। पीलवानो से बात हुई। उनको कुछ रुपये दिये गये और वे बरात मे शामिल होने को राजी हो गये। इस तरह हाथी का हौसला तो एक प्रकार से पूरा हो गया, पर बरात पहुँचते-पहुँचते रात के १०—११ बज गये।

वहाँ लोग घबरा रहे थे—कुढ रहे थे। अन्त मे बरात पहुँची। मेरी आदत सही-शाम को ही सोने की थी, जो शादी के कारण कुछ छूटनेवाली थी नही। मैं बरात पहुँचने के पहले ही पालकी मे खूब सो गया था। पहुँचने के समय किसी तरह मैं जगाया गया और परिछावन की रसम अदा हुई। शादी की दूसरी रस्मे भी एक-एक करके पूरी की गयी। गरमी मे दो दिनो का सफर और वह भी पालकी मे। साँझ ही सोने की आदत और उस पर इतनी थकावट। मेरे लिए जागते रहना कठिन समस्या थी। सब रस्मे हो गयी। और मेरा शुभ विवाह भी उसी रात को हो गया।

मुझे आज वे रस्मे भी पूरी तरह याद नही है और न यह याद है कि उनमे मेरा क्या हिस्सा रहा। लडकपन मे मेरी बहन गुडियो के विवाह का खेल किया करती और उसमे मै भी शरीक हुआ करता था। यह विवाह मेरे लिए कुछ वैसा ही था। मैंने न तो विवाह के महत्त्व को समझा और न यह महसूस किया कि मेरे ऊपर कोई जिम्मेदारी आयी। मेरा हाथ न विवाह का निश्चय करने मे रहा था और न इन रसमो मे। जो कुछ पडित या हजाम या अपने घर की अथवा ससुराल की स्त्रियाँ बताती गयी वह करता गया और अन्त मे लोगो ने समझ लिया कि मेरा विवाह हो गया! मुझे तो इतना भी ज्ञान नही हुआ कि क्या हुआ। हाँ, इतना समझ गया था कि मेरी भौजाई जिस तरह घर मे आ गयी थी, उसी तरह एक दिन कोई मेरी बहू भी आ जायगी।

हमारे यहाँ यह भी चाल है कि कही-कही शादी के बाद ही लडकी को नही लाते है। कुछ दिनो के बाद एक छोटी-मोटी दूसरी बरात जाती है और तब लडकी लायी जाती है। इसे 'दुरागमन' कहते है। मेरी शादी के बाद भी बहू साथ नही लायी गयी। एक बरस के बाद दुरागमन की बरात गयी और तब वह लायी गयी। बरात दो दिनो तक ठहरकर वापस आयी। ससुराल के लोग, देर करके बरात पहुँचने और उनकी आशा के अनुकूल पूरी शानशौकत की न होने के कारण, कुछ रज थे। पर जब उन्होने जेवर, कपडे, मिठाई वगैरह—जो लडकी के लिए और दूसरो के लिए वर की ओर से दिये जाते है—देखा तब उनका रज दूर हो गया और सब लोग बहुत खुश हो गये। मै समझता हूँ कि वर को देखकर भी घर की स्त्रियाँ और दूसरे आये हुए लोग खुश हुए होगे, यद्यपि मेरे पास इसका कोई सबूत नही है!

एक साल के बाद दुरागमन हुआ और बहू घर मे आयी। दुरागमन की बरात शादी की बरात से छोटी हुआ करती है। इस बार एक या दो हाथी मिल गये थे और बरात मे गये भी थे। हमारे यहाँ पर्दा बहुत सख्त होता है। मैंने देखा था कि जब मेरी भौजाई आयी तो उनके साथ दो लौडियाँ आयी थी और वह केवल उन दोनो से ही बाते कर सकती थी! जीरादेई मे एक कमरे मे रहती थी। कभी ओसारे मे भी निकलने की इजाजत नही थी! उन दिनो ऐसे ही पुरुष नौकर घर के अन्दर जा सकते थे जो उम्र मे बहुत कम होते थे और जिनका जन्म हमारी माँ-चाची के सामने गाँव मे हुआ था और जो बहुत बचपन से अपनी माँ के साथ आँगन मे आया-जाया करते थे। जो सयाने नौकर थे वे भीतर नही जाते थे। एक रसोईदार था जो रसोई बनाने के लिए आँगन मे जाता था। मगर वह भी जाने के पहले पुकार लेता और हमारी माँ-चाची कमरो मे चली जाती तब वह जाता और रसोईघर मे घुस जाता। वहाँ से अगर किसी चीज की जरूरत होती तो वह किसी लौडी को पुकारकर माँग लेता और बाहर जाने के समय फिर उसी तरह पुकारकर सबको हटा देने के बाद ही वह बाहर जाता।

मेरी भौजाई तो कमरे से बाहर निकलती ही न थी। हाँ, नित्य-क्रिया के लिए जाने के समय पहले सब लोग हटा दिये जाते। लोगो मे दूसरा कोई शामिल नही

था—सिर्फ जीरादेई की लौडियाँ थी। मर्द सूरत तो कोई आँगन मे रहता ही नही था। अगर कोई छोटा लडका होता तो वह भी हटा दिया जाता। इतने से भी काफी पर्दा नही होता और उनके नैहर की दाइयाँ कपडे का पर्दा लगाकर उनको ले जाती। मैं बहुत छोटा था। इसलिए मैं कभी खेलता-कूदता उनके कमरे मे चला जाता और शायद दो-एक बार उनका मुँह भी मैंने देख लिया था। मेरी माँ, चाची और बहन भी जब उनके कमरे मे जाती तो वह घूँघट तान के बैठ जाती। जीरादेई की कोई दाई भी वहाँ जाने नही पाती थी।

जब मेरी स्त्री दुरागमन के बाद आयी तो उनके साथ भी यही सब बखेडा रहा। यह बहुत दिनो तक चला और आहिस्ता-आहिस्ता कम हुआ। नैहर की लौडियाँ चली गयी। जीरादेई की एक लौडी आने-जाने लगी। उससे कुछ-कुछ बाते करने की इजाजत हुई। जब तक मेरी माँ जीती रही तब तक न तो मेरी भौजाई और न मेरी स्त्री ही कभी अपने कमरे से निकल आजादी के साथ आँगन मे घूम-फिर सकी या बैठ सकी। मेरी हालत यह थी कि मैं जब कभी गाँव पर छुट्टियो मे आता, बाहर ही सोता। रात के समय जब सब लोग सो जाते तो माँ दाई को भेजती कि जगा लाओ और वह जगाकर मुझे ले जाती और उस कमरे मे छोड देती जिसमे मेरी पत्नी रहती। नीद के मारे मुझे उस वक्त रात को जागना कठिन हो जाता। अक्सर मैं, कितनी भी कोशिश होती, जागता ही नही। दूसरे दिन माँ या चाची डाँटती कि रात को जागते नही और बुलाने पर भी आते नही। सवेरे जब सब लोग सोये ही रहते उठकर चला आना होता और बाहर की चारपाई पर सो जाता जिसमे किसी को यह पता न चले कि रात को कही दूसरी जगह गया था। यहाँ तक कि साथ के नौकर को भी इसका पता कम ही लगता।

पर्दा के कारण इस तरह स्त्री-पुरुष की मुलाकात होती। मैं तो लडकपन से ही अधिक घर के बाहर ही रहा। जब कभी घर पर छुट्टियो मे जाता तभी मुलाकात का मौका होता और वह भी इस प्रकार से। इसलिए गरचे आज विवाह हुए प्राय ४४-४५ बरस हो गये होगे, पर शायद ही सब दिनो के गिनने के बाद भी हम दोनो इतने महीने भी एक साथ रहे हो। पढने का समय पटना, छपरा, कलकत्ता में कटा। वकालत के जमाने मे भी मैं कलकत्ते मे बराबर अकेला ही रहा और पटने आने पर भी दो ही एक बार घर के लोग साथ थोडे दिनो के लिए रहे। असहयोग आरम्भ होने के बाद तो घर जाने का समय और भी कम मिला है और घर के लोगो को साथ रखने का न तो सुभीता रहा और न काम की झझटो में फुरसत रही।

७—हथुआ-स्कूल में दाखिल—छपरा-स्कूल में वापस

भाई एफ० ए० की परीक्षा पास कर गये। उनकी इच्छा हुई कि वह कलकत्ते में जाकर मेडिकल कालेज मे पढे। उन दिनों बिहारी लोगो मे शायद ही कोई मेडिकल कालेज मे पढता था। एक तो कलकत्ता जाना और वहाँ का खर्च जुटाना ही मुश्किल।

दूसरे वहाँ बिहारियो के लिए जगह मिलनी भी मुश्किल ! जब उनके कलकत्ते जाने की बात तय हो गयी तो सवाल हुआ कि मै कहाँ पढूँ । मेरे लिए कलकत्ता जाना उचित नही समझा गया। भाई कलकत्ते गये, मै पटने से नाम कटाकर हथुआ-स्कूल मे नाम लिखाने के लिए भेजा गया। वहाँ की हालत कुछ विचित्र थी। पढाने-लिखाने का तरीका छपरा-जिला-स्कूल और पटना टी० के० घोष एकेडेमी से कुछ जुदा था। पहले तो नाम लिखाने मे ही थोडी दिक्कत हुई। मास्टर ने कहा कि वह परीक्षा लेकर नाम लिखेंगे।

खैर, किसी तरह नाम लिखा गया। पढाई का तरीका यह था कि जो कुछ सबक दिया जाता था, खास करके इतिहास मे, उसे दूसरे दिन कण्ठस्थ करके आना चाहिए और मास्टर साहब कहते, सबक सुनाओ, और सब शुरू से अखीर तक किताब बन्द करके जबानी सुनाना पडता। मेरी आदत इस प्रकार बिना समझे-बूझे किसी चीज को जबानी रटने या सुनाने की नही थी और शाब्दिक स्मरणशक्ति भी कमजोर थी। मै प्राय छ महीने तक उस स्कूल मे रहा, पर शायद एक दिन भी सबक पूरा याद नही कर सका। कोशिश की कमी मुझमे नही थी, पर मै कर ही नही सकता था। किसी ने मुझसे कह दिया था कि अगर किसी चीज को १२० बार दुहरा दिया जाय तो वह जरूर कण्ठस्थ हो जाती है। मै बहुत मेहनत करके १२० बार दुहराने का भी प्रयत्न करता, पर तो भी पेज का पेज कण्ठस्थ नही कर सकता। मेरी आदत सही शाम सो जाने और सवेरे ४ बजे के करीब उठ जाने की थी। हथुआ मे १२० बार दुहराने के लिए मै कभी-कभी १॥–२ बजे रात मे ही उठ जाता। तो भी सबक पूरा नही कर पाता। स्कूल मे मास्टर हालत देखकर कभी-कभी कुढते और कहते कि यह चौथे दर्जे मे भर्ती करने लायक था ही नही और धमकी देते कि पाँचवे क्लास मे तुमको वापस कर दिया जायगा। यह सब मेरे लिए मार्मिक दर्द का कारण होता और जैसे दु ख के दिन मेरे वहाँ कटे और कही पढने के दिनो मे नही कटे। कभी-कभी मै सोचता कि शायद अगर क्लास न लाँघे होता तो यह दशा नही होती।

अन्त मे मै बहुत बीमार पड गया और सालाना इम्तहान के समय तक बीमार ही रहा। सालाना इम्तहान शायद दे देता तो किसी प्रकार पास भी कर जाता और तरक्की भी हो जाती। छुट्टियो मे भाई घर आये और सब हाल उन्होने देखा-सुना तो उनकी राय हुई कि सालाना इम्तहान देकर तरक्की लेने की जरूरत नही है, इस स्कूल को छोडकर छपरा-जिला-स्कूल मे फिर वापस जाना ही अच्छा होगा। ऐसा ही निश्चय हुआ और मै वहाँ से फिर छपरा-स्कूल मे चौथे क्लास मे ही दाखिल हुआ।

उधर भाई साहब की भी अजीब हालत रही। मेडिकल कालेज मे किसी कारण से उनका नाम नही लिखा गया और वह फिर पटने मे वापस आकर बी० ए० क्लास मे पढने लगे। चूँकि मेरा नाम हथुआ-स्कूल मे लिखा जा चुका था, वहाँ से तुरन्त फिर पटने ले जाना उचित नही समझा गया और छ महीनो तक मै हथुआ मे ही रहा।

स्कूल की पढाई पर ही मै भरोसा रखता था। घर पर पढाने के लिए कभी कोई मास्टर नही रखा गया था। हथुआ की पढाई की परेशानी के कारण हैरान होकर मै एक मास्टर के घर पर जाया करता जो एक प्रकार के सम्बन्धी भी होते थे। वह पढा भी दिया करते, पर सबक एक दिन भी मै पूरा नही कर सका। उस स्कूल से चला आना मेरे लिए एक बडी बात हुई। छपरा पहुँचते ही मानो खोई हुई बुद्धि फिर लौट आई। चौथे दर्जे मे छपरा-स्कूल मे बहुत लडके थे, इसलिए उसके तीन भाग हो गये थे। वहाँ एक बगाली मास्टर श्री रसिकलाल राय थे। वह एक सेक्शन के, जिसमे मै था, क्लास-मास्टर थे। बडे सज्जन थे। पढाने का तरीका भी बहुत अच्छा था। लडको के साथ बहुत प्रेम रखते और लडके भी उनको बहुत मानते थे। यद्यपि वह मेरे क्लास के क्लास-मास्टर थे, पर दूसरे सेक्शन मे भी पढाया करते और चौथे दर्जे के प्राय सभी छात्रो को जानते थे। उनकी मेरे ऊपर बडी कृपा हो गयी। चौथे क्लास में छात्रो की सख्या केवल अधिक ही नही थी, अच्छे-अच्छे छात्र भी थे, जिनमे कई तो मिडिल स्कूल से पास करके छात्रवृत्ति लेकर आये थे। उनका गणित, भूगोल और इतिहास का ज्ञान अच्छा था—चूँकि यह विषय वे हिन्दी मे पढ चुके थे और यहाँ पढे हुए विषयो को ही अँगरेजी के माध्यम द्वारा दुहराना था। थोडे ही दिनो मे मास्टर ने महसूस किया और मेरे साथियो ने भी समझा कि मै भी एक तेज लडको मे हूँ।

रसिक बाबू मुझे विशेष प्यार करने लगे। मै इतने लडको के बीच किसी भी परीक्षा मे अभी औवल स्थान नही पा सकता था, पर रसिक बाबू ने मुझसे उन्ही दिनो कहा कि देखो, मेहनत करो—अन्त मे तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला रहेगा और दूसरे साथी तेज होने पर भी तुमसे नीचे हो जायँगे। न मालूम उन्होने क्यो ऐसा कहा। पर बात ऐसी ही हुई—केवल उनकी भविष्यवाणी पूरी होने मे दो-तीन साल लग गये। सालाना इम्तहान मे मेरा स्थान चौथा हुआ। कुछ इनाम मिला, मगर दूसरो को अधिक मिला। तीसरे दर्जे मे भी उन्होने पढाया और एक दूसरे मास्टर ने भी, जिनकी स्मृति आज भी वैसी ही बनी रहती है और जो आज भी जीवित है। उनका नाम बाबू राजेन्द्रप्रसाद है। वह इतिहास पढाया करते थे और उनका ऐसा सुन्दर तरीका था कि सब बाते कथा की तरह याद हो जाती। हथुआ के तरीके के ठीक उलटा तरीका उनका था। अपनी भाषा मे जो सब बाते अच्छी तरह अदा कर देता वही अच्छा समझा जाता। मै यह आसानी से कर सकता था। हथुआ मे मेहनत करके बरजबान करने की जो कोशिश की थी उससे बीच-बीच मे अच्छे लच्छेदार शब्द और वाक्य भी आ जाते। अपनी समझदारी और बरजबान करने के प्रयत्न दोनो मिलकर अच्छा रग बाँध देते और मास्टर साहब बहुत उसे पसन्द करते।

तीसरे से दूसरे दर्जे मे तरक्की हुई और सालाना इम्तहान मे मैंने तीसरा स्थान पाया। इसी प्रकार दूसरे से औवल दर्जे मे जाने के पहले जो परीक्षा हुई उसमे मै औवल और रामानुग्रह दूसरे स्थान मे आये। रसिक बाबू की बात पूरी हुई। मेरे

साथ ही साथ मानो रसिक बाबू की भी तरक्की होती गयी और चौथे से तीसरे, तीसरे से दूसरे, और दूसरे से पहले दर्जे मे वह पढाने ल े। हाँ, इस बीच मे बाबू राजेन्द्रसाद की बदली हो गयी और रसिक बाबू भी कुछ दिनो के लिए दूसरे स्कूल मे चले गये थे। राजेन्द्र बाबू तो वापस नही आये, पर रसिक बाबू वापस आ गये। हम लोगो की, खास करके, मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

रसिक बाबू केवल पढाने में ही पटु न थे, लडको के चरित्र पर भी ध्यान रखते थे। स्कूल के मास्टरो मे से मेरे ऊपर सबसे अधिक और गहरी छाप उनकी ही पडी। यों तो बाबू राजेन्द्रप्रसाद का भी और मौलवी साहब का, जो फारसी पढाते थे, काफी असर रहा। मगर रसिक बाबू तो मानो घर के आदमी थे। उनसे डर भी लगता और प्रेम भी था। वह पढाते भी और अच्छी बाते बताकर विचार भी सुधारते। यद्यपि मै पटने मे दो बरस तक रह आया था, तथापि इतनी कम अवस्था मे रहा कि मुझे कोई विशेष ज्ञान नही हुआ था। रसिक बाबू कुछ देश की बाते भी बताते थे। कैसे पढकर आदमी ऊँचे दर्जे पर पहुँच सकता है, इस ओर भी ध्यान दिलाते। जब मै एण्ट्रेन्स क्लास मे पहुँचा, उन्होने साफ कह दिया कि मेहनत करो—तुम युनिवर्सिटी में ऊँचा स्थान पा सकते हो। मैने इसका अर्थ ही नही समझा। मैने इतना ही समझा कि शायद छात्रवृत्ति मिल जाय।

जिस समय मै दूसरे दर्जे का सालाना इम्तहान दे रहा था, छपरे मे बहुत जोरो से प्लेग की बीमारी जारी थी। दो दिन परीक्षा देने के बाद मेरे गले मे सूजन आ गया और बहुत ज्वर चढ आया। मै तीसरे दिन से परीक्षा मे नही बै सका। घर पर खबर गयी। बाबूजी घबराकर आ गये और मुझे जीरादेई ले गये। वहाँ उन्होने खुद दवा की और मै नीरोग हो गया। मालूम नही कि मुझे प्लेग हुआ था या केवल गलसुआ; पर शुबहा प्लेग का ही था। काफी घबराहट रही। इसी घबराहट मे ठीक समय पर स्कूल की फीस नही दी गयी। नाम कट गया। परीक्षा का फल देखा गया तो दोनो विषयो मे मै औवल आया था। नम्बर भी इतना अधिक आया था कि बाकी दो विषयो मे परीक्षा दिये ही बिना पास करने के लिए वह काफी समझा गया। उन्ही दिनों नये हेडमास्टर बदलकर आ गये थे। उन्होने मेरी गैरहाजिरी मे ही तरक्की दे दी थी। पर तरक्की होने पर भी, फीस न देने के कारण, नाम तो कट ही गया। जब मै अच्छा हुआ तो कुछ दिनो बाद गया और फिर से नाम लिखाकर पढ़ने लगा।

एक दिन रसिक बाबू ने मुझसे कहा, तुम्हारा नाम कट जाना अच्छा नही हुआ। कायदे के मुताबिक एण्ट्रेन्स पास करने पर उसी लडके को छात्रवृत्ति मिल सकती है जो कम से कम पूरा एक साल एक स्कूल मे पढ़ता रहा हो। अब तुम नम्बर पाने पर भी छात्रवृत्ति नही पा सकोगे। मगर एक उपाय करो। एक दर्खास्त डाइरेक्टर के पास अपने पिताजी से भेजवाओ कि वह तुमको इस कायदे से बरी करा दे।

एक दर्खास्त मैने लिखवाकर दी। उसमे यह बात लिखी गयी कि प्लेग हो

जाने के कारण मै घर पर रह गया और फीस नही दी जा सकी, जिस वजह से नाम कट गया। इसके अलावा परीक्षा का फल इत्यादि दिखलाकर यह कहा गया था कि आशा की जाती है कि छात्रवृत्ति मिल सकेगी, यह नियम बाधक होता है। हेड-मास्टर ने दर्खास्त देखकर कहा कि यह फजूल है, नियम बदलने का अख्तियार डाइ-रेक्टर को भी नही है, इसलिए मै कैसे दर्खास्त पर सिफारिश कर सकता हूँ, मुझे क्या मालूम कि तुमको प्लेग हुआ था या नही। इलाज तो डाक्टर की हुई नही थी, इसलिए डाक्टर की सर्टिफिकेट भी मै नही दे सकता था। खैर, उन्होने बिना किसी सिफारिश के ही दर्खास्त ऊपर भेज दी।

रसिक बाबू को इसका अफसोस रहा कि हेडमास्टर ने सिफारिश नही की। वह समझते थे कि शायद ऐसी हालत मे डाइरेक्टर मजूर न करे। उन्होने मुझे सात्वना दी कि खैर, दर्खास्त देने से कोई नुकसान तो होगा ही नही। कायदा था कि दर्खास्त डाइरेक्टर के पास इन्सपेक्टर की मार्फत ही जा सकती थी। इसलिए, यद्यपि वह डाइरेक्टर के लिए थी, तथापि पहले इन्सपेक्टर के पास गयी। इन्सपेक्टर ने दर्खास्त पढकर उसे डाइरेक्टर के पास भी भेजना जरूरी नही समझा और उसे मजूर करके पत्र लिख भेजा। हेडमास्टर ने मुझसे क्लास मे ही कहा कि तुम्हारी दर्खास्त इन्सपेक्टर ने ही मजूर करके वापस की है। साथ ही, यह भी कहा कि मै नही जानता, इन्सपेक्टर को इसे मजूर करने का कोई अधिकार है, पर तुमको अब चिन्ता नही करनी है।

रसिक बाबू सुनकर बहुत खुश हुए और मुझे अधिक प्रोत्साहन देने लगे। यहाँ तक कि वह बिना कुछ लिये अपने घर पर भी बुलाकर सब विषयो मे, जहाँ-कही मुझे कोई दिक्कत मालूम होती, बता देते और रोज-रोज ताकीद करते कि इस तरह पढो, यह पढो, वह पढो। उनके दिल मे यह बात बैठ गयी थी कि मै युनिवर्सिटी मे ऊँचा दर्जा पा सकूँगा। मुझे इसका पता तक नही था कि युनिवर्सिटी मे भी मुझ जैसा आदमी ऊँचा दर्जा पा सकता है।

उन दिनो तीन प्रकार की छात्रवृत्तियाँ मिला करती थी। दो या तीन दस रुपयो की, जो जिले-भर मे औवल दो या तीन लडको को—दूसरी दो या तीन पन्द्रह रुपये मासिक की, जो डिवीजन-भर मे, जिसमे उन दिनो आजकल के पटना और तिर्हुत डिवीजनो के सात जिले शामिल थे, औवल दो या तीन लडको को—और तीसरी २०) मासिक की, जो सारी युनिवर्सिटी भर मे औवल दस लडको को मिलती थी। बिहार-सूबा बगाल का हिस्सा था और कलकत्ता युनिवर्सिटी का अधिकार बगाल, बिहार, उडीसा, आसाम और बर्मा पर था। एक ही परीक्षा होती थी और इन सब सूबो के लडको मे जो सबसे ऊपर आते उन दस लडको को ही २०) की छात्र-वृत्ति मिलती। मेरी उच्चाभिलाषा हद से हद १०) या १५) की छात्रवृत्ति पाने तक जा सकती थी। इससे ऊपर कभी गयी ही नही। पर इसके लिए भी मै समझता था कि काफी परिश्रम की जरूरत है, इसलिए मै काफी मेहनत करता था।

युनिवर्सिटी की परीक्षा के पहले स्कूल मे परीक्षा हुआ करती। इसमे जो लोग

पास होते उनको ही युनिवर्सिटी की परीक्षा मे शामिल होने की इजाजत मिलती। मै इस परीक्षा मे बहुत नम्बर पाकर सबसे ऊपर आया। युनिवर्सिटी मे परीक्षा देने की आज्ञा तो मिली। पर एक अडचन का भी सामना करना पडा। एक विषय था ड्राइग जो ऐच्छिक था। पर छात्रवृत्ति के लिए फल जॉचने मे उसका भी नम्बर जोड़ा जाता था। यद्यपि मै और विषयो मे तो काफी नम्बर पा चुका था, तथापि ड्राइग के मास्टर ने ड्राइग मे युनिवर्सिटी मे परीक्षा देने की इजाजत देने से इन्कार कर दिया। ड्राइग मे २० या २५ नम्बर मिल सकते थे। यदि उसमे परीक्षा ही न दूँ तो ये २० या २५ नम्बर मिलेगे ही नही और छात्रवृत्ति मिलना कठिन हो जायगा। बहुत कहने-सुनने पर मास्टर ने इस शर्त पर इजाजत दी कि उस दिन से परीक्षा के समय तक मै कम से कम एक घटा रोज ड्राइग बनाया करूँ। मैने शर्त मान ली और पूरी भी की। अच्छा ही हुआ, क्योकि शायद ऐसा न करता तो ड्राइग मे २५ नम्बर नही आते और जो स्थान मुझे मिला वह नही मिलता। अन्त मे परीक्षा के दिन निकट आये और मै कुछ रोज पहले ही परीक्षा देने पटने चला आया।

परीक्षा हुई और पटने से मै घर आया। भाई भी छुट्टियो मे घर आये। उन्होने कलकत्ते से वापस आकर पटने मे नाम लिखाया, पर बहुत बीमार पड गये। डाक्टरो की राय से वह पढने के लिए इलाहाबाद चले गये। वहाँ के म्योर सेण्ट्रल कालेज से उसी साल वह बी० ए० पास कर चुके थे। एम० ए० और बी० एल० पढने के लिए वह फिर कलकत्ते चले गये थे। इलाहाबाद और कलकत्ते मे रहने के कारण वहाँ से छुट्टियो मे आकर वह बहुत बाते कहा करते। मै उन बातो को बडी श्रद्धा से सुना करता और जहाँ तक हो सकता उनको माना भी करता। शायद १८९९ मे वह इलाहाबाद से घर आये थे और उन्होने स्वदेशी की बात कही थी। स्वदेशी कपडे भी वहाँ से साथ लाये थे। मैने उसी समय से स्वदेशी कपडा पहनना शुरू किया। जब तक गाधीजी ने खद्दर की बात नही उठाई, स्वदेशी कपडे ही बराबर पहनता रहा। केवल एक बार कुछ विलायती कपडे खरीदे थे, जिसका जिक्र आगे आवेगा। नही तो उसी समय से भाई ने स्वदेशी कपडे का इस्तेमाल खुद शुरू किया और मुझसे भी शुरू कराया। उन्होने तो फिर कभी विदेशी कोई कपडा खरीदा ही नही। खद्दर के चल जाने पर खद्दर के सिवा दूसरे प्रकार का स्वदेशी भी कभी नही खरीदा।

स्वदेशी का विचार केवल कपडो तक ही सीमित नही रहा। जहाँ तक हो सकता था, और चीजो के खरीदने मे भी इसका खयाल रखा जाता था। युनिवर्सिटी के इम्तहान देने के लिए खास करके देशी कलम और निब भी मैने ली थी और ऐसी-ऐसी चीजे भाई बराबर इलाहाबाद और कलकत्ते से ला दिया करते। मुझे अब शक होता है कि बहुत चीजे, जिनको हम अपने भोलेपन से स्वदेशी जान कर खरीद लेते थे, शायद स्वदेशी नही थी और दूकानदार हमको ठग लिया करते थे। पर हमारी श्रद्धा अटल थी और हम अपने जानते उनको स्वदेशी समझकर ही लेते थे।

गर्मी की छुट्टियो मे हम सब सध्या के समय टहलने जा रहे थे कि किसी ने

आकर कहा कि परीक्षा-फल गजट मे निकल गया। हम लोग सीवान गये तो केवल इतना ही मालूम हुआ कि हमने पहले दर्जे (फर्स्ट डिवीजन) मे पास किया है। अभी छात्रवृत्ति की घोषणा नही हुई थी। कुछ दिनो के बाद उसी प्रकार एक दिन सध्या को टहलने के समय एक आदमी ने आकर एक तार दिया जिसमे लिखा था कि मै युनिवर्सिटी मे औवल हुआ। भाई ने तार पढा, और बहुत खुश हुए। हम लोग दौड़ते-दौड़ते घर आये, और बाबूजी से कहा। भाई ने उनको समझाया कि युनिवर्सिटी मे औवल होने का क्या अर्थ है। बाबूजी की तथा घर मे माँ और सब लोगो की खुशी का ठिकाना न रहा। मैंने, भाई की राय से, पहले से ही ठीक कर रखा था कि पास करने पर मै कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज मे ही पढ़ूँगा। एण्ट्रेन्स की परीक्षा की दर्खास्त भेजने के समय उसमे लिख भी दिया था कि छात्रवृत्ति अगर मिलेगी तो मै उसे प्रेसिडेन्सी कालेज मे ही पढकर भोगूँगा। उसी निश्चय के मुताबिक मेरा कलकत्ते जाना जल्दी ही तय पा गया।

छपरा-स्कूल मे पढने के समय मै वहाँ एक पडितजी के साथ रहा करता था जो वडे नामी ज्योतिषी थे और आज भी है। उनका नाम है पडित विक्रमादित्य मिश्र। वही मेरे अभिभावक (Guardian) के स्थान पर थे। वह स्वय विद्यार्थियो को पढाया करते थे। प्रतिदिन सरजू-स्नान किया करते—किसी दूसरे का छुआ हुआ जल तक भी ग्रहण नही करते। पूजा-पाठ खूब हुआ करता। वही पर एक छोटी ठाकुरबारी भी हथुआ-राज की थी। इन सबका असर हम छोटे लडको के दिल पर वैसा ही पडा जैसा पड़ना चाहिए। हम लोग अपने को कट्टर सनातनी समझते और अगर कोई आर्यसमाजी आ जाता तो उससे बहस भी छेड़ देते। स्कूल मे महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी हेडपडित थे। स्कूल मे मै फारसी पढता था, पर उनके द्वारा घर पर कुछ सस्कृत पढना भी आरम्भ किया। लघुकौमुदी के कुछ सूत्र घोख भी लिये; पर इसको जारी नही रख सका। छपरा-स्कूल के सस्मरण आज भी दिल पर असर रखते है, जो सुन्दर और सुखमय है।

मुझे याद है कि छुट्टियो के अलावा मै कभी घर नही जाता था। छुट्टियो मे घर जाने पर माँ अक्सर कुछ अधिक दिनो तक वहाँ रोक लेना चाहती। पर मै इस पर जल्दी राजी नही होता। छुट्टियो मे तो जीरादेई मे खूब खेलना ही एक काम रहता और सारा समय प्राय चिक्का मे लगता। भाई भी घर आ जाते और हम लोगो के साथ खेल मे शरीक होते।

छपरे का जीवन बहुत सादा था। पास मे रुपये शायद ही कभी रहते। वहाँ एक मोदी से तय था कि वह सब चीजे हमे दिया करेगा। यह प्रथा छपरे मे भाई के पढने के समय से चली आती थी। रोजाना पुर्जा लिखकर उसी मोदी के यहाँ से चावल, दाल, घी लकडी और जलपान के लिए कचौरी-मिठाई भी आ जाती। वह जाति का हलवाई था। इसलिए वह सब चीजे दे सकता था। इसी प्रकार एक कुँजडिन थी जो तरकारी पहुँचा देती। मोदी जीरादेई आता और पुर्जो को पेश करता, हिसाब

होता और उसे रुपये वही मिल जाते। कुँजडिन को जीरादेई नही आना पडता। उसका हिसाब करके वही एक कारपरदाज दे देते थे, जो मामला-मुकदमा देखने के लिए छपरे जाया-आया करते। स्कूल की फीस के लिए रुपये भी वही देते। अगर कपडे की जरूरत होती तो वही खरीद देते। इस प्रकार छपरे मे पढने के समय मेरे हाथो मे रुपये शायद ही कभी आते।

घर की अवस्था भी कुछ अच्छी नही थी। जमीन्दारी तो उतनी ही थी जितनी बाबा और नूनू के समय मे। मगर उन लोगो के मरने के बाद से बाबूजी कुछ तरद्दुद मे पड़ गये थे। हम लोगो के खर्च के लिए नगद रुपये जुटाने मे उन्हे कष्ट होता। मोदी को भी हमेशा नगद जीरादेई मे नही मिलता। कभी-कभी किसी गाँव के तहसील-दार के नाम चिट्ठी मिलती और वह जीरादेई से उस गाँव पर जाता और वहाँ से रुपये लेता। छपरे का खर्च कम था और इस तरह किसी प्रकार चल जाता। मुझे कभी रुपये की कमी का अनुभव नही हुआ। एक और कारण यह था कि भाई इस पर ध्यान रखते और जब छुट्टियो मे आते तो कुछ न कुछ प्रबन्ध करा जाते। पर भाई का खर्च महीने-महीने इलाहाबाद भेजना पडता। इसमे बाबूजी को प्राय कष्ट हुआ करता। पर उन्होने निश्चय कर लिया था कि चाहे जो हो, लडको को पढ़ाने का खर्च किसी तरह से जुटाना ही होगा।

एक दीवान थे जो जमीन्दारी का इन्तजाम किया करते थे। वह बाबा के समय से ही थे और जमीन्दारी का पूरा हाल जानते थे। बाबूजी ने बाबा के रहते जमीन्दारी देखी नही थी, इसलिए उन्हे दीवानजी पर भरोसा करना पड़ता। मुझे याद है, भाई को परीक्षा की फीस देनी थी; उनका पत्र आया कि किसी निश्चित तिथि के पहले ५०) या ६०) रुपये फीस दाखिल कर देनी होगी, नही तो एक साल के लिए इम्तहान से वचित रहना होगा। रुपये बाबूजी के पास थे नही। दीवानजी देहात से रुपये दे नही सके। बाबूजी बहुत तरद्दुद मे पडे। माँ का सोने का कठा बन्धक रख कही से रुपये मँगवाकर समय पर भेजा। सब कुछ रहते हुए ऐसी अवस्था पहुँच गयी थी कि कभी-कभी रसोई बनने मे भी देर हो जाती थी। भाई समझते थे कि यह सब कुछ दीवानजी की बदइन्तजामी से है और बहुत कुढते थे, पर कुछ कर नही सकते थे। छुट्टियो मे एक बार आकर उन्होने कुछ कारबार सँभालना शुरू किया, पर जब तक इलाहाबाद पढते रहे, कुछ विशेष कर नही सके।

जमीन्दारी की आमदनी सालाना प्राय सात-आठ हजार की थी, जिसमे सरकारी मालगुजारी देकर पाँच से छ हजार की बचत थी। सैकडो बीघे जीरात के खेत थे जिनमे काफी धान, गेहूँ, मकई, अरहर, जव इत्यादि होते और ऊख से गुड बनाकर कुछ नगद रुपये भी आ जाते। यही खेत थे जो हमारे बचपन मे हमेशा इतना अन्न दिया करते कि घर भरा रहता। गाय-भैंस दूध काफी दे देती और कई जोडे बैल भी रहते। पर इस समय न मालूम क्या हो गया था कि घर-खर्च के लिए भी पूरा धान नही होता और अन्न भी खरीदना पडता। बाबूजी ने नुकसान ही नुकसान

देखकर कुछ दिनो के लिए खेती का काम बन्द भी कर दिया था। वे दिन कुछ दुख के थे, पर बाबूजी धीरज से रहते और लोगो से बातो मे कहा करते कि हमारे दोनो लडके ही हमारे धन है।

इस सम्बन्ध मे एक और घटना यहाँ कह देने योग्य है। नूनू के मरने के बाद बाबा और बाबूजी रह गये। हम लोग बच्चे थे। हम ऊपर कह चुके है कि बाबा ने ही सारी जमीन्दारी खरीदी थी और सब कुछ उनका ही उपार्जन किया हुआ था। नूनू के केवल एक लडकी थी। नूनू के मरने के बाद किसी ने बाबा को समझाया कि उनके (बाबा के) मरने के बाद उस लडकी को और हमारी चाची को कष्ट हो सकता है, इसलिए कुछ न कुछ प्रबन्ध कर देना चाहिए। बाबा ने एक वसीयतनामा लिखने का निश्चय किया और वह सीवान से तैयार होकर आया। उसके अनुसार चाची के खर्च के लिए प्राय १०००) सालाना की आमदनीवाले दो गाँव उनकी जिन्दगी तक के लिए दिये गये थे और बहिन को सारी जमीन्दारी मे से सात आने का हिस्सा दिया गया था, और हम लोगो को बाकी नव आने।

खान्दान बराबर इजमाल रहा था, इसलिए यह निश्चित नही था कि बाबा इस प्रकार की वसीयत करने के अधिकारी थे या नही। बगैर वसीयत के उनके मरने पर सारी सम्पत्ति के मालिक बाबूजी हो जाते, चाची केवल खोरिश का हकदार होती और लडकी को कोई हिस्सा नही मिलता। इसलिए कुछ लोगो ने सलाह देकर वसीयत करने की बात बाबा को सुझाई। बाबूजी को इसकी खबर नही दी गयी। सब कुछ तैयार हो जाने पर एक दिन रजिस्ट्रार रजिस्ट्री करने के लिए जीरादेई आये। लोगो ने राय दे दी कि बाबूजी अगर वसीयतनामा पर गवाही बना देगे तो फिर उनको उसके खिलाफ आवाज उठाने का हक नही होगा और सब बात पक्की हो जायगी। रजिस्ट्रार के जीरादेई पहुँचने पर ही बाबूजी को सब बाते मालूम हुई। बाबा ने उनको गवाही बना देने को कहा। बाबा के दिल मे कुछ सन्देह पैदा कर दिया गया था कि बाबूजी इसमे शायद उज्र करेगे। बाबूजी ने बाबा से साफ-साफ कहा कि आप जो हुकुम दे, मुझे मजूर है, आप ही ने हमको पाला-पोसा है, आप ही ने सब कुछ पैदा किया है, आप अगर सोलह आने भी चन्द्रमुखी को दे दे तो मुझे कुछ उज्र नही है, मेरे लिए धन तो दोनो लडके है, उनको आप आशीर्वाद दे देवे। हम लोग भी वहाँ बुलाये गये। बाबा फूट-फूटकर रोने लगे और उन लोगो को गालियाँ देने लगे जिन लोगो ने बाते बनाकर उनके मन मे तरह-तरह के सन्देह पैदा करने का प्रयत्न किया था। बाबूजी ने गवाही बना दी और वसीयतनामा की रजिस्टरी करके रजिस्ट्रार चले गये।

दुर्भाग्यवश, जिस समय मै हथुआ-स्कूल मे पढता था उसी समय, कुछ दिनो तक बीमार रहकर, हजार कोशिश के बाद भी, चन्द्रमुखी अविवाहित मर गयी। चाची बहुत दिनो तक जीती रही और मिली हुई आमदनी को तीर्थ-व्रत मे खर्च करती रही। उनके मरने के बाद सारी जमीन्दारी हम दोनो भाइयो को पूरी-पूरी मिल गयी। वह प्राय सभी तीर्थो मे गयी थी। इसमे उनका साथ देनेवाली मेरी विधवा बहन थी,

जो विधवा होने के बाद से बराबर मेरे ही घर मे रही है और अभी तक है। इन दोनो मे तीर्थ-व्रत में मानो होड होती थी और शायद ही कोई स्नान या समैया होता हो जिसमें ये शरीक न होती हो। दोनो ने चारो धाम अर्थात् जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका और बदरीनाथ के दर्शन किये। बहन तो बदरीनाथ दो-तीन बार गयी है। मेरी माँ घर पर ही रहती, कभी-कभी तीर्थ मे जाती। मुझे याद है कि स्कूल मे पढने के जमाने मे ही एक बार माँ-चाची और बहन के साथ मै अयोध्याजी और दूसरी बार मथुरा-वृन्दावन दर्शनार्थ गया था। इन यात्राओं मे खर्च काफी पडता था और तकलीफ भी काफी होती थी। उस समय मैंने अनुभव किया कि तीर्थो मे पडा लोग बडा काम किया करते है। उनके ही घर मे हम लोग ठहरे थे। वहाँ पर वे लोग बराबर साथ घूम-घूमकर सब स्थानो मे दर्शन कराते और किसी प्रकार की तकलीफ नही होने देते। किसी जमाने मे, जिसका मुझे स्मरण नही है, बाबा, बाबूजी, नूनू वगैरह भी इन तीर्थो में गये थे और वहाँ के पडो की बहियो मे उनके नाम लिखे है। पडो के लिए कुछ-कुछ सालाना की तरह पर भी मुकर्रर था जो वे हर साल जीरादेई आकर ले जाते थे। इन कारणो से वे हम लोगो की विशेष खातिरदारी करते और हमारी यात्रा मे भी उनको दान तो मिलता ही था। दान-पुन्न, पूजा-पाठ, तीर्थ-यात्रा, स्नान आदि मे घर-भर की 'लीडर' बहन थी और आज भी है। घर मे एक न एक प्रकार की पूजा बराबर लगी ही रहती थी। कुछ न कुछ आज भी वही बात है।

इस प्रकार स्कूल मे पढने का समय बीता था। घर के साथ मेरा सम्बन्ध कम ही रहता था। केवल छुट्टियो मे आना-जाना होता। शादी हो गयी थी, पर स्त्री से मुलाकात कम ही होती। छुट्टियो मे आने पर रात के समय भेट हो जाती। एक बार मेरी स्त्री को हैजा हो गया। मै उस समय घर पर ही था। बाबूजी के दवा-इलाज करने से वह अच्छी हो गयी। पर बाबूजी बहुत चिन्तित हो गये थे। मेरी हालत भी कुछ अच्छी नही थी। किसी का अपनी स्त्री के सम्बन्ध मे बहुत फिक्र रखना उन दिनो की प्रथा के अनुसार बदसलीका-पन (bad form) समझा जाता था। मै चिन्तित था। जानना और देखना भी चाहता था, पर किसी से न तो पूछ सकता था और न देखने की ख्वाहिश जाहिर कर सकता था। घर के लोगो का ध्यान शायद इस ओर गया ही नही कि मुझे भी उस बीमारी मे दिलचस्पी है। खैर, उसके अच्छी हो जाने पर फिर कोई बात नही रही और मुझे शान्ति मिल गयी। अगर कुछ हालत खराब होती तो न मालूम बदसलीका-पन का बन्धन कब तक मुझे बाँध रखता।

इस प्रकार घर मे बराबर बन्द रहते-रहते मेरी भौजाई और मेरी स्त्री दोनो का स्वास्थ्य खराब हो जाना स्वाभाविक था। ऐसा ही हुआ भी। दोनो ही कुछ दिनो तक, एक के बाद दूसरी, गठिया से तकलीफ पाती रही, जो बहुत दिनो के बाद, जब वे आँगन मे खूब घूमने-फिरने लगी तभी, छूटी।

८—कालेज में दाखिल

इम्तहान का नतीजा मालूम हो जाने के बाद मैं छपरे आया और वहाँ यह पता लगा कि केवल मेरा ही नतीजा अच्छा नही हुआ है, बल्कि स्कूल-भर का नतीजा बहुत अच्छा हुआ। मेरे साथी रामानुग्रह को भी २०) रुपये की छात्रवृत्ति मिली है और दो आदमियो को १५) की और दो को १०) की। इनके अलावा औवल दर्जा (First division) हासिल करनेवालो की सख्या भी काफी है और एकबारगी फेल भी शायद एक दो ने ही किया है। इस प्रकार का नतीजा छपरा-जिला-स्कूल का कभी नही हुआ था। बिहार-भर मे किसी भी स्कूल का ऐसा अच्छा नतीजा कभी नही हुआ था। इसलिए स्कूल के लोग बहुत खुश थे और छपरे के वकीलो मे भी बडी खुशी थी। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद छपरे मे वकालत शुरू कर चुके थे। अभी नये थे, बहुत उत्साह था। थोडे ही दिनो मे लोगो पर, विशेष करके वकालतखाने मे, उनका कुछ प्रभाव भी हो गया था। यद्यपि वह मेरे गाँव से तीन कोस पर के ही रहनेवाले थे, पर मैं उनको जानता नही था। जब मैं छपरे आया तो उन्होने भाई से राय करके एक छोटा-मोटा तवाजा (पार्टी) का प्रबन्ध किया, जिसमे मैं भी बुलाया गया, पर मैं ठीक उसी समय बीमार पड गया, शरीक नही हो सका।

छपरे में पहुँचकर मैं सबसे पहले रसिक बाबू से मिला। वह बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होने तुरत आम और मिठाई खिलाई। मुझे बहुत देर तक समझाते रहे कि इस नतीजे से मेरी जवाबदेही बहुत बढ गयी। यह पहला अवसर था कि कोई बिहारी युनिवर्सिटी मे औवल हुआ है। बगाल के लडके इस बात को बरदाश्त नही कर सकेंगे। वह बहुत परिश्रम करके मुझे एफ० ए० की परीक्षा मे हराने का प्रयत्न करेंगे। कुछ बुरे लडके मुझे दूसरे प्रकार से भी बिगाडकर गिरा देने से बाज नही आवेंगे। इसलिए मुझे कलकत्ते मे बडी सावधानी और चौकसी से रहना होगा, और परिश्रम करके जो स्थान मैंने पाया है उसे कायम रखना चाहिए। मुझे सब बातो की सूचना उनको देते रहना चाहिए और किसी तरह से सुस्ती या गफलत नही करनी चाहिए। कलकत्ता बहुत बडा शहर है। उसमें खेल-तमाशे भी बहुत है। बुरी चीजे भी बहुत है। सबसे बचना चाहिए और कालेज मे, जहाँ तक हो सके मेहनत करके, अपना स्थान बचाये रखना चाहिए। उनके दिल मे यह बात बैठी थी कि मेरे लिए अब किसी न किसी तरह एफ० ए० मे भी फिर फर्स्ट होना जरूरी है और अगर मैं इसमे चूका तो बहुत खराब होगा। इसीलिए इस बात पर उन्होने तरह-तरह से जोर दिया और मुझे बहुत समझा-बुझाकर कलकत्ते जाने के लिए रवाना किया। अपने डेरे पर पहुँचते-पहुँचते मुझे बुखार हो गया और यात्रा रुक गयी। कुछ दिनो के बाद जब अच्छा हुआ तो भाई के साथ कलकत्ते पहुँचा।

कलकत्ते मे भाई पहले से ही ईडन-हिन्दू-होस्टल मे रहा करते थे और डफ कालेज मे एम्० ए० क्लास में हिस्ट्री और रिपन कालेज मे बी० एल० के लिए कानून पढ़ा

करते थे। मै भी उनके साथ ही वहाँ गया। यह पहला ही मौका था कि मै कलकत्ते गया। वहाँ के मकानो, सडको, ट्रामगाडी इत्यादि को देखकर चकित रहा और जब होस्टल मे पहुँचा तो वह मेरे छपरे के डेरे के मुकाबले मे महल-जैसा लगा। मै इतनी देर करके पहुँचा था कि होस्टल मे विद्यार्थी खचाखच भर गये थे, एक भी जगह नही थी। मै तब तक भाई के साथ ही उनके ही कमरे मे ठहरा। जब प्रेसिडेन्सी कालेज मे पहुँचा तो मालूम हुआ कि वहाँ भी काफी लड़के आ चुके है और नये लोगो की भरती बन्द हो गयी है। डाक्टर पी० के० राय प्रिंसिपल थे। भाई ने उनसे मुलाकात की और उन्होने मुझे भरती कर लेने का हुक्म दे दिया। कालेज मे तो मै दाखिल हो गया, पर होस्टल मे तो जगह थी ही नही। उसके लिए भी कोशिश की गयी और जिस कमरे मे भाई रहते थे उसी मे चार की जगह पाँच चौकियाँ रख दी गयी और मै रहने लगा।

जब मै क्लास मे गया तो वहाँ भी दूसरी ही समा थी। मैने इतने सिर-खुले बगाली लडके एक साथ कभी देखे ही नही थे। उनमे कुछ कोट-पतलून-हैट पहननेवाले भी थे। वे ऐसे लोगो के ही लडके थे जिनके पिता विलायत से लौटकर बैरिस्टरी या डाक्टरी वगैरह कर रहे थे। मैने किसी हिन्दुस्तानी लडके को उस दिन तक हैट-कोट पहनते देखा ही नही था। इससे मेरे दिल मे शक हुआ कि ये लोग ऐंगलो-इण्डियन या क्रिस्तान होगे। पर जब नाम पुकारा गया तो मालूम हुआ कि ये हिन्दू ही है। उन दिनो यह प्रथा थी कि मुसलमान लड़के नाम के लिए तो मदरसा के छात्र समझे जाते थे, पर एफ० ए० क्लास मे पढ़ते थे प्रेसिडेन्सी कालेज मे ही। उनको फीस १२) के बदले ४) मासिक देनी पडती और उनका नाम अलग रजिस्टर मे लिखा रहता। और सब बातो मे वे प्रेसिडेन्सी कालेज के लडको से किसी बात मे अलग नही थे। उनका होस्टल अलग था। टोपीवाले वही देखने मे आये और दो-एक मारवाडी लडके भी। कालेज मे भी सब लडके एक क्लास मे नही समाविष्ट हो सके थे, इसलिए तीन विभाग कर दिये गये थे। पढाई एक ही थी।

मै उन दिनो चपकन, पाजामा और टोपी पहनकर कालेज-क्लास मे जाया करता। एफ० ए० मे अँगरेजी एक दूसरी भाषा और हिस्ट्री, लौजिक (तर्कशास्त्र), गणित के अतिरिक्त सब लडको को फिजिक्स और केमिस्ट्री भी पढनी पड़ती थी। एफ० ए० मे डाक्टर जे० सी० बोस फिजिक्स (पदार्थ-विज्ञान) और डाक्टर पी० सी० राय केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) पढाया करते थे। मै जब पहले दिन कालेज मे नाम लिखाकर पहुँचा तो पहला घटा केमिस्ट्री का था। वहाँ डाक्टर पी० सी० राय आये। उन्होने हाजिरी लेनी शुरू की। मै सबसे पीछे की एक बेच पर बैठा था। प्रेसिडेन्सी कालेज के सब लडको के नम्बर पुकारे गये और सबने उत्तर दिये। मुझे अपना नम्बर मालूम ही नही था। अन्त तक मै इन्तजार करता रहा। जब आखिरी नम्बर-वाले लडके ने भी जवाब दे दिया और वह रजिस्टर बन्द करने लगे तो मैने खडा होकर कहा कि मै अपना नम्बर नही जानता हूँ। उन्होने मेरी ओर आँख उठाकर देखा और

कहा, ठहरो, अभी मैंने मदरसा के लडको की हाजिरी नही ली है, और यह कह झट दूसरा रजिस्टर उठाया। मै समझ गया कि पाजामा-टोपी के कारण उन्होने मुझे मुसलमान मान लिया है। मैंने कहा कि मै मदरसा मे नही पढता हूँ, प्रेसिडेन्सी कालेज मे आज ही नाम लिखवाया है, इसलिए नम्बर नही जानता। उन्होने नाम पूछा और जब मैंने नाम बताया तब सब लडके मुडकर मेरी ओर देखने लगे, क्योंकि वे तो जानते थे कि मेरे नाम का कोई लडका उस साल युनिर्वसिटी मे फर्स्ट हुआ है। डाक्टर राय ने कहा कि अभी नाम दर्ज नही है, जब दर्ज हो जायगा तो आज की भी हाजिरी वह पीछे लिख देगे। फिर उन्होने इतनी देर से नाम लिखाने का कारण पूछा और इस प्रकार मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई और दूसरे साथियो ने भी पहलेपहल मुझे देखा।

हिन्दी जाननेवाले लडके तो क्लास मे बहुत कम ही थे और स्वभावत मेरी घनिष्ठता मारवाडी देवीप्रसाद खेतान से दो ही एक दिन के भीतर हो गयी। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि वह भी मेरी तरह बिहार से ही, जहाँ उनके पिताजी जेलर थे, पास करके आये थे। बगाली लड़को से भी जान-पहचान शुरू हो गयी। उनमे से कुछ ऐसे निकले जिनके साथ जल्द घनिष्ठता हो गयी और आज तक जारी है। केवल दो-तीन के नाम यहाँ देता हूँ। योगेन्द्रनारायण मजुमदार जो इस समय बगाल के स्टैंडिंग कौन्सल है, गिरीशचन्द्र सेन जो डिप्टी-कलक्टर हुए और इस समय गवर्नमेंट के सेक्रेटरी है और अविनाशचन्द्र मजुमदार जो गवर्नमेंट के ट्रासलेटर रहे है। जे० एम० सेन गुप्त, जो दुर्भाग्यवश अब नहीं रहे, मेरे साथ ही पढते थे और उसी होस्टल मे रहा करते थे।

मै एक हफ्ते से कम ही कालेज मे हाजिरी दे सका कि फिर से जाडा-बुखार शुरू हो गया। छपरे में ही जो मलेरिया का आक्रमण हो गया था वह फिर और जोरो से आया। मै महीनो तक वहाँ बीमार रहा। होस्टल के डाक्टर ने हजार कोशिश की, पर रोजाना जाडा-बुखार हो ही जाता। कभी एक दो दिन अच्छा भी हो जाता तो फिर तीसरे-चौथे दिन जोरो से जाडा हो जाता। भाई बहुत परेशान रहे। एक दिन का जिक्र है कि वहाँ टाउन हाल मे बडी सभा होनेवाली थी। लार्ड कर्जन की किसी कार्रवाई पर लोकमत प्रकट करने के लिए बगाल के बडे-बडे नेता और व्याख्याता बोलनेवाले थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इत्यादि के भाषण होनेवाले थे। दो-तीन दिनो से मै ज्वर-मुक्त था। सबने समझा कि मै अब अच्छा हो गया हूँ। भाई भी होस्टल के सब लडको के साथ सभा मे चले गये। मेरे कमरे में या आसपास के कमरे में भी कोई नही था। मै अकेला ही था। जाडा आ गया और उसके बाद बुखार चढना शुरू हुआ। मै पडा-पडा थर्मामीटर, जो पास मे पडा था, लगा-लगाकर देखता रहा। ज्वर चढते-चढते १०६ डिग्री से भी अधिक हो गया। मै घबराता। मगर करूँ तो क्या करूँ। कोई पास था नही। कभी कभी ऐसा मालूम होता कि अब भाई से भी मुलाकात नही होगी। आहिस्ता-आहिस्ता फिर बुखार उतरने लगा। भाई के वापस आने तक

बुखार बिलकुल उतर गया। जैसा भाई छोडकर गये थे वैसा ही हो गया। लौटने पर उनसे सब हाल कहा। उन्होने निश्चय कर लिया कि अब अच्छे रहने पर भी छोडकर कही नही जायँगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये और दशहरे की छुट्टी के दिन आ गये। मै इतने दिनो मे केवल चार-पाँच ही दिन कालेज मे जा सका था।

छुट्टियो मे किसी प्रकार घर आया। वहाँ अच्छा हो गया। छुट्टी प्राय एक महीने की थी। इसमे चगा होकर कलकत्ते गया और वहाँ पहुँचते ही फिर ज्वर आ गया। जी बहुत घबराया। भाई भी बहुत चिन्तित हुए। उन दिनो यह नियम था कि कालेज मे जितने लेक्चर हो उनमे एक निश्चित अनुपात मे जरूर हाजिर रहना चाहिए, नही तो परीक्षा देने की इजाजत युनिवर्सिटी नही देगी। भय होने लगा कि इतनी गैरहाजिरी के बाद शायद मै हाजिरी पूरी नही कर सकूँगा और परीक्षा देने की इजाजत ही नही मिलेगी। इसके अलावा पढाई तो छूट ही गयी थी। कभी-कभी विचार होता कि कलकत्ता छोडकर इलाहाबाद चला जाऊँ। उसमे भी दिक्कत थी कि बीच साल मे एक युनिवर्सिटी से दूसरी मे जाने की इजाजत दो युनिवर्सिटियो मे मिलेगी या नही, और फिर वहाँ जाकर भी वहाँ भी हाजिरी पूरी नही होगी तो एक बरस तो यो ही चला जायगा। रसिक बाबू ने अपने स्थान को बचा रखने की जो बात कही थी वह भी याद आ जाती और मन बहुत दुखी होता। मगर लाचारी थी। कुछ बस नही चलता। अन्त मे डाक्टर नीलरतन सरकार के पास भाई ले गये। उन्होंने नुस्खा दिया। ज्वर आना बन्द हुआ और मै चगा हो गया। वह नुस्खा प्राय एक बरस तक चलता रहा। न मालूम इस साल-भर मे कितना कुनैन खा लिया होगा। होमियोपैथिक डाक्टर ने २५—२६ बरसो के बाद कहा कि आज का दम्मा उसी कुनैन का नतीजा है। मालूम नही, क्या सत्य है।

अच्छा हो जाने पर मै बहुत परिश्रम से पढने लगा। तीन-चार महीना पढाई मे पिछड़ गया था। उसको पूरा करना था और साथ ही यह भी चिन्ता थी कि युनिवर्सिटी मे अपनी जगह नही खोनी चाहिए। प्रत्येक विषय को मै इस खयाल से पढने लगा कि मै उसमे फर्स्ट होऊँ। मै प्रत्येक विषय की एक पुस्तक के अलावा, जो क्लास मे पढाई जाती, प्राय तीन-चार और पुस्तके पढ गया। मै अपने को हिसाब मे कमजोर समझता था, इसलिए उस पर विशेष ध्यान दिया और अलजबरा, ट्रिगोनोमिट्री कौनिकसेक्शन की जितनी पुस्तके मिल सकी और उनमे जितने उदाहरण दिये गये थे, एक-एक करके सबको बना लिया। युनिवर्सिटी मे जितने प्रश्न उस समय तक पूछे गये थे, एक-एक को उसी तरह से लगा लिया।

मेरी इच्छा थी कि एफ० ए० पास करके मै साइन्स पढूँगा। डाक्टर जे० सी० बोस और डाक्टर पी० सी० राय के पढाने का तरीका इतना अच्छा था कि उस ओर रुचि बहुत हो गयी और उन विषयो के अधिक जानने का शौक हो गया। यो तो हिस्ट्री पढानेवाले प्रोफेसर विनयेन्द्रनाथ सेन भी बहुत अच्छे शिक्षक ही नही, बल्कि बहुत उच्च कोटि के सज्जन पुरुष भी थे, जिनकी कृपा मुझपर बहुत रहती थी, और जो

क्या करूँ। इतने मे कालेज के हेडक्लर्क ने, जो मुझे जानता था, उनके पीछे से मुझे इशारा किया कि चुप रहो, सब ठीक हो जायगा। मै चुप रह गया।

दूसरे दिन फारम वगैरह जो भरना होता है उसे भरकर दे दिया और फीस दाखिल कर दी। किसी ने कुछ पूछा ही नही। उस क्लर्क ने गलती सुधार दी और प्रिन्सिपल से उनकी या अपनी गलती बताई या नही, इसका मुझे पता नही। जुर्माना तो किसी ने फिर माँगा ही नही और न मैने ही अपनी ओर से दाखिल करने की कोशिश की। हाँ, इस घटना से छपरे मे ड्राइङ्ग-मास्टर ने एण्ट्रेस-परीक्षा देने की इजाजत मे जो बाधा डाली थी वह बात फिर याद हो गयी।

एफ० ए० की परीक्षा के लिए मैने खूब तैयारी की। परीक्षा का नतीजा भी एक प्रकार से ठीक निकला। मै उसे एक प्रकार से ठीक निकलना इसलिए कहता हूँ कि यद्यपि मै सबसे ऊपर आया, तथापि मेरी यह इच्छा पूरी नही हुई कि मै साइन्स मे और गणित मे सबसे ऊपर आऊँ। इन विषयो मे अधिक परिश्रम किया था। अँगरेजी, फारसी, लौजिक इत्यादि मे उनके मुकाबले बहुत कम परिश्रम किया था। पर जब परीक्षाफल निकला तो मालूम हुआ कि अँगरेजी, फारसी और लौजिक मे मैने सबसे अधिक नम्बर पाया है, और दूसरे विषयो मे औरो से थोडे-थोडे नम्बरो के लिए पीछे पड गया हूँ—यद्यपि सब मिलाकर औरो से ऊपर हूँ। एण्ट्रेन्स-परीक्षा के फलस्वरूप सबसे अधिक नम्बर पाने के लिए २०) मासिक की छात्रवृत्ति के अलावा अँगरेजी मे भी औवल होने से १०) मासिक की अलग छात्रवृत्ति एक बरस के लिए मिली थी। एफ० ए० मे सबसे ऊपर होने के लिए २५) मासिक की दो बरसो तक के लिए छात्रवृत्ति मिली। इसके अलावा अँगरेजी मे औवल होने के लिए १०) मासिक की एक छात्रवृत्ति, और भाषाओ मे फर्स्ट होने के लिए १५) मासिक की छात्रवृत्ति—जिसे डफ-स्कालरशिप कहते थे—मिली, और लौजिक मे फर्स्ट होने के लिए पुस्तको का इनाम मिला। इसका नतीजा हुआ कि मैने समझ लिया, मै गणित मे सफल नही हो सकूँगा और इसलिए विज्ञान भी मेरे लिए कठिन होगा।

परीक्षाफल के बाद मैने पूर्व निश्चय को बदल दिया और विज्ञान की ओर न जाकर बी० ए० क्लास मे नाम लिखाया। उन दिनो एफ० ए० तक की पढाई सबके लिए एक होती थी। सब विषय पढने पडते और तब कोई बी० एस-सी० मे नाम लिखाकर साइन्स पढता और कोई बी० ए० मे नाम लिखाकर अँगरेजी फिलासफी पढता। बी० ए० मे नाम लिखा लेने के बाद डाक्टर पी० सी० राय से मुलाकात हुई। उन्होने पूछा कि तुमने साइन्स मे क्यो नही नाम लिखाया? (Why have you deserted our standard?) मैने उत्तर दिया कि मै गणित मे कमजोर हूँ। उन्होने उत्तर दिया कि तुमने मुझसे राय क्यो नही ली, मै भी गणित कम जानता हूँ, पर इसलिए मै विज्ञान से भागता नही हूँ। उनको अफसोस रहा, पर अब बहुत देर हो चुकी थी और बदलना कठिन था।

दो बरसो तक पूरे ध्यान मे मैने रसिक बाबू की बात याद करके फिर फर्स्ट होने के लिए कोशिश की, और उसमे सफल रहा। रसिक बाबू इस बीच मे बदलकर कलकत्ते चले आये थे। मुलाकात करने पर बहुत खुश हुए। कभी-कभी जाकर उनसे मिलता। कुछ दिनो के बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

९—परीक्षा के प्रति अश्रद्धा

बी० ए० क्लास मे पहुँचकर मेरी हालत कुछ बदल गयी। परीक्षा की ओर से रुचि कुछ हट गयी। ध्यान और चीजो की ओर कुछ बँट गया। बचपन से ही आदत थी, मै भरसक जो कुछ क्लास मे पढाया जाता उसे बहुत ध्यानपूर्वक सुनता और क्लास का समय किसी तरह बरबाद नही होने देता। इसका शुरू मे तो एक कारण यह था कि घर पर कोई पढानेवाला या बतानेवाला मास्टर नही था, इसलिए सब कुछ स्कूल के मास्टर के बताने पर ही निर्भर रहता। पीछे आदत ही ऐसी पड गयी। कालेज मे भी यही बात रही। नाम लिखाते ही यह प्रश्न हुआ कि किस विषय मे ऑनर्स लिया जाय। उन दिनो बी० ए० मे तीन विषय पढने होते, जिनमे अँगरेजी और फिलासफी अनिवार्य थे और तीसरा विषय ऐसा था जिसको चुन लेने का अधिकार विद्यार्थी को था, पर चुन लेने के बाद उसे भी अन्य दो अनिवार्य विषयो की तरह ही पढना होता और उसमे भी परीक्षा पास करनी होती। मैने हिस्ट्री और एकनोमिक्स (अर्थशास्त्र) चुन लिया। उन दिनो ऑनर्स के लिए 'पास' के अलावा कुछ और पुस्तके पढनी होती और इन पुस्तको मे परीक्षा भी अलग होती। इस तरह से ऑनर्स के विषय की परीक्षा अधिक कडी होती और क्लास-लेक्चर भी अधिक हुआ करते। यह भी नियम था कि विद्यार्थी चाहे तो एक से अधिक विषयो मे भी ऑनर्स ले सकता है। मेरे सामने प्रश्न यह था कि मै किस विषय मे ऑनर्स लूँ—दो विषयो मे या तीनो मे। मैने पहले कुछ निश्चय नही किया और तीनो विषयो मे ऑनर्स-क्लास मे शरीक होने लगा।

मेरे साथी रामानुग्रह, जो एफ० ए० मे छपरे से दूसरे कालेज मे चले गये थे, बी० ए० के लिए प्रेसिडेन्सी कालेज मे आ गये थे। उनकी राय हुई कि हम दोनो को तीनो विषयो मे ऑनर्स लेना चाहिए। उन्होने स्वय तीनो विषयो मे ऑनर्स ले भी लिया। बी० ए० परीक्षा के फलस्वरूप दो स्कालरशिप—एक ५०) मासिक और दूसरा ४०) मासिक के—मिला करते थे। केवल ऑनर्स के नम्बर जोडकर ही स्कालरशिप मिला करता था। इसलिए उनका विचार था कि तीनो विषयो मे ऑनर्स लेना चाहिए। पर ऐसा हुआ करता था कि एक या दो विषयो मे ऑनर्स मे इतना नम्बर आ जाता कि तीन विषयो के नम्बर से भी अधिक हो जाता। ऐसी अवस्था मे दो ही विषयवाले विद्यार्थी को वह छात्रवृत्तियाँ मिल जाती। मुझे डर लगता था कि तीन विषयो मे ऑनर्स लेने पर परिश्रम बहुत करना पडेगा। चन्द दिनो तक पसोपेश मे रहा। तीनो विषयो के क्लास मे जाता रहा। इत्तफाक से उन दिनो

फिलासफी के प्रोफेसर कुछ ऐसे नीरस तरीके से पढाते थे कि उसमे मेरा जी नही लगा। इसके बदले मे अँगरेजी और हिस्ट्री के प्रोफेसर मिस्टर पर्सिवल और विनय बाबू अपने विषयो को बहुत सुन्दर रीति से पढाते थे। इसलिए उनके क्लास मे जी बहुत लगता।

मैने निश्चय कर लिया कि अँगरेजी, हिस्ट्री और एकनामिक्स मे ही आँनर्स पढूँगा। रामानुग्रह और एक दूसरा विद्यार्थी, केवल दो ही विद्यार्थी, तीनो विषयो मे आँनर्स पढ़ते रहे। कुछ दिनो के बाद डाक्टर पी० के० राय फिलासफी पढाने लगे। उनका तरीका इतना सुन्दर और मनग्राही था कि मैने देखा, सबसे सहज विषय फिलासफी था। उनके लेक्चर इतने अच्छे होते कि अगर उन्हे ध्यानपूर्वक सुना जाय तो पुस्तक पढने की जरूरत ही कम हो जाती थी। परीक्षा मे सब विषयो मे पास करना तो जरूरी था, पर जैसा पहले कह चुका हूँ, छात्रवृत्ति के लिए आँनर्स के ही नम्बर जोडे जाते और उनपर स्वभावत अधिक ध्यान दिया जाता। इसलिए मैने फिलासफी पर डाक्टर राय के लेक्चर सुनने के अलावा बहुत ही कम ध्यान दिया। पर उनका पढाना इतना अच्छा था कि बिना पुस्तक पढे ही मैने उस विषय का इतना ज्ञान पा लिया था कि परीक्षा पास कर सकूँ। पीछे अफसोस भी हुआ कि अगर इस विषय को लिये होता तो शायद कम परिश्रम से ही तीसरे विषय मे भी आँनर्स हो जाता।

इस प्रकार कुछ दिनो तक तो कालेज मे खूब जी लगाकर पढता रहा, पर कुछ ऐसे सयोग घटे कि परीक्षाफल से मन उचट गया और ध्यान दूसरी ओर जाने लग गया। उन्ही दिनो श्रीसतीशचन्द्र मुखर्जी ने एक सस्था कायम की थी, जिसका नाम था 'डॉन सोसाइटी' (Dawn Society)। विद्यार्थी उसके मेम्बर होते। उनको कुछ देना नही पडता था। उसका उद्देश्य था कि पढाई मे भी छात्रो को मदद दी जाय और उनके चरित्र सुधारने मे और उन्हे देश की बातो की जानकारी हासिल कराने मे भी सहायता दी जाय। उनसे कुछ सेवा का काम भी लिया जाता था और यह वहाँ की शिक्षा का एक अग समझा जाता था। तरीका यह था कि प्रत्येक सप्ताह सध्या समय दो क्लास किये जाते और उनमे दो लेक्चर दिये जाते। एक लेक्चर तो विविध विषयो पर होता और दूसरा गीता पर। गीता-क्लास तो एक पडित लेते और बहुत सहज रीति से वह गीता समझाते। दूसरे क्लास मे सतीश बाबू स्वय लेक्चर दिया करते और दूसरे लोगो को भी बुलाकर लेक्चर दिलवाया करते। उस क्लास मे कभी-कभी एक कालेज के प्रिन्सिपल एन० एन० घोष, कभी सिस्टर निवेदिता, कभी और दूसरे लोग लेक्चर दिया करते। ठीक समय से जाना पड़ता। हाजिरी लिखी जाती। लेक्चर के पहले ही पेंसिल-कागज सब लडको को दिया जाता कि वे लेक्चर का नोट ले लिया करे। दो जिल्दबँधी वहियाँ मिली थी जिनमे दोनो लेक्चरो का साराश लिखकर दाखिल करना पडता। सतीश बाबू इन वहियो को घर पर ले जाते और पढकर जो भूल-चूक होती उसे सुधार देते और अलम-

अलग हर आदमी को बुलाकर गलतियाँ बता देते। लेक्चर के विषय बहुत अच्छे हुआ करते जिनसे देश और दुनिया की बहुत बातो की जानकारी बढती और चरित्र पर भी असर पडता। सुने हुए लेक्चर को नोटो की मदद से फिर अपनी भाषा मे अदा करने का अभ्यास हर तरह से अच्छा था। इससे युनिवर्सिटी की परीक्षा मे भी मदद मिलती। साल के अन्त मे सब बहियाँ किसी बडे आदमी के पास सतीश बाबू भेजते और वह महाशय उन्हे देखकर जिसका काम सबसे अच्छा हुआ रहता उसको छात्रवृत्ति और इनाम देते। क्रियात्मक रूप से सेवा का तरीका यह था कि एक छोटी-सी दूकान स्वदेशी कपडो और दूसरी चीजो की खोली गयी थी जिसकी देख-रेख मेम्बरो के ही जिम्मे थी। वह दूकान शाम को दो घटो के लिए खुलती और बेचने, हिसाब रखने का काम मेम्बरो के जिम्मे था।

मै किसी प्रकार इस सोसाइटी के एक लेक्चर मे पहुँच गया। सब बाते बहुत अच्छी लगी। मै इसमे शरीक हो गया। सतीश बाबू की कृपा रहती, जो आज तक बनी हुई है। सतीश बाबू युनिवर्सिटी के अच्छे छात्रो मे थे। उन्होने उसी साल बी० ए० परीक्षा पास की थी, जिस साल सर आशुतोष मुखर्जी ने पास की थी। पढने के समय वह स्वामी विवेकानन्द के साथी थे। उन्होने वकालत शुरू की थी, पर थोडे ही दिनो के बाद उसे छोड दिया था और इसी प्रकार के सार्वजनिक काम मे लग गये थे। उन्होने कभी शादी नही की। उनका विचार हुआ कि विद्यार्थियो का जीवन सुधारना चाहिए और इसलिए उन्होने डॉन सोसाइटी की स्थापना की थी। इसमे मिस्टर एन० एन० घोष, सिस्टर निवेदिता, सर गुरुदास बनर्जी प्रभृति जैसे महान् पुरुषो की सहायता और सहानुभूति मिलती थी। सोसाइटी मे जाने पर मुझे बहुत ऐसे विद्यार्थियो से भी घनिष्ठता हो गई जो मेरे क्लास के साथी नही थे, पर जो युनिवर्सिटी के नामी विद्यार्थियो मे थे—जैसे विनयकुमार सरकार जो विख्यात विद्वान और लेखक है, रवीन्द्रनारायण घोष जो रिपन-कालेज के प्रिन्सिपल थे और हाल मे ही जिनका स्वर्गवास हो गया है।

मुझे स्मरण है कि साल के अन्त मे डॉन सोसाइटी की छात्रवृत्ति और इनाम भी मुझे मिले, जिनको सभा मे सर गुरुदास बनर्जी ने कुछ उत्साहवर्धक शब्दो के साथ मुझे दिये थे। सोसाइटी मे जाने से विचारो का मथन खूब हुआ। परीक्षा से श्रद्धा हट गयी और ध्यान सार्वजनिक बातो मे अधिक लगने लगा। यो तो मै बचपन से ही कुछ इस तरह की बातो की ओर अधिक ध्यान दिया करता था। जब स्कूल मे पढता था तो वहाँ पर एक डिबेटिङ्ग सोसाइटी कायम की थी जिसमे रविवार को हम सब मिलते, अपने-अपने लेख पढते अथवा भाषण करते। इनमे कभी-कभी स्कूल के मास्टर भी निमन्त्रण देकर बुलाये जाते, पर यह सस्था स्कूल की नही थी, स्वतत्र थी। उसी प्रकार कलकत्ते मे भी हम लोगो ने बिहारियो की सभा 'बिहारी क्लब' कायम कर ली थी, जिसमे हम सब प्रति रविवार को मिलते और लेख पढते, भाषण करते। इसके अलावा कालेज के युनियन मे भी मै भाग लिया करता और

एक साल तो उसका मत्री भी चुना गया था। कालेज-युनियन की ओर से एक मासिक पत्र निकाला गया था जिसके सचालन मे मेरा हाथ रहता।

पर इन सब प्रवृत्तियो के रहने पर भी, डॉन सोसाइटी मे शरीक होने के पहले, ये सब एक प्रकार से बिना किसी उद्देश्य की थी। इनका कुछ भी निर्दिष्ट अभिप्राय नही था और न हमारे सामने कोई नियमित कार्यक्रम ही था। मै अख-बारो को पढा करता था। काग्रेस का नाम जानता था। जब उसका सालाना जल्सा होता तो उसके भाषणो को ध्यानपूर्वक पढता। यो तो जब कभी कोई सार्वजनिक सभा होती और बडे लोगो के भाषण होते—जैसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के—तो मै उसमे जाकर भाषणो को सुनता। पर डॉन सोसाइटी से अधिक दिलचस्पी थी। स्वदेशी का प्रेम तो भाई ने स्कूल के समय मे ही पैदा कर दिया था, पर वह भी अभी पूरी तरह प्रस्फुटित नही हुआ था। यह डॉन सोसाइटी और सतीश बाबू के सत्सग का ही प्रसाद था कि यह जो विचार और प्रवृत्तियाँ अकुर-रूप मे पहले से मौजूद थी और जो बिना किसी उद्देश्य या समझ के अधकार मे काम कर रही थी, कुछ परिष्कृत हो गई। मै कुछ आगे का भी सोचने लगा।

१०—वंगभंग का आन्दोलन

१९०४ मे मैने एफ० ए० परीक्षा पास की। १९०५ मे वगभग का आन्दोलन शुरू हुआ। मै सभी सार्वजनिक सभाओ मे पहले से ही जाया करता था। वग-भग-विरोधी सभाओं मे भी खूब जाता। उन दिनो इस बात मे रोक-टोक अभी नही थी। ७ अगस्त १९०५ की बडी सभा मे, जिसमे विदेशी वस्तुओ का बायकाट और स्वदेशी के प्रचार का निश्चय हुआ, मै शरीक था। उसमे बहुत उत्साह था। लोगो ने व्रत लिया कि स्वदेशी का ही वे व्यवहार करेगे। मेरे लिए इसमे कोई कठि-नाई थी नही, क्योकि मै बहुत पहले ही से केवल स्वदेशी वस्तुओ का ही व्यवहार किया करता था। आन्दोलन खूब जोरो से चला। प्राय प्रतिदिन कही न कही सार्वजनिक सभाएँ होती। हम सब जाते। कही सुरेन्द्र बाबू, कही विपिनचन्द्र पाल, कही ए० चौधरी, कही अरविन्द घोष के भाषण होते। होस्टल के लडको मे बडी हलचल थी। जो लोग कभी स्वदेशी नही बर्तते थे उन्होने भी स्वदेशी बर्तना आरम्भ किया। बडो की तो मुझे खबर नही, पर विद्यार्थियो मे नया जोश और नया उत्साह पैदा हो गया।

एक छोटी घटना का जिक्र करना अच्छा होगा। यो तो मै स्वदेशी का ही व्यवहार करता था; पर क्लास मे एक दिक्कत महसूस करता था। जो लेक्चर होते उनका नोट रोज लेता। पेन्सिल से नोट मिट जाने का भय रहता। इसलिए कलम-दावात ले जाता और लिखता। एक दिन देखा कि स्टाइलोपेन् (Stylopen) निकला है जिसमे रोशनाई भर दी जाती है और आदमी को दावात साथ ले जाने की जरूरत नही पड़ती। यह विदेशी था और 'ह्वाइटवे लैडलॉ' की दूकान मे उन

दिनो आधे दाम पर ही विक रहा था। मैंने एक खरीद लिया। होस्टल के साथियो को यह मालूम हुआ। वे वहुत विगडे और मुझसे झगडने लगे। उनमे एक आदमी ऐसा भी था, जिसके वारे मे मै जानता था कि उसके पास चिट्ठी लिखने के लिए वहुत विदेशी कागज था। दूसरा ऐसा था जिसके पास थोडे ही दिन पहले का वना हुआ विदेशी कपडे का नया कीमती कोट था। विद्यार्थियो ने निश्चय किया था, एक दिन विदेशी कपडो की होली जलायी जायगी और उसी दिन होस्टल के आँगन मे उन चीजो को भी जलाया जायगा। सवके दिल मे था कि कुछ कपडे जला दिये जायँ। पर शायद ही किसी के दिल मे हो कि सव विदेशी कपड़े जला दिये जायँ, क्योकि प्राय सवके पास अधिक से अधिक विदेशी कपड़े ही थे।

जव लोगो ने मुझे वहुत दिक किया तो मैंने कहा, "सव अपने-अपने ट्रक खोलो। जिसके पास जितना विदेशी कपडा हो, होली मे आज ही जला दो। मै भी अपना ट्रक खोलता हूँ और जो कुछ विदेशी मेरे पास निकलेगा, मै सव अभी यही जला दूंगा।" सव चौकन्ने हो गये। वे यह तो जानते नही थे कि उस कलम के सिवा मेरे पास कुछ भी दूसरी चीज विदेशी नही थी। मैंने ट्रक खोल दिया और एक-एक करके सव चीजे कमरे मे विखेर दी। उसके वाद भीड हट गयी और फिर किसी ने इस प्रकार का आक्षेप मुझपर नही किया। उस साथी ने अपने विदेशी कागज तो जला दिये, पर जहाँ तक मुझे स्मरण है, दूसरे साथी ने नये कोट को जल्दी मे जलाना उचित नही समझा। हाँ, उसे उन दिनो फिर पहनने के लिए निकाला नही। ऐसा ही दूसरो ने भी किया।

१९०५ का साल इस प्रकार एक वडे आन्दोलन और जागृति का साल था। विशेष करके विद्यार्थियो मे एक नये जीवन का सचार हो गया था और वहुतेरो ने पढना भी छोड दिया था। उसी समय कलकत्ते मे राष्ट्रीय शिक्षा की एक वडी सस्था खुली। श्रीसतीश वावू उसमे चले गये और डॉन सोसाइटी का काम कुछ दिनो के वाद ढीला पड गया। सोसाइटी के साथियो मे से कई उस सस्था मे शरीक हो गये। मै इन सव सभाओ मे वरावर आया-जाया करता और भाषणो को सुनता, पर मेरे दिल मे किसी समय कालेज छोडकर इस राष्ट्रीय सस्था मे जाने की इच्छा नही हुई। मेरे सामने उसका उद्देश्य साफ नही था और न अपना दिल ही इसके लिए तैयार था कि कालेज छोड दूं और भविष्य को इस तरह से एकवारगी वदल दूं। मै एक भीरु आदमी लडकपन से ही रहा हूँ और किसी विषय मे जल्दी करके कोई वडा कदम उठाना मेरे लिए हमेशा एक कठिन समस्या रहा करती है। उस समय तो कदम उठाने का सवाल भी जोरो से सामने नही आया। जहाँ तक मुझे याद है, स्वदेशी आन्दोलन और वग-विच्छेद के विरुद्ध आन्दोलन मे कभी विद्यालयो के छोडने का कार्यक्रम उसी तरीके से सम्मिलित नही था जिस तरीके से १९२०—१९२१ के आन्दोलन मे था। मै इस तरह उन चीजो के साथ एक प्रकार से वाहर से ही सहानुभूति रखता रहा, कभी उनके अन्दर नही घुसा।

पर इन सब आन्दोलनो का नतीजा यह तो अवश्य हुआ कि पुस्तको के पढ़ने मे समय कम लगा और परीक्षाफल की ओर से एक प्रकार की उदासीनता-सी हो गयी। परीक्षा मार्च के महीने मे हुआ करती थी। सितम्बर-अक्टूबर मे दुर्गा-पूजा और दशहरे के लिए छुट्टियाँ हुआ करती, जो प्राय. एक महीने या उससे भी अधिक लम्बी होती। मै इस बार की छुट्टी मे कलकत्ते मे ही रह गया, क्योकि मैने समझ लिया था कि अब कुछ पढना चाहिए, नही तो परीक्षा पास करने मे कठिनाई हो जायगी।

कालेज की परीक्षा हुई। मेरे दिल मे इसका तो भय था नही कि इस परीक्षा मे पास ही नही करूँगा। हाँ, यह हो सकता था कि औरो से नम्बर कम आवे। कुछ साथियो ने मिलकर सलाह किया, परीक्षा के पहले के प्राय पाँच-सात सप्ताह कही बाहर जाकर बिताये जायँ, जहाँ शान्ति से हम पढ सके और परीक्षा के लिए तैयार हो सके। हम लोगो ने बिहार के सथाल-परगना जिले के 'जामतारा' स्थान मे जाकर रहना निश्चित किया। वहाँ एक मित्र ने छोटा-सा मकान भाड़े पर ठीक कर दिया। कालेज की परीक्षा देकर उसके फल का इन्तजार न करके हम लोग वहाँ चले गये।

मै कह चुका हूँ कि अँगरेजी और हिस्ट्री मे, जिसमे एकनामिक्स और पालिटिक्स भी शामिल था, मैने ऑनर्स लिया था। हिस्ट्री-ऑनर्स के परीक्षक थे मि० पर्सिवल। उन्होने जल्दी ही परीक्षा करके नम्बर हम लोगो को बता दिया था। मेरा स्थान सबसे ऊपर था और नम्बर भी बहुत अच्छा मिला था। और विषयो का पता नही था। उस समय के प्रिन्सिपल सायन्स पढ़ाया करते थे, इसलिए हम लोगो से उनकी पढ़ाई का वास्ता नही था। वह हम लोगो को जानते ही नही थे। उन्होने नोटिस निकाल दी कि कोई प्रोफेसर किसी विद्यार्थी को परीक्षाफल न बतावे।

मिस्टर पर्सिवल इसके पहले हमको फल बता चुके थे। हम लोगो के जामतारा चले जाने के बाद परीक्षाफल सुनाया गया। प्रिंसिपल साहब ने फल सुनाते समय मेरे नाम पर कहा कि मै अँगरेजी ऑनर्स मे परीक्षा दे सकूँगा, पर हिस्ट्री ऑनर्स मे नही। मेरे साथी जो वहाँ मौजूद थे, अचम्भे मे आ गये। एक ने हिम्मत करके कहा कि उन्होने जरूर पास किया होगा। उत्तर मिला कि अगर पास किया होता तो परीक्षा देने की इजाजत जरूर मिलती। उसने फिर कहा कि उन्होने सब परीक्षाओ मे औवल स्थान पाया है और छात्रवृत्ति भी पायी है, ऐसा हो नही सकता कि इसमे न पास करे। प्रिन्सिपल ने फिर कहा उसी के शब्दो को दुहराते हुए कि सबमे औवल पास किया तो औवल स्थान मिला और छात्रवृत्ति मिली, इसमे नही पास किया, इसलिए इस बार परीक्षा देने की इजाजत नही मिलेगी। उसने एक बार और जोर लगाकर कहा कि हम लोगो को पता लग गया है और नम्बर भी मालूम हो गया है—उन्होने उस विषय मे बहुत नम्बर और औवल स्थान पाया है। इस पर वह चिढ़ गया और बोला, ऐसा हो नही सकता, मैने नोटिस निकाल

दी है कि किसी को नम्बर न बताया जाय और ऐसा कहकर जोर से डाँट दिया कि मुझे ऑनर्स परीक्षा मे बैठने की इजाजत नही मिलेगी। उसने बार-बार यही कहा कि बडी सावधानी से उसने सब नम्बर देख लिये है—कोई भूल नही है।

मेरा साथी घबरा गया। उसने तुरन्त जामतारा मेरे पास तार दिया। तार पाकर मै और भी चक्कर मे पड़ गया। आपस मे सलाह करके कलकत्ते आना ही ठीक जँचा। मै कलकत्ते पहुँचकर सीधे मिस्टर पर्सिवल के घर पर गया। वह बडे विद्वान समझे जाते थे। उनके पढाने का ढग भी बहुत अच्छा था। उनकी विद्वत्ता और पढाई से लडके मुग्ध रहा करते थे। अविवाहित थे। घर पर अकेले रहते थे। केवल पुस्तको का ही साथ था। बडे सूखे मिजाज के थे। किसी से न मिलना न जुलना। ठीक समय पर कालेज मे आना, क्लासो मे जाकर पढाना और फिर सीधे घर चले जाना। केवल युनिवर्सिटी के सिनेट इत्यादि मे, जिनके मेम्बर थे, जाना और घर मे पढते रहना। अपने काम मे बडे पक्के। वह प्रेसिडेन्सी कालेज मे प्राय २५–३० बरसो तक रहे। पीछे, कुछ दिनो के लिए प्रिन्सिपल भी हुए थे। कर्त्तव्य-परायणता इतनी थी कि कभी एक मिनट का समय न क्लास मे न और कही बरबाद करते। सादे कपडे पहनते और जो कोई ठाठबाट से रहते उनको पसन्द नही करते। केवल पढाने से ही सम्बन्ध रखते। पर उनकी सादगी, कर्त्तव्यपरायणता, ऊपरी शुष्कता और कडाई का असर हम सब पर बहुत पडता। हम डरते भी खूब थे। शायद ही कोई उनके घर पर गया हो। उनका एक तरीका था कि जितनी परीक्षाओ मे वह परीक्षक होते, चाहे वह कालेज की हो अथवा युनिवर्सिटी की, परीक्षार्थियो की नामावली बनाकर जो नम्बर देते, लिखकर अपने पास रख लेते। जब कभी कोई विद्यार्थी उनसे सर्टिफिकेट, नौकरी वगैरह के लिए, माँगता तो उससे उन सब परीक्षाओ का समय पूछ लेते जिनमे उन्होने उसकी परीक्षा ली थी। अपने रजिस्टर देखकर, परीक्षाफल के आधार पर, दूसरे दिन सर्टिफिकेट लिखकर ला देते। उनके सर्टिफिकेट की बडी कद्र होती।

मै हिम्मत करके उनके घर पर पहुँचा। डरता तो था, पर कोई चारा नही था। उन्होंने प्राय दो बरसो तक पढाया था। इसलिए मुझे जानते थे। देखते ही पूछा कि क्यो आये हो। मैने अभिप्राय बतलाया। अभी परीक्षा लिये चन्द दिन ही बीते थे, उनको फल याद था। उन्होंने कहा कि मुझे याद है, तुम सबसे ऊपर आये हो और नम्बर भी अच्छा मिला है, तो भी ऐसा क्योकर हुआ? मैने तार दिखलाया। उन्होंने अपना रजिस्टर निकाला। देखकर फिर कहा कि मेरा खयाल ठीक है, तुम्हारा अच्छा नम्बर आया है और तुम औवल हुए हो, मैने खुद अपने हाथो से लिखकर परीक्षाफल प्रिन्सिपल को दिया है, उसमे कोई भूल नही थी, वहाँ आफिस मे कोई भूल हुई है, मुझसे कालेज मे मिलो।

मेरी जान मे जान आई। मै पहले से ही कालेज की सीढी पर खडा था। वह समय से एक दो मिनट पहले ही पहुँचे और सीधे प्रिन्सिपल के कमरे मे चले

गये। वहाँ देखा कि मेरा नम्बर दूसरे साथी के नाम के सामने लिख गया है जिसने ऑनर्स मे पूरा नम्बर नही पाया है और इसलिए फेल किया है और उसका नम्बर मेरे नाम के सामने लिखा गया है। प्रिन्सिपल ने अपनी भूल मान ली और खेद प्रगट किया और कहा कि उस लड़के से कह दीजिए कि भूल हो गयी थी, अब उसको परीक्षा देने की इजाजत है।

मै तो इन्तजार मे खड़ा था ही। वहाँ से निकलते ही उन्होने मुझसे सब बाते कही और कहकर क्लास मे पढाने चले गये। इस गोलमाल का नतीजा यह हुआ कि मेरे दो दिन बेकार गये। जामतारा से कलकत्ते आने-जाने मे कुछ खर्च पडा और कुछ देर तक बडी चिन्ता लगी रही। एक दूसरा नतीजा यह भी हुआ कि मेरे दूसरे साथी, जिनके नाम के सामने मेरे नम्बर लिखे गये थे, ऑनर्स मे परीक्षा देने पाये। भूल सुधारने के पहले ही उनकी दर्खास्त, फारम भरकर प्रिन्सिपल के हस्ताक्षर के साथ, युनिवर्सिटी मे भेजी जा चुकी थी। वह इजाजत वापस लेना अब सम्भव नही था। उन्होने परिश्रम से पढा और युनिवर्सिटी की परीक्षा मे वह भी ऑनर्स के साथ पास कर गये। जैसा मै ऊपर कह चुका हूँ, एण्ट्रेस, एफ० ए० और बी० ए० तीनो परीक्षाओ मे मुझे इजाजत मिलने मे कुछ दिक्कत हुई, यद्यपि मै तीनो मे पहले भी और युनिवर्सिटी की परीक्षा मे भी बराबर औवल रहा।

जब परीक्षा के दिन नजदीक आये तो मै कुछ घबराया। कुछ खयाल पैदा हुआ कि इस बार भी अगर औवल न हुआ तो शिकायत होगी। पर इस बार इच्छा कुछ तीव्र नही थी और अब समय भी नही रह गया था कि उसके लिए एफ० ए० परीक्षा की तरह तैयारी की जाय। परीक्षाफल मे स्थान केवल आनर्स के नम्बर से ही मिलता था। इसलिए मैने ऑनर्स के विषयो पर ही ध्यान दिया। फिलासफी, जिसमे केवल पास ही करना था, एक तरह से छोड ही दिया। पहले भी डाक्टर पी० के० राय के लेक्चरो को ही ध्यान से सुना करता था। किताबे कम पढी थी। इसमे एक बार एक घटना से प्रोत्साहन भी मिला था। एक दिन डाक्टर राय बीमार पड गये। उन्होने उस दिन पढाया नही। कुछ सवाल दे दिये और सबको उन सवालो का उत्तर लिखकर देने कहा। सबने उत्तर लिखे। मैने किताबे तो पढी नही थी। केवल लेक्चर मे जो उन्होने कहा था उसे ही, जहाँ तक हो सका, लिख दिया। डाक्टर ने सब उत्तरो को घर पर ले जाकर पढा और दूसरे दिन उस तात्कालिक परीक्षा का फल यह सुनाया कि मै ही सबसे ऊपर हूँ और जिन लोगो ने उस विषय मे ऑनर्स किया है उनसे भी मैने अधिक नम्बर पाया है। इसके वाद से मुझे और भी विश्वास हो गया कि फिलासफी के लिए बहुत पढने की जरूरत नही है।

युनिवर्सिटी परीक्षा के पहले कालेज की परीक्षा मे भी मुझे उन परचो मे ऑनर्स के लड़को के मुकावले ज्यादा नम्वर मिला। इसलिए जामतारा मे भी इसपर ध्यान नही दिया। परीक्षा का दिन निकट आ गया। अँगरेजी की परीक्षा हो गयी। उसके बाद फिलासफी की परीक्षा थी। प्राय दो महीनो से मैने शायद ही फिला-

सफी की कोई पुस्तक देखी थी। उस दिन सध्या को अचानक एक भय पैदा हो गया कि फिलासफी मे मै दूसरे दिन कुछ भी उत्तर नही दे सकूँगा। इस प्रकार जब सोचने लगा तो मालूम पडने लगा कि कुछ भी याद नही है। मैने सोचा कि पुस्तक पढने का तो समय है नही। रात-भर मे जो कुछ नोट वगैरह थे उनको एक बार दुहरा जाऊँ तो शायद पास करने लायक लिख सकूँ। फिलासफी मे साइकलौजी (मनोविज्ञान), एथिक्स (आचारशास्त्र) और लौजिक तीन विषय पढने थे। साइकलौजी पढना शुरू किया। आदत के मुताबिक सही शाम ही नीद आ गयी। कुछ देर के वाद फिर घबरा कर उठा तो सोचा कि अच्छा होगा कि अभी सो जाऊँ और रात मे २–३ बजे से उठकर सब कुछ एक बार दुहरा लूँगा। एक बूढा नौकर था। उसको कह दिया कि ठीक दो बजे जगा देना। दो तीन दिनो से परीक्षा मे बहुत मेहनत पडी थी। बहुत थक गया था। नीद खूब जोर से आ गयी। नौकर बेचारा रात भर बैठा रहा। जैसे दो का घटा बजा, जगाना शुरू किया। पर उसके हजार कोशिश पर भी मेरी नीद नही टूटी। करीब ४॥ बजे के नीद खुली और घडी देखी। बहुत घबराया। नौकर पर गुस्सा हुआ, पर उसने कहा कि वह तो बराबर जगाता ही रहा, मै न उठा तो उसका क्या दोष। जल्दी जल्दी नोट उलटने लगा। साइकलौजी और एथिक्स तो उलटकर देख गया। इन विषयो को डाक्टर राय ने पढाया भी था। पर लौजिक देखने का समय नही मिला। घबराकर एक साथी के पास गया। सब हाल कहा। उसने लौजिक के सभी अध्यायो के शीर्षक कह दिये और प्रत्येक शीर्षक के सम्बन्ध मे कुछ बाते कह दी। उस समय मालूम होता था कि मै एक नई चीज पहले-पहल पढ रहा हूँ। इतने मे जाने का समय हो गया। दौडकर दस-पन्द्रह मिनटो मे मुँह धोकर स्नान करके कुछ भात निगल कर दौडता हुआ युनिवर्सिटी मे पहुँचा। पहुँचने के पहले ही पहली घटी बज चुकी थी। दौडकर स्थान पर बैठ गया और परचा हाथ मे आ गया। इतना घबराया था कि कुछ पता नही चलता था कि एक प्रश्न का भी उत्तर लिख सकूँगा या नही। डर यह होता था कि और विषयो मे ऑनर्स पाकर ही क्या होगा—अगर इस विषय मे फेल कर गया। किसी एक भी विषय में फेल करने पर सारी परीक्षा मे आदमी फेल हो जाता था।

परचा मिलने पर कुछ शान्ति लाने की कोशिश की। आहिस्ता-आहिस्ता प्रश्नो को पढा। कुछ ऐसा मालूम हुआ कि पहले प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा। लिखना शुरू किया। जब खतम किया तो ऐसा समझा कि उत्तर कुछ बुरा नही हुआ। इसी प्रकार दूसरे प्रश्न और उसके वाद तीसरे प्रश्न इत्यादि सबका उत्तर लिख गया। उधर समय भी पूरा हो गया। अब मन मे विश्वास हो गया कि फेल नही करूँगा। सारी घबराहट कम हो गयी। आध घटे की छुट्टी के बाद दूसरा परचा मिला। उसमे भी वैसा ही हुआ। प्राय सभी प्रश्नो का उत्तर लिख दिया, केवल एक बाकी रह गया था। उसका भी उत्तर कुछ तो दे सकता था, पर पूरा नही, क्योकि उसका सम्बन्ध उस अध्याय के साथ था, जिसका शीर्षक तो मैने देखा था और साथी ने सक्षेप मे कुछ कहना

भी शुरू किया था। पर उसे वह पूरा नही कर पाया था, और मै घडी देखकर जल्दी मे होस्टल से चला आया था। मैने उसका उत्तर नही दिया और समय से पहले ही चला आया। मुझे विश्वास हो गया था कि अब फेल होने का तो कोई डर ही नही है। जब नतीजा निकला तो हिस्ट्री ऑनर्स मे मै औवल आया। अँगरेजी मे भी ऑनर्स तो मिला, पर औवल स्थान नही मिला। फिलासफी मे बहुत अच्छा नम्बर आया था। सब विषयो को मिलाकर मै ही सबसे ऊपर था और वह दोनो छात्रवृत्तियाँ, एक पचास की और दूसरी चालीस मासिक की, मुझे फिर मिल गयी। इस बार का फल किसी प्रयत्न का नतीजा नही था, क्योकि मैने कोई प्रयत्न किया ही नही था।

११—समुद्रयात्रा-सम्बन्धी आन्दोलन

जब मै एफ० ए० की परीक्षा देकर, सन् १९०४ की गर्मी की छुट्टियो मे, जीरादेई आया था, भाई भी घर पर ही थे। परीक्षा-फल की प्रतीक्षा थी। अखबारो मे हम लोगो ने देखा कि विदेश से शिक्षा पाकर डाक्टर गणेशप्रसाद वापस आ रहे है। वह बलिया के, जो हमारे जिले छपरा-(सारन) से लगा हुआ है, रहनेवाले थे। उनका ननिहाल छपरे मे था। जाति के वह भी कायस्थ थे। इलाहाबाद से डी० एस-सी० की उपाधि पाकर वह पढने के लिए इँगलैड गये और वहाँ से फिर जर्मनी गये। गणित-शास्त्र मे उन्होने बडा नाम किया था। देश मे उनके पहुँचने के पहले से ही एक आन्दोलन उठ खडा हो गया था कि उनको जाति मे ले लेना चाहिए। छपरे मे ो दल हो गये थे। सुधारक दल के नेता बाबू व्रजकिशोरप्रसाद थे, जो अभी नये उठते ए वकील थे और विरोधी दल के नेता ो सबसे प्रतिष्ठित और नामी बूढे वकील थे। व्रजकिशोर बाबू हमारे घर पर आये। भाई से सलाह करके उन्होने बाबूजी से कहा कि डाक्टर गणेश को जाति मे ले लेना चाहिए और उनके यहाँ जो बिरादरी का भोज ो उसमे बाबूजी को चलना चाहिए।

उस समय तक बिहार-भर मे केवल मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ही विलायत से लौटे कायस्थ थे। उनको लौटे ग्यारह-बारह बरस बीत चुके थे। उनके लौटने के समय भी कुछ आन्दोलन आ था, पर उन्होने प्रायश्चित्त करके फिर पुराने तरीके से जाति के बन्धन को मानना स्वीकार नही किया था। सलिए बाजाब्ता वह जाति मे नही लिये गये थे। डाक्टर गणेशप्रसाद से, पहुँचने के पहले ही लिखा-पढी करके, तय हो चुका था कि वह जाति-बन्धन को मानें। उन्होने विदेश मे भी बहुत सादा जीवन बिताया था और कभी मास-मछली-मद्य का व्यवहार नही किया था। उनका और सुधारको का विचार था कि इस तरह से ही उस समय समुद्र-यात्रा का रास्ता खुल सकेगा। मिस्टर सिन्हा के लौटने के बाद दस बरसो तक किसी की हिम्मत उस बन्धन को तोडकर विदेश जाने की नही हुई थी। इसलिए अब इस शर्त को मानकर भी रास्ता खोलना चाहिए।

बा ू व्रजकिशोर ने कुछ लोगो को तैयार किया था कि डाक्टर गणेश के घर चलकर भोज मे शरीक होना चाहिए। बाबूजी से उन्होने बहुत आग्रह किया कि वह

भी चले। बाबूजी ने खुद तो जाना मंजूर नहीं किया, मगर यह कह दिया कि वह हम दोनों भाइयों को भेज देंगे।

डाक्टर गणेश लौटे। बलिया में भोज का दिन मुकर्रर हुआ। बाहर से बाबू व्रजकिशोर की प्रेरणा से हम २०–२१ आदमी छपरे से बलिया गये। इनमें दो भाई हम और हमारे दोनों साथी जमुना भाई और गंगा भाई भी थे। गाँव के पटवारी भी थे। डाक्टर गणेश से भेंट हुई। बलिया के कायस्थों में बड़ी हलचल थी।

मैं लिख चुका हूँ कि हम लोगों का घर पहले बलिया में ही था। वहाँ हमारे गोतिया लोग रहते थे। हमारे ब्राह्मण-पुरोहित आज तक बलिया से ही शादी और श्राद्ध में आया करते हैं। मेरी ससुराल के लोग भी बलिया में रहते थे। उस घर के कई आदमी वहाँ वकालत करते थे। कुछ लोग दूसरे कामों में भी थे। हम लोगों के पहुँचने की खबर वहाँ फैल गयी। इसको छिपाना भी तो मंजूर नहीं था। हमारे एक गोतिया भी वकील थे। वह रिश्ते में हम लोगों के भाई लगते थे। उन्होंने हम लोगों से भेंट की और हम लोगों का उस भोज में शरीक होना पसन्द नहीं किया। उनका खयाल था कि हम लोग बाबूजी की आज्ञा के बिना ही चुपचाप चले आये हैं। जब हम लोगों ने विश्वास दिलाया कि ऐसी बात नहीं है, तो उनको और भी दुःख हुआ। उन्होंने कहा कि चचा साहब को हमसे पूछ लेना चाहिए था, जब हम सब यहीं रहते हैं।

इसी प्रकार मेरी ससुराल के लोगों को भी यह बात बहुत पसन्द नहीं थी, पर उनकी ओर से कुछ अधिक जोर नहीं डाला गया। रात को भोजन हुआ। भात खाकर हम सब अपने स्थान के लिए वापस हुए। डाक्टर गणेश पहले इलाहाबाद में और फिर हिन्दू-युनिवर्सिटी में और कलकत्ता-युनिवर्सिटी में गणित-विभाग के सर्वोच्च स्थान पर रहकर कई बरसों के बाद गुजर गये। हम लोगों से उस पहली मुलाकात को वह कभी भूले नहीं और मुझसे बहुत प्रेम रखते रहे।

बलिया से लौटकर मैं अपनी दूसरी बहन के घर, जो छपरे से कुछ दूर पर ब्याही थी, बाहर ही बाहर चला गया। वहाँ जाने का कोई खास विचार नहीं था। पहले से ही उसकी इच्छा थी कि मैं दो-चार दिन उसके साथ रहूँ। छपरे से ही वहाँ जाने में सुविधा थी। इसलिए घर वापस न जाकर वहाँ चला गया।

जिन लोगों ने भोज में शिरकत की थी उनके नाम अखबारों में छपे और छपरे में बड़ा हल्ला हुआ। वहाँ तैयारियाँ होने लगीं कि वे लोग जातिच्युत कर दिये जायँ। काशी से महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री की, समुद्र-यात्रा के विरुद्ध, व्यवस्था मँगायी गयी। जिला-भर के कायस्थों की एक बड़ी सभा करने का आयोजन होने लगा। मुझे इसकी कुछ भी खबर न थी। मैं तो बहन के गाँव में था। इसी बीच में परीक्षा-फल भी निकल गया। बाबू व्रजकिशोर ने गजट देखकर जीरादेई खबर दे दी। भाई को बात मालूम हो गयी। बाबूजी को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने तुरन्त सत्य-नारायण की कथा सुनी, ब्राह्मण-भोजन और बिरादरी-भोज का प्रबन्ध कराया। यह सब मेरी गैरहाजिरी में ही हुआ।

मै अपने बहनोई के घर से जीरादेई के लिए रवाना होकर छपरे पहुँचा। वह-नोई भी साथ छपरे आये। छपरे मे जो आन्दोलन उठ खडा हुआ था, उसकी उनको खबर ही नही थी। हम लोग रात को छपरे पहुँचे और वहाँ पहुँचकर सो गये। इसलिए, उस रात को कुछ पता न मिला। मेरे परीक्षा-फल की भी खबर न मिली। खूब सवेरे रेल जाती थी, जिससे हम जीरादेई जा सकते थे। सवेरे ही मै स्टेशन पहुँच गया। बाबू व्रजकिशोर का डेरा स्टेशन के नजदीक ही था। मैंने नौकर को भेजा कि जाकर पूछ आओ—परीक्षा-फल अभी निकला कि नही। उन्होने खबर दिलवाई कि परीक्षा-फल निकल चुका है और मुझको उनसे मुलाकात किये बिना उस गाडी से नही जाना चाहिए। मै उनके डेरे पर गया, क्योकि परीक्षा-फल जानने की उत्सुकता थी। वहाँ उन्होने रोक लिया। कचहरी सवेरे सात बजे से हुआ करती थी। उनके साथ मै भी कचहरी गया। इसकी खबर मेरे बहनोई को नही मिली कि मै वहाँ रुक गया हूँ। मै जब बाबू व्रजकिशोर के साथ बार-लाइब्रेरी मे पहुँचा तो बहुतेरे वकीलो ने मुझे घेर लिया। कुछ तो परीक्षाफल से खुश होकर बधाई देने लगे और कुछ डाक्टर गणेश के भोज का हाल पूछने लगे। वे यह जानना चाहते थे कि भोज मे कौन-कौन शरीक थे और मै कहाँ से आया हूँ। मैंने सब बाते कह दी। यह भी कह दिया कि कई दिनो से मै 'पैगा' मे अपने बहनोई के साथ था और वहाँ से ही लौटा हूँ। मुझे इसका पता नही था कि मैंने जो इस तरह सच्ची बाते बता दी उसका कुछ बुरा परिणाम होनेवाला है।

बात यह थी कि कुछ लोगो ने, जो भोज मे शरीक थे, आन्दोलन को देख सहम-कर, अपने घरवालो के जोर देने से, शरीक होना इनकार कर दिया था और अखबार मे छपी खबर को गलत बता दिया था। मेरे बहनोई से भी, ज्यो ही वह बार-लाइब्रेरी मे पहुँचे, सवाल हुए। उनको यह मालूम नही था कि मै डाक्टर गणेश के भोज मे शरीक हुआ था। उनको यह भी नही मालूम था कि मै जीरादेई न जाकर छपरे मे रुक गया था ओर उसी जगह बार-लाइब्रेरी मे कही औरो से बाते कर रहा था। बडे प्रतिष्ठित वकीलो की बात सुनकर वह भी कुछ सहम गये। उन्होने मेरी ओर से इनकार कर दिया और कह दिया कि मै अगर भोज मे गया होता तो उनको जरूर मालूम हो गया होता। तब लोगो ने उनसे कहा कि मै वही हूँ और मैंने ही भोज का हाल खुद कहा है। अब नौबत आई कि मुकाबला कराया जाय। पर मै वहाँ से बाबू व्रजकिशोर के डेरे पर चला गया और ट्रेन से जीरादेई चला आया। जब मै गाँव पहुँचा तो मैंने सुना, एक दिन पहले पूजा वगैरह होकर ब्राह्मण-भोजन और बिरादरी का भोज भी हो चुका है, जिसमे केवल गाँव के ही नही, बल्कि आसपास के गाँवो के कायस्थ भी—जो बराबर बिरादरी-भोज मे शरीक हुआ करते थे—शरीक हो चुके थे। गाँव मे तो कोई दिक्कत थी ही नही, क्योकि हम तीन ही घर कायस्थ थे, और तीनो घरो के लोगो ने बलिया के भोज मे शिरकत की थी। मैंने छपरे का हाल भाई से कहा। बाबू व्रजकिशोर का सन्देश भी कहा कि छपरे मे होनेवाली सभा मे अपने मतवाले लोगो

को पहुँचाना चाहिए और उस सभा मे समुद्र-यात्रा के पक्ष मे प्रस्ताव भी पास कराना चाहिए।

छपरे मे सभा की बडी तैयारियाँ हुई। सारे जिले के कायस्थ बुलाये गये। काशी से महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री व्यवस्था देने आये। साथ ही, इस बात की कोशिश होने लगी कि उन लोगो से, जिन्होंने भोज मे खाया था, या तो इनकार कराया जाय या प्रायश्चित्त। हम लोग सभा के दिन छपरे नही गये। पर सुना कि बहुत कायस्थ जमा हुए। जिला दो भागों मे बँट गया था। पूरब छपरा दोनो विरोधी बडे वकील साहबो के साथ मे था, और पच्छिम छपरा का—जहाँ के हम लोग रहनेवाले थे—यह दावा था कि हम पक्ष मे है। बात यह है कि अधिक बिरादरी के लोग विरोधी थे। कुछ थोड़े लोग जो पक्ष मे थे, अधिकांश पच्छिम छपरा के थे, जिनमे हमारा घर प्रतिष्ठित समझा जाता था। छपरे मे, पचमदिर मे, जो एक कायस्थ का ही बनवाया हुआ सबसे बडा और बहुत सुन्दर मन्दिर उस शहर मे है, सभा हुई। वयोवृद्ध और प्रसिद्ध वकील साहब सभापति होनेवाले थे। जब लोग पहुँचे तो हमारे दल के एक आदमी ने उठकर प्रस्ताव कर दिया कि सभापति बाबू सरस्वतीप्रसाद वकील बनाये जायँ। यह सज्जन भोज मे शरीक हो चुके थे, पश्चिम छपरा के रहनेवाले थे, पर गोरखपुर मे वकालत किया करते थे। कुछ लोगो ने प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। जिन्होने सभा बुलायी थी वे कुछ भौचक-से रह गये। उन्होने तो बडे वकील साहब का नाम सभापति होने के लिए नोटिस मे छाप दिया था। सुधारक दल के जो लोग मौजूद थे, उन्होने शोर किया कि बाबू सरस्वतीप्रसाद सभापति बनाये जायँ। दूसरे लोगो को इस विरोध की आशा नही थी। वह समझते थे कि सब लोग उनके ही साथ है। वास्तविक अधिकाश क्या, बहुमत जोरो से उस सभा मे भी उनके साथ था। पर वह बहुत-कुछ डर गये। इधर से जोर होने लगा कि सभापति के चुनाव के बारे मे मत लिया जाय। इससे वह और भी घबराये। उन्होने मत लेने से इनकार कर दिया और कहा कि जिनका नाम प्रकाशित कर दिया गया है वही सभापति होगे। वह सभापति के स्थान पर बैठने के लिए चले। इधर से बाबू सरस्वतीप्रसाद भी चले और उन्होने कहा—वकील साहब, सभा ने तो मेरा नाम सभापति के लिए प्रस्तावित किया है, मै सभापति हूँ, आप कैसे वहाँ बैठ सकते है। इससे और घबराहट फैली। उन्होने कह दिया कि ये लोग सभा नही होने देगे, इसलिए सभा बर्खास्त की जाती है।

सुधारक दल तुरन्त उठ खडा हुआ और खुशियाँ मनाता और यह घोषित करता हुआ कि उसकी जीत हो गयी, वहाँ से चल पड़ा। सुधारको को तो यही कराना था, क्योकि वे जानते थे कि सचमुच अगर मत लिया जाता तो वे जरूर हार जाते। उस दिन की सभा बर्खास्त हुई। दूसरे दिन फिर सभा की गयी। वहाँ प्रस्ताव पास किया गया कि जितने लोगो ने भोज खाया था वे जातिच्युत किये गये। उनके साथ खान-पान, शादी-विवाह, सब बन्द कर दिया गया। उनके नाम भी प्रस्ताव मे दे दिये गये। उस प्रस्ताव को छपवाकर जिला-भर मे बाँटने का प्रबन्ध किया गया। सुधारको की

ओर से कहा गया कि यह सभा तो पूरी बिरादरी की थी नही और हमारे (सुधारको के) चले जाने के बाद दूसरे दिन की गयी थी, इसलिए इस प्रस्ताव को हम नही मानते और जिला-भर की बिरादरी उसे स्वीकार नही करती। अगर सब लोग सचमुच इस प्रस्ताव को मानते है तो फिर सभा करके जिला-भर की बिरादरी बुलायी जाय और प्रस्ताव पास कराया जाय। इस प्रकार की गडबडी मच गयी और अखबारो मे दोनो पक्षो के बयान भी शायद निकले। फलत जाति-बहिष्कार बहुत बलवान न हो सका।

जहाँ तक हम लोगो का सरोकार था, जाति-बहिष्कार का कोई प्रश्न उठा ही नही; क्योकि हमारे आस-पास के सब लोग हमारे साथ खाते-पीते रहे और ब्राह्मण-पुरोहित ने कभी कोई दिक्कत न होने दी। हाँ, बाबूजी को एक बार कुछ दुख हुआ। मै कह चुका हूँ कि हमारे बहनोई छपरे के नजदीक के रहनेवाले थे। उनके यहाँ इस बहिष्कार-आन्दोलन का कुछ जोर रहा। छपरे के लोगो ने उन पर बहुत जोर डालकर एक मरतबा एक बहुत बुरा पत्र बाबूजी के पास उनसे लिखवाया। एक आदमी पत्र लेकर आया, हम लोगो से मुलाकात हुई। उसने कहा कि बाबूजी को ही पत्र देने का हुक्म है, हम लोगो को नही। हम लोग समझ गये कि उस पत्र मे कुछ इसी सम्बन्ध की बाते होगी। बाबूजी ने पत्र पढा, और कुछ सहम गये। हमारे वही एक बहनोई जीते थे। दूसरी बहन तो बहुत पहले ही विधवा हो चुकी थी। इनके भी कोई सन्तान नही थी, अपने घर मे अकेला थे। न कोई दूसरा भाई, न सगा-सम्बन्धी। जो कुछ सम्बन्ध था, हम लोगो के साथ ही था। इन्होने पत्र मे लिखा था कि इनका कोई दूसरा सम्बन्धी तो था ही नही, अब हम लोगो से भी सम्बन्ध टूट जायगा! अगर हम सम्बन्ध कायम रखना चाहते है तो या तो भोज मे शरीक होना इनकार करके घोषणा कर दे या प्रायश्चित्त करे।

बाबूजी घबराये, पर उनका यह विचार नही हुआ कि हम लोगो ने कोई गलती की है। उन्होने इतना ही कहा कि हम लोग अगर खुद भोज मे शरीक होकर इस झगडे मे न पडे होते तो वह शायद दूसरो पर असर डालकर इस काम मे अधिक मदद कर सकते। माँ ने जब खबर सुनी कि ऐसा पत्र आया है तो उन्होने साफ-साफ कहा—"इनकार की बात तो हो ही नही सकती है—वह तो बिलकुल झूठी बात होगी और ऐसा करने से भला नही होगा। हाँ, प्रायश्चित्त की बात होगी तो समय आने पर देखा जायगा।"

इसी मजमून का उत्तर भेज दिया गया। उन दिनो मेरी बहन के आने की भी कोई बात नही थी, इसलिए यह बात आगे नही बढी। बाबूजी छपरे गये। एक मुकदमा चल रहा था। उसमे हमारे वकील वही वयोवृद्ध वकील थे जो इस आन्दोलन के नेता थे। उन्होने प्रायश्चित्त पर बहुत जोर दिया। बाबूजी ने यह कहकर बात टाल दी कि हम लोग कलकत्ते मे है, जब आवे तो सलाह करेगे।

उन लोगो ने इस तरह, जहाँ तक हो सका, परोक्ष रीति से जोर डाला। सार्वजनिक सभा करने का प्रयत्न भी किया। सीवान मे, जो हम लोगो के नजदीक का शहर है, एक सभा की गयी जिसमे छपरे की सभा के निश्चय को घोषित करना

था। एक सज्जन छपरे से भेजे गये कि सीवान के जिन लोगो ने भोज खाया था उनके जाति-बहिष्कार का फैसला बाजाब्ता सभा मे सुना दे। इस सभा मे हम लोग भी गये। परन्तु सीवान की बिरादरी मे बहुत लोग हम लोगो के साथ थे, क्योकि बाबू व्रजकिशोर, बाबू सरस्वतीप्रसाद और हम लोग—सब इसी (सीवान) सब-डिवीजन के रहनेवाले थे। उस सभा मे हम लोगो ने प्रस्ताव कर दिया कि छपरे की सभा को हम लोग नही मानते—सीवान की बिरादरी हम लोगो के साथ है।

हमारे गाँव के दो आदमी, जमुनाप्रसाद और गगाप्रसाद जो हम लोगो के साथ बलिया भोज मे शरीक हुए थे, छपरे मे पढ़ते थे। वे लोग, कुछ और लडको के साथ, एक मकान मे रहते थे। उनको कुछ कष्ट उठाना पडा। उस 'मेस' के लडके उनका छुआ जल नही लेते थे—उनके साथ खान-पान भी नही करते थे। ब्राह्मण रसोई बनाकर उनके बर्त्तन मे अलग से भोजन दे देता। उन्होने इस अपमान को खुशी-खुशी बर्दाश्त किया। कुछ महीनो तक यही सिलसिला चला। पर आहिस्ता-आहिस्ता जोर कम पड गया। सब एक साथ हो गये। छपरे मे विरोधियो के मुखिया लोगो का भी सम्बन्ध ऐसे घरो मे हो गया जो समुद्रयात्रा के पक्ष मे थे। उनके अपने घर के भी कुछ लोग उनके विरुद्ध हो गये। उन लोगो ने अपने जीवन मे तो इस बात को निबाह दिया, पर बधन जो टूटा वह फिर जुटा नही। समुद्रयात्रा के लिए कायस्थो का रास्ता खुल गया।

१२—छात्र-सम्मेलन और कांग्रेस

बी० ए० पास करके मै कलकत्ते मे एम० ए० और बी० एल० पढने लगा। स्वदेशी आन्दोलन उन दिनो बहुत जोरो से चल रहा था। हम कुछ बिहारी छात्रो पर भी, जो कलकत्ते मे पढते थे, उसका असर पडता ही था। हम लोग बिहारी क्लब मे अक्सर बैठते, मिलते-जुलते और विचार-विनिमय किया करते थे। हम लोगो के दिल मे जोश आया कि बगाल के विद्यार्थी इस प्रकार स्वदेशी का प्रचार कर रहे है, अगर हमारे बिहार मे भी छात्रो का कोई सगठन होता तो उसके द्वारा स्वदेशी का प्रचार हो सकता। हमने एक गीत भी बनवाया जिसकी कुछ प्रतियाँ छपवाकर जहाँ-तहाँ बँटवायी। इसी के बँटवाने मे सगठन का अभाव और भी मालूम हुआ।

हम लोगो ने सोचा कि बिहार के छात्रो का एक सम्मेलन किया जाय। बिहारी क्लब के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा गया। उसे केवल छात्रो ने ही नही, बडो ने भी बहुत उत्साहपूर्वक स्वीकार किया। मै पटने भेजा गया। वहाँ पहले छात्रो से और फिर बडे लोगो से मै मिला। उनमे प्रमुख थे मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा और (स्वर्गीय) बाबू महेशनारायण, जो उन दिनो 'बिहार-टाइम्स' का सम्पादन करते थे। इन सब लोगो ने सहानुभूति दिखलाई। निश्चय हुआ कि पटने मे ही पहला सम्मेलन किया जाय और नामी बैरिस्टर मिस्टर शर्फुद्दीन सभापति बनाये जायँ। पटने के छात्रो ने एक स्वागत-समिति बनाकर सब प्रबन्ध भी किया।

पहला सम्मेलन पटना-कालेज के बड़े हॉल मे हुआ। बिहार के सभी कालेजो और अनेक स्कूलो के छात्र उस सम्मेलन मे बड़े उत्साह के साथ शरीक हुए। सम्मेलन के उद्देश्य बतलाने का भार मेरे ऊपर दिया गया। मैंने एक लम्बा भाषण अँगरेजी मे लिख कर तैयार किया था, उसे पढ सुनाया। औरो के भाषण भी अक्सर अँगरेजी मे ही हुए। सम्मेलन मे निश्चय हुआ कि पहले उन शहरो मे, जहाँ कालेज है और फिर जहाँ-जहाँ स्कूल है, छात्र-समितियाँ कायम की जायँ, जो सम्मेलन से सम्बद्ध रहे। एक बडी नियमावली तैयार की गयी। उसके अनुसार सारे बिहार के छात्रो की प्रतिनिधि-स्वरूप एक स्थायी समिति पटने मे कायम हुई। इसमे सभी जगहो के छात्रो के प्रतिनिधि लिये गये। यही सब छात्र-समितियो पर नियत्रण और सम्मेलन का काम साल-भर जारी रखती थी।

मुझे याद है कि नियम बनने के समय दो प्रश्नो पर आपस मे बहुत वहस हुई। एक प्रश्न था कि यह सम्मेलन राजनीति मे भाग लेगा या नही। इसपर छात्रो मे ही बहुत मतभेद था। बडे लोगो मे तो सभी इसके विरोधी थे। अन्त मे यह तय हो गया कि सम्मेलन किसी प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन मे भाग नही लेगा, चाहे वह राष्ट्र-वादी हो अथवा राजभक्तिप्रचारक या और किसी प्रकार का (Nationalist,, Loyalist or any other)। हमने यह निश्चय करके, अब मालूम होता है, बुद्धिमानी दिखलाई। बिहार कभी बगाल का ही हिस्सा था। सूबा अलग नही हुआ था। बिहार शिक्षा मे बहुत पिछडा हुआ था। सार्वजनिक जीवन तो प्राय नही के बराबर था। विशेषकर छात्र तो बाहर का कुछ जानते ही नही थे। काग्रेस के पक्षपाती थोडे ही लोग थे। अभी तक बिहार का कोई राजनीतिक सगठन भी अलग नही था, न बिहार की अलग काग्रेस-कमिटी थी और न बिहार-राजनीतिक-सम्मेलन (Bihar Provincial Congress) की स्थापना हुई थी। यह पहला ही सगठन था जिसमे सारे बिहार के लोग, चाहे वे नववयस्क छात्र ही क्यो न हो, अलग एकत्र होकर अपने प्रश्नो पर विचार करने बैठे थे। ऐसी अवस्था मे अगर हम सँभलकर न चलते तो शायद यह सगठन होने ही नही पाता।

उस समय तक भारतवर्ष मे कही भी दूसरा छात्र-सम्मेलन नही हुआ था। एक प्रकार से हम लोगो को एक नया सगठन, जिसका कोई नमूना सामने नही था, बनाना था। और, दूसरा प्रश्न, जिसपर मतभेद था, यह था कि इस सम्मेलन मे केवल विहारी छात्रो का ही सगठन रहे या इसमे बगाली छात्र भी शामिल किये जायँ। इस सम्बन्ध मे भी बहुत मतभेद रहा। मुझे याद है कि कई बरसो तक वार्षिक सम्मेलन मे प्रस्ताव आता रहा कि बिहारी छात्र-सम्मेलन मे बगाली भी लिये जायँ, पर वह कभी स्वीकार नही हुआ। सम्मेलन का नाम तो शुरू से ही था बिहारी-छात्र-सम्मेलन। कई बरसो के बाद नियमावली मे जोड दिया गया कि 'बिहारी छात्र' से बिहार मे शिक्षा पानेवाले सभी छात्र समझे जायँ। हम जो कलकत्ते के विद्यार्थी थे, शुरू मे ही इसके पक्ष मे थे, पर दूसरे इसका विरोध करते थे।

छात्रो का सगठन बहुत अच्छा हो गया। प्राय सभी शहरो मे इसकी शाखाएँ हो गयी। कलकत्ते मे तो बिहारी-क्लब इसकी शाखा बन ही गया, हिन्दू-युनिवर्सिटी की स्थापना के बाद वहाँ के बिहारी छात्रो ने भी एक शाखा बना ली। सभी शाखाओ मे प्राय प्रति सप्ताह सभा होती, जिसमे छात्र विविध विषयो पर लेख पढते, भाषण करते और खेल-कूद मे भाग लेते। इसके लिए जहाँ-तहाँ क्लब कायम किये गये। सालाना जल्से मे निबन्धो और भाषणो की प्रतियोगिता होती। सबसे अच्छे लेखो, भाषणो और खेल-कूद के लिए इनाम दिये जाते। कालेज के लडको की अलग प्रतियोगिता होती, स्कूल के छात्रो की और लडकियो की अलग। लडकियो को लेख और भाषण के अलावा सीना-पिरोना इत्यादि ` प्रोत्साहन देने के लिए अलग इनाम दिये जाते। इस प्रकार साल-भर काम चलता। सम्मेलन, दसहरे की हरेक छुट्टी मे, कही न कही बिहार के किसी शहर मे होता। इस सालाना सम्मेलन के सभापति-पद को बिहार और बाहर के बहुत बडे-बडे लोगो ने सुशोभित किया है। जैसे बिहार के मिस्टर शर्फुद्दीन, मिस्टर हसन इमाम, डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, बाबू परमेश्वर लाल, बाबू दीपनारायण सिंह, बाबू व्रजकिशोर प्रसाद प्रभृति। बाहर के लोगो मे श्रीमती एनी बेसेण्ट, श्रीमती सरोजिनी नायडू, महात्मा गाधी, मिस्टर एण्डरूज प्रभृति।

यह सम्मेलन १९०६ मे कायम हुआ और प्रति वर्ष अपना सालाना जलसा १९२० तक, जब असहयोग-आन्दोलन शुरू आ, करता रहा। उसके बाद यह कुछ शिथिल पड गया, क्योकि इसके सभी उत्साही काम करनेवाले उस महान आन्दोलन मे लग गये। फिर भी इसे पुनर्जीवित करने के प्रयत्न किये गये है। पर इसमे वह पुराना जीवन और तेज फिर नही आ सका। अब जो सगठन है वह एक प्रकार से नया सगठन है, जिसके कार्यकर्त्ता शायद सगठन का हाल जानते भी न होगे। जितने दिनो तक यह काम करता रहा, बडे उत्साह और लगन के साथ सारे सूबे के छात्र इसमे शरीक होते रहे। इसी के द्वारा छात्रो ने सगठन को क्रियात्मक रूप से सीखा, बहुतो ने भाषण करना सीखा। उन पन्द्रह बरसो मे जितने भी जानदार और उत्साही युवक बिहार मे हुए, सब इससे ही अनुप्राणित हुए। सबने अपने निजी स्वार्थ के अलावा देश-विदेश की कुछ बाते सीखी और उनके लिए कुछ थोडी-बहुत त्याग की प्रवृत्ति भी पाई। जो कुछ उन्होने सीखा या पाया उससे देश को लाभ भी पहुँचा। जब महात्मा गाधी बिहार मे आये, इस छात्र-सम्मेलन के भूतपूर्व कार्यकर्त्ता ही उनके साथ हुए और असहयोग-आन्दोलन मे जितने आगे बढे, इसी के उत्पादित फल थे। आज प्राय वे ही लोग सूबे के नेतृत्व का भार वहन कर रहे है, जिन्होने छात्र-सम्मेलन मे ही दीक्षा पाई थी।

असहयोग-आन्दोलन ने छात्रो से बहुत बडे त्याग की माँग की। छात्र-सम्मेलन इसके लिए तैयार नही था। प्रस्ताव तो पास हो गया, पर थोडे ही छात्र अन्त तक उस आन्दोलन मे ठहर सके। जो ठहरे वे अधिकतर सम्मेलन के ही कार्यकर्त्ता थे। दूसरे जो वकील-वर्ग मे से आये उनमे भी अधिक सम्मेलन के ही कार्यकर्त्ताओ मे से थे। १९२० तक अपना काम इस प्रकार से पूरा करके सम्मेलन मरता-जीता जीवन बिताने

१९०६ मे देशरत्न

लगा। इसने एक प्रकार से अपना काम पूरा कर दिया था। नई जागृति, नया जीवन सारे सूबे मे पैदा कर दिया था और भविष्य के लिए खेत तैयार करके बीज भी बो दिया था, जिसका फल असहयोग-आन्दोलन को मिला और आज तक सूबे को मिल रहा है।

१९०६ के दिसम्बर मे काग्रेस कलकत्ते मे होनेवाली थी। मै काग्रेस की खबर तो कुछ पहले से ही पढा करता था, पर अभी तक काग्रेस देखने का सौभाग्य और सुअवसर मुझे नही मिला था। जब १९०५ के दिसम्बर मे काग्रेस बनारस मे हुई, मै बी० ए० परीक्षा के फेर मे था और नजदीक होने पर भी वहाँ नही जा सका था। १९०६ की काग्रेस मे पहले-पहल स्वयसेवक (वालटियर) की हैसियत से मै शरीक हुआ। काग्रेस का अधिवेशन बडे जोश का हुआ। गरमदल और नरमदल का आवि-र्भाव हो चुका था। गरमदल के नेता समझे जाते थे लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष प्रभृति। नरमदल के नेता थे सर फिरोजशाह मेहता, गोखले प्रभृति। जहाँ तक मै समझ सकता था, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पडित मदनमोहन मालवीय बीच का स्थान रखते थे। आपस के झगडे को मिटाने या कम करने के लिए दादाभाई नौरोजी विलायत से बुलाकर सभापति बनाये गये थे। सौभाग्य से मुझे काग्रेस-पडाल की डयूटी मिली थी। सलिए मै विषयनिर्धारिणी समिति मे सब बहसे सुन सका था। काग्रेस-पडाल मे अधिवेशन के समय पहले दिन मै कुछ दूर पर रखा गया था, जिससे सभापति का भाषण नही सुन सका। मैने देखा कि अधिकाश स्वयसेवक अपने स्थान को छोड़कर भीतर चले गये। मैने ऐसा करना उचित नही समझा और अपने नियुक्त स्थान पर ही डटा रहा। सरोजिनी देवी, मालवीय जी और मिस्टर जिन्ना के भाषण पहले-पहल इसी काग्रेस मे सुने। काग्रेस के साथ प्रदर्शनी भी बहुत जबरदस्त हुई थी। अधिवेशन देख करके काग्रेस के बारे मे श्रद्धा अधिक बढ़ गयी, पर अभी कई बरसो तक मुझे इसमे बाजाब्ता शरीक होने का अवसर नही मिला। यह अवसर मिला पहले-पहल १९११ मे, जब काग्रेस फिर कलकत्ते मे हुई, उसी समय से आज तक मै अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी का मेम्बर रहा हूँ और थोडा-बहुत काग्रेस का काम करता आया हूँ।

उन दिनो काग्रेस का सगठन कुछ ढीला ही था। बिहार मे तो बहुत थोडे ही लोग इससे सम्बन्ध रखते थे। वह भी अधिकतर वकील लोग ही हुआ करते थे। एक प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी १९०७ या १९०८ मे ही अलग बन गयी थी, जो बगाल की प्रान्तीय कमिटी से जुदा थी। सूबा तो १९१२ मे अलग हुआ। पर यह प्रान्तीय कमिटी कुछ बहुत नियमित रूप से नही बनती थी। जो प्रतिनिधि होते थे वे भी कोई नियमित रूप से चुने नही जाते थे। एक सभा होती थी जिसमे कुछ लोग चुन लिये जाते थे। अधिवेशन मे पहुँच जाते तो ठीक, अगर नही पहुँच पाते, तो जो लोग पहुँच जाते उनको ही मत्री प्रतिनिधि मान लेते और उनके नाम से प्रमाणपत्र दे देते। इस तरह से बिहार कभी खाली नही जाता। हर साल कुछ लोग अधिवेशन मे शरीक जरूर हो जाते। जो

प्रतिनिधि जाते वही उन दिनो के नियमानुकूल अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी के मेम्बर चुन लेते। मै १९११ मे अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी का मेम्बर इसी तरह से चुना गया; काग्रेस की कोई खास सेवा नही की थी। उसी साल मै पहले-पहल प्रतिनिधि बना था। पर छात्र-सम्मेलन के कारण और युनिवर्सिटी की परीक्षाओ मे अच्छा फल होने के कारण बिहार के सभी लोग मुझे जानते थे। सबने एक छलांग मे ही मुझे अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी मे पहुँचा दिया। यह सब बाते १९२० के बाद बहुत कुछ बदल गयी। पर इसका जिक्र आगे आवेगा।

१३—विदेश-यात्रा का निष्फल प्रयत्न

डॉन सोसाइटी और स्वदेशी आन्दोलन का असर मेरे ऊपर यह पडा कि मेरे मन मे आया, देश के लिए किसी तरह कुछ करना चाहिए। भाई के साथ का भी असर कुछ वैसा ही पडता रहा था। पर अभी तक यह स्पष्ट नही हुआ था कि यह इच्छा किस प्रकार पूरी होगी और न यही साफ सूझता था कि कौन-सी सेवा की जाय और इसके लिए क्या करना चाहिए। यह एक इच्छा मात्र थी जो कभी-कभी उठा करती और फिर इधर-उधर की झझटो मे विलीन हो जाती। छात्र-सम्मेलन का सगठन एक रास्ता मिला था, पर वह भी स्थायी होगा या उसमे भी परिवर्तन आ जायगा, कुछ समझता न था और न कह सकता था। हाँ, एक बात जी मे आ गयी थी, वह यह थी—सरकारी नौकरी नही करनी चाहिए। इसलिए बी० ए० पास करने के बाद डिपटी-मजिस्ट्रेटी के लिए दर्खास्त नही दी। भाई भी नही चाहते थे कि यह मै करूँ। बाबूजी की इच्छा थी, कि मै वकालत करूँ। भाई दुर्भाग्यवश एम० ए० नही पास कर सके। घर से अधिक खर्च लाकर कलकत्ते मे या और कही अब रहना नही चाहते थे। वह डुमरॉव-राज-स्कूल मे शिक्षक का काम करने लगे। मै डिप्टीगरी का खयाल छोडकर कलकत्ते मे एम० ए० बी० एल० पढने लगा था।

छात्र-सम्मेलन हो जाने के बाद मुझ पर यह एक धुन सवार हो गयी। यह नही कह सकता कि यह विचार कैसे उठा और किसके प्रोत्साहन से; पर यह खयाल हुआ कि अब किसी प्रकार विलायत जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा पास करनी चाहिए। सरकारी नौकरी की इच्छा नही थी, तो भी न मालूम मन को कैसे सन्तोष हो गया कि यह करने योग्य है। इसमे भाई ने भी प्रोत्साहन दिया। घर से इतने रुपये मिल नही सकते थे कि विलायत का खर्च जुट सके, इसलिए कोई दूसरा ही प्रबन्ध होना चाहिए। मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने जब यह सुना कि मेरी ऐसी इच्छा है तो खुश हुए और बाबू व्रजकिशोर तो इसके लिए हमेशा तैयार ही रहते थे। डॉक्टर गणेश के भोज के बाद बाबू अम्बिकाचरण को उन्होने जापान जाने मे बहुत प्रोत्साहन दिया था। मेरे लिए विलायत जाना उन्होने एक प्रकार से अनिवार्य्य समझा और लग गये रुपये जुटाने की धुन मे। मुंशी ईश्वरशरण भी इसमे दिलचस्पी लेने लगे। आरा के रायबहादुर हरिहरप्रसाद ने कुछ रुपये दिये। सोचा गया कि मेरे

चले जाने के बाद और रुपये भाई इन लोगों की मदद से अथवा घर से किसी प्रकार भिजवाते रहेगे। इस बात का डर हम लोगो को था कि बाबू जी और माँ इस बात को पसन्द नही करेगी और घर मे बहुत बावेला मचेगा। मै इस सिलसिले मे पटने और इलाहाबाद भी गया। भाई भी साथ थे। बाबूजी से यह बात गुप्त रखी गयी, क्योकि उनकी आज्ञा मिलने की कोई आशा नही थी। हमने जाने के लिए दिन भी मुकर्रर कर लिया। कलकत्ते मे कपडे भी बनवा लिये।

उस समय तक अँगरेजी किते का कोई कपडा मैने कभी पहना नही था। पर विलायत मे दूसरे कपडे तो पहने नही जा सकते, यही धारणा थी। इसलिए अँगरेजी किते के कपडे एक अँगरेजी दूकान मे ही बनवाये गये। यही एक अवसर था जब मैने विदेशी कपडे, १८९८ के बाद से आज तक, खरीदे है। पासपोर्ट के लिए दर्खास्त दी गयी। कार्रवाई हो रही थी। हम लोग समझते थे कि यह बात पूरी हो जायगी, जाने के पहले बाबूजी को खबर नही मिलेगी और घर की ओर से कोई बाधा नही आवेगी। इस षड्यत्र मे कालेज के साथियो मे से तीन-चार और थे, जिनमे एक मेरे बिहारी मित्र शुकदेवप्रसाद वर्मा थे और बाकी बगाली लोग थे। मेरे अपने लोगो मे भाई, बाबू व्रजकिशोर, मिस्टर सिन्हा, मुंशी ईश्वरशरण और रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंह थे।

भाई और बाबू व्रजकिशोर के साथ मै इलाहाबाद गया। मुंशी ईश्वरशरण के साथ ठहरा। वहाँ मेरी ससुराल के लड़के कालेज मे पढ रहे थे। उनमे किसी से मुलाकात तो नही हुई, पर उनको किसी न किसी तरह खबर लग गयी। वे खोजते-ढूँढते मुंशी ईश्वरशरण के यहाँ पहुँच गये। वहाँ पर लोगो ने कहा दिया कि मै नही हूँ। उन्होने घर पर तार दे दिया कि मै छुपकर विदेश जा रहा हूँ और उस दिन प्रयाग मे हूँ। तार पाते ही बाबूजी और घर के सब लोग बहुत घबराये। बाबूजी अस्वस्थ थे, इसलिए वह नही निकल सकते थे, पर मेरी माँ और बहन सीधे इलाहाबाद चली गयी। उन लोगो की यह गलत धारणा थी कि मै इलाहाबाद से ही चला जानेवाला था। मै तो अभी सलाह-बात करने और रुपयो के जुगाड़ मे गया था। वहाँ एक दिन रहकर वहाँ से सीधे फिर कलकत्ते चला आया था।

जब माँ इलाहाबाद पहुँची तो मै वहाँ नही था। मुंशी ईश्वरशरण के यहाँ तलाश करने पर उनको खबर मिल गयी कि मै कलकत्ते वापस चला गया। मुझे कलकत्ते मे इन बातो की खबर नही थी। वहाँ तार पहुँचा कि बाबूजी बीमार है। मै वहाँ से उनसे मिलने घर आया तो सब बाते मालूम हो गयी। वह सचमुच बीमार थे, पर अभी बीमारी कुछ कडी नही थी; दुःखित जरूर थे। घर मे रोना-पीटना पड गया था। भाई भी आये। बाबूजी उनसे बहुत रज थे कि मुझे विदेश भेजने का षड्यत्र वही कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही सबकी करुणा उमड़ पडी। खूब जोरो से रोआ-रोहट मच गयी। मुझे जाने से साफ-साफ मना कर दिया। कह दिया कि मै अगर विलायत गया तो वे नही बचेगे। जो बाते हुई थी, मैने सब साफ-साफ कह दी। वादा भी कर

दिया कि नही जाऊँगा। जब बाबूजी को मेरी बात पर विश्वास हो गया तब फिर उन्होने कलकत्ते जाने की इजाजत दे दी।

कलकत्ते मे, जब एक प्रकार से सब तैयारियाँ हो गयी थी, एव छोटी घटना घटी जिसका उल्लेख करना अच्छा होगा। इस विलायत-यात्रा के जनून मे हमारे वे सब साथी शरीक थे जिनको यह खबर मालूम थी। सबकी इच्छा थी कि वे भी जायँ, पर उनका सुयोग अभी जुटा नही था। हम सब यही सोचते थे कि मेरे जाने के बाद वे भी किसी न किसी उपाय से कुछ दिनो बाद वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करेगे। एक दिन लॉ-कालेज से निकलने पर एक साथी ने राय दी कि चलो एक ज्योतिषी से इस विषय मे परामर्श कर ले। वह एक ज्योतिषी को जानता भी था। वहाँ हम लोग चले गये। वह एक बूढे ब्राह्मण थे। उनकी अवस्था प्राय. ६० बरस की होगी। अपने घर मे बैठे थे। हम लोगो के जाते ही थोडी देर के बाद उन्होने कहा, मै समझ गया, तुम लोग किस काम के लिए आये हो। तब हममे से किसी ने प्रश्न पूछना शुरू किया। प्रश्न तो एक ही था—विलायत-यात्रा सफल होगी? प्रश्न हमने कहा नही, अपने मन मे ही रखा। मुझको उन्होने उत्तर दिया कि अभी नही, बहुत दिनो के बाद तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। शुकदेव को उन्होने उत्तर दिया, तुम्हारी इच्छा अभी बहुत जल्दी पूरी होगी। तीसरे भाई से कहा कि तुम्हारी इच्छा भी कुछ देर बाद पूरी होगी। चौथे साथी से कहा कि तुम्हारी यह इच्छा नही पूरी होगी।

हम लोगो ने एक रुपया दिया। प्रणाम करके वापस चले। रास्ता भर इसी का मजाक उडाते आये कि यह बूढा बिलकुल कुछ जानता नही। मेरी तो सब तैयारी हो चुकी है और मै नही जाऊँगा, और शुकदेव जिनके सम्बन्ध मे अभी कोई बात नही हुई है, बहुत जल्द चन्द दिनो के अन्दर ही चले जायँगे—यह कैसे हो सकता है! हम लोग हँसते-हँसते मजाक उडाते वापस आये। उसके बाद ही घर से तार आ गया। मेरा जाना एकबारगी रुक गया। जब मै घर से वापस आया और यह बात तय हो गयी कि मै नही जाऊँगा तब शुकदेव के जाने की बात उठी। मेरे कपडे और मेरे रुपये लेकर एक दिन वह चले ही गये! कपडे और रुपये इतने गुप्त तरीके से होस्टल मे रखे गये थे कि हम लोगो के किसी साथी को भी इसकी खबर तक न थी। शुकदेव के बारे मे भी डर था कि कही उनके पिताजी भी इसी तरह रोक न दे। इसलिए वह भी गुप्त रखा गया। उनको कही जाना नही था, किसी से मिलना नही था। इसलिए उनकी बात एकबारगी गुप्त रही। जाने के दिन साथियो से कह दिया कि घर जा रहे है। हम दो-तीन साथी स्टेशन पर गये। उन्हे रेल पर चढाकर बम्बई के लिए रवाना कर दिया। जब तक बम्बई से जहाज रवाना हो जाने की खबर नही आई तब तक हम लोगो के दिल मे शक बना ही रहा कि शायद वह भी कही पकड़कर वापस न बुला लिये जायँ। पर जहाज खुल जाने के बाद ही उनके घर के लोगो को खबर मिली। यहाँ तक कि कलकत्ते मे निकट सम्बन्धी लोगो को भी, जिनसे बहुत घनिष्ठता थी, पता नही चला।

१४—विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति

शुकदेव को रवाना करके मै तो काग्रेस की वालटियरी मे बझ गया और काग्रेस के बाद फिर पढने मे लग गया। बाबूजी की बीमारी बढती गयी। कुछ दिनो मे उनकी हालत खराब होने लगी। खबर मिलने पर मै कलकत्ते से और भाई डुमराँव से जीरादेई पहुँचे। कुछ दिनो मे वह जाते रहे। मरने के पहले हम सबसे भेट हो गयी। उस वक्त तक भाई के दो लडकियो और एक लडका जनार्दन के जन्म हो चुके थे। मेरे भी मृत्युञ्जय का जन्म उसी साल मे हुआ था। पोता देखकर वह बहुत सन्तुष्ट रहते थे। जब बीमारी बढ गयी तब सबको इकट्ठा करके आशीर्वाद दिया।

बाबूजी की मृत्यु से घर मे गडबडी तो मची, हम सब दुखी हुए, पर मुझे एक बात की खुशी भी रही। वह यह कि अच्छा ही हुआ, मै विलायत नही गया। अगर गया होता और उनकी इस प्रकार मृत्यु हो जाती तो मै न मालूम कितना दुखी होता। मै फिर कलकत्ते चला गया। भाई डुमराँव चले गये। घर का इन्तजाम तो भाई कुछ पहले से ही देखा करते थे। अब सारा भार उन पर ही आ गया और वह डुमराँव से आकर जब-तब घर देख जाया करते। मेरे लिए खर्च वगैरह का भी इन्तजाम वही करते। उनको पढने के समय जब-तब खर्चे के लिए कुछ कष्ट भी उठाना पडा। घर से रुपये जाने मे देर हो जाया करती। पर मुझे उन्होने बाबूजी के रहने के समय, और उनकी मृत्यु के बाद भी, खर्च की चिन्ता मे कभी पडने नही दिया। उनकी अभिलाषा थी कि जब मै पढने मे तेज हूँ और सब परीक्षाएँ इस प्रकार सफलतापूर्वक पास करता हूँ, तो मुझे केवल पढने मे ही मन लगाने का पूरा मौका देना चाहिए और किसी तरह की दूसरी चिन्ता नही होने देनी चाहिए।

छात्रवृत्ति मुझे बराबर काफी मिलती गयी। उसको बाबूजी या भाई खर्चे मे कभी नही जोडते थे। खर्च के रुपये तो हमेशा अलग से ही भेजते रहे। उन रुपयो मे से मै कालेज की फीस दिया करता। बाकी रुपया किताब खरीदने मे ही लगता। बी० ए० पास करने पर दो छात्रवृत्तियाँ मिली, एक ५०) मासिक की जो हर महीने मिला करती। यह तो मै खर्च करता गया। दूसरी ४०) मासिक की जिसकी शर्त थी कि एम० ए० पास करने पर एक साथ जोडकर मिलेगी। जब एम० ए० पास करने के बाद एक साथ ४८०) मिले, तो विलायत-यात्रा के जनून मे जो कुछ कर्ज लिया था उसको अदा कर दिया।

पहले कह चुका हूँ कि एफ० ए० पास करने के बाद ही परीक्षा की ओर से कुछ उदासीनता-सी हो गयी। बी० ए० मे न मालूम कैसे फिर औवल हो गया। एम० ए० के समय यह उदासीनता और भी बढ गयी। इस बरस विलायत-यात्रा के जनून और बाबूजी की मृत्यु के कारण समय दूसरे कामो मे लगा। मन भी विचलित रहा। बाबूजी की मृत्यु १९०७ के फरवरी या मार्च महीने में हुई थी। परीक्षा अगले नवम्बर या दिसम्बर मे होनेवाली थी। गर्मी की छुट्टियो मे कुछ दिनो के लिए मै साथियो के

साथ खरसान (करसियाग Kurseong) चला गया। वही परीक्षा के लिए तैयारी की। एम० ए० की परीक्षा में मेरा स्थान औवल नही हुआ। मेरे ऊपर कई साथी आ गये। मुझे इसका कुछ अफसोस नहीं रहा, क्योंकि मैंने कोई आशा भी नही की थी और न कोई विशेष प्रयत्न ही किया था।

इसके बाद प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय। परीक्षा देकर मै भाई के पास डुमरांव चला गया। कुछ दिनो तक वही रहा। सोचता रहा कि वकालत की परीक्षा दूं या नहीं। उस ओर जी नही जाता था। यह भी महसूस होने लगा कि मै वकालत भी नही कर सकूंगा। कुछ अपनी शक्ति मे अविश्वास-सा हो गया था। सरकारी नौकरी न करने की तो पहले ही ठान ली थी।

इसी बीच मे एक मित्र बाबू वैद्यनाथनारायण सिंह ने लिखा कि मैं मुजफ्फरपुर-कालेज मे प्रोफेसर हो जाऊं तो बहुत अच्छा होगा। वह उस कालेज मे प्रोफेसरी कर रहे थे। उनके कहने से मैंने दर्खास्त भेज दी। मेरी नियुक्ति हो गयी। १९०८ की जुलाई मे, कालेज खुलने पर, मै वहाँ चला गया। उस काम में जी भी लगता था। वहाँ के लोगो से जान-पहचान भी हो गयी। पर भाई इससे सन्तुष्ट नही थे। आहिस्ता-आहिस्ता कालेज की आर्थिक स्थिति खराब होती जाती थी। अन्त मे निश्चय हुआ कि मै फिर वकालत की तैयारी करूँ। कालेज की पढाई तो मैंने खतम कर ली थी; पर परीक्षा नहीं दी थी। भाई की राय हुई कि मै फिर कलकत्ते जाऊँ और वहाँ परीक्षा देकर वकालत शुरू करूँ।

इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ। ससार मे प्रविष्ट होने का समय आ गया। जब उन दिनों का स्मरण आता है तो मालूम होता है, मानो वह सुख का युग था। कभी-कभी अफसोस होता है तो इसीका कि उसका जितना अच्छा उपयोग हो सकता था, नहीं किया गया। मुझे इस बात की सुविधा तो मिली थी कि भाई पथप्रदर्शक रहे। जितने अच्छे विचार या अच्छी प्रवृत्तियाँ दिल मे उठी, सबके बीज उन्होंने ही बोये थे। पढने के समय किसी प्रकार का कष्ट मै अनुभव न करूँ, इसका प्रबन्ध वह बराबर करते रहते। उन्होंने कभी यह नही महसूस करने दिया कि घर मे कोई आर्थिक कठिनाई है। कलकत्ते मे और उसके पहले छपरे मे अपने साथियो के साथ मेरा बराबर प्रेम रहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, किसी के साथ कभी किसी प्रकार की खटखट तक नहीं हुई, झगडे का तो कोई सवाल ही नही है, बल्कि सबके साथ प्रेम का ही व्यवहार रहा। थोड़े लोगो से तो बड़ी घनिष्ठता हो गयी, जो बराबर कायम रहीं। यद्यपि पढने में स्पर्धा और प्रतियोगिता काफी रही, तथापि कभी किसी ने मेरे साथ न तो चालाकी की, न धूर्तता ही की, न कभी किसी के साथ अन्यमनस्कता ही हुई। जहाँ-कही किसी को कोई दिक्कत या कठिनाई होती, हम बराबर एक दूसरे की मदद करते; बल्कि जो मेरे प्रतिस्पर्धी साथी थे, उनके साथ मिलकर परीक्षा की तैयारी की गयी। जब मै एफ० ए० की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था तो वह मित्र (जिसे मेरे साथ एण्ट्रेन्स मे दूसरा स्थान मिला था) और

मैं, दोनो एक साथ ही, परीक्षा की तैयारी करते रहे। इसी प्रकार और परीक्षाओ मे भी सब मिलजुलकर पढते रहे।

कलकत्ते जाना और इडेन-हिन्दू-होस्टल का जीवन मेरे लिए बहुत लाभदायक हुआ। कलकत्ते जाने से ही आँखे खुली। यह सोचना बेकार है कि वहाँ अगर नही गया होता तो क्या होता। पर मेरा विश्वास है कि अन्यत्र कही मुझे इतना लाभ नही पहुँचता। इडेन-हिन्दू-होस्टल मे रहने से बगाली साथियो मे हिलमिल जाने का जैसा सुअवसर मिला वैसा शायद दूसरी जगह कही रहने से नही मिलता। बगाली साथियो की स्मृति अत्यन्त सुखकर है। मुझे किसी के भी खिलाफ कोई भावना हुई ही नही और न उनमे से किसी ने मेरे साथ कभी कोई बुरा बर्ताव किया। कभी किसी ने कटु शब्द भी नही कहे। मै मानता हूँ कि उनके साथ जो दिन बीते वे अत्यन्त सुखद और लाभप्रद हुए। उनके साथ रहते-रहते, बिना प्रयास के ही, मैंने बँगला बोलना सीख लिया। आज भी मेरे बहुतेरे मित्र सारे बगाल मे भरे पडे हैं। बहुत दिनो के बाद जब मै असहयोग के दिनो मे बगाल मे दौरा करने गया तो जहाँ जाता वही कुछ पुराने जाने-पहचाने मित्र मिल जाते और पुरानी स्मृतियाँ जाग उठती।

जब मै काग्रेस-प्रेसिडेट हुआ, बिहार मे फिर १९३८–३९ मे बगाली-बिहारी-प्रश्न उठा। उसके बाद काग्रेस मे मुझे कुछ ऐसे काम करने पडे जो बगाल के कुछ लोगो को नापसन्द आये। मेरे ऊपर बहुत बौछारे हुई। कटु लेख लिखे गये। गाली-गलौज भी काफी मात्रा मे ई। पर मै अभी तक यह नही महसूस करता हूँ कि उनके साथ मेरा कोई द्वेष है या उनके प्रति कभी किसी दूसरे प्रकार की भावना दिल मे उठी भी हो। यह हो भी कैसे सकता है? इतने दिनो का सुन्दर सुहावना साथ, प्रेम का आदान-प्रदान, पुरानी सुखकर स्मृतियाँ, क्या यह सब मनुष्य भूल सकता है? कर्तव्य के वश अगर कभी किसी के साथ कोई ऐसा काम करना भी पडा जो उसको पसन्द न हुआ, तो मैं अपने दिल से जब पूछता हूँ, हमेशा यही उत्तर मिलता है कि मैंने कभी किसी का अनिष्ट, जान-बूझकर अनिष्ट करने की नीयत से, नही किया। जो हो, यह सब बाते तो भूल जायँगी, पर मेरे हृदय-पट से वे चित्र जो लडकपन मे ही वहाँ खिंचे थे, कभी न मिटे। वे सारी स्मृतियाँ कभी विलीन नही हो सकती और न मै उस देन को भूल सकता हूँ जो बगाल मे पन्द्रह बरसो के जीवन ने मुझे दी है।

कलकत्ते मे मेरी घनिष्ठता बहुत बिहारियो से भी हुई। जब मैं कलकत्ते मे पढने के लिए गया तो थोडे ही बिहारी छात्र वहाँ थे। आहिस्ता-आहिस्ता उनकी सख्या बढने लगी। पीछे तो वे खासी तायदाद मे वहाँ पहुँच गये। हम लोगो ने अपना बिहारी-क्लब वना लिया था जिसमे हर सप्ताह सब मिला करते थे। जाति-पाँति का झगडा इतना साथ लेते गये थे कि हिन्दू-होस्टल मे हमने अपने लिए अलग चौका रखा था जिसमे विहारी ब्राह्मण रसोई वनाता था। यद्यपि मैं डाक्टर गणेशप्रसाद के साथ भोज मे शरीक हुआ था, तथापि जाति का वन्धन वहुत मानता था। वह तो मेरी अपनी जाति के आदमी (कायस्थ) थे, किसी भी दूसरी जाति के आदमी का

छुआ हुआ कोई अन्न, जो अपने देश (बिहार) में नहीं खाया जाता है, वहाँ नहीं खाता। इतने दिनों तक वहाँ रहा, मगर बंगाली 'मेस' में कच्ची रसोई एक दिन भी नहीं खायी।

बिहारी साथियों में बहुतेरों से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया जो आज कई जिलों में बिखरे हुए अपने-अपने स्थान पर कुछ न कुछ कर रहे हैं। इसलिए जहाँ जाता हूँ कोई न कोई कलकत्ते का साथी मिल ही जाता है। घनिष्ठ मित्रों में चम्पारन जिले के शिकारपुर के श्री अवधेशप्रसाद और जगन्नाथप्रसाद, शाहाबाद के श्री शुकदेवप्रसाद वर्मा, भागलपुर के श्री कृष्णप्रसाद, राँची के बदरीनाथ वर्मा, बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी, डाक्टर साधु सिंह, डाक्टर राजेश्वरप्रसाद, वटुकदेवप्रसाद वर्मा, विन्ध्यवासिनीप्रसाद वर्मा प्रभृति थे। इनमें कितने चले गये और कितने आज भी कायम हैं। अवधेश बाबू की मित्रता बहुत फलदायक हुई और उससे लाभ हुआ। पीछे उनके साथ शादी का सम्बन्ध भी हो गया।

१५—वकालत की तैयारी

मुजफ्फरपुर-कालेज में ९-१० महीनों तक काम करके १९०९ के मार्च में मैं कलकत्ते फिर वापस चला गया। उन दिनों बी० एल० की दो परीक्षाएँ होती थीं। एक परीक्षा मैंने तुरत पास कर ली और दूसरी की तैयारी करनी थी। हाइकोर्ट में वकालत करने के लिए किसी वकील के साथ दो बरसों तक काम करना चाहिए था। एक छोटी-सी परीक्षा भी पास करनी पड़ती थी जिसमें जज लोग स्वयं कुछ पूछताछ कर लिया करते थे। अगर मैं चाहता, तो बी० ए० पास करने के बाद, किसी वकील के दफ्तर में नाम लिखाकर, १९०८ में ही ये दो साल पूरा कर सकता था। पर उस समय इस ओर ध्यान नहीं गया। इसलिए जब मैं १९०९ में कलकत्ते गया तो उस समय से दो बरस की उम्मीदवारी करनी थी। इच्छा हुई कि किसी अच्छे वकील के साथ काम सीखूँ। खाँबहादुर सैयद शमसुल्हुदा के पास मैं एक मित्र द्वारा पहुँचाया गया। उस समय उनके साथ दो उम्मीदवार थे और नियम के अनुसार दो ही हो सकते थे। उन्होंने कहा कि जगह खाली होते ही तुमको अपने साथ उमीदवार (आर्टिकल्ड-क्लर्क) रख लूँगा, तब तक दूसरे मित्र के साथ तुम्हें रखा देता हूँ। उन्होंने मुझे जहादुर रहीम जाहिद के साथ रखा दिया। ये सज्जन भी अच्छे वकील थे। कुछ दिनों के बाद विलायत गये और बारिस्टर होकर आये। पीछे हाइकोर्ट के जज भी हुए। बाद अपने नाम में उन्होंने 'साहोवर्दी' जोड़ दिया था, इसलिए जस्टिस साहोवर्दी के नाम से ही मशहूर हुए।

मेरा विचार था कि जब दो बरसों तक और कुछ काम नहीं है तो खूब परिश्रम करके कानून अच्छी तरह पढ़ लूँगा, जिससे मैं पहले बहुत डरता था, और वकील के यहाँ काम भी सीख लूँगा। मैं भाई पर खर्च का भार नहीं देना चाहता था। इस लिए शुरू में कुछ दिनों के लिए वहाँ सिटी-कालेज में प्रोफेसरी भी की; पर वह

भी थोडे ही दिनो के लिए। पीछे कुछ विद्यार्थियो को घर पर पढाया करता और उससे वहाँ का खर्च निकाल लेता। वह लड़का, जिसको मै पढाता था, जस्टिस दिगम्बर चटर्जी का पुत्र था। इस तरीके से, वकालत शुरू करने के पहले ही, एक जज से भी परिचय हो गया।

जब शमसुलहुदा साहब के यहाँ जगह खाली हुई, मै उनके साथ काम करने लगा। मैने उस समय का अच्छा उपयोग किया। मामूली तौर से जो लोग इस प्रकार नाम लिखा देते थे, बहुत थोडा ही काम किया करते थे और अन्त मे दो साल बिताकर नाम-निहादी परीक्षा पास करके वकील हो जाते थे। मैने ऐसा नही किया। मै रोज सवेरे शमसुलहुदा साहब के घर पहुँच जाता। वहाँ दस बजे तक उनके हाथ के मुकदमो के कागजो को पढता। उनपर अपना नोट, जैसा उन्होने बता दिया था, तैयार करता। कानून की नजीरे वगैरह पढकर उनके लिए सब कुछ तैयार कर देता। थोडे ही दिनो मे उन्होने देख लिया कि मै उनके लिए अच्छा नोट तैयार कर देता हूँ, जिससे उनको पूरी मदद मिल जाती है, और 'जूनियर' वकील की बहुत जरूरत नही होती है।

मै एक 'मेस' मे रहा करता था जो उनके घर से बहुत दूर था। वहाँ कुछ दूर तक ट्राम पर जाना होता। ट्राम से उतरकर प्राय एक मील पैदल जाना होता। वह स्वय बहुत सवेरे उठकर कागज वगैरह पढा करते थे। मै सात बजे पहुँच जाता और दस बजे तक उनके साथ काम करता। फिर उसी तरह अपने 'मेस' मे आता। भोजन करके एक बजे हाइकोर्ट जाता। वहाँ मुकदमो की बहस सुनता। खास करके उन मुकदमो मे बहुत जी लगता जिनके लिए मै उनको नोट तैयार कर देता। सध्या को हाइकोर्ट से लौटकर फिर भवानीपुर, जो हमारे 'मेस' से प्राय चार मील पर था, जाकर रात मे लडके को पढाता और ९–१० बजे लौटकर सोता। इस तरह काफी परिश्रम करता। काम भी मै अच्छी तरह सीख गया। पीछे शमसुलहुदा साहब ने कहा कि तुमको आने-जाने मे बहुत तकलीफ होती है और समय भी लगता है, तुम मेरे ही मकान मे आ जाओ, तुम्हारे लिए—जो बन्दोबस्त कहो—कर दूँगा। उन्होने एक कमरा रहने के लिए और एक अलग रसोई के लिए मुझे दे दिया। मै वहाँ रहने लगा। तब रात को भी और सवेरे भी, जब ४–५ बजे उठते और जरूरत समझते तो, मुझे पुकार लेते। अपने साथ ही मुझे रोज अपनी गाड़ी मे कचहरी ले जाते। उनसे घनिष्ठता इतनी बढ गयी कि घर के लड़के की तरह मुझे मानने लगे।

आज-कल, जब हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न बहुत जोरो से खडे होते है, एक छोटी घटना का उल्लेख कर देना अच्छा होगा। शमसुलहुदा साहब नामी वकील थे। मुसलमानो के एक नेता समझे जाते थे। मुस्लिम लीग के प्रेसिडेण्ट भी हुए थे। युनिवर्सिटी-सिनेट के और लेजिसलेटिव कौसिल के मेम्बर भी थे। पीछे तो बगाल के गवर्नर की एग्जि-क्युटिव (कार्यकारिणी) कौसिल के मेम्बर हो गये। हाइकोर्ट के जज तक हो गये। लेजिस-लेटिव कौसिल के प्रेसिडेण्ट भी हो गये थे। 'सर' का खिताब भी मिला था। उस समय

वह अभी खाँ बहादुर मात्र थे, पर हाइकोर्ट में मवक्किल और जज दोनों ही उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। उनके हाथ में मुकदमे भी बहुत रहा करते थे। मिजाज भी उनका बहुत अच्छा था। धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। मुसलमान छात्रों को कुछ छात्र-वृत्तियाँ भी दिया करते थे। कुछ विद्यार्थी केवल खाने के समय आकर वहाँ भोजन कर जाया करते थे।

मैं उनके मकान में ठहरा था। बकरीद का दिन आ गया। मुहल्ला भी मुसलमानी मुहल्ला था, जिसमें बहुत बड़ी आबादी मुसलमानों की ही थी। मैंने सोचा कि शायद इस मौके पर गाय की कुर्बानी उनके घर में या आसपास के घरों में हो। मैं एक सनातनी हिन्दू था। मैंने सोचा, अच्छा होगा कि इस मौके पर दो-चार दिनों के लिए कहीं हट जाऊँ। मैं चुपचाप, उनको बगैर कुछ कहे ही, वहाँ से चला गया। 'मेस' में जाकर मित्रों के साथ ठहर गया। तीन-चार दिनों के बाद लौटकर आया। उन्होंने पूछा कि कहाँ चले गये थे। मैंने सब बातें साफ नहीं कहीं। इतना ही कहा कि कुछ मित्रों के पास दो-तीन दिनों के लिए चला गया था।

उन्होंने कहा—"मैं समझ गया, तुम बकरीद के कारण चले गये थे। तुमने सोचा होगा कि यहाँ गाय की कुर्बानी होगी, इसलिए यहाँ रहना नहीं चाहिए। क्या तुमने मेरे साथ बेइनसाफी नहीं की? तुमने समझ लिया कि तुम्हारी भावना का मैं कुछ भी खयाल नहीं करूँगा? तुम तो तुम हो, मेरे घर में कई नौकर हिन्दू हैं। फुलवारी का माली हिन्दू है, गायों को खिलाने के लिए नौकर हिन्दू है, क्या उनकी भावना का मैं खयाल नहीं रखता हूँ? उनका दिल क्या नहीं दुखता? तुमको मुझसे पूछ लेना चाहिए था। मेरे घर में अपने घर के हिन्दू नौकरों के खयाल से गाय की कुर्बानी नहीं होती है।"

मुझे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा। मैं समझ गया कि मैंने उनके साथ बेइनसाफी की थी। उस समय बंगभंग का आन्दोलन चल ही रहा था। बंगाली मुसलमान इस आन्दोलन का विरोध कर रहे थे। पूरब-बंगाल में, जहाँ के रहनेवाले शमसुल्हुदा साहब थे हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी बहुत हुए थे। वह स्वयं बंगभंग के पक्ष में थे। यह सब होते हुए भी उनकी ऐसी भावनाएँ थीं, इस प्रकार का हमारे साथ व्यवहार था।

इसी बीच मैंने बी० एल० की परीक्षा भी पास कर ली थी। उसपर मैंने कभी ध्यान ही नहीं दिया, किसी तरह केवल पास कर गया। जब मेरे दो बरस उम्मीदवारी के खतम होने पर आये, उसी समय उनके बंगाल के गवर्नर की एग्जिक्युटिव कौंसिल के मेम्बर होने की खबर आने लगी। उनको इसका पता चल गया। उन्होंने मुझसे कहा कि अब तो वह बहुत दिनों तक वकालत नहीं कर सकेंगे और इस तरह तुमको वकालत शुरू करने के बाद उनसे मदद नहीं मिलेगी। मगर मैंने सोचा, काफी काम सीख लिया है और मैं खुद सब कर लूँगा।

१९११ के अगस्त महीने में मैंने वकालत शुरू की। जिस दिन नाम लिखा गया उस दिन एक मुकदमा उन्होंने मुझे दिलवाया। स्वयं मेरे साथ जाकर जजों के

सामने बैठे और मुझे बहस करने दिया। हाइकोर्ट मे वकालत शुरू करने के बाद केवल चन्द दिनो के लिए हाइकोर्ट खुला रहा। उसके बाद दुर्गापूजा की लम्बी छुट्टी हो गयी। छुट्टी के पहले ही मै बिहार चला गया। वहाँ पूज्य मालवीयजी हिन्दू-विश्व-विद्यालय के लिए चन्दा जमा करने के सिलसिले मे बिहार का दौरा कर रहे थे। चन्द दिनो तक उसी काम मे लगा रहा। जिस समय हाइकोर्ट खुला और मै कलकत्ते पहुँचा, उस समय शमसुलहुदा साहब की नियुक्ति की खबर बहुत गर्म थी। मवक्किल भी समझने लगे थे कि अब यह वकालत नही करेगे। हाइकोर्ट ढाई-तीन महीने बन्द रहने के बाद जब खुलता है तो इन तीन महीनो मे जमा हुए बहुत मुकदमे नये दायर होते है। शमसुलहुदा साहब के पास जो मुकदमे आये उनमे से कई मे उन्होने मुझे मुकर्रर करा दिया। रुपये तो कम मिले या नही भी मिले, पर उन्होने कहा कि अब तो मै नही रहूँगा, ये मुकदमे तुम्हारे ही हाथ मे रहेगे, अगर ठीक काम करोगे तो मवक्किल तुमसे ही काम लेते रह जायँगे। इस बात का जिक्र केवल उनकी मुहब्बत दिखाने के लिए ही नही, पर एक दूसरे उद्देश्य से भी जरूरी था।

कुछ दिनो के बाद इन्ही मुकदमो मे से एक पेश हुआ। मवक्किल ने मुझे बाजाब्ता फीस देकर तो रखा नही था, पर चूँकि वकालतनामा पर मेरा भी दस्तखत था, फिहरिस्त मे मेरा नाम भी आया। एक दूसरे वकील को उसने पीछे मुकर्रर कर लिया। पर ऐसे जितने मुकदमे थे, जिनमे शमसुलहुदा साहब ने मेरा नाम भी लिखवा दिया था, जब पेश होते, मै उनके कागजो को खूब पढ लेता और कानून वगैरह देख-कर तैयार हो जाता। उस दिन भी उसी तरह तैयार होकर गया। कानूनी सवाल उसमे बहुत उठने थे। मेरे सीनियर वकील साहब उतनी गहराई तक नही उतरे थे। मुकदमा जस्टिस सर आशुतोष के इजलास मे था। मै वकील साहब को मदद दे रहा था और नजीर पर नजीर पेश करने के लिए उनके हाथ मे देता जा रहा था। सर आशु-तोष सब देख रहे थे। कुछ देर के बाद उन्होने ुझसे ही पूछा कि और कौन नजीर वहाँ है, बता दो तो किताबे मँगा लूँ। पीछे एक अच्छा फैसला लिखवाया जो रिपोर्टो मे प्रकाशित हुआ।

यह बात तो हो गयी। मै उस मुकदमे की बात भूलना ही चाहता था कि दो दिनो के बाद एक दूसरे वकील ने, जिनके साथ मै अक्सर काम किया करता था और जो युनिवर्सिटी-सिण्डिकेट के मेम्बर थे, मुझसे पूछा कि तुमको अगर लॉ-कालेज मे प्रोफेसर की जगह मिले तो मजूर करोगे। मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि मैने इसके लिए किसी से कहा नही था। सर आशुतोष से भी, जो वाइस-चान्सलर थे और जिनके यहाँ वकीलो का दरबार-सा लगा रहता था, मैने न मुलाकात की थी और न कुछ कहा ही था। मै यह भी नही जानता था कि मेरे ऐसे अभी दो बरस के वकील को भी यह जगह मिल सकती है। मैने आश्चर्य से उनसे पूछा कि यह जगह मुझे कैसे मिल सकती है, मैने न तो किसी से मुलाकात की है और न दर्खास्त ही दी है। उसपर उन्होने कहा कि किसी मुकदमे मे तुमने सर आशुतोष के इजलास मे काम किया है और

वह बहुत खुश हुए हैं, तुम उनसे जाकर मिलो। मैं गया और चन्द दिनों के बाद लॉ-कालेज में जगह मिल गयी। वेतन में रुपये तो ज्यादा नहीं मिलते थे, पर पढ़ाने के लिए कानून घर पर खूब पढ़ना पड़ता था जिससे पूरा लाभ हुआ। इस प्रकार एक अनजान और बिना रुपये के मुकदमे ने मुझे यह इज्जत दी।

वकालत शुरू करने के पहले की एक बात और लिख दूँ। ऊपर कह चुका हूँ कि मैं जस्टिस डिगम्बर चटर्जी के लड़के को घर पर कुछ पढ़ाया करता था। उनसे जान-पहचान हो गयी थी, पर कोई घनिष्ठता नहीं थी। वह जानते थे कि मैंने युनि-वर्सिटी की परीक्षाएँ अच्छी तरह पास की है और इसीलिए उन्होंने अपने लड़के को पढ़ाने के लिए मुझे रखा भी था। जब उनको मालूम हुआ कि मैं अब वकालत शुरू करनेवाला हूँ तो एक दिन वह मुझसे कुछ बातें करने लगे। उन्होंने पूछा, तुम्हारा सम्बन्धी कोई वकील है? मैंने कहा, कोई नहीं है। वास्तव में मेरी ससुराल के लोगों में तो कई वकील थे, पर वे लोग बलिया में—जो युक्तप्रान्त में है—वकालत करते थे। बिहार में मेरा कोई भी सम्बन्धी इस पेशे में नहीं था। यह सुनकर उन्होंने कहा कि यह बहुत अच्छी बात है। मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरी धारणा थी कि अगर कोई सगा-सम्बन्धी वकील होता तो शुरू में वह मदद करता और उससे मुकदमे मिलते, इस तरह मुकदमे हाथ में आते।

मैंने अपना अभिप्राय बतलाया। तब वह कहने लगे—"तुम अपना सौभाग्य समझो कि तुम्हारा कोई सम्बन्धी वकील नहीं है और खास करके बहुत नामी वकील नहीं है। अगर कोई वकील होता तो शायद कुछ मुकदमे उसके सम्बन्ध से तुमको मिलते, पर मवक्किल तुमको वकील नहीं रखता। वह तो यह समझता कि बड़े वकील साहब की खातिर से किसी एक निकम्मे आदमी को भी रख लेता हूँ। उसका तुम पर न कभी विश्वास होता और न तुम्हारे लिए उसके दिल में कोई प्रतिष्ठा होती। इसलिए वह भी वकील जरूर रखता। तुम भी यह समझकर कि दूसरे को बहस करना है, अपनी ओर से विशेष कोई तैयारी नहीं करते। इस तरह तुम काम में ढिलाई करते। तुमको बहस करने का भी कम मौका मिलता। जब तुम आगे चलकर अपने परिश्रम से अगर अच्छे वकील भी हो जाते और वह मवक्किल आता तो वह तुमको याद दिलाता कि शुरू में उसने ही तुमको वकील रक्खा था। इसलिए तुमको भी लिहाज होता और तुम उससे रुपये नहीं ले सकते। धनी मवक्किल तो इस तरह के होते हैं। गरीब तुम्हारे पास शायद कोई आ जाता तो तुम अपनी आदत से उस पर अधिक ध्यान नहीं देते, क्योंकि तुम्हारे पास तो धनी मवक्किल—चाहे वे रुपये देते हों या नहीं और चाहे तुम्हें उनके मुकदमे में स्वयं जवाबदेही लेकर काम करने का मौका मिलता हो या नहीं—आ ही चुके होते और तुमको इसका गर्व भी होता। जब कोई मदद करनेवाले सम्बन्धी वकील नहीं है तो इस प्रकार का कोई मवक्किल तुमको नहीं मिलेगा। गरीब मवक्किल यह जानकर कि तुम अच्छे पढ़े-लिखे हो, आवेगा, रुपये कम देगा, पर अपना सर्वस्व तुमको ही समझेगा, उसका दूसरा कोई वकील

नही होगा; तुमको ही उसके मुकदमे मे सब कुछ करना होगा। इसलिए जहाँ तक हो सकेगा तुम अपने को अच्छी तरह तैयार करोगे। इस तरह काम करने का सुयोग मिलेगा। जब मुकदमे जीत जाओगे, वह दस और-और गरीबो से तुम्हारी तारीफ करेगा। वह विज्ञापन का काम करेगा। दूसरे गरीब मवक्किल आवेगे। इस तरह तुम्हारा नाम होगा। इसमे न किसी की मदद रहेगी, न एहसान। जब इस प्रकार वकालत चल निकलेगी, बड़े मवक्किल खुद आवेगे। वे तुम्हारी खुशामद करेगे, पुराना एहसान नही जता सकेगे और तुम उनसे इज्जत के साथ रुपये ले सकोगे। इसलिए मेहनत करके काम करना सीखो। वकालत अच्छी चल निकलेगी।"

उनकी बातो से मेरे दिल मे बहुत हिम्मत बँधी। उन्होने जितनी बाते कही थी, अक्षरश सत्य निकली। शुरू मे केवल गरीब मवक्किल मिले। मुझे शुरू से ही, बिना किसी दूसरे वकील की मदद के, काम करने का सुअवसर मिला। इससे मेहनत भी करनी पड़ती और अपनी बुद्धि भी खुलती। एक ही दो ऐसे मवक्किल मिले जो धनी कहे जा सकते है। उनसे पुराना सम्बन्ध था। इसी लिए वे मेरे पास आये, नही तो और सब गरीब ही थे।

जिस समय मै वकालत की तैयारी कर रहा था, एक और घटना घटी, जिसका उल्लेख जरूरी है। अगर उस घटना की बात पूरी हो जाती तो जीवन का प्रवाह आज दूसरा ही हो गया होता, पर वह नही हुई। शायद अच्छा ही हुआ कि उस समय अधपका सपना न छेडा गया। वह घटना थी माननीय श्री गोखले से मुलाकात।

१६—माननीय गोखले से मुलाकात

१९१० ई० मे वकालत की परीक्षा के लिए मै पढ़ रहा था। कलकत्ते मे एक 'मेस' मे रहता था। वहाँ दो-चार और बिहारी साथी भी थे। मेरे भाई भी वहाँ गये हुए थे। एक दिन हाइकोर्ट मे, जहाँ मै प्राय प्रतिदिन जाया करता था, मिस्टर परमेश्वरलाल बैरिस्टर ने मुझसे कहा कि तुम और श्रीकृष्ण जाकर माननीय गोखले से मिलो, उन्होने तुम दोनो को बुलाया है। मुझे यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ, क्योकि मुझे माननीय गोखले से मिलने का सौभाग्य पहले कभी प्राप्त नही हुआ था। उनको भी मुझे जानने का कोई कारण नही था। मिस्टर परमेश्वरलाल ने कहा कि वह बिहार के दो-चार अच्छे होनहार विद्यार्थियो से मिलना चाहते है और मैने तुम दोनो का नाम उनको बता दिया है। बात यह थी कि श्रीकृष्ण प्रसाद—जो दुर्भाग्यवश, कम अवस्था मे ही, कुछ दिन हुए, इस लोक से चले गये—और मै, दोनो ही, छात्र-सम्मेलन मे प्रमुख भाग लिया करते थे। इसलिए हम लोगो को बहुत लोग जानते थे। मिस्टर परमेश्वरलाल ने भी इसी कारण हम दोनो के नाम बता दिये थे।

हम दोनो, माननीय गोखले से, जहाँ वह ठहरे थे, जाकर मिले। उन्होने थोडे दिन पहले 'सर्वेण्ट्स आफ इडिया सोसाइटी' की स्थापना की थी। वह चाहते थे कि बिहार के कुछ अच्छे नवयुवक उसमे शरीक हो जायँ। उन्होने देश की सेवा पर जोर

देकर हम लोगो से उसमे शरीक होने को कहा। वह जानते थे कि हम दोनो ने युनिवर्सिटी-परीक्षाएँ अच्छी तरह पास की है और अब वकालत की तैयारी कर रहे है। उन्होने कहा—"हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको, बहुत आराम और ऐश-इशरत मे दिन बिताओ। बडी कोठी, घोडा-गाडी, नौकर इत्यादि दिखावट के सामान, जो अमीरो को हुआ करते है, तुमको सब मयस्सर हो। पर मुल्क का भी दावा कुछ लडको पर होता है, और चूँकि तुम पढने मे अच्छे हो, इसलिए तुम पर वह दावा और भी अधिक है।" अपने बारे मे उन्होने कहा—"मेरे सामने भी यही प्रश्न आया था। मै गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब मै पढकर तैयार हो जाऊँगा तो रुपये कमाऊँगा और सबको सुखी बना सकूँगा। जब मैंने उनकी सब आशाओ पर पानी फेरकर देशसेवा का व्रत लिया तो मेरे भाई इतने दुखी हुए कि कुछ दिनो तक वह मुझसे बोले तक नही, पर कुछ दिनो के बाद वह सब बाते समझ गये और फिर मेरे साथ खूब प्रेम करने लगे। हो सकता है कि यह सब तुम्हारे साथ भी हो, पर इसका विश्वास रखो, सब लोग अन्त मे तुम्हारी पूजा करने लगेगे। लोगो की सब उम्मीदे तुम पर बँधी है, पर कौन जानता है, अगर तुम्हारी मृत्यु हो गयी, तो उसे तो वे लोग बर्दाश्त कर ही लेगे।"

इसी प्रकार उन्होने प्राय डेढ दो घटे तक हम लोगो से बाते की। बाते करने का तरीका भी ऐसा था कि हम लोगो के दिलै पर उसका बहुत गहरा असर हुआ। अन्त मे उन्होने कहा—"ठीक इसी समय उत्तर देना जरूरी नही है, क्योकि सवाल गहन है, विचार करके हमसे एक दिन फिर मिलो और तब अपनी राय दो।" हम लोग वहाँ से, एक प्रकार से खोये हुए-से होकर, निकले। अपने 'मेस' मे वापस आये। उनकी बातो का इतना असर पडा था कि कोई दूसरी बात सूझती ही न थी।

हम दोनो उनकी बातो पर विचार करने लगे। ुझे तो कई दिनो तक नीद नही आई। खाना-पीना सब कुछ बरायनाम रह गया। स्वदेशी के दिनो मे देश की बाते सामने आती थी। देशसेवा की भावना भी जब-तब जाग्रत होती थी। पर इसके पहले कभी इस तरह से यह प्रश्न सामने नही आया था और न कभी ऐसे बडे आदमी से मिलकर इस प्रकार के मार्मिक शब्दो के सुनने का ही सौभाग्य हुआ था। एक ओर उनकी बताई देश के लिए हम जैसे लोगो की सेवा की जरूरत; दूसरी ओर भाई पर घर का सारा बोझ लादना! मेरे भी दो पुत्र हो चुके थे और उनके भी तीन पुत्रियाँ थी और एक लडका। माँ अब तक जीवित थी। वह क्या कहेगी, घर के दूसरे लोगो को कैसा दुख होगा इत्यादि भावनाएँ इतनी सताती रही कि जैसा ऊपर कहा है—खाना-पीना तक प्राय छूट गया। हम दोनो के सिवा इन बातो को दूसरा कोई जानता नही था। भाई साथ मे ही थे, पर उनसे भी नही कहा। किसी दूसरे साथी से भी नही कहा। हाइकोर्ट जाना भी बन्द रहा। टहलना-घूमना छूट गया। कही न कही एकान्त ढूँढकर बैठना और चिन्ता करना, यही एक काम रह गया।

प्राय दस-बारह दिनो तक यही सिलसिला चला। भाई को कुछ शक हुआ कि तबीयत ठीक नही है। उनको कुछ कहकर टाल दिया। अभी अपना जी नही भरता था तो उनसे क्या कहूँ।

कई दिनो की इस प्रकार की चिन्ता के बाद मैंने एक दिन निश्चय किया कि मुझे माननीय गोखले की बात मानकर उनकी सोसाइटी मे शरीक हो जाना चाहिए। मेरी हिम्मत नही होती थी कि भाई से मै खुलकर कहूँ, क्योकि मुझे डर था कि उनको इससे बहुत दुख होगा। मैंने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमे सब बाते खोलकर लिख दी और उनसे आज्ञा माँगी कि मुझे जाने दे। एक दिन सध्या को वह पत्र उनके बिस्तर पर, जब वह कही टहलने गये थे, मैंने रख दिया। मै खुद कालेज-स्क्वायर मे, जो नजदीक ही था, जाकर बैठ गया। उन्होने पत्र पढा, और मेरी तलाश करने लगे। मुलाकात नही हुई। जब मै लौटा तो उनका हाल बेहाल देखा। वह उस रात तो कुछ बोल न सके। मैंने देखा कि जो विचार मुझे सता रहे थे वही उनको भी सता रहे है। उनका जी चाहता है कि मुझे न रोके, पर अपने को परिवार का इतना बडा बोझ उठाने मे असमर्थ पाते है। वह मुझसे मिलकर फूट-फूटकर रोने लगे। मै भी अपने को रोक न सका। मै भी रोने लगा।

मै तो उनके उस रोने से ही उनके मन का भाव ताड गया। अधिक कुछ कहने की मेरी हिम्मत ही न हुई। राय हुई कि घर चलकर माँ-चाची और बहन से भी सलाह करनी चाहिए। मैंने माननीय गोखले से जाकर यह हाल कह दिया। मै समझ गया था कि अब मुझसे इन सबके प्रेम के बन्धन को काटना नही हो सकेगा। ऐसा ही उनसे कह भी दिया। उन्होने भी आशा छोड दी। मेरे साथी श्रीकृष्ण ने अन्तिम निश्चय करने के पहले कुछ दिनो तक पूना जाकर वहाँ का सब हालचाल देखना चाहा। माननीय गोखले ने इस बात को पसन्द किया। पूना जाकर श्रीकृष्ण कुछ दिनो तक रहे भी। पर अन्त मे उनका भी निश्चय हुआ कि वह सोसाइटी मे शरीक न हो सके।

हम दोनो भाई जीरादेई पहुँचे। वहाँ जब घर की औरतो ने सब बाते सुनी तो सब परीशान हो गयी। माँ का तो प्रेम इतना रहता था कि वह कभी कुछ बोलती ही नही थी। पर मेरी बहन, जो हमेशा से कुछ तेज बोलनेवाली है, कहने लगी कि तुमने विलायत जाने की बात उठाकर बाबूजी को रुलाया और अब इस उम्र मे साधु बनना चाहकर भाई को रुलाते हो। बस इतना कह वह स्वय भी रोने लगी। घर-भर मे कोलाहल मच गया। उस कोलाहल मे मेरी बची खुची हिम्मत, जो कलकत्ते मे ही कमजोर पड गयी थी, अब बिल्कुल टूट गयी।

घर पर कुछ दिनो तक ठहरकर मै फिर कलकत्ते चला गया। घर के लोगो को विश्वास हो गया कि मै उन सबकी मर्जी के खिलाफ ऐसा काम नही करूँगा। इसी पसोपेश मे प्राय चार-पाँच सप्ताह बीत गये। मैंने विचार तो छोड़ दिया, पर दिल मे व्यथा बनी रही। कई हफ्तो तक कुछ परेशान-सा ही रहा। आहिस्ता-आहिस्ता वह

लडके को राजी करने की बात नही होती थी, क्योकि लडका प्राय: कम उम्र का ही होता था और माँ-बाप की रजामन्दी ही उसकी रजामन्दी समझी जाती थी। तब से आज तक बहुत अन्तर पड़ गया है। अब लड़को की शादी कुछ उम्र बढ जाने पर ही होती है, विशेष करके उन कायस्थो मे, जो कुछ शिक्षित है। लडके के पिता-माता की रजामन्दी हासिल करना आसान नही होता था। उनको भी लडकीवालो के घर और खान्दान के बारे मे पता लगाकर अपने को सन्तुष्ट करना पडता था कि उनकी प्रतिष्ठा के योग्य कन्या-पक्ष के लोग है या नही। यह सब ठीक जँच जाने पर तिलक-दहेज की बात उठती थी।

लडकीवाले को वर-पूजा के समय—जिसे हमारे समाज मे 'तिलक' कहते है—रुपये, बर्त्तन, कपडे इत्यादि देने पडते है। फिर शादी के समय बरात आने पर भी सब चीजे और नगद रुपये देने पडते है। लडकी को रुपये देना पिता का धर्म हो सकता है। पर हमारे समाज मे पिता के—अपने दिल से और प्रेम से—देने की बात नही रहती है। शादी के पहले ही बातचीत करके तय कर लिया जाता है कि तिलक के समय इतना देना होगा और शादी के समय बरात जाने पर इतना दहेज देना होगा। यह प्रथा हजार कोशिश करने पर अभी तक जारी है! सभी जातीय सभाओ मे प्रस्ताव पास होते है कि इसे उठा देना चाहिए, पर घटने की जगह यह प्रथा बढ ही रही है। जिन जातियो मे यह प्रथा नही थी उनमे भी प्रचलित होती जा रही है। जिनमे पहले से चलती थी उनमे तिलक-दहेज की रकम अब बहुत बढती जा रही है।

अगर आज मेरी शादी होने को होती और मै उस प्रथा से तिलक-दहेज लेकर शादी करना चाहता, तो मुझ-जैसे युनिर्वसिटी-परीक्षा मे सफल विद्यार्थी के लिए, जहाँ मेरी शादी मे डेढ-दो हजार के लगभग मिले थे, आज की दर से दस-पन्द्रह हजार की रकम भी बडी रकम नही समझी जाती। इस समय की दर तो इतनी बढ गयी है और बढती जा रही है कि कुछ ठिकाना ही नही मालूम होता। जिसके घर मे कुछ नही है, पर जो कुछ पढने मे तेज है, वह मामूली तौर से तीन-चार हजार की फरमाइश तो कर ही देता है।

हाँ, एक फर्क हुआ है। मेरी शादी के समय लडके को खुश करने की बात नही होती थी, क्योकि दस-बारह बरसो का लडका तो खिलौनो से भी खुश किया जा सकता था, और लडके से शादी की बाते करना या लडके का खुद अपने विवाह-सम्बन्ध की बाते करना बहुत बुरा माना जाता था। इसलिए अगर माता-पिता राजी हो गये तो वही काफी होता था। पर आज-कल के पढे-लिखे लडको को अलग से राजी करना पडता है। वे अपनी फरमाइश अलग कर देते है और इस तरह माँग, या कीमत, बहुत बढ जाती है।

भाई की लडकी की शादी जाने हुए घर मे होने की बात थी, क्योकि वर के बडे भाई लोग हम लोगो के साथ कलकत्ते मे पढते थे और लडका भी वहाँ पढा करता था। इसलिए आशा थी कि सब बाते आसानी से तय हो जायँगी। पर पुरानी रूढि

जल्दी छूटती नही, इसलिए हम लोगो को भी दिक्कत तो उठानी ही पड़ी। ईश्वर की दया से सम्बन्ध बहुत अच्छा हो गया, और दोनो पक्ष बहुत सतुष्ट है। सब कुछ होने पर भी घर मे रुपये तो थे नही। अन्न तो खेतो मे पैदा होता था, इसलिए उसकी बहुत चिन्ता नही थी, पर नगद खर्च के लिए हम दोनो भाइयो को कर्ज लेना पडा।

१८—वकालत का आरम्भ और एम० एल० की परीक्षा

भतीजी की शादी के थोडे दिनो के बाद मैने कलकत्ते मे वकालत शुरू कर दी। शुरू का कुछ हाल तो पहले लिख चुका हूँ। काम शुरू करते ही मुझे मुकदमे मिलने लगे। मैने जिस दिन से वकालत शुरू की, घर मे अपने खर्च के लिए कभी कुछ नही लिया। मुझे इस बात की चिन्ता थी कि घर से कुछ मँगाना पडेगा तो भाई पर बडा बोझ पडेगा और विशेषकर लडकी की शादी के खर्चे के बाद उनकी कठिनाई अब और भी अधिक हो जायगी। पर कुछ इत्तफाक ऐसा हुआ कि हर महीने थोडी-बहुत आय हो जाती और वह खर्च के लिए काफी होती। कलकत्ते मे खर्च तो छोटे शहरो के मुकाबले अधिक पडता ही, है तो भी काम चल निकला। जैसा जस्टिस चटर्जी ने कहा था, मेरे पास धनी मवक्किल नही आये। केवल एक आदमी—रायबहादुर हरिहरप्रसाद सिंह ने, मैने जिस दिन से वकालत शुरू की उसी दिन से, अपनी जमीन्दारी के सब छोटे-बडे मुकदमे मेरे सुपुर्द किये। वह मुझे जानते थे और विलायत जाने के समय उन्होने कुछ रुपये भी दिये थे। ऐसा इत्तफाक हुआ कि उनका ही मुकदमा मेरी वकालत का आखिरी मुकदमा भी हुआ, क्योकि वकालत छोड़ने के समय उनके ही बहुत बड़े मुकदमे में मै काम कर रहा था।

गरीब मवक्किलो के मुकदमो मे कोई दूसरा वकील भी नही होता था और अक्सर मुझे ही बहस करनी पड़ती थी। परिश्रम करके काम करता, इसलिए बहुत जल्द जज लोग भी मुझे पहचानने लगे। बहुत लोगो की आदत होती है कि जजो से बहुत मिला करते है; मैने ऐसा कभी नही किया। उनसे मेरी मुलाकात इजलास की ही रही। उनमे बहुतेरे, जिनके सामने मुझे काम करने का मौका मिला, मुझसे खुश रहे। सर लौरेन्स जेन्किन्स चीफ जस्टिस थे। मेरे वकालत शुरू करने के एक-डेढ साल बाद ही वह चले गये, पर इतने थोड़े दिनो की वकालत से ही मुझसे इतने प्रसन्न थे कि जाने के समय अपने हस्ताक्षर के साथ अपनी एक तस्वीर मुझे दे गये। सर आशुतोष की बात ऊपर लिख ही चुका हूँ कि उन्होने एक मुकदमे मे जूनियर वकील की हैसियत से मुझे काम करते हुए देखकर लॉ-कालेज की प्रोफेसरी मुझे दे दी। इस तरह मै अपनी कामयाबी से खूब खुश था।

मुजफ्फरपुर-कालेज के मेरे पुराने साथी बाबू वैद्यनाथनारायण सिंह ने भी कलकत्ते मे आकर हाइकोर्ट मे मेरे साथ ही वकालत शुरू कर दी थी। हम दोनो मे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। इसी बीच मे बिहार सूबे के भी, १९११ के दिसम्बर

मे शाही दरवार के वक्त, वगाल से अलग होने की घोषणा हुई और १९१२ के एप्रिल से विहार एक नया सूवा हो गया। अभी तक हाइकोर्ट और युनिवर्सिटी अलग कायम नही हुई थी। विहार के मुकदमे कलकत्ते मे ही फैसल हुआ करते थे और विहार के विद्यार्थी कलकत्ता-युनिवर्सिटी की ही परीक्षाओ मे वैठते थे। पर सूवा अलग होने के थोडे ही दिनो वाद हाइकोर्ट अलग करने की वात होने लगी। जर्मनी के साथ लड़ाई शुरू हो जाने से कुछ विलम्व होने की सम्भावना हो गयी, पर ऐसा हुआ नही, और मालूम हुआ कि मकान वगैरह तैयार हो जाने पर हाइकोर्ट भी खुल जायगा।

वैद्यनाथ वावू ने मुझसे कहा कि एम० एल० की परीक्षा देनी चाहिए। मै उस समय वकालत मे वहुत दिलोजान से लग गया था और खूव कामयाव भी होना चाहता था। मैने उनकी वात मान ली। हम दोनो एक साथ एम० एल० परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। कलकत्ता-युनिवर्सिटी की परीक्षाओ मे यह सवसे कठिन परीक्षा समझी जाती थी। हम दोनो को कचहरी मे काम भी काफी रहता था, इसलिए पढने का समय कम मिलता था। फिर लॉ-कालेज मे प्रोफेसरी हो जाने के वाद तो मै और भी अधिक समय का अभाव अनुभव करने लगा। कभी-कभी इस परीक्षा की झझट से वच जाने का भी जी चाहता था, पर वैद्यनाथ वावू छोडना नही चाहते थे। वह वार-वार जोर देकर मुझको पढने के लिए कहते रहते। कभी-कभी तो जिस तरह मास्टर लड़को को पढाते है उस तरह मुझे पढाते। वह मुझसे वार-वार कहते—"आपने एण्ट्रेन्स से वी० ए० तक सव परीक्षाओ मे औवल स्थान पाया, एम० ए० मे कुछ नीचे हुए और वी० एल० तो किसी प्रकार पास किया। इन अन्तिम परीक्षाओ का फल आपके विद्यार्थी-जीवन का कलक है। उसको धो देना चाहिए औ वह एम० एल० पास करके ही आप धो सकते है।' इन सव दलीलो का और उनकी मास्टरी का नतीजा यह हुआ कि हम दोनो खूव परिश्रम करने लगे। विचार हुआ कि १९१५ के दिसम्वर मे होनेवाली परीक्षा मे हम दोनो वैठेगे और ऐसा सोचकर इसकी तैयारी की गयी।

जितना परिश्रम मैने इस परीक्षा के लिए किया उतना परिश्रम कभी किसी परीक्षा के लिए नही किया था। एण्ट्रेन्स में तो मानो विना जाने मै सफल हो गया। एफ० ए० मे औवल होने के लिए जान-बूझकर प्रयत्न किया, पर तो भी उसमे इतना परिश्रम तो कभी किया ही नही। वी० ए० मे तो कुछ भी परिश्रम नही किया था। एम० ए० और वी० एल० के समय दूसरे विचारो मे फँस गया था। किन्तु एम० एल० की परीक्षा के समय मै अन्तिम दो-तीन महीनो में १५-१६ घटो तक पढा करता था। कचहरी, लॉ-कालेज तथा परीक्षा की तैयारी मिलाकर इतनी मेहनत पडी कि एक वार सख्त वीमार पड गया और भय हुआ कि सव मामला अव खतम हो जायगा।

१९१६ के मार्च से पटने मे हाइकोर्ट खुलनेवाला था। हम दोनो समझ गये थे कि कलकत्ते मे रहते हुए अगर हमने पास नही किया तो पटना जाकर हमसे यह

काम नही होगा; १९१५ की परीक्षा ही हम लोगो के लिए प्रथम और अन्तिम परीक्षा होगी; इसलिए हमको जरूर पास करना चाहिए। परीक्षा के समय जजो से कहकर कुछ दिनो के लिए छुट्टी ले ली, अपने मुकदमो को मुलतवी करा दिया। हम लोगो के मुकदमे प्राय बिहार के ही होते थे, इसलिए कुछ दिनो से वे वहाँ भी उन्ही जजो के यहाँ पेश होते थे जिनके पटना आने की खबर थी। कहने से उन्होने खुशी से मुकदमे मुलतवी कर दिये।

परीक्षा देकर हम लोग हाइकोर्ट के साथ पटने चले आये। परीक्षा का फल पटने आने के बाद मालूम हुआ। हम ही दोनो पास हुए। मै फर्स्टक्लास मे पास हुआ और वैद्यनाथ बाबू सेकेण्ड क्लास मे। हम ही दो बिहारी थे जिन्होने पहले-पहल यह परीक्षा पास की। पीछे मालूम हुआ कि मुझे बहुत अधिक नम्बर मिले थे। युनिवर्सिटी के नियम के अनुसार एम० एल० परीक्षा पास करने के बाद मौलिक निबन्ध लिखकर देने पर डी० एल० की उपाधि मिल सकती है और इस तरह आदमी कानून का डॉक्टर हो सकता है। हम दोनो पटने `विचार करने लगे कि किसी अच्छे विषय पर निबन्ध लिखा जाय। इस सम्बन्ध मे सर गुरुदास बनर्जी .से भी हम मिले थे और राय ली थी।

कलकत्ते की वकालत के कुछ चुटकले मनोरजक है। वकालत शुरू करने के थोडे ही दिनो के बाद एक मवक्किल के मुख्तार मेरे पास एक अपील दायर करने के लिए आये। उनकी राय थी कि एक सीनियर वकील भी रखे। एक सीनियर वकील का नाम, जिनकी वकालत बहुत जोरो से चली थी और जिनके हाथ मे बिहार के बहुत मुकदमे रहा करते थे, उन्होने मुझसे कहा। मुझे खुशी हुई कि बड़े वकील के साथ काम करने का ौका मिलेगा। उनसे मेरी मुलाकात नही थी।

हम दोनो उनके घर पर गये। मैंने कागज पढकर बुद्धि के अनुसार अपील की दर्खास्त लिख ली थी। सध्या के समय हम दोनो पहुँचे। वह काम कर रहे थे। उनकी आदत थी कि रात को काम नही करते थे। सध्या होते ही काम बन्द कर देते और फिर दूसरे दिन सवेरे काम करते। वह कागज-पत्र समेट ही रहे थे कि हम लोग पहुँचे। मुख्तार को वह पहले से जानते थे—उनसे पूछा कि क्या काम है। मुख्तार ने कहा कि एक दोयम अपील दायर करनी है। उन्होने दूसरे दिन मुख्तार को बुलाया और पूछा कि किसी जूनियर से दर्खास्त वगैरह लिखवायी है या नही। मुख्तार ने कहा कि सब कुछ तैयार है। इसपर उन्होने जूनियर का नाम पूछा। मेरा नाम मुख्तार ने बता दिया। मै तो वही चुप बैठा था। उन्होने मुझे देखा भी या नही, मै नही कह सकता। वह बिगडकर ोले—"न मालूम कैसा उजबक वकील तुमने रखा है जिसको मै जानता भी नही हूँ। सब काम मुझे ही करने होगे। वह न कुछ जानता होगा और न कुछ समझेगा।" मवक्किल ने कहा—वह नये है, मगर बहुत तेज है। इसपर उन्होने फिर उजबक वगैरह कह दिया। मै चुप बैठा रहा। मविक्कल ने तब मेरी तरफ इशारा करके कहा कि यही तो है। यह सुनते ही उनके बदन पर मानो उस सर्दी के जमाने मे हजारो घडे पानी पड़ गया और बहुत घबराकर मुझसे कहने लगे—"तुमको आते ही

मुझसे जान-पहचान कर लेनी चाहिए थी। मै तुमको जानता नही हूँ। मेरा मतलब कुछ तुम्हारी शिकायत करने का नही था। मै तो तुमको जानता नही हूँ, इसलिए कहा कि कोई नया वकील काम ठीक नही जानता होगा।" और, इस प्रकार की बाते कहते-कहते वह माफी माँगने लगे।

मैने कहा कि आपका कहना स्वाभाविक था, आप मुझे जानते नही है, और मै तो अभी बिलकुल नया हूँ। तब वह सब हालचाल पूछने लगे, और दूसरे दिन कचहरी मे ही कागज दिखलाने को कहकर हम दोनो को विदा किया। दूसरे दिन जब कचहरी मे ही मैने अपनी लिखी दर्खास्त उन्हे दिखलाई, तब बहुत खुश हुए और मवक्किल तथा दूसरे वकीलो के सामने मेरी तारीफ का पुल बाँध दिया। उसके बाद मुझे उनके साथ बहुत काम करने का मौका मिला और मुझे वह बहुत मानते रहे। मेरे साथ उनकी शिकायत एक बात की रहती। कपडे पहनने मे मै लडकपन से ही कुछ उलूल-जलूल रहा हूँ। वह इसे नापसन्द करते थे और कपडे के बारे मे शौकीन होने की शिक्षा जब-तब दिया करते थे।

इसके बरक्स (विपरीत), एक दूसरी घटना घटी। मै अपनी आदत से मजबूर हूँ। जिससे कोई काम नही पड़ता, उससे कभी आगे बढ़कर जान-पहचान करने की शक्ति मुझमे नही थी और न आज भी है। यद्यपि डेढ-दो बरसो से मै वकालत करता था, फिर भी डाक्टर रासविहारी घोष से मेरी मुलाकात नही थी। उनके खिलाफ मे बहस करके एक बड़ा मुकदमा तो मैने जीत लिया था, पर उनके साथ काम करने का मौका नही मिला था। एक मुकदमे मे वह मौका आया। दूसरी ओर से सर एस० पी० सिन्हा थे। हमारी ओर से सर रासविहारी घोष और बाबू कुलवत सहाय थे, जो पीछे पटना-हाइकोर्ट के जज हुए। गया का मुकदमा था और गया के एक वकील भी आये थे।

बडे वकीलो और बैरिस्टरो की चाल थी कि जब दूसरे पक्ष की बहस होती, तब वे किसी दूसरे इजलास मे बहस करते और जवाब देने के वक्त आ जाते। बहुत मुकदमे हाथ मे ले लेने का यही नतीजा होता था। कभी-कभी वे नही भी पहुँच पाते थे। वैसी हालत मे जूनियर को ही काम कर देना पडता था। जो मुकदमा मैने सर रासविहारी घोष के खिलाफ बहस करके जीत लिया था, उसमे ऐसा ही हुआ था। मेरे सीनियर साहब दूसरे इजलास मे फँसे थे, मुझे ही बहस करनी पडी। जब दूसरे पक्ष की बहस होती रहती और सीनियर गैरहाजिर रहते तो जूनियर को बहस का नोट लेकर सीनियर को दिखलाना पडता। उसी नोट को पढकर दूसरी ओर की बहस को वह समझते और जवाब देते। यह कुछ बडा मुकदमा था, जिसमे तीन-चार दिनो तक बहस होती रही। सर सिन्हा की बहस के नोट करने का काम मेरा था; क्योकि सबसे जूनियर मै ही था। सर सिन्हा आहिस्ता-आहिस्ता और बहुत अच्छी तरह से बहस किया करते थे। इसलिए नोट लिखने मे मुझे कोई विशेष तकलीफ नही हुई। मै कुछ तेज लिखने का आदी शुरू से ही रहा हूँ। कालेज मे मिस्टर पर्सिवल

बहुत तेज पढाया करते थे और मै प्राय सब कुछ नोट कर लिया करता था। इस तरह यह आदत और भी बढ गई थी। इसमे काफी प्रोत्साहन 'डॉन सोसाइटी' के क्लासो मे भी मिला था।

मैंने सर सिन्हा की बहस का अच्छा नोट लिख लिया। दिन-भर की बहस खतम हुई। सध्या को हम सब सर रासविहारी घोष के घर पर गये। उन्होने बहस का सारा नोट बहुत ध्यान से पढ लिया। मै कुछ डरता भी था, कुछ उत्सुक भी था कि देखे क्या कहते है। वह गुस्सेवर (क्रोधी) थे और जूनियर से गलती होती तो बहुत बिगड जाते थे। जज लोग भी यह खूब जानते थे। कभी-कभी इजलास पर ही कागज और किताब पटक दिया करते थे। इससे जूनियर बहुत डरा करते थे। मेरा तो यह पहला ही मौका था। पढकर उन्होने सिर उठाया और पूछा कि नोट किसने तैयार किया है। मैने समझा, अब शायद बिगडेगे, उनके मन के ुताबिक नोट तैयार नही हुआ है। बाबू कुलवत सहाय के मन मे भी शायद कुछ ऐसा ही शक हुआ। उन्होने मेरी तरफ इशारा कर दिया। इसपर सर रासविहारी ने मुझसे पूछा—"कितने दिनो से काम करते हो ? मै तो तुमको जानता नही हूँ।" यह सब बाते होती जाती और मन ही मन मै कॉपता जाता था कि अब कुछ होगा। बाबू कुलवत सहाय ने कहा—"थोडे ही दिनो से।" गुस्सा करने के बदले उन्होने मेरी पीठ ठोकना शुरू कर दिया और कहा कि नोट बहुत अच्छा तैयार हुआ है। बाबू कुलवत सहाय की हिम्मत बढी और उन्होने मेरी युनिवर्सिटी-परीक्षाओ का हाल कह दिया। बहुत खुश हुए और मुझसे कहा—"ऐसे ही परिश्रम से काम करो, तुम बहुत अच्छे हो जाओगे।"

मुझे बडा सन्तोष हुआ। उसके बाद जब कभी उनके साथ काम करने का मौका होता, तब वह मेरे नोट पर बहुत विश्वास करते और उसको ठीक समझकर उसका पूरा उपयोग कर लेते। उसी मुकदमे मे एक दूसरा दृश्य भी मैने देखा। उन्होने एक बात पूछी और जानना चाहा कि इस बात पर कोई सबूत है या नही। मै तो चुप रहा, पर गया के वकील ने कहा कि कोई सबूत नही है। इसपर उन्होने कहा कि जब सिन्हा ने कहा है कि सबूत है, तब जरूर कुछ होगा—ध्यान से आज रात को सब कागज देख लो, और तब कल सवेरे मुझे उत्तर देना। दूसरे दिन सवेरे उन्होने फिर सवाल किया और वकील ने वही उत्तर दिया। रात को कागज उन्होने पढा था और निशान लगाकर रक्खा था। वकील के जवाब पर बिगड गये—कागज और उनका बनाया नोट फेक दिया—"मै तुम्हारे नोट पर भरोसा करके बहस करता हूँ। अब मै कैसे भरोसा कर सकता हूँ ?" और अपना निशान लगाया हुआ हिस्सा दिखलाकर बहुत भला-बुरा कह दिया। मैने एक ही मुकदमे मे दोनो चीजे देख ली, और अपना भाग्य सराहा कि मुझसे गलती नही हुई थी।

एम० एल० की परीक्षा दे चुका था। फल मालूम नही हुआ था। पटने आने के चन्द दिन ही बाकी रह गये थे। एक छोटा, मगर पेचीदा मुकदमा मेरे हाथ मे था। उसकी बहस दो जजो के सामने करनी पड़ी, जो दोनों पटने आनेवाले थे। एक अभी

मुस्तकिल जज नही हुए थे—थोडे दिनो के लिए ही हाइकोर्ट मे गये थे और फिर चन्द दिनो के लिए पटने चले आये। यह बहस दो-तीन दिनो तक चली थी। हम जीत गये थे, और उनपर मेरी बहस का अच्छा प्रभाव पड़ा था। उनको मालूम हो गया था कि मैंने एम० एल० की परीक्षा भी दी है। पटने आकर हाइकोर्ट खुलने के पहले ही उन्होने दूसरो से मेरी तारीफ की कि कलकत्ता हाइकोर्ट से आनेवाले वकील अच्छे है और यहाँ के बडो का मुकाबला कर सके। जब हाइकोर्ट खुला तब मुझे इसका अनुभव भी हुआ।

दोयम अपील मे केवल कानूनी बहस हो सकती है। वाकयाती बातो पर नीचे की अदालत का फैसला मान लिया जाता है। दोयम अपील छोटे-छोटे मुकदमो मे ही होती है। मेरे मवक्किल गरीब हुआ करते थे। कलकत्ते मे ज्यादातर दोयम अपीले ही मेरे हाथ मे आई थी। इसलिए उनकी बहस मे कानूनी बहस ही करने के लिए मुझे अधिक कानून पढना पडता था। मैंने नियम कर लिया था कि ऐसा मुकदमा मै दायर ही नही करूँगा, जिसमे अच्छी तरह मै खुद यह न समझ लूँ कि फैसला कानूनी तौर पर गलत है और मै उसे बहस मे जीत सकूँगा। इसलिए दोयम अपील के मुकदमे मै अक्सर जीता करता था। पटने मे आकर मैंने यही नियम रक्खा।

दोयम अपील मे मजूरी के लिए बहस होती है। जब जज समझते है कि कुछ गलती है या कम से कम बहस की गुंजाइश है, तभी मजूर करते है और दूसरे पक्ष को हाजिर होने की नोटिस देते है। पटने के रजिस्ट्रार, जो कुछ कम कानून जानते थे, सभी दोयम अपीलो को नामजूर कर देते थे। मेरी अपील भी नामजूर कर देते। पर नियमानुसार उनका अधिकार इतना ही था कि अगर वह किसी अपील को मजूर करने योग्य न समझे तो उसे जजो के सामने भेज दे। मेरी बहुतेरी अपीले इस प्रकार जजो के सामने उन्होने भेजी और प्राय सब की सब वहाँ मजूर हो गयी। वह जज तो, जिसका मैंने जिक्र किया है, शायद कागज भी नही पढता, मेरे खडे होते ही मजूर कर लेता। जब रजिस्ट्रार को भी विश्वास हो गया कि मै रुपये लेने के लिए अण्टसण्ट मुकदमे नही दायर करता, तब उन्होने भी वैसा करना शुरू कर दिया। मेरा यह भी अनुभव हुआ कि जिस मुकदमे को मै यह समझकर कि उसमे कुछ जान नही है, नही दाखिल करता, मवक्किल दूसरे वकील की मार्फत दाखिल कराता और अन्त मे हार जाता।

१९—पटना आना और पटना-युनिवर्सिटी बिल

सन् १९१६ के मार्च मे पटने मे हाइकोर्ट खुला। सभी बिहारी वकील, जो कलकत्ता-हाइकोर्ट मे काम करते थे, और बहुतेरे बगाली वकील भी—जिनको बिहार के मुकदमे मिला करते थे—पटने चले आये। मै भी पटने चला आया। उन दिनो पटने मे मकान मिलना कठिन हो गया। भाडे का एक मकान लेकर मै रहने लगा। कलकत्ते मे ही मेरे हाथ मे मुकदमे बहुत रहा करते थे। पटने मे आने पर वकालत और भी चल निकली। मै भी बहुत जी लगाकर काम करने लगा। पर यह हाल थोडे ही दिनो तक रहा।

उसी समय कुछ महीनो के बाद, पटने मे युनिवर्सिटी कायम करने के लिए दिल्ली की कौन्सिल मे एक बिल पेश हुआ। हम लो ो ने उस बिल को बहुत खराब समझा। इसलिए उसके विरुद्ध आन्दोलन खडा किया गया। इसके पहले ही एक कमिटी बनी थी जिसने एक रिपोर्ट पेश की थी। उसकी मुख्य सिफारिशो ें एक यह भी थी कि शहर से तीन-चार मील की दूरी पर, फुलवारी शरीफ के नजदीक, युनिवर्सिटी कायम की जाय। उसकी इमारतो का खर्च भी प्राय एक करोड के लगभग बताया गया था। कलकत्ते मे ही मैंने उसका विरोध किया था। फिर जब मै बिहारी छात्र-सम्मेलन का सभापति हुआ तो उस हैसियत से भी उसका जबरदस्त खण्डन किया। हम लोग समझते थे कि ऐसा होने से गरीब लडको के लिए युनिवर्सिटी-शिक्षा असभव नही तो कठिन जरूर हो जायगी। वहाँ खर्च भी अधिक पडेगा और शहर से दूर होने के कारण सभी लडको को अधिक खर्च देकर होस्टल मे रहना होगा। वहाँ उनको कोई आजादी भी नही रहेगी। इत्यादि।

उस विरोध को साधारण जनता से बहुत मदद मिली थी। वह योजना एक प्रकार से स्थगित हो गयी। नये बिल के सम्बन्ध ें दूसरे प्रकार की बाधा थी। हम समझते थे कि सिनेट और सिण्डिकेट जैसा बनने जा रहे है वैसा बनने से तो उनमें जनता के सेवको को स्थान ही नही मिल सकेगा—सब सरकारी आदमी ही, सारी युनिवर्सिटी को अपने हाथो मे रखकर, सरकारी आज्ञा के अनुसार, मनमाने ग से चलावेगे।

हमारे सामने कलकत्ता-युनिवर्सिटी थी। वहाँ के वाइस-चान्सलर लोगो ने शिक्षा के प्रचार मे बडी निर्भीकता से काम किया था। विशेष करके सर आशुतोष हमारी आँखो के सामने थे। पर वहाँ के सिण्डिकेट और सिनेट अगर सर आशुतोष का साथ न देते तो वह बहुत कुछ न कर पाते। हम समझते थे कि हमारे यहाँ पहले तो उनके ऐसा आदमी जल्दी नही मिलेगा और अगर मिला भी तो वह सिनेट और सिण्डिकेट के विरोध के सामने कुछ कर न सकेगा। इसलिए हम चाहते थे कि सिनेट और सिण्डिकेट मे शिक्षको के अलावा दूसरे लोगो को, जनता के प्रतिनिधि के रूप मे, काफी जगहे दी जायँ।

युनिवर्सिटी-बिल के विरुद्ध बहुत बडा आन्दोलन हमने खडा किया। इस आन्दोलन मे मेरे मित्र बाबू वैद्यनाथ नारायण सिंह और मैंने बहुत बडा भाग लिया। एक प्रकार से इसके सगठनकर्ता हम ही दोनो थे। प्रत्येक जिले मे सभा की गई। हम दोनो ने अखबारो मे कई लेख लिखे। चूँकि बिल दिल्ली की कौन्सिल मे पेश हुआ था, इसलिए हमने जरूरी समझा कि और-और सूबो के मेम्बरो को भी बिहार के लोकमत से अवगत कर दे। सभी राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने विरोध किया। हमने पाँच या छ छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ इस सम्बन्ध मे लिखी और छपवाईं। अन्त मे बिहार प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का विशेष अधिवेशन करके इसपर विचार किया गया और सख्त विरोध हुआ। इस अधिवेशन के सभापति हुए थे पटने के नामी वकील रायबहादुर पूर्णेन्दु नारायण

सिंह। उन्होने बडी समालोचनात्मक वक्तृता दी और उसी के अनुरूप प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ।

इसी बीच लखनऊ मे, १९१६ के दिसम्बर मे, कॉंग्रेस हुई। वहॉं हम सब बडी सख्या मे गये। यद्यपि यह बिल एक खास प्रान्त (बिहार) से सम्बन्ध रखता था, और कॉंग्रेस ऐसे ही विषयो पर विचार किया करती थी जिनका सार्वदेशिक प्रभाव होता था, तथापि मैने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री पराजपे प्रभृति नेताओ से कहकर इस बिल के विरुद्ध प्रस्ताव उपस्थित करने का आयोजन किया। श्री पराजपे ने प्रस्ताव पेश किया और वह सर्व-सम्मति से पास हुआ। इस तरह बिल के विरुद्ध एक प्रकार का सार्वदेशिक आन्दोलन हो गया।

बिल के उपस्थित करनेवाले मेम्बर सर शकर नायर थे। उन्होने बिहार के मेम्बरो से सलाह की। बिल मे काफी सशोधन किया गया। जिन-जिन बातो का अधिक विरोध हुआ था उनमे परिवर्तन कर दिया गया। मजहरुलहक साहब बिहार के प्रतिनिधि थे। वह हम लोगो से बराबर राय लेते गये। अन्त मे हमारी सम्मति लेकर बहुत परिवर्तित रूप मे बिल स्वीकृत हुआ।

यह पहला ही मौका था जब मैंने बिहार मे सरकार के विरुद्ध एक इतना बडा आन्दोलन खडा कर दिया था और इसमे सफलता भी मिली थी। इसी समय से मै कॉंग्रेस के काम मे अधिक भाग लेने लगा। यो तो मै १९११ से ही बराबर अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी का मेम्बर होता रहता, पर जब तक कलकत्ते मे था, कुछ विशेष काम न कर सका। जब बिहार मे आया तो लोगो का ध्यान भी मेरी तरफ गया और मैने भी महसूस किया कि सार्वजनिक कामो मे कुछ अधिक दिलचस्पी लेना जरूरी है। थोडे ही दिनो मे मै बिहार प्रान्तीय कॉंग्रेस-कमिटी का सहकारी मत्री भी बना दिया गया। इस पद पर मै कई बरसो तक रहा। जब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ और पुराने कॉंग्रेसी लोग अलग हो गये तब मै मत्री हो गया। जब युनिवर्सिटी बनी तो गवर्नर ने मुझे सिनेट का मेम्बर बना दिया।

१९१६ की कॉंग्रेस मे बिहार-सम्बन्धी एक दूसरा प्रस्ताव भी पास हुआ था—चम्पारन के निलहे गोरो के विरुद्ध। इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

हिन्दी तथा सेवाकार्य

कलकत्ते से पटने आने के पहले एक दो बाते और हुईं जिनका जिक्र कर देना उचित जान पडता है। छात्र-सम्मेलन का जिक्र तो आ ही चुका है। छात्रावस्था समाप्त हो जाने के बाद भी, जब मै वकालत करता था, छात्र-सम्मेलन के साथ मेरा सम्बन्ध कायम रहा। छात्र लोग भी मेरा बहुत विश्वास करते और मै भी अपने को उनमे से ही एक समझता।

छात्र-सम्मेलन के मुंगेरवाले अधिवेशन का मै सभापति बनाया गया। उसी मे युनिवर्सिटी-सम्बन्धी नेथन-कमिटी की रिपोर्ट का विरोध किया गया था। इसके

अलावा जहाँ जहाँ अधिवेशन होता, मैं जाता और दूसरे प्रकार से भी सगठन को सहायता देता।

उन्ही दिनो हिन्दी के साथ भी प्रेम बढा। स्कूल मे, एक या दो बरसो तक, नीचे के वर्ग मे, मैंने सस्कृत पढी। उसके बाद फारसी पढने लगा। सस्कृत छोडने का मुख्य कारण यह था कि बाबूजी चाहते थे, मैं वकील बनूँ। उनका खयाल था कि मुकदमे के कागज-पत्र फारसी मे लिखे मिलते है, इसलिए फारसी पढने से वकालत मे मदद मिलेगी। पीछे मैंने घर पर कुछ सस्कृत पढने की कोशिश भी की थी, पर वह बहुत दिन चल न सकी। इसलिए स्कूल और कालेज मे मैंने बराबर फारसी ही पढी। फारसी में नम्बर भी खूब आता था। अगर फारसी का नम्बर न होता तो मै एण्ट्रेन्स मे औवल नहीं होता, क्योकि गणित मे मुझे कम नम्बर आये थे। हिन्दी पढने का तो कभी मौका ही नही आया। हिन्दी का अक्षर-मात्र जानता था। घर मे माँ आदि रामायण पढा करती थी। इसलिए मुझे भी रामायण पढने की चाह हो गयी थी। बहुत दिनो तक तो सवेरे रामायण का पाठ करके कुछ खाता-पीता। यह नियम कुछ दिनो तक चला था। हिन्दी के दूसरे ग्रन्थो को देखन का कभी मौका नही मिला था।

परीक्षा मे एक पर्चा आता था जिसमे अँगरेजी से किसी देशी भाषा मे और देशी भाषा से अँगरेजी मे उलथा करने को कुछ दिया जाता था। एण्ट्रेन्स और एफ० ए० की परीक्षा मे मैंने देशी भाषा के रूप मे उर्दू ही ली थी। बी० ए० मे पहुँचकर इच्छा हुई कि हिन्दी ले लूँ। बी० ए० मे एक निबन्ध भी लिखना पडता था। मैंने हिन्दी ले ली। हिन्दी मे पास भी कर गया। हिन्दी से सम्बन्ध इसी प्रकार आरम्भ हुआ।

कलकत्ते मे हिन्दी के लेखक, विद्वान्, साहित्यिक और सेवक कई सज्जन रहते थे। उनमे से पडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी बिहार के रहनेवाले थे। बिहारी-क्लब मे वह अक्सर आया-जाया करते थे। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रिन्सिपल पडित उमापतिदत्त शर्मा भी बिहारी थे। उनसे भी उसी क्लब मे मुलाकात हो गयी। इन लोगो के जरिये दूसरे लोगो से भी परिचय हो गया। कलकत्ते मे हिन्दी-साहित्य-परिषद की स्थापना हुई। उसमे मैं काफी दिलचस्पी लेने लगा। उसके जन्म का साल तो याद नही है, पर इतना याद है कि उसके अधिवेशनो मे मैंने भी कभी-कभी लेख पढे थे, जिनको विद्वानो ने पसन्द किया था। हममे से कुछ के दिल मे खयाल उठा कि अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी होना चाहिए; और इस विषय के लेख लिखे गये। हिन्दी-साहित्य-सेवियो ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और काशी मे पहला अधिवेशन हुआ। मैं भी उसमे उपस्थित था और पूज्य मालवीयजी सभापति हुए थे। इस प्रकार सम्मेलन के साथ मेरा सम्बन्ध उसके आरम्भ से ही हुआ।

जब तीसरा सम्मेलन कलकत्ते मे होनेवाला था तो मैं स्वागतकारणी समिति का प्रधान मत्री बनाया गया। अभी एक साल भी पूरा नहीं हुआ था कि मैंने वकालत शुरू की थी। बहुत लोगो मे जान-पहचान भी नही थी। तथापि लोगो की ऐसी इच्छा हुई और मुझे यह भार उठाना पडा। इस सिलसिले मे सम्मेलन के प्रमुख

नेताओ से परिचय हो गया। कलकत्ते के बडाबाजार के लोगो से तो विशेष परिचय हुआ। १९१२ के दिसम्बर मे, कलकत्ते मे सम्मेलन बडी सफलता से, पं० बदरीनारायण चौधुरी 'प्रेमघन' की अध्यक्षता मे, हो गया। यह पहला अवसर था कि मुझे किसी अखिलभारतीय सस्था के अधिवेशन के प्रबन्ध का भार उठाना पडा। कडा परिश्रम करना पडा, पर ईश्वर की दया से सब काम ठीक हो गया।

ठीक उसी समय पटने मे कांग्रेस होनेवाली थी। बिहारी होने की हैसियत से मुझे उसमे शरीक होना जरूरी मालूम पडता था और मै चाहता भी था। सम्मेलन की तिथियाँ भी ऐसी रखी गयी थीं कि कोई चाहे तो सम्मेलन का काम समाप्त करके पटने की कांग्रेस मे शरीक हो सकता था। पर स्वागत-समिति के प्रधान मत्री होने के कारण मुझ पर इतनी जवाबदेही थी कि मै कलकत्ते से न हट सका। इसलिए पटने की कांग्रेस मे शरीक न हो सका।

पटने मे पहुँचकर हम चन्द मित्रो ने गरीब विद्यार्थियो के सहायतार्थ एक कोष जमा किया, जिससे कुछ छात्रों को मदद दी जाती थी। यह काम छात्र-सम्मेलन ने ही आरम्भ किया था। पर पीछे मैने इसको अपने हाथ मे ले लिया था।

१९१४ मे बगाल और बिहार मे बडी भयकर बाढ आयी। पहली बाढ बर्दवान जिले मे थी। कलकत्ते मे बाढ-पीड़ितो की सहायता के लिए रुपये जमा किये गये। बहुत-से स्वयसेवक वहाँ गये। इसकी खबरे अखबारो मे खूब छपी। थोडे ही दिनो के बाद वैसी ही भयकर बाढ 'पुनपुन' नदी मे पटने मे भी आ गयी। हमने सोचा कि बाढपीडितो की कुछ मदद करनी चाहिए। कलकत्ते मे ही कुछ रुपये जमा किये। साथियो के साथ पटने पहुँचा। छात्र-सम्मेलन का दफ्तर तो पटने मे था ही। वहाँ से उत्साही छात्रो की मदद लेकर एक स्वयसेवक-दल कायम किया। बाढपीडित जगहो मे अन्न लेकर लोगो के सहायतार्थ पहुँचा। दशा भयकर थी। कई गॉव ऐसे थे जिनके भीतर घरो मे भी पानी पहुँच गया था। जब हम लोग पहुँचे तो उनके घरो मे जो अन्न था वह सड रहा था। इसलिए हम लोग तैयार भोजन—जैसे सत्तू, चिउरा, भूने हुए चने—अधिक बाँटते थे। नाव पर चढकर दूर तक निकल जाते थे। सध्या तक गॉव गाँव मे घूमकर, नजदीक पडनेवाले रेलवे स्टेशन के प्लैटफार्म पर जाकर सो रहते। मुझे याद है कि कई रात हमने प्लेटफार्म पर सोकर बितायी होगी। बिहार मे सेवा-समिति का पहला सगठन शायद यही था। यह कोई बाजाब्ता सगठन नही था। वक्ती तौर पर लोकसेवा के लिए यह सगठन कर लिया गया था। पर सेवा-समिति का जन्म तो इसी प्रकार से हो ही गया। जब हम लोग पटने आये तो सोनपुर के मेले मे यात्रियो की मदद करने के लिए उसका बाजाब्ता सगठन कर दिया गया। सेवासमिति मे मेरे भाई बहुत दिलचस्पी लेते थे। हर साल सोनपुर के मेले मे वे स्वय बहुत सेवा करते थे। मरने के समय तक कई बरसो से उसके अध्यक्ष वही थे।

बाढ-पीडितो की सेवा करते समय स्टेशन के प्लाटफार्म पर की एक स्मृति बहुत ही सुखद है। मै दिन-भर काम करके सो गया था। कुछ देर के बाद नीद टूटी।

अनुभव हुआ कि कोई आदमी बड़े प्रेम से मेरे पैर और बदन दबा रहा है और मेरी थकावट दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। देखा तो मेरे मित्र शम्भूशरण थे। वह भी दिन-भर मेरे साथ ही काम करके थके थे। पर उन्होंने अपनी थकावट की परवा न करके मुझे आराम पहुँचाया।

२०—गांधीजी से भेंट

१९१६ मे लखनऊ की काँग्रेस बडे समारोह के साथ हुई थी। १९०७ से जब काँग्रेस मे दो दल हो गये, और गरम पार्टी काँग्रेस से अलग हो गयी, तब से काँग्रेस की लोकप्रियता कम हो गयी थी। उसके सालाना जल्सो मे भी कम लोग आया करते थे। यहाँ तक कि १९१२ मे जब पटने मे काँग्रेस हुई, प्रतिनिधियो की सख्या बहुत कम थी। देश-हितैषियो की कोशिश थी कि दोनो दल मिला दिये जायँ जिससे कॉग्रेस मे फिर से जान आ जाय। यह प्रयत्न चलता रहा, पर यह सफल हुआ १९१६ की काँग्रेस मे ही। इसमे सभी विचार के लोग उपस्थित थे। एक तरफ लोकमान्य तिलक दल-बल के साथ आये थे। दूसरी ओर नरम दल के प्राय सभी नेता उपस्थित थे। मिसेज बेसेण्ट भी आयी थी। उसी साल मुस्लिम लीग के साथ समझौता भी हुआ। मुसलमान भी बडी सख्या मे उपस्थित थे। महात्मा गाधी भी इस काँग्रेस मे आये थे। वह १९१५ मे ही दक्खिन अफ्रिका से लौटकर सारे देश मे भ्रमण करते रहे। पर इस काँग्रेस मे वह किसी प्रस्ताव पर बोले नही।

बिहार के भी प्रतिनिधि अच्छी सख्या मे लखनऊ पहुँचे थे। उनमे कुछ लोग चम्पारन के थे, जिनमे एक देहाती किसान राजकुमार शुक्ल थे। वह थोडी हिन्दी जानते थे, पर और कोई भाषा नही। वह उन लोगो मे थे जिन्होने खुद नीलवरो (निलहे गोरो) के हाथ से दुख पाया था। चम्पारन जिले की सतायी हुई प्रजा की ओर से वह काग्रेस मे पहुँचे थे। उनसे मेरी मुलाकात कुछ पहले से ही थी, क्योकि जब कभी कोई मुकदमा हाइकोर्ट तक पहुँच पाता था तो मैं फीस का खयाल न करके उन लोगो के वकील की हैसियत से काम कर दिया करता था। पर इस काम मे बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद उन लोगो की बहुत मदद किया करते थे। इसलिए उन लोगो का विशेष परिचय उन्ही से था। चम्पारन जिले की परिस्थिति से वह बहुत ज्यादा परिचित थे।

उस समय बिहार के प्रतिनिधि दो विषयो मे विशेष दिलचस्पी रखते और काँग्रेस मे उन पर प्रस्ताव पास कराना चाहते थे—एक पटना-युनिवर्सिटी-बिल और दूसरा चम्पारन का नीलवर-प्रश्न। राजकुमार शुक्ल, बाबू ब्रजकिशोर प्रभृति बहुत चाहते थे कि काँग्रेस इस सवाल पर भी प्रस्ताव करे। बिहार-प्रान्तीय कान्फ्रेंस के सभापति की हैसियत से बाबू ब्रजकिशोर इस प्रश्न पर कडी आलोचना कर चुके थे। उस कान्फ्रेंस मे एक प्रस्ताव भी पास हो चुका था। कौन्सिल के वह मेम्बर थे। उन्होने वहाँ भी इस समस्या पर प्रश्न पूछे थे और एक प्रस्ताव भी रखा था। कौन्सिल मे

और बाहर भी, एक प्रकार से इस विषय को अपना लक्ष्य बनाकर, विधान के अन्दर इस पर जो काम हो सकता था, वह कर रहे थे। जहाँ तक हो सकता था, मुकदमो मे भी वहाँ की रियाया की मदद किया करते थे।

यह बात बिहार के लोगो को मालूम थी कि कर्मवीर गाधी दक्खिन अफ्रिका मे बहुत कुछ करके हिन्दुस्तान आये है, इसलिए उनसे इस काम मे मदद लेनी चाहिए। राजकुमार शुक्ल आदि उनसे मिले और चम्पारन का कुछ हाल कह सुनाया। उन्होने कुछ दिलचस्पी जाहिर की। इधर से कहा गया कि कॉग्रेस मे वह एक प्रस्ताव उपस्थित करे। उन्होने इन्कार कर दिया, कहा कि जब तक वहाँ की स्थिति वह स्वय देखकर और जॉच कर अपने को सतुष्ट नही कर लेगे, प्रस्ताव उपस्थित नही कर सकते। जोर देने पर उन्होने कहा कि वहाँ जाकर स्थिति देखने के लिए वह तैयार है और कुछ दिनो के बाद वहाँ जायँगे भी। कॉग्रेस मे प्रस्ताव बाबू व्रजकिशोर ने उपस्थित किया। राजकुमार शुक्ल भी उस पर कुछ बोले। यह शायद पहला ही मौका था जब एक निरा देहाती किसान कॉग्रेस के मच से किसी प्रस्ताव पर बोला हो। कॉग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत किया।

जब बिहार के प्रतिनिधि, बाबू व्रजकिशोर के साथ, गाधीजी के पास गये थे तब मै उनके साथ नही था। यह किस्सा मैने पीछे सुना। मै गाधीजी के बारे मे बहुत जानकारी नही रखता था। दक्खिन अफ्रिका मे उन्होने जो कुछ किया था उसकी जानकारी भी बहुत थोडी रखता था। केवल इतना ही जानता था कि उन्होने दक्खिन अफ्रिका मे कोई बडा और अच्छा काम किया है। यह नही जानता था कि वह देश के नामी नेताओ की तरह एक बडे नेता है। राजकुमार शुक्ल ने न मालूम क्यो उन पर इतना विश्वास किया और उनके पास पहुँचकर उनको चम्पारन आने के लिए राजी किया।

लखनऊ-कॉग्रेस के कुछ दिनो बाद गाधीजी कलकत्ते आये। उन्होने राजकुमार शुक्ल को पत्र लिखा कि कलकत्ते मे मुझसे मिलो—वहाँ से हम दोनो साथ ही चम्पारन चलेगे। देहात मे पत्र देर करके पहुँचा। राजकुमार शुक्ल के पास पत्र पहुँचने के पहले ही गाधीजी कलकत्ते से वापस चले गये थे। राजकुमार शुक्ल ने फिर पत्र लिखा। गाधीजी ने उत्तर दिया कि अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक कलकत्ते मे होगी, वह उस बैठक मे उपस्थित होगे, राजकुमार शुक्ल को वही उनसे भेट करना चाहिए। मै भी उस बैठक मे उपस्थित था। इत्तफाक से मै गाधीजी की बगल मे ही एक कुर्सी पर बैठा था। पर मुझे यह मालूम नही था कि राजकुमार शुक्ल से उनका पत्र-व्यवहार हुआ है और वह वहाँ से बिहार आनेवाले है। अपनी आदत से मजबूर मै किसी से जबरदस्ती या आगे बढकर जान-पहचान करना नही जानता। मैने गाधी जी से न कुछ पूछा, और न एक शब्द भी मै बोला। उस कमिटी मे लोगो ने, और विशेष करके प्रेसिडेण्ट श्री अम्बिकाचरण मजुमदार ने, बहुत जोर दिया कि गाधीजी कॉग्रेस के मत्री हो जायँ। पर गाधीजी ने इनकार कर दिया। मै बैठे-बैठे सब

देखता रहा। कभी-कभी मैं यह सोचता था कि जब लोगो का इतना आग्रह है तो उनका इनकार करना मुनासिब नही है। पर मैं कुछ बोल नही सकता था।

कमिटी की काम खतम होने पर गाधीजी बाहर निकले। राजकुमार शुक्ल उनका इन्तजार कर रहे थे। उसी रात को वह राजकुमार शुक्ल के साथ सीधे पटने चले आये। मैं कुछ देर करके बाहर आया। इसलिए उन लोगो से मुलाकात नही हुई। गाधीजी भी नही जानते थे कि मैं बिहार का ही रहनेवाला हूँ और राजकुमार शुक्ल पटने मे मेरे ही घर पर उनको ले जानेवाले है। इसलिए वह भी मुझसे कुछ नही बोले।

यह बैठक ईस्टर की छुट्टियो मे हुई थी। मैं कलकत्ते से जगन्नाथपुरी चला गया। गाधीजी पटने आ गये। राजकुमार शुक्ल उनको मेरे घर पर ले गये। पर वहाँ एक नौकर के सिवा और कोई था ही नही। नौकर ने समझा कि ये कोई देहाती मवक्किल आये है। इसलिए उसने उनको किसी बाहर के कमरे मे ठहरा दिया और किसी किस्म का आदर-सत्कार करने के बदले कुछ तिरस्कार का ही भाव दिखलाया। गाधीजी कुछ देर ठहरे। इतने मे मजहरुलहक साहब को खबर हुई। वह खुद आकर उनको अपने घर पर ले गये। सध्या को गाधीजी मुजफ्फरपुर पहुँचे। वहाँ आचार्य कृपलानी के पास ठहरे। वहाँ कुछ लोगो से भेट-मुलाकात करके उनका इरादा था कि चम्पारन जायँ। बाबू व्रजकिशोर, जो दरभगा मे वकालत किया करते थे, तार देकर बुला लिये गये थे।

गाधीजी का इरादा था कि वह चम्पारन मे जाकर वहाँ के रैयतो से मिले और उनका दुख उन्ही के मुँह से सुने। पर वहाँ की ग्रामीण बोली वह समझ नही सकते थे। इसलिए वह चाहते थे कि कोई दु-भाषिया का काम करने के लिए उनके साथ जाय। उनका विचार था कि दो-चार दिनो मे सब बाते मालूम हो जायँगी। राजकुमार शुक्ल ने भी ऐसा ही कहा था। इसलिए वह दो-चार दिनो के लिए ही तैयार होकर आये थे। बाबू व्रजकिशोर को ठीक उसी वक्त कलकत्ते मे कुछ काम था। वह खुद गाधीजी के साथ न जा सके। पर उन्होने दो मित्रो को गाधीजी के साथ कर दिया, जो वकील थे। उन्होने यह भी सोच लिया कि कलकत्ते से लौटने पर वह खुद चम्पारन जायँगे और जरूरत होगी तो मुझे भी साथ ले जायँगे।

चम्पारन जिले का सदर शहर मोतीहारी है। गाधीजी वहाँ पहुँचे। पहुँचने के बाद उन्होने देहात मे जाने का इरादा कर लिया। एक गाँव से एक प्रतिष्ठित रैयत आये, जिनका घर दो-चार ही दिन पहले नीलवर की ओर से लूट लिया गया था। उस लूट-खसोट के निशान अभी तक मौजूद थे। उन्होने आकर सारा किस्सा कहा। गाधीजी वही जाना चाहते थे। रास्ते मे ही कलक्टर का हुक्म पहुँचा कि आप जिला छोडकर चले जाइए। उन्होने जिला छोडने से इनकार कर दिया। वह उदूल-हुक्मी के मुकदमे का इन्तजार करने लगे। उसी दिन यह भी मालूम हो गया

कि मुकदमा चलेगा। मै उसी दिन पुरी से पटना लौटा था। कचहरी मे मेरे पास ये सारी बाते उन्होने तार द्वारा लिख भेजी।

यह पहला ही अवसर था जब गाधीजी से मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क हुआ। मैंने कलकत्ते तार देकर बाबू व्रजकिशोर को बुला लिया। दूसरे दिन सवेरे की गाडी से मिस्टर मजहरुलहक और मिस्टर पोलक—जो उस समय हिन्दुस्तान मे ही थे—उसी रात को, गाधीजी का तार पाकर, पटने पहुँच गये थे। बाबू व्रजकिशोर, अनुग्रह नारायण और शम्भूशरण के साथ मै मोतीहारी के लिए रवाना हो गया। हम लोग दिन मे तीन बजे के करीब, सिपहर को, वहाँ पहुँचे। उस समय तक मामला अदालत मे पेश हो चुका था, बल्कि सुनवाई के बाद हुक्म के लिए तीन-चार दिनो के वास्ते मुलतबी कर दिया गया था।

बाबू गोरखप्रसाद के मकान पर गाधीजी ठहरे थे। हम लोग जब वहाँ पहुँचे तो गाधीजी एक कुर्त्ता पहने हुए बै` थे। हम लोगो से उनका परिचय पहले से नही था। जब परिचय कराया गया तो मुझसे हँसते हुए उन्होने कहा—"आप आ गये? आपके घर पर तो मै गया था।" मैंने कुछ किस्सा तो सुन लिया था, इसलिए कुछ शर्मिन्दा भी हुआ। उन्होने, जो कुछ कचहरी मे हुआ था, सब कह सुनाया।

'चम्पारन मे महात्मा गाधी' नामक पुस्तक मे, जो उस आन्दोलन के सफलता-पूर्वक समाप्त होने के थोड़े ही दिनो बाद लिखी और प्रकाशित की गयी थी, मैंने चम्पारन का सारा किस्सा विस्तार-पूर्वक दे दिया है। यहाँ केवल अपने सम्बन्ध का ही जिक्र करना चाहता हूँ।

गाधीजी को पहले पहल देखकर मेरे ऊपर कोई खास असर नही पडा। मै चम्पारन का हाल थोडा-बहुत जानता था। पर अधिकतर बाबू व्रजकिशोर की आज्ञा मानने के लिए ही शुरू मे वहाँ गया था। सोचा था, जो कुछ काम होगा वह कर दिया जायगा। स्वप्न मे भी यह मन मे नही आया था कि वहाँ पहुँचते ही जेल जाने का जटिल प्रश्न हमारे सामने आयेगा।

गाधीजी ने सब बाते कहकर हमसे कहा कि अपने साथी बाबू धरनीधर और बाबू रामनौमी से और सब बाते सुन लीजिए। इतना कह वह मि० पोलक से बाते करने लगे। हम लोगो ने उन दोनो भाइयो से विस्तार-पूर्वक सारा हाल सुना। मालूम हुआ कि गाधीजी प्राय. रातभर जागकर वायसराय तथा नेताओ के पास भेजने के लिए पत्र लिखते रहे है और कचहरी के लिए अपना वयान भी उन्होने रात मे ही तैयार कर लिया था। उन दोनो से, जो दुभाषिया का काम करने के लिए ही आये थे, गाधीजी ने पूछा था कि मेरे कैद हो जाने के वाद आप लोग क्या करेंगे। वे लोग प्रश्न की गूढता को शायद पूरा समझ न सके थे। वावू धरनीधर ने मजाक मे कह दिया था कि आपके (गाधीजी के) कैद हो जाने के वाद दुभाषिया का काम नही रह जायगा—हम लोग अपने-अपने घर चले जायँगे। यह सुनकर गाधीजी ने प्रश्न किया—और इस काम को ऐसे ही छोड़ देंगे? इस पर उन लोगो को कुछ सोचना पडा। वावू धरनीधर ने, जो

वडे थे, उत्तर दिया कि वह जाँच का काम जारी रखेंगे, और जब उन पर भी सरकार की ओर से नोटिस हो जायगी, तो वह चूँकि जेल जाने के लिए तैयार नही है, खुद तो चले जायँगे और दूसरे वकील को भेजेंगे, जो जाँच का काम करेंगे, और अगर उन पर भी नोटिस हुई, तो वह भी चले जायँगे और उनके पीछे तीसरी टोली आयेगी—इस प्रकार काम जारी रखा जायगा।

यह सुनकर गाधीजी को कुछ सन्तोष हुआ, पर पूरा नही। उन लोगो को भी सन्तोष न हुआ। वे लोग रात को सोचते रहे कि यह आदमी न मालूम कहाँ से आकर यहाँ के रैयतो के कष्ट दूर करने के लिए जेल जा रहा है और हम लोग—जो यहाँ के रहनेवाले होकर रैयतो की मदद का दम भरा करते है—इस तरह घर चले जायँ, यह अच्छा नही मालूम होता।

पर जेल की बात अभी हम मे से किसी ने कभी सोची ही न थी। जेल तो एक भयकर जगह समझी जाती थी, जहाँ से गिरफ्तारी के बाद भी बचने के लिए लोग हजारो खर्च करके जमानत पर छुट्टी लिया करते थे। अगर कोई मजबूरी से जेल गया भी तो वहाँ रुपये खर्च करके आराम पाने का प्रबन्ध करता था। और, यहाँ यह आदमी, जो दक्खिन अफ्रिका मे इतना काम कर आया है, इन अनजान किसानो की खातिर सब कष्ट सहने के लिए तैयार है। ऐसी दशा मे भी हम घर चले जायँ, यह कैसे हो सकता है? इधर बाल-बच्चो की भी फिक्र थी!

रात-भर सोच-विचार करने के बाद, दूसरे दिन सवेरे, जब गाधीजी के साथ ये लोग कचहरी जा रहे थे, इनकी भावनाएँ उमड पडी। इन्होने साफ साफ कह दिया, आपके जेल जाने के बाद अगर जरूरत पडी तो हम लोग भी जेल जायँगे।

यह सुनते ही गाधीजी का चेहरा खिल उठा। वह बहुत ही खुश होकर बोल उठे—अब मामला फतह हो जायगा।

वहाँ पहुँचते ही ये सारी बाते हम लोगो ने उन दोनो भाइयो से सुनी। अब तो हमारे सामने भी जेल जाने का प्रश्न आ गया। हम लोगो ने तय कर लिया कि जरूरत पडने पर हम भी जेल जायँगे। यह निश्चय गाधीजी को हमने सुना दिया। उन्होने कागज-कलम लेकर सबके नाम लिख लिये। हम लोगो को कई टोलियो मे उन्होने बाँट दिया। यह भी तय कर दिया कि ये टोलिया किस क्रम से जेल जायँगी। पहली टोली के सरदार मजहरुलहक साहब थे, दूसरी के बाबू ब्रजकिशोर। एक टोली का सरदार मै भी बनाया गया। ये सारी बाते, वहाँ पहुँचने के तीन-चार घटो के अन्दर ही, तय हो गयी।

मुकदमे मे, तीन या चार दिनो के बाद हुक्म सुनाया जाने को था। उस दिन गाधीजी जेल जानेवाले थे। मजहरुलहक साहब के हाथ मे कोई मुकदमा गोरखपुर मे था। वह चले गये वहाँ, ताकि मामला खतम करके उस दिन के पहले ही वापस आकर नेतृत्व करेगे।

बाबू ब्रजकिशोर भी अपने घर का प्रबन्ध करने के लिए दरभगा चले गये।

हम लोग मोतीहारी मे ही ठहरकर किसानो के बयान सुनने और लिखने लगे। विचार था कि जब ये दोनो सज्जन वापस आ जायँगे तब हम लोग भी एक-एक करके घर जायँगे और घर के लोगो से मिलजुलकर जेल-यात्रा की तैयारी करके लौट आयँगे।

गाधीजी ने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है कि इससे वह सन्तुष्ट हुए थे, और उसी दिन से बिहार के प्रति उनका बहुत प्रेम हो गया और हम लोग उनके विश्वासपात्र बन गये।

चम्पारन की जाँच शुरू हो गयी। हजारो की तायदाद मे किसानो ने बयान लिखवाये। शायद २०–२५ हजार बयान हम लोगो ने लिखे होगे। तारीख के पहले ही मजिस्ट्रेट ने लिख भेजा कि सरकार के हुक्म से गाधीजी पर से मुकदमा उठा लिया गया और उनको जिले मे जॉच करने की इजाजत दे दी गयी। जाँच से पता चला कि जो कुछ जुल्म हमने सुना था, वहाँ की परिस्थिति उससे कही अधिक बुरी थी। अगले अध्याय मे इसका हाल सक्षेप मे बताऊँगा। यहाँ पर इतना ही कह देना काफी है कि पहली मुलाकात मे ही हम लोग अपनी इच्छा से गाधीजी के फाँस मे फँस गये। ज्यो-ज्यों दिन बीतते गये, उनके साथ केवल प्रेम ही नही बढा, उनकी कार्य-पद्धति पर विश्वास भी बढता गया। चम्पारन का काण्ड समाप्त होते होते हम सबके सब उनके अनन्य भक्त और उनकी कार्यप्रणाली के पक्के हामी बन चुके थे।

२१—चम्पारन

चम्पारन-जिले मे अँगरेज प्राय एक सौ बरसो से नील की खेती करते और कराते थे। प्राय सारे जिले भर मे जहाँ-जहाँ नील हो सकती थी, उन्होंने अपने नील बनाने के कारखाने खोल लिये थे और बहुत जमीन भी अपने कब्जे मे कर ली थी जिसमे वे खुद अपने हल-बैल से नील की खेती कराते थे। जिले का बहुत बडा हिस्सा बेतिया-राज की जमीन्दारी मे है। उन्होने बहुत-से गाँवो की जमीन्दारी मालगुजारी वसूल करने का ठेका राज से ले लिया था और इस जरिया से उन गाँवो पर उनका कब्जा हो गया था। जिन गाँवो पर उनका कब्जा हो गया उनमे रहनेवाले रैयतो को भी वे मजबूर करते कि वे लोग अपनी जमीन मे भी इन नीलवरो के लिए नील बोया करे। आहिस्ता-आहिस्ता उन्होने इसको एक कानूनी जामा भी पहना दिया, और यह दावा भी करने लगे कि उनको इस बात का हक है कि रैयत को वे मजबूर कर सकते है कि अपने खेत के फी बीघे मे पाँच कट्ठे या तीन कट्ठे जमीन मे वह जरूर नील बोवे। इस प्रथा को वे पँच-कठिया या तीन-कठिया कहते थे। किसी रैयत की हिम्मत नही पडती थी कि वह नील बोने से इनकार करे। अगर कोई हिम्मत करता तो उस पर हजार तरह के जुल्म करके उसको मजबूर कर दिया जाता। घर और खेत लूट लिये जाते। खेत मवेशियो से चरा दिया जाता। झूठे मुकदमे लगा दिये जाते। जुर्माना वसूल किया जाता। पीटा भी जाता। इस डर के मारे प्राय

सभी रैयत तीनकठिया मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। उनके खेतो मे जो सबसे बेहतर खेत होते, नीलवर उन्ही को चुनकर नील बोने के लिए कहते। नील बोने का काम काश्तकारी के और सब कामों से पहले ही पूरा करना होता। जब नील तैयार हो जाती तब उसे काटकर कोठी पर पहुँचा देना होता। इसके लिए रैयत को वे कुछ बीघा पीछे दिया करते थे जो कभी खर्चे के लिए भी पूरा नही होता। गवर्नमेण्ट के अफसर उन गोरो की ही मदद करते। अगर कोई अफसर हिम्मत करके इनसाफ करना चाहता तो नीलवरो का असर ऊपर के अफसरों पर इतना होता कि उस मातहत अफसर पर आफत आ जाती। जो अफसर सच्चे होते, नीलवरो के जुल्म और तीनकठिया के खिलाफ गवर्नमेण्ट के पास रिपोर्ट भेजा करते, पर इससे कुछ होता-जाता नही। कभी-कभी घबराकर रैयत बलवा कर देते, किसी नीलवर को मार देते या आपस मे मिलकर कुछ दूसरे प्रकार का तहलका मचा देते। पर तब भी वे नीलवरों का मुकाबला कैसे कर सकते थे। नतीजा यह होता कि गाँव के गाँव लूट लिये जाते। पुलिस और कचहरी के अमलो की मदद से बेचारे रैयत हर तरह से ज़ेर कर दिये जाते।

गवर्नमेण्ट पर निलहे गोरो का इतना असर था कि लगान-कानून (Tenance act) मे उन्होने एक दफा बनवा दिया कि जमीन्दार की मर्जी के मुताबिक जहाँ रैयत कोई खास फसल बोने के लिए मजबूर किया जा सकता है वहाँ अगर वह इस शर्त से अपनी रिहाई चाहे, तो जमीन्दार को हक है कि इस रिहाई के बदले मे जितना चाहे उतना लगान बढा दे सकता है। मामूली तौर से जमीन्दार को यह हक नही था कि मनमाना लगान बढा सके। वह बाजाब्ता रजिस्ट्री पट्टे से रुपये मे दो आने से ज्यादा लगान नही बढा सकता था और एक बार बढा देने पर एक लम्बी मुद्दत तक लगान मे फिर इजाफा नही किया जा सकता था। नीलवरों के फायदे के लिए यह हद हटा दी गई थी।

बेतिया-राज को रुपये की जरूरत पड़ी। उसने कुछ कर्ज लिया। यह कर्ज नीलवरो की मदद से इगलैड से मिला। सूद और असल की वसूली के लिए नीलवरो को गाँवो पर कब्जा दिया गया और बहुतेरे गाँवों मे उन्हे मुकर्री हक मिल गया। मुकर्री हक का मतलब यह कि वे एक तरह से गाँवो के जमीन्दार हो गये। केवल एक मुकर्रर (निश्चित) रकम उनको हर साल मालगुजारी के रूप मे राज को देनी पडती। उस गाँव से वे जो चाहे और जितना चाहे, पैदा कर सकते थे, राज का उस पर कोई हक नही था। उसे केवल वह मुकर्रर रकम ही मिल सकती थी। ऐसे मुकर्री गाँवो मे लगान बढाया जाय, और एक के बदले दो की आमदनी हो जाय, तो मुकर्रीदार की आमदनी बढेगी—राज को जो पहले मिलता था, वही मिलेगा। जिन गाँवो मे उन निलहो का मुकर्री हक नही था, उन गाँवो का उनको केवल नियत मीयाद के लिए ठीका मिला था। वहाँ भी नियत रकम राज को देनी पडती, पर मीयाद पूरी हो जाने पर राज को अख्तियार था कि फिर ठीका दे या न दे और अगर दे तो नई शर्तो पर दे, और ठीकेदार जो मालगुजारी राज को देता था उसे राज चाहे तो बढा दे।

यद्यपि ऐसा शायद ही कभी होता था कि कोई ठीके का गाँव नीलवर के हाथ से मीयाद पुरने पर निकाला जाता हो या उसकी मालगुजारी बढाई जाती हो, तथापि राज को अधिकार तो ऐसा करने का था ही।

बेतिया के महाराजा मर गये। महारानी को पागल करार देकर सारा राज कोर्ट आफ वार्ड्स मे आ गया। कोर्ट का एक मैनेजर उन्ही नीलवरो मे से मुकर्रर किया गया। इस प्रकार प्राय बीस बरसों तक नीलवरो के कब्जे मे ही राज रहा। जिस समय गाधीजी चम्पारन पहुँचे थे, उस समय एक सिविलियन मैनेजर था। उसके बाद कोई नीलवर फिर मैनेजर नही हुआ। इस तरह अपने खेत मे और रैयतो के खेतो मे तीन-कठिया के जरिये नील आबाद कराकर पौधे से नील तैयार करायी जाती थी। यह नील बोने की प्रथा बिहार के दूसरे जिलों मे भी फैली थी। पर इसका जितना जोर चम्पारन मे था उतना और कही नही। अगर नील की खेती वे खुद करते और रैयतों से जबरदस्ती इस तरह नील न बुवाते तो उनको इसमे कोई लाभ न होता। इसलिए यह जबरदस्ती की प्रथा कायम रखना जरूरी हो गया और वह चलती रही।

इस बीच मे जर्मनी मे दूसरे प्रकार से रग बनाने के तरीके का आविष्कार किया गया, जो नील के रग से सस्ता पडता था। नील की कीमत घट गयी। जुल्म और जबरदस्ती से नील पैदा कराये जाने के बावजूद नील मे नफा नही रह गया। नीलवरो ने अपने इस नुकसान को गरीब रैयतो के सिर पर डालकर अपना नफा कायम रखना चाहा। इसलिए उन्होने कानून के उस दफे की शरण ली जिसमे रैयतो को नील की खेती से रिहाई देकर उनको लगान मे मनमाना इजाफा करने का हक दिया गया था। रैयतो से उन्होने कहा कि वे नील बोने से उन्हे रिहाई दे देंगे अगर रैयत इजाफा के पट्टे तामील कर दे। रैयत यह जानते थे कि नील से नीलवरो को अब नफा न रहा, इसलिए अब वे इस कारबार को खुद छोड देंगे, इसलिए उनको लगान मे बढती कबूल करके यह रिहाई लेने की जरूरत नही है। जब तक नील मे मुनाफा था तब तक तो नीलवरो ने उनकी हजार कोशिश पर भी यह रिहाई दी नही, अब अपने मतलब से जबरदस्ती रिहाई देना उन्होंने शुरू कर दिया। हजारो हजार की तायदाद मे उन्होने अपने मुकर्री गाँवो के रैयतों से, जहाँ लगान की बढती का नफा उनको मिलता था और बेतिया-राज का उस पर हक नही पहुँचता था, इजाफा के पट्टे तामील करा लिये। ये पट्टे मार-पीट, झूठ-फरेब और जबरदस्ती से तामील कराये गये थे। इस प्रकार उन्होने उन गाँवो मे लाखों की आमदनी बढा ली। जहाँ उनका हक केवल ठीकेदार का था और मीयाद पूरी होने पर इजाफे का नफा बेतिया-राज को मिलता था, वहाँ पर लगान मे बढती न कराकर उन्होने नगद रुपये वसूल किये। जिस रैयत के पास रुपये नही थे उससे हैण्डनोट लिखवाया और दूसरे तरीको से भी रुपये लिये। इस प्रकार प्राय बीस-पचीस लाख नगद वसूल किया।

चम्पारन का कुछ हिस्सा ऐसा भी है जहाँ नील की खेती हो ही नही सकती। वहाँ के गाँवों मे नीलवर नील की खेती न कराकर किसी दूसरे तरीके से ही रुपये

अजीब जागृति पैदा हो गयी थी। वहाँ के रैयत इस प्रकार दवाये गये थे कि उनकी यह भी हिम्मत नही होती थी कि वे कचहरी मे जाकर नालिश करे। अगर कोई बहुत हिम्मत करके ऐसा करता भी तो कोठी का सिपाही इजलास पर से उसको पकडकर खीच लाता और खूब पीटता। जब गाधीजी चम्पारन के रास्ते मे मुजफ्फरपुर पहुँचे, बहुतेरे रैयत मुजफ्फरपुर तक आ गये। उन लोगो ने अपना दुखडा कह सुनाया। वहाँ नीलवरों की सस्था (प्लैण्टर्स एसोसिएशन) के मत्री तथा तिर्हुत-डिवीजन के कमिश्नर ने गाधीजी को चम्पारन जाने से मना किया, कहा कि गवर्नमेण्ट खुद रैयतो की शिकायत पर विचार कर रही है—वह सर्वे-सेटलमेण्ट की रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रही है। उन्होने इस पर भी जोर दिया कि इस लडाई के जमाने मे आप वहाँ जाकर हलचल शुरू करेगे तो अच्छा न होगा—बलवा-फसाद होगा। हमारे अपने देशी लोगो ने भी बताया कि लडाई का नाजुक समय है, फसाद पैदा होना किसी तरह अच्छा नही है। पर जो कुछ गाधीजी ने सुना उससे उनकी इच्छा और भी प्रबल हो गयी। उन्होने निश्चय कर लिया कि चम्पारन जाना ही चाहिए।

गाधीजी के चम्पारन पहुँचते ही रैयतो के दिल से डर न मालूम कहाँ भाग गया। जो अदालत मे भी जाने से डरते थे वे गाधीजी के पास बहुत बडी सख्या मे आकर अपना दुख बताने लगे। उन लोगो के सीधे-सादे हृदय पर न मालूम कहाँ से यह अमिट छाप पड गयी कि उनका उद्धारक आ गया, अब उनका दुःख दूर हो जायगा।

जिस दिन गाधीजी पर मुकदमा चला और वह अदालत मे गये, गाँवो से हजारो की तायदाद मे रैयत वहाँ आये थे। इतनी भीड हो गयी कि अदालत के दरवाजे टूट गये। अदालत मे गाधीजी ने बयान दे दिया। मुकदमा खतम हो गया। तीन-चार दिनों के बाद गाधीजी की रिहाई हो गयी। उनको यह इजाजत हो गयी कि वह जाँच कर सकते है। अब हजारो की तायदाद मे रैयत आये। सबने अपना-अपना बयान लिखाया। हम लोग बयान लिखने मे लग गये। गाधीजी ने हम लोगो को हिदायत की थी कि तुम लोग वकील हो, खूब जाँच-बूझकर और जिरह करके बयान लिखना। जो बाते लिखी जायँ वे सच्ची हो।

हम लोग सवेरे ६ बजे स्नानादि से निवृत्त होकर बयान लिखने लगते। दिन के ग्यारह बजे तक लिखते। फिर भोजन और कुछ आराम के बाद एक या डेढ बजे से पाँच बजे शाम तक। फिर सध्या का भोजन करते और गाधीजी के साथ टहलने जाते। बीच मे जब कोई ऐसा बयान आता जिसे गाधीजी को तुरन्त बतला देना जरूरी समझा जाता तो उनसे वह तुरत कह दिया जाता। नही तो बयान लिख-लिखकर उनको देते जाते और वह पढते जाते। इस प्रकार हम लोग कई दलो मे बँटकर बहुत दिनो तक बयान लिखते रहे। प्राय. बाईस या पचीस हजार रैयतो के बयान लिखे गये। इससे सारे जिले मे हलचल मच गयी। हम लोग कभी बेतिया मे रहते और कभी मोती-हारी मे। कुछ दिनो के बाद दो दलो मे विभक्त होकर मोतीहारी और बेतिया दोनो जगहो मे बयान लिखे जाने लगे। कभी कभी महात्माजी गाँवो मे भी जाते या हम

लोगों मे से किसी को कोई विशेष बात दरियाफ्त करने के लिए गाँवो मे भेजते। हम सबको गाधीजी का हुक्म था कि कही कोई सभा करके व्याख्यान न दे। हम लोगो मे से किसी ने उन दिनों चम्पारन मे एक भी सभा मे व्याख्यान नही दिया और न गाधीजी ने स्वय ऐसा किया।

उन दिनो देश मे होमरूल (स्वराज्य) का आन्दोलन खूब चल रहा था। गाधीजी हम लोगों से कहा करते, तुम लोग यह सबसे बडे होमरूल का काम कर रहे हो। अगर तुम लोग उस आन्दोलन मे शरीक न होगे तो कोई हर्ज नही है।

हम लोगो की जाँच का नतीजा यह हुआ कि चम्पारन के मुकामी अफसर बहुत घबराने लगे। उनमे से कितनो के दिल पर यह असर हुआ कि चम्पारन से अँगरेजी राज उठा जा रहा है—लोग यह समझने लगे है कि गाधीजी ही सबसे बडे अफसर है जिसके सामने जिला-कलक्टर और मजिस्ट्रेट के खिलाफ भी शिकायत की जा सकती है—नीलवरो का रोब तो उठ ही गया, हम अफसरो का रोब भी उठा जा रहा है। इसलिए घबराकर उन लोगों ने प्रान्तीय सरकार के पास रिपोर्ट भेजी। प्रान्तीय सरकार ने गाधीजी को अपने एक मेम्बर से भेट करने के लिए लिखा। वह पटने मे आकर उनसे मिले। उस वक्त तक जितनी शिकायते आ गयी थी, सबका एक खुलासा ब्योरा बनाकर उनको दिया। सरकारी मेम्बर ने उसे गवर्नमेण्ट के पास पेश किया। उस पर विचार होने लगा। इधर हमारा जाँच का काम चलता रहा। अब तक बयान बहुत लिखे जा चुके थे। इसलिए बयान लिखना कुछ मुख्तसर कर दिया गया। मगर देहातो मे जाकर देखना-सुनना ज्यादा हो गया। गाधीजी से नीलवरो की भी कुछ राय-बात हो गयी थी। वे भी उनको कही-कही ले जाते, अपनी बाते कहते, या जो कुछ दिखलाना होता, दिखलाते थे।

हम लोगो के लिए गाधीजी का तरीका एक बिलकुल नया तरीका था। उस तरह का काम हमने पहले कभी किया ही न था। हम समझते थे कि काँग्रेस मे अथवा किसी सभा मे किसी विषय पर व्याख्यान दे देना, अदालत मे जाने लायक बात को वहाँ पेश कर देना, या जो कौन्सिल मे प्रश्न कर सकता हो उसका किसी बात पर वहाँ प्रश्न कर देना या प्रस्ताव उपस्थित कर देना ही काफी है। इससे अधिक हो ही क्या सकता है। गाधीजी ने इनमे से एक बात भी न की। उन्होने रैयतो के बयान लिये। इस तरह उन्होने पहले सब बातों की ठीक-ठीक जानकारी हासिल कर ली। इस तरह बयान लेने से ही रैयतो का डर छूटता गया। हम लोगो को भी ऐसी-ऐसी बाते मालूम होने लगी जिनका होना हमने स्वप्न मे भी मुमकिन नही समझा था। हम लोग भी निडर होते गये। एक-दो विशेष घटनाएँ यहाँ बता देने से ही यह साफ हो जायगा।

ऊपर कहा गया है कि हम लोग कई दलो मे बँटकर बयान लिखा करते थे। पुलिस के आदमी आस-पास मे लगे रहते थे। वे रैयतो के नाम इत्यादि नोट कर लिया करते थे। इसी तरह नीलवरों के आदमी भी रैयतो के नाम इत्यादि जानकर अपने

मालिक के पास सब बातो की रिपोर्ट पहुँचा देते। काम शुरू करने के दो-तीन दिनो के अन्दर ही एक घटना हो गयी। जहाँ हममे से एक आदमी बयान लिख रहे थे, पुलिस का सब-इन्सपेक्टर आकर बैठ गया। तब वह उस जगह से उठकर, रैयतो को साथ लेकर, कुछ दूर पर दूसरी जगह जाकर, बयान लिखने लगे। पुलिस सब-इन्सपेक्टर वहाँ भी पहुँच गया। उनको कुछ गुस्सा आ गया। उन्होने डॉटकर सब-इन्सपेक्टर को कहा—आपको जो कुछ देखना-सुनना हो, दूर से ही देखे-सुने, इतना नजदीक न आवे। सब-इन्सपेक्टर ने महात्माजी से इस बात की शिकायत की। कहा—"हम लोगो को ऊपर का हुक्म है कि जो कुछ हो रहा है उसकी हम खबर रक्खे। जब आपके आदमी नजदीक आने ही नही देगे तब हम कैसे इस हुक्म को बजा लावे।"

गाधीजी ने बयान लिखनेवाले सज्जन को बुलाया और पूछा कि क्या बात है। उन्होने जो कुछ सब-इन्सपेक्टर ने कहा था, उसे कबूल किया। तब गाधीजी ने पूछा—आप अकेले थे या आपके साथ और लोग भी थे ? उन्होने कहा कि बहुतेरे रैयत घेरे बैठे थे और एक-एक करके बयान लिखा रहे थे। गाधीजी ने फिर पूछा कि आप कोई गुप्त काम तो नही कर रहे थे। उन्होने कहा कि नही। गाधीजी ने फिर पूछा, तब सब-इन्सपेक्टर से क्यो छिपाने की कोशिश कर रहे थे ? उन्होने कहा, छिपाने की कोई बात नही थी, मगर यह आकर पास मे ही बैठ जाते थे। मैने इनको कुछ दूर रहकर देखने-सुनने को कहा। गाधीजी ने कहा—"इतने रैयत जब आपको घेरे हुए थे और उनसे आपके काम मे कोई बाधा नही पडती थी, तब एक आदमी और भी अगर वहाँ आ बैठा तो आपने क्यो बाधा महसूस की। आपने इनको भी उन रैयतो-जैसा ही क्यो नही समझा ?"

यह सुनते ही सब-इन्सपेक्टर पर मानो घडो पानी पड गया। पर वह कुछ कह भी नही सकता था। वह तो अपना रोब बढाने के लिए आया था। यहाँ गाधीजी ने कह दिया कि उसका दर्जा किसी रैयत से ज्यादा नही है और उसके साथ भी रैयतो जैसा ही व्यवहार होना चाहिए। इसके बाद हममे से कोई किसी पुलिस-अफसर के पास आने से न घबराता और न कोई पुलिस-अफसर अधिक नजदीक आने की कोशिश करता।

जिस समय गाधीजी पर मुकदमा चलकर फैसले के लिए मुलतवी हो चुका था, उसी समय दीनबन्धु एण्डरूज आये। वह स्टेशन से एक एक्के पर आये। उनको एक्के पर चढने का तरीका नही मालूम था, इससे उनके जूते पहिये मे लगकर घिस गये। इस तरह का अँगरेज, जो उलूल-जुलूल कपडे पहने हो, जो एक्के पर चढता हो और जो हिन्दुस्तानियो से खुलकर मिलता-जुलता हो, हमने अपने होश मे नही देखा था। यह भी सुना कि वह एक बहुत प्रतिष्ठित आदमी है, जिसकी पहुँच वायसराय तक है और जो दुनिया भर मे चक्कर लगाया करता है। उस समय जो उनसे मुलाकात हुई, उनकी सादगी और सचाई की जो छाप पडी, वह दिन-दिन गहरी होती गयी। मेरे साथ तो उनका मानो एक प्रकार का बन्धुत्व स्थापित हो गया जो उनके मरने के समय

तक बना रहा। उनके फीजीद्वीप जाने की बात थी। वहाँ से उनकी बुलाहट आई थी। वह महात्माजी से भेट करके वहाँ जानेवाले थे। इसी बीच मे चम्पारन मे महात्माजी पर मुकदमा चल गया। उन्ही से मिलने वह चले आये। हम लोगो से उनकी बाते हुई। हम लोग चाहते थे कि वह वहाँ ठहर जायँ। अभी गाधीजी के मुकदमे का फैसला नही हुआ था। पता भी न था कि क्या होगा। हम लोग समझते थे कि सजा हो जायगी। इसलिए अगर एण्डरूज जैसा एक अनुभवी आदमी रह जाय तो आगे के काम मे मदद मिलेगी। ये सब बाते हम लोगो ने उनसे कही और जोर दिया कि वह रह जायँ। वह कुछ राजी भी हुए कि फीजी कुछ दिनो के बाद जायँगे। मगर इसके लिए गाधीजी की अनुमति चाहिए थी। उनकी अनुमति के बिना वह नही ठहर सकते थे। इसलिए यह बात गाधीजी से कही गयी, उन पर बहुत जोर डाला गया।

सब बाते सुनकर गाधीजी ने कहा—"आप लोग जितना जोर डाल रहे है कि एण्डरूज को रहना चाहिए उतना ही मेरा निश्चय दृढ होता जा रहा है कि उनको नही रहना चाहिए, उन्हे जरूर चला जाना चाहिए। आप लोगो के दिल मे गवर्नमेण्ट और अँगरेज नीलवरो का डर है। आप समझते है कि एक अँगरेज रहेगा तो आपका सहारा होगा। आप इसी कारण से एण्डरूज को रोकना चाहते है। मै चाहता हूँ कि यह डर आपके दिल से निकल जाय और यह भाव भी निकल जाय कि अँगरेज मे और आप लोगो मे कोई फर्क है। आपको अपने ऊपर भरोसा करना होगा। इसलिए एण्डरूज को कल ही यहाँ से जाना चाहिए।"

एण्डरूज से भी उन्होने कहा कि फीजी का काम भी जरूरी है, वह किसी तरह रोका नही जा सकता। इसलिए एण्डरूज दूसरे दिन सुबह जाने के लिए तैयार हो गये। हम लोगो ने भी समझ लिया कि महात्माजी बात ठीक कह रहे है, हमारे दिल की जो बात है, उन्होने ठीक पकड ली है।

दूसरे दिन एण्डरूज जाने के पहले डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से मिलने गये। उसन कहा, गवर्नमेण्ट का हुक्म आ गया है कि मुकदमा उठा लिया जाय, मै कुछ देर के बाद बाजाब्ता सूचना भेज दूँगा। एण्डरूज ने रवाना होने के पहले यह खबर हम लोगो को सुना दी। हम लोगो का उत्साह और भी बढ गया।

एक बार एक नीलवर ने महात्माजी से अपनी तारीफ की। कहने लगा कि उसके इलाके मे रैयत खुश है, उनको कोई शिकायत नही है। उसने महात्माजी को वहाँ खुद जाकर देखने के लिए निमन्त्रित किया। महात्माजी के साथ मै भी गया। उसने इन्तजाम किया था कि कुछ लोग आकर ऐसा ही कहेगे। हम लोग पैदल ही जा रहे थे। कुछ चार-पाँच मील की दूरी पर वह गाँव था जहाँ उसने बुलाया था। रास्ते मे ही बहुतेरे रैयत मिले। उन्होने कहा कि साहब ने कुछ लोगो को जमा कर रखा है जो उसकी तारीफ करेगे। महात्माजी ने कहा, अगर तुम लोगो को तकलीफ या शिकायत हो तो तुम भी वहाँ साहब के मुकाबले मे ही कहना। हम लोगो ने उस इलाके के रैयतो के बयानो को देख लिया था और महात्माजी को बता दिया था कि

शिकायते क्या है। वहाँ दो-तीन सौ आदमियो की एक सभा हो गयी। उस नीलवर के अलावा वहाँ के सब डिवीजन का मजिस्ट्रेट भी हाजिर था। दो-चार रैयतो ने कहा कि उनको बहुत सुख है, उन्हे कोई शिकायत नही है। उनके बोलते ही दूसरे शोर करने लगे कि ये सिखाकर लाये गये है, झूठ कह रहे है। महात्माजी ने उनको रोका और अपनी बाते पीछे कहने को कहा। जब उनकी बारी आयी तो उन्होने वही शिकायते की जो हम लोगो के पास बयान मे लिखाई थी। मजिस्ट्रेट की भी शिकायत एक आदमी करने लगा। कहने लगा कि ये सब लोग मिले हुए है, इनके पास कोई इन्साफ नही हो सकता। उसने एक खास घटना का जिक्र करके मजिस्ट्रेट से ही सवाल कर दिया। मजिस्ट्रेट तुरत उठकर चला गया। दूसरे ही दिन साहब ने अपने एक छोटे बँगले मे आग लगवा दी। चाहा कि सब रैयतो को आग-लगी के मुकदमे मे फँसावे और गाँव लुटवा दे। यह आग रात को लगाई गई। वह खुद इन्तजार मे बैठा रहा कि जब खबर मिले, पुलिस की मदद लेकर लूट-पाट किया जाय। पर जिस आदमी के जिम्मे खबर देने का काम सौपा था, उसने जान-बूझकर खबर नही दी, बहाना करके दूसरे दिन खबर देने गया। इस बीच मे हम लोगों को खबर मिल गयी। महात्माजी ने सब बाते गवर्नमेण्ट के पास लिख भेजी। उधर मजिस्ट्रेट ने भी एक लम्बी रिपोर्ट भेजी। उसमे लिखा कि अराजकता फैल रही है—जान पडता है, ब्रिटिश राज मानो उठ गया। इस तरह की घटनाएँ प्राय होती रही।

गवर्नमेण्ट ने इस रिपोर्ट पर कार्रवाई की। बिहार के गवर्नर ने गाधीजी को राँची बुलाया। उसके पत्र का आशय यह था कि चम्पारन मे गाधीजी के रहने से बहुत अराजकता फैल रही है, इसलिए गवर्नमेण्ट उनको वहाँ से हटा देना चाहती है, मगर कोई हुक्म देने के पहले गवर्नर एक बार उनसे मिल लेना चाहते है। गाधीजी के राँची जाने के पहले हम लोगों ने सोच लिया कि अब या तो वह गिरफ्तार कर लिये जायँगे या सूबे से बाहर निकाल दिये जायँगे और शायद हम लोग भी अब बाहर रहने न पावेगे। महात्माजी ने हम लोगो को बेतिया और मोतीहारी मे दो टोलियो मे रख छोडा। गिरफ्तारी होने पर किस तरह से क्या करना होगा, इसके सम्बन्ध मे उन्होने पूरी व्यवस्था दे दी। हम लोगो के पास इतने रैयतो के बयान आ गये थे—इतने कागज-पत्र जमा हो गये थे कि रैयतों की शिकायतो के लिए पूरा सबूत हाथ मे आ गया था। उसको सुरक्षित रखना था। हम लोगो ने पहले से ही सबकी नकल करा ली थी। नकलो को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध कर दिया गया। अपने-अपने स्थान पर हम लोग खबर का इन्तजार करने लगे। बेतिया-आफिस मेरे चार्ज मे रखा गया था। बहुत इन्तजारी के बाद राँची से तार आया कि गवर्नर से बाते अभी चल रही है। नतीजा यह हुआ कि दो-तीन दिनो तक बाते होती रही। अन्त मे गवर्नर ने एक कमीशन मुकर्रर किया। गाधीजी को भी उसका मेम्बर बनाया। रैयतो की शिकायतो की जाँच करने का काम उसी के सुपुर्द किया। कमीशन ने सरकारी अफसरो, नीलवरों और रैयतो के इजहार लिये। दूसरे जो कागज-पत्र

पेश किये गये उन्हे देखा। वहुतेरी कोठियो मे जाकर उनके कागज-पत्र देखे। रैयतों से भी मिला।

कमीशन की नियुक्ति हो जाने पर, महात्माजी के आज्ञानुसार, रैयतो की तरफ से जो कागज पेश हुए थे उनको खूव देखकर और दूसरे सबूत इकट्ठे करके, हम लोगो ने कमीशन के लिए एक बयान तैयार किया। कमीशन मे सरकारी अफसर थे। नीलवरो का प्रतिनिधि था। जमीन्दारो का प्रतिनिधि था। रैयतो की तरफ से प्रतिनिधि-स्वरूप गाधीजी थे। जव रिपोर्ट लिखने का समय आया, तव एक भारी अड़चन आ पडी। गाधीजी की और कमीशन के अध्यक्ष सर फ्रैंक स्लाई की बहुत इच्छा थी कि सर्वसम्मति से रिपोर्ट दी जाय। गवर्नर ने भी कहा था जव सर्वमान्य रिपोर्ट होगी तभी उस पर वह कुछ कर सकेगा, नही तो कुछ करने मे कठिनाई होगी।

किसानों की शिकायतो का कुछ वर्णन ऊपर दिया गया है। अन्त मे महात्माजी और नीलवरो के दरमियान बहुत बातचीत के बाद यह तय हुआ कि जो लगान वढा दिया गया है उसका थोडा-सा हिस्सा छोड दिया जाय, जो एक-चौथाई से कुछ कम था, वाकी तीन-चौथाई इजाफा ज्यो का त्यो रह जाय। जो नगद रुपये वसूल किये गये थे उनमे से भी फी सैकडा पचीस रुपये वापस किये जायँ और बाकी को रैयत छोड दे। मुख्य शिकायतें यही दो और तीनकठिया प्रथा थी। दूसरी शिकायते ऐसी थी जिनका दूर करना अफसरो के ठीक काम और इनसाफ करने ही पर निर्भर था। ये सिफारिशे रिपोर्ट मे सर्व-सम्मति से मान ली गयी। पिछली शिकायतो के सम्बन्ध मे रिपोर्ट मे विशेष नही लिखा गया। केवल शिकायतों का उल्लेख करके उनके दूर करने का उपाय बतलाया गया। शरह-बेशी कम करने और नगद तावान के रुपये पचीस फी सैकडा वापस करने के अलावा तीनकठिया-प्रथा-कानून वन्द कर देने की भी सिफारिश हुई।

हम लोग आपस मे इस पर बहस किया करते कि शरह-वेशी और तावान अगर नाजायज है तो पूरे इजाफे से रैयतों को छुटकारा मिलना चाहिए और तावान का सव रुपया वापस होना चाहिए। नीलवरो ने कानूनी अड़चने भी पैदा कर रखी थी। जिसने तावान के रुपये वसूल किये उसने कोठी किसी दूसरे के हाथ वेच डाली थी और खुद रुपये लेकर चलता वना था। अव तावान के रुपये नये मालिक से, जिसने रुपये लिये नही और जिसने दाम देकर कोठी नई खरीदी थी, किस तरह वसूल किये जायँ। इसी तरह, इजाफे का छुडाना कोई आसान काम नही था। अगर कानून वनाकर उसे न हटाया जाय तो वह शायद हट नही सकता था। कानून के अनुसार प्रत्येक रैयत को दीवानी मुकदमा दायर करना होगा। साथ ही, यह सावित भी करना होगा कि उससे शरह-वेशी की कबूलियत जवरदस्ती लिखायी गयी है, उस पर नील वोने की पावन्दी नही थी इत्यादि। इन वातो का सवूत गरीव सीधे-सादे निरीह रैयत कहाँ से देते ?

महात्माजी के चम्पारन जाने के पहले एक जगह के ग्यारह रैयतो ने मुकदमे भी दायर किये थे। नीलवरो ने अपनी ओर से बहुत बडा बैरिस्टर रखा था। मुकदमा महीनो पेशी मे रहा था। अन्त मे पाँच मे रैयत जीते थे और छ मे नीलवर। अपील मे थोडा-बहुत हेर-फेर भी हुआ था। वहाँ लाखो नही तो हजारो पट्टो के बारे मे इस प्रकार के मुकदमे करने होते। यह असम्भव था। इन दिक्कतो को ध्यान मे रखकर सुलह से ही कुछ तय करना मुनासिब समझा गया। इसलिए सर्वसम्मति से रिपोर्ट तैयार हुई। गवर्नमेण्ट ने रिपोर्ट की सिफारिशो को मजूर कर लिया। एक कानून बनाकर तीन-कठिया उठा दिया। सब रैयतो का इजाफा भी घटा दिया। बेतिया-राज्य (कोर्ट आफ वार्ड्स) ने नीलवरो से रुपये वसूल करके, निश्चय के अनुसार, रैयतो को तावान के रुपये लौटा दिये।

चम्पारन (ख)

चम्पारन के इस काण्ड मे हमने गाधीजी के काम के तर्ज को पहले-पहल देखा। हम लोगो को सार्वजनिक जीवन का एक प्रकार से एक अद्भुत पाठ पढ़ने का मौका मिला। होमरूल के आन्दोलन मे भाग न लेना कभी-कभी हममे से कुछ को बहुत अखरता था, पर हमने बडी सावधानी और सयम के साथ गाधीजी के आदेश का पालन किया—जिस काम मे लगे थे, लगे रहे। हमने यह भी देखा कि गाधीजी किस तरह नीलवरों को बहुत बडी हानि पहुँचाकर भी उनके मित्र बने रहे। उनमे से कितनो ही के साथ गाधीजी का व्यवहार बहुत अच्छा रहा। वे लोग उनको अपने बँगले पर बुलाया भी करते थे। हाँ, कुछ ऐसे अवश्य थे जिन्होने उनका जबरदस्त विरोध किया। पर यह कहना अत्युक्ति नही है कि अन्त मे गाधीजी से उनका सम्बन्ध कडवा नही हुआ। जब कमीशन का काम पूरा हो गया, गाधीजी ने जगह-जगह स्कूल खोलने का विचार किया, नीलवरो से मदद भी माँगी। नीलवरो ने, एक के सिवा, किसी प्रकार की बाधा नही डाली।

कमीशन मे जो बात सुलह से तय हुई वह रैयतो की माँग से बहुत कम थी। मगर इस सारे आन्दोलन का यह नतीजा हुआ कि चम्पारन से नीलवरो का रोब उठ गया। अब उनमे वह शक्ति नही रह गयी कि जुल्म कर सके। रैयतो मे हिम्मत और जान आ गयी। अब वे चुपचाप जुल्म बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही थे। और, जुल्म के बिना चम्पारन का कारबार मुनाफा नही दे सकता था। वह जुल्म अब बन्द हो गया। नीलवरो ने यह बात जल्द समझ ली। तीन-चार बरसो के अन्दर सबने अपनी जमीन और कोठी बेच डाली। जो कुछ मिला, लेकर चले गये। उनकी जमीन रैयतो के हाथ आ गयी। अब वे उसको आबाद कर रहे है। जहाँ नीलवरों के सुन्दर बगीचे और बँगले थे, वहाँ आज रैयतो के मवेशी बाँधे जा रहे है। उन ७०-७५ कोठियो मे से इक्की-दुक्की आज भी खड़ी है। वहाँ अब जुल्म नही हो सकता। वे उस साँप की

तरह अपने दिन विता रही है जिसके दाँत तोड दिये गये है, जो अव भी कुछ फुफकार तो मकता है, पर किसी को काट नही सकता।

चम्पारन में सत्याग्रह का हमने वही रूप देखा जो गाधीजी ने, थोडे ही दिनो के वाद, देशव्यापी रूप में, वहुत वडे पैमाने पर, जारी किया। एक जिले के दु ख दूर करने में प्राय एक वरस लग गया था। सारे हिन्दुस्तान को स्वतत्रता प्राप्त करने मे उमी अनुपात से जो समय लगना चाहिए, वह शायद अभी तक पूरा नही हुआ है।

चम्पारन के आन्दोलन मे कोई मतभेद नही था। गाधीजी की वाते सवने मानीं। उनके विरुद्ध किसी ने, चाहे वह रैयत हो या हमारे-जैसा कार्यकर्त्ता, कोई आचरण नही किया। गाधीजी नीलवरो का जुल्म रोकना चाहते थे, पर उनसे किसी प्रकार का द्वेप-भाव नही रखते थे। हम लोगो के मन मे भी कोई ऐसा भाव नही था। एक प्रकार से सत्याग्रह का एक अच्छा नमूना वहाँ पेश हुआ। इसी लिए नतीजा भी वहुत ही सतोपप्रद हुआ। मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के स्वराज्य का मसला भी इसी तरह हल हो जायगा। वहुत-कुछ छोडकर सुलह करने पर भी हम सोलह आने जल्द ही ले सकेगे। कुछ हद तक ऐसा ही हुआ भी है। देर की कई वजहे है। क्षेत्र वहुत विस्तृत है। सारी जनता मे वह अटल विश्वास नही है जो चम्पारन के रैयतो मे था। नि सकोच वफादार काम करनेवाले भी काफी नही है। देश ने अहिंसा को उस हद तक नही पाला है जिस हद तक चम्पारन मे उसका पालन किया गया था। तथापि जो पिछले पचीम वरसो मे हुआ है वह कुछ कम नही है। गाधीजी का चमत्कार भारतवर्ष मे लोग तव समझेगे जव हमारा काम पूरा हो जायगा। चम्पारन मे भी हम पूरे सन्तुप्ट नही थे। पर जव तीन-चार वरसो के भीतर ही नीलवर चले गये, तव उस चमत्कार का पूरा फल हम देख सके। भारत मे काम तो हुआ है। ब्रिटिश का रोव तो वहुत अशो मे खतम हो गया है। पर अभी पूरा फल हम नही देख सके है। इसलिए उस चमत्कार की महिमा का अनुभव नही कर सके है।

चम्पारन मे हमारे जीवन पर भी वहुत वडा असर पडा। वही हम लोगो ने जाति-पाँति का भेद छोडा। उस समय तक मै जाति-भेद को वहुत मानता और वर्तता था। ब्राह्मण छोडकर किसी दूसरी जाति के आदमी का छुआ हुआ दाल-भात इत्यादि, जिमे यहाँ कच्ची रमोई कहते है, कभी नही खाया था। गाधीजी ने कहा कि यहाँ अलग-अलग चौका करते रहोगे तो कैसे काम चलेगा—जो लोग एक काम मे लगे है मान लो कि वे मव एक जाति के है। वस हम सव लोग एक दूसरे की वनाई रसोई खाने लगे—यद्यपि हममे कई जातियो के लोग थे। जिन्दगी मे सादगी भी वहुत आ गयी। हम लोगो के साथ नौकर थे। वे सव एक-एक करके हटा दिये गये। केवल वर्तन साफ करने के लिए एक नौकर रह गया। अपने हाथो कुँए से पानी भर लेना, नहाना, कपडे माफ कर लेना, अपने जूठे वर्तन धो लेना, रसोई-घर मे तरकारी वनाना, चावल धोना इत्यादि सव काम हम खुद किया करते। कही जाना हो तो तीसरे दर्जे मे रेल मे सफर करना और जहाँ तक हो सके, पैदल ही चलना—सव कुछ वहाँ हमने गाधीजी से

सीखा। आराम का जीवन छोड़ देना पडा। जब तक हम चम्पारन मे रहे, इसी तरह से रहे।

यह काम पूरा हो जाने पर गांधीजी ने चम्पारन के तीन हिस्सों मे तीन स्कूल खोले। मै उन स्कूलों मे से किसी मे न रह सका। पटने वापस आकर मै फिर अपनी वकालत मे लग गया। पर बराबर उन स्कूलों को देखने के लिए साल मे एक या दो बार जाया करता था।

चम्पारन मे अन्य प्रान्तो के कुछ अच्छे त्यागी कार्यकर्त्ताओ से भी हम लोगो का परिचय हो गया। कुछ तो ऐसे आये जो आज तक देश के काम मे उत्साह-पूर्वक लगे हुए है। उस समय की मुलाकाते और सब अनुभव बहुत कीमती निकले, जिनसे आज भी हम बहुत कुछ सीख सकते है।

चम्पारन मे जो विजय मिली उसका असर बिहार पर बहुत पडा। बिहार एक पिछडा हुआ सूबा था, जहाँ सार्वजनिक जीवन का स्रोत बहुत पतला बहा करता था। शिक्षा का भी पूरा अभाव था। सभी बातो मे बिहार के लोग अन्य सूबो के लोगो की अपेक्षा बहुत पिछडे समझे जाते थे। बिहार, अँगरेजी शासन मे, आरम्भ से ही, बगाल के साथ था। वह बरसो बगाल का एक हिस्सा बना रहा। यहाँ तक कि बिहार का अलग नाम तक लोग भूल गये थे। बगाल उन्नत सूबा था, पर उस उन्नति का प्रभाव बिहार तक नही पहुँच पाया था। अँगरेजी शिक्षा मे भी बिहार इतना पिछडा था कि बिहारी लोग सरकारी दफ्तरो तक नही पहुँच पाते थे, ऊँचे ओहदो की कौन कहे।

बीसवी शताब्दी के शुरू से ही कुछ बिहारियो के हृदय मे बिहार की शोचनीय दशा देखकर ग्लानि पैदा हुई। फलत बिहार को बगाल से अलग करने का आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता बाबू महेशनारायण (स्वर्गीय) और डाक्टर सच्चिदानन्द सिनहा थे। डाक्टर सिनहा के प्रयत्न से ही बिहार कॉग्रेस का एक अलग सूबा माना गया। सन् १९११ मे जब सम्राट् पचम जार्ज दिल्ली मे दरवार के लिए आये, तो बिहार को एक अलग सूबा बनने की घोषणा कर गये। यह घोषणा वग-विच्छेद के आन्दोलन के फलस्वरूप हुई थी। पूरब और पच्छिम का बगाल फिर एक कर दिया गया। बिहार और उडीसा को मिला कर एक अलग सूबा कायम कर दिया गया। अलग सूबे की बात उठते ही कुछ नवजीवन का सचार हुआ था। उसके चिह्न देखने मे आ रहे थे। बिहारी छात्र-सम्मेलन का जिक्र ऊपर आ चुका है। बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेस भी हर साल होने लगी थी। बिहार के कालेजो और स्कूलो मे विद्यार्थियो की सख्या बढने लगी थी। उच्च शिक्षा के अभिलाषी छात्र अधिकाधिक सख्या मे कलकत्ते मे जाने लगे थे। नया सूबा हो जाने के बाद सब प्रकार से सूबा (बिहार) आगे बढने लगा था। पर इतना होते हुए भी १९१७ तक देश-सेवा का कोई सगठित काम नियमित रूप से नही चलता था। उन दिनो की कॉंग्रेस-कमिटी, आज की कमिटी के मुकाबले मे, एक खेल-तमाशे की चीज थी। मै उन दिनो प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का मन्त्री था। जो प्रतिनिधि चुने जाते थे—विशेष

करके जो अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के सदस्य चुने जाते थे—वे ही कुछ चन्दा देते थे, जिससे प्रान्तीय कमिटी का काम चला करता था और आल इण्डिया कमिटी का सालाना चन्दा दिया जाया करता था। वह सालाना चन्दा हमेशा बाकी पडा रहता था। मुझे स्मरण है कि उन दिनो के काग्रेस-मत्री श्रीयुत सुब्बाराव पटने कभी-कभी आया करते। उनके आने पर प्रमुख लोग आपस मे मिलकर कुछ जमा करके दे दिया करते। नवाब सरफराज हुसेन खाँ बहुत दिनो तक प्रान्तीय कमिटी के सेक्रेटरी थे। मै भी उनके साथ सेक्रेटरी था। आफिस का खर्च बहुत करके हम दोनो अपने पास से ही चला लेते थे। इससे यह न समझना चाहिए कि आफिस का खर्च कुछ बड़ी रकम का था। केवल डाक और तार मे ही खर्च पडता था, जो हम लोग आसानी से कर सकते थे।

ऐसा ही सार्वजनिक सगठन बिहार मे उस समय था जब महात्मा गाधी चम्पारन मे पहुँचे। उन दिनो शायद एक भी ऐसा आदमी न था जो अपना सारा समय देकर देश का काम करता हो। जो लोग काग्रेस के सदस्य थे, अथवा दूसरे प्रकार से सार्वजनिक जीवन के नेता थे, वे अपने-अपने काम करते हुए देशसेवा का काम भी करते थे। बहुत करके ऐसी ही अवस्था दूसरे सूबो की भी रही होगी। पर दूसरे सूबो मे कुछ कार्यकर्ता तो ऐसे जरूर थे जो देशसेवा मे अपना सारा समय देते रहे। महात्माजी के साथ जितने लोग यहाँ पहुँचे, प्राय सभी वकालत-पेशे के लोग थे। इनमे से एक ने भी पेशा छोडने का इरादा करके उनके साथ काम शुरू नही किया था। हम तो यह सोचकर गये थे कि चन्द दिनो मे फुर्सत हो जायगी। पर वहाँ पहुँचने पर देखा कि काम बढता ही जाता है। उसको पूरा किये बिना वहाँ से हटना भी कठिन था। इसलिए दस-पाँच दिनो के इरादा से गये हुए लोग प्राय दस महीनो तक चम्पारन मे रह गये। काम पूरा होने पर जब हम अपने-अपने स्थान को वापस गये, तो अपने साथ नये विचार, नयी स्फूर्ति और नये कार्यक्रम लेते गये। सारे सूबे मे एक नया जीवन आ गया, जिसका प्रभाव थोडे ही दिनो मे देखने मे आया। हम लोगो की आँखे बहुत करके खुल गयी। अब हम समझने लगे कि जब तक हममे से कुछ लोग ऐसे न निकलेगे जो अपना सारा समय देश के काम मे लगावे, तब तक बिहार का सार्वजनिक जीवन ढीला ही रहेगा।

एक दिन गाधीजी के साथ मै एक गाँव से वापस आ रहा था। रास्ते मे बाते होने लगी। मैने पूछा कि आप सारे देश मे घूमते-फिरते रहते है—किस जगह को देशसेवा की दृष्टि से आप सबसे ऊपर स्थान देते है। उन्होने प्राय सभी सूबो की बाते कही। अन्त मे कहा कि देश-सेवक के लिए 'पूना' तीर्थ-स्थान है। वहाँ एक शहर के अन्दर इतने त्यागी लोग है जितने और किसी स्थान मे नही। वहाँ की सस्थाएँ, त्याग की दृष्टि से, देश के लिए आदर्श उपस्थित करती है—नयी सस्थाएँ भी बराबर कायम होती जा रही है।

हमने पहले भी फरगुसन-कालेज का नाम सुना था। महात्माजी से बाते करने

के बाद कौतूहल और भी बढ गया कि एक बार पूना जाना चाहिए। हम लोग चम्पारन मे ही बैठकर विचार करने लगे कि यहाँ का काम खतम करके एक ऐसी सस्था कायम करनी चाहिए, जिसमे त्यागी लोग केवल निर्वाह-व्यय लेकर देश-सेवा मे लगे रहे। विचार हुआ कि फर्गुसन कालेज के ढग का एक कालेज स्थापित किया जाय। बाबू व्रजकिशोर ही हम सबके नेता और उत्साह दिलानेवाले थे। उन्होने इस बात को इतनी दूर तक बढाया कि हम लोगों ने अपने-अपने नाम भी लिखा दिये कि जब यह सस्था स्थापित होगी तो हम भी इसी मे निर्वाह-व्ययमात्र लेकर शरीक होगे। कालेज के लिए रुपये जमा करने की भी बात हुई। कुछ लोगो से वादा भी लिया गया।

महात्माजी से बाते करने पर उन्होंने सस्था की बात तो पसन्द की पर उसको कालेज का रूप देना उतना पसन्द नही किया। हम लोग इस विषय पर विचार करते रहे। जब १९१८ मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई मे हुआ, मै वहाँ गया। वहाँ से मै पूना भी चला गया। वहाँ की सब सस्थाओ को अच्छी तरह देखा। उनके सम्बन्ध मे काफी जानकारी भी हासिल की।

२२—१९१७ की कलकत्ता कांग्रेस से दिल्ली कांग्रेस तक

१९१७ मे, जब हम लोग चम्पारन मे काम कर रहे थे, देश मे होमरूल का आन्दोलन जोरो से चल रहा था। मै ऊपर कह चुका हूँ कि महात्माजी ने हम लोगों को किसी भी आन्दोलन मे भाग लेने से रोक रखा था और कहा था कि चम्पारन का काम ही होमरूल का सबसे बडा काम है। इसी बीच मे श्रीमती एनी बेसेण्ट नजरबन्द की गयी। इससे आन्दोलन मे अधिक जोर पहुँचा। हम लोग ये सब बाते अखबारों मे पढते, पर मन चम्पारन मे ही था। किसी और चीज की ओर हम ध्यान नही बँटाते थे। चम्पारन छोडकर बिहार के और जिलो मे होमरूल का आन्दोलन चला। मै समझता हूँ कि बिहार मे यह पहला ही अवसर था जब पढे-लिखे लोग गाँवों मे जाकर सभाएँ करने लगे, जनसाधारण से राजनीति की बाते कहने लगे। इसका असर अच्छा पडा था।

इसी साल बिहार के शाहाबाद-जिले मे एक बहुत बडी दुर्घटना हो गयी। बकरीद के अवसर पर, गाय की कुर्बानी के कारण, हिन्दुओ और मुसलमानो मे झगडा हुआ। बात बहुत बढ गयी। जिले के बहुत बडे हिस्से मे, आसपास के गया और पलामू जिलो मे भी, बहुत बडा फसाद हो गया। कुछ दिनों तक तो ऐसा मालूम होता रहा कि मानो अँगरेजी राज है ही नही। कुछ हिन्दू पिटे, पर मुसलमानो के साथ बडी क्रूरता हुई। बहुतेरे मारे गये। बहुतेरो के घर लूटे गये। अन्त मे जब मिलिटरी (फौज) पहुँची तो हजारो हिन्दू गिरफ्तार हुए। उन लोगों पर मुक-दमे चलाये गये, जो बहुत दिनो तक चलते रहे। हजारो को कडी सजाएँ हुई। नतीजा यह निकला कि पहले तो मुसलमान तबाह हुए और पीछे हिन्दू भी तबाह

हुए। उस समय की दुर्घटनाओं की याद आज तक दोनो सम्प्रदायो को है। उन दिनो सार्वजनिक जीवन इतना उन्नत नही था कि दोनों के बीच मेल कराने का या फसाद रोकने का कोई प्रयत्न किया जाय। जब मुकदमे चलने लगे तब वकीलो ने मुजरिमो की थोड़ी-बहुत सहायता की। पर इससे अधिक कुछ नही हुआ। मेरा इस दुर्घटना से कोई सीधा सम्बन्ध न रहा। पर वहाँ की बातो का दिल पर असर जरूर पडा।

कलकत्ते की काँग्रेस मे विहार से—विशेष करके चम्पारन से—प्रतिनिधियो की बडी टोली गयी। मै एक बडी टोली के साथ वहाँ पहुँचा। सेठ जमनालाल बजाज ने महात्माजी के ठहरने का प्रबन्ध किया था। चम्पारन की टोली भी वही जा जुटी। सेठजी से पहली मुलाकात शायद वही हुई। जहाँ तक मुझे याद है, महात्माजी ने इस कॉग्रेस मे कोई विशेष भाग नही लिया।

जब हम चम्पारन मे थे तभी भारत-सचिव मिस्टर मौण्टेगू का वह वक्तव्य निकला, जिसमे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से उन्होने भारत मे आहिस्ता-आहिस्ता करके प्रजातत्र स्थापित करने का वादा किया था। उसके बाद वह भारत मे आये। कुछ दिनो के बाद उनकी और लार्ड चेम्सफोर्ड की भारत मे राजनीतिक सुधार-सम्बन्धी रिपोर्ट निकली। इस रिपोर्ट के निकलने पर सारे देश मे इस पर विचार होने लगा। सभी राजनीतिक व्यक्ति और दल अपना-अपना मत प्रकाशित करने लगे। विहार मे भी इसकी चर्चा होने लगी। हम लोग चम्पारन के काम से मुक्त हो चुके थे। इसलिए इस पर ध्यान देने का अवसर था। मेरा अपना स्वभाव शुरू से ही नरम है। उग्र विचार जल्दी हृदय मे उठते ही नही है। इस विषय पर विचार करने मे मैं नरम-दल के पक्ष का ही समर्थक था। बिहार मे इस पर विचार करने के लिए प्रान्तीय कान्फ्रेन्स की बैठक हुई। उसमे मैंने भाग लिया, पर हमेशा उग्र विचारो के विरोध मे ही मै रहा। मै समझता था कि इसमे अभी इतनी शक्ति नही आयी है कि गवर्नमेण्ट पर जोर देकर हम कुछ भी करा सकते है। इस बात का भी मुझे पूरा विश्वास न था कि देश के शासन का सब भार अगर हमारे ऊपर आ जाय तो हम उसका सुचारु रूप से वहन कर सकेगे। इसलिए मै उस रिपोर्ट को ठीक मानता था। उसके आधार पर जो कुछ भी हो सकता था, मै उसे स्वीकार करने के लिए तैयार था। मै यह पसन्द नही करता था कि उसकी टीका-टिप्पणी ऐसी हो कि जिससे हमारी अनिच्छा या नामजूरी समझी जाय। प्रान्तीय कान्फ्रेस मे मतभेद रहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, यही विचार स्वीकृत भी हुए। हाँ, जहाँ-तहाँ कुछ सुधार सुझाये गये।

इसी रिपोर्ट पर विचार करने के लिए बम्बई मे काँग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। मै वहाँ भी गया। अपनी आदत और स्वभाव के अनुसार मैंने बहस मे कोई भाग नही लिया। पर विषयनिर्धारिणी समिति और काँग्रेस की बहसो को खूब गौर से सुनता रहा। पटना के नामी बारिस्टर सैयद हसन इमाम ही सभापति

थे। उनका भाषण बहुत जबरदस्त हुआ था। काग्रेस की कार्रवाई उन्होने वडी योग्यता से चलाई। वम्बई मे उनका स्वागत भी वडी शान के साथ हुआ। मैंने विषय-निर्धारिणी समिति मे देखा कि कई बार ऐसा मौका आया जब दो दलो के बीच झगडा होता दीख पडा। एक ओर से लोकमान्य तिलक गर्म विचारो के समर्थक थे, दूसरी ओर से अन्य नेता बहस किया करते थे। इन वडो के झगडे का निपटारा बीच-बीच मे अपने दो-चार शब्दो से अथवा भाव-भगी से सभापति करते रहे।

१९१८ मे एक और महत्त्व की घटना हुई। जब महात्माजी चम्पारन मे थे तभी गुजरात के 'खेडा' जिले के किसानो मे लगान के सम्बन्ध मे आन्दोलन खडा हुआ। । महात्माजी चम्पारन जाने के पहले ही साबरमती मे, झोपडो मे, सत्याग्रह-आश्रम एक प्रकार से स्थापित कर चुके थे। उनका विचार था कि चम्पारन से दस-पाँच दिनो मे लौटकर उसका बाजाब्ता उद्घाटन करेगे। पर जब चम्पारन मे रुक जाना पडा तो उन्होने वहाँ खबर दे दी कि आश्रमी लोग वहाँ का काम आरम्भ कर दे। मेरी बहुत लालसा थी कि मै भी जाकर आश्रम देखूँ।

१९१८ के अप्रैल मे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर मे हुआ। महात्मा गाधी उसके सभापति हुए। हम लोग विहार से कुछ प्रतिनिधि गये। चम्पारन के वाद हम यह समझ बैठे थे कि महात्माजी पर हमारा विशेष अधिकार हो गया है। इस खयाल से इन्दौर मे हम लोग सभापति के साथ ही ठहरे। उस सम्मेलन मे बडे मार्के की वात यह हुई कि दक्षिण भारत मे हिन्दी-प्रचार का काम आरम्भ करने का निश्चय हुआ। महात्माजी के लिए यह कोई नई बात नही थी। उन्होने चम्पारन से ही उस काम को शुरू कर दिया था। एक बार स्वामी सत्यदेवजी वहाँ उनसे मिलने आये। महात्माजी ने उनको राय दी कि कुछ दिनो तक साबरमती-आश्रम मे ठहरने के बाद वह दक्षिण-भारत मे हिन्दी-प्रचार करने का काम अपने हाथ मे ले। इन्दौर-सम्मेलन के कुछ पहले से ही दक्षिण मे यह काम शुरू हो गया था। स्वामी सत्यदेव के साथ उन्होने अपने कनिष्ठ पुत्र देवदास गाधी को इस काम के लिए भेज दिया। इन्दौर-सम्मेलन मे-जो काम आरम्भ हुआ उसका विस्तार आज सारे दक्षिण-भारत मे हो गया है। वहाँ लाखों स्त्रियो और पुरुषो ने हिन्दी सीख ली है।

सम्मेलन से महात्माजी के साथ मैं सीधे साबरमती चला गया। अभी आश्रम के मकान नही बने थे। बाँस की चटाइयो की झोपडियाँ थी। उन्ही मे आश्रम-वासी रहा करते थे। मुझे आश्रम मे अधिक ठहरने का मौका नही मिला। महात्माजी तुरत 'खेडा' के गाँवो मे चले गये। वहाँ लगानवन्दी का काम शुरू हो गया था। सरदार वल्लभ भाई, श्री शकरलाल बैंकर, श्रीमती अनुसूयाबाई साराभाई और दूसरे कार्यकर्त्ता गाधीजी के नेतृत्व मे वहाँ प्रचार-कार्य कर रहे थे। मुझे महात्माजी के साथ दो-तीन दिनो तक वहाँ के गाँवो मे सफर करने का सुअवसर मिला। गुजरात

के लोगो के साथ वह घनिष्ठ सम्बन्ध आरम्भ हुआ जिसका सूत्रपात चम्पारन मे गाधीजी के साथ गये हुए और उनके भेजे हुए लोगों से मुलाकात होने ही पर हो गया था। महात्माजी पैदल ही सफर करते थे। मुझे भी वैसा ही करना पडा। उन दिनो वह जूते नही पहनते थे। अप्रैल के अन्त मे गरमी काफी पड रही थी। एक दिन, प्राय दो पहर हो चुके थे, हम लोगो को रेतीले रास्ते से जाना था। बालू गर्म हो गयी थी। पैर जल रहे थे। पर गाधीजी ने परवा नही की। जहाँ जाना था, हम लोग चले ही गये। खेडा का सत्याग्रह सफल हुआ। चम्पारन और खेडा, दोनो का काम प्राय एक बरस के भीतर ही खतम हो गया।

मै फिर अपनी वकालत मे लग गया। बीच-बीच मे कान्फ्रेन्सो और काँग्रेस मे शरीक होना उन दिनो वकील अपना फर्ज समझते थे। मै भी उन्ही मे एक था। चम्पारन के बाद विचारो मे बहुत परिवर्तन आ गया था। इस प्रकार के काम को छुट्टियो के दिनो मे केवल मनोरजन का विषय न मानकर इसमे अधिक समय देने की जरूरत महसूस करने लगा था। पर अभी कोई रास्ता निर्धारित नही था। इसलिए अभी पुराने ढर्रे पर ही काम होता रहा। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, बम्बई मे काँग्रेस के विशेष अधिवेशन और फिर दिल्ली मे उसके दिसम्बरवाले साधारण अधिवेशन मे शरीक हुआ। बस इतने ही से अपना कर्त्तव्य पूरा समझा।

गाधीजी के चम्पारन जाने के बाद बिहार का नाम जहाँ-तहाँ सुना जाने लगा था, पर अभी उसको कोई विशेष स्थान नही मिला था। इसी लिए कलकत्ते की काँग्रेस मे कोई अलग स्थान न रहने के कारण हम लोगो को अधिकतर गाधीजी की ही छावनी मे ठहरना पडा।

दिल्ली-काँग्रेस मे एक बड़ी पुर-मजाक घटना हुई। हम लोग वहाँ पहुँचे। स्टेशन पर वालण्टियर मिले। पर उनमे से कोई यह न बता सका कि बिहार के प्रतिनिधियो के ठहरने का स्थान कहाँ है। नायक ने कहा कि आप लोग पटौदी-हाउस मे चले जाइये। वहाँ भी हम लोग पहुँचे। अभी प्राय. सबेरे के ५ बजे थे। कुछ रात थी। सर्दी काफी थी। एक छोटे कमरे मे जाकर हम पन्द्रह-बीस आदमी बैठे रहे। जब सबेरा हो गया और दरियाफ्त किया तो वहाँ भी कोई हम लोगो के लिए स्थान नही बता सका। हम लोगों ने सोचा कि बस अब यही ठहरना चाहिए। दो-मजिले पर एक अच्छा कमरा था। उसे भी हम लोगों ने दखल कर लिया। कुछ देर के बाद स्वागत समिति के कोई साहब आये। उन्होने हुक्म दिया कि हम लोगो को मकान खाली कर देना चाहिए। यह पूछने पर कि आखिर हम लोग कहाँ ठहरे, उन्होने इतना ही उत्तर देना काफी समझा कि वह मकान बगाल के डेलिगेटो के लिए है—ऊपर का कमरा श्रीयुत बी० चक्रवर्ती और श्रीयुत सी० आर० दास के लिए है, इसलिए हम कही दूसरी जगह जाकर ठहरे। बहुत कहने पर भी उन्होने हमारे लिए कोई दूसरी जगह ठीक कर देने का भार अपने ऊपर लेना या किसी दूसरे को सुपुर्द करना जरूरी नही समझा। हम लोगो ने भी निश्चय कर लिया कि जब तक दूसरी जगह ठीक न हो

जाय, हम भी हटेंगे नही। कुछ देर के बाद हम लोगो को फिर हुक्म मिला कि यहाँ से चले जाइये। हमने साफ इनकार कर दिया। गुस्से मे आकर उन सज्जन ने हुक्म दिया कि हम अगर उनकी बात नही मानेंगे, तो हम लोगो के लिए स्वागत-समिति के चौके मे भोजन का प्रबन्ध नही किया जायगा। यह धमकी हम लोगो को पसन्द आयी। स्वागत-समिति मे प्राय २) रोजाना देना होता। हमने तुरत कुछ हाँडियाँ मँगा ली और ईंटो के चूल्हे बनाकर खिचडी पका ली, जिसमे खर्च शायद चार-छ आने से अधिक न पडा। बस वही हम लोग जम गये। बहुत जोर लगाया गया, पर जब अपना खास चूल्हा जल चुका था, तो हटता कौन है। अन्त मे लोग आजिज आकर हम लोगों को छोडकर चले गये।

श्री सी० आर० दास मुझे कलकत्ते की वकालत के जमाने से ही जानते थे। कुछ मुकदमों मे हमे एक साथ काम करने का मौका मिला था। उनसे कॉंग्रेस मे भेंट हुई। हँसते-हँसते उन्होने कहा—"सुना है कि मेरे लिए जो कमरा था उसे तुम लोगो ने जबरदस्ती अपने कब्जे मे कर लिया है।" मुझे बहुत शर्म मालूम हुई। मैंने सब बाते कही। यह भी कहा कि आप अगर चाहे तो हम लोग तुरत कमरा खाली कर दे। उन्होने कहा कि तुमने ठीक ही किया, जब तुम्हारे लिए कोई जगह नही थी तो तुम दूसरा कर ही क्या सकते थे। अपने बारे मे उन्होने कहा कि मेरे लिए चिन्ता मत करो, मै बहुत आराम से होटल मे ठहर गया हूँ।

इस प्रकार १९१८ समाप्त हुआ। फिर हम पटने वापस आकर वकालत करने लगे।

२३—प्रिय मित्र की मृत्यु

रायबहादुर हरिहरप्रसाद सिह पढने के समय से ही मुझे जानते थे। जब मै विलायत जाने की बात सोच रहा था, तब उन्होने कुछ सहायता भी की थी। मैंने जब वकालत शुरू की तो उन्होने मुझे अपना वकील बना लिया। हाइकोर्ट मे उनके जितने मुकदमे जाते थे उनमे मै ही वकील हुआ करता था। उनकी एक बहुत बडी सम्पत्ति बरमा मे भी थी। उस सम्पत्ति के सम्बन्ध मे डुमराँव के महाराजा बहादुर ने अदालत मे दावा कर दिया। उनकी जो कुछ सम्पत्ति बिहार मे थी उसे भी उस दावे मे शामिल कर लिया। दोनो ओर से कई बडे-बड़े और नामी वकील रखे गये। मुझे भी बाबू हरिजी ने काम करने के लिए कहा। १९१८ की दुर्गापूजा की छुट्टियो मे प्रयाग मे, जहाँ वह उन दिनो रहा करते थे, कागजो को पढने के लिए मुझे बुलाया। मै छुट्टियो मे प्रयाग मे ही कागज पढता रहा। मेरे मित्र बाबू वैद्यनाथनारायण सिह भी छुट्टियो मे प्रयाग मे ही, दारागज मे किराये पर एक मकान लेकर, अपने कुटुम्ब के साथ, दिन बिता रहे थे। हम दोनो अक्सर सुबह-शाम टहलने के समय मिला करते थे।

एक दिन दोपहर को ही वह मेरे यहाँ चले आये। बहुत तरह की बाते करने लगे। प्राय. सध्या तक मै मुकदमे का कुछ काम न कर सका। चलने के समय

फिर दूसरे दिन आने को कह गये। दूसरे दिन पहले दिन से भी पहले ही चले आये। फिर वहुत-सी वेतुकी वाते करते रहे। मुझे सन्देह हुआ कि इनका मिजाज ठीक नही है। मैने एक मित्र के उन्माद-रोग का आरम्भ देखा था। वैसे ही लक्षण इनमे भी दिखाई देने लगे। जाते समय मै भी उनके साथ हो लिया। उनके घर तक साथ गया। वहाँ पूछने से मालूम हुआ कि कई दिनो से रात को वह सोते वहुत कम है और इसी प्रकार दिन-रात कुछ बोलते रहते है। मेरा भय और भी अधिक वढ गया। तीसरे दिन तो यह देखा कि वह एकदम पागल हो गये है। मै उनके ही साथ रहने लगा। उनके भाई को तार देकर वुला लिया। दिन-दिन उनकी हालत विगडती गयी।

एक दिन उन्होने अपना वक्स खोलकर वकालत का 'गाउन' निकाला। उसे टुकडे-टुकड़े करके फाड डाला। युनिवर्सिटी की किसी परीक्षा मे उनको सोने का एक पदक मिला था। उसे उन्होने इसी तरह निकाल कर फेंक दिया। अपनी छोटी वच्ची को, जो उनकी सवसे छोटी सन्तान थी, एक दिन मार डालने पर उतारू हो गये।

हम लोग वहुत घवराये। वहाँ जो कुछ चिकित्सा हो सकी, की गयी, पर राय ठहरी कि इन्हे पटने ले चलना ही अच्छा होगा। दो-चार दिनो मे कुछ अच्छे होते मालूम हुए। एक दिन यह निश्चय हुआ कि मै उनके साथ पटने चला जाऊँ और उनके छोटे भाई जगन्नाथजी परिवार को लेकर दूसरे दिन पटने पहुँचे। हाइकोर्ट की छुट्टियाँ समाप्त हो गयी थी। पटने पहुँचना हम दोनो के लिए आवश्यक हो गया था। छुट्टियों मे वरावर प्रयाग मे ही रहने के कारण घर के लोगो से मै मिला भी न था, क्योकि मेरे परिवार के लोग छपरे मे या मेरे गाँव जीरादेई मे ही रहा करते थे, मेरे साथ पटने मे नही। मै सोचता था कि दो-चार दिनो के लिए, छुट्टी के अन्त मे, घर जाकर उनसे मिल आऊँगा, पर वैद्यनाथ वावू की अस्वस्थता के कारण यह विचार छोड़ देना पडा था।

जव हम दोनो प्रयाग से पटने के लिए रवाना हुए तव वैद्यनाथ वावू विलकुल स्वस्थ-से मालूम पड़ते थे। कपड़े इत्यादि ठीक तरह से पहन कर होश की वाते करते-करते मेरे साथ रेल पर सवार हुए। रास्ते मे उन्होने मुझसे पूछा कि मै घर जाना चाहता था तो उस विचार को क्यो छोड़ दिया और कहा कि अव उनकी तवीयत विलकुल ठीक हो गयी है, कोई चिन्ता की वात नही है। जो कुछ हुआ था उसका स्मरण करके उन्होने अफसोस और लज्जा का भाव जाहिर किया तथा मुझसे कहा कि मै सीधे घर चला जाऊँ और वह पटने चले जायँगे, इसमे कोई हर्ज नही है।

मै उनकी वाते सुन कर वहुत खुश हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि उनकी तवीयत ठीक हो गयी। मै उस समय तक lucid moments (पागलपन के वीच कुछ चेतन क्षण) *का अर्थ नही जानता था। काशी स्टेशन पर उनको पटने की गाड़ी

---

* वे क्षण जव पागलपन के वीच-वीच मे पागल की दशा कभी-कभी विलकुल अच्छे आदमी की-सी हो जाती है।

मे सवार कराकर मै छपरे की गाडी से छपरे चला गया। वह दूसरे दिन सवेरे जब पटने पहुँचे तो उनकी हालत पहले की तरह बिलकुल एक पागल जैसी हो गयी थी। स्टेशन के कर्मचारियो ने उन्हे पहचाना। ऐसी अवस्था मे उनको अकेला देखकर कुछ मित्रो को खबर दी। वे लोग आये और उनको किसी तरह घर ले गये। दूसरे दिन जब मै पटने वापस आया तो मैने उनको उसी बुरी दशा मे पाया। मुझे बहुत अफसोस हुआ कि मैने बडी गलती की थी। उनसे मुलाकात हुई तो उन्होने बडी हँसी उडायी। कहा कि आप अपने को बडा होशियार समझते है, मुझे पहरे मे रखने के लिए—जगन्नाथजी के साथ षड्यन्त्र करके—मेरे साथ आये थे, कैसा चकमा देकर बेवकूफ बनाया ! इतना कहकर हँसने लगे। फिर वही बेतुकी बकझक आरम्भ कर दी।

पटने मे भी हम लोग बराबर देख-रेख करते रहे; पर वह कभी पूरी तरह स्वस्थ नही हुए। कभी-कभी अच्छे हो जाते, यहाँ तक कि वह हाइकोर्ट भी जाने लगते। 'पटना-लॉ-वीकली', जिसको मै और वह साथ मिलकर निकाला करते थे, निकालने भी लगते। पर बीमारी ज्यों की त्यो बनी रहती। कुछ दिनो के बाद उनकी आकस्मिक मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु का सदमा मेरे दिल पर बहुत पडा। पर वह जिस अवस्था मे थे उसमे रहने से कही अच्छा देहान्त हो जाना था। उनके लिए यह मृत्यु एक प्रकार की मुक्ति ही थी। उनका जितना मेरे साथ प्रेम था और जितना उपकार उन्होने मेरे साथ किया था, वह जब स्मरण आता है तो आज भी दु ख होता है, और इस बात का पश्चात्ताप होता रहता है कि उनके लिए अथवा उनके कुटुम्ब के लिए मै कुछ भी न कर सका।

२४—प्रथम महायुद्ध के बाद

सन् १९१८ के नवम्बर मे योरप का महायुद्ध समाप्त हो गया। १९१७ से ही भारतवर्ष मे राजनीतिक जागृति की लहर उठने लगी थी। चम्पारन मे गाधीजी के पधारने और रैयतो की सेवा करने का असर चारो ओर पड रहा था—यद्यपि समाचार-पत्रो मे बहुत कम खबरे छपने के लिए दी जाती थी और कही भी सभाओ मे व्याख्यान देने की हम लोगो को मनाही थी। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने 'होमरूल-लीग' कायम करके सारे देश मे १९१७ में ही बडी हलचल मचा दी थी। प्राय सभी प्रान्तो मे उसकी शाखाएँ कायम हो गयी थी। लोग खूब जोरो से प्रचार के काम मे लग गये थे। सरकार इससे कुछ घबरा-सी गयी। उसने श्रीमती एनी बेसेण्ट को, उनके दो साथियो के साथ, नजरबन्द कर दिया था। इस पर आन्दोलन ने और जोर पकडा। ब्रिटिश सरकार अपनी दु-धारी नीति को १९१७ मे भी चला रही थी। एक ओर उसने इस तरह आन्दोलन की मुख्य अधिष्ठात्री को नजरबन्द किया, दूसरी ओर पारलेमेण्ट मे नये नियुक्त भारत-मत्री श्री माटेगू ने एक एलान किया, जिसमे वादा किया गया कि भारत को आहिस्ता-आहिस्ता करके शासन का अधिकार दिया जायगा, पर कब और कितना अधिकार भारतीयों के हाथ में आवेगा, इसका निर्णय पारलेमेण्ट

ही कर सकेगी! उसके बाद श्री मांटेगू भारतवर्ष में आये। यहाँ के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारतीय नेताओं से मिले। दोनों ने मिलकर एक रिपोर्ट तैयार की जिसके आधार पर पार्लमेण्ट ने १९२० में एक कानून पास किया। श्रीमती एनी बेसेण्ट भी कुछ दिनों के बाद छोड़ दी गयीं। वह १९१७ में कलकत्ते में होनेवाले कांग्रेस अधिवेशन की सभानेत्री चुनी गयीं। उत्साह बहुत था। हम लोग भी चम्पारन से गांधीजी के साथ ही कांग्रेस में गये थे। सेठ जमनालालजी से वहीं प्रथम परिचय हुआ। उन्होंने ही गांधीजी के रहने इत्यादि का प्रबन्ध किया था। उसी मकान में गांधीजी के साथ काम करनेवाले हम बहुतेरे बिहार-निवासी सेठजी के ही मेहमान बने। बहुतेरे दूसरे बिहारी भी हम लोगों के साथ ही आकर ठहरे और वे हम मेहमानों के भी मेहमान हो गये। जमनालालजी के आतिथ्य को ग्रहण करने का पहला अवसर वहीं मिला।

जर्मन युद्ध के समय भारतवर्ष ने गवर्नमेण्ट की सहायता की थी। इसकी प्रशंसा सभी सरकारी कर्मचारी बहुत जोरों से किया करते थे। पर जो कुछ सहायता लोगों ने अथवा उन दिनों की कौन्सिल ने अपनी खुशी से की थी, उसके अलावा जोर-जबरदस्ती से भी बहुत सहायता ली गयी थी जिसके कारण देश में बहुत असन्तोष भी फैला था। पंजाब में उन दिनों लेफ्टेनेण्ट गवर्नर थे सर माइकेल ओडायर। वह एक बड़े जबरदस्त सिविलियन थे। उन्होंने रँगरूट भरती कराने में और चन्दा जमा करने में बड़ी सख्ती से काम लिया था। इसका असर पंजाब पर बहुत बुरा पड़ा था। वहाँ के लोग—हिन्दू, मुसलमान और सिख—बहुत ही दुखी थे। सरकार भी जानती थी कि पंजाब के अतिरिक्त और जगहों में भी असन्तोष काफी है। लड़ाई शुरू होते ही, कुछ भारतीय, जो विदेशों में थे, इस प्रयत्न में लग गये थे कि हिन्दुस्तान में इस मौके से लाभ उठाकर क्रान्ति की जाय। उन्होंने इस दिशा में कुछ काम किया भी था। मुसलमानों में इस बात से बहुत खलबली मची थी कि उनके खलीफा—तुर्की के बादशाह—लड़ाई में जर्मनी की तरफ हो गये थे और तुर्क सेना से मुकाबला करने के लिए हिन्दुस्तानी फौज भेजी गयी थी जिसमें मुसलमान भी अच्छी संख्या में थे। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन सब कारणों से प्रभावित होकर अपनी दुहरी नीति चलाती रही। मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए उन्होंने कई वादे किये, जिनमें उनके धार्मिक स्थानों को सुरक्षित रखने और तुर्कों की ताकत और उनके राज्य को अधिक नुकसान न पहुँचाने की बातें भी थीं। दूसरी ओर सरकार यह भी सोच रही थी कि भारत-रक्षा-कानून की (जो लड़ाई का अन्त होने के छः महीने बाद तक ही जारी रह सकता था) जरूरत बाद में भी पड़ेगी क्योंकि वह अगर न रहा तो जितने लोग नजरबन्द हैं उनको छोड़ना पड़ेगा, और अगर असन्तोष ने कुछ विकट रूप धारण किया तो उसे सँभालने के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे अदालत में मुकदमे की पेशी होने पर गवाही जुटाने की झंझट से वह बची रहे। इसलिए एक कमिटी मुकर्रर की गयी थी जिसके प्रधान थे सर सिडनी रौलट जो लन्दन के हाइकोर्ट के एक जज थे। इस कमिटी ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें भारतीय षड्यन्त्रों का

इतिहास देते हुए इस बात की सिफारिश की गयी कि एक ऐसे कानून की जरूरत है जिसके द्वारा सरकार के हाथ मे, षड्यन्त्रकारियो को उपद्रव करने से रोकने और क्रान्ति से हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए, पूरा कानूनी अख्तियार रहे—अर्थात् प्राय वे सब अधिकार रहे जो लडाई की नाजुक स्थिति सँभालने के लिए भारत-रक्षा कानून के द्वारा दिये गये थे। इस प्रकार एक तरफ माटेगू-चेम्सफोर्ड-रिफार्म-स्कीम १९१८ के बीच मे और दूसरी ओर रौलट-रिपोर्ट भी १९१८ के अन्त मे निकली।

२५—रौलट-बिल-विरोधी आन्दोलन

रौलट-रिपोर्ट के निकलते ही सारे देश मे बडा असन्तोष उत्पन्न हुआ जिसने—पहले ही सुलगती हुई असन्तोष की—आग मे घी का काम करके उसे जोरो मे प्रज्वलित कर दिया। चम्पारन से लौटने के बाद मै अपनी वकालत मे लग गया था। छ-आठ महीनो की गैरहाजिरी के बाद भी उसमे किसी तरह की कमी नही आयी थी। १९१८ और १९१९ मे जोरो से हाइकोर्ट मे काम करता रहा। मुकदमे और रुपये भी खूब मिलते रहे। गाधीजी ने चम्पारन मे ही हम लोगो से एक बार कहा था कि हम लोग अगर चम्पारन मे सचाई के साथ काम करेगे तो एक प्रकार की पूंजी कमा लेगे, जिससे आगे बहुत लाभ उठा सकेगे। वहाँ पर पूरी सचाई के साथ काम हुआ। आज भी जब मै पिछले पचीस बरसो के अपने जीवन पर विचार करता हूँ तो मुझे जान पडता है कि वहाँ की कमाई हुई पूँजी दिन-दिन बढती गयी है। कभी-कभी यह जानकर बडा सन्तोष होता है कि जो सबक सचाई का गाधीजी ने वहाँ सिखाया था उसीका यह एक फल है कि अपने जीवन मे जिसका मै कर्तव्य-वश घोर से भी घोर विरोध करता हूँ वह भी मेरे कहने पर विश्वास रखता है। पर इस प्रकार सार्वजनिक जीवन मे सचाई से जो लाभ हुआ है उसके अलावा वकालत के काम मे भी उससे हमेशा लाभ ही हुआ है—कुछ लाभ अपने पेशे मे सफलता के रूप मे और उसके फलस्वरूप पैसे कमाने के रूप मे हुआ। मुझे इस बात का गर्व रहता है कि वकालत के जमाने मे जजो ने मुझ पर विश्वास किया। एक अँगरेज जज तो कभी-कभी ऐसा मजाक किया करता था कि प्रतिपक्षी वकील अगर कमजोर जान पडता तो वह मुझसे ही कहता कि तुम ही अपने विरुद्ध जो सबसे खराब नजीर हो उसे बता दो। मै इसके लिए तैयार भी रहा करता था। उस नजीर को पेश करके उसके काट मे जो नजीर पेश करनी होती थी वह भी पेश कर देता था। मै कभी भी लचर दलील नही पेश करता था। जिस मुकदमे मे बहस की गुजाइश न रहती उसे कभी लेता ही न था। मवक्किल को साफ-साफ कह देता कि इसमे कुछ होने-जाने का नही, इसलिए इसे दाखिल करके पैसे बरबाद मत करो। कोई-कोई मवक्किल दूसरे के पास जाकर अपील दायर कराता और पैसे खर्च करके हार जाता। मैने ऐसे लोगो को, जिनको मैने अपील दायर करने से मना करके उनके कागज और पैसे लौटा दिये थे, दूसरो की मार्फत अपील दायर

करते और हारते भी देखा है। एक ऐसा भी मुकदमा मैंने देखा जिसे मैंने वापस कर दिया था, पर दूसरे वकील ने उसे दायर किया और हाइकोर्ट मे जीत भी लिया। ऐसा होना आश्चर्य की बात नही है, क्योकि मुकदमेबाजी एक प्रकार का जुआ तो है ही। हो सकता है कि मैं उस मुकदमे की बारीक बाते न समझ सका होऊँ अथवा, जज किसी धोखे मे आ गया हो और उसने गलत फैसला दे दिया हो। अस्तु।

मै वकालत तो जोरो से करता रहा; पर अब गाधीजी का सम्पर्क भी छूटने-वाला नही था। रौलट-रिपोर्ट के निकलने के बाद देश मे बडा आन्दोलन उठ खडा हुआ। गाधीजी ने उसका नेतृत्व अपने हाथो मे लिया। बिहार से लौटने के बाद गाधीजी ने 'खेडा' के किसानो का, जिन पर मालगुजारी का इजाफा हो रहा था, नेतृत्व करके इजाफा छुडवाया। इसके लिए वहाँ सत्याग्रह का प्रबन्ध करना पड़ा था। पर अन्त मे बात तय हो गयी। जब गाधीजी 'खेडा' मे दौरा कर रहे थे, मै भी उनके साथ गुजरात के किसानों के उस जिले मे (सन् १९१८ मे) दो-तीन दिनो तक घूमा था। एप्रिल का महीना था। गर्मी काफी पड रही थी। धूप खूब कडी हुआ करती थी। उस गर्मी मे भी गाधीजी गाँवो मे घूमते रहते। उन दिनो वह जूता नही पहना करते थे। इसलिए बालू तप जाने पर खाली पैरो से चलने मे उन्हे तकलीफ बहुत होती थी। एक दिन ऐसा दृश्य मुझे देखने को मिला। गर्मी के मारे पैर जले जाते थे। बालू कुछ दूर तक थी। मै तो जूता पहने हुए था। मुझे कोई कष्ट नही हुआ। पर गाधीजी को बहुत कष्ट हुआ। एक स्थान पर मैंने चादर बिछा देनी चाही जिसमे उनको थोडा आराम मिल जाय। पर उन्होने ऐसा नही करने दिया। उसी यात्रा मे सरदार वल्लभ भाई के गाँव 'कामसद' मे भी जाने का सु-अवसर मिला था। मैने उनका पैतृक मकान देखा था। उस सत्याग्रह के नेता एक प्रकार से सरदार वल्लभ भाई ही थे। उसी सत्याग्रह के कारण उनका गाधीजी के साथ वह सम्बन्ध स्थापित हुआ जो आज तक अटूट बना हुआ है और जो दिन-दिन इन दोनो शक्तियों के सगम का अच्छा फल देश को देता आ रहा है।

खेडा-सत्याग्रह के बाद गाधीजी, सरकार की मदद के लिए, खेडा जिले के लोगो को फौज मे भरती होने के लिए सलाह देते हुए, दौरा करने लगे। उस समय तक ब्रिटिश गवर्नमेंट पर उनका पूरा विश्वास था। वह मानते थे कि सरकार अक्सर भूल कर दिया करती है और कही-कही उसने जुल्म भी किया है। परन्तु सभी बातो पर विचार करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचते थे कि ब्रिटिशनीति न्याय-सगत है, उससे न्याय की आशा रखी जानी चाहिए। इसी लिए वह सरकार की मदद करने के लिए लोगो को फौज मे भरती होने का मशविरा देने लगे। अपनी आदत के मुताबिक इस काम मे भी वह बहुत जोरो से लग गये। खेडा के दौरे के कारण उनके स्वास्थ्य पर बहुत बडा धक्का पहुँचा। वह बहुत जोरो से बीमार पड गये। उसी नीति के अनुसार मै भी बिहार मे बने उस सरकारी बोर्ड का मेम्बर हो गया जो फौजी रँगरूटो की भरती मे मदद करने के लिए बना था। उसके मत्री उन

दिनों श्री रसल थे, जो आज बिहार के गवर्नर के सलाहकार (adviser) है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, गाधीजी के जी-तोड परिश्रम के बाद भी भरती मे बहुत सफलता नही हुई। बिहार मे भी मैं कुछ विशेष न कर सका।

गाधीजी की बीमारी इतनी बढ गयी कि वह बम्बई मे काँग्रेस के उस विशेष अधिवेशन मे, जो माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट पर विचार करने के लिए श्री सैयद हसन इमाम के सभापतित्व मे हुआ था, शरीक न हो सके थे। पर मैं उसमे शरीक हुआ था। वहाँ से लौटते समय मै अहमदाबाद और साबरमती मे कई दिनो तक गाधीजी के साथ ठहरा भी था। जहाँ तक मैं उनके विचारो को समझ सका था, मै कह सकता हूँ कि वह यदि काग्रेस मे रहते तो नरम दल के लोगो का ही साथ देते। काग्रेस का काम समाप्त तो हो गया, पर दोनों दलो का मतभेद बहुत स्पष्ट हो गया। कुछ लोगो के काग्रेस से हटने और लिबरल दल के अलग सगठन करने का सूत्रपात वही हो गया। तीन महीनो के बाद, दिल्ली के अपने सालाना अधिवेशन मे, प्राय बम्बई के फैसलों को ही काग्रेस ने कायम रखा।

जब मैं बम्बई से अहमदाबाद पहुँचा तो देखा कि गाधीजी अहमदाबाद शहर के मिर्जापुर महल्ले मे सेठ अम्बालाल साराभाई के बहुत बडे महल मे ठहरे हुए है। सेठजी उन दिनो अपने एक दूसरे नये मकान मे रहा करते थे और यह मकान खाली था। गाधीजी की तबीयत बहुत खराब थी। डाक्टर लोग देखा तो करते थे, पर वह कोई दवा नही खाते थे। मल का प्रकोप था। ज्वर का भी जोर था। साबरमती मे आश्रम स्थापित हो चुका था, पर अभी तक मकान कम बने थे। किन्तु वहाँ रहनेवालों की सख्या बढती जा रही थी। एक दिन गाधीजी का ज्वर बहुत बढ गया, पर उसका विचार न करके उन्होने कहा कि अब यहाँ नही ठहरना चाहिए, तुरन्त साबरमती आश्रम मे चले चलो। साथियो ने बहुत रोका, पर उन्होनें किसी की एक न सुनी। उसी हालत मे आश्रम मे चले गये। जिस समय ऐसा हुआ, मै अहमदाबाद शहर की मशहूर चीजो को देखने गया था। जब मै लौटा तो मैंने सुना कि सब लोग आश्रम चले गये। फिर मैं भी सध्या को वहाँ चला गया।

दूसरे दिन सवेरे जब मैं गाधीजी के पास बैठा हुआ था, मुझे वह दृश्य देखने को मिला और वह बात सुनने मे आयी, जिसको मैं कभी भी भूल नही सकता। गाधीजी का ज्वर कुछ कम हो गया था; पर वह बहुत कमजोर थे। एक छोटे-से कमरे मे चारपाई पर पडे हुए थे। मैं नीचे पडी हुई चटाई पर बैठा था। वह श्री छगन-लाल गाधी को बुलवाकर उनसे बातें करने लगे। उन्होने इतने आवेश मे बातें की कि उसका असर पडे बिना रह नही सकता था। यद्यपि मैं गुजराती कम समझ पाता था फिर भी मैंने साराश तो पा ही लिया। उन्होने कहा—"कल जब ज्वर का बहुत वेग था, मैंने जिद्द करके यहाँ चले आने को कहा। मै समझता था कि यहाँ पहुँचने पर ही ज्वर का वेग कम होगा। यह ज्वर तो शरीर मे था, पर वहाँ

उस वडे महल मे पडे-पड़े मेरे हृदय के भीतर वडी ज्वाला जल रही थी। मै सोच रहा था—'गाधी ! तुझे इतने वडे महल मे क्या काम ? तू यहाँ क्यो ठहरा हुआ है ? तेरी जगह तो गरीवो के झोपडो मे है—आश्रम मे है। यहाँ से तुरत चला जा। तू जव तक ऐसा नही करता, तुझे चैन नही मिल सकता।' इसी कारण मैंने इतनी जिद्द की जो तुममें से कुछ को बुरी भी लगी होगी। वहाँ से यहाँ आने पर भी मै रात को सोया नही हूँ। वरावर मोचता ही रहा हूँ। मै अपने से पूछता रहा हूँ कि क्या तेरी जिन्दगी इसी तरह विना कुछ सफलता पाये ही वीत जायगी। जव से दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान आया, एक पर एक काम मैंने हाथ मे लिया, पर किसी को भी पूरा न कर सका, सवको अधूरा ही छोडता गया। मिल-मजदूरो में हडताल का काम हुआ। हडताल इस मानी मे तो सफलतापूर्वक समाप्त हुई कि उनकी माँगे मजूर हो गयी, पर मजदूरो मे अभी वहुत-सी ऐसी त्रुटियाँ है, जिनको दूर करना चाहिए। मेरी इच्छा थी कि उनके वीच काम करके उन त्रुटियो के दूर करने का प्रयत्न करूँगा। पर वह न कर सका, चम्पारन चला गया। चम्पारन मे भी, जहाँ तक नीलवरो का प्रश्न है वह तो एक प्रकार से समाप्त हुआ, पर वहाँ के किसानो के वीच वहुत काम करने की जरूरत है। इसीलिए वहाँ पर कुछ पाठशालाएँ खोली गयी। मेरी इच्छा थी कि मै इस प्रकार के काम मे योगदान करता रहूँगा और उस जिले मे इस प्रकार के काम का सूत्रपात करके उसे खूव जोरो से चलाऊँगा। इस काम के लिए सच्ची लगनवाले त्यागी लोग भी मिले थे और दूसरे भी मिलनेवाले थे, पर उसको भी अधूरा ही छोडकर मुझे खेड़े के सत्याग्रह मे लग जाना पडा। फिर खेडे के किसानो का काम पूरा होते ही फौज की भरती के काम मे लग गया। खेडे मे भी जनता में काम करने की जरूरत है, पर वह भी पूरा न हो सका। इतने मे मै वीमार पड गया। मालूम नही, इस वीमारी से वचकर फिर खडा होऊँगा या नही। अगर हो भी सकूँगा तो कुछ ठीक नही कि कव तक। तुम लोग, जो दक्षिण अफ्रिका से ही मेरे साथ काम करते आ रहे हो, मेरी इस दशा के कारण किसी काम को जमकर नही कर पाते। तुम्हारा स्वास्थ्य भी खराव ही है। इस आश्रम को ही मैंने वहुत आशा और मनसूवा लेकर स्थापित किया था। पर इसको भी मै अव तक समय नही दे सका हूँ। चम्पारन से ही मुझे इसके उद्घाटन का सदेश भेजना पडा, स्वय उस समय आ भी न सका था। तवसे अव तक मै किसी न किसी काम मे वझकर वाहर रहा। अव मेरी यह हालत है। न मालूम ईश्वर को क्या मजूर है।"

इस प्रकार वातें करते-करते वह फूट-फूटकर रोने लगे। कुछ देर तक रोते रहे। हम ही दोनो वहाँ थे। उनको कोई चुप करावे तो कैसे करावे। हम जानते थे कि उनके हृदय की ज्वाला अव आँसुओ के रूप मे भाप का पानी वनकर निकल रही है। कुछ देर के वाद वह खुद चुप हुए। उन्होने कहा, यह ज्वाला वहुत जला रही थी, रात-भर सोया नही, कुछ आँसू वह जाने के वाद वह कुछ शान्त हुई है।

इसके बाद कुछ देर तक चुप रहे। मै भी चुप बैठा रहा और सोचता रहा कि ईश्वर ने हमारे लिए बड़ा सौभाग्य प्रदान किया कि ऐसे महापुरुष का सम्पर्क मुझे मिला। छुट्टी लेकर दो-एक दिन के बाद मै अपने काम पर वापस आया।

इस बीमारी से उठने के बाद, जिसमे वह शायद कभी-कभी मृत्यु का भी दर्शन करते थे, उन्होने रौलट-रिपोर्ट के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। रिपोर्ट निकलने के कुछ ही दिनो बाद, गवर्नमेण्ट ने उसकी सिफारिश के मुताबिक दो बिल दिल्ली की इम्पीरियल कौन्सिल मे पेश किये, जिनके द्वारा सरकार को बहुत व्यापक और जुल्मी अख्तियार मिलते थे। वह जिसको चाहे, बिना अदालत मे गये ही, नजरबन्द कर दे सकती थी। जनता ने यह देखा कि लडाई के दिनो मे जो स्वराज्य-सम्बन्धी वादे ब्रिटिश सरकार की ओर से किये गये थे उनके पूरा होने का तो कुछ करीना नजर नही आता, पर ये 'काले कानून' हमारे सिर पर लादे जा रहे है। सारे देश मे बडा क्षोभ पैदा हुआ। सभी जगहो मे विरोधी सभाएँ होने लगी। कौन्सिल मे गैर-सरकारी मेम्बरों ने इन बिलो का प्रबल विरोध किया, पर उनकी सुनता कौन था। अन्त मे एक बिल पास हो गया। सभी चुने हुए हिन्दुस्तानियो ने उसका विरोध किया था। पर सरकारी कर्मचारियो और कुछ सरकार द्वारा नियुक्त मेम्बरो की सम्मति से वह बहुमत से पास हो गया। गाधीजी ने पहले ही घोपणा कर दी थी कि ये कानून यदि पास हुए तो हम लोग इन्हे नही मानेगे—सत्याग्रह करेगे।

उस समय की वे विरोधी सभाएँ, जो देश के कोने-कोने मे हुई, एक नयी जागृति और नवजीवन की द्योतक थी। इतनी वडी-बडी सभाएँ, जिनमे सब वर्ग और जाति तथा धर्म के लोग इतनी अधिक सख्या मे शामिल होते हो, शायद ही पहले कभी देखी गयी थी। गाधीजी ने एक बिल के पास होते ही, अपने वादे के मुताबिक, सत्याग्रह का प्रश्न उठाया। देश की हवा का रुख देखकर सरकार ने दूसरे बिल को आगे नही बढाया। उसे वापस भी नही लिया। इस प्रकार वह लटकता पडा रहा। न पास हुआ, न नामजूर। शायद, कायदे के मुताबिक, कुछ दिनो के बाद, गिर गया होगा। पर जो बिल पास हो चुका था, वह भी कुछ कम न था। उससे सरकार का काम निकल आता था। जो आन्दोलन उठ खडा हुआ उसका फल यह हुआ कि वह कानून पास तो हो गया, पर कभी काम मे नही लाया गया। कुछ बरसो के बाद वह रद्द भी कर दिया गया।

२६—छ अप्रैल और जंगी कानून

गाधीजी ने उसी समय 'यग इण्डिया' का सम्पादन अपने हाथ मे लिया। प्रति सप्ताह उसमे उनके लेख निकलने लगे, जो सारे देश मे सनसनी पैदा करने-वाले होते थे। उन्होने अहिंसात्मक सत्याग्रह की घोपणा कर दी। एक दिन भी निश्चित कर दिया कि उस दिन सारे देश मे लोग उपवास करें, अपने-अपने धार्मिक

मन्दिरों और मस्जिदों में प्रार्थना करें, जुलूस निकाल कर सन्ध्या समय सभा करें जिसमें सब लोग 'काले कानून' का विरोध करें। विरोधी सभाएँ तो बराबर हो ही रही थीं। किन्तु इस दिन का बहुत बड़ा महत्त्व था। पहले के आन्दोलन से जमीन कुछ तैयार हो गयी थी। उस दिन की हड़ताल इतनी जबरदस्त हुई कि शायद ही कभी पहले वैसी हड़ताल देखी गयी हो। शहरों में सभी दुकानें बन्द थीं, सवारियों का चलना बन्द हो गया था। गाँवों में लोगों ने उस दिन बैलगाड़ी और हल जोतना तक बन्द कर दिया था। न मालूम यह सन्देश किस प्रकार सभी जगहों में पहुँच गया। अभी कांग्रेस का संगठन इतना न तो फैला था और न इतना मजबूत ही था कि वह उस सन्देश को सभी सुदूरवर्ती गाँवों तक पहुँचा सकती, पर तब भी यह अद्भुत घटना हुई!

पटने में विरोधी सभाओं के संगठन इत्यादि का काम मैं तत्परता से करता रहा। गांधीजी के पत्र भी जब-तब मिल जाया करते थे। पर विशेष सभी बातें 'यंग इण्डिया' से मिलती थीं। श्री मजहरुल हक साहब और श्री सैयद हसन इमाम काफी दिलचस्पी लेते थे। मजहरुल हक साहब तो उन दिनों दिल्ली-कौंसिल में गये थे; पर हसन इमाम साहब सभाओं में जाते थे। उस दिन की हड़ताल के सम्बन्ध में पहले से ही सभी दुकानदारों से कहा गया था। सभी राजी हो गये थे; पर एक बड़े दुकानवाले राजी नहीं होते थे। यह बात हसन इमाम साहब तक पहुँचायी गयी। मेरे साथ ही वह उस दुकानदार की दुकान तक गये। वहाँ पहुँचते ही बूढ़े दुकानदार के पैरों पर उन्होंने अपनी टोपी उतारकर रख दी। वह तो भौंचक्का हो गया। कहने लगा, आपने यह क्या किया, आपका हुक्म ही हमारे सिर माथे होता। नतीजा यह हुआ कि सारे शहर में एक भी दुकान न खुली, चाहे वह हिन्दू की हो या मुसलमान की। शहर की तमाम दुकानें, चाहे वह मोती-चाँदी की हो या साग-सब्जी की, बन्द रहीं। उस दिन जो जुलूस निकला वह भी अद्भुत था। गुलजार बाग से लेकर प्रायः शहर के किले तक, जहाँ सभा होनेवाली थी, लम्बा जुलूस फैला हुआ था जिसमें सबसे आगे नंगे पैर हसन इमाम साहब थे और पीछे-पीछे हम सब लोग। जो सभा किले के छोटे मैदान में होनेवाली थी वह वहाँ न हो सकी; क्योंकि जगह कम थी। गंगा के किनारे रेत में सभा करनी पड़ी। हम सब डरते थे कि कहीं इतने बड़े मजमे की पुलिस से मुठभेड़ न हो जाय; पर कुछ भी न हुआ। बड़ी शान्ति और उत्साह के साथ उस दिन का काम समाप्त हुआ।

गांधीजी ने कुछ दिन पहले ही लिख भेजा था कि ऐसे सत्याग्रहियों से एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर लिये जायँ, जो इस बात के लिए तैयार हों कि वे अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के ऐसे कानूनों को न मानेंगे जिन्हें तोड़ने की आज्ञा एक मनोनीत कमिटी देगी और इसके लिए जो सजा होगी उसे खुशी के साथ भोगने को तैयार होंगे। अभी तक कमिटी ने कानूनों को नहीं बताया था। इस पर देश में

कुछ नरमदल के लोगो और अखबारो की ओर से बडी टीका-टिप्पणी भी हुई। पर गाधीजी विचलित न हुए। बिहार मे वह प्रतिज्ञा-पत्र मेरे पास ही आया। उस पर हसन इमाम, साहब ने हस्ताक्षर किया। मैंने तथा कुछ और लोगो ने भी।

६ अप्रैल की हडताल और सभाएँ सारे देश मे बडी सफलता और समारोह के साथ हुईं। दिल्ली मे जो सभा हुई थी वह बडे मार्के की थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता इतनी बढ गयी कि दोनो ने साथ ही साथ सरकारी गोली खायी। जलूस के नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपना सीना खोल दिया था कि सरकार अगर चाहे तो उन्हे गोली मार दे। मुसलमानो पर इतना असर पडा कि उन्होने स्वामी श्रद्धानन्द को ले जाकर जुमा मसजिद मे उनका भाषण करवाया। वहाँ पर जो छोटा-मोटा बलवा हो गया उसे शान्त करने के लिए गाधीजी दिल्ली के लिए रवाना हुए। मगर रास्ते मे ही, दिल्ली के नजदीक 'पलवल' स्टेशन पर, सरकारी हुक्म से, रेल से उतार लिये गये और एक अनजान स्थान को भेज दिये गये। श्री महादेव भाई देसाई उनके साथ थे, जो वहाँ से अकेले बम्बई की ओर वापस हुए। रास्ते से उन्होने मेरे पास तार भेजा कि गाधीजी गिरफ्तार होकर अनजान स्थान को भेज दिये गये है और मुझे तुरत बम्बई पहुँच कर उनसे (महादेव भाई से) मिलना चाहिए। तार पाते ही मै बम्बई के लिए रवाना हो गया। रास्ते ही मे जो अखबार मिले उनसे मालूम हुआ कि कई स्थानो मे इस खबर के पहुँचते ही बलवा शुरू हो गया है, जिनमे पजाब के कई शहर, अहमदाबाद और बम्बई थे। मै जब दो दिनो के बाद बम्बई पहुँचा तो वहाँ उस समय तक शान्ति हो गयी थी। गाधीजी पलवल से बम्बई ले जाये गये। वहाँ ले जाकर छोड दिये गये। गाधीजी के बम्बई पहुँच जाने से बलवा जोर न पकड सका, शीघ्र ही शान्त हो गया। पर अहमदाबाद से खराब खबर मिली थी। गाधीजी वहाँ के लिए रवाना हो चुके थे। महादेव भाई भी बम्बई पहुँच कर उनके साथ हो लिये थे। जब मै पहुँचा तो मैंने सुना कि वे दोनो अहमदाबाद चले गये है। मै भी उसी दिन सन्ध्या की गाडी से अहमदाबाद के लिए रवाना हुआ। जब दूसरे दिन सवेरे स्टेशन से बाहर निकला तो देखा कि गोरे सिपाहियो का पहरा पड रहा है और शहर मे जगी कानून जारी है। किसी तरह साबरमती-आश्रम मे एक टॉगे पर पहुँचा। वहाँ भी गाधीजी के पहुँचने से लोगों मे शान्ति हो गयी थी। बलवा-फसाद कम हो गया था। जगी कानून भी मेरे पहुँचने के कुछ ही घटो के अन्दर उठा लिया गया, या शायद पहले ही उठा लिया जा चुका था। वहाँ शान्ति कायम रखने का प्रबन्ध करके गाधीजी उसी दिन या दूसरे दिन रात की गाडी से बम्बई के लिए रवाना हुए। मै भी साथ था।

इसी बीच पजाब से बलवा हो जाने की खबरे आती रही जिससे गाधीजी बहुत सोच मे पड़ गये। जलियाँवाला बाग का हत्याकाड इसी बीच मे हो चुका था। कुछ थोडी खबर मिली थी, पर पूरा हाल कुछ महीनों तक ठीक-ठीक न मिला।

इतना अवश्य मालूम हो गया कि पंजाब की स्थिति बहुत भयंकर हो गयी है। गांधीजी सोचने लगे कि ऐसी अवस्था में सत्याग्रह चलाना ठीक न होगा। उन्होंने उस रात को अहमदाबाद और बम्बई के रास्ते में रेलगाड़ी में ही अपना वह वक्तव्य लिखा जिसमें उन्होंने लोगों में अहिंसा के अभाव के कारण सत्याग्रह स्थगित करने का विचार प्रकट किया। हम लोगों ने उसे रेल में ही पढ़ लिया। बम्बई पहुँचने पर वह अखबारों में प्रकाशन के लिए दे दिया गया।

बम्बई में कुछ देर तक मैं ठहर गया। वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में, जो उन्हीं दिनों वहाँ हो रहा था, शामिल हुआ। उसके बाद मैं पटने चला आया। सत्याग्रह स्थगित हो जाने पर फिर मैं अपनी वकालत में लग गया।

२७—पंजाब-हत्याकांड, खिलाफत और असहयोग

सत्याग्रह बन्द तो हो गया, पर देश में असन्तोष बढ़ता ही गया। उधर पंजाब में जंगी कानून के नाम पर जुल्म-ज्यादतियाँ हुईं। जनता की बेइज्जतियाँ की गयीं। हजारों आदमियों को कड़ी-कड़ी सजाएँ मिलीं। सबकी खबर कुछ-कुछ बाहर आती गयी, पर पूरी खबर किसी को न मिलती थी। आपस का मेल इतना था कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख सब बातों में पूरी तरह शरीक होते थे। साथ ही गोलियाँ खाते, लाठियाँ सहते, पानी पीते, जमीन पर रेंगते अथवा हवाई जहाज के गोलों के शिकार बनते। इस हत्याकांड का पूरा वर्णन यहाँ नहीं दिया जा सकता। उसको तो काँग्रेस द्वारा नियुक्त कमिटी की रिपोर्ट में ही पढ़ना चाहिए। बहादुर पंजाबियों पर होनेवाले जुल्मों की खबरें पंजाब से बाहर नहीं आ पाती थीं। न कोई पंजाब जाने पाता था, न कोई वहाँ से बाहर आने पाता था, और न वहाँ तार या चिट्ठियाँ ही जा पाती थीं। जब जंगी कानून उठा लिया गया तब सब बातें मालूम हुईं। देश में भयंकर रोषाग्नि पैदा हुई।

उस साल काँग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में होनेवाला था, जहाँ जलियाँवाला बाग में हत्याकांड हो चुका था। सारा पंजाब जंगी कानून से बहुत ही परेशान किया जा चुका था। भय होने लगा कि शायद वहाँ की जनता काँग्रेस का आयोजन न कर सके। पर निश्चय हुआ कि चाहे जिस तरह हो, काँग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में ही होना चाहिए। वैसा ही हुआ भी। पंडित मोतीलाल नेहरू सभापति चुने गये। मैं इस काँग्रेस में शरीक नहीं हुआ। काँग्रेस दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हुआ करती थी और दूसरी जनवरी से ही बाबू हरिजी का मुकदमा खुलनेवाला था। उन्होंने मुझे रोक लिया। उक्त पंडितजी भी उस मुकदमे में काम करनेवाले थे, पर वह कुछ देर करके—कई दिनों के बाद—पहुँचे। तब तक श्री नृपेन्द्रनाथ सरकार (सर एन० एन० सरकार) ने ही कई दूसरे वकीलों और बैरिस्टरों के साथ काम शुरू कर दिया था। १९२० की जनवरी से अक्टूबर तक मैं आरा में उसी मुकदमे के लिए

रहा। कभी-कभी एक-दो दिनो के लिए छुट्टी मिलने पर पटने आ जाया करता था—विशेष करके अपने बडे लडके मृत्युञ्जय को देखने के लिए,-क्योकि उसको उस समय काला आजार की बीमारी हो गयी थी और उसकी चिकित्सा पटने मे हो रही थी। कभी-कभी किसी मवक्किल के काम से भी आ जाता। पर प्राय इन दस महीनो का समय बर्मा के मुकदमे मे ही लगा।

गवर्नमेण्ट ने पजाब मे जगी कानून उठ जाने के बाद, एक कमिटी मुकर्रर कर दी थी जिसके जिम्मे वहाँ की घटनाओ के सम्वन्ध मे जाँच करने का काम दिया गया था। लार्ड हण्टर, जो बिलायत के एक जज थे, इसके सभापति बनाये गये थे। कॉंग्रेस की ओर से पहले इस कमिटी के सामने अत्याचार-सम्बन्धी गवाही पेश करने का निश्चय हुआ था। कुछ दिनो नक यह काम हुआ भी। पर कुछ मतभेद हो जाने पर काँग्रेस इस जाँच से हट गयी। उसने अपनी एक अलग कमिटी बना दी जिसको वही काम सौप दिया जो गवर्नमेण्ट की ओर से हण्टर कमिटी कर रही थी। हण्टर-कमिटी के सामने जब बाते आने लगी और सब अखबारो मे छपने लगी तब पहले-पहल इसका पता चला कि पजाब मे कितना जुल्म हुआ है। पजाब मे हुए अत्याचारो की खबरे बाहर जिस अनुपात मे फैली, देश मे उसी मात्रा मे रोष भी बढता गया। कॉंग्रेस कमिटी की जाँच भी प्राय उसी समय हुई। इसके लिए गाधीजी, देशबन्धु दास, श्री जयकर, श्री अब्बास तैयबजी प्रभृति पजाब के गाँवो और जिलो मे खूब चक्कर लगाते फिरे। दोनो कमिटियो की रिपोर्टे १९२० मे प्रकाशित हुईं।

उधर तुर्की के साथ अँगरेजो के व्यवहार से मुसलमानो मे खास खलबली मची हुई थी। अमृतसर-कॉंग्रेस के समय ही मौलाना शौकतअली, मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना अबुलकलाम आजाद प्रभृति मुसलमान नेता—जो लडाई के कारण नजरबन्द थे—छोड दिये गये थे। इन लोगो ने खिलाफत-सम्बन्धी सगठन और आन्दोलन के लिए खिलाफत-कमिटियाँ सारे देश मे स्थापित की। मुसलमान इतने रुष्ट थे कि वे चाहते थे, सरकार के खिलाफ कुछ किया जाय, पर यह निश्चय नही कर पाते थे कि क्या और किस तरह किया जाय। इधर पजाब के हत्याकाण्ड से दूसरो मे भी रोष था। रौलट कानून को भी लोग भूले नही थे। इन सभी के मिल जाने से देश मे एक भयकर स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। खिलाफत-कमिटियाँ और कॉंग्रेस-कमिटियाँ एक दूसरे के निकटतर आती जा रही थी। बहुतेरे हिन्दुओ ने भी खिलाफत-कमिटियो की मेम्बरी स्वीकार की और पैसे से भी उनकी मदद की। उधर मुसलमान भी बडी सख्या मे कॉंग्रेस मे शरीक होने लगे। जब हण्टर-कमिटी और कॉंग्रेस-कमिटी की रिपोर्टे निकली तब अखिल-भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की एक बैठक बनारस मे उन पर विचार करने के लिए हुई। मै भी मेम्बर की हैसियत से उसमे शरीक हुआ।

गाधीजी का अली-बन्धुओ से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। खिलाफत-कमिटी मे वह शरीक हुआ करते थे। बनारस की सभा के थोडे ही पहले, प्रयाग मे, खिलाफत-कमिटी की बैठक मे, उन्होने अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम, पहले-पहल १९२०

के अपील में पेश किया। खिलाफत-कमिटी ने उसे मंजूर किया और निश्चय किया कि उसे वह काम में लायेगी। साथ ही मौलाना लोगों ने भी धार्मिक रीति से इसका उसूलों से समर्थन किया और एक फ़तवा निकाला जिसके द्वारा सरकार के साथ किसी प्रकार के सहयोग को हराम करार दिया। बनारस में कांग्रेस-कमिटी ने निश्चय किया कि सारी बातों पर विचार करके देश को क्या करना चाहिए इसका निर्णय करने के लिए कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया जाय। उस अधिवेशन का कलकत्ते में होना तय हुआ। लाला लाजपतरायजी जो बहुत दिनों के बाद हाल ही विदेश से वापस आये थे सभापति चुने गये। सारे देश में असहयोग की चर्चा होने लगी। गांधीजी कुछ दौरा भी करते और कुछ लिखते भी। यह तैयारी हो ही रही थी कि १ अगस्त (१९२०) को लोकमान्य तिलक का देहावसान हो गया।

मौलाना शौकतअली अप्रैल १९२० में ही पटने आये थे जब एक बड़ी सभा हुई। उस दिन पटने में रहने के कारण मैं भी इस सभा में शरीक हो गया। गांधीजी की राय और कार्रवाइयों से मैं परिचित था ही। आरा में पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास दोनों ही डुमरांव-राज्य और हरीजी के बन्नावाले मुकदमे में दोनों ओर से काम कर रहे थे। मैं पंडितजी के साथ काम तो कर ही रहा था उनसे राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में भी बातें हुआ करतीं। वह कभी-कभी देशबन्धु से भी बातें करते। इसलिए मैं सब बातों से वाकिफ था। जब पटने में मौलाना शौकत-अली ने असहयोग का कार्यक्रम बताया, लोगों से पूछा कि लोग इसके लिए कहाँ तक तैयार हैं और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए कहा गया तो मैंने उसी सभा में पहले-पहल असहयोग में शरीक होने का वचन दे दिया। अभी तक कांग्रेस ने कुछ फैसला नहीं किया था और न कार्यक्रम ही पूरी तरह से निश्चित था, पर मैंने कह दिया कि देश अगर असहयोग करने का निश्चय करेगा और इस निश्चय के अनुसार जब असहयोग आरम्भ किया जायगा तो मैं भी पीछे नहीं रहूँगा। उस समय तक यह जाहिर हो चुका था कि असहयोग में वकालत छोड़नी पड़ेगी और कौंसिलों में नहीं जाना होगा। मैं वकील तो था ही। मेरी इच्छा यह भी थी कि १९२० के नवम्बर में नये मान्टेगू-चेम्सफोर्ड-विधान के अनुसार होनेवाले चुनाव में चम्पारन से प्रान्तीय कौंसिल के लिए उम्मीदवार खड़ा होऊँ। इस विचार के अनुसार मैं चम्पारन में पहली बार कुछ जगहों का दौरा भी कर चुका था। एक जगह तो मजहरुल हक साहब मेरी उम्मीदवारी के समर्थन में जा भी चुके थे। असहयोग आरम्भ होने पर दोनों ही छोड़ना पड़ेगा। मैंने उस सभा में यह घोषणा करके बता दिया कि मैं दोनों ही छोड़ूँगा। मौलाना शौकतअली से मेरी पहले की मुलाकात नहीं थी, पर शायद गांधीजी ने उनसे मेरे सम्बन्ध में कुछ कहा था। सभा समाप्त होते ही मैं चला आया। वहाँ उनसे मुलाकात नहीं हुई। पर उन्होंने मेरी तलाश की थी। जब वह रवाना होने-वाले थे मैं स्टेशन पर गया। वहीं उनसे पहले-पहल बातें हुईं। सभा की बात और गांधीजी की कही हुई बातें उनको याद थीं। इसलिए उन्होंने बहुत प्रेम-पूर्वक बातें

की। मेरा उत्साह भी बढाया। इस तरह मेरे लिए असहयोग का सूत्रपात अचानक इस सभा मे हुआ, जहाँ मै उस दिन पटने मे इत्तफाक से आने के कारण जा सका था।

कॉग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर मे होनेवाला था। विहार-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन भी अगस्त मे होनेवाला था। असहयोग की बाते जोरो से चल रही थी। बिहार मे यह प्रश्न उठा कि प्रान्तीय सम्मेलन का सभापति कौन बनाया जाय। लोगो ने मुझे ही चुना। मै असहयोग का पक्षपाती था, पर यह नही कह सकता था कि प्रान्त के लोग इसे मजूर करेगे वा नही। अगर मजूर करेगे भी, तो समय आने पर कितने इसमे शरीक होगे। इसलिए मैने श्री सच्चिदानन्द सिह से पूछा कि ऐसी स्थिति मे क्या यह मेरे लिए उचित होगा कि मै अपनी राय सभापति के भाषण मे खोल कर कहूँ और यदि सम्मेलन मेरी बात स्वीकार न करे तो एक सकट उपस्थित कर दूँ। उन्होंने कहा कि मुझे पूरा अधिकार है कि मै अपनी राय दे दूँ और सम्मेलन को भी अधिकार है कि उसे वह स्वीकार करे वा न करे, इसलिए मेरे सभापतित्व स्वीकार करने मे कोई बाधा नही है।

मै आरा मे मुकदमे मे फँसा हुआ था। वहाँ मैने अपना भाषण हिन्दी मे लिखना शुरू किया। प्रान्तीय सम्मेलन-जैसी सभा या सस्था मे उन दिनो हिन्दी मे भाषण नही हुआ करते थे, प्राय अँगरेजी मे ही सब कार्रवाई हुआ करती थी। एक ओर मुकदमे की भीड, दूसरी ओर सम्मेलन का भाषण लिखना और स्थिति की चिन्ता, सब मिल-मिलाकर मै ज्वर-ग्रस्त हो गया। भय होने लगा कि प्रान्तीय सम्मेलन के लिए मै भागलपुर न जा सकूँगा। पर समय आते-आते इतना अच्छा हो गया कि किसी तरह अपने लिखे भाषण के साथ यथासमय भागलपुर पहुँच गया। वहाँ सम्मेलन मे भाग ले सका। पर सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित कठिन समस्या ऐसी थी कि वह किसी भी काम करनेवाले को डरा सकती थी। मेरा अपना विचार साफ और दृढ था कि असहयोग आवश्यक हो गया है। पर मै यह जानता था कि सूबे के सभी पुराने और अनुभवी राजनीतिज्ञ नेता उसके विरोधी थे। यद्यपि रौलट-बिल-विरोधी आन्दोलन के समय से ही सभाओ मे जनता बहुत बडी सख्या मे आया करती थी पर यह कहना कठिन था कि वह असहयोग मे कहाँ तक साथ देगी। सम्मेलन मे बडे-बडे नेताओ मे से बहुतेरे गये भी नही। इसलिए यदि सम्मेलन मेरे कहने से असहयोग की नीति स्वीकार कर ले, तो इसका अर्थ यह होगा कि उसको कार्यान्वित करने का भार अधिकतर हम लोगो के ही ऊपर पडेगा—हम कहाँ तक इसे निवाह सकेगे? इस तरह के अनेकानेक प्रश्न दिल को दहला देते थे। पर मै जानता था कि नये लोग अधिकाश मे मेरे साथ थे।

बाबू व्रजकिशोर प्रसाद, बाबू धरणीधर प्रभृति जोरो से असहयोग का समर्थन कर रहे थे। इनके अतिरिक्त मुसलमान तो प्राय बडी उमग से इसमे आनेवाले थे। मजहरुल हक साहब के अलावा शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी महम्मद शफी, मौलाना नूरुलहसन प्रभृति भी साथ देनेवाले थे ही। पर मुसलमानो मे भी हसन इमाम साहब,

अब वकालत छोड़ देने का प्रश्न वास्तविक रूप से उठ खड़ा हुआ। मैं तथा पंडितजी जिस मुकदमे मे काम कर रहे थे, वह भी प्राय समाप्त हो रहा था—थोडे ही दिनो के बाद समाप्त हो गया। उससे उस समय तो फुरसत मिल गई, पर वह मुकदमा वही तक रहनेवाला नही था। उसकी अपील हाइकोर्ट और प्रिवी कौन्सिल तक जरूर जानेवाली थी, चाहे जो भी हारे। बाबू हरिजी चाहते थे कि मै कम से कम उनके इस मुकदमे मे, जब जरूरत पडे, उनका काम कर दिया करूँ। उसमे मैंने काफी दिनो तक काम किया था और उनसे रुपये भी मिले थे, अत. मैं उनके इस अनुरोध को टाल न सका। पर उसी समय यह निश्चय कर लिया कि इसके अलावा नये मुकदमे हाथ मे न लूँगा। हाँ, जो पुराने मुकदमे हाथ मे थे—विशेष करके जिनके लिए कुछ रुपये ले लिये थे—उनके सम्बन्ध मे अभी कुछ निश्चय नही कर पाया था।

भाई से मैंने कोई राय नही ली। पर वह समझ गये थे कि अब मैं वकालत छोड दूँगा। उनको आशा थी कि मैं कुछ पैसे पैदा करके घर की स्थिति, जो बहुत अच्छी नही थी, कुछ उन्नत करूँगा। पर उन्होने मेरे निश्चय के सम्बन्ध मे उस समय कुछ भी नही कहा। बहुतेरे दूसरे लोगो ने भी वकालत छोडी। साधारणत लोग समझते थे कि एक बरस के बाद सब अपने-अपने काम पर वापस आ सकेंगे। इस विचार से लोगो को और भी एक प्रकार का ढाढ़स बना रहा। जब से भागलपुर-कान्फ्रेंस मे, और उसके बाद कलकत्ता-कॉंग्रेस मे, असहयोग के कारणो मे स्वराज्य की बात भी जोड दी गयी थी, तब से मैंने समझ लिया था कि अब असहयोग लम्बा चलेगा, क्योकि ब्रिटिश गवर्नमेंट स्वराज्य पर जल्दी राजी होनेवाली नही है। महात्माजी कहा करते थे कि यदि खिलाफत और पंजाब के सम्बन्ध मे गवर्नमेंट हमारी माँगे मान लेने पर मजबूर की जा सकेगी, तो वही स्वराज्य का सूचक हो जायगा, और इसी लिए उन्होने पहले स्वराज्य की बात प्रस्ताव मे नही रखी थी। इसलिए उनकी नजर मे आन्दोलन की अवधि या विकटता 'स्वराज्य' जोड देने से बढी नही।

बम्बई से लौटने के बाद, मेरे ही घर पर पटने मे, कुछ ऐसे मित्रो की सभा हुई, जो असहयोग कर रहे थे। वहाँ पर वकालत छोडने की बात हुई। मैंने कहा कि जो मुकदमे हाथ मे है उनके सम्बन्ध मे दिक्कत हो सकती है, क्योकि हम मवक्किल से वचन-बद्ध हो चुके है, और विशेषकर जहाँ पैसे ले चुके है वहाँ तो हम छोड ही नही सकते। कुछ भाइयो ने इसे एक प्रकार से वकालत जारी रखने के लिए बहाना समझा। मैंने यह केवल अपने लिए नही कहा था; पर उन्होने समझा कि मैं अपने ही बारे मे यह सुविधा दूसरो के नाम पर लेना चाहता हूँ। बात तो यह थी कि एक बरस आरा चले जाने के कारण हाइकोर्ट से मैं प्राय गैर-हाजिर रहा था। इसलिए इतने दिनो मे बहुत-से पहले के मुकदमे खतम हो चुके थे और नये तो हाथ मे आये ही नही थे। इसी तरह मेरे हाथ मे जितने मुकदमे रहा करते थे उनकी सख्या बहुत कम हो गयी थी, तो भी, चूँकि उनकी सख्या बहुत रहा करती थी, इसलिए घटने पर भी वह काफी थी। मैं अपनी बात पर अड़ा रहा, पर वास्तव मे उस बरमा (Burma) के मुकदमे के

सिवा और किसी मुकदमे मे मेरे हाइकोर्ट जाने की नौबत नही आयी। या तो मवक्किल ने मुझे छोड़ दिया, या मैने अगर रुपये ले लिये थे तो वापस करके छुट्टी ले ली, या किसी दूसरे मित्र को अपनी जगह पर काम करने को कह दिया, जिस पर मवक्किल भी राजी हो गया।

दूसरी बात सरकारी और सरकार से सम्बद्ध स्कूलो और कालेजो के बहिष्कार की थी। मेरा अनुभव बताता था कि इसमे हमे बहुत सफलता नही मिलेगी। मैने बगाल-विच्छेद के समय कलकत्ते मे उस आन्दोलन को अच्छी तरह देखा था, जो सरकारी स्कूलो के विरुद्ध चला था। वहाँ भी यह प्रयत्न हुआ था कि राष्ट्रीय विद्यालय खोला जाय। उस 'नेशनल कौन्सिल आफ एडुकेशन' को ऐसे-ऐसे व्यक्तियो की सहायता तथा सहानुभूति मिली थी, जो केवल राजनीतिक पुरुष ही नही थे। सर गुरुदास बनर्जी, जो हाइकोर्ट की जजी से पेन्शन पा चुके थे और जो पहले कलकत्ता-युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर रह चुके थे, इसके बडे पक्षपाती और सहायक थे। इसलिए उसे गवर्नमेट के विरोध का भी विशेष भय नही था। कॉग्रेस तथा आन्दोलन के प्रोग्राम मे भी बहिष्कार की बात नही थी। उसमे अच्छे-अच्छे कुछ उत्साही युवक, जिन्होने युनिवर्सिटी मे बडा नाम पाया था, शरीक हुए थे। उनमे से विख्यात लेखक श्री विनयकुमार सरकार है, जिन्होंने एम० ए० की परीक्षा मे स्वर्णपदक और सर्वप्रथम स्थान पाया था। इतने पर भी उसमे उतना उत्साह नही देखा गया; क्योकि वहाँ से शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियो को किसी प्रकार जीविका-निर्वाह का रास्ता नही मिलता था। इससे मै डरता था कि यहाँ भी यदि हम इस पर जोर देगे तो विद्यार्थियो मे, और विशेष करके उनके अभिभावको मे, बहुत उत्साह नही आवेगा, और तब यह कार्यक्रम जोरो से चल नही सकेगा। मैने बैठक मे अपने इस विचार को भी रखा था, पर कुछ भाइयो को मेरी बात नही जँची; क्योकि वे समझते थे कि मै बहुत डरपोक हूँ और यो ही अपने सामने अनावश्यक भय खडा कर लेता हूँ।

बात यह है कि हमारे देश मे विद्या अर्थकरी है। जो पढता है उसे कुछ कमाना चाहिए। उसकी जिन्दगी ऐसी बन जाती है कि वह पुराने तरीके से रह नही सकता। उसके अपने रहन-सहन मे भी अधिक खर्च पड़ने लगता है। घरवाले आधुनिक शिक्षा दिलाने मे खर्च काफी करते है और आशा रखते है कि उस शिक्षा से वह उस पूँजी को अगर बढा न सकेगा तो कम से कम कायम रख सकेगा। वह शिक्षा भी ऐसी हुआ करती है कि शिक्षा समाप्त होने के बाद सरकारी, नौकरी या वकालत की तरह के पेशे को छोडकर दूसरा कोई काम भी नही मिलता। आरम्भ मे, जब ऐसी विद्या प्राप्त किये हुए लोगो की सख्या कम थी, लोगो ने पैसे भी खूब कमाये थे। पर जैसे-जैसे अँगरेजी शिक्षा का प्रचार बढता गया, शिक्षितो की सख्या बढती गयी, पैसे कमाने का मौका कम होने लगा, क्योकि इन नौकरियो और पेशो मे जानेवालो की सख्या बढ़ने लगी, फलत आपस की होड से कठिनाई भी बढने लगी। इसलिए, यद्यपि सरकारी अँगरेजी शिक्षा से भी उतनी आशा नहीं की जा सकती थी, तथापि राष्ट्रीय शिक्षा के

मुकाबले अर्थकरी होने मे वह अब भी बहुत बढी-चढी थी। इसलिए मेरा विचार था कि हम पहले कार्यक्रम के अनुसार लडको को स्कूल-कालेज छोडने के लिए कहे, और जब देखे कि उनकी सख्या काफी होती जा रही है तब अपनी ओर से विद्यालय इत्यादि का प्रबन्ध करे। मै यह भी सोचता था कि विद्यालय खोल देने के बाद उसको चलाते रहना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सकेगे तो इसका असर अच्छा न होगा। इसलिए मै विद्यालय खोलने अथवा परीक्षा लेने के पक्ष मे शुरू मे नही था।

मैने जो कुछ ऊपर कहा है उसका यह अर्थ नही है कि मै आधुनिक शिक्षा की त्रुटियो को नही समझता था। मै समझ गया था कि आधुनिक शिक्षा बिलकुल निकम्मी है। विदेशी भाषा द्वारा दी जाने के कारण इसमे समय और शक्ति की बहुत बरबादी है। इससे वह स्वाभाविक मानसिक विकास नही हो पाता जो अपनी भाषा द्वारा दी गई शिक्षा से होता है। स्पष्ट है कि जहाँ शब्दो के अर्थ स्मरण रखने मे ही सारा समय लग जाता है वहाॅ उसके समझने और चिन्तन के लिए कैसे समय मिल सकता है। इसलिए, यदि और कुछ नही तो केवल इस एक ही दोष के कारण वह शिक्षा सर्वथा अनिष्टकर है। विदेशी भाषा सीखने और जानने मे दोष नही है। जानना अच्छा है। आज की दुनिया मे, कम से कम किसी एक योरोपीय भाषा का परिचय एक प्रकार से अनिवार्य-सा हो गया है। तो भी भाषा जान लेना और उससे अपना काम निकालना एक बात है, और विदेशी भाषा को सारी शिक्षा का माध्यम बनाना बिलकुल दूसरी बात है। हम उसे माध्यम बनाने के विरोधी है, सीखने के नही। मै यह भी समझता था कि इस शिक्षा की नीव पड़ी थी अँगरेज हाकिमो की आवश्यकता की पूर्ति के कारण। वह आवश्यकता थी अँगरेजी पढे-लिखे देशी लोगो की, जिनका सहयोग वे अपना कारबार चलाने मे अनिवार्य समझते थे। वे कुछ ऐसे हिन्दुस्तानियो को चाहते थे जो रूप-रेखा मे तो हिन्दुस्तानी हो, पर विचार और मानसिक वृत्ति मे अँगरेज ही हो। उन्होने यह भी चाहा था कि उनके दफ्तरो के काम चलाने के लिए ऐसे सस्ते हिन्दुस्तानी पैदा किये जायँ, जो अँगरेजी सीखकर उनका सब काम अँगरेजी मे ही कर दे। इस तरह, अँगरेजों को हिन्दुस्तान मे भ्रमण करने तथा हिन्दुस्तानियो पर राज करने के लिए भी हिन्दुस्तानी भाषा से परिचित होने की आवश्यकता नही होगी। इसलिए शिक्षा की पद्धति भी कुछ ऐसी बनी थी कि विशेषत. उसी जरूरत के मुताबिक लोग तैयार किये जा सके। हाँ, ऐसे तैयार होनेवालो मे कुछ तो ऐसे जरूर निकल आवेगे जो स्वतन्त्र रूप से कुछ विचार करने की शक्ति भी प्राप्त कर लेगे और जो बिलकुल सरकार पर ही भरोसा न रखेगे। ऐसे अगर कुछ निकले तो निकले, पर शिक्षा-पद्धति का मुख्य उद्देश्य दफ्तरी लोगो को तैयार करना ही था। ऐसा ही उसका फल भी हुआ। इसलिए मै इस शिक्षा का पक्षपाती तो किसी तरह भी न था, पर राष्ट्रीय शिक्षा मे जो दिक्कते मै देखता था उनसे कुछ डरकर आहिस्ता-आहिस्ता कदम बढाना चाहता था। सबसे ज्यादा मुझे इस बात की चिन्ता थी कि शुरू होकर किसी काम का शीघ्र ही बन्द हो जाना और किसी नतीजे तक न पहुँचना

लोगो को हतोत्साह करेगा। इसलिए यदि हम काम थोड़ा भी करे तो हर्ज नही पर जो करें वह ठोस होना चाहिए।

पहले कह चुका हूँ कि हम लोग बिहार मे पूना के फरगुसन-कालेज के ढग का एक कालेज खोलने का विचार चम्पारन मे ही कर रहे थे। कुछ रुपये भी जमा कर लिये थे। पर वह विचार स्थगित कर दिया गया था; क्योकि गाधीजी ने कहा था कि सरकार से सम्बद्ध शिक्षालय खोलने से कोई फायदा नही है—यदि ऐसा करना ही चाहते हो तो बिलकुल नयी पद्धति से पढानेवाली राष्ट्रीय सस्था खोलो। उनकी वह बात भी हम लोग भूले नही थे। इसलिए हृदय के अन्दर एक तरफ राष्ट्रीय शिक्षा के पक्ष में विचारो की धारा बह रही थी, दूसरी ओर कठिनाइयो की चट्टानों को देखकर मन मे सन्देह हो रहा था। इसी लिए मैं कुछ ठहरकर यह देख लेना मुनासिब समझता था कि देश और विशेषकर विद्यार्थी-समुदाय असहयोग के मैदान मे किस तरह आता है। कुछ भाइयो का विचार था कि असहयोग को सफल बनाने के लिए जब तक हम विद्यार्थियो के सामने कोई दूसरी शिक्षा-सस्था नही प्रस्तुत कर देगे तब तक वे सरकारी विद्यालयो को छोड़कर नही आवेगे। इसलिए विद्यार्थियो को सरकारी विद्यालयो से हटाने—असहयोग कराने—के लिए राष्ट्रीय विद्यालय का होना आवश्यक है। मैं इस प्रकार प्रलोभन देकर असहयोग कराना पसन्द नही करता था। मैं चाहता था कि विद्यार्थियो को देश के नाम पर और सरकारी शिक्षा की त्रुटियो को बताकर हटाना अच्छा होगा। जब वे इस तरह सब कुछ समझ-बूझकर असहयोग करेंगे तभी उनका असहयोग टिकाऊ हो सकेगा। अगर वे यह समझकर असहयोग करेंगे कि वहाँ भी उनको नौकरी दिलानेवाली शिक्षा मिलेगी और इस तरह उन्हे कोई नुकसान नही उठाना पड़ेगा, तो उनका निश्चय टिकाऊ न होगा। हमारे विद्यालय मे आकर जब वे यह देखेंगे कि उनको उतनी सुविधा नही है जितनी सरकारी विद्यालयो मे थी, तो वे हताश होकर फिर वापस चले जायँगे। मैं चाहता था कि केवल ऐसे ही लोग आवे जो यह समझ ले कि यह रास्ता कटकाकीर्ण है—इसमे कष्ट है और उसे झेलने के ही लिए हम जा रहे है, न कि उन कुछ सुविधाओ के लिए जो सहयोग करनेवालो को प्राप्त है।

यह सब बहस चल ही रही थी और हम लोग सोच ही रहे थे कि मजहरुल हक साहब ने एक राष्ट्रीय स्कूल खोल दिया, जिसके प्रधान अध्यापक हुए लाट बाबू (श्री रामकिशोर लाल नन्दकुलियार), जो हाल ही मे विलायत से एम० ए० और बैरिस्टरी पास कर लौटे थे। दिसम्बर के आरम्भ मे गाधीजी, मौलाना महम्मद अली और मौलाना आजाद के साथ, दौरे पर निकले। वह बिहार मे भी आये। उन्होने काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय और अलीगढ-मुस्लिम-विश्वविद्यालयो पर भी चढाई की थी। थोड़ी सफलता भी मिली थी, पर पूरी नहीं। उसी चढाई के फल-स्वरूप काशी-विद्यापीठ और जामे-मिल्लिया (दिल्ली) का जन्म हुआ था। बिहार मे उन लोगों के आने से बड़ा उत्साह उमडा। बिहार के विद्यार्थी भी उस लहर में बह चले।

२८—पटना-विश्वविद्यालय से असहयोग

सरकारी शिक्षा से असहयोग का अर्थ था किसी भी शिक्षा-सम्बन्धी सस्था से सम्बन्ध न रखना। मै पटना-युनिवर्सिटी के सिनेट और सिण्डिकेट का मेम्बर था। युनिवर्सिटी के कामो मे काफी दिलचस्पी भी लिया करता था। युनिवर्सिटी ने एक कमिटी मुकर्रर की थी। कलकत्ता-युनिवर्सिटी की स्थिति पर विचार करने के लिए नियुक्त सेडलर-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करके पटना-युनिवर्सिटी मे आवश्यक सुधार की सिफारिश करने का भार उस कमिटी को दिया गया था। मैं भी उस कमिटी का एक सदस्य था। उसमे मैंने काफी परिश्रम किया था। मेरा विशेष प्रयत्न यह था कि युनिवर्सिटी कम से कम मैट्रिकुलेशन की परीक्षा तक के लिए, मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम मान ले। इस पर कमिटी के अन्दर काफी वाद-विवाद रहा। यह प्रश्न सिनेट के सामने आनेवाला था। सिनेट की बैठक नवम्बर के महीने मे होनेवाली थी। मैंने यह सोचा कि इस प्रस्ताव को यदि मै सिनेट मे स्वीकार करा सकूँगा तो यह भी राष्ट्रीय शिक्षा का ही एक काम होगा। इसलिए मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि यद्यपि मैंने असहयोगी होने का निश्चय कर लिया है तथापि मै सिनेट की बैठक तक सिनेट और सिण्डिकेट से नही हटूँगा। मै जानता था कि सिनेट मे इसके विरुद्ध प्रान्त के बडे-बडे लोग थे। अभी तक लोगों के मन मे अँगरेजी भाषा के लिए यह मोह था कि बचपन से ही अगर यह नही पढी जायगी तो इसका पूरा ज्ञान नही हो सकेगा और हमारे युवक ससार की होड मे पीछे रह जायँगे। यद्यपि सैडलर-कमिटी ने भी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया था तथापि हमारे अपने देश के लोग इसके विरोधी थे।

सिनेट के सामने, प्रस्ताव के समर्थन मे, मैंने एक बहुत जबरदस्त भाषण किया, जिसमे दलीलो के अतिरिक्त भावुकता की मात्रा भी काफी थी। जहाँ तक मै समझ सका, उसका असर लोगो पर काफी पडा। हमारे विरोधियो मे मिस्टर सुलतान अहमद, मिस्टर खाजा महम्मद नूर, जस्टिस ज्वालाप्रसाद, प्रोफेसर यदुनाथ सरकार प्रभृति थे। कुछ ने अपने भाषणो से विरोध किया, कुछ चुप रहे, पर सम्मति विरोध मे दी। हमारे समर्थक दो अँगरेज निकले। प्रोफेसर हामिल्टन और प्रोफेसर डचुक। इनसे मैंने कुछ कहा नही था और न इनसे इस विषय मे कभी विचार-विनिमय ही हुआ था। पर दोनो ने, केवल शिक्षा की उपयोगिता की दृष्टि से, मेरे प्रस्ताव का जोरो से समर्थन किया। प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ। सिनेट की यह सिफारिश हुई कि युनिवर्सिटी के नियमो मे ऐसा परिवर्तन किया जाय जिससे मैट्रिक-परीक्षा तक की शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जा सके। इस प्रस्ताव को पास कराकर मै बहुत खुश हुआ। किन्तु सिनेट की बैठक समाप्त होते ही मैंने सिनेट और सिण्डिकेट से इस्तीफा दे दिया।

उन दिनो 'सर हविलैण्ड लिमेजरर' गवर्नर की कौन्सिल के एक मेम्बर

थे। वह सिनेट के भी मेम्बर थे। सुना कि उनको मेरे इस्तीफा देने से रज हुआ, क्योकि वह जानते थे कि मै युनिर्वासिटी मे अच्छा काम कर रहा था। मुझे किसी तरह युनिर्वासिटी से असहयोग न करने देने के लिए ही, उन्ही की अनुमति से, बहुत-से सरकारी लोगो ने मेरे उस प्रस्ताव के पक्ष मे सम्मति देकर उसे पास कराया था। यह बात मुझे इस्तीफा भेजने के बाद मालूम हुई। मुझ पर जोर भी डाला गया कि मै इस्तीफा वापस ले लूँ, पर मैंने वैसा नही किया। मैंने सोचा कि एक ओर राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करना—सरकारी शिक्षा के दोष बताना और विद्यार्थियो को सरकारी विद्यालयो से निकल आने को प्रोत्साहित करना, और दूसरी ओर सरकारी शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली सर्वोच्च सस्था (युनिर्वासिटी) मे बने रहना परस्पर-विरोधी बाते है। यह बिलकुल गलत रास्ता होगा। इसलिए मै इस्तीफा वापस लेने पर राजी नही हुआ।

अगर मै युनिर्वासिटी मे रह गया होता तो जिस प्रस्ताव को इतने परिश्रम से मैंने सिनेट मे पास कराया था। उसको कार्यान्वित करने मे भी शायद सफल होता। निश्चित रूप से कुछ भी आज कहना सम्भव नही है, पर यह दु ख की बात है कि सिनेट के निश्चय के बाद भी उसके अनुसार काम नही किया गया। अँगरेजी माध्यम की शिक्षा प्राय बीस बरसो तक बनी रही। हाल मे मैट्रिक तक के लिए, अँगरेजी और हिसाब छोडकर, और विषयो की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम मातृभाषा बनी है। इन बीस बरसों मे देश की स्थिति मे कितना अन्तर हो गया है, यह वही जानता है जिसने बीस बरसों के पूर्व सार्वजनिक हित के कार्यो मे भाग लिया हो और जो आज भी लेता हो। युनिर्वासिटी भी आखिर इस आवश्यक सुधार को ज्यादा दिन न रोक सकी। बीस बरसो के बाद उसने भी इसे स्वीकार कर ही लिया है।

२९—बिहार-विद्यापीठ और सदाकत-आश्रम

कलकत्ते मे असहयोग का प्रस्ताव पास होने के बाद ही मै कौन्सिल की अपनी उम्मीदवारी से हट गया। चुनाव नवम्बर के महीने मे ही होनेवाला था। इसलिए सब से पहले इसी कार्य-क्रम पर जोर देना जरूरी समझा गया। हम लोगो ने बिहार मे बहुत परचे छपवाये। उसमे जनता से अपील की गयी थी कि जो लोग इस चुनाव मे खडे हो रहे है उनको कोई भी वोट न दे। कुछ लोग दौरे पर भी निकले। जगह-जगह सभाएँ करके लोगो को वही बात बतायी गयी। मैंने भी कुछ दौरा किया। स्मरण है कि कार्तिक-पूर्णिमा के मेले के अवसर पर मै 'दरौली' (जिला सारन) गया था। वहाँ सभा हुई थी-जिसमे मैंने भाषण किया था। हम लोगो की इच्छा और कोशिश थी कि कोई उमीदवार ही न खडा हो, पर इसमे हम सफल नही हुए। सभी स्थानो के लिए उमीदवार खडे हो गये। कुछ तो बिना विरोध चुने गये; पर जहाँ वोट देने का मौका मिला, वहाँ जनता ने बहुत कम सख्या मे वोट

दिया। मेरा ख्याल है कि बिहार मे शायद प्रतिशत बीस-पचीस से अधिक वोटरो ने वोट नही दिया था।

जव महात्माजी दिसम्बर में बिहार के दौरे पर आये, प्राय उसके थोडे ही दिन पहले, एक घटना बिहार मे हुई थी, जिसका जिक्र जरूरी है। ऊपर कहा जा चुका है कि चम्पारन मे नील-सम्बन्धी जॉच समाप्त हो जाने पर गाधीजी ने कई जगहो मे पाठशालाएँ खोली थी। इनके अलावा उस जागृति का नतीजा सूबे की कई जगहो मे किसी न किसी रूप मे देखने मे आया। इस जागृति मे होमरूल-आन्दोलन ने भी काफी मदद पहुँचायी थी। एक रूप इसका यह हुआ कि जहॉ-तहॉ किसान-सभाएँ कायम हुई, जो जमीन्दारों के विरुद्ध किसानो की शिकायतो को जाहिर करने लगी। चम्पारन में भी एक किसान-सभा बन गयी, जो किसानो की मदद करना अपना कर्तव्य समझती थी। उधर नये विधान के कारण यह भी स्पष्ट होने लगा कि जनता को कुछ हद तक मताधिकार मिलेगा और कौन्सिल के चुनाव मे किसानों को हिस्सा लेना पडेगा। किसान-सभाओ को इससे भी प्रोत्साहन मिला। जमीन्दार भी कुछ घवराये। वे सोचने लगे कि हम ऐसा सगठन करे कि नये विधान के चुनाव मे सफलता-पूर्वक भाग ले सके। उन्होने नीलवरो के साथ एक समझौता किया और नीलवर-जमीन्दार-सस्था कायम की। इससे किसानो और शिक्षित वर्ग मे कुछ खलबली मची और रोष पैदा हुआ। उस समय के समाचार-पत्रो के देखने से पता चलेगा कि इस सगठन के विरोध मे शिक्षित वर्ग ने भी आवाज उठायी। बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन मे खुल्लम-खुल्ला मुकाबला करने की बात कही गयी। इस सस्था का जन्म मुजफ्फरपुर में हुआ था। पर इसकी शाखाएँ और-और जगहो मे भी बनती गयी। दरभगा के महाराजाधिराज इसके सभापति थे।

इन्ही दिनो श्री रामरक्ष ब्रह्मचारी ने चम्पारन जिले के बेतिया-सवडिवीजन के 'मच्छरगाँवा' गॉव मे जाकर काम शुरू किया। वह स्थायी रूप से ग्राम-सगठन का काम करना चाहते थे। वहाँ के लोगो ने भी उत्साह-पूर्वक साथ दिया था। बहुतेरे स्वयसेवक काम करने के लिए तैयार थे। वहॉ वह जो कुछ कर रहे थे, मेरे परामर्श से कर रहे थे। जव एक बार मै वहॉ गया तो वहॉ का सगठन देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। लोगो मे ऐसी पचायते कायम करना जो आपस के झगडे मिटा दे, बच्चो की शिक्षा के लिए पाठशालाएँ खोलना, गॉवो की सफाई, किसानों की शिकायते दूर कराने का प्रयत्न करना—यही मुख्य कार्य-क्रम थे। वहाँ एक आश्रम बना जिसका खर्च जनता 'मुठिया' (घर-घर से एक-एक मुट्ठी अन्न) द्वारा जुटाती थी। सगठन का काम अच्छा चल रहा था। लोगो मे उत्साह भी काफी था। पुलिस और निलहे गोरे इस प्रकार के सगठन को पसन्द नही करते थे—विशेष करके पुलिस वाले, क्योकि उनकी धॉधली वहाँ नही चल सकती थी। उसी इलाके मे पुलिस ने एक बडा काण्ड कर डाला।

एक आदमी ने किसी के विरुद्ध पुलिस-दारोगा के पास नालिश कर दी।

जहाँ यह वाकया हुआ था, उसके पास के ही गाँव मे दारोगा किसी दूसरे मुकदमे की तहकीकात कर रहे थे। उन्होंने पुलिस के सिपाहियो और गाँव के दफादार को भेजा कि जिसके विरुद्ध नालिश की गयी थी उसे और कुछ दूसरे लोगो को भी पकड लाओ। उन्होंने इस तरह जाने से इनकार कर दिया। जोर लगाने पर भी वे नही गये। दारोगाजी को गुस्सा आया। तफसील की सारी बाते यहाँ देना अनावश्यक है। दारोगा ने जिले के सदर मुकाम से मिलटरी-पुलिस बुलवा ली। कई गाँवों को पुरानी रीति के अनुसार लुटवा लिया। लोगो के साथ बडी सख्तियाँ हुई। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी सुरक्षित न रहने पायी। ब्रह्मचारी रामरक्ष के साथी सर्वश्री ध्वजाप्रसाद, रामविनोदसिंह और मनोरजनप्रसाद ने वहाँ की धाँधली की खबरे अखबारो मे छपवा दी। रामरक्ष गिरफ्तार कर लिये गये। बिहार-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने, जाँच के लिए, श्री मजहरुल हक साहब की प्रधानता मे, एक कमिटी बनाई। उस कमिटी ने जनता की शिकायतो को ही ठीक बताया और गवर्नमेट की लीपा-पोती को गलत ठहराया।

यह आन्दोलन जोरो से चल ही रहा था जब गाधीजी बिहार मे पहुँचे। वह चम्पारन जाने पर घटनास्थल पर भी गये। उन गाँवो के लोगो से भी उनकी भेट हुई। इसी यात्रा मे गाधीजी ने अहिंसा की एक ऐसी व्याख्या दी जो अभी तक जहाँ-तहाँ लोगो को समझानी पडती है। उन्होंने कहा था—"पुरुषो ने, स्त्रियो और घर-बार को छोड, भागकर बडी कायरता दिखलायी थी। उनका धर्म था कि अपनी जान देकर उनकी रक्षा करते। पर यदि उनमे इस प्रकार बिना हाथ उठाये मरने की शक्ति नही थी तो उनको, चाहे जिस तरह हो सकता, मुकाबला करना चाहिए था। अपने धर्म मे स्थित रहकर, बिना हाथ उठाये, मर जाना ही सच्ची अहिंसा है, पर डर से भाग जाना बडी भारी हिंसा है। भागने से बेहतर है कि जो कुछ मिले उसे हाथ मे लेकर मुकाबला किया जाय"। मैने यह महात्माजी के शब्दो मे नही कहा है। यह साराश मात्र है। ब्रह्मचारी रामरक्ष और दूसरो पर जो मुकदमे चले वे कई महीनो तक पेशी मे रहे। अन्त मे सब झूठ साबित हुए। सब लोगो की रिहाई हो गयी।

महात्माजी की यात्रा से आन्दोलन ने अधिक जोर पकडा। कौन्सिल का चुनाव खतम हो चुका था। अब अधिक जोर स्कूल-कालेजो के खाली करने पर था। हम लोगों ने भी निश्चय किया कि एक राष्ट्रीय महाविद्यालय (कालेज) खोला जाय। पटना-गया-रोड पर भाडे पर एक मकान लेकर कालेज खोला गया। मै जिस मकान मे रहा करता था उसके पास ही यह मकान भी था। अब मैने सोच लिया कि भाडे पर अपने लिए मकान रखना, जब वकालत छोड ही दी है, अनावश्यक है—१५०) मासिक का यह खर्च बन्द कर देना चाहिए। इसलिए मैने अपना मकान छोड दिया। महाविद्यालय मे ही जाकर रहने लगा। कानून की पुस्तको को अपने मित्र श्री शम्भुशरण वर्मा के पास रख दिया। वे पुस्तके उनके ही साथ उनके जीवन-भर रही। उनकी

असामयिक मृत्यु के बाद फिर दूसरे मित्र के पास चली गयी, जहाँ आज तक उनके काम आ रही है।

पटने के इन्जीनियरिंग स्कूल के विद्यार्थियो का वहाँ के प्रिन्सिपल से किसी विषय मे मतभेद हो गया। विद्यार्थियों ने हडताल कर दी। एक साथ जलूस बनाकर श्री मजहरुल हक साहब के पास, जो उन दिनो सिकन्दर-मजिल मे फ्रेजर रोड पर रहा करते थे, गये। उनसे कहा कि हम लोगो ने स्कूल छोड दिया है, हमको स्थान दीजिए। मजहरुल हक साहब बडे भावुक और निर्भीक व्यक्ति थे। उनके त्याग की शक्ति भी अपूर्व थी। उस समय वह बहुत ही ऐश-आराम से उस बडी कोठी मे रहा करते थे। अपने लिए एक बड़ी कोठी और भी बनवा रहे थे। सब कुछ छोडकर, उन लडको को साथ लेकर, पटना-दानापुर-सडक पर एक बगीचे मे चले गये। वहाँ उनके एक परिचित सज्जन का छोटा-सा मकान था। वही रहने लगे। जाडे के दिन थे। खूब सर्दी पड रही थी। वह स्थान गगा के किनारे होने के कारण कुछ अधिक ठण्डा था। घने बगीचो से घिरे रहने के कारण वहाँ की जमीन मे कुछ सील भी थी। तब भी मजहरुल हक साहब वहाँ कुछ दिनो तक उसी छोटे बँगले मे रहे। आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ ताड की चटाइयो के कुछ झोपडे भी बन गये। लडके भी बडे उत्साही थे, कष्ट का खयाल न करके उनके साथ आनन्द से रहने लगे। उसी स्थान का नाम उन्होने 'सदाकत-आश्रम' रक्खा। कुछ दिनो मे वही बीहड स्थान, जहाँ से रात मे नव बजे के बाद किसी राही का गुजरना खतरनाक समझा जाता था, गुलजार हो गया। वहाँ चर्खों का एक कारखाना खोल दिया गया। सभी लडके चर्खे बनाने मे लग गये। आहिस्ता-आहिस्ता हक साहब ने अपने पैसो से ही मकान बनवाना शुरू कर दिया। कुछ दूसरे लडके भी जाकर उनके साथ रहने लगे। वह स्वय वही रहते, लडको को पढाते और वही मोटा खाना खाते जो लडके खाते। लडके अधिकाश हिन्दू ही थे। हक साहब का खयाल था कि कोई लडका यह न समझे कि वह अपने हृदय मे हिन्दू-मुसलमान का भेद, किसी प्रकार से भी, रखते है। इसलिए वह सबको एक तरह से मानते थे। लडके भी उनको पिता की तरह पूज्य समझते थे। वैसा ही उनपर विश्वास भी रखते थे।

इस सम्बन्ध मे यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना अच्छा होगा। इसी बात से उस महान् व्यक्ति के सच्चे भावो का पता चलेगा। हक साहब के साथ एक बहुत गरीब घर का मुसलमान लडका रहा करता था। उन्होने देखा था कि लडका पढने मे तेज है। उनके दिल पर इसका भी असर पडा था कि मुसलमान होकर भी उसने हिन्दी और सस्कृत पढी थी। वह कालेज के फर्स्ट या सेकेण्ड इयर मे पढता था। नाम था महम्मद खलील। हक साहब उसे बहुत मानते थे। असहयोग का आरम्भ होने पर उसने भी कालेज छोड दिया। हक साहब के साथ ही उनकी कोठी छोडकर सदाकत-आश्रम मे जाकर रहने लगा। एक-डेढ साल के बाद मैंने सुना कि हक साहब ने उसको आश्रम से निकाल दिया। महम्मद खलील ने भी आकर मुझसे कहा कि

वह रज हो गये है, आप सिफारिश करके उनको शान्त कर दीजिए। हक साहब की मेहरबानी मेरे ऊपर बराबर रहा करती थी। वह दिल से मुझे प्यार किया करते थे। इसलिए मैने महम्मद खलील के बारे मे उनसे कहा। उस समय तक महम्मद खलील-सारे बिहार में विख्यात हो गये थे। उन्होंने असहयोग का आरम्भ होते ही एक राष्ट्रीय भजन बनाया था, जो उन दिनो बहुत प्रचलित हो गया था। वह वास्तव में बहुत सुन्दर, हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी गान था। उसका टेक था—'भारत जननि, तेरी जय तेरी जय हो।' उन दिनों शायद ही ऐसी कोई सभा होती जिसमे यह गीत बडे उत्साह से न गाया जाता।

जब मैने हक साहब से कहा कि महम्मद खलील की कोई गलती हो तो माफ कीजिए, तो उन्होने बहुत ही दुःख के साथ मुझसे कहा—"मै तुम्हारी बात कभी नही टालता, पर इस समय मजबूर हूँ। तुम नही जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है। इसीलिए तुम सिफारिश कर रहे हो। मैने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिए आज तक सब कुछ करता आया हूँ और आज फकीर बन गया हूँ, उस पर इसने ठेस लगाई है। मैने अब तक की सारी जिन्दगी मे हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काम किया है। उसी मे आज भी लगा हुआ हूँ। आश्रम मे रहकर इसने हिन्दू लडकों के साथ ऐसा बर्ताव किया है जिससे वे लडके, जो मुझ पर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आ गये है, हिन्दू-मुस्लिम भेद भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने-बनाये काम को बिगाडने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि लडको को मुसलमान बनावे। मै सब कुछ माफ कर सकता हूँ, पर इस तरह इसलाम के नाम पर विश्वासी लडको के साथ विश्वासघात करना बरदाश्त नही कर सकता। अब मै जान गया हूँ कि हिन्दी और सस्कृत भी इसने ढोग के लिए पढी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फसाद भी करा देगा। मै इसे आश्रम मे हरगिज न रहने दूँगा।"

यह वही महम्मद खलील थे, जो कुछ दिनो बाद 'खलील दास' के नाम से विख्यात हुए। इनके सम्बन्ध मे जनता समझती है कि इन्होने कई स्थानो मे हिन्दू-मुस्लिम नाइत्तफाकी का सगठन किया। इसके बहुत बुरे फल, दगा-फसाद के रूप मे, देखने मे आये। इन दगो मे बहुत-से हिन्दुओ और मुसलमानो ने अपनी जाने गँवायी। जब मैने कई बरसो के बाद इनके सम्बन्ध मे इस तरह की शिकायते सुनी तब मुझे हक साहब की भविष्य-वाणी याद आयी। उनके वे उद्गार—वे मर्म-भरे शब्द—कानों मे एक बार फिर गूँज उठे।

राष्ट्रीय महाविद्यालय खोल दिया गया। मै उसका प्रिन्सिपल बनाया गया। उसके अध्यापको मे श्री बदरीनाथ वर्मा—जो उस समय बिहार-नेशनल-(बी० एन०) कालेज (पटना) मे अँगरेजी के प्रोफेसर थे, श्री जगन्नाथप्रसाद एम० ए० काव्यतीर्थ—जो पटना-कालेज मे सस्कृत के प्रोफेसर थे, श्री प्रेमसुन्दर बोस—जो भागलपुर के टी० एन० जुबिली-कालेज मे फिलासफी के प्रोफेसर थे, अपने-अपने पदो से इस्तीफा

देकर, आ जुटे। इनके अलावा श्री जगतनारायण लाल, श्री रामचरित्रसिंह, श्री अब्दुलबारी प्रभृति भी आ गये। हमने कालेजो के उन लड़को को, जो पढना चाहते थे, पढाना शुरू कर दिया। अभी प्राय वही विषय पढाये जाते जो सरकारी कालेजो मे पढाये जाते थे। जो रुपया चम्पारन-यात्रा के समय महाविद्यालय के लिए जमा किया गया था, इसी मे खर्च किया जाने लगा।

उधर युनिवर्सिटी की परीक्षाओं का समय नजदीक आ रहा था। कुछ भाइयो का, विशेषकर मौलवी शफी दाऊदी का, विचार था कि हम लोगो को उन लडको की परीक्षा भी लेनी चाहिए जो सरकारी परीक्षाओ मे शरीक होना नही चाहते। इसलिए यह भी आवश्यक हो गया कि परीक्षाओं का सगठन किया जाय। महात्मा गाधी ने भी बिहार से जाने के समय कहा था कि बिहार मे भी विद्यापीठ होना चाहिए। मेरे यह कहने पर कि हमारे पास रुपये नही है, उन्होने कहा था कि चिन्ता न करो, अगर काम ठीक तरह से होगा तो रुपयो की कमी न होगी। जब नागपुर-काग्रेस के बाद वह दुबारा बिहार के दौरे पर आये तो झरिया मे पचास-साठ हजार रुपये जमा करके मेरे पास तार दिया कि पटने आ रहा हूँ—विद्यापीठ के उद्घाटन का प्रवन्ध करो। उसी मकान मे, जहाँ हमने महाविद्यालय खोल रक्खा था, उन्होने आकर विद्यापीठ का उद्घाटन किया। श्री मजहरुल हक साहब उसके चान्सलर मुकर्रर किये गये। हमने बाजाब्ता सिनेट वगैरह भी बना लिया। हम लोग पाठ्यक्रम निर्धारित करने के काम मे लग गये।

यह सब देखकर सरकारी कालेज मे पढनेवाले लडको मे भी बहुत उत्साह उमडा। एक दिन पचास-साठ लडके जलूस बनाकर, पटना-कालेज और साइन्स-कालेज छोडकर, सीधे पटना-गया-रोड पर हमारे महाविद्यालय में आ गये। इनमे पटना-युनिवर्सिटी के अच्छे से अच्छे विद्यार्थी भी थे। कुछ तो रह गये, जो आज सारे प्रान्त में फैले हुए है और आज भी सूबे के प्रमुख लोगो मे है। कुछ ने कुछ दिनों तक तो काम किया, पर जब आन्दोलन कुछ ढीला पडा तो फिर सरकारी कालेज मे वापस चले गये। वहाँ से वे अच्छी तरह पास करके सरकारी नौकरी मे चले गये। आज वे ऊँचे उहदे तक पहुँचकर सरकारी काम कर रहे है। कुछ तो शीघ्र ही वापस चले गये और फिर अपनी पुरानी रीति से काम करने लगे।

३०—पूर्णतः असहयोग में

असहयोग के मुख्य अग चार वहिष्कार थे—(१) सरकारी उपाधियो और खितावो को छोड़ देना, (२) सरकारी शिक्षा-सस्थाओ से सम्वन्ध-विच्छेद, जिसका अर्थ था कि न उनमे खुद शिक्षा ग्रहण करना और न अपने वाल-वच्चो को वहाँ शिक्षा पाने देना, (३) कौन्सिल मे न जाना और उनसे किसी प्रकार का लाभ न उठाना, (४) सरकारी अदालतो से सम्वन्ध छोडना अर्थात् उनमे न मुकदमे दायर करना और न उनमे वकालत या मुखतारकारी या नौकरी करना। आशा की जाती

समझ लेता था। प्रतिनिधियो का चुनाव भी बाजाब्ता नही हुआ करता था। जो कॉंग्रेस के जल्से के समय पहुँच जाते थे, प्रतिनिधि बन जाते थे। जिले या प्रान्त के नामधारी मत्री उनको प्रमाण-पत्र दे देते थे। वे १०) फीस दाखिल करके प्रतिनिधि हो जाते थे। ऐसे ही प्रतिनिधि काँग्रेस के सालाना जल्से के समय अखिल-भारतीय काँग्रेस कमिटी के मेम्बर चुन देते। उस चुनाव मे अधिक होड नही होती थी। अक्सर प्रान्त के कुछ प्रमुख लोग, जो कॉंग्रेस मे दिलचस्पी लिया करते थे, चुन दिये जाते थे। अखिल-भारतीय कॉंग्रेस कमिटी के नियमानुसार बिहार-प्रान्त को उसे १५००) वार्षिक चन्दा देना पडता था। एक प्रकार से यह बात मान ली गयी थी कि जो लोग १००) देगे, वे ही अखिल-भारतीय कॉंग्रेस कमिटी के मेम्बर चुने जायँगे। इसलिए, बहुतेरे ऐसे लोग, जो यह शर्त पूरी नही कर सकते थे, कभी उमीदवार होने की हिम्मत नही करते थे। इससे यह न समझना चाहिए कि सभी चुने गये सदस्य यह १००) अदा कर देते थे। उन दिनो अखिल-भारतीय कॉंग्रेस कमिटी के मत्री थे राजमहेन्द्री के सुविख्यात कॉंग्रेस कर्मी श्री सुब्बाराव पान्तलु। मुझे याद है कि वह अकसर पटने मे यह चन्दा जमा करते। तो भी यह हर साल अदा नही होता। १९२० मे कई हजार रुपये बिहार के नाम पर बाकी पडे थे।

नागपुर-कॉंग्रेस ने काँग्रेस की नियमावली बदल दी। उसने सभी जगहो मे काँग्रेस का मेम्बर बनाना अनिवार्य कर दिया। प्रत्येक सूबे को उसकी आबादी के प्रति-लाख पर एक प्रतिनिधि चुनने का ही अधिकार दिया। इस प्रकार प्रतिनिधियो की सख्या परिमित हो गयी। उसने यह भी अनिवार्य कर दिया कि प्रतिनिधियों का चुनाव केवल काँग्रेस के मेम्बर ही कर सकते है। वह भी किसी कॉंग्रेस-कमिटी की बाजाब्ता बैठक मे ही। चुने हुए प्रतिनिधियो की सूची अधिवेशन के कई दिन पहले ही अखिल-भारतीय कमिटी के दफ्तर मे पहुँच जानी चाहिए। उस सूची मे जिनके नाम दिये गये होते थे उन्हे छोड, बिना विशेष कारण के, कोई दूसरा प्रतिनिधि नही हो सकता था। सूची के नामो मे हेरफेर तभी हो सकता था, जब कोई चुना हुआ प्रतिनिधि इस्तीफा दे देता और उसकी खाली जगह पर कोई नया चुनाव हो जाता। इसका प्रमाण प्रान्तीय मत्री को देना होता।

इन नियमों के कारण अब काँग्रेस के चुनाव मे काफी सख्ती आ जानेवाली थी, अब पुरानी नीति चलनेवाली न थी। इसलिए नये सिरे से सगठन करके बाजाब्ता चुनाव कर लेना आवश्यक हो गया था। कॉंग्रेस ने इसके लिए समय भी निर्धारित कर दिया था। प्रान्तीय कमिटी को नये नियमो के अनुसार अपने नियम भी बना लेने का अधिकार दिया गया था। इसलिए सोचा गया कि जब तक नया सगठन न हो जाय, एक छोटी कमिटी बना दी जाय, जो सब काम करेगी। पुराने बहुतेरे कॉंग्रेसी नेता अब कॉंग्रेस से अलग हो गये थे। कुछ तो कॉंग्रेस के सिद्धान्त बदलने के कारण और कुछ वे, जिनको सिद्धान्त (Creed) अगर मजूर भी था तो असहयोग के कार्यक्रम से विरोध था। इसलिए भी पुन सगठन आवश्यक था। इस कमिटी का मत्री मै बनाया गया।

सभापति हुए मौलाना मजहरुल हक साहब। इसको पुनस्सघटन-समिति (Reoiga-nisation Committee) का नाम दिया गया। कमिटी ने अपना काम वडे उत्साह के साथ आरम्भ किया। हम जहाँ जाते, काँग्रेस के मेम्बर बनाने की बात करते और असहयोग का प्रचार तो करते ही।

बहुतेरे वकील, मुखतार और विद्यार्थी—जिन्होने अपने-अपने काम छोड दिये थे—सारे प्रान्त मे फैल गये। वे सभी जगहो मे काँग्रेस का सन्देश पहुँचाने लगे। प्राय' सभी जिलो मे राष्ट्रीय पाठशालाएँ खुल गयी, कुछ तो मैट्रिक कक्षा तक के लिए और कुछ नीचे के दर्जे तक। सबका सम्बन्ध बिहार-विद्यापीठ के साथ हो गया। मै समझता हूँ कि मैट्रिक पाठशालाओ की सख्या ५० के लगभग होगी और प्राइमरी शालाएँ प्राय दो-ढाई सौ। सब पाठशालाओ मे, जो बिहार-विद्यापीठ से सम्बद्ध थी, २० से २५ हजार तक विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। बहुतेरे लोग, जिन्होने दूसरा काम छोडा था, इन पाठशालाओ मे शिक्षक बन गये।

उन दिनो प्रान्त-भर मे अनगिनत सभाएँ हुई होगी। किसी भी जिले का शायद ही कोई हिस्सा बचा होगा जहाँ कार्यकर्ता न पहुँचे हो और जहाँ सभा करके काँग्रेस का कार्य-क्रम और सदेश लोगो को न बताया गया हो। मैने सारे सूबे का चक्कर लगाया। १९२१ मे ही पहले-पहल सारे सूबे का परिचय हुआ। असख्य कार्यकर्ताओ से जान-पहचान भी हो गयी।

मै वकालत तो किया करता था, पर बडी सभाओ मे बहुत बोलने का अभ्यास नही था, यद्यपि मै लडकपन से ही सभाओं मे भाग लिया करता था। असहयोग के प्रचार मे असख्य सभाओ मे भाषण करने पडे। नतीजा यह हुआ कि सभाओ मे बोलते समय जो थोडा सकोच हुआ करता था, वह निकल गया। मै अब धडल्ले से भाषण कर सकता था। जिन जिलो मे लोग भोजपुरी बोला करते है उनमे जाता तो भोजपुरी मे ही भाषण करता। दूसरी जगहो मे शुद्ध हिन्दी मे। मुझे स्मरण नही है कि पुरुलिया मे मैने कभी बँगला मे उस साल भाषण किया या नही, यद्यपि यह याद है कि पुरुलिया मे मैने कभी बँगला मे भी भाषण किया है। सभाएँ भी कुछ छोटी-मोटी नही होती थी। पाँच-दस हजार का जमाव होना तो कोई बडी बात नही थी। दस हजार लोगों की सभा मे आसानी से मै सब लोगों तक अपनी आवाज पहुँचा सकता था। उससे अधिक सख्या होने पर परिश्रम पडता था। मेरा अनुमान है कि पन्द्रह हजार तक की सभा मे यदि लोग शान्त रहते तो मै अपनी आवाज पहुँचा सकता, पर बहुत अधिक परिश्रम पडता और पेट मे दर्द हो जाता। मुझे यह भी याद है कि बीस-पचीस हजार के मजमे मे भी मैने उस साल मे भाषण किये थे। एक सभा छपरा-जिले मे हथुआ मे हुई थी। वहाँ न मालूम किस तरह खबर उड गयी थी कि सभा में महात्मा गाधी आनेवाले है। इसलिए वहाँ प्राय पचास हजार का जमाव हो गया। हजार कोशिश करने पर भी सभा ठीक नही जम सकी। यद्यपि मैने अपनी पूरी शक्ति भर जोर लगाकर एक छोटा-सा भाषण किया तथापि मुझे शक है कि थोडे ही लोगो ने उसे सुना या समझा।

मैं भाषण करते समय देखा करता था कि सभा मे उपस्थित लोगो पर उसका कैसा प्रभाव पड रहा है। जहाँ अच्छा प्रभाव पडता नजर आता और जनता सुनने के लिए उत्सुक और समझदार मालूम पडती वहाँ का भाषण भी मै खुद समझ सकता था कि अच्छा हो जाया करता था। जहाँ ये बाते नही होती वहाँ भाषण भी ऐसा-वैसा ही होता। भाषण भी कुछ छोटे नही होते। कांग्रेस का इतिहास, खिलाफत-आन्दोलन और पजाब-सम्बन्धी जुल्म तथा स्वराज्य की आवश्यकता के अलावा असहयोग का कार्यक्रम मै सभी सभाओ मे बहुत विस्तार के साथ बताता। इसमे प्राय एक-डेढ घटे लग जाते। जहाँ दस हजार तक का जमाव होता वहाँ तो पूरे विस्तार के साथ डेढ घटे या इससे अधिक देर तक भी बोल लेता। जहाँ इससे अधिक जनता एकत्र होती वहाँ कुछ सक्षेप करना पड़ता। बीस हजार से अधिक लोगो की सभा मे आध घटे से ज्यादा नही बोल सकता था। इस तरह मै सारे सूबे मे दौरा करता रहा। दूसरे साथी भी यही कर रहे थे।

३१—'देश' और 'सर्चलाइट' का प्रकाशन

असहयोग-आन्दोलन मे सभी नेता शरीक नही हुए। कांग्रेस के पुराने और वयोवृद्ध नेताओ ने, जो असहयोग मे शरीक नही हुए, एक दूसरी सस्था 'बिहार-प्रान्तीय लीग' के नाम से कायम की। देश के नरमदल के समाचार-पत्रो मे इसकी चर्चा बहुत चली, पर यह सस्था कुछ कर न सकी। इसके सम्बन्ध मे पीछे कुछ सुनने मे नही आया। हमारे सूबे मे एक बात की खूबी थी। मतभेद होते हुए भी आपस मे सघर्ष नही हुआ। हम लोगो का आपस का व्यवहार भी ज्यो का त्यो बना रहा। पर इतने लोगो के अलग हो जाने के कारण, विशेष करके नागपुर मे कांग्रेस की नियमावली और उसके विधान मे बहुत अदल-बदल हो जाने के कारण, कांग्रेस कमिटियो का पुन सगठन आवश्यक हो गया। यह सगठन कई महीनो मे जाकर पूरा हुआ। जून के अन्त तक जिला-कमिटियाँ बाजाब्ता बनकर प्रान्तीय कमिटी का चुनाव कर सकी। तब फिर अखिल-भारतीय कमिटी के नये सदस्य चुने गये।

कांग्रेस के पुन सगठन के प्रश्न के साथ-साथ कुछ और भी प्रश्न उपस्थित हो गये। समाचार-पत्रो के लिए बिहार अच्छा सूबा नही है। पहले बहुत परिश्रम और त्याग से 'बिहार-टाइम्स' और 'बिहारी' निकाले गये थे, पर आर्थिक कठिनाइयो के कारण दोनो बन्द हो चुके थे। 'बिहार-टाइम्स' के जन्मदाता और मुख्य कार्यकर्ता बाबू महेश-नारायण (अब स्वर्गीय) थे। उन्होने उसे अपनी जिन्दगी मे चलाया था। श्री सच्चि-नन्द सिंह (अब डाक्टर) की भी अखबार-नवीसी मे बहुत दिलचस्पी रही है। इन्होंने अपने निजी 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के अलावा इन अखबारो की भी धन और कलम से पूरी सहायता की थी। 'बिहारी' को बनैली-राज से बहुत मदद मिली थी। एक प्रकार से वही उसके बन्द होने का कारण भी हुआ। दूसरा अखबार हथुआ के महाराजा की ओर से 'एक्सप्रेस' नाम से निकलता था। घाटे पर बहुत दिनो तक चलकर वह भी बन्द

हो गया। १९१८ मे पटने के सभी नेताओ ने, विशेष करके श्री सच्चिदानन्द सिंह (अब डाक्टर) और श्री हसन इमाम ने, एक अखबार की जरूरत बहुत महसूस करके निश्चय किया कि एक पत्र निकाला जाय। उसका नाम श्री सिंह के कहने के अनुसार 'सर्चलाइट' रख दिया गया। वह सप्ताह मे दो बार निकला करता था। उसके डाइ-रेक्टरो मे श्री सिंह, श्री हसन इमाम प्रभृति थे। नये लोगो मे श्री व्रजकिशोर प्रसाद थे और मै भी था। आन्दोलन आरम्भ होने पर 'सर्चलाइट' के सामने यह प्रश्न आया कि वह असहयोग का समर्थन करे या नही। पैसा खर्च करनेवालो मे मुख्य श्री हसन इमाम और श्री सिंह थे। वे असहयोग के पक्षपाती नही थे। इधर सारे सूबे मे असहयोग की लहर इस तरह उमड रही थी कि उसके खिलाफ जाने का अर्थ था 'सर्चलाइट' का हमेशा के लिए लोकप्रियता खो देना। इसके अलावा डाइरेक्टरो मे भी हम लोग थे जो असहयोग मे शरीक थे। उसके सम्पादक श्री मुरली मनोहर प्रसाद भी असहयोग के पूरे पक्षपाती थे। ऐसी अवस्था मे, आपस के इस मतभेद के कारण, नीति निर्धारित कर देना आवश्यक हो गया।

१९२० से, सर्चलाइट प्रेस से ही, हिन्दी-साप्ताहिक 'देश' भी निकला करता था, जिसका नाम-निहादी सम्पादक मै समझा जाता था। असहयोग ने राजनीति को, अँगरेजी-पढे कुछ वकील-बैरिस्टरो और बडे-बडे व्यापारियो के अँगरेजी तरीके से सजे कमरो से बाहर निकालकर, गाँवो के बरगदो के साये के नीचे और गाँवो के खेत-खलिहानो तक पहुँचा दिया था। वहाँ अँगरेजी का गुजर नही था। जो जनता तक पहुँचना चाहता था उसे देशी भाषा की शरण लेनी पडती थी। इसलिए हम लोगो ने सोचा कि 'सर्चलाइट' से ज्यादा उपयोगी 'देश' होगा। हमने श्री हसन इमाम और श्री सिंह से 'सर्चलाइट' और 'देश' के सम्बन्ध मे यह समझौता कर लिया कि 'सर्चलाइट' अपने सम्पादकीय लेखो मे असहयोग का न तो विरोध करेगा और न समर्थन। पर दूसरो के लेख, लेखक के नाम के साथ, चाहे वे पक्ष मे हो अथवा विपक्ष मे, छाप सकेगा। 'देश' हम लोगो का पत्र हो जायगा। अब से उसका घाटा और नफा हम लोगों का होगा। उसकी नीति हम जैसी चाहेगे वैसी ही होगी, पर वह सर्चलाइट प्रेस मे छपाई देकर छपा करेगा।

इस तरह एक हिन्दी-साप्ताहिक हमारे हाथ मे आ गया। अँगरेजी 'सर्चलाइट' भी अगर सहायक नही तो विरोधी भी न रहा। हम यह भी समझते थे कि हम लोग उसमे लेख लिखा करेगे। पर यह आशा पूरी नही हुई; क्योकि आन्दोलन मे इतना काम बढ गया कि लेख लिखने का समय ही न मिला। 'देश' ने प्रचार-कार्य में बहुत सहायता पहुँचायी। ग्राहकों की सख्या भी बहुत बढ गयी। विज्ञापन भी बहुत मिलने लगे। हम लोग तो आन्दोलन मे लगे थे। 'देश' के प्रबन्ध पर ध्यान नही दे सके। जैसे-जैसे ग्राहको की सख्या बढती गयी, प्रबन्धक की गलती से घाटे की मात्रा भी वैसे ही बढती गयी। कुछ दिनो के बाद जब हमने हिसाब देखा तो मालूम हुआ कि विज्ञापन की दर इतनी कम कर दी गयी थी कि उसमे जितना खर्च पड़ता था उतना

भी विज्ञापनों से नही मिलता था। इसलिए जैसे-जैसे बिकनेवाली प्रतियो की सख्या बढी, घाटा भी बढता गया। हमने यह देखा कि बहुतेरों के माल का प्रचार हम अपने खर्च से सारे प्रान्त मे जोरो से कर रहे थे, पर यह ज्ञान बहुत नुकसान उठा लेने के बाद हुआ। इस प्रकार उस समय 'देश' पर जो बोझ पडा, वह उसके गले मे हमेशा के लिए एक भारी पत्थर-सा बँध गया।

जन-आन्दोलन कुछ दिनों के बाद ढीला पडा।' देश' की बिक्री भी कुछ कम हो गयी। अन्त मे आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। जितने दिनो तक आन्दोलन का जोर रहा, वह खूब काम करता रहा और बहुत लोकप्रिय भी हो गया था।

'सर्चलाइट' निर्धारित नीति पर चल रहा था। कुछ दिनो के बाद श्री हसन इमाम और श्री सिंह उससे अलग हो गये। वह हम लोगों के अधिकार मे पूरी तरह से आ गया। यहाँ हम यह कहे बिना नही रह सकते कि उन दोनो ने यद्यपि पैसे और परिश्रम से इसे शुरू मे बहुत सहायता पहुँचायी थी तथापि उसे बडी उदारता से हम लोगो के हाथो मे आने दिया। जबसे यह स्थिति हो गयी, 'सर्चलाइट' पूरा-पूरा काँग्रेसी पत्र हो गया। उसके सम्पादक श्री मुरली मनोहर प्रसाद के मिजाज के अनुकूल यही था। जब १९३०-३४ का सत्याग्रह चला और काँग्रेस की आज्ञा निकली कि जो समाचार-पत्र स्वतन्त्रता-पूर्वक सच्ची घटनाएँ न छाप सके और अपने स्वतत्र विचार न प्रकट कर सके, वे सरकारी हुक्म मानने के बजाय अपना प्रकाशन ही बन्द कर दे, तो 'सर्चलाइट' उन बहुत ही अल्प-सख्यक पत्रो मे से एक था जिसने कॉग्रेस की आज्ञा का पूरी तरह से पालन किया। यह सब होते हुए भी 'सर्चलाइट' कभी आर्थिक कठिनाइयो से मुक्त नही हुआ। अन्त मे हम लोगो को उसका स्वत्व श्री बिड़ला-ब्रदर्स को इस शर्त पर दे देना पडा कि उसकी आर्थिक व्यवस्था वह करेंगे, पर उसकी सम्पादकीय नीति मे हम लोगों का ही अधिकार रहेगा। यह निश्चय १९४१ के अन्त मे हुआ। तब से बिडला बन्धु बहुत-कुछ खर्च कर चुके है। अभी वह अर्थ-सकट से बाहर हो ही रहा था कि १९४२ के आन्दोलन मे सरकार ने उसे बन्द कर देने का हुक्म निकाल दिया। सम्पादक भी हम लोगों के साथ नजरबन्द कर दिये गये। जहाँ आज मै इन पक्तियों को लिख रहा हूँ, वह भी साथ है।

३२—आन्दोलन का जोर और सरकारी दमन

ऊपर कहा जा चुका है कि काँग्रेस का सालाना जल्सा १९२० के दिसम्बर मे नागपुर मे हुआ था। मै इस अधिवेशन मे भी अपनी अस्वस्थता के कारण शरीक न हो सका था, पर सुना कि अधिवेशन मे इतने प्रतिनिधि आये थे जितने शायद कभी किसी अधिवेशन मे नही आये थे। इसका एक कारण भी था। कुछ लोग समझते थे कि असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव पर नागपुर मे फिर विचार किया जायगा। अत दोनों पक्षों के लोग अपने-अपने पक्ष को बल पहुँचाने के लिए अधिक से अधिक सख्या मे वहाँ आये थे। पर दोनों पक्षो मे समझौता हो गया। अन्त मे कुछ हेर-फेर के साथ असहयोग

का निश्चय कायम रह गया। इस प्रस्ताव के द्वारा देश को क्रमश असहयोग का आदेश दिया गया। सरकारी खिताबो को छोडना, कौन्सिल से अलग रहना, जो कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध कौन्सिल मे गये है उनसे किसी प्रकार की सेवा न लेना, गवर्नमेंट से सम्बद्ध शिक्षालयों से अलग रहना और अदालतों का बहिष्कार—आरम्भ मे यही मुख्य कार्य-क्रम था। फिर क्रमश सरकारी नौकरी छोडना और कर-बन्दी का आदेश मिलने पर उसे भी करने का निश्चय हुआ। साथ ही, शिक्षा के लिए गैर सरकारी राष्ट्रीय शिक्षालयो की स्थापना, आपस के झगडो को सुलझाने के लिए पचायत की स्थापना, चर्खा-प्रचार और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, ये आवश्यक बतलाये गये थे। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और अहिंसा पर भी जोर दिया गया था।

नागपुर के निश्चय के बाद वे सभी लोग, जो पहले कुछ दुविधा मे थे, अब दृढ होकर असहयोग मे लग गये। महात्माजी ने यह भी कह दिया कि कांग्रेस के कार्यक्रम को यदि लोग पूरा कर दे, तो स्वराज एक बरस के भीतर ही हो जायगा। लोगो ने एक बरस की बात मन मे धर ली। शर्तो को पूरा करने के प्रयत्न मे जी-जान से सब लग गये। ऊपर कही हुई सभाओ मे प्रचार का यही मुख्य उद्देश्य था।

ऊपर कहा जा चुका है कि सारे सूबे (बिहार) मे असख्य कार्यकर्त्ता काम करने लगे और स्वराज्य तथा असहयोग का सदेश गाँव-गाँव मे पहुँचाने लगे। थोडे ही दिनो मे अद्भुत जागृति देखने मे आने लगी। सरकार भी अपनी ओर से चुप न रही। वह देखती थी कि इस प्रचार का फल यह हो रहा है कि जनता मे उसका रोब एकबारगी उठता जा रहा है, लोग निर्भीक होते जा रहे है। हम भी कांग्रेस की ओर से इस बात का पूरा खयाल रखते थे कि उत्साह मे जनता की ओर से कही ज्यादती न हो जाय। इसलिए नागपुर के बाद प्रान्तीय कमिटी ने जो आदेश निकाला उसमे शान्ति और अहिंसा पर पूरा जोर दिया गया—साफ-साफ कहा गया कि किसी के साथ किसी प्रकार की जबरदस्ती न की जाय। हम समझते थे, और कार्यकर्त्ताओ को भी यही समझाने का प्रयत्न किया गया, कि हम बल-प्रयोग मे सरकार से हार जायँगे, क्योकि उसके पास इसके साधन है, हमारे पास नही। इसके अलावा असहयोग की मुख्य शर्त अहिंसा है। उसके द्वारा जनता को भी हम अपनी ओर खीच सकते है। यदि हमारी ओर से जोर-जबरदस्ती हुई तो इसका नतीजा उलटा होगा, हमे एक दिन पछताना पडेगा। इसलिए जहाँ कही भाषण किया जाता, इस पर जोर दिया जाता। जो पर्चा निकाला जाता उसमे भी इसी पर जोर दिया जाता। गवर्नमेंट इसकी खोज मे रहती कि कही भी कुछ अशान्ति हो तो धर दबाया जाय। उसे इसका मौका ही न मिलता!

मुजफ्फरपुर-जिले मे महँगी के कारण कई जगहो मे हाटो की लूट हो गयी। दरभगा-जिले और चम्पारन-जिले मे भी एकाध जगह ऐसा ही हुआ। सरकार को वह बहाना मिल गया जो वह खोज रही थी। हम लोग शराबबन्दी का भी प्रचार किया करते थे। इसका असर भी काफी पड रहा था। आबकारी की दूकानो का ठेका मार्च के महीने मे दिया जाता है। बिक्री कम होती जा रही थी। सरकार को डर हो गया कि

यह एक आमदनी का बडा जरिया खतरे मे पड गया। इन दोनों बातो को लेकर दमन जारी हो गया। दमन मुजफ्फरपुर-जिले से ही आरम्भ हुआ। और जिलो मे भी जल्द ही फैल गया। चम्पारन मे लौरिया-काण्ड के समय से ही कुछ दमन चल रहा था। वहाँ अब और भी जोर लगाया जाने लगा। दमन का आरम्भिक रूप यह हुआ कि कार्यकर्त्ताओ पर, दफा १०७ जाब्ता फौजदारी के अनुसार, मुचलका देने के मुकदमे चलाये गये। दफा १४४ जाब्ता फौजदारी के अनुसार कार्यकर्त्ताओं को सभा मे भाषण करने और जलूस वगैरह मे शरीक होने से मना किया गया। इतने दिनो के बाद यह कहना तो मुश्किल है कि कितने आदमियो पर इस तरह के मुकदमे चलाये गये, पर इतना निश्चय ही कहा जा सकता है कि लोगों ने जमानत नही दी। जिन पर मुकदमा चलाया जाता वे जेल चले जाते। हाँ, मुकदमे मे जहाँ-तहाँ लोगो ने पैरवी की। कही-कही मुकदमा अन्त मे खारिज करना पडा, क्योकि कोई सबूत न मिला। बात तो यह थी कि सभा करने के सिवा, जिसमे असहयोग का कार्यक्रम समझाया जाता, हमारे आदमी दूसरा कोई काम कर भी नही रहे थे। जो हाट-लूट की लहर चली थी उसके रोकने मे हमारे आदमियों ने बहुत मदद की थी। जहाँ कही से खबर आ गयी, वहाँ दौडकर पहुँच जाते और जनता को समझा-बुझाकर सँभाल लेते। लुटेरो से मुकाबला करने के लिए जनता को तैयार भी कर देते। पर सरकार तो आन्दोलन को रोकना चाहती थी। इसलिए उसने लुटेरों के बदले कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी को ही अधिक जरूरी और मुनासिब समझा।

थोडे ही दिनों मे सैकडो कार्यकर्त्ता इस प्रकार के मुकदमो के शिकार हो गये। प्रान्तीय सरकार के प्रधान सेक्रेटरी मिस्टर टेनी ने एक सर्कुलर निकाला जिसमे जिले के अधिकारियो को प्रोत्साहन दिया गया कि वे आन्दोलन को दबावे। स्वायत्तशासन-विभाग के मत्री मिस्टर हैलेट ने दूसरा सर्कुलर निकाला जिसमे बताया गया कि म्युनिसिपैलिटियाँ और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सरकार के अग है, अत उनके सदस्यो और कर्मचारियो को असहयोग मे भाग लेना नही चाहिए। 'हाँके भीम होहि चौगूना'— जिले के अधिकारी तो यह चाहते ही थे। उन्होने १०७ और १४४ की नोटिसो की झडी लगा दी। सैकडो आदमी गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये।

मै मजहरुल हक साहब के साथ आरा जानेवाला था। हक साहब किसी कारण से वहाँ न जा सके। मै अकेला ही गया। आरा-स्टेशन पर उतरते ही मुझे १४४ की नोटिस मिली कि ९ बजे से ५ बजे तक किसी जलूस और सभा मे शहर के अन्दर मै शरीक नही हो सकता। मेरे सामने एक सकट आकर उपस्थित हो गया। नोटिस भी पुरमजाक थी। उन दिनों मैट्रिक परीक्षा हो रही थी। आरा भी उसका एक केन्द्र था। नोटिस मे मनाही का कारण बतलाया गया था कि जलूस और सभा से परीक्षार्थियो के काम मे हर्ज होगा और वे रुष्ट होगे।

नागपुर-कांग्रेस ने निश्चय किया था कि अखिल-भारतीय कमिटी की आज्ञा जब तक न हो, सत्याग्रह न किया जाय। जब इस प्रकार की कार्रवाई सरकार की ओर

दे देने लगी अथवा इसकी सम्भावना मालूम हुई, तो हमने प्रान्तीय कमिटी की ओर से आदेश निकाल दिया था कि इस तरह के हुक्मों को मान लेना चाहिए, क्योंकि कांग्रेस ने अभी सत्याग्रह का आदेश नहीं दिया है। हाँ, जहाँ कहीं आत्म-प्रतिष्ठा की बात आ जाय, वहाँ दूसरी बात है।

मैंने नोटिस पाकर निश्चय किया कि मुझे इसे मान लेना चाहिए। इसलिए स्टेशन से मैं शहर के अन्दर नहीं गया। मैं प्रायः दोपहर को पहुँचा था। स्टेशन से म्युनिसिपैलिटी के बाहर, नजदीक के ही एक गाँव में चला गया। वहाँ पर दोपहर के बाद ठहर गया। वहीं एक बड़ी सभा हो गयी जिसमें देहात के अलावा शहर के भी काफ़ी लोग आ गये। फिर शाम को ७ बजे के बाद शहर में गया। वहाँ भी एक बड़ी सभा हो गयी जहाँ मैंने अपने कार्यक्रम को पूरा किया। इस तरह इस नोटिस का नतीजा यह हुआ कि एक सभा के बदले दो सभाएँ हो गयीं। जनता का उत्साह भी बहुत बढ़ गया। मैं मुंगेर जानेवाला था। वहाँ भी हमारे जाने के पहले ही कुछ मनाही की नोटिस निकल गयी। मैं वहाँ गया तो जरूर था, पर याद नहीं है कि नोटिस का क्या हुआ।

इस समय प्रान्तीय कौंसिल की बैठक हो रही थी। जो लोग कौंसिल में शरीक हुए थे वे कांग्रेस के आदेश के विरुद्ध वहाँ गये थे। पर सरकारी सर्क्युलरों को लेकर और स्कूल पर जो नोटिस निकली थी उसे लेकर उन्होंने वहाँ बहस छेड़ दी। साथ ही, जो आम तौर पर दमन चल रहा था उसकी भी कड़ी समालोचना हुई। अखबारों में इन सब बातों के छपने पर सूबे के बाहर के लोगों ने भी बिहार-सरकार की कार्रवाइयों—विशेष करके उसके सर्क्युलरों और दमन-नीति—की कड़ी समालोचना की। बात बहुत बढ़ गयी। मुजफ्फरपुर-जिले के सीतामढ़ी-सबडिवीजन के सबडिवीजनल अफसर मिस्टर ली जिन्होंने इस तरह की कार्रवाइयों से बहुत ख्याति पायी थी, कुछ दिनों के बाद वहाँ से बदल दिये गये। मालूम नहीं कि इस देशव्यापी आन्दोलन के कारण उनकी बदली हुई अथवा और किसी कारण से; पर लोगों में यह धारणा हुई कि आन्दोलन ही उनकी बदली का कारण था।

इस बदली के कारण कहीं-कहीं सरकारी अफसरों ने धाँधली मचायी। हमारी मनाही के बावजूद ठेकों में शराब बिकने लगी। जनता में शराब का प्रचार तो बहुतेरे अफसर कर ही रहे थे। कहीं-कहीं कार्यकर्ता और स्वयंसेवकों पर शराबबन्दी में भाग लेने के कारण मुकदमे भी चलाये गये।

हमारे कार्यक्रम में पंचायत कायम करना भी एक मुख्य कार्य था। बहुत जगहों में पंचायतें कायम हुईं। बहुतेरे मुकदमे फैसल होने लगे। कहीं-कहीं लोगों ने पंचायती फैसले को मनवाने के लिए जातीय बहिष्कार का सहारा लिया। हमने इसे प्रान्तीय कमिटी की ओर से रोका, तो भी जहाँ-तहाँ कुछ हो ही गया। एक जगह तो पंचायत का इतना रोब हो गया था कि वह सरकारी अदालतों की तरह काम कर रही थी। लोग बाकायदा मुकदमे दायर करते और उन्हें फैसल कराने के लिए फीस देते थे। अधिकांश फैसले लोग मान लेते; पर कहीं-कहीं दिक्कत पैदा होती। एक

कमजोरी यह हुई कि पुराने-पुराने सडे-गले मुकदमे भी कुछ लोग पचायत मे लाने लगे, जिसका नतीजा यह होता कि पचायत अगर बहुत पुराना कहकर उसे न सुने तो उसकी शिकायत हो कि यह भी सरकारी अदालत की तरह इनसाफ न देखकर तमादी की बात करती है और यदि फैसला करना चाहे तो उसके फैसले को मनवाने का साधन नही था।

पचायत को ही लेकर गिरिडीह मे एक बडा वाकया हो गया। वहाँ पचायत का फैसला न मानने के कारण एक आदमी का बहिष्कार किया गया। बहिष्कृत आदमी को कुएँ से पानी नही भरने दिया गया। उसका घडा तोड दिया गया। पुलिस ने घडा तोडनेवाले को गिरफ्तार किया। उसके साथ बहुत लोग थाने तक आये। वहाँ तथा जेल के सामने वाकया हो गया। पुलिस का कहना था कि जनता ने ढेले फेंके और पुलिस पर हमला किया। दारोगा ने अपनी पिस्तौल से गोली मारी। बहुत लोग घायल हुए। जेल और थाने का कुछ नुकसान हुआ। कुछ लोगो पर मुकदमे चलाये गये। इसकी खबर पाते ही डाक्टर महमूद के साथ मैं वहाँ गया। लोग शान्त किये गये। मुकदमे में शहर के बहुतेरे धनी लोग फाँस लिये गये थे। ऐसे लोगों मे से कुछ ने तो माफी माँग ली, पर दूसरों पर मुकदमे चले। अन्त मे क्या हुआ, मुझे याद नही है।

३३—एक मनोरंजक घटना

थोडे ही दिनो बाद, मार्च १९२१ मे, बेजवाडा मे अखिल-भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। वहाँ निश्चय हुआ कि लोकमान्य तिलक के स्मारक-रूप मे एक करोड रुपये स्वराज्य के काम के लिए, तिलक-स्वराज्य-फण्ड के नाम से, ३० जून तक जमा कर लिये जायँ—बीस लाख चर्खे जारी हों जायँ और कॉंग्रेस के एक करोड मेम्बर बना लिये जायँ। बेजवाडा पहुँचने के पहले महात्माजी दौरा कर रहे थे। मै कलकत्ते से ही महात्माजी के साथ उडीसा गया। वहाँ उन दिनो अकाल था। महात्माजी को इसकी खबर पहले से थी। उन्होने कुछ मदद भी करायी थी। अकाल-पीडितो को महात्माजी के आगमन की खबर मिली थी। बहुतेरे दूर-दूर से आये थे। महात्माजी ने उनके अस्थि-पजरों को देखा। वह बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होने एक लेख मे उडीसा के नगे-भूखे ककालो का जबरदस्त जिक्र किया। मैंने कई बार उन गरीबो की याद करके उन्हे आह भरते भी देखा है। एक बडे मकान मे वह ठहराये गये थे। एक ओर श्री जगन्नाथजी का विशाल मन्दिर, पडों और धनी-मानी लोगो का सुखमय जीवन, महात्माजी के स्वागत के लिए धूमधाम, और दूसरी ओर ये नगे-भूखे ककाल!

उडीसा की ही किसी सभा मे महात्माजी ने बहुत मार्के का भाषण किया था, जिसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा मे किसी ने महात्माजी से प्रश्न किया कि आप अँगरेजी-शिक्षा के विरुद्ध क्यो हैं—अँगरेजी-शिक्षा ने ही तो राजा राम-मोहन राय, लोकमान्य तिलक और आपको पैदा किया है? महात्माजी ने उत्तर मे

कहा—"मै तो कुछ नही हूँ, पर लोकमान्य तिलक भी जो है उससे कही अधिक वडे हुए होते यदि उनको अँगरेजी द्वारा शिक्षा का वोझ ढोना न पडा होता। राजा राम-मोहन और लोकमान्य तिलक श्री शकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह और कवीरदास के मुकावले मे क्या है? आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजूद है। उन लोगो के समय मे तो कुछ नही था, तो भी उन्होने विचार की दुनिया मे कितनी वडी क्रान्ति मचा दी थी।" अँगरेजी राज्य के सम्वन्ध में भी उन्होने कहा कि मुगलराज्य मे अकवर के समय मे राणा प्रताप और औरगजेव के दिनो मे शिवाजी-जैसे वीरो के लिए सुअवसर था, आज वह कहाँ है? इस प्रकार एक वडे प्रभावशाली भाषण मे उन्होने यह दिखला दिया कि यह हम लोगो का मोह है जो अँगरेजी शिक्षा को ही देशोन्नति का कारण वताते है। हाँ, अँगरेजी जानना वुरा नही है। उसे हम में मे वहुतेरो को जानना होगा। हम उसे सीखेगे भी, पर आज की तरह वह शिक्षा का माध्यम और साधन नही रह सकती।

उडीसा से महात्माजी के साथ मै वेजवाडा गया। रास्ते के दृश्य अवर्णनीय है। जैसा उत्साह अपने सूवे मे देखा था वैसा ही आन्ध्र देश मे भी देखने मे आया। वही जनता की भीड, वही दसो दिशाओ को गुंजानेवाले नारे! स्टेशनों पर वही जन-समूह, चलती रेलगाड़ी के किनारे लाइन पर लोगो का वही जमघट और वही विराट् सभाएँ। मुझे याद है कि विजयनगर मे हम लोग रात को प्राय ३ वजे रेल मे उतरे। सारे शहर मे लोगों ने दीवाली मनाई थी।

हम विहार के प्रतिनिधि वेजवाडा से लौटते समय रेल मे कार्य्यक्रम पूरा करने के सम्वन्ध मे परस्पर वाते करने लगे। एक प्रकार से पटना पहुँचते-पहुँचते यह निश्चय कर लिया गया कि यह काम कैसे पूरा किया जायगा। रुपये जमा करने और चर्खा चलवाने की ओर लोगो का विशेष ध्यान गया। मै भी दिन-रात सारे सूवे मे दौडता और रुपये जमा करने मे लगा रहा। सव जिलो मे कार्यकर्त्ता इस काम मे दिलोजान से लग गये। रुपये जैसे-जैसे जमा होते, वैक मे जमा होते। हम लोगो ने कई प्रकार की रसीदें छपवा ली थी, जिनसे यह सुविधा होती कि प्रत्येक आदमी को रसीद लिखकर देने की जरूरत नही होती। कम से कम चार आने की रसीद थी। वडी रकमो के लिए लिखकर रसीद दे दी जाती। इसके पहले विहार मे सार्व-जनिक काम के लिए जन-साधारण से इस प्रकार कभी रुपये नही माँगे गये थे। हम भी नही जानते थे कि हम कहाँ तक सफल होगे। पर लोगो में उत्साह देखकर आशा वढती जाती थी। हमको वहुत वडे और धनी लोगो से वहुत ज्यादा नही मिला। पर हर जिले में मझोले दर्जे के लोगो ने वहुत उत्साहपूर्वक चन्दा दिया। अन्त मे ३० जून तक हमने सात-आठ लाख के लगभग जमा कर लिया। ३० जून को गाधीजी को तार द्वारा इसकी सूचना दे दी गयी। इस काम मे सव से ज्यादा उत्साह तिरहुत डिवीजन के जिलो ने दिखाया—यद्यपि और जिले भी कुछ वहुत पीछे नही थे।

विहार के कई जिलों में घूमते-घूमते काफी अनुभव हुआ। कहीं-कहीं कुछ दिलचस्प घटनाएँ भी हुई। मनोविनोद के लिए एक घटना का वर्णन कर देता हूँ।

जून का महीना था। मैं राँची जिले में तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए रुपया जमा करने गया। वहाँ के कार्यकर्त्ताओं ने मेरे लिए दो दिनों का कार्यक्रम, जिले के विभिन्न स्थानों में जाने के लिए, बना लिया। पहले दिन राँची से मोटर पर चलकर १० बजे तक 'बुण्डू' पहुँच वहाँ का काम समाप्त करना था। दोपहर का भोजन राँची ही वापस आकर करना था। सेपहर को 'खूँटी' जाना था। रात तक फिर राँची वापस आना था। दूसरे दिन सवेरे लोहरदगा जाना था। वहाँ से दोपहर तक वापस आकर तीसरे पहर की गाड़ी से पटने के लिए रवाना होना था।

हम लोग राँची में सवेरे ही नहा-धोकर तैयार हो गये। टैक्सी के आने में कुछ देर हो गयी। हम सात आदमी, जिनमें एक ड्राइवर और दूसरा क्लीनर था, उस पर सवार होकर रवाना हुए। यह सोचा गया था कि दोपहर को राँची में ही आकर भोजन करना होगा। इसलिए हमने साथ में कुछ भी न लिया। जो कुर्ते पहने और चादर लिये हुए थे वही सारा सामान था। डाक्टर पूर्ण मित्र ने, जो वहाँ के नेता थे, साथ में एक छोटा-सा बेग रख लिया था, जिसकी खबर हम लोगों को उस समय नहीं थी। कुछ दूर जाने पर, एक जंगल में पहुँचने पर, मोटर में कुछ टूट गया। ड्राइवर ने मरम्मत शुरू की और कहा कि बस दस-पाँच मिनट में तैयार कर लूँगा। मरम्मत में देर होने लगी। ज्यों-ज्यों हम घबराते, वह आश्वासन देता जाता। दो-तीन घंटों के बाद उसने कहा कि लोहार की जरूरत होगी। तलाश करने पर एक गाँव मिला, जहाँ लोहार के घर जाकर उसने कुछ पीट-पाट कर दुरुस्त कराया। जंगल में कुछ भी खाने-पीने का सामान नजर नहीं आता था। इमली के वृक्ष थे। उनमें इमली के फल के गुच्छे लटक रहे थे। हम लोग उन्हें तोड़-तोड़कर जबान और दाँत खट्टे करते रहे। दोपहर के बाद प्यास ने जोर किया। फिर गाँव तलाश करके लोटा-बाल्टी मँगनी माँगी गयी। बहुत दूर से पानी लाकर प्यास बुझायी गयी।

जब मरम्मत का काम जारी था, एक दूसरी मोटर पर सवार पुलिसवाले जाते हुए नजर आये। हम लोगों को देखकर उन्होंने अपनी गाड़ी रोक ली। हमने उनसे कहा कि हम 'बुण्डू' शीघ्र ही पहुँचते हैं, आप वहाँ कह देंगे कि मोटर बिगड़ने के कारण हम लोगों के आने में कुछ विलम्ब हो रहा है। उन्होंने मोटर रोककर हम लोगों का हाल जान लेने की शिष्टता तो की थी, पर यह संवाद वहाँ पहुँचाने की भद्रता नहीं की! वहाँ जो जनता कुछ दूर-दूर के गाँवों से भी आई थी, हम लोगों का तीन-चार बजे तक इन्तजार करके जहाँ-तहाँ चली गयी।

अन्त में मोटर मरम्मत हो गयी। हम लोग पाँच-छः बजे शाम तक 'बुण्डू' पहुँचे। जो लोग गाँवों से आये थे, वे तो चले गये थे। पर खास 'बुण्डू' के लोगों में हमारे पहुँचने की खबर बात की बात में पहुँच गयी। सभा जुट गयी। हसब-मामूल

वहाँ भी भाषण हुआ। रुपये जमा किये गये। जहाँ तक मुझे याद है, वहाँ सात-आठ सौ रुपये के लगभग धन एकत्र हुआ।

काम खतम करके हम लोग तुरत चलने के लिए तैयार हुए। पर दिन-भर केवल इमलियो पर ही बीता था, इसलिए वहाँ के लोगो ने भोजन कर लेने का आग्रह किया। हमने भी उसे मान लिया। रसोई तैयार होते-हवाते ९-१० वज गये। अन्त मे भोजन करके यह विचार होने लगा कि अव क्या किया जाय। उस दिन 'खूँटी' का प्रोग्राम छूट चुका था। दूसरे दिन लोहरदग्गा का प्रोग्राम किसी तरह छूटना न चाहिए। तीसरे पहर की गाडी से पटने के लिए रवाना होना भी अत्यन्त आवश्यक था। कुछ लोगो का विचार हुआ—विशेप कर मोटरवाला इस पर जोर देने लगा—कि रात को चलना ठीक नही है, रास्ते मे जगल है, खतरा है, मोटर भी न मालूम कही विगड गयी तो रात का समय वडा भयानक होगा। मै समझता था कि वह वहाना कर रहा है—इतनी देर तक मोटर की मरम्मत की गयी थी, और वह ठीक चली भी थी, अव क्या विगडेगी। विशेप कर दूसरे दिन के कार्य-क्रम की मुझे चिन्ता थी। मैंने वहुत जोर लगाया कि नही, जरूर चला ही जाय।

अन्त मे प्राय ११-१२ वजे रात मे उसी टूटी मोटर पर हम सात आदमी सवार होकर रवाना हुए। वीच मे, थोडी ही दूर पर, एक घाट है जहाँ कुछ ऊँची चढाई है। उस चढाई पर चढते समय मोटर फिर टूट गयी। जहाँ मोटर टूटी वहाँ से प्राय दो-ढाई सौ गज और ऊपर चढना था। उसके वाद उतार था। उतार मे यदि इजिन न भी काम करे, तो मोटर आसानी से चली जायगी, ऐसा ड्राइवर ने कहा। हम लोगो ने भी ऐसा ही अनुमान किय।। घाट से उतरकर ही एक डाक-वँगला था। हमने सोचा कि डाक-वँगले तक अगर हम किसी तरह पहुँच जायँ तो वहाँ रात आराम से कटेगी, हम सो सकेगे। अपनी वेवकूफी से और उत्साह मे हमने यह निश्चय किया कि जो थोडी चढाई है उसे हम लोग मोटर ढकेल करके ही पार कर लेगे। इसलिए हमने मोटर को आगे ढकेलना शुरू किया। २०-३० गज तक मोटर ढकेल ले गये। वहाँ ढाल वहुत कम थी और ऊँचाई अधिक। मोटर का ऊपर चढना कठिन था, पर हम लोगो ने जोर लगाया। नतीजा यह हुआ कि चन्द गज ऊपर ढकेलने के वाद मोटर उलटे पीछे की ओर झुकी। हम अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे रोकने लगे। किसी-किसी तरह उसे एक खड्ड में गिरने से हम वचा केस। इसके वाद अव फिर हिम्मत न हुई कि मोटर ढकेलने की कोशिश की जाय।

रात के शायद १२-१ वजे होगे। मध्य जगल मे हम सात आदमी किसी हतर मोटर में वैठकर आये थे। दिन-भर की थकान के वाद रात को सोना भी आवश्यक था। ड्राइवर, उस निर्जन स्थान की भयानक वाते कहकर, हम लोगो को डराता भी जाता था। उसने कहा कि यहाँ हिंसक जानवरो और चोर-डाकुओं दोनो का रड था। हमने कहा कि चोर-डाकू हमसे लेंगे ही क्या, हमारे पास तो कुछ नही है। हाँ, यदि जगली जानवर आ जाय तो उसका भय अवश्य है। मैंने यह कह तो दिया; पर

मुझे यह नही मालूम था कि डाक्टर ने बुण्डू के मिले रुपयो को अपने बेग मे रख लिया था। वह बेग साथ ही था। उस समय मेरी बात सुनकर डाक्टर भी कुछ न बोले। मैं भी दूसरे दिन सुबह तक इसी भूल मे था कि हमारे हाथ बिलकुल खाली हैं।

हम सलाह कर ही रहे थे कि जगल के भीतर से ग़रगराहट सुन पडी। ड्राइवर तो बहुत डर गया। कहने लगा, यह भयानक आवाज बनैले जानवर की हैं। कुछ ही देर मे आवाज बन्द हो गयी। हम सब शान्त होकर किसी तरह मोटर मे बैठ गये। कुछ देर बाद जब फिर कुछ चित्त शान्त हुआ तो हमने सोचा कि मोटर वही छोड दी जाय और हम लोग डाक-बँगले तक पैदल चलकर वहाँ सोवे, फिर सबेरे मोटर का कुछ प्रबन्ध किया जायगा। मगर ड्राइवर इस पर राजी न हुआ। जब हम लोगों ने कहा कि हम लोग चले जाते हैं, तुम मोटर के साथ यही ठहरो, तो वह रोने-चिल्लाने लगा।

अन्त मे यह निश्चय हुआ कि तीन आदमी मोटर के साथ ठहर जायँ, बाकी चार आदमी डाक-बँगले पर चले जायँ। रात चाँदनी थी, यही एक चीज थी जिससे कुछ हिम्मत बनी रहती थी। डाक-बँगला पहुँचते-पहुँचते हम लोग प्यास के मारे परेशान थे। डाक-बँगले मे कोई था नही, दरवाजे बन्द थे। हमने सोचा कि दरवाजा किसी तरह खोला जाय। इसमे हम सफल भी हो गये। अन्दर से टटोल कर एक बाल्टी निकाली गयी। दो चारपाइयाँ और दो मेजे थी। वे भी बाहर निकाली गयी। पर बाल्टी से तो प्यास बुझती न थी, कुएँ और डोरी की आवश्यकता रह ही गयी। हम लोग फिर एक बार डाक-बँगले के आस पास चौकीदार की खोज मे निकले। कुछ दूर पर देखा कि एक आदमी एक बच्चे को बगल मे लेकर गाढी नीद मे सोया हुआ है। उस घोर जगल मे बच्चे के साथ उस आदमी को इस प्रकार निश्चित सोते देखकर हम अचम्भे मे आ गये। वह बहुत पुकारने पर जगा। ऊँघते-ऊँघते ही उसने कहा कि डोरी तो नही है, पर कुआँ जगल मे थोडी ही दूर घुसने पर मिलेगा।

प्यास से हम लोग परेशान थे। इसलिए फिर कुएँ की तलाश मे निकले। वह मिला भी। अपनी चादरो को जोडकर डोरी बनायी गयी। उसी से बाल्टी मे पानी निकाला गया। पानी पीकर हम लोगों मे से कुछ तो चारपाई पर और कुछ टेबुल पर सो रहे। सोने का समय थोडा ही मिला। सबेरे उठकर, मुँह-हाथ धोकर, हम लोगो ने सोचा कि यहाँ तो कोई सवारी मिलनेवाली नही है, इसलिए राँची की ओर हम लोग पैदल ही बढे; कोई गाँव मिल जायगा तो वहाँ कुछ खाने का भी प्रवन्ध हो सकेगा।

सब लोग चलने पर राजी नही थे। इसलिए मैं तथा एक आदमी और, दोनो चल पडे। वहाँ से तीन-चार मील जाने पर एक गाँव मिला, जहाँ कुछ चने मिले। प्राय ९ बजे चले थे। चने चबाकर हम लोग कुछ विश्राम करने लगे। धूप कडी हो गयी थी। शीतल हवा चल रही थी। तुरत नीद आ गयी। प्राय एक-डेढ घटे के बाद किसी ने आकर जगाया। मालूम हुआ कि राँची के भाइयो ने कल दोपहर तक

हमारी बाट जोहते। जब हम नहीं पहुँचे तो दूसरी टैक्सी करके हमारी खोज में कुछ लोगों को भेजा। उन्होंने भूल यह की कि इस टैक्सी पर भी साथ पूरा बोझ लेकर तीन-चार आदमी आये। हम लोग पाँच आदमी तो मोटरवालों को छोड़कर एक गाड़ी का बोझ पहले से थे ही। हमने कहा कि हममें से जो लोग अभी पीछे छूटे थे उनको पहले राँची पहुँचाओ फिर दुबारा मोटर ले आओ तो हम दोनों चलेंगे। उन्होंने भी इसे पसन्द किया। हम लोग प्रायः डेढ़-दो घंटे और आराम से सोये। फिर जब मोटर प्रायः एक बजे के करीब आई तो राँची पहुँचे। वहाँ कुछ भोजन करके दोपहर की गाड़ी से पटने के लिए रवाना हो गये।

इतनी विलक्षण तो नहीं पर इस प्रकार की कई घटनाएँ उन दिनों के सफर में होती रहीं।

३४—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादी-प्रचार

जुलाई १९२१ में बम्बई में अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटी का अधिवेशन हुआ। वहाँ बिहार के और लोगों के साथ मैं भी गया। अधिवेशन में काफ़ी उत्साह था क्योंकि तुरंत एक करोड़ रुपये जमा करने का कार्यक्रम सफलता-पूर्वक देश ने पूरा कर लिया था। चर्खे के सम्बन्ध में भी काफ़ी प्रचार हुआ था। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तो मानों पूर्णरूपेण स्थापित जान पड़ता था। हम लोग यह नहीं समझ सकते थे कि यह कभी फिर टूटेगा। इन कारणों से उस अधिवेशन में कुछ लोगों ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि सत्याग्रह शुरू करना चाहिए।

इधर गवर्नमेन्ट की ओर से भी कुछ कारवाइयाँ हो रही थीं, जिनसे बहुत लोग क्षुब्ध थे। हमने यद्यपि बहुत बड़ा आन्दोलन सारे देश में चलाया था तथापि वह वैध था। कानून तोड़ा नहीं गया था—यद्यपि भाषणों में काफ़ी आज़ादी बरती जाती थी। कांग्रेसी लोगों के रहन-सहन और चाल-ढाल से साहस, उत्साह और उससे अधिक निडरपन टपका करता था। गवर्नमेन्ट जहाँ-तहाँ कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया करती थी। देश में इस प्रकार कई सौ आदमी जेलखानों में थे। बिहार में हुई गिरफ़्तारियों और दमन का ज़िक्र ऊपर किया गया है। इन कारणों से भी लोगों ने बहुत ज़ोर दिया कि सत्याग्रह शुरू कर देना चाहिए।

महात्मा गांधी ने अभी सब्र रखने की सलाह दी। चर्खा-प्रचार और उसके द्वारा विदेशी वस्त्र-बहिष्कार ३० सितम्बर तक पूरा करने का निश्चय हुआ। उन्होंने कहा कि जो कार्यक्रम कांग्रेस ने निर्धारित कर दिया है उसको पूरा करना चाहिए और तभी सत्याग्रह में सफलता की आशा की जा सकेगी। इसलिए अभी तैयारी पर ज़ोर देते हुए सत्याग्रह का निश्चय स्थगित रहा। पर एक दूसरी चीज़ ऐसी आ गयी जिसने सत्याग्रह का बीज बो दिया।

गवर्नमेन्ट की ओर से घोषणा की गयी कि जाड़े में प्रिन्स आफ़ वेल्स (इंगलैंड के युवराज) हिन्दुस्तान की यात्रा करेंगे। उन्होंने शायद सोचा था कि जनता में ब्रिटिश

सरकार के विरुद्ध इतना प्रचार हो रहा है, लोगो मे इतना उत्साह और जोश बढ रहा है, इसके रोकने मे यह यात्रा सहायक होगी। वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने एक बार आन्दोलन के सम्बन्ध मे कहा था कि इससे मै घबरा गया हूँ, चक्कर मे पड गया हूँ (Puzzled and perplexed)। अब लार्ड रीडिग यहाँ वायसराय बनकर आ गये थे। वह इँगलैड के चतुर से चतुर नीतिज्ञो मे समझे जाते थे। उन्होने कुछ ही दिन पहले अमेरिका मे राजदूत के पद पर रहकर अमेरिका को लडाई मे इँगलैड के पक्ष मे ले आने का कौशल दिखलाया था और अब इँगलैड के चीफ जस्टिस के पद पर नियुक्त थे। हो सकता है कि यह (युवराज-यात्रा) उनकी चातुरी का नतीजा हो। हो सकता है, नीतिज्ञो ने समझा हो कि जैसे वगविच्छेद के बाद बगाल मे बहुत असन्तोष फैल गया था और जब वह किसी प्रकार दमन-नीति से दबाया नही जा सका तब सम्राट् पचम जार्ज हिन्दुस्तान मे अपना अभिषेक कराने आये और यहाँ की जनता तथा सभी लोगो ने बडे उत्साह के साथ उनका स्वागत किया वैसे ही इस बार भी युवराज के आगमन से हिन्दुस्तान की जनता मे राजभक्ति उमड पडेगी और आन्दोलन खुद-बखुद कमजोर पड जायगा। युवराज के इस समय हिन्दुस्तान मे आने का कोई भी दूसरा कारण देखने मे नही आता था।

अखिल-भारतीय कॉंग्रेस ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिससे यह अनुरोध किया गया कि गवर्नमेण्ट यहाँ युवराज के लाने का निश्चय छोड दे। उसमे साफ-साफ कहा गया कि गवर्नमेण्ट के लिए, अपनी गिरती हुई लोकप्रतिष्ठा को पुन स्थापित करने के हेतु, सम्राट् के पुत्र और भावी सम्राट् का इस प्रकार इस्तेमाल करना मुनासिब नही है। यह भी बतला दिया गया कि देश की यह बात यदि गवर्नमेण्ट स्वीकार नही करेगी तो मजबूरन हमको इस यात्रा का बहिष्कार करना पडेगा— यद्यपि युवराज के साथ हमारा कोई व्यक्तिगत झगडा नही है, वरन् उनके लिए हम लोगो के हृदय मे आदर ही है, तथापि उनका बहिष्कार भी अनिवार्य हो जायगा। इस प्रस्ताव द्वारा साफ-साफ चेतावनी दे दी गयी कि गवर्नमेण्ट की इस चालबाजी का नतीजा अच्छा न होगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयारी करने का आदेश दिया जायगा।

बकरीद का समय भी निकट आ गया था। बिहार और सयुक्त प्रान्त मे यह समय हमेशा बहुत नाजुक समझा जाता है, क्योकि जहाँ-तहाँ गाय की कुरबानी के लिए हिन्दू-मुस्लिम दगा-फसाद हो जाया करते है। इस बार सोचा गया कि इस हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के जमाने मे भी यदि बलवा-फसाद हुआ तो इसका बहुत बुरा असर पडेगा। सोचा गया कि इस अवसर का उपयोग हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के बढाने मे करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे बहुत प्रचार हुआ। महात्माजी का रास्ता यह था कि हम मुसलमानो के खिलाफ लडकर उनसे गाय की रक्षा नही करा सकते और उनको मारकर हम गोरक्षा का फल भी अच्छा नही पा सकने। इसलिए यह उनपर ही छोडना चाहिए कि वे, अपने हिन्दू-भाइयो की भावना को ठेस न लगाकर, भाई-चारे के व्यवहार

मे, खुद गोवध बन्द करे--हिन्दुओ की जोर-जबरदस्ती से नही, बल्कि अपने प्रेम-भाव और उदार विचार से।

इस सिलसिले मे अली-बन्धुओ के साथ महात्माजी ने कुछ स्थानो का दौरा भी किया। इसी दौरे के सिलसिले मे वह बिहार मे भी आये। इस दौरे मे महात्माजी शाहाबाद, गया और पटना जिलो मे ही गये जहाँ बकरीद के अवसर पर कुछ गडबडी का भय था। मौलाना महम्मदअली और मौलाना आजाद सुभानी उनके साथ थे। महात्माजी का कार्यक्रम बहुत ही सगीन था--एक दिन मे कई जगहो मे सभाएँ और बहुत दूर तक मोटर से सफर। मुझे याद है कि एक दिन वह सध्या को भोजन भी नही कर पाये, क्योकि सूर्यास्त के बाद वह भोजन नही करते और सूर्यास्त के पहले इसके लिए समय नही मिला। मै सफर मे साथ रहा। सभी जगहों मे आपस के मेल-जोल की बाते ही कही गयी। साथ ही साथ, खादी-चर्खा के प्रचार की बाते भी की गयी। बडे सन्तोष और गौरव की बात है कि मुसलमान नेताओ ने--यद्यपि वे कुर्बानी करने के अपने स्वत्व को नही छोडना चाहते थे तथापि--जनता मे प्रचार किया कि आदमी स्वत्व रखकर भी उसके व्यवहार करने या न करने का फैसला खुद कर सकता है, इसलिए मुसलमानो को चाहिए कि भाई-चारा और रवादारी के खयाल से, जहाँ तक हो सके, कुछ ऐसा न करे जिससे हिन्दुओ का दिल दुखे।

इसी वक्त हकीम अजमल खाँ तथा दूसरे नेताओ ने भी बडी करामात दिखलाई। फलस्वरूप उस साल की बकरीद केवल शान्ति के साथ ही नही बीती, बल्कि गायो की कुर्बानी भी इतनी कम हुई जितनी शायद कभी पहले भी न हुई थी। इसमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ने एक दूसरे की भावनाओ की प्रतिष्ठा की। किसी तरफ जोर-आजमायिश की कोशिश नही हुई। दोनो ने एक दूसरे की रवादारी और भाई-चारे पर भरोसा किया। उनका यह भरोसा निष्फल नही गया।

बिहार के कुछ भागो मे, विशेष करके उत्तर-बिहार के जिलो मे, चर्खे का चलना कभी एकबारगी बन्द नहीं हुआ था--यद्यपि वह बहुत कम हो गया था। इस आन्दोलन मे उसको नवजीवन मिला। चर्खा-प्रचार के लिए, तिलक-स्वराज्य-कोष से, रुपये भी मिले। हमारे प्रान्त मे भी काम शुरू किया गया। काम तो हमने शुरू किया, पर शास्त्रीय ज्ञान हमको कुछ भी न था। उत्साह था, पर व्यापार-बुद्धि नही थी। इसलिए जो काम उस समय हुआ उसका केवल यह फल हुआ कि खादी का प्रचार तो हुआ पर पैसा भी काफी नुकसान हुआ। जब मै गाधीजी के उस कथन पर अब विचार करता हूँ, जिसको उन्होने आन्दोलन के आरम्भ मे ही कहा था, तो मुझे उनकी दूरदर्शिता और कार्य-कौशल का एक और भी ज्वलत दृष्टान्त मिल जाता है। उन्होने कहा था कि हमारे राष्ट्रीय स्कूल चर्खा-शाला होने चाहिए और इसी के ज्ञान को प्राप्त करने और बढाने मे राष्ट्रीय शालाओ को लग जाना चाहिए--चर्खा द्वारा ही इन युवको को सहस्रो की संख्या मे काम दे सकेंगे और जनता की धनवृद्धि मे सहायक हो सकेंगे। उन्होने साबरमती-आश्रम मे उद्योग-शाला खोलकर चर्खा-सम्बन्धी

खोज का काम भी जारी करा दिया। पर राष्ट्रीय शिक्षा के अधिकारी इस मर्म को पूरी तरह नही समझ सके, उन्होने विद्यापीठों और उनके अधीन की पाठशालाओ को चर्खाशाला नही बनाया—यद्यपि सभी जगहो मे चर्खा चलाना एक अनिवार्य विषय बना दिया गया था।

चर्खे चलने लगे, पर शास्त्र का ज्ञान शिक्षको को तो था ही नही, बच्चो को वे कहाँ से देते। इस तरह अन्धो का नेतृत्व अन्धे करने लगे। अत चर्खा ठीक रास्ते पर कुछ दिनो तक नही आ सका। आज हम इस अदूरदर्शिता के लिए किसी को दोष नही दे सकते, क्योकि ऐसा होना स्वाभाविक-सा था। सब लोगो की आँखे भावी स्वराज्य की ओर, जो एक राजनीतिक परिवर्तन की सीमित चीज समझी जाती थी, लगी हुई थी। कॉंग्रेस के अन्दर भी कुछ लोग, विशेष करके महाराष्ट्रवाले, खादी-चर्खे का विरोध करते ही रहे। पर इन त्रुटियो के रहते हुए भी खादी का प्रचार खूब हुआ। अभी शुद्ध और अशुद्ध खादी का भेद लोग इतना नही समझते थे। जो मोटा कपडा हाथ-कर्घे पर का बुना हुआ होता उसे ही खादी समझकर खरीदते। महात्माजी ने कहा था कि सत्याग्रह के लिए खादी का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है और प्रचार का सबूत आँखो को ही मिलना चाहिए। अर्थात् जब चारो ओर लोगों को खादी पहने हम देखेगे तो हम समझ लेगे कि इसका प्रचार हो गया—इसके लिए पुस्तको और लेखो तथा अखबारो मे छपे आँकडो मे, अथवा किसी से पूछ करके, सबूत ढूँढने की जरूरत नही होगी।

बिहार के इस दौरे मे गाधीजी ने खादी पर काफी जोर दिया। कोकटी का कपडा, जो दरभगा-जिले के मधुवनी-इलाके मे वनता था, काफी महीन और सुन्दर तथा मुलायम होता है। उसको देखकर लोग चकित हो जाते थे। इसका व्यापार अभी तक मरा नही था। इसका विशेष कारण यह था कि इस कपडे का खर्च नेपाल-दरबार मे और वहाँ की सभ्रान्त जनता मे काफी था। वहाँ के लिए ही यह कपडा, विशेष करके उस इलाके मे जो नेपाल की सरहद पर ही है, वहुत वना करता था। उस इलाके की बनी हुई कुछ धोतियाँ भी पेश की गयी, जिनको देखकर, विशेष कर मुझे याद है कि मौलाना मुहम्मदअली, वहुत ही सन्तुष्ट हुए थे। बिहार-शरीफ-जैसे मोमिनो के एक बडे मुख्य स्थान पर गाधीजी गये और उन लोगो ने मदद करने का वचन भी दिया।

बिहार-यात्रा समाप्त करने के पहले गाधीजी अपने साथियो के साथ पटने आये। सदाकत-आश्रम मे ठहरे। अखिल-भारतीय कॉंग्रेस की नयी वनी हुई कार्यकारिणी की बैठक वही हुई। बम्बई की अखिल-भारतीय कमिटी मे वर्किङ्ग कमिटी का चुनाव हुआ था। मै भी सदस्य चुना गया था। इसलिए मै भी इस बैठक मे शरीक हुआ। इस बैठक मे विशेष कर इसी बात पर जोर दिया गया कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का कार्य-क्रम पूरा होना चाहिए और इसके लिए चर्खा-प्रचार आवश्यक है।

बिहार से गाधीजी कलकत्ते होते आसाम चले गये। मै बिहार मे खादी-सगठन और चर्खा-प्रचार के लिए घूमने लगा। प्रान्तीय कमिटी ने इस काम के लिए कुछ

लोगो की एक समिति बना दी। सभी जिलो मे इस काम के लिए कुछ लोग नियुक्त कर दिये गये। काम खूब जोरो से चलने लगा। सरकार अपनी ओर से चुप नही रही। उसको भय हो गया कि विदेशी कपडो की दूकानो पर पहरा बैठाया जायगा। कॉग्रेस ने कपडे के व्यापारियो से अनुरोध किया था कि वे विदेशी कपडे का व्यापार छोड दे और जो विदेशी माल उनके पास मौजूद है उसे विदेशो मे ही बेचने का प्रबन्ध करे—भारतवर्ष मे यही के बने कपडे ही बेचे। इसी निश्चय से डरकर बिहार-सरकार के नये प्रधान मत्री (चीफ सेक्रेटरी) मिस्टर सिफ्टन ने एक दूसरी विज्ञप्ति निकाली, जिसमे जिला-अफसरो को प्रोत्साहन दिया गया कि वे विदेशी वस्त्र-सम्बन्धी प्रचार करे और जनता को यह बतावे कि विदेशी वस्त्र के बिना लोगो को बहुत कष्ट होगा—कपडा बहुत मँहगा हो जायगा। और, जहाँ कही कॉग्रेसी लोग जोर लगावे, गिरफ्तार किये जायँ। पहले इस प्रकार की एक विज्ञप्ति चीफ सेक्रेटरी रेनी ने असहयोग के सम्बन्ध मे निकाली ही थी। अब विदेशी वस्त्र को लेकर और भी जोरदार नीति की घोषणा सरकार ने कर दी। मालूम होने लगा कि एक न एक दिन मुठभेड हो ही जायगी। पर हम अपना काम दृढता—किन्तु सहिष्णुता—के साथ करते गये। काम खूब जोरो से आगे बढता गया।

गाधीजी आसाम का दौरा समाप्त करके कलकत्ता वापस आये। वहाँ फिर वर्किङ्ग कमिटी की बैठक हुई जिसमे शरीक होने के लिए मै वहाँ गया।

३५—मोपला-विद्रोह और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

गाधीजी कलकत्ते से मद्रास की ओर चले गये। इसी यात्रा मे उन्होने कही पर लँगोटी पहनने की घोषणा कर दी। मौलाना महम्मदअली, जो यात्रा मे साथ थे, वाल्टेयर स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। वह दूसरे कई नेताओ के साथ—जिनमे मौलाना शौकतअली, डाक्टर किचलू, मौलाना हुसेन अहमद, मौलाना निसार अहमद, पीर गुलाम मजद्दिद और श्री भारती कृष्ण तीर्थ शकराचार्य भी थे—कराची मे, खिलाफत-कान्फ्रेन्स के भाषण तथा एक फतवे के प्रचार के लिए, कचहरी मे पेश किये गये। इस मुकदमे ने भी देश मे बडी खलबली पैदा कर दी। मौलाना महम्मद अली ने अपने बचाव मे जो बयान दिया उसके कारण, तथा उन व्यक्तियो के व्यक्तित्व के कारण जो इसमे मुजरिम थे, यहाँ एक बडा महत्त्वपूर्ण मुकदमा हो गया। अन्त मे श्री शकराचार्य को छोडकर सबकी सजा हुई।

इस पर वर्किङ्ग कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई और उसने आज्ञा दे दी कि जिस फतवे के लिए इन नेताओ को सजा मिली है वह सभी जगहो पर बडी-बडी सभाओ मे दुहराया जाय। बम्बई मे एकत्र वर्किङ्ग कमिटी के मेम्बरो और दूसरे नेताओ ने अपने हस्ताक्षर से एक एलान निकाला जिसमे वही बाते दुहरायी गयी थी, जिनके लिए कराची का मुकदमा चला था। इस एलान पर मैंने भी दस्तखत किया था। सारे देश मे अनगिनत सभाएँ हुई। उनमे अनगिनत लोगो ने उक्त फतवे

को दुहराया। सरकार ने कुछ नही किया, हक्का-बक्का होकर रह गयी ! जिस फतवे को केवल मुसलमान जानते थे वही फतवा इस प्रकार न मालूम कितने हिन्दुओ ने भी दुहराया और यह दिखला दिया कि वही काम जिसे अगर थोडे लोग करे तो कानूनी जुर्म हो जाता है और यदि सारा देश सगठित रूप से करे तो जुर्म नही रह जाता। सत्याग्रह का यह एक सुन्दर नमूना देश के सामने पेश हो गया !

ठीक इसी समय बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स की बैठक, बहुत धूम धाम से आरा मे, मौलवी महम्मद शफी के सभापतित्व मे हुई। मै उसमे एक ही दिन शामिल हो सका, क्योकि मुझे वर्किङ्ग कमिटी मे भाग लेने के लिए बम्बई चला जाना पडा। फिर भी आरा मे बहुत उत्साह रहा। साथ ही वहाँ प्रान्तीय खिलाफत-कान्फ्रेन्स भी हुई, जिसमे बहुतेरे हिन्दुओ ने खिलाफत-फड और सुमिरना-फड के लिए रुपये जमा करने का वचन दिया और रुपये जमा भी हुए।

जब महात्माजी इसी सफर मे थे, खबर मिली कि मालावार मे मोपलो ने सरकार के खिलाफ बगावत कर दी है। शुरू में इस तरफ पूरी खबर नही पहुँच पाई, पर आहिस्ता-आहिस्ता खबर मिलने लगी। मौलाना महम्मदअली का वहाँ जाने का इरादा था जब वह गिरफ्तार कर लिये गये। महात्माजी भी जाना चाहते थे, पर उन्हे भी इजाजत नही मिली और वह रोक दिये गये। यदि वे लोग वहाँ जाने पाते तो शायद इस आन्दोलन का वह रूप नही होता जो हो गया अथवा जिसका इतना प्रचार किया गया। शुरू मे मोपलो ने सरकारी कर्मचारियो और रेल तथा कचहरियों इत्यादि पर ही हमला किया, पर कुछ बाद खबर फैलने लगी कि उन्होने हिन्दुओं पर भी आक्रमण करना शुरू कर दिया—उनको मारने तथा जबरदस्ती मुसलमान बनाने लगे ! इस खबर से हिन्दुओ मे काफी खलबली फैली। एक प्रकार से आपस के मनमुटाव का बीज-वपन भी हो गया। जो हिन्दू-मुस्लिम एकता एक प्रकार से स्थापित दीखती थी, वह इस एक घटना से ही हिलती हुई नजर आने लगी। कुछ हिन्दुओ के, और विशेष करके सरकार के, प्रचार से इसका काफी असर पडने लगा। पर अभी तक बात बहुत बिगडी नही थी। यदि कुछ महीनो के बाद दूसरी घटनाएँ, जिन्होने हिन्दू-मुस्लिम दगे का रूप धारण कर लिया, न हुई होती तो १९२१ के ऐक्य का दृश्य हमारे सामने आता ही रहता। पर होना कुछ और ही था !

गाधीजी का विचार है कि उन्होने खिलाफत के सम्बन्ध मे मुसलमानों को जो कुछ मदद की, वह ठीक ही किया। इसके लिए उनको आज तक तनिक भी पश्चात्ताप नही है। उन्होने जो कुछ किया अथवा हिन्दुओ ने जो कुछ उनकी प्रेरणा से किया, वह उचित और न्याय्य था। जब एक घर मे दो भाई रहते हो तो एक पर यदि किसी प्रकार की आपत्ति-विपत्ति आवे तो दूसरे का धर्म है कि उसकी सहायता करे। इसमे यह विचार करना नही चाहिए कि इस सहायता के बदले मे विपद्ग्रस्त भाई सहायता देनेवाले के साथ क्या बर्ताव करेगा या इस उपकार को भूल जायगा। अपना कर्तव्य करना ही मनुष्य के लिए काफी होना चाहिए। उसकी जजा या बदले की

आशा बेकार है। इसके अतिरिक्त मैं समझता हूँ कि उन्होने मुसलमानो की मदद कुछ देश के लिए स्वार्थबुद्धि से भी की थी, क्योंकि वह मानते थे कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य देशोद्धार के लिए आवश्यक है और इस सेवा द्वारा वह हिन्दुओ के लिए मुसलमानो से गोरक्षा की भी आशा रखते थे।

दूसरी ओर, कुछ लोगो का विचार है कि खिलाफत के आन्दोलन को, जो एक धार्मिक आन्दोलन था, इस प्रकार मदद देकर धार्मिक कट्टरपन को ही सहायता पहुँचायी गयी, जिसका नतीजा यह हुआ कि आम मुसलमान जनता मे कट्टरता बढी, जो समय पाकर इतनी भयकर हो गयी कि सारे देश मे—जैसे ही यह आन्दोलन कुछ कमजोर पडा—हिन्दू-मुस्लिम दगे और फसाद शुरू हो गये। इतना ही नही मुसलमानो मे इतनी और जागृति आ गयी कि वह धार्मिक विषयों के अलावा राजनीति मे भी अपना कट्टरपन दिखाने लगे। और, जब कुछ दिनो के बाद तुर्कों ने ही खलीफा को निकाल दिया, और इस प्रकार खिलाफ़त की जड़ ही कट गयी तो यह जागृति पूरी तरह से भारतीय राजनीति मे मुसलमानो को कट्टरपथी बनाने मे समर्थ हुई। यदि इतना ही होता तो कोई हर्ज नही था, पर यह कट्टरपन धार्मिक होने के कारण मुसलमानो मे अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की भावना पैदा करने लगा।

कोई भी क्रिया अपनी प्रतिक्रिया के बिना नही रहती। कट्टरपन हिन्दुओ मे भी आने लगा। एक ओर से मुसलमानों ने तबलीग—धर्म-परिवर्तन—के लिए जनता मे प्रचार करना शुरू किया, तो दूसरी ओर हिन्दुओ ने शुद्धि और सगठन का बिगुल बजाया। सबका नतीजा यह हुआ कि आहिस्ता-आहिस्ता मनमुटाव बढ़ता गया। आज दोनो के बीच मे एक बहुत चौडी और गहरी खाई-सी पैदा हो गयी है, जिसका इस समय किसी तरह पटना या पार करना बहुत मुश्किल हो रहा है। ब्रिटिश सरकार इस मौके पर कैसे चूक सकती थी। वह समय-समय पर अपनी कूटनीति से काम लेने से बाज नही आयी। वह छोटी चिनगारी को चतुरता से बराबर फूँकती गयी। अब भी, जब वह एक ज्वाला का रूप धारण कर चुकी है, वह उसमे घी डालने से बाज नही आती।

यहाँ पर मैंने थोड़े शब्दो मे एक लम्बी कहानी कह डाली। ऐसा न समझा जाय कि मैंने जो कुछ लिखा है वह सब कुछ १९२१ मे ही हो गया। उस समय किसी तरह जमीन पर बीज गिर गया, जिसको शायद बहुतेरों ने गिरते देखा भी नही, अगर देखा भी तो उसे इतना महत्त्व नही दिया, क्योकि बावजूद मोपला-विद्रोह के सारे देश मे अभी तक ऐक्य ही ऐक्य देखने मे आता था जिसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण उन सभाओ मे मिला जो फतवा दुहराने के लिए सारे देश मे की गयी तथा जिसकी पुष्टि युवराज के आने पर देश ने सर्वव्यापी बहिष्कार द्वारा की।

यहाँ इन दो विचार-धाराओ के सम्बन्ध मे इतना ही कह देना चाहता हूँ कि दोनो के दृष्टिकोण मे बडा अन्तर है। मुसलमान चाहे जिस तरह से भारत मे

आये हो और चाहे जिस तरह उनकी सख्या बढी हो, आज वे हिन्दुस्तान के वैसे ही निवासी है जैसे हिन्दू। उनके लिए भी कोई दूसरा देश नही है। उनकी सहानुभूति दूसरे देशों के मुसलमानो के साथ भले ही हो, और बहस के लिए यह भी मान लिया जाय कि उनको यदि इस बात के चुनने का मौका मिले कि वे किसी विपत्ति-काल मे अपने पडोसी गैर-मुस्लिमो को छोडकर दूरवर्ती विदेशी मुसलमानो के साथ ही अपनी सहानुभूति रखेगे और अधिक करके दिखलायेगे, तो भी इससे इनकार नही किया जा सकता कि इसी देश के अन्दर उनको भी मरना-जीना, सुख-दुख पाना और जिन्दगी के सभी अरमान पूरे करना तथा मुसीबते झेलना है। मरने के बाद भी वे देश के कुछ हिस्से पर कब्जा जमाये रखते है। हिन्दू मरने के बाद जला दिया जाता है और उसके पाचभौतिक शरीर का निशान कही नही रह जाता, जो थोडी-बहुत राख के रूप मे रह जाता है उसे भी वायु उडा ले जाती है अथवा पानी बहा ले जाता है। पर मुसलमान तीन-चार हाथ जमीन लेकर स्थायी रूप से यहाँ की धरती पर पडा रहता है। यह बात कौन नही जानता कि इन कब्रो के कारण कितने झगडे हुआ करते है। इसलिए हमको यह मान लेना ही पड़ेगा कि हम मुसलमानो को इस देश मे गैर नही समझ सकते।

अब प्रश्न यह होता है कि मुसलमान यदि गैर नही है तो उनका भी इस देश के साथ वही सम्बन्ध है जो और किसी का, इसलिए उनको भी यहाँ की सभी चीजो मे हिस्सा मिलना चाहिए। राजनीतिक अधिकार के बँटवारे मे भी उनका हिस्सा न्याय्य है। उससे इनकार करने का एक ही अर्थ है, और हो सकता है, वह अर्थ यह है कि उनको दबाकर उन अधिकारो से वचित रखा जाय।

जो बाते मुसलमानो के सम्बन्ध मे कही गयी है वही बाते सभी मत, धर्म और विचारवालो के लिए लागू है। जिस देश मे इतनी जातियाँ, इतने धर्मवाले, इतनी भाषाओ के बोलनेवाले, इतने मत-मतान्तर के माननेवाले बसते हो, वहाँ आपस की एकता मे यदि स्थायित्व न हो, तो पारस्परिक विश्वास और प्रेम की नीव पर शान्ति कभी स्थायी नही हो सकती। जो जब चाहेगा, दूसरो को दबा सकेगा, अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगा, पर दबे हुए लोग फिर उठ खडे होने के प्रयत्न मे ही लगे रहेगे—न खुद शान्त रहेगे और न दूसरो को शान्त रहने देगे। आज जो दृश्य इस पृथ्वीव्यापी महायुद्ध मे हम टकराती हुई शक्तियो मे देख रहे है वही दृश्य कुछ छोटे पैमाने पर हिन्दुस्तान मे बराबर ही बना रहेगा। यह कोई बुद्धिमत्ता अथवा दूरदर्शिता का परिचायक नही है। हम आज के इस भयकर सहार को देखते हुए भी यदि इस रहस्य को न समझे, और इस देश को उसी प्रकार के सहार से बचाने के उपाय न सोचे, तो यह हमारे लिए लज्जा और दुख तथा हँसी की बात होगी। गाधीजी ने इसी विचार-धारा के अनुसार शुरू से ही अहिसा पर जोर दिया है, जिसकी आवश्यकता भारत-जैसे देश के लिए सबसे ज्यादा है।

अहिसा का तत्त्व बहुत गहन है। इसको जीवन मे उतारना बड़ा ही कठिन

है। इसको ठीक न समझने के कारण ही कुछ लोग इसकी शक्ति और मर्य्यादा की हँसी उड़ाते है। वे कहते है कि इसके द्वारा आदमी कायर हो जाता है—आज तक ससार मे किसी देश ने इसे अपने राष्ट्रीय कार्य-क्रम मे स्वीकार नही किया है। लोग कहते है कि इसके द्वारा देश की स्वतत्रता की रक्षा नही हो सकती। मामूली जन-साधारण की कौन कहे, बडे-बडे समझदार और सयमी पुरुष भी क्रोध को नही रोक सकते। क्रोध ही तो हिंसा का जन्मदाता अथवा दूसरा स्वरूप है। इसलिए यह नीति कभी प्रचलित नही हो सकती। यह अव्यवहार्य है। इत्यादि।

इस विषय पर विचार करते समय पहली बात यह मान लेनी चाहिए कि हिंसा मे कायरता है, अहिंसा मे नही। जहाँ कायरता आ गयी वहाँ अहिंसा रह नही सकती। हम यदि अपने प्रतिपक्षी से डरते है और उस डर से उसका नुकसान नही करना चाहते है तो इसमे अहिंसा कैसे हो सकती है? प्रतिपक्षी को क्षति न पहुँचाने की प्रवृत्ति डर के कारण है न कि इसलिए कि नुकसान पहुँचाना बुरा है। जो मनुष्य इस तरह डर के मारे नुकसान नही पहुँचाता, उसको यदि आज मौका मिल जाय, किसी तरह दूसरे के बल का सहारा भी मिल जाय और उसका भय दूर हो जाय, तो वह नि सकोच और अविलम्ब प्रतिपक्षी पर वार कर देगा, उससे जहाँ तक हो सकेगा उसकी क्षति करेगा। यह अहिंसा कदापि नही है। अहिंसा उसी मे रह सकती है जो यह महसूस करता है कि क्षति पहुँचाना ही बुरा है, दूसरे को दुख देना अन्याय है और इसी विश्वास से वह दुख पहुँचाने से हिचकता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसकी क्षति पहुँचाने की शक्ति पर निर्भर नही रहती। उसको यदि शक्ति न भी हो और वह इस भावना से प्रेरित होकर क्षति पहुँचाने का विचार तक न करे, तो भी उसकी प्रवृत्ति अहिंसात्मक होगी। और, यदि शक्ति होते हुए भी वह क्षति पहुँचाने मे प्रवृत्त नही होता, तो उसके अहिंसात्मक होने मे किसी को सन्देह ही नही हो सकता। जब मनुष्य इस प्रकार और इस भावना से प्रेरित होकर दूसरे को कष्ट नही देना चाहता, तो इसके साथ-साथ उस पर यदि प्रतिपक्षी कुछ ज्यादती और जुल्म भी करता हो, तो उसे सहने की शक्ति उसमे होनी ही चाहिए। यदि कोई किसी अन्याय को इसलिए सह लेता है कि ऐसा यदि न किया जाय तो अन्यायी और भी अधिक कष्ट पहुँचा सकता है और इसलिए मन मारकर उसे सह लेना ही ठीक है, तो यह अहिंसात्मक प्रवृत्ति नही है, यह कायरता है। अहिंसात्मक प्रवृत्ति वह है कि हम जो ठीक और न्याय-सगत समझते है उसको करते ही जायँगे—निर्भय होकर अपने कर्तव्य पर डटे रहेगे और अन्यायी चाहे जितना भी जुल्म करना चाहे कर ले, पर हम कर्तव्य-च्युत नही होगे और अन्यायी से बदला लेने की भावना से उत्तेजित होकर उसके साथ कोई बलप्रयोग न करेगे। जहाँ इस प्रकार अपने निर्धारित पथ से हम नही हटते, अपने पथ पर डटे रहने के कारण जो भी जुल्म अन्यायी करता है उसे सह लेते है और साथ ही उसे कष्ट नही पहुँचाते, तो सच्चे अहिंसात्मक मनुष्य का-सा हमारा वर्ताव होता है। इससे स्पष्ट है कि अहिंसात्मक क्रिया मे काय-

रता नही है। उसमे कष्ट सहने से डर नही है। यह तभी हो सकता है जब अपने पक्ष के न्याययुक्त होने मे पूरा विश्वास हो, उसके समर्थन के लिए दृढ सकल्प हो और विपक्षी को कष्ट न पहुँचाने का पक्का विचार हो। अन्त मे अहिंसात्मक व्यक्ति की ही विजय होती है।

यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार की सहनशक्ति मनुष्य मे, विशेष करके जन-साधारण मे, पैदा करना मुश्किल है तो इतना ही कहना काफी होगा कि जो लोग लडाई मे अस्त्र-शस्त्र से लड़ते है उनमे भी तो साधारण श्रेणी के ही लोग रहते है जिनको अगर यो ही छोड दिया जाय तो उतनी बहादुरी नही दिखला सकते जो वे रणभूमि मे दिखलाते है। केवल अभ्यास और अध्यवसाय की जरूरत है। फौज के सिपाही की बहादुरी भी अभ्यास द्वारा ही पैदा की जाती है। पर वह बहादुरी भय पर अवलम्बित है—प्रतिपक्षी को मारना ही चाहिए, नही तो वह मार डालेगा! प्रतिपक्षी द्वारा मारे जाने का भय ही एक अत्यन्त जबरदस्त कारण बहादुरी का होता है। और, इनके अलावा, सभी सगठित सेनाओं मे अनुशासन का भी भय तो रहता ही है। जो बात तुलसीदासजी ने मारीच के सम्बन्ध मे कही है वह यहाँ भी लागू होती है—"उभय भाँति देखा निज मरना"! तब मनुष्य एक प्रकार से स्वभावत बहादुरी करने लगता है। यह बहादुरी बहुत अभ्यास से आती है। अहिंसात्मक बहादुरी भी इसी तरह अभ्यास चाहती है।

अहिंसात्मक अभ्यास दूसरे प्रकार का होता है। फौज मे दिन प्रति दिन कवायद, कसरत, क्रूरता-पूर्ण शिकार इत्यादि कराये जाते है। अहिंसात्मक अभ्यास इससे बिलकुल भिन्न है। उसका साधन, यदि एक शब्द मे कहना चाहे तो, बस सयम है। यहाँ सयम व्यापक अर्थ मे उन तमाम नियमो के लिए व्यवहृत किया गया है जिनका जिक्र हिन्दुओ के तथा दूसरे धर्मो के धर्मग्रन्थो मे पाया जाता है। वे साधारण सदाचार के नियम सख्ती से पालन करके सीखे जाते है। इन सब नियमो का झुकाव अहिंसा और सत्य की ओर ही होता है। गाधीजी ने बारबार लिखा है कि ईश्वर पर विश्वास इसका एक बहुत बडा सहायक होता है। यदि इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति को जाग्रत और पुष्ट करने मे समय लगाया जाय, बचपन से ही अभ्यास कराया जाय और इस पर पूरा ध्यान दिया जाय, तो निर्भयता इत्यादि जो इसके मुख्य बाह्य रूप देखने मे आते है, अवश्य ही प्राप्त किये जा सकते है। यह कहना कि यह मनुष्य के लिए सभव नही, बे-बुनियाद बात है।

एक समय था जब सभी देशो मे जनता मे से थोडे ही लोग लडने का पेशा किया करते थे अथवा अपना धर्म समझा करते थे और साधारण जन-समूह फौज और लडाई से अलग रहा करता था। भारत मे युद्ध क्षत्रियो का ही धर्म समझा जाता था। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भी भारतवर्ष मे कुछ विशेष जाति वा प्रदेश के लोगो को ही लडाकुओ मे गिना करती थी और उनमे से ही फौज मे लोग भर्ती हुआ करते थे। पर आजकल के विध्वसकारी महायुद्ध ने यह साबित कर दिया कि युद्ध के लिए सभी लोग

तैयार किये जा सकते है और जिस देश ने इस मर्म को जितना जल्द समझा और लोगों को युद्ध-शिक्षा देने का जितना अच्छा सुप्रबन्ध किया वह उतना ही शीघ्र और अधिक तैयार हो गया। हिन्दुस्तान मे भी इस महायुद्ध मे वही वचन भर्ती मे रहे जो पहले रहा करते थे और उन जातियो तथा प्रदेशो मे भी काफी भर्ती हुई है जो पहले लडाकू नही समझे जाते थे। यह स्पष्ट है कि जिस तरह, आज की सेना सभी श्रेणियो और विभागो के लोगो से वनी है और वहादुरी के साथ लडी है उसी तरह अहिंसात्मक सेना भी जन-साधारण से तैयार की जा सकती है, वल्कि इस अहिंसात्मक सेना की भर्ती के लिए क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो सकता है। सशस्त्र सेना मे शारीरिक ताकत आवश्यक होती है और इसलिए बूढे, कम उम्र के वच्चे और वहुत अश मे स्त्रियाँ उसके योग्य नही समझी जाती। अहिंसात्मक सेना मे बूढे, वच्चे, स्त्रियाँ और यहाँ तक कि अधे, लूले, लँगडे भी शरीक हो सकते है; क्योकि इसमे वह शारीरिक शक्ति इतनी आवश्यक नही है—मानसिक दृढता और आत्मवल ही काफी है।

अहिंसात्मक क्रिया का एक वहुत महत्त्व-पूर्ण फल यह है कि इसमे जो शरीक होता है वही अपने ऊपर आपत्ति वुलाता है। दूसरे अगर प्रतिपक्षी भी हो तो भी कष्ट और मुसीवत के भागी नही होते, क्योकि दूसरो को कष्ट पहुँचाना इसको इष्ट नही होता और न उस कष्ट द्वारा यह अपना कार्य-साधन ही करना चाहती है। इसका उद्देश्य तो प्रतिपक्षी को भी अपने वश मे कर लेना होता है, और वह वल-प्रयोग मे नही, अपने प्रेम के प्रयोग से और प्रतिपक्षी मे भी उसी प्रकार की भावनाओ को जाग्रत करके। इसलिए अहिंसात्मक क्रिया मे कम से कम कष्ट होता है। जहाँ वल-प्रयोग है वहाँ दोनो पक्षो पर मुसीवत होती है। इसमे केवल एक पक्ष अपने ऊपर मुसीवत लेता है। कष्ट की मात्रा इस तरह यो ही आधी हो जाती है। पर यह मात्रा आधी से भी कही अधिक कम होती है, क्योकि जहाँ विपक्षी वल-प्रयोग से कष्ट नही पहुँचाता वहाँ दूसरे के भी हाथ कमजोर पड जाते है और हथियार भोथरे हो जाते है। वाहु मे वल-प्रयोग की शक्ति आन्तरिक क्रोध से वढती है और वह क्रोध वल-प्रयोग द्वारा प्रतिकार से जितना जाग्रत होता है उतना अहिंसात्मक प्रतिकार से नही होता है। इसलिए यदि दोनो पक्षो के कष्टो और मुसीवतो का लेखा लिया जाय तो इसमे सन्देह नही कि अहिंसात्मक क्रिया मे कष्ट की मात्रा वहुत ही कम हो जाती है।

अहिंसात्मक क्रिया मे किसी विशेष साधन की आवश्यकता नही होती। आज के युद्ध मे नित्य नये अस्त्र-शस्त्रो का आविष्कार और प्रयोग होता रहता है। आज जितना धन खर्च हो रहा है उसके आँकडे वुद्धि को चकरा देते है। अमेरिका ने इस युद्ध मे प्राय ५५ करोड रुपये प्रतिदिन खर्च किये है और इँगलैड ने प्राय १५-१६ करोड रुपये। गरीव भारतवर्ष ने भी एक करोड प्रतिदिन खर्च किया है। दूसरे देशो का पता नही। पर रूस और चीन के खर्च का भी कुछ इन्ही आँकडो से अन्दाज लगाया जा सकता है। इन राष्ट्रो के प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी, इटली और जापान कितना

रोजाना खर्च करते रहे, उसका भी हम इसी से अनुमान कर सकते है। इन आँकडो मे जो खर्च हुआ है वही बताया गया है। दुश्मन की कार्रवाई से जो प्रतिदिन नुकसान पहुँचाया गया है उसका हिसाब शायद इसमे नही है। इसी प्रकार मनुष्यो की हत्या भी बेहिसाब हुई है। और, युद्ध से पैदा हुई उन मुसीबतो और कष्टो का तो कोई हिसाब ही आँकडो के रूप मे नही कहा जा सकता जो उन देशो की जनता को सहने पडे है जो लडाई मे शरीक थे, और कुछ हद तक उन देशो को भी जो लडाई मे शरीक नही थे। इसके विपरीत अहिंसात्मक क्रिया मे बाह्य पदार्थों की कोई विशेष आवश्यकता नही है और जन-साधारण के जीवन-क्रम मे कोई विशेष गडबडी भी आवश्यक नही है। इस तरह से कष्ट, धन का खर्च, मानव-रक्त का खर्च और जन-समूह की मुसीबतें—सभी बाते अहिंसात्मक क्रिया मे बहुत ही कम, नही के बराबर, हो जाती है, जहाँ बल-प्रयोग मे वे इतना ज्यादा होती है कि उनका हिसाब ही नही लगाया जा सकता है। इसलिए गरीब देश भी इसका प्रयोग आसानी से कर सकता है और बडे से बडे शक्तिशाली देश का मुकाबला कर सकता है।

यह तो हुआ अन्तर्राष्ट्रीय कामो मे अहिंसा का महत्त्व। जहाँ एक ही देश मे विभिन्न धर्मों के माननेवाले, विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाले और विभिन्न विचार रखनेवाले बसते है वहाँ तो यदि हिंसा की शरण ली गयी तो वहाँ की जनता एक दिन भी चैन से नही रह सकती। अगर भारतवर्ष के लोग आपस मे भाईचारे का बर्ताव न करे, एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता न बर्तें और अपने स्वत्वो को ही मुख्य समझकर दूसरों से उनको मनवाने मे सलग्न रहे तथा दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यो को गौण समझकर उनके पालन के सतत प्रयत्न मे न लगे रहे, तो इसका नतीजा दिन-दिन खूनखराबी बढने के सिवा दूसरा हो ही नही सकता। जहाँ तक एक व्यक्ति की हिंसात्मक प्रवृत्ति का सम्बन्ध दूसरे एक व्यक्ति से होता है वहाँ तक तो देश की स्थापित राष्ट्र-शक्ति अपनी पुलिस और अदालतो द्वारा उसका नियन्त्रण कर सकती है। पर जब वह प्रवृत्ति जन-समूह तक पहुँच जाती है और देश के विभिन्न विभाग एक दूसरे से टकराने लगते है, तो पुलिस और कचहरियाँ बेकार हो जाती है। और इस झगडे का रूप गृहयुद्ध (Civil War) का हो जाता है। इससे बचने के लिए अहिंसात्मक क्रिया पर भरोसा करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता भारतवर्ष-जैसे देश के लिए नही हो सकता।

इस सम्बन्ध मे एक और बात स्मरण रखने योग्य है। जब हिंसा-अहिंसा की बात हम करने लगते है और यह कह बैठते है कि हिंसा तो हमारी नस-नस मे भरी है, हम कैसे आशा करे कि उत्तेजन के समय साधारण मनुष्य और विशेष करके साधारण जन-समूह अहिंसात्मक रह सकेंगे, तो ऐसा कहते समय हम भूल जाते है कि यदि किसी व्यक्ति या समूह के जीवन की रोजाना कार्रवाइयो को देखा जाय, तो हम पावेगे कि इन सबमे शायद ही एक-दो ऐसे काम होते होगे जिनमें हिंसा का प्रयोग किया जाता होगा। १०० मे प्राय ९९ काम ऐसे ही बिना बल-प्रयोग और बिना

हिंसात्मक क्रिया के होते हैं, और उन एक या दो प्रतिशत परिस्थितियो पर भी काबू कर लेना तथा हमेशा अहिंसात्मक क्रिया को ही बर्तना कुछ असम्भव नही होना चाहिए। हाँ, प्रयत्न के बिना हमारी जिन्दगी जगली जानवरो से भी बुरी हो सकती है।

चम्पारन मे गाधीजी ने कहा था कि नीलवरों का मै बुरा नही चाहता हूँ, पर साथ ही उनके द्वारा जो जुल्म, ज्यादती और अन्याय रैयतो पर होते है उनको बन्द कराऊँगा और दोनो का मित्र बना रहूँगा। कुछ ऐसा ही हुआ भी। कारण, सब कुछ हो जाने के बाद उन्ही नीलवरो ने गाधीजी को पाठशाला खोलने और दूसरे प्रकार से रैयतो की उन्नति के कामो मे सहायता देने का वचन भी दिया था। थोडी-सी सहायता कुछ लोगो से मिली भी थी। पर गाधीजी देश के दूसरे काम मे लग गये और यह काम आगे न बढ सका। थोडे दिनो तक तीन पाठशालाएँ चली। पर कुछ दिनो के बाद पाठशालाएँ बन्द हो गयी। एक के सिवा दो पाठशालाओ का नीलवरो के साथ अच्छा और मीठा अनुभव रहा।

यही बात अँगरेजी सल्तनत के साथ भी बडे पैमाने पर हो सकती है यदि देश ने अहिंसा के रास्ते को मजबूती से पकड रक्खा। पर आज ससार मे प्रलयकर युद्ध के बाद भी जिसने बलप्रयोग को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है और यह साबित कर दिया है कि मनुष्यमात्र को यदि जीवित रहना है और सभ्यता को कायम रहना है, तो कोई न कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिए जिसमे राष्ट्रो को हर बीस-तीस वर्ष पर अपने युवको को कटवाना न पडे, माताओ को केवल मारे जाने के लिए ही बच्चे न जनने पडे और धन-राशि केवल अग्नि द्वारा जलाये जाने अथवा समुद्र के पेट मे डुबाये जाने के लिए ही पैदा न की जाय। मै देखता हूँ कि हमारे देश का, काग्रेसियो का और उन कार्यकर्त्ताओ का भी—जिन्होने अहिंसा के सहारे से ही आज तक काम किया है और राष्ट्रीय काम मे सफलता भी पायी है—उस अहिंसा पर विश्वास कम होता जा रहा है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिषय मे भी बहुतेरे कह बैठते है कि यह केवल शक्ति से ही स्थापित हो सकती है, भाई-चारे से नही—अर्थात् जोर-आजमाई करके एक को दबा रखना जरूरी है। कुछ मुसलमान सोचते है कि आज से कही कम सख्या मे रहते हुए भी हमने प्राय सारे हिन्दुस्तान पर सैकडो बरसो तक राज किया है, तो फिर आज भी कर सकते है। उसी तरह हिन्दू भी कुछ ऐसे जरूर है जो कहते है कि हमारी सख्या इतनी अधिक है, हम विद्या, धन और बल मे किसी तरह मुसलमानो से कम नही है, बल्कि बढे हुए है, और अब वे दिन लद गये जब थोडे-से मुसलमानो ने—हिन्दुओ मे जागृति न होने के कारण—राज किया था; अब हिन्दू-जाति जाग्रत है और सगठित होती जा रही है, देश हिन्दुओ का था, दूसरे लोग तो केवल एक अल्प-सख्यक जाति-मात्र है, इसलिए यहाँ अधिकार हिन्दुओ का ही होना चाहिए—हाँ, मुसलमान तथा सभी दूसरे अल्पसख्यक लोगों के साथ पूरा-पूरा न्याय होना चाहिए।

ये दोनों दल अपने बल पर ही भरोसा रखते है। अहिंसा की बात, जो एक-मात्र इस कठिन समस्या के सुलझाने का साधन है, ये बिलकुल भूल जाते है। क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया साधारण नैसर्गिक नियम है। हिंसात्मक क्रिया की प्रतिक्रिया हिंसात्मक होती है और अहिंसात्मक क्रिया की प्रतिक्रिया अहिंसात्मक। इसलिए इस हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के सुलझाने मे यदि हम हिंसात्मक भावना से काम लेकर हिंसात्मक क्रिया पर उतरे, तो सुलझाने के बदले यह अधिक उलझती जायगी। हाँ, हमारी क्रिया सच्चे अर्थ मे अहिंसात्मक होनी चाहिए। उसमे न क्रोध होना चाहिए, न बल-प्रयोग—न डर होना चाहिए, न कायरता। सत्य और न्याय पर भरोसा और निष्ठा तथा सच्ची अहिंसात्मक क्रिया का ही प्रयोग। हो सकता है कि इस प्रकार की अहिंसात्मक क्रिया का फल शीघ्र और सभी स्थानो पर देखने मे न आवे, पर यदि हमारी क्रिया आत्मविश्वास और सचाई और बहादुरी पर अवलम्बित होगी—आत्मलाघव और डर तथा कायरता पर नही, तो इसकी विजय अवश्यम्भावी है।

मैं हिन्दू-मुस्लिम-समस्या की बात लेकर अहिंसा-सम्बन्धी बाते बहुत कुछ लिख गया। यह विवेचन कही न कही आनेवाला था ही। यदि यही आ गया, तो ठीक ही हुआ।

३६—छपरे की भयंकर बाढ़

उस साल आश्विन के महीने मे छपरा-जिले मे एक दिन बहुत पानी बरसा। २४ घटो मे प्राय ३६ इच वर्षा हुई। इसका नतीजा यह हुआ कि सारा जिला जल-प्लावित हो गया और भयकर बाढ आ गयी। मेरे भाई साहब जन-सेवा मे बराबर लगे रहते थे। इस मौके पर उन्होंने लोगो के सहायतार्थ बहुत परिश्रम से काम किया।

छपरा नगर मे इस बाढ से लोगों को बहुत कष्ट उठाना पडा था। पर इसके साथ ही साथ एक बात और देखने मे आयी जिसका उल्लेख अनुचित न होगा। स्थानीय सरकारी कर्मचारियो ने जनता की मुसीबत मे बडी उदासीनता और उपेक्षा से काम लिया, जिससे लोगो मे बडा रोष पैदा हुआ। अखबारो मे खबर छपी कि जिस समय लोग पानी के मारे त्राहि-त्राहि कर रहे थे, कुछ अफसर नावो पर चढकर झिरझिरी खेल रहे थे। डूबते और परेशान लोगो की, यहाँ तक कि स्त्रियो और बच्चों को भी बचाने मे, उनमे से बहुतेरो ने कुछ भी सहायता नही की, बल्कि वहाँ के अँगरेज जज और बगाली सबजज ने मदद की, पर कलक्टर और पुलिस के अफसर तथा डिप्टी मजिस्ट्रेट टस से मस नही हुए। इस बात को लेकर छपरे मे सार्वजनिक सभा हुई जिसमे खुले आम उनकी निन्दा की गयी और मदद करनेवालो की—विशेष करके बाबू महेन्द्रप्रसाद और कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ताओ की—बडी प्रशसा की गयी तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी।

दिहातो का भी हाल यही था। एक जगह एक बात मजाक की भी हो गयी। छपरे मे मशरक से जो रेल की लाइन आती है उसे काटने के लिए लोगो

ने कलक्टर से बहुत कहा; पर उन्होंने एक न सुनी। पीछे वह लाइन टूट गयी। अथवा, जैसा मैंने पीछे सुना, किसी ने उसे थोड़ा-सा काट डाला और पीछे पानी के ज़ोर ने ज्यादा काटकर एक बहुत लम्बा चौड़ा खड्ड बना दिया। इसी सिलसिले में दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। सीवान से पच्छिम एक जगह पानी बहुत जमा हो गया था। गाँववालों ने रेलवे-लाइन काट डालना चाहा, पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। पहले उनकी हिम्मत नहीं पड़ी, कष्ट सहते ही गये। पर जब वह बर्दाश्त के बाहर हो गया तो एक गाँव के दो-चार आदमी कंधे पर कुदाल रखकर पानी में तैरते हुए लाइन की ओर आये। पुलिसवालों ने देखा और उनको धमकाया। उन्होंने जवाब दिया—"पानी में डूबकर हम मर रहे हैं और तुम लाइन नहीं काटने देते। अब तक हमने बर्दाश्त किया, अब नहीं बर्दाश्त कर सकते। मरना दोनों हालत में है, डूब करके मरें या गोली खाकरके मरें। हमने निश्चय कर लिया है कि गोली खाकर मरना बेहतर है। इसलिए हम लाइन काटेंगे, तुम गोली मारो"

यह कहकर वे लाइन काटने लगे। पुलिस की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह गोली चलावे। लाइन कट गयी। पानी बह निकला और कितने ही गाँव बच गये। सुना कि पुलिसवालों ने रिपोर्ट कर दी कि पानी से लाइन बह गयी, किसी ने काटा नहीं। वहाँ अब एक बड़ा पुल हो गया है। तब से लाइन के उत्तर के गाँवों में पानी रुक जाने के कारण अब बाढ़ नहीं आती।

दूसरी घटना दरौली थाने के अन्दर के किसी गाँव की है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क ऊँची है। इसलिए सड़क पानी को रोक देती है, जैसे रेलवे-लाइन रोक देती है। गाँववालों ने थाने के दारोगा से जाकर कहा कि सड़क कटवा दीजिए तो बहुतेरे गाँव बच जायँ। उन दिनों गाँव-गाँव में कांग्रेस-कमिटियाँ बन गयी थीं। थाना-भर के सब गाँवों को मिलाकर थाना-कमिटी बनी थी। थाना-कमिटी के मुख्य कार्यकर्ता, चाहे वे थाना-कमिटी के सभापति हों अथवा मंत्री, 'स्वराजी दारोगा' कहलाया करते थे। लोगों ने यह नाम न मालूम कैसे दे दिया था, पर यह बहुत जगहों में प्रचलित हो गया था। सरकारी दारोगा ने मजाक में कहा—मेरे पास क्यों आये हो, 'स्वराजी दारोगा' के पास क्यों नहीं जाते। छपरे में भी किसी उच्चपदाधिकारी ने ऐसा ही कहा था कि मदद के लिए मेरे पास क्यों आते हो, गांधी के पास जाओ। छपरावालों ने भी गांधी—अर्थात् कांग्रेसवालों—से मदद पायी थी। दरौली थाने के देहाती लोग भी थाना-मंत्री के पास गये और दारोगा के साथ हुई बात कह सुनाई। उन्होंने सुनकर कहा—अच्छा, अगर दारोगा ने ऐसा कहा है और मेरे पास भेजा है, तो मैं कहता हूँ, जहाँ तुम जरूरी समझो, सड़क काट डालो, जिसमें पानी बह जाय; पर इसका ध्यान रखना कि बिना जरूरत सड़क न बिगाड़ना। लोगों ने वैसा ही किया। सड़क काटकर पानी बहा दिया।

मैं भी सहायता के काम में जुट गया। पर मैं जब पहुँचा, छपरा शहर से पानी हट गया था। गोलेदारों के गोलों में जो अन्न पानी में पड़कर सड़ गया था,

उसकी दुर्गन्ध से उन मुहल्लो मे चलना मुश्किल हो रहा था। मैंने पैसे जमा करने मे और दूसरी तरह से सहायता के काम मे कुछ भाग लिया। वह प्रवृत्ति पहले मे ही थी। १९१४ की बाढ मे मैंने कलकत्ते से ही सहायता देने का काम सगठित रूप से आरम्भ किया था। यह प्रवृत्ति गाधीजी के ससर्ग से और भी कुछ दृढ हो गयी थी। जब कभी अपने प्रान्त मे कही भी बाढ आयी, तो मैं कुछ न कुछ सहायता का प्रबन्ध करने का प्रयत्न करता था। १९२३ मे शाहाबाद मे सोन की भयकर बाढ आयी। मैं उस समय झण्डा-सत्याग्रह के काम से नागपुर गया था। खबर पाते ही वहाँ से चला आया। इसी तरह दरभगा-जिले के मधुवनी-सबडिवीजन मे भयकर बाढ आयी। वहाँ भी सहायता के लिए जाना पडा था। इन सभी जगहो मे बडी कठिनाइयो का भी सामना करना पडता था। आरे मे बहुत मुश्किल से पहुँच पाया था, क्योकि कोइलवर और आरे के बीच मे रेल की लाइन—जो बहुत ऊँची बनी है—एकदम टूट गयी थी, उसके बाँध मे एक-एक जगह १५०-२०० फुट चौडी कई खाइयाँ बन गयी थी। नीचे का रास्ता तो बिलकुल जलमग्न था ही। रेल की पटरी के नीचे का बाँध तो कट गया था, पर ऊपर लोहे की पटरी और कही-कही काठ की पटरियाँ भी, जिन पर लोहे की रेल जडी रहती है, लटकती थी। नीचे कही जोरो से पानी बह रहा था, तो कही कुड बन गया था जिसमे बहुत गहरा पानी जमा था। इन खाइयो को पार करने का एक ही साधन था—उन पटरियो पर किसी तरह चलकर या लटक कर पार करना। मेरे साथ प्रोफेसर अब्दुलबारी थे। हम दोनो इन पटरियो पर कही लम्बे होकर चौपाये की तरह, कही हाथो से इन्हे पकड़ कर, नीचे लटकते हुए बन्दरो की तरह, खाइयो को पार करके आरा पहुँचे। वहाँ जाकर सहायता का काम सगठित किया। इन अवसरों पर रुपयो की कमी नही होती थी। अपील करने से लोग पैसे भेज देते। विशेष करके गाधीजी के सम्पर्क के कारण गुजराती भाइयो की कृपा रहती थी। बम्बई और गुजरात से पैसे आ जाया करते थे। सेठ जमनालाल जी बजाज का भी हमेशा खयाल रहा करता था। प्रायः सभी जगहो मे नावों पर चढकर दूर-दूर तक जाना पडता था; क्योकि दूसरी कोई सवारी जा नही सकती थी। मधुवनी के इलाके मे एक जगह 'कमला' नदी को नाव पर पार करना पडा था। धारा का वेग बहुत तेज था। बहुत मुश्किल से नाव उस पार पहुँच सकी थी।

सभी जगहो मे, चाहे छपरा मे, चाहे शाहाबाद मे, चाहे दरभगा मे, एक ही दृश्य हमेशा देखने को मिलता था। देहातो मे घर विशेष कर मिट्टी के ही होते हैं जो गिरे हुए नजर आते। घरो मे जो कुछ अनाज होता सब सडता हुआ मिलता। माल-मवेशी बहकर मरे हुए और लोग भूख से परीशान दीख पडते। गाँव के कुत्ते भूखो परीशान भूकते हुए। मवेशी भी उसी तरह भूखो मूक खडे हुए। बाढ के हट जाने के बाद बीमारी—विशेषकर मलेरिया का प्रकोप। कुछ दिनो बाद, रबी (बैसाखी) बोने के समय बीज की कमी और चारो ओर से उसकी माँग। मुझे याद

है कि छपरे मे बाढ के बाद जब मलेरिया का प्रकोप बढा तो हमने छपरे के डाक्टरो को इकट्ठा किया। सब ने मिलकर एक नुसखा तैयार किया, जिसमे मलेरिया के अलावा कुछ पेट साफ रखने और मामूली खाँसी रोकने की भी दवा थी। इसी को हमने बहुत बडे पैमाने पर इकट्ठे तैयार कराया और बोतलो मे भर-भरकर सारे जिले मे बँटवाया। इसका फल बहुत अच्छा हुआ। बिना डाक्टर के ही हमने अपने काँग्रेसी कार्यकर्त्ताओ द्वारा दवा बाँट करके बहुतेरे रोगियो को आराम किया। दवा बहुत कामयाब साबित हुई। पीछे जहाँ-कही मलेरिया का प्रकोप होता, उसी नुसखे को हम लोग बहुत दिनो तक काम मे लाते रहे।

शाहाबाद मे, गगा के दियारे के इलाके मे, जहाँ बाढ का बहुत प्रकोप था, रवी (बैसाखी) की फसल ही होती है। वहाँ बीज की बहुत आवश्यकता थी। मुझे याद है कि मै हफ्तो तक गाँवो मे घूम घूम कर बीज के लिए रुपये बाँटता रहा। कार्यकर्त्ता पहले से ऐसे लोगो की फिहरिस्त बना रखते थे, जो बीज चाहते थे। हम दो-तीन आदमी रुपये लेकर एक दिन गाँव मे पहुँचते थे। सब लोग वहाँ जमा रहते थे। फिहरिस्त की जाँच खुली सभा मे करके रुपये बाँट देते थे। जिस समय आरा मे बाढ आयी थी, उसका असर छपरा-जिले पर भी पडा था; क्योकि गगा मे भी बाढ थी और सोन का पानी गगा खीच नही सकती थी। नतीजा यह हुआ कि सगम के नजदीक कई कोसो तक दोनो नदियो का पानी इकट्ठा हो गया और गगा-पार मे भी भयकर स्थिति पैदा हो गयी। वहाँ पर भी सहायता का प्रबन्ध किया गया। जो रुपये जमा हुए उनका एक हिस्सा छपरा मे भी खर्च हुआ, पर मै वहाँ खुद जाकर, आरा मे कार्य्यव्यस्त रहने के कारण, काम नही कर सका। वहाँ के स्थानीय लोगो ने ही, जिनमे मुख्य मेरे भाई साहब थे, काम सँभाल लिया।

ऊपर कहा जा चुका है कि रेलवे लाइनो के कारण बाढो की भयकरता बढ जाती है। अपने सूबे मे, पिछले तीस बरसों मे, जितनी बडी और भयकर बाढ़ें आई है, सबका मुझे काफी अनुभव है। मेरा यह दृढ विचार है कि रेलवे-लाइन और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तथा दूसरी ऊँची सडके बाढ के कारणों मे प्रमुख कारण है। यदि इनमे जगह-जगह काफी और चौडे पुल वने रहते तो ऐसी हालत न होती। मैने अपनी आँखो देखा है कि लाइन के एक ओर सात-आठ फुट गहरा पानी है और दूसरी ओर एक दो फुट भी मुश्किल से है। पानी को यदि मौका मिले और दूर तक फैल जाय तो स्वभावत उसकी गहरायी कम हो जाती है और बहाव भी कमजोर पड जाता है। पर जव उसी पानी को तग रास्ते से निकलना पडता है और वह सामने के बाँध को तोडकर नही निकल सकता, तो स्वभावत वह जमा हो जाता है और जव कही निकल पाता है तो वहाँ बहुत जोर का होता है। इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिस पर गवर्नमेंट को ध्यान देना उचित है। पर यहाँ तो रेल की कम्पनियो के मुनाफे पर ही अधिक ध्यान रखा जाता है, उनको पुल वनवाने के लिए मजबूर नही किया जाता, लाइन काटना तो दूर की बात है।

कई बार बाढ से जनता को भयकर कष्ट सहने पडे है। ईस्ट-इण्डियन रेलवे ने तो शाहाबाद की बडी बाढ के बाद कोइलवर से आरा के बीच मे बहुतेरे बडे पुल बनवा दिये। इस तरह वहाँ के लोगो का भय बहुत हद तक दूर हो गया। सरकारी सडक मे भी, जो अब बन गयी है, उसी तरह पानी बहने के लिए कई पुल और लचक बना दिये गये है। पर बी० एन० डब्लू० रेलवे ने (जो अब ओ० टी० रेलवे के नाम से मशहूर है) इस मामले मे बहुत कजूसपन दिखलाया है। यद्यपि अब उसमे कई जगह पुल बने है, तथापि अब भी बहुत ऐसे स्थान है जहाँ पुल की जरूरत है। उसने जो पुल बनवाये है, वे जनता के कष्ट दूर करने के खयाल से नही—अपने मुनाफे के खयाल से, क्योकि जब तक केवल जनता के कष्ट की बात रही, एक न सुनी गयी, पर जब प्रकृति ने लाइन को इस तरह तोडा कि महीनो रेल चलना बन्द हो गया तो उसने मजबूरन कई पुल बनवा दिये। अब, जब वह लाइन गवर्नमेट की हो गयी है, आशा की जा सकती है कि शायद इस पर अधिक ध्यान दिया जाय। हमने सुना है कि सरकारी कर्मचारी भी कहा करते थे कि इस लाइन के मालिक जबरदस्त है—उनकी एक नही सुनते। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और पी० डब्लू० डी० को भी इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है।

इन सब घटनाओ का मैने एक ही स्थान पर जिक्र कर दिया, यद्यपि ये कई बरसो मे घटी थी।

३७—सत्याग्रह की तैयारी

एक ओर देश मे जोरो से असहयोग का आन्दोलन चल रहा था। दूसरी ओर गवर्नमेट और उसके अनुयायी युवराज के स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। ऐसा जान पडता था कि इस मौके पर मुठभेड हुए बिना न रहेगी।

बम्बई मे, शुरू अक्टूबर मे, वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसी मे निश्चय हुआ कि नवम्बर के शुरू मे दिल्ली मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की जायगी। यह बैठक विशेष करके सत्याग्रह शुरू करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए होनेवाली थी। कॉंग्रेस के सभापति श्री विजय राघवाचारी तथा मत्री पडित मोतीलालजी मे कुछ मतभेद हो गया। सभापति ने घोषणा निकाल दी कि दिल्ली मे होनेवाली बैठक नही होगी। मत्री ने घोषणा की कि वर्किंग कमिटी के निश्चय को रद करने का अधिकार सभापति को नही है, और चूँकि महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिए यह बैठक होनेवाली है, इसलिए यह स्थगित नही की जा सकती। महात्माजी भी पडितजी के साथ सहमत थे। आखिर बैठक दिल्ली मे हुई। श्री विजय राघवाचारीजी नही आये। उनकी गैरहाजिरी मे लाला लाजपतराय ने सभापति की जगह ली। मै छपरे मे बीमार पड गया था, इसलिए नही जा सका।

बम्बई मे जमा हुए लोगो ने, एक प्रकार से फतवे के सम्बन्ध मे घोषणा निकाल कर, व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह कर ही दिया था। वह बहुत जगहो पर बड़ी-बडी सभाओ मे, जैसा कहा जा चुका है, दुहराया गया था। वर्किंग कमिटी ने

यह भी निश्चय कर दिया था कि जहाँ कही विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और खादी-प्रचार के काम मे सरकार की ओर से रुकावट डाली जाय, कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ता—यदि वह चर्खा चलाते हो और खादी पहनते हो—अपने प्रान्त की प्रान्तीय कमिटी की आज्ञा से सरकारी प्रतिबध की अवहेलना कर सकते है। दिल्ली की अखिल-भारतीय कमिटी ने निश्चय किया कि सूबा-कमिटियाँ अपने-अपने सूबे मे, जहाँ और जिसको वह मुनासिब समझे, सत्याग्रह की—जिसमे करबन्दी भी शामिल है—अनुमति दे सकती है। अनुमति की शर्ते व्यक्ति के लिए थी—असहयोग की सभी बातो का उस व्यक्ति के द्वारा पूरा होना—अर्थात् उसे खादी पहनना चाहिए, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य मानना चाहिए, अछूतपन छोडना चाहिए इत्यादि। इसी तरह किसी इलाके को अनुमति मिलने की शर्त थी—उस इलाके मे विदेशी वस्त्र का पूरा बहिष्कार, वहाँ की जनता द्वारा स्वदेशी वस्त्र और खादी का धारण करना, अछूतपन का दूर होना, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार इत्यादि। इन शर्तो मे किसी को छोड देने का अधिकार वर्किंग कमिटी को दिया गया। यह घोषणा कर दी गयी कि किसी सत्याग्रही के परिवार के भरण-पोषण का भार कॉंग्रेस पर नही होगा और अहिंसा मे विश्वास सबके लिए अनिवार्य है तथा जब तक इस बात का पूरा प्रबन्ध न हो जाय कि सत्याग्रह होने पर बलवा-फसाद न होगा तब तक सत्याग्रह की इजाजत न दी जाय। इस तरह प्रान्तीय कमिटियो को अधिकार तो मिला, पर सत्याग्रह की शर्ते इतनी कडी थी कि किसी भी व्यक्ति या इलाके के लिए उनको पूरा करना बहुत कठिन था। साथ ही, यह भी समझा गया था कि सत्याग्रह आरम्भ करने मे जल्दी नही की जायगी, और यद्यपि सभी सूबे तैयारी मे लग जायँगे तथापि वे गुजरात का इन्तजार करेंगे, जहाँ बहुत तैयारी हो रही थी। इसके अनुसार बिहार मे भी तैयारियाँ हो रही थी। छपरा-जिले के लोग चाहते थे कि बसन्तपुर-थाना को सत्याग्रह की अनुमति मिले। खादी-प्रचार द्वारा और दूसरे साधनो द्वारा लोगो की तैयारी भी बतायी जाती थी। प्रान्तीय कॉंग्रेस-कमिटी ने कुछ लोगों को, जिनमे मुख्य मौलवी महम्मद शफी साहब थे, जाँच के लिए भेजा भी। उन्होने इलाके को तैयार पाया।

इस तरह की बाते चल रही थी कि नवम्बर महीने के मध्य मे युवराज बम्बई पहुँच गये। सरकार की ओर से स्वागत की तैयारी थी, जनता की ओर से बहिष्कार की। हिन्दू और मुसलमान तो एक राय थे। वे मिलकर बहिष्कार मे लगे थे। पर कुछ पारसी स्वागत मे शरीक हुए। बहिष्कार काफी कामयाब रहा। पर जब कुछ पारसी स्वागत से लौट रहे थे, कॉंग्रेसियो से उनका झगडा हो गया। कॉंग्रेसियो मे विशेष भाग मुसलमानो ने ही लिया था। बडा बलवा आरम्भ हो गया। आरम्भ तो किया हिन्दू-मुसलमानो ने, पीछे पारसियो और क्रिस्तानो ने इसे जारी रखा। भाग्यवश गाधीजी उन दिनो बम्बई मे ही थे। उन्होने पहले श्रीमती सरोजिनी नायडू, सेठ उमर सुभानी, सेठ छोटानी तथा शकरलाल बैंकर प्रभृति को दगा शान्त करने के लिए भेजा। पीछे स्वय जहाँ मारपीट हो रही थी, पहुँच गये। बलवा कई दिनो के

बाद किसी तरह शान्त हुआ। इसके लिए गाधीजी को उपवास भी करना पडा था। इस बलवे मे प्राय ५०-६० आदमी मारे गये और ३०० से अधिक घायल हुए। मरे हुओं और घायलो मे तीन-चौथाई से अधिक कॉग्रेसी थे। इस बलवे का असर उनके दिल पर पडा। वर्किंग-कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई। वहॉ पर उन्होने जोर दिया कि सभी जगहों मे सत्याग्रह करना खतरनाक होगा, क्योकि अभी तक लोगो ने अहिंसात्मक लडाई के ढग और नीति को पूरी तरह से नही समझा है। इसलिए वर्किंग-कमिटी ने निश्चय किया और प्रान्तीय कमिटियो को आदेश दिया कि शान्ति-रक्षा के लिए और जनता के जमाव को सँभालने के लिए सगठित सेवको की जरूरत है, इसलिए सभी कमिटियाँ सेवक-दल कायम करे—वे ही लोग सेवक हो सकेंगे जो शपथ करेंगे कि वे मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसक रहेंगे और कांग्रेस के अनुशासन को मानेंगे। विचार था कि यदि ऐसे सगठित सेवक-दल तैयार रहेंगे तो बम्बई-जैसी दुर्घटनाएँ नही होगी। बम्बई मे गाधीजी के उपवास का फल केवल यही नही हुआ कि बलवा शान्त हो गया, वहाँ के सभी जातियो के लोगों ने आपस मे मेल बढाने की एक प्रकार से प्रतिज्ञा भी की। इस तरह देश-भर मे शान्ति के पक्ष मे भावना फैली।

श्रीमती एनी बेसेण्ट शुरू से ही असहयोग-आन्दोलन का बहुत जोरो से विरोध कर रही थी। उन्होने एक बार यहॉ तक लिख दिया था कि गाधीजी अधकार की शक्तियों के प्रतिनिधि है (Represents the forces of darkness)। बम्बई के दगे के बाद उन्होने बहुत कडे लेख लिखे। किसी बलवे के सम्बन्ध मे उन्होने तो यह भी लिखा था कि गवर्नमेट ईंट-पत्थरो के ढेलो का जवाब गोलियो से ही दे सकती है। वर्किंग कमिटी के समय भी उनका एक लेख कुछ ऐसा ही निकला। मुझे याद है कि देशबन्धु दास अखबार की उस सख्या को अपने हाथ मे लेते आये। महात्माजी से वह बोले, हम आशा करते है कि 'यग इण्डिया' के अगले अक मे इसकी गूँजती हुई तीव्र आलोचना हमको पढने को मिलेगी। महात्माजी ने उत्तर दिया, ऐसी आशा आप न रक्खे। हमने देखा है कि गाधीजी इस तरह के 'तू-तू मैं-मैं' मे नही पडते। इस प्रकार के लेखो को शायद वह पढते भी नही। इससे उनके लेखो मे कटुता नही आती। कडी से कडी बात भी वह चुस्त—पर सयत—भाषा मे कह डालते है। उनके सम्पर्क की ही कृपा है कि मै भी अपने उस स्वभाव को, जो बचपन से ही झगडे से बचने का है, अधिक दृढ कर सका हूँ—अपने लेखो और भाषणो मे यथासाध्य कटुता न आने देने का प्रयत्न करता हूँ।

३८—गिरफ्तारियाँ और समझौते का प्रयत्न

बम्बई मे युवराज के उतरने के समय की घटनाओ से सारे देश मे खलबली मच गयी। गवर्नमेण्ट ने भी निश्चय कर लिया कि दमन-नीति से काम लेना चाहिए। इसलिए अब जहाँ-तहाँ गिरफ्तारियाँ होने लगी। चन्द दिनो के अन्दर ही, दिसम्बर

मे, प्राय सभी जगहो मे, एक साथ ही वहुत-से कॉंग्रेसी लोगो की—विशेष कर वडे-वडे नेताओ की—गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयी। इन गिरफ्तारियो का विशेष कारण यह हुआ कि गवर्नमेण्ट ने सेवक-दलो को गैरकानूनी वना दिया।

१९०८ मे दो कानून वने थे। उस समय कई जगहो मे, विशेप कर वगाल मे, क्रान्तिकारी दल काम कर रहे थे, जिनके सम्वन्ध मे गवर्नमेण्ट कहा करती थी कि वे वम वनाया करते है—सरकारी कर्मचारियो को वम तथा गोली से मारा करते है इत्यादि उन्ही को दवाने के लिए 'क्रिमिनल लॉ अमेडमेट ऐक्ट' (Criminal law Amendment Act) पास हुआ था। एक दूसरा कानून 'सेडीगस मीटिङ्ग ऐक्ट' (Seditious meetings Act), विद्रोही सभाओ के नियत्रण और रोक-थाम के लिए, वना हुआ था। दोनों कानूनो का कारण, गवर्नमेण्ट के कहने के अनुसार, हिंसात्मक दलो की प्रवृत्तियाँ था। पर इस समय यद्यपि कॉंग्रेस पूर्णरूपेण अहिंसात्मक सस्था थी और उसका सेवा-दल भी वैसा ही अहिंसात्मक दल था, तथापि गवर्नमेण्ट ने उन पुराने कानूनो को सभी सूवो मे—जहाँ वे पहले से जारी नही थे—जारी कर दिया। एक-एक करके पजाव, दिल्ली, वगाल, विहार, युक्तप्रदेश प्रभृति सूवो की सरकारो ने सेवक-दलो को—जो विभिन्न नाम से सूवे-सूवे मे कायम हो रहे थे—गैरकानूनी करार दे दिया। इस तरह खिलाफत-सेवक-दल और कॉंग्रेस-सेवक-दल मे शरीक होना ही जुर्म हो गया। सभाएँ करना भी कठिन हो गया।

कॉंग्रेस-कमिटियो ने निश्चय किया कि हम इन जुल्मी कानूनो को नही मानेगे। वे सेवक-दल सगठित करने के लिए विशेष जोर लगाकर काम करने लगी। इसलिए, जो भी सेवक-दलो मे शरीक होता अथवा उसे सगठित करने का काम करता, वह गिरफ्तार कर लिया जाता। देश के सामने सरकार ने एक नया प्रश्न खडा कर दिया। अव हमारे सामने इस समय खिलाफत-सम्वन्धी, पजाव-सम्वन्धी तथा स्वराज्य-प्राप्ति की भी वात न रही। अव प्रश्न यह हो गया कि हमे अपने देश मे सगठन करने का—आपस मे मिल जुलकर काम करने का—भी हक रहेगा या नही। सरकार ने इस स्वत्व का भी कानूनो के द्वारा हरण कर लिया। अव कॉंग्रेस को सवसे पहले इनके लिए लडना आवश्यक हो गया। गाधीजी ने कहा था कि इस लडाई मे हम सत्याग्रह जो करना चाहते थे वह नही कर रहे है—इस समय हम केवल भाषण-स्वतत्रता और सम्मेलन-स्वतत्रता के लिए ही लड रहे है—यह स्वतत्रता हम केवल कॉंग्रेस-कमिटियो और खिलाफत-कमिटियो के लिए नही चाहते है—हम सभी सस्थाओ और व्यक्तियो के लिए ये स्वत्व चाहते है और इसलिए यह लडाई सवके लिए और सवकी ओर से है। पर सरकार कव सुननेवाली थी! उसने दवाने का इरादा कर लिया था।

अली-वन्धु प्रभृति करांची के मुकदमे के समय से ही गिरफ्तार होकर सजा पा चुके थे। चन्द दिनो मे ही देशवन्धु दास, पडित मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल, लाला लाजपतराय, मौलाना आजाद, श्री राजगोपालाचारी इत्यादि सार्वदेशिक

नेता गिरफ्तार हो गये। हजारो की सख्या मे दूसरे कॉंग्रेसी लोग भी गिरफ्तार कर लिये गये। पर जहॉं-जहॉं युवराज गये, बहिष्कार और भी अधिक सगठित होता गया। उनके कलकत्ते जाने के दिन नजदीक आ रहे थे। लार्ड रीडिंग चिन्तित तो थे ही, उनके लॉ-मेम्बर थे सर तेज बहादुर सप्रू। इस बात का प्रयत्न होने लगा कि किसी तरह से समझौता हो जाय जिसमे कलकत्ते मे युवराज का ठीक स्वागत हो सके। इस प्रयत्न मे मुख्य भाग लेनेवाले थे पडित मदनमोहन मालवीयजी। उन्होने कलकत्ते मे जाकर वहॉं के गवर्नर लार्ड रोनल्डशे से भेट की, देशबन्धु दास से भी मिले, देश के कतिपय कॉंग्रेसी और खिलाफती नेताओं से भी—जो बाहर थे—बातचीत की। वाइसराय लार्ड रीडिंग के पास एक डेपुटेशन ले जाने की बात हुई। देशबन्धु दास कलकत्ता-जेल मे थे। उनसे बातचीत शुरू हुई। कुछ ऐसा मालूम होने लगा कि बात तय हो जायगी।

बिहार मे भी गिरफ्तारियॉं होने लगी। प्रान्तीय कमिटी की बैठक छपरे मे हुई। बैठक के समय ही पुलिस ने वहॉं की कमिटी के दफ्तर की तलाशी ली। जब हम लोग एक सार्वजनिक सभा मे भाग ले रहे थे, तो पुलिस की तैयारियो से मालूम होता था कि हम लोग वही गिरफ्तार कर लिये जायँगे। पर ऐसा हुआ नही। एक आदमी ने सभा मे, पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट की ओर हाथो से इशारा कर-करके, तुलसी-दास की एक चौपाई को जोरो से बार-बार दुहराना शुरू किया, तो भी पुलस ने कुछ नही किया। चौपाई यह थी—"गाधि-सुवन मन चिन्ता व्यापी, कब मरिहहिं ये निसिचर पापी।" सब लोग बैठक और सभा के बाद अपने-अपने स्थान को गये। सभी जिलो मे कॉंग्रेस-कमिटियो की तलाशी होने लगी। लोग गिरफ्तार किये जाने लगे। मै भी पटने आया। हम सब गिरफ्तारी का इन्तजार कर रहे थे। सभी जिलो मे अनेक प्रमुख कॉंग्रेसी गिरफ्तार कर लिये गये। पटने मे मौलवी खुरशैद हसनैन, बाबू जगतनारायणलाल और कृष्णप्रकाश सेन सिंह गिरफ्तार हो गये। और जगहो मे मौलवी महम्मद शफी, बाबू श्रीकृष्ण सिंह, बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसाद वर्मा, बाबू रामनारायण सिंह इत्यादि कई कॉंग्रेसी लोग जेल भेज दिये गये। मै नही गिरफ्तार किया गया। हक साहब, व्रजकिशोर बाबू और मैंने कई साथियो के साथ एक बयान छपवाया जिसमे हमने जनता को सेवक-दल मे शरीक होने के लिए उत्साहित किया, गवर्नमेण्ट की नीति की निन्दा की और अपने को सेवक-दल का मेम्बर बतलाया। पर तो भी हम गिरफ्तार नही किये गये। इस तरह सभी जगहो मे जिला-मजिस्ट्रेटो तथा दूसरे हाकिमो के पास लोग अपने-अपने हस्ताक्षर करके लम्बी-लम्बी फिहरिस्ते भेजने लगे, जिनमे सेवको के नाम रहते। पटने मे मै इसका इन्तजार कर ही रहा था कि मालूम हुआ, सुलह होने जा रही है।

गिरफ्तारियॉं बन्द हो गयी। लार्ड सिंह ने बिहार की गवर्नरी से इस्तीफा दे दिया था। उनकी जगह पर मिस्टर लीमेजरर गवर्नर हो गये थे। बिहार-कौसिल के कुछ प्रमुख व्यक्तियो ने—जिनमे मुख्य मिस्टर हसन इमाम, राय बहादुर द्वारकानाथ

प्रभृति थे—गवर्नर के पास डेपुटेशन लेजाकर कहा कि बिहार मे पूरी शान्ति है, यहाँ सेवक-दल को गैर-कानूनी करार देने से ही ज्यादा गडबडी होने की सम्भावना है, इसलिए गिरफ्तारियाँ बन्द हो जानी चाहिए। गवर्नर ने उनसे कुछ ऐसी बाते की जिनसे मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट की सारी कारंवाई गलत बुनियाद पर हुई है । हम लोगो ने उसका प्रतिवाद प्रकाशित किया। पर उसके प्रकाशित होने के पहले ही गिरफ्तारियाँ बन्द करने का हुक्म उन्होने निकाल दिया। यद्यपि सेवा-दल के विरुद्ध प्रचारित हुक्म रद नही किया गया तथापि जिला-मजिस्ट्रेटो को गिरफ्तारियाँ बन्द करने का हुक्म हो गया।

सर तेज बहादुर सप्रू, लार्ड रीडिंग के पास, वाइसराय की कौन्सिल की बैठक के लिए, कलकत्ते जा रहे थे। वह पटना होते हुए गुजरे। कुछ लोगो से उनकी मुलाकात हुई जिससे यह बात फैल गयी कि अब सुलह हो जायगी। बिहार मे गिरफ्तारियो के रुक जाने से इसकी और भी पुष्टि हुई। उधर गवर्नमेण्ट ने जो बाते देशबन्धु दास से जेलखाने मे की उनसे मालूम पडा कि देशबन्धु दास उन शर्तों पर राजी हो गये थे, जो सरकार की ओर से पेश की गयी थी। महात्माजी से राय पूछी गयी थी और उन्होने कुछ शर्ते पेश की। इस सम्बन्ध की सब बाते उस समय जाहिर नही हुई । इतना ही मालूम हुआ कि गाधीजी ने देशबन्धु दास की यह सिफारिश कि शर्ते मान ली जायँ, नामजूर कर दी है। सब बातो को विस्तार से जानने के लिए श्री कृष्णदास की पुस्तक 'महात्मा गाधी के साथ सात मास' (Seven Months with Mahatma Gandhi) देखना चाहिए।

शर्ते कुछ इस तरह की थी—कॉग्रेस युवराज के बहिष्कार को बन्द कर दे। गवर्नमेण्ट एक कान्फ्रेन्स करेगी जिसमे सब बातो पर विचार किया जायगा। राजनीतिक कैदी छोड दिये जायँगे। पर करॉची के फतवावाले कैदी, जिनमे अलीबन्धु भी थे, नही छोडे जायँगे।

गाधीजी चाहते थे कि कान्फ्रेन्स की तिथि और कार्यक्रम (Terms of reference) निश्चित हो जाना चाहिए और करॉचीवाले कैदियो को भी जरूर छूटना चाहिए। मुमकिन था कि दो-एक दिन का और समय यदि मिलता तो इन विषयो पर भी विचार करके कुछ तय हो जाता। पर उधर युवराज के कलकत्ते पहुँचने का दिन पहुँच गया और बात तय न हो सकी। गवर्नमेण्ट ने देखा कि जब स्वागत के काम मे उसे सफलता नही मिली तो फिर ये सुलह की बाते भी बेकार थी। उसने दमन-नीति को और जोरो से चलाने का निश्चय कर लिया। जो डेपुटेशन गया उसे भी कोरा उत्तर दे दिया। साथ ही, कुछ ऐसी गोलमटोल बाते की जिनसे कुछ लोगो पर, विशेष करके प० मालवीयजी पर, यह असर पडा कि यद्यपि अभी कुछ नही हुआ तथापि राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स करने का प्रयत्न जारी रखना उचित होगा और जो शर्ते वाइसराय ने पेश की है वे ऐसी है जो पूरी की जा सकती है।

देशबन्धु दास महात्माजी के इस निश्चय से बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होने सोचा था कि उस समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का इतना झुकना ही बडी बात थी और इसको

मान लेना चाहिए था। यदि कॉंग्रेस मान लेती तो कॉंग्रेस की शक्ति वढती और काम अधिक जोरो से चलता। गवर्नमेण्ट उसे दबा नही सकती। महात्माजी ने सोचा कि लार्ड रीडिग की इच्छा थी कि किसी प्रकार कलकत्ते जैसे शहर मे युवराज का अच्छा स्वागत हो जाय तो बम्बई आदि की घटनाएँ कुछ महत्त्व नही रखेगी और वह भारत की राजभक्ति की घोषणा कर सकेगे। कान्फ्रेन्स की नीति और तिथि दोनो ही अनिश्चित थी। न मालूम वह कब होगी और क्या करेगी। उस पर भरोसा करना बेकार है और कॉंग्रेस की शक्ति वढने के बदले घटेगी जब देश यह देखेगा कि हम किस तरह से ठग लिये गये। इसके अलावा अली-वन्धुओ को हम जेल मे कैसे छोड सकते है। जिन लोगो ने सब बातो में साथ दिया है, जिनका जनता पर इतना प्रभाव है और जो हमारे साथी है, उनको जेल मे छोड देना उनके साथ अन्याय होगा। इसलिए लार्ड रीडिंग की शर्ते हमे केवल धोखा देगी, कोई काम नही निकलेगा।

इसमे कोई शक नही कि देशवन्धु दास बहुत क्षुब्ध हो गये। जब मीयाद खतम होने पर वह छूटे तो उन्होने अपने एक भाषण मे कहा था कि महात्माजी ने वहुत भारी और भद्दी भूल की थी (Bungled and blundered)। इस विषय पर, तटस्थता के साथ, तो कोई भावी इतिहास-लेखक ही विचार कर सकेगा। मै इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय से आज तक जो अनुभव ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के साथ समझौते के हमे हुए है, वे वहुत कडुवे है। शब्दाडम्बर मे असली वाते अक्सर छिप जाती है। समझौते अँगरेजी भाषा मे ही लिखे जाते है और उनके अर्थ मे अनर्थ की काफी गुंजाइश रहती है। १९३१ के मार्च मे लार्ड इर्विन के साथ जो समझौता हुआ, उसकी शर्तों के पूरा करने मे लार्ड विलिंगडन की गवर्नमेण्ट ने और सिविल-सर्विस ने जो-जो दिक्कते पेश की उन्हे वही जान सकता है, जिसको उस सम्बन्ध मे उनसे बाते अथवा पत्र-व्यवहार करने का मौका मिला हो। महात्माजी अपने अनुभव से जानते थे कि किसी शर्त को गोलमटोल छोड देना अथवा उसमे किसी प्रकार की अनिश्चितता रहने देना अन्त मे घातक होगा। उनको ब्रिटिश सरकार की खुश नीयत पर भी विश्वास नही था। इसलिए उन्होने ऐसी शर्तो को मानना ठीक नही समझा और कॉंग्रेस की निश्चित नीति को तथा अपने साथियो को इन अनिश्चित शर्तो के भरोसे जेलखाने मे छोड़ने से इनकार कर दिया। किसी भी देश को स्वतन्त्रता यदि सस्ती दर से मिल जाय तो उसकी उतनी कदर नही रह जाती। विशेषकर भारतवर्ष को तो इसे वाजिब मूल्य देकर ही लेना चाहिए, क्योकि हम इतने दिनो की दासता के कारण इसका उचित मूल्य आँकना भी भूल-से गये है।

३९—अहमदावाद-कॉंग्रेस और सत्याग्रह

इधर ये वाते चल रही थी, उधर कॉंग्रेस के सालाना जलसे के दिन भी आ गये। देशवन्धु दास ही सभापति मनोनीत हुए थे। वह थे जेलखाने मे। कॉंग्रेस का अधिवेशन अहमदावाद मे होनेवाला था। वहाँ सरदार वल्लभभाई स्वागताध्यक्ष थे। वडे पैमाने पर

तैयारियाँ की गई थीं। जब विहार में गिरफ्तारियाँ बन्द हुई, हम लोग जो बाहर थे, अहमदाबाद के लिए रवाना हो गये।

अहमदाबाद की कांग्रेस बहुत बातों में अनूठी थी। पहले-पहल कांग्रेस से कुर्सियाँ उठा दी गयी। प्रतिनिधियों को फर्श पर बैठाने का प्रबन्ध किया गया था। इस तरह उतने ही स्थान में बहुत अधिक प्रतिनिधि और दर्शक बैठ सकते थे। प्रतिनिधियों का चुनाव पहली बार नागपुर के परिवर्तित नियमों के अनुसार हुआ था। अब हम कह सकते थे कि कांग्रेस चुने हुए प्रतिनिधियों की सभा है। बहुतेरे चुने हुए प्रतिनिधि जेलखानों में थे, जिनमें प्रमुख तो मनोनीत सभापति देशबन्धु चित्तरंजन दास थे ही। बहुतेरे नेता—जिन्होंने साल-भर बड़े परिश्रम, लगन और उत्साह से देश को जगाया और संगठित किया था—इस अधिवेशन में, गवर्नमेण्ट की नीति के कारण, आने से वंचित थे। जो लोग आये थे उनमें और सारे देश में उत्साह उमडा पड रहा था, मानो भरी नदी के किनारों को पार करके जल-प्रवाह चारों ओर फैल रहा है। इतनी गिरफ्तारियों के कारण कहीं भी मुर्दनी नहीं थी। दमन-नीति ने दबाने के बदले लोगों को अधिक उभाड़ने का ही काम किया था। गांधीजी भी आशा और उत्साह से भरे थे। सब लोग सत्याग्रह का स्वप्न देख रहे थे। लोग इस आशा में थे कि कांग्रेस सत्याग्रह का आदेश देगी और आयोजन करेगी। कांग्रेस के साथ एक बड़े महत्त्व की प्रदर्शनी भी हुई थी, जिसमें नवजात—बल्कि पुनर्जीवित—खादी का बड़ा महत्त्व था। प्रतिनिधियों के रहने के लिए कांग्रेस-पडाल के नजदीक ही एक छोटा-मोटा नगर 'खादी नगर' नाम का बस गया था, जिसमें सभी ठहराये गये थे। ये सब बातें कांग्रेस के लिए नयी थीं। पास ही में उसी तरह खिलाफत-कान्फ्रेन्स के लिए पडाल इत्यादि बने थे।

कांग्रेस का अधिवेशन भी निराला ही था। पुरानी प्रथा के विरुद्ध स्वागताध्यक्ष का भाषण बहुत छोटा था। उसमें देश की परिस्थिति और कांग्रेस के कार्यक्रम पर विचार नहीं किया गया था। केवल उपस्थित प्रतिनिधियों का स्वागतमात्र था, और था गुजरात में हुए काम का छोटा-सा विवरण। मनोनीत सभापति गैरहाजिर थे, इसलिए उनके स्थान पर हकीम अजमल खाँ सभापति चुन लिये गये। स्वागताध्यक्ष और सभापति दोनों के ही भाषण राष्ट्रभाषा हिन्दी या उर्दू में ही हुए।

सबसे महत्त्व का प्रश्न सत्याग्रह का था। अधिवेशन में एक ही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसमें परिस्थिति का सिंहावलोकन करते हुए सत्याग्रह का निश्चय प्रकट किया गया। इस काम के लिए गांधीजी सर्वेसर्वा (Dictator) बनाये गये। इस बात का अन्देशा था कि जैसे और नेता गिरफ्तार किये जा चुके हैं, गांधीजी भी गिरफ्तार कर लिये जायेंगे, इसलिए प्रस्ताव में उनको उसी अधिकार के साथ अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का भी अधिकार दिया गया। पर यह साफ कह दिया गया कि कांग्रेस के ध्येय को बदलने का अधिकार उनको नहीं होगा। हाँ, यदि गवर्नमेण्ट से कुछ सुलह हो तो उसकी मंजूरी कांग्रेस से लेनी पडेगी। सेवक-दलों के संगठन पर जोर

दिया गया और जिस प्रतिज्ञा-पत्र पर उनके हस्ताक्षर होनेवाले थे, वह और भी कुछ सख्त बनाया गया।

इस अधिवेशन मे एक विशेष बात यह हुई कि मौलाना हसरत मोहानी ने यह प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य के बदले स्वतत्रता (Independence) बना दिया जाय। गाधीजी ने इसका विरोध किया। अत प्रस्ताव स्वीकृत नही हुआ। उसके बाद प्राय हर अधिवेशन मे इस प्रकार का प्रस्ताव आता रहा। पर गाधीजी के विरोध से तब तक नामजूर होता रहा जब तक यह कई बरसो के बाद गाधीजी के विरोध हटा लेने पर स्वीकृत न हो गया। दूसरी बात यह हुई कि पडित मालवीयजी का गोलमेज-कान्फ्रेन्स-सम्बन्धी प्रस्ताव नामजूर कर दिया गया। पडितजी कलकत्ते से सीधे अहमदाबाद आये थे। वहाँ उनका प्रयत्न असफल हो गया था, पर वह बहुत बडे आशावादी है। उन्होने कांग्रेस को सलाह दी और प्रस्ताव पेश किया कि यदि गोलमेज-कान्फ्रेन्स गवर्नमेण्ट करे तो कांग्रेस उसमे शरीक हो। ऊपर कहा जा चुका है कि इस समय इसका कोई मौका ही नही था। इसलिए कांग्रेस ने उस बात को नही माना। पीछे यह मालूम हुआ कि पडित मोतीलालजी भी किसी प्रकार के समझौते के विरुद्ध थे।

कांग्रेस के बाद सभी लोग अपने-अपने स्थान को रवाना हुए। वही पर मालूम हो गया कि महात्मा गाधी एक जगह सत्याग्रह करेगे और वह स्थान होगा बारडोली। औरो को भी आदेश मिला कि अपने-अपने स्थान पर जनता मे प्रचार और सगठन करे। सबसे अधिक कांग्रेस के कार्यक्रम की पूर्ति के लिए, विशेषकर सेवक-दल के सगठन के लिए, जी-तोड परिश्रम करके प्रयत्न करे।

पडित मालवीयजी और कुछ दूसरे नेताओ ने निश्चय किया कि एक ऐसी कान्फ्रेन्स की जाय, जिसमे कांग्रेस और गवर्नमेण्ट के बीच का झगडा मिटाने का प्रयत्न किया जाय। उन्होने अहमदाबाद-कांग्रेस समाप्त होते ही इसकी घोषणा की। देश के मुख्य-मुख्य लोग, जिनमे मुख्य-मुख्य कांग्रेसी और खिलाफती भी शामिल थे, बम्बई मे आमन्त्रित हुए। यह सभा जनवरी के मध्य मे बम्बई मे हुई। सर शकर नायर इसके सभापति हुए। मै भी, और कांग्रेसियो की तरह, वहां गया। गाधीजी ही हमारी ओर से बोलनेवाले थे। हम लोगो ने निश्चय कर लिया था कि सबकी ओर से जो कुछ कहना होगा वही कहेगे। महात्माजी ने साफ-साफ बता दिया कि हम कांग्रेसियो को इस गोलमेज-कान्फ्रेन्स से, जिसके आयोजन का प्रस्ताव गवर्नमेण्ट मे किया जा रहा था, कोई आशा नही है, तो भी अगर वह हो, और गाधीजी बुलाये जायँ, तो वह बिना शर्त के उसमे शरीक होगे, पर व्यक्तिगत हैसियत से। हाँ, यदि कांग्रेस को आमन्त्रित किया जाय तो वह तभी शरीक हो सकेगे जब कान्फ्रेन्स का कार्यक्रम और तिथि निश्चित कर ली जाय। साथ ही, वह घोषणा वापस कर ली जाय, जिसके द्वारा सेवक-दल गैर-कानूनी करार दिये गये है तथा जिसे न मानने के कारण जिन लोगो को सजा दी गई है वे छोड दिये जायँ। फतवावाले कैदियो को जरूर छोड़ना चाहिए। खिलाफत, पजाब और स्वराज-

वाली कांग्रेस की माँगे जाहिर थी, कांग्रेस उन्ही को वहाँ पेश करके उन्हे मनवाने का प्रयत्न करेगी। अपनी ओर से हम सत्याग्रह स्थगित कर देगे।

कान्फ्रेन्स करनेवालो की तरफ से एक प्रस्ताव पेश किया गया, पर गाधीजी को वह मजूर न हुआ। इस कारण उस पर विचार करके उसे रद-बदल कर फिर उपस्थित करने के लिए एक उपसमिति बना दी गयी। उस दिन जो लोग उपस्थित थे उनके भाषण हुए। मेरे दिल पर एक भाषण का बहुत असर पडा था। वह था सर हरमुसजी वाडिया का भाषण। यह थे एक वयोवृद्ध बडे व्यापारी—लिबरल-दल के विचार रखनेवाले पारसी। इन्होने गवर्नमेण्ट की सारी नीति की तीव्र शब्दो मे निन्दा की। यह यद्यपि सत्याग्रह के विरोधी थे, तथापि इन्होने साफ-साफ बता दिया कि इस अवस्था की सारी जवाबदेही सरकार पर है।

दूसरे दिन उपसमिति की बैठक हुई। उसमे गाधीजी शरीक रहे। सबकी राय से एक प्रस्ताव तैयार हुआ। पर सर शकर नायर बहुत बिगड गये। सेपहर को वह कान्फ्रेन्स से चले गये। उनके साथ कोई दूसरा नही गया। तब कान्फ्रेन्स के सभापति सर विश्वेश्वरैया हुए। उन्होने उस प्रस्ताव को मजूर कर लिया। गाधीजी ने फिर अपनी वही बाते दुहरा दी। यह भी उन्होने कह दिया कि कांग्रेस की वर्किंग-कमिटी द्वारा वह ३१ जनवरी तक के लिए सत्याग्रह स्थगित करा देने का प्रयत्न करेगे।

बम्बई मे वर्किंग-कमिटी के लोग प्राय सभी थे ही। बैठक मे तय हुआ कि ३१ जनवरी तक और यदि गोलमेज कान्फ्रेन्स की बात तथा प्रस्ताव की दूसरी शर्ते गवर्नमेण्ट ने मजूर न कर ली, तो जब तक उसका कुछ फैसला न हो जाय तब तक सामूहिक सत्याग्रह बन्द रहेगा और व्यक्तिगत सत्याग्रह केवल बचाव के लिए ही जहाँ मजबूरी होगी वही किया जायगा, पर सेवक-दल के सगठन का काम जारी रहेगा। कान्फ्रेन्स के प्रस्ताव को तार द्वारा कान्फ्रेन्स-कमिटी ने वाइसराय के पास भेजा। एक लम्बे तार द्वारा यह भी सूचित किया गया कि कलकत्तेवाले डेपुटेशन के उत्तर मे जो शर्ते लार्ड रीडिंग ने दी थी, प्रायः वे सभी मजूर कर ली गयी है और अब गवर्नमेण्ट को गोलमेज-कान्फ्रेन्स मजूर कर लेनी चाहिए। उधर से नामजूरी का जवाब आ गया। इस पर फिर तार द्वारा लिखापढी की जा रही थी कि ३१ जनवरी का दिन पहुँच गया। अब कांग्रेस के लिए कुछ निश्चय करना अनिवार्य हो गया।

कांग्रेस से लौटने के बाद मैंने अपने सूबे मे दौरा शुरू किया। यह ३१ जनवरी वाली अवधि बीतने के बाद, बारडोली की एक सार्वजनिक सभा मे, जिसमे महात्माजी और हकीम अजमल खाँ शरीक थे, बारडोली मे सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। यह बात घोषित भी कर दी गयी। श्री बिट्ठल भाई पटेल और सरदार वल्लभ भाई अब वही रहने लगे थे। महात्माजी भी पहुँच ही गये थे। वहाँ जनता की सभा मे महात्माजी ने सत्याग्रह के अर्थ को और उसमे होनेवाले कष्टो को लोगो को बताया। उनसे शपथ भी ली कि वे सत्य और अहिंसा पर डटे रहकर सारे देश के लिए स्वतत्रता प्राप्त करने मे अपने को भस्मीभूत कर देगे। सूरत मे

वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई। उसने वहाँ सत्याग्रह करने की मजूरी दे दी। इसके बाद ही गाधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखा जिसमे उन्होने सत्याग्रह के निश्चय की सूचना देते हुए सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए तिथि भी ठीक कर दी।

४०—चौरीचौरा, सत्याग्रह स्थगित और गांधीजी की गिरफ्तारी

मै सूबे के दौरे मे, मुजफ्फरपुर-जिले के गाँवो मे घूमता-घूमता, 'पुपरी' गाँव की सभा मे भाषण कर रहा था। उसी समय तार मिला कि वर्किंग-कमिटी की बैठक बारडोली मे होनेवाली है और मुझे वहाँ तुरत पहुँचना चाहिए। मै वहाँ से तुरत रवाना हुआ। पहली गाडी जो मिली उससे पटना होता हुआ वहाँ चला गया। इस बीच मे एक बहुत दु खद और महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी। गोरखपुर-जिले के 'चौरी-चौरा' गाँव मे जनता और पुलिस मे मुठभेड़ हो गयी। जनता ने आवेश मे आकर पुलिस-थाने को जला दिया। कितने ही पुलिस-कर्मचारियो को भी मार डाला।

महात्माजी के दिल पर इसका बहुत गहरा असर पडा। उन्होने देख लिया कि देश ने अभी तक अहिंसा के तत्त्व और महत्त्व को नही समझा है, इसलिए यदि सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो इस प्रकार की घटनाएँ अनेक स्थानो मे होने लगेगी, इसके फलस्वरूप सरकार की ओर से भी दमन-नीति जोरो से बरती जायगी और जनता उसको वर्दाश्त नही कर सकेगी, इसलिए यद्यपि वाइसराय को सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना दे दी गयी है तथापि सत्याग्रह को स्थगित ही कर देना चाहिए।

देश की नाडी पहचानकर महात्माजी इस निश्चय पर पहुँच गये। इसी पर विचार करने के लिए उन्होने वर्किंग-कमिटी की बैठक की।

यद्यपि मै जल्द से जल्द रवाना हुआ था तथापि जब मै बारडोली स्टेशन पर पहुँचा तो उसी ट्रेन से वापसी के लिए रवाना होते हुए पडित मदनमोहन मालवीयजी से वही भेट हो गयी। उन्होने बता दिया कि वर्किंग-कमिटी का काम समाप्त हो चुका है और सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय कर लिया गया है। जब मैने यह सुना तो मेरे दिल पर भी एक धक्का-सा लगा। मै वहाँ पहुँचा जहाँ गाधीजी ठहरे थे। उन्होने जाते ही पूछा कि निश्चय सुन लिया है न? मैने कहा, हाँ। इस पर उन्होने पूछा कि इस विषय मे तुम्हारी राय क्या है? मै अभी कुछ उत्तर नही दे सका था कि वह समझ गये, मेरे दिल मे कुछ सन्देह मालूम हो रहा है। उन्होने उसी क्षण सब बाते समझा दी। मै सुनता गया, पर अभी किसी निश्चय पर नही पहुँचा था कि अन्त मे उन्होने कहा, जो कुछ मैने कहा है उस पर विचार करो।

सध्या हो गयी थी। मैने रात को सब बातो पर और सब पहलुओ पर, महात्माजी की बताई बातो की रोशनी मे, विचार किया। मेरी भी दृढ राय हो गयी कि निश्चय ठीक ही हुआ है। दूसरे दिन गाधीजी ने फिर पूछा, क्या विचार किया? मैने उत्तर दे दिया कि मै सब बाते समझ गया और निश्चय ठीक ही हुआ है। इससे वह कुछ प्रसन्न मालूम हुए।

इस निश्चय के प्रकाशित होते ही सारे देश मे एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। मामूली कार्यकर्ताओ की बात कौन कहे, बडे-बडे धुरधर नेता—पडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय प्रभृति जो सभी जेल मे थे—इससे बहुत असन्तुष्ट हुए। अखबारो मे भी विरोध की आवाज उठी। हाँ, हकीम अजमल खाँ और डाक्टर अनसारी भी बारडोली की उस बैठक मे नही पहुँच सके थे। इन लोगो ने सत्याग्रह स्थगित करने की राय वहाँ भेज दी थी। साधारण जनता मे एक प्रकार की मुर्दनी-सी दिखाई देने लगी, मानो दौडता हुआ मनुष्य ठेस लग जाने से गिर पडा हो।

बारडोली मे ही गाधीजी ने पहले-पहल उस रचनात्मक कार्यक्रम को निश्चित और परिष्कृत रूप दिया, जो आज तक कांग्रेस का मुख्य कार्यक्रम है। वह प्रस्ताव इतने महत्त्व का है कि उसका उद्धरण आवश्यक है। नीचे उसका हिन्दी-रूपान्तर दिया जाता है—

"चूँकि गोरखपुर (चौरीचौरा) का भयानक काण्ड इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देश की जनता अब तक यह बात अच्छी तरह नही समझ सकी है कि 'अहिंसा' भद्रअवज्ञा या सिविल नाफरमानी का एक जरूरी क्रियात्मक और प्रमुख अश है, और चूँकि स्वयसेवको की भर्ती मे बिना छानबीन किये ही—और कांग्रेस की बतायी हुई हिदायतो के खिलाफ भी—लोग ले लिये गये है, जिससे लोगों मे सत्याग्रह के मूल तत्त्व की समझ की कमी जाहिर होती है, और चूँकि इस कार्यकारिणी कमिटी की राय मे राष्ट्रीयता तक पहुँचने मे देरी होने का एक प्रधान कारण कांग्रेस के शासन-प्रबन्ध को व्यवहार मे लाने मे अपूर्णता और दुर्बलता ही है; इसलिए कांग्रेस के अन्दरूनी सगठन को सुदृढ बनाने के खयाल से यह वर्किंग-कमिटी कांग्रेस के सभी सगठित अगो को सलाह देती है कि वे नीचे लिखे कार्यक्रम को अजाम देने मे सलग्न हो जायँ—

(१) कम से कम एक करोड कांग्रेस के मेम्बरो की भर्ती। चूँकि शान्ति (अहिंसा और वैधता) और सत्य कांग्रेस की नीति के मूल तत्त्व या सार है, इसलिए किसी ऐसे व्यक्ति की भर्ती न की जावे जो स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा को अनिवार्य न समझता हो। इस खयाल से कांग्रेस की नीति को खूब अच्छी तरह हर ऐसे शख्स या व्यक्ति को समझा देना चाहिए जिससे कांग्रेस का मेम्बर बनने का अनुरोध किया जाय। मेम्बर बनानेवाले कार्यकर्ता को खयाल रखना चाहिए कि सालाना चन्दा न अदा करनेवाला कांग्रेस का योग्य मेम्बर नही समझा जायगा। इसलिए पुराने मेम्बरो को फिर से नये साल के लिए अपना-अपना नाम दर्ज करा लेना चाहिए।

(२) चर्खे को लोकप्रिय बनाना और हाथ के कते हुए सूत से हाथ की बुनी हुई खादी तैयार करने का सगठन (यानी प्रबन्ध) करना। इस कार्य की सफलता के लिए कुल कार्यकर्ताओ तथा कांग्रेस के पदाधिकारियों को खद्दर की ही पोशाक

पहननी चाहिए और यह भी अच्छा रहेगा कि दूसरो के हौसले बढाने के लिए उन्हे खुद चर्खे पर सूत कातना सीखना चाहिए।

(३) नेशनल स्कूल यानी राष्ट्रीय विद्यालय कायम करना। गवर्नमेण्ट स्कूलो पर धरना नही देना चाहिए। राष्ट्रीय स्कूलो की सख्या उत्तरोत्तर बढाने मे इन स्कूलों की अच्छी पढाई पर ही भरोसा करना चाहिए।

(४) गिरी हुई दलित जातियो के रहन-सहन को बेहतर बनाने के लिए तथा उनकी सामाजिक, मानसिक एव नैतिक हालत को सुधारने के लिए उनका सगठन करना। उनको समझा-बुझाकर उनके बच्चों को स्कूलो मे पढने के लिए भेजना और जो सुविधाएँ सबको मिलती है वे इन लोगों को भी दिलवाना। जहाँ कही अछूत जातियो से लोग ज्यादातर अलग रहते है और छूत-छात का भाव जबरदस्त है वहाँ पर इनके बालकों के लिए कांग्रेस के पैसे से अलग स्कूल-पाठशालाएँ चलायी जानी चाहिए और लोगो को समझा-बुझाकर अछूतों को भी सार्वजनिक कुँओ से पानी भरने देने का प्रबन्ध कराना चाहिए।

(५) मादकद्रव्य-निषेध के लिए शराबियो की बस्ती मे घर-घर जाकर, उन लोगों को समझा-बुझाकर, नशाखोरी बन्द करने का सगठित कार्य करना। इस कार्य के लिए धरना (पिकेटिग) से काम न लिया जाय, बल्कि समझाने-बुझाने से, आरजू-मिन्नत से ही काम निकालना चाहिए।

(६) आपस के झगड़ो और मुकदमो को खानगी तौर पर ही तय-तसफिया करा देने की गरज से शहरो और गाँवो मे पचायते कायम करना। पचायती फैसलो को लोगो से मनवाने की शक्ति पचायत की सचाई और ईमानदारी, इनसाफ और लोक-प्रियता से ही पैदा होनी चाहिए। किसी तरह की जोर-जबरदस्ती की परछाई भी न पडने पावे। इसलिए ऐसा न होना चाहिए कि जो कोई पचायती फैसला न माने वह समाज या जाति से खारिज किया जाय।

(७) हर जाति या वर्ग के लोगो मे मेलजोल बढाने और आपस के ऐसे मेल-मिलाप की आवश्यकता पर सबका ध्यान खीचने की गरज से मेल-मुआफकत का बढाना असहयोग-आन्दोलन का एक ध्येय है। ऐसे सामाजिक सेवा-विभाग का सगठन करना, जो बगैर किसी भेद-भाव के, सबकी सेवा, रोग-शोक या आपत्ति-विपत्ति-काल मे, एक तरह से, एक भाव से करे। असहयोगी को, अपनी नीति पर दृढता से कायम रहते हुए भी, बीमारी मे या किसी विपद् के समय, अँगरेजो या हिन्दुस्तानियों की, यानी सबकी, बराबर सेवा करना, अपनी बडाई या सौभाग्य की बात समझना चाहिए।

(८) तिलक-स्वराज्य-फंड को इकट्ठा करने का काम जारी रखना और हर-एक कांग्रेसी से या कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवालो से माँग पेश करना कि वे अपनी सन् १९२१ की आमदनी का $\frac{१}{१००}$ (सौ हिस्से मे एक हिस्सा) तिलक-स्वराज्य-कोष

में दान कर दे। हर-एक सूबा-कॉंग्रेस-कमिटी अपने इस जमा किये हुए धन का ¼ (चौथाई हिस्सा) हर महीने अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी के पास भेज दिया करे।

(९) वर्किंग कमिटी का यह प्रस्ताव, अगर जरूरी समझा जायगा तो, सशोधन (तरमीम) के लिए अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की अगली बैठक मे पेश किया जायगा।

(१०) वर्किंग कमिटी की राय मे किसी ऐसे प्रबन्ध की जरूरत मालूम पडती है, जिसके जरिये सरकारी नौकरियों को छोडकर आये हुए लोगो के लिए कुछ रोजगार-धन्धा दिया जा सके। इस गरज से यह कमिटी सर्वश्री मियाँ मुहम्मद हाजीजान, मुहम्मद छोट्टानी, सेठ जमनालाल बजाज तथा बी० जे० पटेल को मुकर्रर करती है कि ये लोग एक योजना उस तरह की तैयार करके आगामी अखिल भारतीय कमिटी की विशेष बैठक मे विचारार्थ पेश करे।

बारडोली में ही यह निश्चय कर लिया गया कि अखिल भारतीय कमिटी की बैठक शीघ्र ही की जाय। तिथि निश्चित करके दिल्ली मे बैठक की घोषणा कर दी गयी। इसी बैठक में बारडोली के निश्चय पर विचार होने को था।

गाधीजी ने पाँच दिनों का उपवास किया। वहाँ की जनता की सभा मे उन्होने अपने निश्चय को बतलाया। मै भी उस सभा से उपस्थित था। लोगो ने बात तो मान ली, पर यहाँ भी निराशा मालूम होती थी।

दिल्ली में, वर्किंग कमिटी की बैठक मे, जो अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के पहले हुई, लालाजी और पडित मोतीलालजी तथा औरों की रोषपूर्ण सम्मतियाँ मिली—'यह निश्चय देश के लिए बडा हानिकर हुआ है, इससे केवल जनता हतोत्साह ही नही होगी बल्कि देश की प्रतिष्ठा को भी ठेस लगेगी।' कुछ नेताओ के पत्र भी, इसी आशय के, गाधीजी के पास, जेल से आ गये थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो सभी नेता, यदि वे बाहर होते तो, गाधीजी को पदच्युत कर देते और सत्याग्रह जारी करते। किन्तु गाधीजी टस से मस नही हुए। उन्होंने साफ-साफ बता दिया कि जो लोग जेल में बन्द है उनको परिस्थिति का पूरा ज्ञान नही हो सकता, इसलिए उनको राय देने का कोई अधिकार नही है, और यदि वे राय देते है तो उसका बहुत वजन नही हो सकता। वर्किंग कमिटी मे ही मैने देखा कि गाधीजी जब निश्चय पर पहुँच जाते है तो किस प्रकार अटल रह सकते है—और अटल रह सकते है तीव्र से तीव्र विरोध के बावजूद!

हकीम अजमल खाँ कॉंग्रेस के सभापति थ। अखिल भारतीय कमिटी का जलसा शुरू हुआ। गाधीजी ने बारडोली के निश्चय के समर्थन और मजूरी का प्रस्ताव पेश किया। इस पर डाक्टर मुंजे ने उसके सुधार (सशोधन) के रूप में एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमे कहा गया कि एक कमिटी बनायी जाय जो असहयोग के कार्यक्रम और उसके अनुसार हर काम की जाँच करे तथा देश को उचित परामर्श दे। इस

प्रस्ताव ने, और इसके समर्थन मे किये गये उनके भाषण ने, गाधीजी पर अविश्वास (No Confidence या Censure) का रूप धारण कर लिया। गरमागरम बहस चलने लगी। इसी समय हकीम साहब की तबीयत अचानक खराब हो गयी। वह सभा में बैठने से मजबूर हो गये। उन्होने गाधीजी को अपने स्थान पर सभापति बना दिया। यह कहकर वह चले गये कि दर्द कम होते ही मै हाजिर हो जाऊँगा, तब तक महात्माजी सभा का काम चलावेगे। हम लोगों के देखने मे यह ठीक नही मालूम होता था कि जिस पर अविश्वास का प्रस्ताव पेश है और उस पर बहस हो रही है, वह सभापति के पद पर बैठा रहे। पर गाधीजी ने नि.सकोच भाव से काम आरम्भ कर दिया। उनके चेहरे-मोहरे से कुछ भी सकोच नही झलका। हमने सोच लिया कि वह मानते है कि सभापति का काम इतना ही है कि सभी सदस्यो का वह विश्वास-भाजन बना रहे और अपनी किसी कारंवाई से प्रतिपक्षी के दिल मे यह भाव न आने दे कि वह अपने सहायको का पक्षपाती है। गाधीजी ने वहाँ नीति भी अजीब बरती। जब कोई बोलने उठता तो उससे पूछते कि आप डाक्टर मुंजे के पक्ष मे बोलेंगे अथवा विरोध में। यदि वह कहता कि विरोध मे, तो कहते कि आप ठहरें। यदि वह कहता कि पक्ष में, तो उसे कहते कि आपको जो कहना हो आप कहे। इस प्रकार कितने ही भाषण डाक्टर मुंजे के पक्ष मे हुए और एक भी भाषण उन्होने अपने पक्ष मे होने नही दिया। हम लोग कुछ शकित भी होने लगे। सोचने लगे कि गाधीजी इस प्रकार क्यों अपने पक्ष को कुछ कहने का मौका ही नही दे रहे है। अन्त मे उन्होने प्रस्ताव को सम्मति के लिए सभा के सामने पेश कर दिया। हाथ उठने पर मालूम हुआ कि प्रायः उतने ही हाथ डाक्टर मुंजे के पक्ष मे उठे जितने भाषण उनके पक्ष मे हुए थे! अविश्वास का प्रस्ताव बड़े बहुमत से नामजूर हो गया। बारडोली का निश्चय निम्नलिखित प्रकार से पेश किया गया।

(१) अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की यह बैठक बारडोली के—११ और १२ फरवरी १९२२ की वर्किंग कमिटी की बैठक मे पास हुए—रचनात्मक कार्यक्रम के प्रस्ताव को पूर्ण विचार के बाद मजूर करती है और साथ ही साथ यह निश्चय करती है कि व्यक्तिगत या शख्सी भद्र अवज्ञा यानी सिविल नाफरमानी, चाहे वह रक्षार्थ हो चाहे आक्रमणकारी या हमलेआवर, खास-खास जगहों में या खास-खास कानूनो के बाबत, मुकामी सूबा कांग्रेस-कमिटी से इजाजत लेकर, की जा सकती है। पर खयाल रहे कि यह उसी हालत मे की जा सकती है जब कि अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी या उसकी वर्किंग कमिटी की बताई हुई, सिविल नाफरमानी जारी करने के पहले की, कुल शर्तें ठीक-ठीक पूरी हो चुकी हो।

(२) कई जगहों से रिपोर्ट आई है कि शराब की दूकानो पर जिस तरह से धरना या पिकेटिंग की जाती है, उसी तरह कपड़े की दूकानो पर भी पिकेटिंग की जरूरत है। इसलिए यह अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी ऐसी पिकेटिंग की इजाजत

कपड़े की दूकानों के लिए भी देती है, जो नेकनीयती से और वारडोली के प्रस्ताव मे वतलाये हुए तरीको से तथा उन्ही शर्तों के साथ की जायगी।

(३) अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी अपनी यह राय जाहिर कर देना चाहती है कि वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव के यह मानी नही है कि वह अपने पहले के असहयोग या सामूहिक भद्र अवज्ञा के प्रोग्राम को छोड़ देती है। उसका मतलव सिर्फ यह है कि वारडोली-प्रस्ताव मे वतलाये हुए रचनात्मक कार्यक्रम पर कार्यकर्त्ताओ के पूरे दिल से लग जाने से और उसे सफल वनाने से ही सामूहिक भद्र अवज्ञा के लिए आवश्यक या अनुकूल वायु-मण्डल तैयार किया जा सकता है। अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की यह तजवीज है कि जनता को ऐसी ही हालत में सिविल नाफरमानी वा भद्र अवज्ञा को काम मे लाने का पूरा हक और कर्तव्य है जव कि शासनकर्ता व अधिकारीवर्ग जनता के निश्चय किये हुए विचारो का विरोध करने पर उतारू हो जायँ।

नोट—शख्सी या व्यक्तिगत अवज्ञा या नाफरमानी उसे कहते है जो एक शख्स या एक निश्चित सख्या के (महदूद) लोगो के दल या जमायत के जरिये कानून के खिलाफ या गवर्नमेण्ट के हुक्म को न मानकर किया जाय। इसलिए ऐसी मीटिंग या सभा को, जिसमें टिकट के जरिये ही लोग जाने पाते हो और जिसमे कोई अनधिकारी दर्शक नही जा सकता है, यदि सरकार ने करने से मना कर दिया हो, कर लेना व्यक्तिगत अवज्ञा या शख्सी नाफरमानी है। और अगर सभा आम जनता की है, जिसमें चाहे जो कोई विना रोक-टोक शरीक हो, तो वैसी सभा यदि सरकार की आज्ञा के विरुद्ध की जाय, तो वह सामूहिक भद्र अवज्ञा (Mass Civil Disobedience) है। अवज्ञा या नाफरमानी को वचाव के लिए वा रक्षार्थ उस हालत मे कहेगे जव मीटिंग या सभा किसी कार्यक्रम को अजाम देने के लिए की गयी हो। आघातक या हमलेआवर उस हालत में कहेगे जव सभा किसी काम के करने के लिए नही; वल्कि गवर्नमेण्ट की मनाही की आज्ञा को तोडने के लिए की जाय तथा गिरफ्तारी या जेल या दूसरे प्रकार के दमन को अपने ऊपर लाने के लिए करे।

यह कमिटी वारडोली के निश्चय को मजूर करने के साथ-साथ केवल सामूहिक भद्र अवज्ञा को छोड लोगों को सभी जरूरी कार्यक्रम पूरा करने की हिदायत करती है, जो इस समय स्थगित हो गये है।

गाधीजी ने प्रस्ताव पेश करने के समय ही ऐसा भाषण कर दिया था कि उसका असर लोग नही मिटा सके। सत्याग्रह स्थगित रह गया।

इस वैठक के सम्वन्ध में दो वातें, यद्यपि वे छोटी है, कह देना वेजा न होगा। दिल्ली की वैठक का दिन निश्चित करने के समय पचाग नही देखा गया था। इत्तिफाक से जो दिन मुकर्रर किया गया उसी दिन फाल्गुन की शिवरात्रि का पर्व था। हिन्दुओं की ओर से तार पहुँचने लगे कि दिन वदल दिया जाय। पर गाधीजी इस पर राजी नहीं हुए। मैंने उनसे कहा कि शिवरात्रि वडा भारी पर्व माना जाता है—वहुतेरे लोग उपवास और पूजा इत्यादि करते है, इसलिए दिन क्यो न वदल दिया

जाय। इस पर उन्होंने कहा, "उपवास और बैठक मे कोई विरोध नही हो सकता; क्योकि लोग उपवास करके भी सभा मे शरीक हो सकते है, और यह कहाँ किस शास्त्र मे लिखा है कि व्रत के दिन कोई अच्छा काम नही करना चाहिए? देशसेवा का यह एक महत्त्वपूर्ण काम है। यदि हिन्दू उसमे उस धार्मिक प्रवृत्ति के साथ शरीक होगे, जो ऐसे पवित्र दिन मे उनसे अपेक्षित है, तो इससे बढकर दूसरी बात और क्या बेहतर हो सकती है?" तिथि उन्होने नही बदली।

एसोसिएटेड प्रेस के सस्थापको मे एक सज्जन श्री केशवचन्द्र राय (के० सी० राय) थे, जिनको मै कलकत्ते मे पढने के समय से ही जानता था। वह उन दिनो कलकत्ते के एक अँगरेजी पत्र 'डेली न्यूज' के सम्पादकीय विभाग मे काम किया करते थे। उन दिनों वह बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति नही हुए थे। इसलिए मुझ-जैसे एक विद्यार्थी के साथ भी उनकी जान-पहचान अच्छी तरह हो गयी थी। एसोसिएटेड प्रेस की स्थापना के बाद अखबारी दुनिया मे उनका बडा नाम हो गया था। उच्च से उच्च कोटि के लोगो तक वह आसानी से पहुँच पाते थे। सरकारी हलको मे उनकी धाक और पहुँच तो थी ही। उनसे दिल्ली मे मुलाकात हो गयी। बहुत प्रेम से उन्होने मुझसे एकान्त मे कहा कि अब तुम लागो के साथ सरकार सख्ती बरतेगी—वह जान गयी है कि तुम लोग अब कमजोर हो गये हो—तुम लोगो मे आपस मे फूट आ गयी है—एकमत नही रहा, इसलिए अब गाधीजी भी शीघ्र गिरफ्तार कर लिये जायँगे। उनके कहने से मुझे कुछ ऐसा नही मालूम हुआ कि ये बाते उन्होने किसी मिली हुई खबर के आधार पर कही है। मैंने समझा कि परिस्थिति को देखते हुए यह उनका अनुमान-मात्र ही था। जो हो, दिल्ली की बैठक के बाद हम लोग अपने-अपने स्थान पर पहुँचे ही थे कि खबर आ गयी—गाधीजी गिरफ्तार करके साबरमती जेल मे ले जाये गये है। मै तुरत साबरमती के लिए रवाना हो गया। वहाँ जिस दिन मुकदमा दौरा-जज के यहाँ पेश होनेवाला था, मै पहुँच गया।

कोर्ट के दृश्यों को मै कभी भूल नही सकता। गाधीजी का बयान तो एक तारीखी बयान है ही। जज का तौर-तरीका भी उस महत्त्वपूर्ण समय के अनुकूल ही था। गाधीजी पर 'यगइण्डिया' मे लिखे गये लेखों के सम्बन्ध मे अभियोग था। गाधीजी ने अभियोग को तो अपने बयान मे ही स्वीकार कर लिया था। यह भी कह दिया था कि यदि वह आजाद रहेगे तो वैसे ही आग के साथ खेलते रहेगे जैसे अब तक खेलते रहे है। जज के लिए भी दो रास्तो मे से एक को स्वीकार करने के सिवा तीसरा रास्ता नही हो सकता। यदि वह गाधीजी के विचारो से सहमत हो तो उनको इस्तीफा दे देना चाहिए, और यदि सहमत न हों तो जितनी सख्त सजा वह दे सकते हो उनको देना चाहिए, क्योकि जो कुछ गाधीजी ने किया है वह जान बूझकर किया है और मौका मिलने पर फिर करेगे।

जज ने एक छोटे-से भाषण मे, जिससे भी आवेश टपक रहा था, कहा कि अभियोग स्वीकार कर लेने से उनका काम एक प्रकार से तो हल्का हो गया है, पर

दूसरे प्रकार से जो काम बाकी रह गया है अर्थात् सजा देने का, वह काम बहुत ही कठिन है। गांधीजी को उनके असख्य देशवासी पूज्य मानते है। जज को किसी ऐसे पुरुष के मुकदमे के देखने-सुनने का मौका पहले कभी नही मिला है और शायद मिलेगा भी नही। जज को केवल कानून के अनुसार काम करने का ही अधिकार है। कानून एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य मे, व्यक्तित्व के कारण, भेद नही करता। इस-लिए उसे सजा तो देनी पडेगी ही। गाधीजी का स्थान लोकमान्य तिलक-जैसा ही है। जो सजा उनको ऐसी ही परिस्थिति मे मिली थी, वही अर्थात् छ साल कैद की सजा, गाधीजी को भी देना अनुचित न होगा।

यही हुक्म जज ने सुना दिया। गाधीजी ने उनको इस बात के लिए धन्य-वाद दिया कि उन्होने उनको लोकमान्य-तिलक के समकक्ष माना। जज के उठ जाने के बाद, हम जितने थे सब, एक-एक करके, गाधीजी से मिलकर, प्रणाम करके बिदा हुए। वह दृश्य अत्यत कारुणिक था। मै दिल का कमजोर हूँ। बच्चों का रोना भी मै बर्दाश्त नही कर सकता। करुणा के मौके पर मैं अपने को रोक नही सकता। मै फूटफूटकर रोने लगा। श्री केलकर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होने मुझे रोते हुए देखकर बहुत समझाया और कहा कि जब लोकमान्य को दण्ड मिला था, तो उन लोगो की भी वही दशा हुई थी। कुछ देर के बाद मै भी सँभल गया और गाधीजी से बिदा हुआ।

उसी मुकदमे में श्री शकरलाल बैंकर भी अभियुक्त थे। वही 'यगइण्डिया' के प्रिण्टर और प्रकाशक थे। उनको भी एक साल की सजा मिली। उनका सौभाग्य था कि वह गांधीजी के साथ ही सजा पाकर जेल गये और अपनी मीयाद पूरी होने तक उनके साथ ही रहे।

४१—रचनात्मक काम का प्रारंभ और भद्र अवज्ञा कमिटी की नियुक्ति

जेल जाते समय महात्मा गाधी ने आदेश दिया था कि कांग्रेस को रचनात्मक काम मे लग जाना चाहिए; उसी के द्वारा देश सत्याग्रह के लिए तैयार हो सकेगा। इस रचनात्मक कार्यक्रम में खादी-प्रचार द्वारा विदेशीवस्त्र-बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की स्थापना इत्यादि मुख्य थे। देश को सत्याग्रह के लिए तैयार न पाकर ही उन्होने बारडोली मे सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। इससे स्पष्ट था कि अभी वह सत्याग्रह के लिए अनुमति देना नही चाहते थे। उनके जेल चले जाने के बाद देश में एक प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ता आ गयी। उत्साही और आवेश मे आये हुए लोग चाहते थे कि सत्याग्रह आरम्भ कर ही दिया जाय। कुछ लोग यह कहने को भी तैयार हो गये थे कि गाधीजी ने सत्याग्रह रोक कर देश का सत्यानाश कर दिया और अब यह सारा आन्दोलन खतम हो गया। कुछ लोग सोचने लगे कि जब सत्याग्रह नही करना है तो कौन्सिलों का बहिष्कार बेकार है—वहाँ जाने में जो प्रतिबन्ध है उसे हटा देना चाहिए। कुछ लोग गाधीजी के बताये

रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दे रहे थे और उसके लिए जोरो से काम करना चाहते थे।

जो फूट का बीजवपन दिसम्बर के महीने मे लार्ड रीडिंग के साथ समझौता न करने के कारण हुआ था, और जो बारडोली-निश्चय के समय काफी अकुरित हो चुका था, वह तीव्र गति से पल्लवित होता गया। बडे-बडे नेता भी जेल मे थे। बारडोली और दिल्ली के निश्चय ऊपर दिये गये है। उनसे स्पष्ट है कि सामूहिक सत्याग्रह तो स्थगित कर दिया गया था, आक्रमणकारी व्यक्तिगत सत्याग्रह भी बन्द ही था; पर बचाव के लिए सत्याग्रह की इजाजत थी।

कुछ लोग, विशेष करके महाराष्ट्र के कुछ लोग, शुरू से ही असहयोग के और सत्याग्रह के कार्यक्रम से असन्तुष्ट थे। देश की परिस्थिति के प्रभाव से जो निश्चय काँग्रेस ने कर दिया उसके अनुसार वे काम तो अवश्य करने लगे थे, पर उनका दिल कभी इस सारे कार्यक्रम में नही लगा। इसलिए जब-जब उनको मौका मिलता, वे इसके किसी न किसी अश के विरुद्ध आवाज उठाते। १९२१ की जुलाई-वाली अखिल भारतीय कमिटी के बम्बई-अधिवेशन मे ही उन्होने आवाज उठाई थी। फिर वही बात अहमदाबाद-काँग्रेस के समय भी कही जाने लगी। जब बारडोली मे वर्किंग कमिटी ने सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय किया, तो उनको और भी बहुत अच्छा मौका मिला। दिल्ली की अखिल भारतीय कमिटी मे डाक्टर मुंजे ने उसी कारण से एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। वह चाहते थे कि सारे कार्यक्रम के सम्बन्ध मे जाँच करने के लिए एक कमिटी बनायी जाय। वहाँ तो वह प्रस्ताव नामजूर हो गया। पर मराठी मध्यप्रादेशिक काँग्रेस-कमिटी मे डाक्टर मुंजे की इच्छा पूरी हुई। वहाँ एक कमिटी बनी। उसने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमे प्राय सारे कार्यक्रम को तोड़मरोड़ कर एक नया कार्यक्रम बनाया गया। वहाँ की प्रान्तीय कमिटी ने उसे अखिल भारतीय कमिटी के पास विचारार्थ भेजने का निश्चय किया। पर वहाँ की जनता इससे सन्तुष्ट नही थी। नागपुर मे एक बडी सभा हुई। उसमे प्रान्तीय कमिटी पर अविश्वास प्रकट किया गया। उस सभा मे आठ-नव हजार आदमी थे। श्री जमनालाल बजाज उसके सभापति थे। डाक्टर मुंजे के विचारवाले लोग भी उसमे सम्मिलित थे। रिपोर्ट के समर्थन मे जो कुछ कहा जा सकता था, उन्होने कहा भी। पर सात घटो की बहस के बाद सभा ने रिपोर्ट की निन्दा की। चन्द हाथ ही उसके पक्ष में उठे। बाकी सबके सब रिपोर्ट के विरोध मे ही रहे!

इसके बरक्स (विपरीत) बिहार ने बारडोली और दिल्ली के निश्चयो का स्वागत किया। प्रान्तीय कमिटी ने रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध मे एक लम्बा प्रस्ताव पास किया। यद्यपि यहाँ भी सरकारी दमन चल ही रहा था तथापि सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और काँग्रेस-कमिटियो को आदेश दिया गया कि वे रचनात्मक कार्य-क्रम जोरो से चलावें। गुजरात ने भी ऐसा ही किया। बिहार मे इसका यह असर

हुआ कि दूसरे विचार के लोग, जो असहयोग और सत्याग्रह के कारण कांग्रेस से अलग हो रहे थे, रचनात्मक काम मे मदद देने के लिए तैयार हो गये। इनमे मुख्य थे बाबू गणेशदत्त सिह। पटने मे ऐसे लोगो की एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे मैं भी दूसरे असहयोगियो के साथ शरीक हुआ था। वहाँ पर उन्होने निश्चय किया कि वे भी इसमे पूरी दिलचस्पी लेंगे और यथासाध्य मदद करेंगे।

हमने खादी का काम जोरो से हाथ मे लिया। साथ ही, राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी एक कान्फ्रेन्स की गयी, जिसमे इसके नियम और पाठ्यक्रम इत्यादि पर विचार किया गया। उस समय जितनी पाठशालाएँ चल रही थी उनकी आर्थिक सहायता इत्यादि का प्रबन्ध सोचा गया। हम लोग, सभी, इन्ही विचारों को लेकर, जहाँ-तहाँ सफर भी करने लगे।

सरकार की दुहरी नीति चलती रही। कही-कही गिरफ्तारियाँ भी हो रही थी। दूसरी ओर, जो जेल मे गये थे उनके मुकदमो के कागजो को गवर्नमेण्ट ने हाइकोर्ट के एक जज सर वसन्तकुमार मल्लिक के पास भेजा। उनसे कहा गया कि वह कागजो को देखकर अपनी सम्मति दे कि सजा ठीक और उचित है या नही। उनकी सिफारिश से कुछ लोग छोड दिये गये और कुछ की सजा कम हुई। पर अधिकाश ज्यों के त्यो जेलों मे पड़े रहे।

श्री सच्चिदानन्द सिह १९२१ मे ही, राय कृष्णसहाय बहादुर की मृत्यु के बाद, बिहार के गवर्नर की कौन्सिल के मेम्बर नियुक्त हो चुके थे। जेल का महकमा उन्ही के चार्ज मे था। उन्होने राजबन्दियों के सम्बन्ध मे कुछ नियम बनाये, जिनसे जनता को कुछ सन्तोष हुआ। पर जेल के अधिकारी इससे बिलकुल सन्तुष्ट नही थे। कुछ दिनो के बाद, एक आदमी (सर हरमुसजी बनातवाला) जेलो का इन्स-पेक्टर-जेनरल बनकर, कही किसी दूसरे प्रान्त से, आया। वह बडी सख्ती बरतने लगा। नये कायदों के बावजूद, बिहार के जेलो मे राजबन्दियो के साथ काफी सख्ती होती रही, जिसका जिक्र उन दिनों पत्रो मे अक्सर हुआ करता था। उनसे चक्की चलवाना और कोल्हू पेरवाना तो मामूली बात थी। अगर हुक्म के मुताबिक पूरा काम न हो तो उसके लिए सजा होती। पैरों मे बेड़ी, डडाबेडी, खड़ी हथकडी, चट्टी कपडा, जो जेल की सख्त सजाएँ है, बहुतेरों को भोगनी पड़ी। कही-कही बेत भी लगाये गये। मुसलमानो की सख्या जेलो मे काफी थी। इसलिए उनसे अजान के मामले को लेकर मुठभेड हो गयी। अधिकारियो ने इसे बन्द करने का हुक्म दिया। उन्होने नही माना। इसके लिए बहुतो की सजा हुई।

मौलाना मजहरुल हक साहब ने १९२१ के सितम्बर से ही एक साप्ताहिक पत्र, 'मदरलैंड' के नाम से, निकालना शुरू किया था। उसमे वह खुद अधिक लिखा करते थे। वह पटने से प्रकाशित हुआ करता था। उसमे जेल-सम्बन्धी एक लेख छापने के लिए उन पर सर हरमुसजी बनातवाला ने मुकदमा चलाया, जिसमे उनकी

भी सजा हो गयी। मुझे भी एक कडी टिप्पणी, श्री सच्चिदानन्द सिंह के जेल-सम्बन्धी शासन के विरुद्ध, लिखनी पडी थी।

महात्माजी के कैद हो जाने के बाद वर्किंग कमिटी की बैठक जहाँ-तहाँ होती रही। बैठकों मे रचनात्मक काम पर जोर दिया जाता रहा। एक मे खादी-प्रचार के काम को सगठित रूप से चलाने के लिए एक बोर्ड बनाने का निश्चय हुआ। इस काम के लिए तिलक-स्वराज्य-फण्ड से रुपये देने की भी अनुमति दी गयी। श्री विट्ठल-भाई पटेल, जो अखिल भारतीय कमिटी के मत्री थे, भाषणो और समाचारपत्रो मे लेखों द्वारा, जनता को और कांग्रेस-कार्यकर्ताओ को बराबर उत्साहित करते रहे कि वे कांग्रेस के अधिक से अधिक मेम्बर बनाने मे, तिलक-स्वराज्य-फण्ड के लिए पैसे जमा करने मे तथा खादी-प्रचार, अछूतोद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा के कामो मे जोर लगाते रहे। तो भी सुस्ती आती गयी। लखनऊ में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक की गयी। श्री विट्ठलभाई पटेल उस समय की परिस्थिति से बहुत असन्तुष्ट थे। मै लखनऊ पहुँचा तो सही, पर वहाँ पहुँचकर ज्वरग्रस्त हो गया। इसलिए वहाँ की बैठक मे प्राय. दर्शक-सा ही भाग ले सका, बहस-मुबाहसे मे बहुत भाग न ले सका। भाग्यवश पडित मोतीलाल नेहरूजी उसी समय छूटे। दूसरे दिन वह उस बैठक मे शरीक हुए। पडितजी के पहुँचने के पहले ही उस बैठक मे श्री विट्ठलभाई पटेल और कति-पय दूसरे नेताओ की प्रेरणा से एक कमिटी मुकर्रर करने की बात हुई, जिसके जिम्मे यह काम दिया गया कि वह देश की परिस्थिति पर विचार करके और जहाँ जाकर जाँच करने की जरूरत समझी जाय वहाँ जाकर जाँच करके इस बात की रिपोर्ट करे कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार है वा नही। पडितजी ने भी आने के बाद इसे मजूर कर लिया और सभापति से आग्रह किया गया कि वह एक कमिटी बनावे। गाधीजी, बगैर किसी कमिटी की जाँच के ही, देश की नाडी पहचान लिया करते थे। जब से वह भारत लौटे थे तथा सार्वजनिक कामो मे खुले तौर पर भाग लेने लगे थे, उन्होने अपनी इसी शक्ति से काम लिया था। उनके हटते ही कमिटी को इसकी जरूरत महसूस हुई। पर इसका परिणाम अच्छा नही हुआ। जैसे भारत मे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट जब किसी विषय को टाल देना चाहती है तो एक जाँच-कमिटी मुकर्रर कर देती है, वैसे ही हमने भी किया! इससे एक प्रकार से सत्याग्रह स्थगित हो गया। रचनात्मक काम मे जो उत्तेजना मिलनी चाहिए थी और जिस पर गाधी जी जोर दे गये थे, वह भी एक प्रकार से गौण बन गया।

इसी बैठक मे एक दूसरा काम भी किया गया, जिसका फल कुछ दिनो के बाद बहुत अच्छा निकला। देश-भर मे बढते हुए खादी के काम की देख-रेख के लिए वर्किंग कमिटी ने जो बोर्ड बनाया था, उसे कमिटी ने, मजूर किया। १९२१ मे जब स्वराज्य-फण्ड जमा हो चुका और खादी के काम पर जोर दिया गया, तो उस फण्ड में से सभी प्रान्तो को खादी-प्रचार के लिए रुपये दिये गये। किसी को अभी खादी का न तो बहुत ज्ञान था और न अनुभव। इसलिए महसूस किया गया कि रुपये बहुत

नुकसान होंगे, और काम ठीक तरह से आगे नही बढेगा। इस बोर्ड के जिम्मे सभी सूबों में सगठित रूप से काम की देखरेख करने का भार दिया गया। सेठ जमनालाल बजाज इसके सभापति नियुक्त हुए। सेठजी को रचनात्मक काम पर बहुत विश्वास था। उन्होने खादी-प्रचार तथा अछूतोद्धार के काम को बहुत परिश्रम और दिलचस्पी से शुरू कर दिया।

४२—बिहार में कांग्रेस को निमंत्रण और उसकी तैयारी

अहमदाबाद-काँग्रेस मे बिहार के जो प्रतिनिधि उपस्थित हुए उन सबकी राय हुई कि इस बार काँग्रेस का अधिवेशन बिहार मे करने के लिए निमत्रण दिया जाय। बिहार मे इसके पहले केवल एक ही बार काँग्रेस हुई थी—१९११ मे, जब आपस के मतभेद के कारण काँग्रेस बहुत क्षीण हो चुकी थी और उसमें हाजिरी बहुत कम हुआ करती थी। उस बार के अधिवेशन के प्रबन्धको का अनुभव कुछ अच्छा नही, बल्कि कटु ही था। यहाँ तक कि काँग्रेस के समय मे जो खर्च हुआ उसके कुछ रुपये बाकी पड गये। स्वागत-समिति के अध्यक्ष मजहरुल हक साहब, मत्री श्री सच्चिदानन्द सिंह तथा अन्य सदस्यों पर उन बाकी रुपयो के लिए अदालत मे नालिश हुई। पर अब बिहार में, चम्पारन मे महात्माजी के आगमन के बाद, और विशेषकर १९२१ के आन्दोलन के कारण, काफी जागृति हो गयी थी। हम लोगो ने महसूस किया कि इस बार वैसे कटु अनुभव नही होंगे। साहस करके हमने निमत्रण तो दे दिया, पर वहाँ यह निश्चय न कर सके कि बिहार के किस नगर मे अधिवेशन किया जाय। यह बिहार की प्रान्तीय कमिटी की बैठक मे निश्चय करने के लिए छोड दिया गया। काँग्रेस ने भी अहमदाबाद मे निश्चय नही किया कि किस सूबे मे अगला अधिवेशन होगा। यह निश्चय कुछ दिनों के बाद वर्किंग कमिटी ने किया कि बिहार का निमत्रण मजूर किया जाय।

बिहार मे, प्रान्तीय कमिटी की बैठक के पहले, मैंने कुछ जगहो को जाकर खुद देखा। तब कमिटी की बैठक की गयी। वहाँ पर निश्चय हुआ कि गया मे काँग्रेस का अधिवेशन किया जाय। उस जिले मे, रुपये जमा करने के लिए, मै श्री कृष्णप्रकाश सेन सिंह के साथ दौरा करने लगा। कुछ सफलता भी मिली। सारे जिले मे, जहाँ मै पहले कभी नही गया था, जाने का अच्छा मौका मिला। उस जिले मे बरसात में घूमना बहुत मुश्किल है। मिट्टी केवाल (चिकनी-कडी) है। जहाँ पक्की सडक नही है वहाँ किसी भी सवारी का गुजर नही है। इसलिए, बरसात के पहले ही, मैंने बहुतेरी जगहो मे, जहाँ कुछ जमा हो सकता था वहाँ जाकर, काम कर लिया।

पटने मे १९११ की काँग्रेस के स्वागत-मत्री पर मुकदमे की बात मुझे याद थी। इसलिए निश्चय किया गया था कि अभी स्वागताध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियो का पक्का चुनाव न किया जाय। जब काफी सख्या मे स्वागत-समिति के सदस्य बन जायँगे तभी पदाधिकारियो का चुनाव करना ठीक होगा। तब तक काम चलाने

के लिए मैं ही अस्थायी मत्री बना दिया गया। कुछ लोगो की, जिनमे अनुग्रह बाबू भी थे, मेरे सहायतार्थ, एक छोटी कार्यकारिणी बना दी गयी। मैंने निश्चय कर लिया और कमिटी को कह भी दिया था कि मैं एक पैसा भी उधार या कर्ज ले करके खर्च नही करूँगा—इतना ही नही, किसी काम को तब तक शुरू भी नही करूँगा जब तक उसके लिए पूरे रुपये पास मे न आ जायँगे। यही एकमात्र उपाय था, जिससे अपने ऊपर की आर्थिक जिम्मेदारी से मैं तथा कमिटी के मेम्बर अपने को बचा सकते थे। सभी जिलो मे पत्र लिखे गये कि सभी स्वागत-समिति के सदस्य बनावे और चन्दा जमा करे। पर कार्यकर्त्ताओ मे कुछ सुस्ती-सी दीखने लगी, धनसग्रह मे भी कमी होने लगी। अहमदाबाद के बाद कांग्रेस का रूप ही बदल गया था। हमको एक नया शहर-सा बसाना था, जो गया शहर से बाहर हो और जहाँ लोगो के रहने के लिए झोपडे तथा रोशनी और पानी का पूरा प्रबन्ध हो। इसके अतिरिक्त कांग्रेस का पडाल तैयार कराना था। कुछ कठिनाई जमीन मिलने मे हुई। पर स्थानीय लोगो की कृपा से, गया शहर से प्राय डेढ-दो मील दक्खिन, 'तेनुई' गाँव मे, पक्की सडक के पूरब आम का बगीचा और पच्छिम मे खाली खेत मिल गये। खाली खेत मे पडाल और बगीचे मे रहने के लिए झोपडे बनाने का निश्चय हुआ। कुछ दूर पर एक दूसरी फुलवारी मिल गयी, जिसमे एक छोटा बँगला भी था। उसी मे खादी-प्रदर्शनी करने का निश्चय हुआ। कुछ समय तो नक्शा बनाने मे और जहाँ-तहाँ रुपये तथा बाँस-बल्ली जमा करने मे लगा। बरसात मे काम हो ही नही सकता था। इसलिए बरसात के बाद ही काम शुरू करने का निश्चय हुआ।

अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ करता था। इसलिए बरसात के बाद प्राय तीन महीने मिलते थे। यदि रुपये और सामान तैयार रहे तो सब कुछ कर लेना ज्यादा मुश्किल न था। पर दुर्भाग्यवश अभी रुपये काफी नही आये थे। मैंने पत्रो द्वारा और आदमी भेज कर सभी जिलो को ताकीद किया, पर रुपये काफी नही आये। मेरी चिन्ता बढने लगी। मैंने तो निश्चय कर ही लिया था कि तब तक किसी के साथ कोई काण्ट्राक्ट (ठीका) नही करूँगा जब तक काण्ट्राक्ट के लिए पूरे रुपये बक मे जमा न हो चुके होगे। ज्यो-ज्यो समय नजदीक आने लगा, चिन्ता बढने लगी। हम उस समय के नजदीक पहुँचने लगे जब कोई काण्ट्राक्टर (ठीकेदार) समय की कमी के कारण आवश्यक झोपडे, पडाल इत्यादि तैयार कर देनेवाला न मिलता। कमिटी की बैठक हुई। सब बातो पर विचार किया गया। मैं अपने इस निश्चय पर डटा रहा कि जब तक किसी काम के लिए पूरे रुपये बक मे जमा न हो जायँगे तब तक मैं मत्री की हैसियत से किसी काण्ट्राक्ट पर दस्तखत नही करूँगा। सब जिलो के कार्यकर्त्ताओ की सुस्ती से हम घबरा रहे थे। अन्त मे यह निश्चय किया गया कि कमिटी के मेम्बरो की व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर बक से रुपये कर्ज लिये जायँ, ये रुपये बक मे जमा कर दिये जायँ और तब नगर-निर्माण इत्यादि का काण्ट्राक्ट दिया जाय।

इस तरह पचास हजार रुपये कर्ज लेने की बात तय हुई। कुछ लोग चाहते थे कि यह बात गुप्त रखी जाय, क्योकि इसका प्रकाशित होना सारे सूबे के लिए बेइज्जती की वात होगी और गवर्नमेण्ट के कर्मचारी तथा दूसरे लोग यह देखकर खुशियाँ मनायेगे। मैंने कहा कि सूबे की जनता पर मेरा पूरा विश्वास है। लोगो को जब यह मालूम हो जायगा कि कांग्रेस को निमन्त्रित करके हम इस असहाय अवस्था मे है, तो वे जरूर आवश्यक रुपये दे देगे। साथ ही, कांग्रेसी कार्यकर्त्ता भी परिस्थिति की विषमता समझेंगे और रुपये जमा करने मे दिल से लग जायँगे।

प्रस्ताव अखबारो मे छाप दिया गया। मै रुपये जमा करने के लिए दौरे पर निकल गया। जैसे ही लोगो ने इस प्रस्ताव को अखवारों मे पढा, सारे सूबे के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओ के दिल मे आग-सी लग गयी। सभी खूब जोरों से स्वागतकारिणी के मेम्बर बनाने और रुपये जमा करने मे लग गये। मै जहाँ गया वहाँ काफी रुपये मिलने लगे। सभी लोग प्रान्त की बेइज्जती महसूस करने लगे। मै प्राय एक सप्ताह के दौरे के वाद कई हजार रुपये जमा करके लौटा। रुपये साथ मे थे। हम लोग ठहरा करते थे उसी छोटे बँगले मे जो शहर से प्राय डेढ़ मील दूर था और जिसमे खादी-प्रदर्शनी करने का निश्चय हुआ था। वहाँ इतने रुपये साथ मे रखना ठीक नही था। रेल से मै चार बजे के करीब सेपहर को उतरा। गया स्टेशन पर मुझे पुलिस का एक दारोगा मिला। उसने अखबारो मे हमारे प्रस्ताव को पढा था। वह यह स्वप्न देख रहा था कि शायद गया मे कांग्रेस हो ही नही सकेगी। उसने ट्रेन से उतरते ही मुझसे प्रश्न किया, बक से रुपये कर्ज ले लिये गये? शायद वह समझता था कि कोई बक भी इतनी वडी रकम व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर कर्ज न देगा। मैंने उत्तर दिया, नही। तब उसने पूछा, तो कांग्रेस कैसे हो सकेगी? मैंने उत्तर दिया, कर्ज लेने की अब जरूरत नही रह गयी। यह सुनकर वह वहुत आश्चर्य मे पड गया। मैंने यह भी कह दिया कि अब काम के लिए काफी रुपये आ गये है और मै खुद अपने साथ एक अच्छी रकम जमा करके ला रहा हूँ। उसको मेरी बातो पर पूरा विश्वास नही हुआ। मै तो रुपयो के वोझ को बक मे डाल देना चाहता ही था। इसलिए गाडी भाडा करके सीधे बक की ओर चला। वह साइकिल पर गाडी के पीछे-पीछे चला। जब उसने देखा कि बक मे सचमुच मै एक वडी रकम गिनवा कर जमा कर रहा हूँ तव उसको मेरी बात पर विश्वास हुआ। वह हमारा साथ छोडकर अपने दूसरे काम पर चला गया। मै जो कुछ जमा करके लाया था उसके अलावा सभी जिलो से रोजाना रुपये पहुँचने लगे। हम लोग भी इधर-उधर चक्कर लगाते ही रहे। इधर निर्माण का काम भी तेजी से चलने लगा।

भला गरीब विहार धनी अहमदावाद के ठाट-बाट की कहाँ तक नकल या मुकावला कर सकता था। पर मेरा खयाल है कि हमने भी अच्छा ही प्रबन्ध कर लिया और खर्च भी गुजरात से वहुत कम ही किया।

प्रदर्शनी के सम्वन्ध मे हमने निश्चय कर लिया था कि खादी बनाने की सभी प्रक्रियाओ का प्रदर्शन किया जाय। खादी मे हमने केवल कपास के कपडे को

ही नही, बल्कि रेशम, ऊन, पाट इत्यादि उन सभी चीजो को शामिल कर लिया था, जिनसे सूत या रस्सी बट करके कोई भी चीज बुनकर बनाई जाती है। इनमे से प्रत्येक की, आरम्भ से लेकर जब तक चीज तैयार होकर इस्तेमाल के योग्य न बन जाती थी तब तक की, सभी प्रक्रियाएँ दिखाने का प्रबन्ध किया गया। उदाहरणार्थ, कपास को लीजिए। कपास के पौधे से लेकर, कपास की ओटाई, धुनाई, कताई, ताना करना, पाई करना, बुनना, कपडे की धुलाई-छपाई इत्यादि तक, सभी प्रक्रियाएँ दिखलाई जाती थी। इसी प्रकार से ऊन, रेशम, पाट इत्यादि की भी। अभी चर्खा-सघ कायम नही हुआ था। उसका काम खद्दर-बोर्ड करता था, पर वह अभी एक बरस का भी नही हुआ था। इसलिए खादी-कार्य का सगठन और अनुभव तथा जानकारी नही के बराबर थी। इन सब चीजो को और सबके लिए कारीगरो को जुटाना कुछ आसान काम न था। पर यह सब प्रबन्ध हो गया। खादी-प्रदर्शनी अपने ढग की अच्छी हुई। दर्शको के टिकट से जो पैसे आये वे प्राय प्रदर्शनी के खर्च के लिए काफी साबित हुए।

४३—आसाम और संथाल-परगना में दमन

कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन और कारंवाई के सम्बन्ध मे कुछ कहने के पहले १९२२ वाली कॉग्रेस के सम्बन्ध मे कुछ कह देना आवश्यक है।

महात्मा गाधी की गिरफ्तारी के बाद भी सरकारी दमन किसी-किसी सूबे मे जोरो से जारी रहा। बडे नेताओ मे पडित मदनमोहन मालवीयजी और श्री विट्ठल-भाई पटेल को छोड दूसरे सभी प्राय जेल मे थे। दमन के कारण जनता कुछ घबरा-सी रही थी। काँग्रेस को जीवित रखना आवश्यक था। जो थोडे लोग बाहर रह गये थे उनकी जिम्मेदारी और भी बढ गयी थी। पडित मालवीयजी का विचार हुआ कि आसाम मे, जहाँ से दमन की भयकर खबरे आ रही थी, अवश्य जाना चाहिए। मै भी उनके साथ गया। वहाँ प्राय सभी जिलो मे काँग्रेस-कमिटियाँ, केवल शहर मे ही नही बल्कि बहुतेरे गाँवो मे भी, स्थापित हो गयी थी। आसाम मे मकान बहुधा फूस के ही हुआ करते है। काँग्रेस के घर भी फूस के ही थे। सरकारी कर्म-चारियों ने प्राय सभी जगहो के काँग्रेस के दफ्तरों को जला दिया था। सभी अच्छे-अच्छे कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो चुके थे। कांग्रेस के सेवक-दल के सदस्य, जहाँ-कही मिलते, गिरफ्तार कर लिये जाते थे।

वहाँ की सरकार के क्रुद्ध होने का विशेष कारण यह था कि आसाम मे अफीम की बिक्री से सरकार को अच्छी आमदनी होती है। वहाँ के लोग अफीम खाते है, जिसके फलस्वरूप उनके शारीरिक और मानसिक बल का ह्रास हो जाता है। कम उम्र मे ही वे बूढे-जैसे जान पडते है। दिल और दिमाग की कमजोरी के कारण वे निकम्मे हो जाते है। यह हाल सुनकर गाधीजी ने वहाँ के कार्यकर्त्ताओ को आदेश दिया था कि अफीम-बन्दी का आन्दोलन करो। उस आन्दोलन के कारण अफीम की बिक्री बहुत घट गयी थी और उसके साथ-साथ सरकारी आमदनी भी। इसलिए

सरकारी कर्मचारियों का प्रयत्न था कि कांग्रेस को दबाना चाहिए। जैसा ऊपर कहा गया है, वे कडी दमन-नीति से काम ले रहे थे।

वहाँ पहुँच कर हमने सब हाल देखा और निश्चय किया कि सूबे का दौरा किया जाय। मेरे लिए और पूज्य मालवीयजी के लिए भी आसाम-दर्शन का यह पहला अवसर था। अत्यन्त हरा-भरा फूला-फला देश, जिसमे महानद ब्रह्मपुत्र और पहाडो की छटा अत्यन्त मनमोहक थी। घने विशाल वृक्षोवाले तथा छोटी झाडियो-वाले जगल जहाँ प्रदेश की शोभा बढाते थे, वहाँ जगली जानवरो के कारण—जिनमे हाथी और शेर मुख्य है—उसे खेती और सफर के लिए खतरनाक भी बना देते थे। हरियाली सुहावनी तो है, पर जमीन के हमेशा तर रहने के कारण प्रान्त का बहुत भाग मलेरिया-ग्रस्त भी है।

गोहाटी मे पूज्य मालवीयजी ने बहुत ही जोशीला और उत्साहवर्धक भाषण किया। अफीमबन्दी के काम को जारी रखने के लिए सब लोगो से अपील भी की। मैंने भी कुछ कहा, पर पूज्य मालवीयजी के सभा मे रहते दूसरा कोई क्या बोल सकता है। जितना समय आसाम-भ्रमण के लिए हम दे सकते थे, उतने मे बहुत जगहो तक हम दोनो नही पहुँच सकते थे। इसलिए हम दोनो दो दलो मे बँट गये। कुछ स्वयसेवक पूज्य मालवीयजी के साथ उन स्थानो पर गये जहाँ रेल या स्टीमर से जाया जा सकता था। कुछ स्वयसेवको के साथ मेरा कुछ ऐसे स्थानो मे जाना निश्चित हुआ जहाँ बैलगाडी पर जाना था। निश्चय ठीक और मेरे मन के अनुकूल था, क्योकि इस प्रकार मैं गाँवो की परिस्थिति अधिक देख सकता था। साथ ही, पूज्य मालवीयजी अपनी वृद्धावस्था मे—उस समय वह साठ से अधिक के रहे होगे—बैलगाडी के सफर से बच जाते थे। स्थान ऐसे ही चुने गये थे जहाँ दमन का चक्र अधिक तीव्र गति से चला था।

मुझे एक बीहड स्थान पर जाना था, जहाँ कुछ दूर तक घोर जगल मे से होकर जाना पडता था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आसाम के गाँवो में बिहारी मजदूर काम करते है। बिहार की बैलगाडियाँ बोझ ढोने का काम करती है। गोहाटी मे, ब्रह्मपुत्र मे, मै स्नान करने गया। वहाँ इत्तिफाक से दो नावे लगी हुई थी। उनके मल्लाहो को आपस मे बातचीत करते सुना तो समझ गया कि वे छपरे की बोली बोल रहे है। पूछने से मालूम हुआ कि वे छपरा-जिले के किसी गाँव के रहनेवाले माँझी है और बराबर नाव ले आया-ले जाया करते है। स्टीमर पर जो हलवाई दूकान करता था वह भी छपरे का ही रहनेवाला था।

हम लोग गोहाटी से १५-१६ मील तक लारी पर गये। वहाँ से बैलगाडी पर प्राय २० मील और जाना था। रास्ता जगल से होकर जाता था। स्थानों का नाम आज स्मरण नही है। उस स्थान पर तो हम प्राय १२ बजे दिन को ही पहुँच गये। मैंने सोचा था कि जगल का रास्ता भी शीघ्रता से चलने पर दिन मे ही अधिकाश कट जायगा। दो बैलगाडियाँ भाडे पर ली गयी, पर गाडीवाले किसी न किसी बहाने

से अब-तब करते प्राय ५ बजे तक रवाना नही हुए। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि सख्त धूप के कारण बैलगाडियाँ अधिकतर रात को ही चलती है। एक गाडी पर मै और एक स्वयसेवक बैठे। दूसरी पर दो या तीन दूसरे स्वयसेवक। पास मे खाने के लिए कुछ था नही। आठ बजे रात को किसी स्थान पर पहुँचे जो चट्टी-सी जान पडती थी। बहुतेरी गाडियाँ वहाँ लगी थी। खोजने पर केवल कुछ भुने चने मिले जिनको हम लोगो ने ले लिया और गाडी को रवाना किया। उन्हे चबाकर मै गाडी मे सो गया। कुछ घटो बाद बहुत शोर-गुल सुनकर मेरी नीद टूटी। मैने देखा कि स्वयसेवक किरासन तेल के दो टिनों को बहुत जोरो से पीट-पीट कर और जोरों से गा-गाकर शोर मचा रहे है। साथ ही, गाडीवाले भी बहुत जोरो से चिल्ला-चिल्ला कर बैलो को हाँक रहे हैं। दोनों गाडियो के साथ लालटेने थी जो जल रही थी। सडक बहुत सकरी हो गयी थी। दोनो ओर बडे-बडे वृक्षो का बहुत घना जगल था। वह घाटी थी, जहाँ दोनो ओर पहाड भी थे, पर वे रात को गाडी पर से नजर नही आते थे—उनको मैने लौटती बार ही देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थान पर जगली जानवर, विशेष कर शेर, अक्सर आ जाया करते है। उन्ही को भगाने के लिए स्वयसेवक और गाडीवान शोर मचा रहे थे। उन्होने कहा कि जानवर उस आवाज के नजदीक नही आते। यदि सडक पर भी होते है तो हट जाते है। पर कोई-कोई जानवर इतना शोख होता है कि बैलगाडी मे जुते हुए बैलो को भी खीच ले जाता है। मालूम हुआ कि एक घटना ऐसी हाल मे ही हो चुकी थी। इसके बाद मै सो न सका।

जब हम घोर जगल से बाहर निकल आये और जानवरो का डर कम हो गया तब शोर मचाने की प्रक्रिया बन्द हुई। हम अपने स्थान पर बहुत सवेरे ही पहुँच गये। वहाँ की जनता बहुत आतकित थी। काँग्रेस का छोटा-सा घर जला दिया गया था। सभी काँग्रेसी काम करनेवाले गिरफ्तार हो चुके थे। थाना पास मे ही था। लोग डर के मारे अब काँग्रेस के काम से विमुख हो गये थे। हम लोगो के पहुँचने से उनमे साहस आ गया। सब जमा हो गये। आसपास के गाँवो मे खबर दी गयी कि सभा होगी। इस बीच मे गाँव के लोगों से वहाँ के दमन का हाल हम सुनते रहे। अफीम-बन्दी-सम्बन्धी जानकारी भी हासिल करते रहे। सेपहर तक लोग जमा हो गये। दो-तीन सौ आदमियो की एक अच्छी सभा हो गयी। देखा कि लोगो की हिम्मत बढ गयी। फिर काँग्रेस-भवन बना लेने और अफीम-बन्दी का काम जारी करने का लोगो ने वचन दिया। पुलिस के मौजूद रहते भी लोगो ने सभा मे खुले-आम भाग लिया।

हम लोग तीन बजे के करीब वहाँ से वापस हुए। इरादा था कि उस दुर्गम स्थान को, जहाँ रात को टिन पीटना पडा था, रोशनी रहते ही पार कर जायँ। ऐसा ही हुआ भी। उस स्थान पर पहुँचते-पहुँचते सूर्य्यास्त हो चुका था, पर अभी अँधेरा नही हुआ था। मै साथियों के साथ पैदल ही चल रहा था। दोनो गाडियाँ भी साथ

ही साथ चल रही थी। इसी बीच मे पहाडियों की तरफ से बाघो की दहाड सुनने मे आने लगी। यह आवाज दोनों तरफ से मालूम पडती थी, पर हो सकता है कि एक ही ओर से आती रही हो और एक ही बाघ की हो तथा वह उस निर्जन जगल-पहाडो मे प्रतिध्वनित होकर कई बाघो की आवाज-सी मालूम पड रही हो। पर बाघ कही देखने को न मिला। आवाज भी बहुत नजदीक नही थी, शायद दो-तीन फर्लांग की दूरी से आ रही थी। मैंने चिड़ियाखाने के सिवा बाघों की ऐसी दहाड और कही नही सुनी है।

रात भर गाडी पर चलकर हम लोग कुछ रात रहते उस स्थान पर पहुँचे जहाँ से मोटर-लारी जाती थी। प्राय दस बजे फिर गोहाटी पहुँचे। पूज्य मालवीयजी के साथ और जगहो की यात्रा समाप्त करके हम लोग वापस चले। लखनऊ मे होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक मे शरीक हुए। मैंने देखा कि वैसी गिरी हुई अवस्था मे भी पूज्य मालवीयजी लोगो को जगाने और हिम्मत दिलाने मे कितने सफल हुए। उनकी वाणी में शक्ति तो है ही, वहाँ की हालत देखकर उसमे और भी तेज आ गया था। उनकी वह यात्रा ऐसे विकट समय मे भी बहुत ही सफल रही।

हमारे अपने सूबे (बिहार) मे सथाल-परगना से दमन की खराब खबर आयी—विशेषकर 'पाकुर' से। मै वहाँ भी गया। वहाँ लोग इतने आतकित थे कि स्टेशन पर हम लोगों से मिलने कोई नही आया। हम रात-भर स्टेशन के प्लाटफार्म पर सोये रहे। सवेरे उठे तो देखा कि एक जूता कुत्ता उठा ले गया है। वही मुँह-हाथ धोकर शहर मे जाने का विचार किया। कुछ ही दूर गये थे जब वकालत के दिनो के एक परिचित मवक्किल मिले। उन्होने सुना था कि मै स्टेशन पर पडा हूँ—कोई पूछनेवाला नही है, और यह सुनकर वह हमको अपने घर लाने के लिए जा रहे थे। उनके घर पर हम गये। स्नानादि से निवृत्त होकर जेलखाने पर गये, जहाँ हमारे पहुँचने के एक ही दो दिन पहले पाँच-छ काम करनेवाले गिरफ्तार करके रखे गये थे। उनसे मुलाकात प्राय. १२ बजे दिन को हुई। जूता तो था ही नही। धूप कडाके की थी। वहाँ की सडक का मोटा 'मोरम'* बहुत गर्म हो गया था। वहाँ से खाली पैर वापस होते समय पैर इतना जला कि सारे तलवे मे फफोले उठ आये। किसी प्रकार निवास-स्थान पर पहुँच कर एक रस्सी का तल्लावाला जूता मँगवाया। सेपहर को एक सडक की बगल मे ही सभा हुई, जिसमे कुछ लोग आये, पर आतक काफी था। वहाँ भी हमारे जाने से लोगो मे कुछ साहस आया। गिरफ्तार कार्यकर्त्ताओ के घर जाकर उनके घर-वालो को ढाढ़स दिलाया।

हम लोग दुमका भी गये, पर वहाँ भी कोई ठहरानेवाला नही मिला। हम

* एक किस्म का पत्थरो का महीन टुकडा अथवा मोटी बालू जो लाल रग की होती है और सड़क बनाने में इस्तेमाल की जाती है।

लोग एक धर्मशाला मे जाकर ठहरे। वहाँ और कुछ लोग आकर मिले। उनमे वहाँ की पुलिस के दारोगा भी थे जो भोजपुरी बोलते थे और हर मिनट मे 'जय शिव' या 'बम-बम' कहा करते थे। उन्होने बहुत सज्जनता से बाते की, पर उनकी सलाह यह हुई कि हमारा वहाँ का काम तो खतम हो गया, अब वहाँ बहुत ठहरने की जरूरत नही रह गयी। उन्होने अन्त मे यह भी कहा कि हम लोगो को वहाँ से चले जाने का हुक्म है। हुक्म माँगने पर वह दिखा नही सके—उसे लाने चले गये, पर फिर लौटे नही। हम वहाँ उनका इन्तजार ही करते रह गये। मैने अपने प्रोग्राम के अनुसार वहाँ अधिक ठहरने का निश्चय नही किया था, अत रात की गाडी से वापस चला आया।

उसी जिले (दुमका) मे एक दूसरे स्थान पर कुछ नेता गये थे। वहाँ के लोगों मे से एक आदमी ने अच्छा स्वागत किया था। जहाँ वे लोग ठहरे थे, एक आदमी उन लोगो को पखा झल रहा था। लोगो मे काफी आतक था, पर वह व्यक्ति निडर था। उन लोगो के चले आने के बाद सुना कि उस गरीब पखा झलने-वाले की जमीन 'उच्छेद' कर ली गयी। वहाँ की जमीन सरकारी समझी जाती थी। किसी किसान को अपनी जमीन से निकाल देने को वहाँ 'उच्छेद' कहा जाता है। पीछे हमने बहुत कोशिश की कि उसकी जमीन वापस हो जाय, पर असफल रहे।

सथाल-परगने मे जो जुल्म हुए थे, उनके सम्बन्ध मे मैंने एक लम्बी रिपोर्ट तैयार की। वह सामयिक पत्रो मे, विशेषकर 'सर्चलाईट' मे, छाप दी गयी।

४४—कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी वाद-विवाद

ऊपर सत्याग्रह जाँच-कमिटी का जिक्र आ चुका है। उस कमिटी ने प्रश्नावली तैयार की और सभी काँग्रेस-कमिटियो से उत्तर माँगा। उसके बाद सभी सूबो मे जाकर, वहाँ के कार्यकर्त्ताओ से मिलकर, बातचीत करने और इजहार लेने का निश्चय किया। मुझे यह अच्छा नही लगता था, क्योकि यह सरकारी कमिटियो का तरीका है, जो प्राय रिपोर्ट देने के सिवा—वह भी बहुत समय बिताकर—और कुछ करना नही चाहती। कमिटी का काम ज्यो-ज्यो आगे बढा, यह स्पष्ट होने लगा कि उसमे दो मत है। एक पक्ष गाधीजी के बताये हुए रचनात्मक काम पर जोर देकर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करना चाहता था और दूसरा पक्ष यह देखकर कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार नही है—यह राय रखता था कि कौन्सिलो मे जाना चाहिए और कौन्सिल-बहिष्कार का जो प्रस्ताव कलकत्ते के विशेष अधिवेशन ने १९२० मे स्वीकार किया था उसे बदल देना चाहिए। कॉग्रेस-कार्यकर्त्ताओ मे भी बहुत मतभेद देखने मे आया—यद्यपि गाधीजी के कार्यक्रम को ज्यो का त्यो रखने के पक्ष मे अधिक लोग मालूम पडते थे। कमिटी ने सभी सूबो के उत्तरों को और खुद जाकर कार्यकर्त्ताओ के इजहारो को जमा कर लिया। इसी सिलसिले मे कमिटी के सदस्य पटने मे भी आये। अन्य काँग्रेसियो के अलावा मुझे भी इजहार देना पडा।

मै गाधीजी के कार्यक्रम का पक्का पक्षपाती था। मैंने उसी का समर्थन अपने इजहार मे जोरो से किया।

अन्त मे कमिटी की रिपोर्ट जब निकली तो मालूम हुआ कि छ सदस्यो मे तीन एक पक्ष मे थे और तीन दूसरे पक्ष मे। इसलिए कौन्सिलो के सम्बन्ध मे कमिटी कोई सिफारिश न कर सकी। सब मेम्बरो की राय ही देकर कमिटी सन्तुष्ट रही। रिपोर्ट निकलने के पहले से ही उग्र मतभेद प्रदर्शित हो रहा था। रिपोर्ट के बाद तो उसका रूप और भी उग्र हो गया। अखबारो मे तथा कॉग्रेसी हलको मे कौन्सिल मे जाने या न जाने पर बहसे होने लगी। जो लोग कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष मे थे वे परिवर्तनवादी (प्रो-चेजर्स) कहलाने लगे, और जो पहले के कार्यक्रम मे परिवर्तन नही चाहते थे—अर्थात् जो कौन्सिल-प्रवेश के विरोधी थे—वे अपरिवर्तनवादी (नो-चेजर्स) कहलाने लगे।

क्रमश बडे-बडे नेता भी मीयाद काटकर छूटने लगे। उनमे देशबन्धु दास का स्थान सबसे ऊँचा था। लालाजी की लम्बी मीयाद थी। उनके छूटने की अभी सम्भावना नही थी। शुरू मे पडित मोतीलालजी के विचारो का ठीक पता मालूम न हुआ। ऐसा मालूम होता था कि वह गाधीजी के प्रोग्राम को ही मानते है। पर देशबन्धु दास के छूटने के बाद स्पष्ट हो गया कि पडितजी का विचार भी कौन्सिलो मे जाने के पक्ष मे ही था। पहले के प्रोग्राम के समर्थको के नेताओ मे श्री राजगोपालाचारी, डाक्टर अनसारी, श्री वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज प्रभृति थे। देशबन्धु दास ने कमिटी की रिपोर्ट के बाद अपनी राय जाहिर कर दी। वह थी कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष मे। अहमदाबाद-कॉग्रेस के मनोनीत सभापति वही थे। इसलिए जब वह छूटे तो नियमानुकूल अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी के सभापति हो गये। चुने जाने पर भी वह अहमदाबाद मे सभापति न हो सके थे। देश ने उनको फिर गया के अधिवेशन के लिए सभापति चुना।

अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की एक बैठक कलकत्ते मे हुई। सत्याग्रह कमिटी की रिपोर्ट उसमे विचार करने के लिए पेश हुई। तीन-चार दिनो तक बहस चलती रही। श्री राजगोपालाचारी ने ही हम सब अपरिवर्तनवादियो का नेतृत्व किया। मुझे भी वहाँ के वाद-विवाद मे हिस्सा लेना पडा था। हम लोगो की कोशिश थी कि कुछ अदल-बदल करके और कौन्सिल के सिवा अन्य विषयो पर—जिनका जिक्र रिपोर्ट मे था—यदि कुछ समझौता हो जाय तो अच्छा होगा। पर ऐसा हो न सका। बहुत बहस के बाद यह विषय गया-कॉंग्रेस के लिए स्थगित कर दिया गया।

४५—गुरु का बाग और मुलतान

इस साल, अगस्त-सितम्बर मे, जहाँ तक मुझे स्मरण है, दो बडी दुर्घटनाएँ हुई जिनका असर सारे हिन्दुस्तान की राजनीति के वातावरण पर पड़ा। पहली घटना वह थी जो गुरु के बाग से सम्बन्ध रखती थी। कुछ समय पहले से सिक्खो मे उनके

अपने गुरुद्वारो के सुधार के लिए आन्दोलन चल रहा था। उनके गुरुद्वारे धार्मिक स्थान है जिनका सम्बन्ध किसी धार्मिक घटना से हुआ करता है। मुख्य गुरुद्वारो का सम्बन्ध किसी न किसी गुरु के जीवन की किसी घटना से होता है। इतिहास साक्षी है, सिक्खो ने अपने धर्म के लिए बहुत कष्ट सहे है, बहुत जुल्म बर्दाश्त किये है। इसलिए गुरुद्वारो के प्रति उनकी बडी ममता और श्रद्धा है। इन गुरुद्वारो के पास जनता की दी हुई काफी जायदाद है। पथ की सेवा के लिए ही वह दी गयी थी। गुरुद्वारो के इन्तजाम के लिए जो सेवक नियुक्त किये गये थे वे ही उस जायदाद के प्रबन्ध इत्यादि भी किया करते थे। जैसा अक्सर हुआ करता है, गुरुद्वारे महन्तो के कब्जे मे थे। बहुतेरे महन्त निकम्मे और दुराचारी थे। इसलिए सिक्खो मे एक दल, जिसे अकाली दल कहते है, इस पर जोर देने लगा कि गुरुद्वारो का सुधार करने के लिए महन्तो का नियत्रण किया जाय।

आहिस्ता-आहिस्ता यह आन्दोलन जोर पकडने लगा। गुरुद्वारो का प्रबन्ध अपने हाथ मे लेने के लिए उन्होने 'शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी' स्थापित की। कही-कही के महन्तो ने शिरोमणि-कमिटी की बात मान ली और अपना प्रबन्ध उसके हाथ सौप दिया। गवर्नमेण्ट भी इस बात पर विचार करने लगी कि यह काम कानूनन किया जाय और कानून बनाकर गुरुद्वारो का प्रबन्ध कमिटियो को सौपा जाय। पर कोई बात अभी तय नही हुई थी। गवर्नमेण्ट पसोपेश मे थी। अकालियो से रुष्ट होकर कुछ महन्त जोर-जबरदस्ती करने लगे। एक गुरुद्वारे मे वहाँ के महन्त ने बहुतेरे अकालियो को बडी क्रूरता से मरवा और जलवा डाला था। यह घटना कुछ पहले नानकाना-साहब-गुरुद्वारे मे हो चुकी थी। इससे अकालियो मे बहुत क्षोभ और रोष पैदा हुआ था। उन्होने गाधीजी की बतायी हुई अहिसात्मक नीति को स्वीकार किया। उन्होने यही निश्चय किया कि गुरुद्वारो को वे अहिसात्मक तरीके से अपने कब्जे मे करेगे। यह अहिंसात्मक नीति सिक्खो के लिए नयी चीज नही थी। मुसलमानी काल मे भी उन लोगो ने इस नीति को ग्रहण किया था और बहुत दुख सहे थे।

'गुरु का बाग' नामक एक स्थान अमृतसर से कुछ दूर पर है। वहाँ एक गुरुद्वारा है जो एक महन्त के कब्जे मे था। अकालियो ने इस गुरुद्वारे को अपने हाथ मे लेना चाहा। पहले महन्त ने उनकी बात मान ली। आपस मे यह तय हो गया कि गुरुद्वारा अकालियो के हाथ मे रहे और मठ महन्त के कब्जे मे। वहाँ कुछ ज़मीन भी थी जिसमे बबूल का जगल-सा था। आगे चलकर आपस मे फिर झगडा छिड गया। शिरोमणि-कमिटी की ओर से गुरुद्वारे का प्रबन्ध हो रहा था। ग्रन्थ साहब की सेवा के लिए सेवक नियुक्त थे। गुरुद्वारो मे और सिक्ख-सगतो मे अक्सर 'लगर' (भडारा) हुआ करता है। यहाँ भी वे लगर खोले हुए थे। उसमे जलाने के लिए कुछ बबूल के वृक्ष काट लाये। महन्त ने इसे रोका और पुलिस की मदद ली। सरकार की ओर से अकालियो को वहाँ जाने की मनाही हो गयी। अकालियो ने सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया। वे उस जगल मे लकडी काटने के लिए जाते, पुलिस

रोकती, न रुकने पर पहले तो उनको गिरफ्तार करती, पर पीछे केवल मारपीट कर हटाने लगी। जो अकाली वहाँ जाता वह बहुत बुरी तरह से पीटा जाता। पीछे गवर्नमेण्ट ने वहाँ जाने के रास्ते पर, कुछ दूर से ही, रोक लगा दी। अकालियो मे बहुत जोश था। वे अमृतसर के अकाल-तख्त मे जाकर, अहिंसात्मक रहकर वहाँ पहुँचने की, सौगन्द लेते। जब तक रास्ता खुला था, गुरुद्वारे मे आकर ठहरते। वहाँ से जगल मे जाते और पीटे जाते। जब रास्ता रोक दिया गया तो उनके जत्थे रास्ते मे ही रोके और पीटे जाते—इतनी बुरी तरह से पीटे जाते कि बेहोश हो जाते। उस हालत मे लोग उनको वहाँ से उठाकर अस्पताल मे, जो कायम किये गये थे, ले जाते।

इसका शोर सारे देश मे फैल गया। दूर-दूर से लोग वहाँ का सत्याग्रह देखने आने लगे। पडित मालवीयजी, हकीम साहब और दूसरे लोग भी गये। मै भी गया। अमृतसर मे वर्किंग कमिटी की एक बैठक हुई। वहाँ से हम लोग 'गुरु का बाग' देखने गये। हमने जो दृश्य देखा, उसे कभी भूल नही सकते। कुछ अच्छे तगडे जवान सिक्ख हाथ जोडे हुए आगे बढे। उधर से, लोहे और पीतल से मढी हुई लाठियाँ लिये, पुलिस के सिपाही, एक अँगरेज अफसर के साथ, आगे आये। उन लोगो को उन्होने रोका। वे लोग बैठ गये। इस पर उनको लाठियों से खूब पीटा। वे फिर उठकर खडा होना चाहते, पर मारकर गिरा दिये जाते। यह क्रम उस वक्त तक चलता रहता जब तक वे बेहोश नही हो जाते। बेहोश हो जाने पर चारपायी (अम्बुलेन्स) पर लादकर उनको दूसरे लोग उठा लाते। कभी-कभी उनका केश पकड कर उन्हे घसीटा भी जाता। लोग यह देखने के लिए जमा होते, पर एक आदमी भी कभी हाथ न उठाता। जो पीटे जाते वे बेचारे भी कभी हाथ न उठाते। यह अहिसात्मक सत्याग्रह का एक अत्यन्त ज्वलन्त उदाहरण सारे देश के सामने आ गया। सारे देश मे, बडी उत्सुकता के साथ, 'गुरु का बाग' की खबरे पढी जाने लगी। हजारो आदमी गिरफ्तार हुए। शिरोमणि-कमिटी के प्रमुख सदस्य भी गिरफ्तार हुए। बहुतेरे लोग तो यो ही पीटे गये। जो अकाली-सत्याग्रह मे शरीक होते उनमे बहुतेरे ऐसे थे जो जर्मन-युद्ध मे ब्रिटिश सरकार की ओर से बहादुरी से लडे थे। गवर्नमेण्ट का कहना था कि महन्त की जमीन को, जिस पर उसका कानूनी हक था, वह कैसे छीन ले और जब महन्त अपना कब्जा कायम रखने मे गवर्नमेण्ट की मदद माँगता है तो वह कैसे इनकार कर सकती है। इसी कानूनी उधेड-बुन मे बहुत-से लोग जेल गये। इसी कारण बहुत-से लोग बुरी तरह से पीटे जा रहे थे। पुलिस के एक सुपरिण्टेण्डेण्ट ने लाठी चलाने की कला को भी वह रूप दे दिया था जो फौज मे और-और हथियारो के चलाने को दिया जाता है। उसने इसके लिए कवायद के नियम बना दिये थे। किसी नायक या सरदार के हुक्म के अनुसार सभी सिपाही लाठियो से पीठ पर अथवा सिर पर वार करते थे। अथवा, दोनो जघो के बीच मे लाठी लगाकर फोते पर चोट करते या पेट मे मारते थे। इस तरह अफसरो के हुक्म के मुताबिक ही चोट की जाती। सिक्खो की हिम्मत और बर्दाश्त की शक्ति भी अद्भुत थी।

हम लोग वहाँ गये और अपनी आँखो सारा काण्ड देखकर हमे विश्वास हो गया कि सच्चा सत्याग्रह भी किया जा सकता है। उसके लिए बहादुरी, हिम्मत और दुख सहने की शक्ति चाहिए। वह शक्ति यदि हट्टे-कट्टे जवाँमर्द भी विना हाथ उठाये दिखला सके, तो कोई भी शक्ति उनको दबा नही सकती।

सरकार की ओर से कोशिश हुई कि कोई रास्ता निकाला जाय। एक रास्ता निकल भी गया। सर गगाराम ने, जो एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, महन्त से जमीन का बन्दोबस्त लेकर अकालियो को दे दिया। सरकार को अब जबरदस्ती रोकने की जरूरत नही रह गयी। कुछ दिनो के बाद एक कानून भी बना, जिसके अनुसार अब गुरुद्वारो का प्रबन्ध होता है। पर यह सब जल्दी नही हुआ। इसमे समय लगा। बहुतो को बहुत कष्ट भी सहना पडा। सत्याग्रह की उपयोगिता और उसमे निहित सभावना (Possibility) साबित हो गयी। इसका श्रेय सिक्खो को है। उन्होंने इसे अपनी सत्य निष्ठा और शक्ति से दिखला दिया।

दूसरी घटना भी पजाब मे ही हुई। हम लोग अमृतसर से ही मुलतान गये। वहाँ एक दूसरे प्रकार की घटना हुई थी। मुलतान मे ताजिया का जलूस निकला। उसी जलूस के कारण बडा भारी हिन्दू-मुस्लिम दगा हो गया। मुसलमानो का कहना था कि हिन्दुओ मे से किसी ने ताजिया पर ढेला फेका। हिन्दुओ का कहना था कि उनकी ओर से कुछ नही किया गया—मुसलमानो की ओर से हिन्दुओ को लूटने की तैयारी पहले से थी, ताजिया तो सिर्फ बहाना था। जो भी कारण हो, मगर फसाद जो हुआ उसमे बहुत ही हृदय-विदारक घटनाएँ हुईं। खबर पाकर हकीम अजमल खाँ—जो कॉग्रेस के सभापति का काम कर रहे थे—पडित मदनमोहन मालवीयजी, सेठ जमनालालजी, श्रीप्रकाशम् और मैं वहाँ गये। आपस की खीचतान इतनी जबरदस्त थी कि हम लोगो के ठहरने-ठहराने के स्थान के सम्बन्ध मे ही दोनों पक्षो मे कोई बात तय न हो सकी। इसलिए, जब हम लोग स्टेशन पर उतरे, पहला सवाल ठहरने के स्थान का सामने आया। हमने अपने दल को दो हिस्सो मे बाँट दिया। कुछ लोग मुसलमानो के मेहमान होकर वहाँ के एक नवाब के यहाँ ठहरे। कुछ लोग हिन्दुओ के मेहमान होकर दूसरी जगह ठहरे। मै हकीम साहब के साथ नवाब के यहाँ ठहरा।

हम लोगो ने बलवे के स्थानो को जाकर देखा। कितने ही हिन्दुओ के घर लूटे और जलाये गये थे। उन घरो का सारा सामान लूटा या जला दिया गया था। कितने ही आदमी मारे भी गये थे। जो लोग बचे थे उनमे से विशेषकर स्त्रियो ने घटना का बहुत ही दर्दनाक वर्णन किया, जिसका असर हम लोगो के दिल पर काफी पडा। एक जगह मैंने देखा, हकीम साहब साफ-साफ बहुत ही प्रभावित दीख रहे थे। एक स्त्री ने कहा कि सब कुछ लूट लेने और जला देने के बाद लुटेरो ने और कुछ नही पाया तो एक पिजडे को, जिसमे उसने तोता पाल रखा था, आग मे डाल दिया। राख की ढेर अभी ज्यो की त्यो थी। उसमे लोहे का पिंजडा भी पडा था। पर तोता जलकर खाक हो गया था। कई मदिरो तथा देवस्थानो की भी यही हालत हुई थी।

हम लोग वहाँ के डिपटी-कमिश्नर मिस्टर एमर्सन से भी मिले। यही पीछे गाधी-अर्विन-समझौते के समय गवर्नमेण्ट आफ इडिया के होम-सेक्रेटरी थे। उसके वाद यह पजाव के गवर्नर हुए। इनका रुख हमने कुछ ऐसा नही पाया कि आपस मे मेल-मुहब्बत कायम हो। यह कानून की दुहाई देकर वलवाइयो की सजा की वात ही जोरो से कहते रहे। हम चाहते थे कि इसके अलावा आपस मे मेल-जोल कायम करने का भी प्रयत्न किया जाय। वहाँ दोनो पक्ष के मुख्य-मुख्य लोगो की एक छोटी सभा हुई। उनमे वाते करने के वाद हमने देखा कि यद्यपि लोगो मे कशीदगी (मनमुटाव) वहुत है, तो भी दोनो मिल-जुलकर रहने के लिए तैयार-से मालूम होते थे। मुसलमानो को वहुत फिक्र इस वात की थी कि उन्ही के आदमी गिरफ्तार हुए थे और हो रहे थे—सव मुकदमे उन्ही लोगो पर चलेगे और हो सकता है कि उनको लूट के लिए मुआवजा भी देना पडे। पीछे एक वडी सभा हुई जिसमे हकीम साहव और पडित मालवीयजी के भाषण हुए। आपस मे मेल-जोल वढाने के लिए हम लोगो ने एक गैर-सरकारी कमिटी कायम कर दी, और वहाँ से चले आये।

वहाँ के सारे दृश्य का मुझ पर वहुत असर पडा। मैने देखा कि पडित मालवीयजी भी वहुत ही प्रभावित हुए थे। उन्होने वहाँ पर हिन्दुओ से कहा—तुमको भी सगठित हो जाना चाहिए, तुम्हे अपने जान-माल और इज्जत पर हमला करनेवाले का मुकावला करना चाहिए। सरकार से भी उन्होने अनुरोध किया कि वलवाइयो को सजा देनी चाहिए।

हमारे वहाँ जाने का इतना असर मालूम हुआ कि कशीदगी (खीचतान) कम हो गयी। जहाँ वे लोग आपस मे एक साथ वैठकर यह तय नही कर पाते थे कि हम लोग कहाँ ठहराये जायँगे, वहाँ अव वे एक साथ कमिटी के मेम्वर वनने को तैयार हो गये। सव लोग मेल-जोल वढाने के प्रयत्न मे लग गये। हकीम साहव ने एक वयान प्रकाशित किया, जिसमे उन्होने मुसलमानो की कार्रवाइयों की निन्दा की और हिन्दुओ को सान्त्वना दी।

गया-काँग्रेस के समय कुछ लोगो का यह भी विचार हुआ कि जैसे वहाँ खिलाफत-कान्फ्रेन्स होगी वैसे हिन्दू-सभा भी होनी चाहिए। प्रवन्धको ने पडित मालवीयजी को सभापति वनाने का आग्रह किया। मुझ पर वहुत जोर डाला गया कि मै भी यदि आग्रह कर दूँ तो पडित मालवीयजी स्वीकार कर लेगे। मुझसे यह भी आग्रह किया गया कि मै स्वागताध्यक्ष वन जाऊँ। उस समय तक हिन्दू-सभा ने, यदि उसका अस्तित्व हो भी तो, कोई वैसा महत्त्व नही पाया था जैसा अव प्राप्त है और न उसकी नीति ही काँग्रेस विरोधी थी। साथ ही, खिलाफत-कमिटी काँग्रेस के साथ-साथ हुआ करती थी। इसलिए काँग्रेस के साथ हिन्दू-सभा का कोई विरोध नही था और न होने की कोई सम्भावना दीखती थी। मैने स्वागताध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया। पूज्य मालवीयजी भी सभापति वन गये। गया मे कोई ऐसी कार्रवाई भी नही हुई जिससे किसी को आपत्ति हो सकती थी। पर पडित मालवीयजी ने

अपने भाषण मे मुलतान की घटना का वर्णन किया। उन्होने हिन्दुओ को भी आत्म-रक्षा के लिए तैयार होने का आदेश दिया। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि यद्यपि वहाँ कोई बडी बात नही हुई, तथापि भविष्य मे हिन्दू-महासभा के अलग हो जाने की स्थिति की नीव पड गयी। इसमे मेरा भी भाग रहा। पीछे जब हिन्दू-सभा और कॉंग्रेस मे मतभेद स्पष्ट हो गया, तो पडित मालवीयजी न मुझसे कहा भी कि मैने, तुम्हारे कहने से ही गया के अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार किया था और सभा की स्थायी नीव डाली थी। मै इसको इन्कार नही कर सका और न आज भी कर सकता हूँ। उस समय, जहाँ तक मै समझ सका, गया मे मुसलमानो ने भी महासभा के सगठन मे कोई खास बुराई नही देखी। और अगर देखी भी हो, तो हम लोगो को बताया नही।

जैसा मै ऊपर कह आया हूँ, मुलतान के दगे के बाद से हिन्दू-मुसलमानो के बीच कशीदगी बढती गयी। अनेक स्थानों से हिन्दू-मुस्लिम दगो के होने की खबरे आने लगी। कॉंग्रेसी हिन्दू और मुसलमान परिस्थिति पर काबू करने के प्रयत्न मे लगे रहते, पर किसी न किसी कारण बलवे हो ही जाते। इन दगो मे, अधिकतर स्थानो मे, प्राय हिन्दू ही अधिक पिटते। इसी कारण हिन्दू-सगठन का जन्म हुआ। शुद्धि का जन्म तो धार्मिक प्रवृत्ति से हुआ था। यदि शुद्धि भी कट्टरता का रूप धारण न करती तो शायद उससे अधिक चिढ भी पैदा न होती। पर १९२३ से—लगातार तीन-चार वरसो तक—हिन्दुओ मे शुद्धि और सगठन का तथा मुसलमानो मे तबलीग और तनज़ीम का हो-हल्ला रहा जिसका नतीजा यह हुआ कि आहिस्ता-आहिस्ता कॉंग्रेस से बहुतेरे मुसलमान और बहुतेरे हिन्दू भी अलग होने लगे।

४६—गया-कॉंग्रेस (क)

गया-कॉंग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले स्वागत-समिति मे एक घटना हुई जिसका जिक्र कर देना जरूरी है। एक सज्जन ने स्वागत-समिति को ५०००) देने का वचन कुछ महीने पहले दिया था। रुपये की जब जरूरत महसूस होने लगी तब उनसे तकाजा किया गया, पर वह अब-तब करते गये। जब स्वागताध्यक्ष के चुनाव का दिन निश्चित हो गया और स्वागत-समिति की बैठक की गयी तो उसी दिन उन्होने स्वागत-समिति की सदस्यता के लिए दो सौ दर्खास्तो पर दस्तखत कराकर, फी दर्खास्त २५) के हिसाब से, ५०००) रुपये भेजे। उनकी इच्छा थी कि वह इस तरह से स्वागताध्यक्ष चुन लिये जायँगे, क्योकि और किसी की तरफ से कोई चुने जाने की कोशिश नही की गयी थी। यद्यपि सदस्यो की सख्या काफी थी तथापि सब सदस्य उस सभा मे, जो कॉंग्रेस के चन्द दिन ही पहले हो रही थी, आये नही थे। हमको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। हमने समझा कि यह एक प्रकार का कुचक्र है और वह सज्जन सारे सूबे की आँखो मे धूल डालकर, सारे प्रान्त के प्रतिनिधि-रूप मे, आगन्तुक नेताओ के स्वागत करने का श्रेय लेना चाहते है। यदि उन्होने कॉंग्रेस की

कुछ बडी सेवा की होती, तो शायद मुझे इतना क्षोभ न होता। पर ऐसी कोई सेवा भी उनकी नही थी। उन्होंने इस प्रयत्न को सब लोगो से गुप्त रखा था। इससे वह क्षोभ और भी अधिक हो गया। हमने उनके रुपये, कारणो के साथ, वापस कर दिये। यद्यपि रुपयो की जरूरत थी तथापि हमने यही ठीक समझा कि इस प्रकार के फरेब को रोकना ही उचित है। सब की इच्छा थी कि स्वागताध्यक्ष का पद श्री व्रजकिशोर-प्रसाद को दिया जाय। स्वागत-समिति ने सर्व-सम्मति से उनको ही स्वागताध्यक्ष चुना।

कॉंग्रेस के अधिवेशन के दिन निकट आ गये, पर अभी काफी झोपडे तैयार नही हुए थे और न पडाल ही तैयार हुआ था। गया मे सर्दी काफी पडती है। उस साल कुछ विशेष सर्दी थी। झोपडो के लिए कुछ और भी नये कण्ट्राक्टर मुकर्रर किये गये, पर पडाल का काम पूरा होता नजर नही आता था। उन दिनो कॉंग्रेस एक बडे शामियाने के अन्दर ही हुआ करती थी, आज-कल की तरह खुले मैदान में नही। लोगो के बैठने के लिए जमीन ऊँची-नीची ढालू बनानी पडती थी। आशा थी कि और सब काम तो पूरा हो जायगा, पर मिट्टी भरने का काम पूरा न हो सकेगा।

कॉंग्रेस के अधिवेशन के दो दिन पहले, राँची-जिला और उसके आस-पास के आदिवासी लोग, प्राय तीन-चार सौ की सख्या मे, पैदल चलकर गया मे पहुँच गये। वे लोग अपने साथ हाँडी और लकडी भी बहँगियो पर लादकर लाये थे। प्रायः डेढ-दो सौ मील की दूरी से, लगातार कई दिन चलकर, गया पहुँचे थे। कॉंग्रेस मे उन लोगो की श्रद्धा इतनी बढ गयी थी कि उसके नाम पर सब कुछ करने को तैयार रहते थे। कभी-कभी नासमझी का काम भी कर दिया करते थे। जब असहयोग का आन्दोलन जोरो से चल रहा था, उनको अहिंसा का अर्थ किसी ने यह बता दिया था कि बकरियाँ मास के लिए ही पाली जाती है, इसलिए उनका पालना भी ठीक नही है। मालूम नही, यह प्रचार किसकी ओर से किया गया, पर नतीजा यह हुआ कि हजारों बकरियो को उन्होने यो ही जगलो मे छोड दिया। मै जब एक बार सफर मे उधर गया था तो इन बकरियो को देखा भी था और वही मुझे यह बात मालूम हुई थी। उन्ही लोगो की एक जमात उसी श्रद्धा के साथ गया मे पहुँची। उन्होने स्वागत-समिति से केवल इतनी ही फरमाइश की कि हम लोगो के लिए किसी बगीचे, मे कुछ खाली जमीन बतला दी जाय, हम वही ठहरेंगे और रसोई बनाकर खायँगे। वे लोग काम करने मे भी खूब मेहनती थे। उनसे किसी ने जाकर कहा कि कॉंग्रेस के पडाल में मिट्टी भरने का काम पूरा नहीं हो रहा है जिसके कारण हम लोग बहुत चिन्तित हो रहे है। उन्होने हमसे कुदाल और टोकरियाँ माँगी। उनको सब सामान दिये गये। बस वे सभी इस काम मे लग गये। दिन-रात काम करके, दो दिनो के भीतर, सब काम पूरा कर दिया। हम लोग उनके उत्साह और परिश्रम को देखकर चकित रह गये। स्वागत-समिति की ओर से उनमे से प्रत्येक को एक गाधी-टोपी और स्वागत-समिति की मेम्बरी का एक फूल दिया गया। वह फूल टोपी पर जड दिया गया। इससे वे बहुत खुश हुए। कई बरसो के बाद भी, जब मै उस इलाके मे दौरे

पर गया, उन्होने बडे गौरव के साथ फूल-टँकी टोपियाँ दिखलाइ। इस तरह मुझे याद दिलाया कि वे गया-काँग्रेस मे गये थे।

अधिवेशन के चन्द दिन पहले मुझे दमे का दौरा हो गया। मुलतान की यात्रा मे मैंने पहले-पहल महसूस किया था कि साँस की कुछ दिक्कत हो रही है। उसके पहले जाडो मे खाँसी हो जाया करती थी, पर साँस की तकलीफ मैंने कभी महसूस नही की थी। खाँसी के कारण ही मैं नागपुर-काँग्रेस मे शरीक न हो सका था। मुलतान की यात्रा मे हकीम अजमल खाँ के साथ ही मै था। उन्होने देखा और कहा कि दमा हो रहा है। उन्होने एक दवा भी दी, जिससे उस समय मै अच्छा हो गया। जब दिसम्बर की सर्दी बढी तो गया मे फिर दौरा हो गया, पर वही के एक हकीम की दवा से मै शीघ्र ही अच्छा हो गया। जिस दिन देशबन्धु दास सभापति होकर गया पहुँचे और जलूस निकला, मै न तो स्टेशन पर स्वागत के लिए जा सका और न जलूस ही देख सका, पर अपनी कमजोरी की हालत मे ही विषय-निर्धारिणी समिति मे शरीक हुआ। कुछ प्रबन्ध के काम की देख-रेख भी करता रहा। प्रबन्ध के काम का भार विशेषकर श्री अनुग्रहनारायणसिंह पर पडा। भोजन-विभाग की जिम्मेदारी मेरे भाई साहब ने ली। उन्होने बडी खूबी से उसे निबाहा। पडाल तैयार कराने और सजाने का काम गोरख बाबू, मथुरा बाबू तथा मुजफ्फरपुर के जमीन्दार श्री वैद्यनाथप्रसादसिंह ने किया। स्वयसेवक-दल के प्रधान श्री बदरीनाथ वर्मा रहे। प्रदर्शनी का भार श्री बनारसीप्रसाद झुनझुनूवाला ने सँभाला।

स्वागत-समिति का प्रबन्ध अच्छा ही हुआ, पर मेरा विचार है कि यदि कुछ और अनुभव होता तो जितना खर्च पडा उतना न पडता। जिस समय अधिवेशन हो रहा था, मै डर गया था कि अन्त मे कुछ घाटा रहेगा। इसलिए सभी विभागो मे खर्च कम करने पर मै बहुत जोर देता रहा। गया-स्टेशन से सभा-स्थान प्राय तीन मील या इससे भी अधिक की दूरी पर था। वहाँ से लोगो को लाने के लिए हमने बहुत-सी लारियाँ भाडे पर मँगा ली थी। विचार था कि सभी लोगो से लारी का भाडा लिया जायगा। इसके लिए प्रत्येक लारी पर एक आदमी टिकट के साथ रखा गया था। पर यह प्रबन्ध नही चल सका। हम भाडे मे बहुत कम वसूल कर सके। पर सब लारियों का भाडा तो देना ही पडा। इसमे कई हजार रुपयो का नुकसान हुआ। इसी से विशेष डर हो गया था कि घाटा पडेगा, पर अन्त मे हिसाब होने पर कुछ बच ही गया—घाटा नही हुआ।

गया-काँग्रेस (ख)

गया मे काँग्रेस का अधिवेशन बडे मार्के का हुआ। पहले से ही देश मे कौन्सिल-प्रवेश की चर्चा चल रही थी। सत्याग्रह-कमिटी की रिपोर्ट ने एक होहल्ला मचा रखा था। उस पर विचार करने की बात काँग्रेस के लिए स्थगित कर दी गयी थी। पडित मोतीलालजी, हकीम अजमल खाँ और देशबन्धु दास—इन तीन बडे नेताओ की राय

पक्की थी कि जब सत्याग्रह नहीं हो सकता है तो कौन्सिलों में जाने की इजाजत मिलनी चाहिए। किन्तु अधिकांश कांग्रेसियों का विचार मालूम होता था कि गांधीजी के दिये हुए कार्यक्रम में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इसलिए दोनों पक्षों के लोग अपने-अपने विचारवालों को ही प्रतिनिधि चुनकर गया में भेजने का यथासाध्य प्रयत्न करने लगे। इसी कारण श्री जयकर तथा श्री नटराजन-जैसे प्रमुख व्यक्ति भी अपने सूबे से प्रतिनिधि नहीं चुने जा सके। यह कोई ऐसी बात नहीं थी जो चुनावों में नहीं हुआ करती है। हम जानते हैं कि इंगलैंड में मिस्टर बालफोर कई बरसों तक प्रधान मंत्री रहने के बाद भी चुनाव में साधारण मेम्बर नहीं चुने गये। उनकी पार्टी बुरी तरह हार खाकर अपने नेता को भी कुछ दिनों तक पारलेमेण्ट में नहीं देख सकी। हमारे यहाँ यह चीज अभी नई थी। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के हारने से कुछ लोगों के दिल में चोट-सी लगी। उन लोगों में मैं भी एक था।

यद्यपि श्री जयकर का विचार कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष में था और मेरा विरुद्ध, तथापि मैंने सोचा कि विचार-विरोधी होने पर भी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति का कांग्रेस में न आना ठीक न होगा—कांग्रेस चाहे जो भी फैसला करे, ऐसे योग्य आदमी की राय, उसी के अपने शब्दों में, सुन लेना कांग्रेस के लिए मुनासिब होगा। उन दिनों, कांग्रेस के विधान के अनुसार, कोई आदमी—यदि वह कांग्रेस का सदस्य है तो—किसी भी सूबे के किसी भी क्षेत्र से, प्रतिनिधि चुना जा सकता था। इसलिए मैंने प्रयत्न करके श्री जयकर और श्री नटराजन को बिहार से प्रतिनिधि चुनवा दिया। इसकी सूचना दोनों को दे दी। इससे वे बहुत सन्तुष्ट हुए। कांग्रेस में वे आये भी।

इस छोटी-सी बात को यहाँ इतने विस्तार से मैंने इसलिए लिख दिया कि उन दिनों के वाद-विवाद के उत्साह में पड़कर कुछ लोगों ने यह कह दिया कि अपरिवर्तनवादियों ने अन्याय-पूर्वक गांधीजी के नाम का सहारा लेकर प्रचार किया और कांग्रेस में वोट जुटाया। कुछ ने तो यहाँ तक कह दिया कि देशबन्धु दास के परिवर्तनवादी होने के कारण, सभापति होने पर भी, उनका वैसा सम्मान नहीं किया गया जैसा होना चाहिए था—उनके स्वागत और सेवा में भी त्रुटि की गयी, क्योंकि बिहार-सूबा गांधी-भक्त अपरिवर्तनवादी सूबा था। ये सब बातें मर्म को चोट पहुँचानेवाली थीं। जहाँ तक हो सका, हमने सेवा-सम्मान का प्रबन्ध किया था। उनके निवास-स्थान के प्रबन्ध के लिए श्री दीपनारायणसिंह को भार दिया गया था। इन्होंने अथक परिश्रम और उत्साह के साथ काम किया था। यह ठीक है कि अपनी अस्वस्थता के कारण मैं बहुत दौड़-धूप न कर सका, पर दूसरे सभी लोग दिन-रात काम करते रहे। सभापति की तथा उनकी पार्टी की पूरी खातिरदारी हुई। किसी तरह की त्रुटि नहीं होने पायी।

देशबन्धु दास का भाषण बहुत बड़ा और मार्के का था। पर उसमें कौन्सिल-प्रवेश पर बहुत जोर दिया गया था। विषय-निर्वाचिनी समिति में कौन्सिल-प्रवेश पर बहस करने का प्रस्ताव पेश किया गया। सभापति ने कहा कि उनके विचार उनके

भाषण मे दिये गये है, इसलिए उनका भाषण हो जाने के बाद ही इस विषय पर विचार किया जाय, ताकि प्रतिनिधियो को उनके विचार जान लेने का मौका मिल जाय और तब वे अपनी राय कार्यकारिणी समिति में दे। इसलिए शुरू मे सभापति ने इस बहस की इजाजत नही दी। पीछे तो कई दिनो तक बहस होती रही जिसमे दोनो पक्षो के लोगो ने खूब भाग लिया। रात या सवेरे के समय, जब विषय-निर्वाचिनी की बैठक से फुर्सत रहती, प्रतिनिधियो की अलग-अलग सभाएँ हुआ करती, जिनमे लोग अपने-अपने विचारों की पुष्टि करते। बहस बहुत गरमागरम होती।

विषय-निर्वाचिनी समिति ने कौन्सिल-प्रवेश की बात को बहुमत से नामजूर कर दिया। इसलिए यह बात एक सशोधन के रूप मे ही खुली कॉंग्रेस के सामने आयी। काँग्रेस मे भी वैसी ही गरमागरम बहस कई दिनो तक चलती रही। कॉंग्रेस के लिए जो समय निर्धारित था उससे दो या तीन दिन अधिक समय लगा। मैंने भी खुली सभा में कौन्सिल-प्रवेश का जोरो से विरोध किया। हमारे विचार के नेता थे श्री राजगोपालाचारी। वह भी उन दिनो दमा से रोग-ग्रस्त थे, पर विषय-निर्वाचिनी समिति और कॉंग्रेस मे उन्होने अद्भुत परिश्रम और चमत्कार से अपने पक्ष का समर्थन किया। श्री श्रीनिवास अयगर ने समझौते के लिए एक सशोधन पेश किया। वह नामजूर हुआ। अन्त मे जब मूल प्रस्ताव पर सम्मति ली गयी, तो बहुत बडे बहुमत से कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रस्ताव नामजूर हो गया। शायद कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष मे एक-तिहाई और विपक्ष मे दो-तिहाई प्रतिनिधियो के मत आये।

यह समझना भूल होगी कि सिविल-डिस ओबिडियन्स-एनक्वायरी-कमिटी ने अथवा गया-कॉंग्रेस ने केवल एक ही विषय पर विचार किया या प्रस्ताव पास किया था। कमिटी की रिपोर्ट ने असहयोग के पूरे कार्यक्रम पर, जिसमे सत्याग्रह और करबन्दी शामिल है, विचार किया था। सभी प्रस्तुत विषयो पर उसने राय दी थी। पर उन विषयो के सम्बन्ध मे इतना मतभेद नही था, इसलिए वे तह मे पड गये। गया-काँग्रेस ने भी उन विषयो पर प्रस्ताव स्वीकृत किया। सरकारी स्कूलो और अदालतो के बहिष्कार को कायम रखा। स्वदेशी-प्रचार और खादी-प्रचार पर जोर दिया गया। एक प्रस्ताव इस आशय का भी उपस्थित किया गया था कि सभी प्रकार के अँगरेजी मालो का बहिष्कार किया जाय, और इस विचार से, बहिष्कृत किये जानेवाले मालो की सूची बनाने के लिए, तथा बहिष्कार के उपाय निर्धारित करने के लिए, एक कमिटी बनायी जाय। यह प्रस्ताव विषय-निर्धारिणी में पास हो गया था, पर कॉंग्रेस ने इसे बहुमत से नामजूर कर दिया, क्योकि यह अव्यावहारिक बताया गया और इसमे हिंसात्मक वृत्ति के जाग्रत होने का भय था।

एक बहुत महत्त्व का दूसरा प्रस्ताव यह पास हुआ कि उस दिन के बाद ब्रिटिश गवर्नमेण्ट, स्वय अथवा भारतीय व्यवस्थापिका सभा की मजूरी से, जो कुछ कर्ज लेगी उसका देनदार स्वतत्र भारत नही होगा, क्योकि ब्रिटिश सरकार मनमाना खर्च करके भारत के नाम पर कर्ज लेती है और व्यवस्थापिका सभाएँ भारत का

प्रतिनिधित्व नही करती। इस प्रस्ताव में उस तिथि के पूर्व के कर्जों को स्वीकार कर लिया गया था। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध मे भी मतभेद था, पर यह भी बहुमत से पास हुआ था—यद्यपि यह विषय नया था और प्रस्ताव उपस्थित होने के पहले इस पर देश में कोई चर्चा नही हुई थी।

गया-कांग्रेस ने सत्याग्रह-जाँच-कमिटी की रिपोर्ट पर एक प्रस्ताव और भी मजूर किया कि व्यक्ति को अपने बचाव के लिए वह सभी अधिकार प्राप्त है जो कानून से उसको मिले है—अर्थात् कानूनन हिंसात्मक बचाव जहाँ तक जायज है, कांग्रेस भी उसे मजूर करती है। एक दूसरा प्रस्ताव इस आशय का भी स्वीकृत हुआ कि देश को सत्याग्रह के लिए तैयार किया जाय तथा इसके लिए पचीस लाख रुपये और पचास हजार स्वयसेवक जुटाये जायँ। इस तरह, गया-कांग्रेस मे कई प्रस्ताव पास हुए। जहाँ तक मै जानता हूँ, कांग्रेस का इतना लम्बा अधिवेशन दूसरा नही हुआ है। पर कौन्सिल-सम्बन्धी मतभेद के कारण और सब बाते गौण पड़ गयीं।

कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ गया मे खिलाफत-कान्फ्रेन्स और जमीअत-उल-उलेमा के अधिवेशन भी बड़े समारोह एव उत्साह के साथ हुए। खिलाफत-कमिटी ने भी कांग्रेस-कमिटी के साथ ही एक सत्याग्रह-जाँच-कमिटी बनायी थी। उसने भी देश में दौरा करके अपनी रिपोर्ट दी थी। वहाँ भी वही मतभेद था जो कांग्रेस में—विशेषकर कौन्सिलो के सम्बन्ध मे। इन दोनो सस्थाओ ने भी कौन्सिल का बहिष्कार जारी रखा। पर उस समय तक खलीफा और तुर्कों की हालत मे बहुत परिवर्तन हो चुका था। तुर्कों ने ग्रीस को हराकर बड़ी फतह हासिल कर ली थी। उन्होने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके सुलतान, जो खलीफा भी थे, तख्त से उतार दिये जायँ। इस सम्बन्ध मे भारत के मुसलमानों मे बडी सनसनी थी। पर जहाँ तक मै समझ सकता हूँ, उन्होंने तुर्कों की इस कार्रवाई का समर्थन ही किया, क्योंकि आशा यह की जाती थी कि ऐसे सुलतान का—जो दूसरो के हाथो मे कठपुतली बनकर देश और इस्लाम को हानि पहुँचाता था—पदच्युत होना ठीक ही है, और उसकी जगह नये और जबरदस्त खलीफा चुने जायँगे, जो इस्लाम के तीर्थों और पवित्र स्थानो की रक्षा करने की इच्छा तथा शक्ति दोनो रखते होगे। तुर्कों ने अपनी शक्ति बता दी थी, इससे यह आशा होती थी कि नये खलीफा अपने कर्तव्यों का ठीक पालन करेगे। पर पीछे कुछ दिनों के बाद तुर्कों ने खलीफा के पद को ही अपने यहाँ से उठा दिया और तुर्क प्रजातन्त्र कायम कर दिया। तुर्क प्रजातत्र मे प्रधान चुना जाया करेगा और वही प्रथा अब तक जारी है।

मुसलमानो की दूसरी बात अरब की आजादी से सम्बन्ध रखती थी। अरब और तुर्क दोनो ही धर्म में मुसलमान है, पर दोनो एक जाति के नही है। तुर्कों ने अरब पर अपना राज्य-शासन कायम कर लिया था। चूँकि वे भी मुसलमान थे इस-लिए दूसरे मुसलमान उनके सुलतान को ही खलीफा मान लेते थे। जर्मन-युद्ध मे जब जर्मनी से मिलकर तुर्की लडने लगा, तो अँगरेजो ने तुर्कों के खिलाफ अरबो को उभाडा

और अरब देश के लोगो को तुर्को के शासन से मुक्त कर दिया। पर वे एकवारगी स्वतत्र नही हुए। मुसलमान चाहते थे कि अरब स्वतत्र होकर रहे पर खलीफा का चुनाव सबकी राय से हो। ऐसा नही हो सका। पीछे तो तुर्को ने खलीफा का पद ही उठा दिया। अरब की देख-रेख का भार (Mandate) इँगलैड और फ्रान्स को मिल गया। इस तरह अरब लोग अभी तक पूरे स्वतत्र नही हुए है—यद्यपि दिखलाने के लिए कुछ अधिकार उनके अमीर के हाथों मे है।

इन्ही कारणो से, कुछ दिनो के बाद, भारत मे खिलाफत का आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। यद्यपि खिलाफत कमिटी बहुत दिनो तक कायम रही, पर वह नाममात्र के लिए ही रह गयी। गया मे होनेवाले अधिवेशन के समय तक ये सब प्रश्न अभी इस तरह साफ नही हुए थे, इसलिए वहाँ भी बहुत उत्साह से खिलाफत-कान्फ्रेन्स हुई और उसने काँग्रेस का साथ दिया। यदि यह कहा जाय कि उसने काँग्रेस से अधिक जोश और जीवट दिखलाया, तो अत्युक्ति न होगी। इसका विशेष कारण था उस समय तुर्को के प्रति ब्रिटिश सरकार का रुख और उसकी कार्रवाई।

४७—स्वराज्य-पार्टी का जन्म

पहले से ही दोनों दलो मे (परिवर्तनवादियो और अपरिवर्तनवादियो मे) काफी खीचतान हो गयी थी। काँग्रेस का अधिवेशन समाप्त होते ही अखिल भारतीय काँग्रेस-कमिटी के सभापतित्व से देशबन्धु दास ने इस्तीफा दे दिया। जो लोग कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष मे थे उन्होंने मिलकर स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की घोषणा कर दी। उसके प्रमुख नेताओं मे देशबन्धु दास, प० मोतीलाल नेहरू, हकीम साहब, श्री बिट्ठलभाई पटेल, श्री केलकर प्रभृति थे। देशबन्धु दास उसके प्रमुख नायक और पडित मोतीलाल नेहरू मत्री बने। जो अपरिवर्तनवादी थे उन्होने बहुत आग्रह किया कि देशबन्धु दास सभापति बने रहे, पर उन्होने यह स्वीकार नही किया। उनका कहना था कि बहुमत उनके पक्ष मे नही है, इसलिए वह सभापति नही रह सकते—स्वराज्य-पार्टी द्वारा वह काँग्रेस का बहुमत अपने पक्ष मे लाने का प्रयत्न करेंगे, इसलिए उनका सभापति रहना मुनासिब नही होगा, उनके काम मे भी बाधा होगी।

जो वर्किंग कमिटी बनायी गयी वह भी अधिकाश अपरिवर्तनवादियो की ही। मै प्रधान मत्री चुना गया। यह बोझ मेरे लिए बहुत भारी था, पर उसे वहन करना ही पडा, क्योकि हम सभी ने मिलकर सभापति की सम्मति नही मानी थी, और अब हमारा धर्म था कि प्रजातत्र की परिपाटी के अनुसार उसके चलाने का भार सँभाले। जो हो, गया मे देशबन्धु दास का इस्तीफा मजूर नही हुआ। उस पर पुन विचार करने के लिए उनसे आग्रह करने का एक प्रस्ताव पास हुआ, पर उन्होने वही पर साफ कह दिया कि वह पुनर्विचार के लिए तैयार नही है।

नयी कौन्सिलो के चुनाव १९२३ के नवम्बर मे होनेवाले थे। इसलिए स्वराज्य-पार्टी का निश्चय हुआ कि उसके पहले काँग्रेस मे बहुमत प्राप्त कर लेना और तब

कांग्रेस की ओर से चुनाव के लिए लडना चाहिए। हम जो अपरिवर्तनवादी थे, सोचते थे कि कांग्रेस ने इस बात का निपटारा कर दिया है, अब केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर ही जोर देना चाहिए। पर ऐसा होता नही दिखाई पडता था, क्योकि कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी वाद-विवाद तो चलता ही रहा। अखिल भारतीय कमिटी की जो बैठक हुई उसमे तय हुआ कि रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर लगाया जाय, कांग्रेस के निश्चयानुसार सत्याग्रह के लिए पचीस लाख रुपये जमा किये जायँ और पचास हजार स्वयंसेवक भरती किये जायँ, ताकि सत्याग्रह आरम्भ किया जा सके। पर यह शान्ति से होनेवाला कहाँ था! कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही कुछ प्रमुख कांग्रेसी जेल से छूटे जिनमे मौलाना अबुल कलाम आजाद भी थे। बिहार के नेताओ मे मौलवी महम्मद शफी और बाबू श्रीकृष्ण सिंह भी इसी समय जेल से निकले। मौलाना आजाद जेल से निकलते ही इस फिक्र मे लग गये कि दोनों दलो में किसी तरह समझौता कराया जाय। गया-कांग्रेस के बाद वह वर्किंग कमिटी के मेम्बर चुने गये थे। उन्होने वर्किंग कमिटी की बैठक मे समझौते की बात पेश की। वर्किंग कमिटी ने उसे मंजूर कर लिया। स्वराज्य-पार्टी के सभी नेताओं से अभी उनकी पूरी बाते नही हो पायी थीं, पर जहाँ तक उनको मालूम हुआ था—पार्टीवालो को भी वे बाते मंजूर थीं। इसलिए निश्चय हुआ कि फरवरी के अन्तिम सप्ताह मे वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी की बैठक प्रयाग मे करके इस पर विचार किया जाय। मौलाना साहब, चूँकि वह इस समझौते को पूरा कराना चाहते थे, वर्किंग कमिटी से अलग हो गये जिसमे वह निरपेक्ष भाव से इसके लिए काम कर सके।

फरवरी के अन्त मे प्रयाग में सभा हुई। देशबन्धु दास ने सभापति का आसन ग्रहण किया। उस सभा मे समझौते का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। उसकी शर्तें ये थीं—(१) कौन्सिल-सम्बन्धी प्रचार ३० अप्रैल तक बन्द रहे, (२) दोनो पक्ष अपने-अपने कार्यक्रम के दूसरे मदो के सम्बन्ध मे जो काम करना चाहे करें और एक दूसरे के काम में बाधा न डाले, (३) अपरिवर्तनवादी गया-कांग्रेस के निश्चय के अनुसार सत्याग्रह के लिए रुपये और स्वयसेवक जुटावे, (४) परिवर्तनवादी, अपरिवर्तनवादियो के साथ, रचनात्मक काम तथा दूसरे ऐसे काम के लिए जिसे दोनो मानते है, रुपये जमा करने और कार्यकर्ता जुटाने मे सहयोग करेंगे, (५) ३० अप्रैल के बाद फिर दोनो पक्ष, जैसा मुनासिब समझे, अपने कार्यक्रम के अनुसार काम करे।

इसी निश्चय के अनुसार श्री राजगोपालाचारी के साथ मैंने भिन्न-भिन्न सूबो का दौरा किया। इसके पहले मैं अपने सूबे मे ही घूमा था। दूसरे सूबो का बहुत ज्ञान नही था। इस दौरे से अनेक स्थानों मे जाने का और वहाँ के कार्यकर्त्ताओ से विशेष परिचित होने का सुअवसर मिला। रुपये भी जमा किये गये। रचनात्मक कार्यक्रम पर विशेष जोर दिया गया। राजाजी ही भाषण किया करते थे। राजाजी-जैसे चतुर, प्रतिभाशाली और कुशल वक्ता कम ही है। वह अपने भाषणो मे शोरगुल नही मचाते, न हाथ-पैर पीटते है। आहिस्ता-आहिस्ता नरम शब्दो मे

अपनी युक्तियों को अनूठी तरह से श्रोताओं के सामने रखते है और उनको मोह लेते है। मैने सोचा कि मै इनके बाद क्या भाषण कर सकूँगा, चुप रहना ही अच्छा होगा। उनके भाषण के प्रभाव को मेरा भाषण कम कर देता। पर लोग चाहते कि मै भी कुछ कहूँ। इससे बचने की एक अच्छी युक्ति भी निकल आयी। राजाजी अँगरेजी मे ही भाषण करते; क्योकि वह हिन्दी नही बोल सकते थे। मैने उनके भाषणो का भाषान्तर करने का काम उठा लिया। ऐसा यदि न करता तो हर सभा मे भाषान्तरकार खोजना पडता और वह भी न मालूम ठीक भाषान्तर करता या नही। मै उनकी विचारशैली से खूब परिचित हो गया था। उनके बोलने के तरीके को भी खूब समझ गया था। इसलिए मैने देखा कि एक पथ दो काज हो जाता है—उनके भाषण का भाषान्तर हो जाता है और मै भाषण करने मे बच भी जाता हूँ। वह एक वाक्य कहते और मै उसका भाषान्तर कर देता। इस प्रकार मेरे काम मे भी सुविधा होती और लोग सब बाते ठीक-ठीक समझ लेते। प्रायः सभी सभाओ मे जहाँ हिन्दी मे भाषान्तर की जरूरत पडती, मैने यही किया। भाषान्तर का काम कठिन है—विशेषकर तात्कालिक आशु भाषान्तर का—जब कोई वक्ता धारा-प्रवाह बोलता जाता हो। पर मै इसमे दक्ष हो गया। मैने कलकत्ता-हाइकोर्ट मे देखा था कि एक भाषान्तरकार, गवाहो के इजहार मे, बैरिस्टरो के प्रश्नो और गवाहो के उत्तरो का ऐसा चमत्कारपूर्ण भाषान्तर करता था कि केवल शब्दार्थ ही नही, बल्कि प्रश्नो के पूछने के लहजे को भी भाषान्तर मे ला देता था।

कई बरसो के बाद, जब मै योरप गया और वहाँ युद्ध-विरोधी एक अन्तरराष्ट्रीय कान्फ्रेन्स मे शरीक हुआ, तो वहाँ भी एक चमत्कारी भाषान्तरकार देखा। वह जर्मन था। अभी उसकी अवस्था २४-२५ साल से अधिक नही थी। पर वह अँगरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन और एस्परेण्टो खूब जानता था। जब कोई वक्ता इन चार मे से किसी भी भाषा मे भाषण करता तो वह शीघ्र-लिपि से सारे भाषण को लिखता जाता था। जैसे ही भाषण समाप्त होता, वह खडा हो जाता और शीघ्र-लिपि द्वारा लिखित अपनी प्रति को अपने हाथो मे लेकर बाकी तीन भाषाओ मे भाषान्तर कर देता। मै यह तो नही कह सकता कि भाषान्तर कहाँ तक ठीक होता, क्योकि अँगरेजी के सिवा मै दूसरी तीन भाषाओ मे से एक भी नही जानता था, पर जैसी शुद्ध अँगरेजी मे वह भाषान्तर करता उससे मैने अनुमान कर लिया कि अन्य भाषाओं मे भी वह शुद्ध ही बोलता होगा। और, जब चारों भाषाओं मे वह धारा-प्रवाह शुद्ध भाषण कर सकता था, तो कोई कारण नही कि उसका भाषान्तर शुद्ध न होता हो। उससे परिचय हो जाने पर मैने दरियाफ्त किया, तो मालूम हुआ कि वह सस्कृत भी जानता था और किसी सस्कृत ग्रन्थ का जर्मन मे अनुवाद करने मे उस समय लगा था। मै यहाँ भाषान्तर के फेर मे बहुत बहक गया!

उस दौरे से रचनात्मक कार्यक्रम की तरफ लोगो की कुछ अभिरुचि तो हुई; पर काम बहुत आगे न बढा। दो-तीन महीनो मे उसका परिणाम कुछ दिखाया

भी नही जा सकता था। रुपये भी करीब तेरह लाख के जमा हुए, पर पूरे २५ लाख नही हुए। स्वराज्य-पार्टी को मौका मिला। उसने हमारे हार मानने की बात पेश की— अपने कार्यक्रम को स्वीकृत कराने का प्रयत्न भी किया।

४८—स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौते का निष्फल प्रयत्न

एक तरफ हम उक्त दौरे मे व्यस्त थे, दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिम झगड बढते जा रहे थे। मुलतान का जिक्र ऊपर आ चुका है। वहाँ अभी तक कुछ न कुछ मनोमालिन्य चला ही जा रहा था। इसलिए उसी वर्किंग कमिटी मे, जिसमे मौलाना साहब जेल से छूट कर शरीक हुए थे, निश्चय किया गया था कि पडित मालवीयजी के साथ मौलाना मुलतान जायँ और वहाँ के झगडे को निपटाने का प्रयत्न करे। क्षतिग्रस्त लोगो की सहायता के लिए काँग्रेस की ओर से दस हजार रुपये भी मजूर किये गये थे। पर अब झगडा केवल मुलतान मे ही नही रह गया। अमृतसर मे भी हालत खराब हो गयी। हम अपने दौरे मे पजाब की कई जगहो मे गये। देशबन्धु दास, पडित मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमल खाँ भी बराबर कोशिश करते रहे। उन्होने डाक्टर असारी प्रभृति के साथ मिलकर इस बात की कोशिश की कि कोई हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जाय जो सारे देश की बिगडती फिजाँ को सुधार सके। पर इसमे वे कामयाब नही हुए।

पजाब के दौरे के दरमियान लाहौर मे देशबन्धु दास से, राजाजी की और मेरी, मुलाकात हुई। वहाँ पर देशबन्धु दास ने स्थायी समझौते के लिए यह प्रस्ताव पेश किया कि काँग्रेस के काम कई विभागो मे बाँट दिये जायँ और प्रत्येक विभाग के चलाने का भार ऐसे व्यक्तियों पर दिया जाय, जो उसमे विशेष दिलचस्पी रखते हो— जैसे, राष्ट्रीय शिक्षा, खादी-प्रचार, कौन्सिल-विभाग, विदेशो मे प्रचार, मजदूर-सगठन, अछूतोद्धार, सत्याग्रह इत्यादि। इसके लिए पाँच-छ करोड की रकम भी जमा की जाय।

पजाब से हम लोग दौरे मे पूना गये। वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसे यह प्रस्ताव अव्यावहारिक मालूम पडा। उसने इसे नामजूर किया। उसी समय देशबन्धु दास प्रभृति का तार आया कि पजाब की स्थिति पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक प्रयाग मे तुरत की जाय। ३० अप्रैल तक का हमने कार्यक्रम बना लिया था। इसलिए उस काम को स्थगित करके वर्किंग कमिटी की बैठक इतनी जल्दी मे करना सभव न हुआ। पर राजाजी वहाँ भेज दिये गये कि जो कुछ मुनासिब हो, वह करे और अगर आवश्यक समझे तो वर्किंग कमिटी की भी बैठक करे। राजाजी वहाँ गये। देशबन्धु दास प्रभृति से उनकी बाते हुई। पर बाते पूरी नही हो पायी, इसलिए कुछ बाते दिल्ली मे हकीम अजमल खाँ के साथ हुईं। इस प्रकार जितनी बाते हुई उनका नोट बनाकर राजाजी ने हकीम साहब को दे दिया कि वह देशबन्धु दास और पडित मोतीलालजी की राय ले। राजाजी उस नोट की एक प्रति लेकर बम्बई मे वर्किंग कमिटी के दूसरे लोगो से स्वय मिलने गये। यह प्रस्ताव

न तो पंडित मोतीलालजी को मंजूर हुआ, न सरदार वल्लभभाई और सेठ जमना-लालजी को। पर इसके सम्बन्ध मे कुछ ऐसे बयान निकले और ऐसा प्रचार किया गया मानो अपरिवर्तनवादी लोगो ने ही इसे नामंजूर कर दिया। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इसी कारण, अपरिवर्तनवादियो से, जिनमे वह भी एक थी, कुछ नाराज हो गयी। उस समय के पत्रो ने भी कड़ी टिप्पणियाँ लिखीं। पंडित मोतीलालजी ने तो स्वराज्य-पार्टी की ओर से प्रचार का काम शुरू कर दिया। मई के अन्त मे होनेवाली अखिल भारतीय कमिटी की बैठक मे, जहाँ समझौते की बात पर विचार होनेवाला था, अपने न जाने की घोषणा भी कर दी तथा अपने अनुयायियो को भी जाने से मना कर दिया।

देश मे आपस के इस झगडे से लोग खिन्न हो रहे थे। कई प्रान्तीय कमिटियो ने भी राय दी कि कोई समझौता हो जाना अच्छा होगा। अपरिवर्तनवादियो मे डाक्टर असारी और श्रीमती नायडू समझौते के पक्षपाती थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू—जो गया-कांग्रेस के समय मे जेल मे थे, पर अब छूट चुके थे—समझौता चाहते थे। इसलिए एक प्रकार से समझौते के पक्ष मे अनुकूल वायुमडल तैयार हो गया। पीछे स्वराज्य-पार्टी के लोगो ने भी बम्बई मे होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक मे शरीक होने का विचार प्रकट कर दिया और शरीक हुए भी। यह बैठक मई महीने के अन्त मे हुई। वर्किंग कमिटी की ओर से यह प्रस्ताव उप-स्थित किया गया कि कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय—यदि स्वराज्य-पार्टी के लोग उसके निश्चय को मानने के लिए तैयार हो। देशबन्धु दास नें, जो सभापतित्व कर रहे थे, कह दिया कि वह इसका वादा नही करेंगे कि स्वराज्य-पार्टी विशेष अधिवेशन के निश्चय के अनुसार ही काम करेगी। इस पर वर्किंग कमिटी ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। उपस्थित सदस्यो की ओर से कई प्रस्ताव उपस्थित किये गये, जिनमे एक के प्रस्तावक और समर्थक श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और पंडित जवाहरलालजी थे। उसका आशय यह था कि देश मे चूंकि ऐसे लोग भी हैं जो चाहते हैं कि कौन्सिलो के चुनाव मे भाग लिया जाय, इसलिए आपस के झगडे को मिटाने के लिए गया-कांग्रेस के आदेशानुसार चुनाव के विरुद्ध प्रचार न किया जाय। कुछ लोगो ने यह प्रश्न उठाया कि गया-कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध होने के कारण यह प्रस्ताव अवैध (out of order) है। पर सभापति देशबन्धु ने इसको नही माना और प्रस्ताव को वैध करार दिया। यह प्रस्ताव थोडे बहुमत से स्वीकृत हो गया। हम लोग, जो गया मे वर्किंग कमिटी के मेम्बर चुने गये थे, इस्तीफा देकर अपने पद से हट गये। देशबन्धु दास की राय के मुताबिक एक नयी वर्किंग कमिटी चुनी गयी। उसमे ऐसे लोग थे जो न तो कट्टर अपरिवर्तनवादी थे और न कट्टर परिवर्तनवादी, अर्थात् जो समझौता चाहते थे। डाक्टर असारी सभापति बने। पंडित जवाहरलालजी मंत्री चुने गये।

राजाजी इस प्रस्ताव से बहुत असन्तुष्ट थे। उनका कहना था कि इस तरह

कॉंग्रेस आत्महत्या कर लेगी। उसे या तो कौन्सिलो मे जाने की सीधे तौर पर अनुमति देनी चाहिए और चुनाव के लिए लडना चाहिए, नही तो चुनाव का बहिष्कार करना चाहिए और इस बहिष्कार के लिए जनता मे पूरा प्रचार करना चाहिए। अखिल भारतीय कमिटी इन दोनो मे से एक भी नही करती थी। वह स्वराज्य-पार्टी को प्रचार का हक देती, चुने जाने का भी मौका देती, उन पर किसी प्रकार का कॉंग्रेस का नियत्रण भी नही रखती, और दूसरी ओर चुनाव के विरुद्ध विरोधियो का मुंह खोलना भी रोक देती है। इसलिए यह प्रस्ताव मान्य नही है—विशेष करके जब गया-कॉंग्रेस ने कौन्सिल-विरोधी प्रचार का आदेश दिया है। इसमे शक नही कि अधिकाश समाचार-पत्र कौन्सिल के पक्ष मे थे। कॉंग्रेस मे भी बहुतेरे लोग इस बहस से ऊब गये थे। बहुतेरो को यह समझौता अच्छा लगा। नयी वर्किंग कमिटी ने घोषणा निकाली कि गया-कॉंग्रेस का प्रस्ताव, जिसके द्वारा कौन्सिलो का बहिष्कार किया गया था, कायम है—केवल उसका प्रचार ही इस प्रस्ताव द्वारा रोका गया है। यह राय हमने बिहार-प्रान्तीय कमिटी की ओर से भी दी। पर दूसरे प्रान्तो की कई कमिटियो ने इसके विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार किया। उन्होने इस प्रस्ताव को गया के निश्चय के विरुद्ध समझ कर नही माना।

बम्बई की उक्त बैठक के बाद देश में फिर इस पर जोरो से बहस चलने लगी। जिस वाद-विवाद को रोकने के लिए बम्बई का प्रस्ताव किया गया था वह उसी तीव्रता के साथ जारी रहा। देशबन्धु दास बम्बई से मद्रास प्रान्त मे दौरा करने के लिए गये। कई स्थानो पर उन्होने बहुत ही कडुवे और उत्तेजक भाषण किये। इन्ही भाषणो मे से एक मे उन्होने, लार्ड रीडिंग के साथ समझौते की बात का इशारा करते हुए, कहा था कि उस समय के सत्याग्रह से गवर्नमेण्ट दब गयी थी—उसने झुक करके सुलह करना चाहा था—मेरे पास शर्तें भेजी थी—मैंने 'हेडक्वार्टर्स' अर्थात् गाधीजी को भेज दी थी, पर उन्होंने सब बाते गडबडा दी, ('Bungled and mismanaged') और अब हमे केवल चर्खा चलाने को कहते है। इस विषय को लेकर फिर पुरानी बाते उभडी। श्रीयुत कृष्णदास ने उस समय के उन तारो को—जो गाधीजी, पडित मालवीयजी और देशबन्धु दास ने एक दूसरे को भेजे थे—छाप दिया। पडित श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, पडित मालवीयजी और मौलाना आजाद ने—जिन्होने उस बातचीत मे भाग लिया था—अपने-अपने बयान अखबारो मे दिये।

सारे देश मे कटुतापूर्ण जोरदार वादविवाद नये सिरे से चल पडा। नतीजा यह हुआ कि वर्किंग कमिटी को कुछ लोगो ने फिर अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने के लिए मजबूर किया। एक बैठक नागपुर मे जून के अन्त मे हुई। वहाँ पर यह निश्चय हुआ कि कॉंग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया जाय, जहाँ इस कौन्सिल के प्रश्न का निपटारा किया जा सके। वहाँ एक प्रस्ताव वर्किंग कमिटी की ओर से पेश किया गया, जिसका आशय यह था कि जिन कमिटियो ने बम्बई की अखिल भारतीय कमिटी के निश्चय के विरुद्ध आवाज उठाई है और कॉंग्रेस के अनु-

शासन को भग किया है उन पर अनुशासन की कार्रवाई की जाय। इन कमिटियो मे सबसे प्रमुख स्थान तामिल-नाड कमिटी का था और इस प्रस्ताव का लक्ष्य विशेष करके श्री राजगोपालाचारी थे। इस पर बहुत गरमागरम बहस हुई। कहा जाता था कि उन्होने अखिल भारतीय कमिटी के प्रस्ताव के प्रतिकूल काम किया है। हम लोग अखिल भारतीय कमिटी के प्रस्ताव को स्वय कॉग्रेस के निश्चय के प्रतिकूल मानते थे। इसलिए हमारा कहना था कि उन्होने कॉग्रेस के आदेश का ही पालन किया है और अखिल भारतीय कमिटी ने निरकुशता से काम लिया है। बहस रात तक चलती रही। मुझे राजाजी के बचाव मे भाषण करना पडा। यद्यपि मै १९११ से बराबर अखिल भारतीय कमिटी का सदस्य रहता आया था, तथापि मै बहुत कम अवसरो पर वहाँ बोला करता था। सत्याग्रह कमिटी की रिपोर्ट पर बहस छिडने और गया-कॉग्रेस के समय को छोडकर मुझे याद नही है कि उसके पहले और कही कॉग्रेस मे या अखिल भारतीय कमिटी मे कभी भी मै बोला हूँ। गया मे मेरे भाषण हिन्दी मे ही हुए थे। नागपुर मे अँगरेजी मे बोलना उपयोगी मालूम पडा, क्योकि वहाँ दक्षिण भारत और दूसरे अहिन्दी-भाषी प्रतिनिधियो को ही अधिक समझाने की जरूरत थी। राजाजी स्वय बहुत बोलना नही चाहते थे। मैने शायद वहाँ पहली बार अँगरेजी मे भाषण किया। लोगो पर प्रभाव अच्छा पडा। श्री सत्यमूर्ति, जो स्वराज्य-पार्टी के वडे हिमायती और राजाजी के पक्ष के विरोधी थे, मेरे पास आये और मेरे भाषण के लिए उन्होने बधाई देते हुए कहा कि मै नही जानता था कि आप अँगरेजी मे इतना अच्छा बोल सकते है। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। निन्दात्मक प्रस्ताव गिर जाने पर वर्किंग कमिटी ने इस्तीफा दे दिया। नयी कमिटी बनी। हम लोग फिर वर्किंग कमिटी मे आ गये। श्री वेकटपय्या सभापति हुए। श्री गोपाल कृष्णैय्या मत्री बने। वर्किंग कमिटी के जिम्मे विशेष अधिवेशन के स्थान चुनने का काम भी दिया गया। कुछ दिनो के बाद उन्होने निश्चय किया कि वह दिल्ली मे हो। अखिल भारतीय कमिटी ने मौलाना अबुल कलाम आजाद को विशेष अधिवेशन का सभापति चुन लिया।

४९—नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह और गांधी-सेवासंघ का जन्म

दिल्ली के विशेष अधिवेशन के सम्बन्ध मे कुछ कहने के पहले नागपुर-झडा-सत्याग्रह का जिक्र जरूरी है। राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष मे १९२३ की १३वी अप्रैल को राष्ट्रीय झडे के साथ वहाँ जलूस निकाला गया। उसे मध्यप्रान्त की सरकार ने जबलपुर और नागपुर मे सिविललाइन्स मे जाने से रोक दिया। हुक्म न मानने पर पडित सुन्दरलाल प्रभृति को जबलपुर मे गिरफ्तार भी कर लिया। इससे जनता मे बहुत रोष पैदा हुआ। सत्याग्रह करने का विचार होने लगा।

सभी बडे-बडे नेता सत्याग्रह के प्रतिकूल थे। उनका विचार था कि यह कौन्सिल के कार्यक्रम को नीचा दिखलाने के लिए अपरिवर्तनवादियो का स्वॉग है। जो हो, नागपुर मे पहली मई से सत्याग्रह आरम्भ हो गया। सेठ जमनालालजी ने उसका

नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया। सत्याग्रह का रूप यह हुआ कि कुछ सत्याग्रही राष्ट्रीय झंडे लेकर, जुलूस बनाकर सिविललाइन्स की ओर जाना चाहते। एक स्थान था, जहाँ सरकार की ओर से उन्हें रोक दिया जाता और उनके न मानने पर उनको गिरफ्तार कर लिया जाता। यही क्रम प्रतिदिन चलता। बहुतेरे लोग इस प्रकार गिरफ्तार होकर जेलखानों में चले गये। सत्याग्रह की शोहरत सारे देश में फैली। सर्वत्र जगहों से सत्याग्रह करने के लिए स्वयंसेवक नागपुर पहुँचने लगे। कुछ दिनों के बाद सेठ जमनालालजी भी गिरफ्तार कर लिये गये। तब सरदार वल्लभभाई नागपुर आ गये। उन्होंने नेतृत्व ग्रहण किया। मैंने बिहार में स्वयंसेवकों का संगठन आरम्भ करके उनको नागपुर भेजना शुरू कर दिया। मैं भी उनके साथ कई बार नागपुर गया। सत्याग्रह के कारण देश-भर में हलचल मच गयी। अब अनुमान होने लगा कि सरदार वल्लभभाई भी गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। इसी कारण मेरा वहाँ जाना और भी आवश्यक हो गया।

इस प्रकार सारे देश से हजारों सत्याग्रही वहाँ गये और गिरफ्तार हुए। परिस्थिति गम्भीर हो गयी। श्री विट्ठलभाई पटेल, जो स्वराजी थे, वहाँ आकर सरदार की मदद करने लगे। सरकार ने भी सोचा कि यह सत्याग्रह बढ़ने देना उचित नहीं है। इसलिए श्री विट्ठलभाई पटेल से कुछ बातें हुईं। एक दिन झंडे के साथ-साथ जुलूस को सिविललाइन्स की ओर से जाने देकर सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। मैं उस समय नागपुर में था। आखिरी दिन का जुलूस बड़ी शान से निकला। बहुत लोग झंडे लेकर उसमें शरीक हुए। श्री विट्ठलभाई और सरदार के साथ मैं भी था। जुलूस शान्तिपूर्वक सिविललाइन्स होकर चला आया। सत्याग्रह समाप्त कर दिया गया। उसके बाद कैदी भी छोड़ दिये गये। इस सत्याग्रह का असर और जगहों में भी अच्छा पड़ा।

बिहार से अनेक सत्याग्रही गये थे, जिनमें से एक हरदेवसिंह की मृत्यु नागपुर जेल में हो गयी। उस दिन मैं वहीं था। जेल से शव हम लोगों को मिल गया। उनका दाह-संस्कार हम सबने मिलकर वहाँ किया। यों तो सरदार से मुलाकात थी ही। पर नागपुर में ही उनसे वह घनिष्ठता हुई, जो मेरे जीवन की मधुर स्मृतियों में एक हमेशा बनी रहेगी। वहीं मेरे दिल में उनकी कार्य-कुशलता, गम्भीरता और नेतृत्व-शक्ति के प्रति महान् आदर उत्पन्न हुआ। उनके प्रति ऐसी श्रद्धा अंकुरित हुई जो दिन-दिन बढ़ती गयी। वहीं मैंने उनका प्रेम और विश्वास प्राप्त किया, जो उन्होंने उसी तरह से बराबर मेरे प्रति और बिहार-प्रान्त के प्रति दिखाया है।

इन्हीं दिनों सेठ जमनालालजी की राय हुई कि परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों की आपस की बहस यदि चलती रहेगी तो रचनात्मक काम ढीला ही रहेगा। इसलिए एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय जो रचनात्मक काम पर ही अधिक ध्यान दे और उसमें ऐसे लोग ही विशेष करके रहें जो गांधीजी के सिद्धान्तों को मानते हों। इस संस्था का नाम पड़ा 'गांधी-सेवा-संघ'। श्री राजगोपालाचारी, सरदार

बल्लभभाई पटेल, श्री गगाधरराव देगपाण्डे सेठ जमनालाल बजाज प्रभृति उसके सचालक-मडल के सदस्य हुए। मै भी उसमे दाखिल हुआ। जब तक वह सस्था इस रूप मे रही, मै उसका सदस्य बना रहा। हम लोगो का बराबर यही प्रयत्न रहा कि उसे राजनीतिक झगडो से अलग रखे। ऐसा ही किया भी गया। उसके कार्यकर्त्ता विशेष करके रचनात्मक काम मे--खादी-प्रचार, हरिजन-सेवा आदि मे—लगे रहते। पर तो भी गाधीवाद के विरोधी इस बात की शिकायत जब-तब पेश कर दिया करते कि यह एक राजनीतिक दल है और स्वराज्य-पार्टी तथा अग्रगामी दल (फारवर्ड-ब्लाक) के साथ उसका नाम जोड लेते।

जो हो, गाधी-सेवा-सघ ने रचनात्मक काम मे बहुत दिलचस्पी ली। विशेषकर उसी के सदस्य इसको आगे बढाने के प्रयत्न मे लगे रहे है। इसकी शाखाएँ प्राय कई सूबो मे कायम हुई। बिहार मे भी हुई। कई सदस्यो को, जिनकी सख्या घटती-बढती गयी और सदस्य भी अक्सर बदलते गये, कुछ निर्वाह-व्यय भी मिलता रहा। किन्तु यहाँ पर उसका कोई एक केन्द्र स्थापित करके काम नही हुआ। इसका कुछ प्रयत्न, कई बरसो के बाद, सारन-जिले के 'मैरवा' गाँव मे आश्रम कायम करके किया गया। पर वह भी ठीक न चला। इसलिए इस (बिहार) सूबे मे उसका कोई देखने लायक काम हम नही बतला सकते। पर उसके कुछ सदस्यो ने रचनात्मक काम किया और कुछ राजनीतिक क्षेत्र से अलग न हो सके।

५०—दिल्ली मे कॉंग्रेस के विशेष अधिवेशन से कोकनाडा-कॉंग्रेस तक

दिल्ली के विशेष अधिवेशन के पहले मौलाना महम्मद अली जेल से छूटकर आये। हमारा अनुमान था कि वह भी कौन्सिल-प्रवेश के विरोधी ही होगे। राजाजी इस बहस से इतने ऊब गये थे कि वह दिल्ली के अधिवेशन मे आये ही नही। हमने मौलाना महम्मद अली को ही अपना नेता मान लिया। उनके ही हाथो मे सब बाते छोड दी। उन्होने निश्चय किया कि दोनो पक्षो मे समझौता हो जाय। वह निश्चय इस शर्त पर हुआ कि कॉंग्रेस की ओर से और कॉंग्रेस के नाम पर चुनाव न लडा जाय, पर यदि कोई कॉंग्रेस का आदमी चुनाव मे खडा होना चाहे तो उस पर से रोक उठा ली जाय। इस तरह स्वराज्य-पार्टी को, अपने बल पर कॉंग्रेसियो को खडा करके, चुनाव लडने का सुअवसर मिल गया। चुनाव के झगडे से कॉंग्रेस अलग रह गयी।

हम लोग इस झगडे से घबरा गये थे। हम देखते थे कि इससे रचनात्मक काम मे भी बाधा पड़ती है, क्योकि कुछ लोग—जो कौन्सिल के पक्ष मे है—कौन्सिल-पक्ष के समर्थन के साथ-साथ रचनात्मक काम का प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से चाहे विरोध न करे, पर उपेक्षा अवश्य करते थे। हम आशा करते थे कि इस समझौते के बाद दोनो पक्ष अपने-अपने काम मे लग जायँगे और हम रचनात्मक काम को आगे बढा सकेगे। मौलाना महम्मद अली ने इस बात पर जोर दिया। पर उन्होने उस

आया कि हिन्दुस्थानियो के प्रति किये गये दुर्व्यवहार से स्पष्ट हो गया है कि ब्रिटिश साम्राज्य मे हिन्दुस्थानियो के लिए स्थान नही है, अत अब हिन्दुस्थानियो को उस साम्राज्य से बाहर जाने की बात पर विचार करना चाहिए। बात ठीक थी। उस समय से आज तक जितनी कार्रवाई हुई है उससे यह बात और भी स्पष्ट होती गयी है। पर उस समय कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को, विशेषकर मौलाना महम्मद अली के जोर लगाने से, नामजूर कर दिया। मेरी सहानुभूति प्रस्ताव के साथ थी, पर हम लोगो ने इतने बडे परिवर्तन के लिए—जब हम कमजोर पड गये थे और हमारा आन्दोलन भी कमजोर पड गया था—वह समय उपयुक्त नही समझा। एक दूसरा प्रस्ताव, जिसमे साम्राज्य से अलग होने की बात नही थी, स्वीकृत हुआ।

दिल्ली के अधिवेशन के बाद मै वहाँ से ही लाला लाजपतराय को देखने के लिए सोलन चला गया। वह जेल से बीमार निकले थे और वहाँ स्वास्थ्य-लाभ के लिए ठहरे थे। उन्होने भी समझौते को पसन्द किया। वह उससे खुश थे, क्योकि उनका विचार भी स्वराज्य-पार्टी के साथ ही था। सोलन से लौटते समय मै लखनऊ मे उतरा। वहाँ मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल स्प्रासन (Lt Col. Spransos) से, जो फेफडे की बीमारियो के विशेषज्ञ समझे जाते थे, अपनी जाँच कराई। उन्होने भी मेरी बीमारी को दमा करार दिया। उसके लिए स्वामिन् का इञ्जेक्शन बताया। पटने लौटने पर उनके आदेशानुसार मैने उसका इञ्जेक्शन लिया। कुछ विशेष फल नही हुआ।

दिल्ली के अधिवेशन के बाद स्वराज्य-पार्टी ने चुनाव मे भाग लिया। मध्य-प्रान्त मे स्वराज्य-पार्टी को अधिकाश स्थानो मे सफलता मिली। वहाँ की कौन्सिल मे उसका बहुमत हो गया। बगाल मे भी अच्छी सफलता मिली, पर बहुमत नही हुआ। किसी और सूबे मे बहुत सफलता नही हुई, पर सभी जगहो मे कुछ अच्छे आदमी कौन्सिलो मे जा सके। बिहार मे भी स्वराज्य-पार्टी बनी, जिसके प्रमुख पक्ष-पातियो मे मौलवी महम्मद शफी, प्रोफ़ेसर अब्दुलबारी, श्री कृष्णवल्लभ सहाय और बाबू जलेश्वरप्रसाद थे। यहाँ चुनाव मे हममे से किसी ने भाग नही लिया। परोक्ष रीति से भी हमने मदद नही की। तो भी दस या बारह आदमी चुने गये। उन्होने कौन्सिल मे अच्छा ही काम किया। जलेश्वर बाबू ही पार्टी के नेता थे। युक्तप्रान्त मे प० गोविन्दवल्लभ पन्त पार्टी के नेता हुए। बगाल मे स्वय देशबन्धु दास। बहुमत होने के कारण मध्यप्रान्त मे स्वराज्य-पार्टी ने मन्त्रि-मडल नही बनने दिया। कुछ दिनो तक यह सिलसिला चला। पर कुछ प्रमुख व्यक्ति फूटकर अलग हो मन्त्रिमडल मे शरीक हो गये। बगाल मे देशबन्धु दास ने कुछ दूसरो के साथ मिलकर वहाँ के मन्त्रिमडल को भी कुछ काल के लिए तोड डालने मे सफलता पाई।

१९२३ इसी प्रकार समाप्ति पर आया। दिसम्बर मे कांग्रेस का सालाना अधि-वेशन कोकनाडा मे हुआ। ठीक अधिवेशन के समय मै बीमार पड गया, इसलिए कोकनाडा न जा सका। वहाँ राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए जो सभा होनेवाली थी उसका

मैं ही सभापति चुना गया था। मैंने एक लम्बा भाषण भी तैयार किया था जो पुस्तकाकार मे छपा था। जब मै ठीक रवाना होने के दिन ही बीमार पड गया तो केवल छपा भाषण ही वहाँ जा सका। मेरी जगह सेठ जमनालाल बजाज सभापति हुए। मैंने सुना कि उन्होंने मेरे भाषण को पढ सुनाया था।

कोकनाडा-कांग्रेस के सभापति मौलाना महम्मद अली हुए। उनका भाषण बहुत बडा और महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्थान की राजनीति मे, मुसलमानो के भाग स्थान की, उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचना की है। आगे के लिए भी उन्होंने बहुतेरी ऐसी बाते कही है जिनको शायद सभी लोग नही मानते। जो हो, कोकनाडा ने दिल्ली के विशेष अधिवेशन के निश्चय का ही समर्थन किया। जो इजाजत स्वराज्य-पार्टी को कौन्सिल-प्रवेश के लिए मिली थी उसे फिर मजूर कर लिया। इसके अलावा, कांग्रेस ने, हिन्दू-मुस्लिम समझौते के मसविदे को, जनता और कमिटियो के विचार के साथ अखिल भारतीय कमिटी के सामने पेश करने का आदेश दिया। खादी-प्रचार के लिए खद्दर-बोर्ड का भी सगठन किया। उत्साह बहुत था। ऐसा मालूम होता था कि जनता मे फिर जान आ गयी। ठीक कॉंग्रेस के समय ही श्री कृष्णप्रकाश सेन सिंह की दुखद मृत्यु हो गयी। हममे से एक होनहार त्यागी कार्यकर्त्ता चला गया।

५१—हाइकोर्ट में बरमा का मुकदमा

मैं पटने मे ठहर गया था। १९२४ ई० की दूसरी जनवरी से बाबू हरिजी-वाला मुकदमा, अपील मे, हाइकोर्ट मे खुलनेवाला था। मै अस्वस्थ रहकर भी उसके लिए तैयारी करता रहा। उसमे मुझे काम करना था। जनवरी के आरम्भ से मई के अन्त तक उसकी पशी रही। मेरा प्राय सारा समय उसी मे लगता रहा। हाइकोर्ट मे हम लोगो की ओर से श्री हसन इमाम और मिस्टर भानुक ने बहस की। डुमराँव के महाराजा की ओर से सर आशुतोष मुकर्जी ने बहस की। वह हाइकोर्ट की जजी से पेन्शन पाकर हाल ही निकले थे। मुझे बहुत परिश्रम करना पडा। सवेरे ही स्नानादि से निवृत्त होकर श्री हसन इमाम साहब के पास सात बजे पहुँच जाता था। जब तक वह कचहरी जाने को तैयार होने के लिए उठ न जाते तब तक उनके साथ काम करता। फिर कचहरी मे दिन-भर काम करता। सन्ध्या को फिर उनके साथ। शनिवार, रविवार को खास करके, और कभी-कभी दूसरे दिन भी, अकेले लाइब्रेरी मे काम करता। कानूनी नजीर खोजकर निकालने का काम मुझे ही सौंपा गया था। यही काम मैंने आरा मे भी किया था और यहाँ भी किया। एक विषय पर आरा मे कोई नजीर नही मिली थी। वह बहुत जरूरी विषय था। सोचने से मालूम होता था कि इस प्रकार के मुकदमे जरूर आये होगे और हमारे पक्ष की नजीर जरूर मिलनी चाहिए। पर आरा मे पटने के समान पुस्तको की विशेष सुविधा नही थी। इसलिए वहाँ यह नजीर नही मिली। पटने मे श्री हसन इमाम की लाइब्रेरी बहुत अच्छी थी। मैंने उस

प्रकार की नजीर खोजने मे बहुत समय लगाया। अन्त मे मै सफल हुआ। एक नजीर मिल जाने पर उसके पहले और पीछे की अनेक नजीरे मिल गयी। मैने जब श्री हसन इमाम को दिखलाया तो वह इतने खुश हुए कि मेरे साथ वह श्री मानुक के घर गये और उनको भी तुरत वह नजीर दिखलायी। दोनो को पूरा विश्वास हो गया कि उस विषय पर वे जरूर जीतेगे। ऐसा ही हुआ भी।

इस मुकदमे की सुनवाई के बीच मे ही सर आशुतोष की असामयिक मृत्यु पटने मे ही हो गयी। वह अपनी बहस खतम कर चुके थे। जजो के लिए जब वह कुछ नोट तैयार कर रहे थे, एक ही दिन की बीमारी मे अचानक चल बसे। मृत्यु के समय मै उनके पास ही था। पटने मे कई महीनो तक प्रतिदिन उनसे भेट होना भी मेरे लिए बडी बात थी। कलकत्ते मे तो वह जज थे और मै एक नया वकील। पटने मे दोनो एक ही मुकदमे मे काम करते थे—यद्यपि दो भिन्न पक्षो मे, तो भी सवेरे, दोपहर और इजलास उठने के बाद प्राय रोज ही दो-चार बाते आपस मे हो ही जाया करती थी। एक छोटी-सी घटना बता देना बुरा न होगा। श्री हसन इमाम उनको गुरुजी कहा करते थे। जब श्री हसन इमाम कलकत्ता-हाइकोर्ट के जज हुए थे तब सर आशुतोष उनसे सीनियर थे। शायद वही रिश्ता कायम हुआ था। अपनी बहाली के थोडे ही दिन बाद श्री हसन इमाम फौजदारी-बेच पर बैठे, जहाँ के सीनियर जज से, एक के बाद दूसरे, तीन मुकदमो मे उनका मतभेद हो गया। तीनो मुकदमे सर आशुतोष के पास, तीसरे जज की हैसियत से, भेजे गये। तीनो मे उन्होने श्री हसन इमाम के फैसले का ही समर्थन किया था। इससे कलकत्ता-हाइकोर्ट मे जल्द ही श्री हसन इमाम का बडा नाम हो गया था। श्री हसन इमाम ने पटने मे उनको एक दिन चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया। हाइकोर्ट मे ही उन्होने कहा—गुरुजी, मेरे यहाँ आप चाय पीयेगे ? सर आशुतोष ने कहा—मै कट्टर सनातनी (orthodox) जरूर हूँ और आज तक इसी कारण कभी गवर्नमेण्ट-हाउस मे चाय नही पी है, पर इसका अर्थ यह नही है कि हसन इमाम के घर मे भी चाय न पीऊँ। चाय-पार्टी मे हम सब बुलाये गये और शरीक हुए।

५२—बेतिया का मीना-बाजार

महात्मा गाधी यरवदा-जेल मे थे। वहाँ वह बहुत बीमार पड गये। 'एपिण्डिसाइटिस' का प्रकोप ऐसा हो गया कि एक दिन डाक्टरो का विचार हुआ—यदि तुरत चीरा नही लगाया जायगा तो इनकी जान नही बचेगी। यह निश्चय रात के समय हुआ। पूना के अस्पताल मे वह ले जाये गये। वहाँ के अँगरेज डाक्टर कर्नल मैडोक को चीरा लगाना पडा। महात्माजी से पूछा गया था कि आपके डाक्टर कौन है। उन्होने बम्बई के डाक्टर दलाल और डाक्टर जीवराज मेहता के नाम बताये थे। पर अब इतना समय नही था कि वे बुलाये जा सकते। गाधीजी ने भी साफ-साफ कह दिया कि उनको उस अँगरेज डाक्टर पर पूरा विश्वास और भरोसा है—वह निश्चिन्त होकर

जो मुनासिव समझे करे। उस समय श्री श्रीनिवास शास्त्री अस्पताल मे बुला लिये गये थे। वह तब तक वहाँ ठहरे रहे, जब तक नश्तर का काम समाप्त न हुआ। आधी रात के समय नश्तर लगाया गया। इसमे वह अँगरेज डाक्टर बहुत कामयाब रहा। एक छोटी दुर्घटना ठीक नश्तर लगाते समय हो गयी। ठीक उसी समय, जब छुरी चल रही थी, बिजली की बत्ती अचानक बुझ गयी। खैरियत हुई कि वह शीघ्र ही फिर बल गयी, नश्तर के काम मे कोई बडी बाधा न पहुँची।

मै उन दिनो बरमा के मुकदमे मे पटना हाइकोर्ट मे काम कर रहा था। अखबारो मे बीमारी और नश्तर लगाये जाने की खबर छपी। पढ़कर सारे देश मे चिन्ता व्याप गयी। मैंने तीन-चार दिन की छुट्टी ली। सीधे पूना चला गया। अभी महात्माजी अस्पताल मे ही थे और बहुत कमजोर थे। मैंने जाकर उसी हालत मे उनका दर्शन किया। हालचाल जानकर पटना वापस चला आया। उस समय यह मालूम हो गया था कि अब जान का कोई खतरा नही है, पर कमजोरी इतनी ज्यादा थी कि कुछ दिनो तक अच्छी तरह आराम करना जरूरी था। मेरे पटने लौटने के बाद शीघ्र ही खबर मिली कि गवर्नमेण्ट ने महात्माजी को छोड दिया। खबर पहुँचते ही पटने मे एक सभा हुई जिसमे मैंने भी भाषण किया। गाधीजी से जो मेरी बाते पूना-अस्पताल मे हुई थी उन्हे सभा को बताया। साराश यह था कि महात्माजी बीमारी के कारण रिहाई से प्रसन्न न होगे। यह तो देश के लिए भी शर्म की बात है कि हम अपनी शक्ति से नही, पर गवर्नमेण्ट की दया से उनको छुडा सके। रिहाई के बाद अपने वक्तव्य मे गाधीजी ने यही कहा भी था।

कुछ दिनो तक अस्पताल मे रहकर, अच्छे होने पर, महात्माजी बाहर निकले। निश्चय हुआ कि आराम करने के लिए वह समुद्र के किनारे बम्बई के पास जूहू मे, जाकर कुछ दिनो तक ठहरे। इसी निश्चय के अनुसार वह वहाँ जाकर कुछ दिनों तक ठहरे रहे।

इसी समय एक घटना बेतिया (चम्पारन) मे हुई, जिसका जिक्र यहाँ आवश्यक जान पडता है। बेतिया राज बहुत दिनो से कोर्ट आफ वार्ड्स के अधीन है। उन दिनो उसके मैनेजर मिस्टर रुथरफोर्ड थे। यह पहले नीलवर थे। गवर्नमेण्ट की नीति उन दिनो मे अक्सर यही होती कि जहाँ-कही कोई जमीन्दारी कोर्ट के कब्जे मे आती और मैनेजर की जरूरत होती, उसके लिए कोई न कोई नीलवर ही मुकर्रर किया जाता। इसी नीति के अनुसार मिस्टर रुथरफोर्ड की नियुक्ति कई साल पहले हुई थी। उनके पहले भी उस राज के लिए जो मैनेजर नियुक्त किये गये थे, नीलवरो मे से ही थे। अस्तु, १९२२ मे, बेतिया-म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरो का चुनाव हुआ। उसमे कुछ काँग्रेसी लोग भी चुने गये। चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन के चुनाव के लिए उमीदवार खडे हुए। उनमे चेयरमैनी के लिए स्वय मिस्टर रुथरफोर्ड खडे हुए। उनके साथ वाइस-चेयरमैनी के लिए वहाँ के सब-रजिस्ट्रार खडे किये गये। काँग्रेस की ओर से श्री विपिनविहारी वर्म्मा और श्री प्रजापति मिश्र खड़े हुए। राज के लिए,

विशेषकर मिस्टर रुथरफोर्ड के लिए, किसी का उनके मुकाबले मे खडा होना ही बहुत बुरी बात थी। उनको हराकर कॉंग्रेसी चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन का चुना जाना तो असह्य था। फिर १९२४ मे नया चुनाव हुआ। इस बार कॉंग्रेसी मेम्बरो का बडा बहुमत हो गया। इसलिए राज की ओर से कोई चेयरमैनी के लिए नही खडा किया गया। वही श्री विपिनविहारी वर्म्मा और प० प्रजापति मिश्र चुने गये। यद्यपि राज के उमीदवार नही खडे हुए तथापि राज के लोग मिस्टर रुथरफोर्ड की हार को भूले नही थे। इस बात की अफवाह अक्सर उठा करती थी कि राज की ओर से कुछ न कुछ करके दिखाया जायगा।

महात्माजी की बीमारी के कारण देश भर मे खलबली थी। मौलाना महम्मद अली ने कॉंग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से आदेश दिया कि देश मे सब जगह सभाएँ करके महात्माजी के आरोग्य-लाभ के लिए ईश्वर-प्रार्थना की जाय। बेतिया मे भी सभा होनेवाली थी। वहाँ राज की ओर से एक मीना-बाजार बसाया गया है जिसमे शहर के व्यापारी अपनी-अपनी दूकाने भाडे पर रखते है। उस दिन प० प्रजापति मिश्र और एक दूसरे कॉंग्रेसी बाबू जयनारायण बाजारवालों को प्रार्थना-सभा मे जाने के लिए कहने गये। राज के एक कर्मचारी ने बाबू जयनारायण को दो चपत लगाकर दोनो को बाजार से बाहर निकाल दिया। दूकानदारो मे बडी सनसनी फैली। यदि मिश्रजी लोगो को न रोकते तो झगडा बढ जाता। इसके बाद सभा हुई और बाजार के लोग काफी सख्या मे उसमे शरीक हुए। इतना ही नही, दूकानदारो ने निश्चय किया कि वे मीना-बाजार से अपनी दूकाने उठा लेगे और म्युनिसिपैलिटी से जमीन माँगकर अन्यत्र कही दूकाने लगायँगे। दूसरे दिन से बाजार खाली होने लगा। एक तरफ कुछ हटकर दूकाने लग गयी। दो-चार दिनो मे ही एक नया बाजार बस गया। मीना-बाजार प्राय खाली हो गया। इससे राज को और भी धक्का लगा। अब खबर उड़ने लगी कि कॉंग्रेस-वाले पीटे जायँगे, पर कॉंग्रेसियो ने इस तरह की खबरो की परवा नही की।

एक दिन सध्या को प० प्रजापति मिश्र एक टमटम पर कही जा रहे थे। किसी ने उनके सिर पर बडे जोर से लाठी मारी। वह प्राय बेहोश हो गये। वह आदमी मैनेजर की कोठी की ओर भाग गया। सुना गया कि उसको लेकर राज-कर्मचारी मजिस्ट्रेट के पास भी गये और कुछ कार्रवाई करके उसे वहाँ से हटा दिया। इससे सारे शहर के लोगो मे रोष छा गया। मेरे पास तार आया। मै तुरत वहाँ गया। सब बातो की जानकारी प्राप्त की। मीना-बाजार मे, इस मार के पहले, कुछ बडी-बडी दूकाने रह गयी थी। अब वे दूकानदार भी निकल आये। एक सुन्दर बाजार बस गया। म्युनिसिपैलिटी की आमदनी बढने की तो आशा हो गयी, पर राज को प्राय. पचास हजार सालाना घाटे की आशका हुई। प० प्रजापति मिश्र ने बहुत ही हिम्मत और शान्ति से काम लिया। उन्होने खाट पर पडे-पडे ही लोगो को शान्त रहने का सदेश भेजा। उस हमला करनेवाले पर किसी प्रकार की कार्रवाई न करने का भी निश्चय किया। मालूम हो गया कि यह सब राज के उच्च कर्मचारियो के

इशारे पर ही हुआ है। कॉंग्रेस के प्रति जनता की श्रद्धा का परिचय मिला। जो छोटे बडे दूकानदार मीना-बाजार के पक्के मकानो मे दूकान रखते थे, वे सबके सब खुले मैदान मे अथवा टाट के छप्पर के नीचे दूकाने उठा लाये। नये बाजार मे मिट्टी के बर्तनो की दूकान से लेकर सोने-चाँदी की दूकाने तक उसी तरह आ गयी। इसका डर था कि इस तरह के बाजार मे चोरी-डकैती न हो जाय। पुलिस से मदद की आशा थी नही। इसलिए बाजार की हिफाजत के लिए शहर मे स्वयसेवक-दल कायम हो गया। वह दिन-रात पहरा देता। लोगो मे बडा उत्साह था। यह झगडा बहुत दिनो तक चलता रहा। बहुत दिनो के बाद, यद्यपि मीना-बाजार मे दूकाने खुल गयी तथापि नया बाजार भी रह ही गया।

इस घटना की खबर पाकर मै बेतिया गया था। वहाँ से जाँच करके लौटने के बाद एक बयान मैने अखबारो मे छपवाया था। उसमे सब बाते खोल करके कह दी थी। कुछ दिनो के बाद बेतिया मे बिहार-प्रान्तीय कॉंग्रेस कमिटी की बैठक हुई। प्रान्तीय कमिटी के सभापति मौलाना मजहरुल हक साहब और दूसरे नेता लोग भी पधारे थे। वहाँ पर निश्चय किया गया कि बेतिया की हालत यदि न सुधरी—और जैसी अफवाह फैल रही थी कि दूसरे कॉंग्रेसी लोग भी, जिनमे विपिन बाबू मुख्य थे, प० प्रजापति मिश्र की तरह लाठियो के शिकार बनाये गये—तो प्रान्तीय कमिटी को मजबूर होकर बेतिया के रैयतो से लगान देना बन्द करने को कहना पडेगा और इसके लिए जो बलिदान करना पडेगा उसके लिए जनता को तैयार होना होगा। एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमे यह निश्चय घोषित कर दिया गया। बिहार-कौन्सिल मे भी यह प्रश्न छिडा। उस समय स्वराजी लोगो ने बहुत जोरदार बहस की। जलेश्वर बाबू उनके नेता थे। उन्होने खुद इस मामले की जाँच की थी। स्वय हमला करनेवाले ने ही उन्हे सारी सच्ची बाते बतला दी थी। उसी के आधार पर उन्होने सारी बाते खोलकर कौन्सिल मे कह सुनायी।

५३—जूहू की बातचीत और उसके बाद

महात्माजी आराम तो कर रहे थे, पर काम भी कर रहे थे। ज्यो ही वह इस योग्य हुए कि कुछ बातचीत कर सके, लोग उनसे मिलने के लिए वहाँ पहुँचने लगे। उनकी गैरहाजिरी मे जो कुछ हुआ था, विशेषकर कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी आन्दोलन, उसकी सब बाते लोगो ने उन्हे बतायी। देशबन्धु दास और पडित मोतीलाल नेहरू भी वहाँ गये और कुछ दिनों तक ठहरे। वहाँ इस सम्बन्ध की बाते हुई और इसका प्रयत्न किया गया कि आपस के समझौते का कोई रास्ता निकले। कौन्सिलो मे स्वराज्य-पार्टी की ओर से कुछ काँग्रेसी लोग जा चुके थे। इसलिए इस प्रश्न का उतना महत्त्व अब नही था जितना गया और दिल्ली की कॉंग्रेस के समय मे था। पर यह जानकर मुझ-जैसे लोगो को सन्तोष हुआ कि गाधीजी ने हमारी कौन्सिल-निषेध-सम्बन्धी कार्रवाई को पसन्द किया। सन्तोष का कारण यह था कि हमसे बराबर कहा

जाता था कि गाधीजी यदि बाहर होते तो वह इस विषय मे इतनी जिद् न करते, कोई न कोई समझौता कर लेते। पर वह उसके विरोधी अब भी उतनी ही सख्ती के साथ थे जितनी दृढता से उस समय थे जब उन्होने इस कार्यक्रम को देश के सामने रखा था।

जूहू मे बातचीत के बाद गाधीजी ने एक वक्तव्य निकाला जिसमे उन्होने साफ कहा कि वह अब भी पच-बहिष्कारो के पक्ष मे है और उनकी राय मे कौन्सिलो मे जाना असहयोग की नीति के विरुद्ध है, पर वह इस राय मे देशबन्धु दास, प० मोतीलाल नेहरू तथा स्वराज्य-दल के दूसरे लोगो को न ला सके—वे लोग कौन्सिलो मे चले भी गये है, इसलिए अब इस सम्बन्ध के वाद-विवाद से कोई लाभ नही है, जो अपरिवर्तनवादी है वे इस बहस को छोडकर रचनात्मक काम मे लग जायँ। उन्होने यह भी कहा कि कॉग्रेस के सगठन के सम्बन्ध मे उनके बहुत सख्त विचार है जिनको वह पीछे लिखेगे। उस समय देश मे हिन्दू-मुस्लिम झगडे बहुत हो रहे थे और वैमनस्य बहुत फैल रहा था। इसका भी बहुत विशद विश्लेषण उन्होने एक लम्बे लेख मे किया। इसी लेख मे उन्होने आर्यसमाज की टीका की थी जिससे बहुत लोग क्षुब्ध हुए थे। इसी मे उन्होने यह भी कहा था कि मुसलमान कलहप्रिय (bully) होते है और हिन्दू डरपोक (coward)। कॉग्रेस के सगठन के सम्बन्ध मे उन्होने यह मत जाहिर किया कि काँग्रेस के सभी चुने हुए स्थानो मे ऐसे लोगो को चुना जाना चाहिए जो पाँचों बहिष्कारों को सिद्धान्ततः मानते है और स्वय अपने जीवन मे उन पर अमल करते है—अर्थात् कचहरियो का बहिष्कार करके न तो उनको मुकदमे लडने चाहिए और न वकालत करनी चाहिए, अपने नाबालिग बच्चो को सरकार से सम्बद्ध स्कूलो मे नही भेजना चाहिए, सरकारी खिताब नही रखना चाहिए, कोन्सिलो मे नही जाना चाहिए, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के लिए खादी ही पहनना और चर्खा चलाना चाहिए।

उन्ही दिनो, कलकत्ते मे, 'डे' नामक एक अँगरेज को, एक युवक श्री गोपीनाथ साहा ने, आम रास्ते पर, दिन-दहाडे पिस्तौल से मार डाला था। वह पकडे भी गये थे और उनको फॉसी की सजा हुई थी। बगाल-प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स मे, जो उस साल सिराजगज मे हुई थी, इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था जिसमे उनकी देशभक्ति की सराहना की गयी थी—यद्यपि उनके इस काम को बुरा कहा गया था। महात्माजी को यह प्रस्ताव अच्छा नही लगा था, क्योकि उनका विचार था कि इस प्रकार की हत्या कॉग्रेस के सिद्धान्त के बिलकुल विरुद्ध है, इसमे देश की बडी हानि होती है और स्वराज्य के रास्ते मे रोडे पडते है। उन्होने इस प्रस्ताव पर कडी टिप्पणी की। कॉग्रेस के सगठन को दुरुस्त करने के लिए उन्होने कई प्रस्तावो को अखिल भारतीय कमिटी के सामने रखने की इच्छा प्रकट की और 'डे' की हत्या के सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव पेश करने की बात लिखी। प्रस्तावो के मसविदे भी उन्होने छाप दिये। उनका आशय यह था कि कॉग्रेस के चुने हुए सदस्यो को सब बहिष्कारो

को मानना चाहिए और ऐसे ही लोगो को काँग्रेस का पदाधिकारी होना चाहिए। इसका नतीजा यह होता था कि जो लोग कौन्सिलो मे गये है, उनको नही चुनना चाहिए अथवा जो चुने गये है उनको हट जाना चाहिए। इसी तरह, ऐसे चुने हुए सब लोगो के लिए कम से कम आधा घटा प्रतिदिन चर्खा चलाना और प्रतिमास दो हजार गज सूत खद्दर-बोर्ड को देना अनिवार्य्य कर देना चाहिए। जो सूत न दे, उनकी जगहे खाली समझी जानी चाहिए और उनके रिक्त स्थान पर दूसरो को चुनना चाहिए। इसका नतीजा यह हुआ कि आपस के झगडे मिटा देने की जो आशा पहले के वक्तव्य से हुई थी वह बिलकुल जाती रही। सारे देश मे इन प्रस्तावो और विचारो के सम्बन्ध मे बहुत जोरों से वादविवाद होने लगा। समाचारपत्रों ने पक्ष और विपक्ष मे लेख लिखना शुरू किया। आर्यसमाज की शाखाओ की ओर से उस लेख की निन्दा की जाने लगी जिसमे कुछ टीका की गयी थी। गाधीजी ने अपने विचारो को, जैसा वह हमेशा करते आये है, बहुत सयत भाषा मे—पर दृढता-पूर्वक—देश के सामने रक्खा।

जून के अन्तिम सप्ताह मे, अहमदाबाद मे, अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुई। वहाँ उन प्रस्तावो का, जिनमे बहिष्कारो को न करने और चर्खा न चलाने के कारण पदाधिकारी बनने से लोगो को रोकने की बात थी, इस बुनियाद पर विरोध होने लगा कि वे प्रस्ताव काँग्रेस के नियम के विरुद्ध है; क्योकि काँग्रेस की नियमावली काँग्रेस द्वारा बनायी गयी है और उसमे हेर-फेर करने का अधिकार काँग्रेस को ही है, अखिलभारतीय कमिटी को नही और इन प्रस्तावो का नतीजा उन नियमो मे परिवर्तन करना होना है। महात्माजी का कहना था कि काँग्रेस का एक नियम है कि जब काँग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो तो उसके सारे अधिकार अखिल भारतीय काँग्रेस-कमिटी को प्राप्त होते है और यदि इन प्रस्तावो द्वारा नियमावली का सशोधन होता हो तो भी वह अनियमित न होगा—विशेषकर उस समय जब इन प्रस्तावो का असर काँग्रेस के बहिष्कार-सम्बन्धी निश्चयो को कार्यान्वित करना ही होता है। मौलाना महम्मद अली सभापतित्व कर रहे थे। उन्होने, यह पूछे जाने पर कि ये प्रस्ताव नियम के प्रतिकूल है या नही, अपनी राय न देकर सदस्यो की राय ली, तो मालूम हुआ कि बहुमत इनको विधान के अनुकूल मानता था—यद्यपि बहुमत और अल्पमत मे थोडे ही मतो का अन्तर था। इस पर देशबन्धु दास, पडित मोतीलाल प्रभृति अपनी नाराजी जाहिर करने के लिए सभा छोडकर चले गये। महात्माजी ने उनके चले जाने पर भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जो थोडे बहुमत से स्वीकृत हुआ। इस पर महात्माजी ने तुरत एक दूसरा प्रस्ताव भी उपस्थित कर दिया कि इस स्वीकृत प्रस्ताव का वह अग हटा दिया जाय, जिसमे बहिष्कार न मानने का दड पदो से वचित रहना बताया गया था। उन्होने कहा कि उपस्थित लोगो का बहुमत यद्यपि प्रस्ताव के पक्ष मे था तो भी वह बहुमत सचमुच बहुमत नही था, क्योकि गैरहाजिर लोग यदि मत देते तो उनका बहुमत हो जाता, और इसके अलावा, यदि प्रस्ताव के पक्ष मे बहुमत

रह भी जाता तो भी वह इतना कम होता कि वह नही के बराबर होता। इस तरह स्वीकृत प्रस्ताव बदल दिया गया और स्वराज्य-दल के लोगो को फिर मौका मिला कि वे वापस आ जायँ।

उसी रात को महात्माजी और उन लोगो के बीच फिर बातचीत हुई जिसके फलस्वरूप कॉग्रेस के सगठन-सम्बन्धी प्रस्तावो का रूप ऐसा बना दिया गया कि दोनो दलो को स्वीकृत हो जाय। दूसरे दिन वे सभी प्रस्ताव इसी समझौते के रूप मे पास हुए। 'डे'-हत्या-सम्बन्धी प्रस्ताव महात्माजी ने उपस्थित किया। देशबन्धु दास ने सिराजगज के प्रस्ताव को ही सशोधन के रूप मे पेश किया। अन्त मे महात्माजी का ही प्रस्ताव मजूर हो गया, पर इसमे भी जो बहुमत मिला वह बहुत थोडे लोगो का था। इसका एक विशेष कारण यह था कि सिराजगज के प्रस्ताव पर अँगरेजो और अँगरेजी पत्रो ने बहुत हो-हल्ला मचाया था। यह बात भी खुले आम ही सुनी जाती थी कि उसके लिए देशबन्धु दास तथा दूसरे लोग गिरफ्तार किये जायँगे। देशबन्धु ने उसे सशोधन के रूप मे उपस्थित करने का कारण भी यही बताया कि वह यदि ऐसा न करे तो लोग समझेगे कि उन्होने गिरफ्तारी के भय से सिराजगज के प्रस्ताव को छोड दिया। अब, काँग्रेस के सगठन-सम्बन्धी प्रस्तावो का नतीजा यह हुआ कि एक तरफ तो बहिष्कारो को कुछ सख्त बना दिया गया और दूसरी तरफ कौन्सिल-बहिष्कार को और भी ढीला कर दिया गया।

महात्माजी से कुछ लोगों ने कहा था कि कचहरियो के बहिष्कार से नफा उठाकर कुछ बेईमान लोगों ने कॉग्रेसियो के प्रति भारी जुल्म किया है, क्योकि काँग्रेसी लोग कचहरियो मे न अपना दावा पेश कर सकते थे और न अपने ऊपर किये गये दावे का अपने बयान के सिवा दूसरा कोई उत्तर दे सकते थे। इसलिए उन लोगो का विचार था कि इस सम्बन्ध मे ऐसे कॉग्रेसियो के दावे को सुरक्षित बनाने का कोई उपाय करना चाहिए। महात्माजी इसके सम्बन्ध मे राजी भी हुए थे कि ऐसे लोगों को अदालतो मे अपना बचाव करने की छूट दी जाय। विशेषकर श्री गगाधर राव देशपाडे की बात पेश थी, जो वर्किंग कमिटी के सदस्य थे। ऐसे लोगो को छूट देने के सम्बन्ध मे महात्माजी ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इस पर डाक्टर चोयथराम गिडवानी ने प्रश्न कर दिया कि यह प्रस्ताव क्या नियम के प्रतिकूल नही है? मौलाना महम्मद अली ने महात्माजी की राय पूछी। महात्माजी ने भी कहा कि बहिष्कार-सम्बन्धी प्रस्तावो के प्रतिकूल अवश्य है। इस पर मौलाना साहब ने उसे नियम-विरुद्ध करार दिया। सभा की कार्रवाई समाप्त हुई। पर जो कुछ उस सभा मे हुआ था उससे महात्माजी के दिल पर गहरी चोट लगी थी। उन्होंने एक बहुत ही मार्मिक भाषण किया। बोलते-बोलते वह एकाएक रुक गये। सभा मे स्तब्धता छा गयी। गाधीजी की ऑखो से अनवरत ऑसू बहने लगे। कुछ देर मे उन्होने अपने को सँभाल कर अपना कथन समाप्त किया। बडी उदासी और निराशा का वायुमडल छा गया। उपस्थित सदस्यों ने अपने भाषणो द्वारा महात्माजी को सात्वना दी। उन्हे

ब्रिटिश मालो का बहिष्कार छोड दे, (३) कॉग्रेस खद्दर और चर्खे का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा हिन्दुओ मे अस्पृश्यता-निवारण का ही काम करे, (४) कॉग्रेस मौजूदा राष्ट्रीय विद्यालयो को चलावे और आवश्यकतानुसार नये भी खोले, (५) चार आने की कॉग्रेस-मेम्बरी उठा दी जाय और उसके स्थान पर ऐसा नियम कर दिया जाय कि कॉग्रेस का वही मेम्बर हो सके जो कम से कम आधा घटा रोज चर्खा चलावे और दो हजार गज अपने हाथ का कता सूत हर महीने कॉग्रेस को दिया करे तथा इसके लिए गरीबी के कारण जो रुई न खरीद सकता हो उसे कॉग्रेस की ओर से रुई दी जाय। इसका नतीजा यह होता था कि (१) कॉग्रेस अथवा अपरिवर्तनवादियो की ओर से स्वराजियो का विरोध न किया जाय और उनको अपना सगठन करने का पूरा मौका दिया जाय, (२) दूसरे दलो के लोग कॉग्रेस मे शरीक होने के लिए आमन्त्रित किये जायँ, (३) अपरिवर्तनवादी लोग कौन्सिल-प्रवेश के विरोध मे परोक्ष या अपरोक्ष रीति से आन्दोलन करना छोड दे, (४) जो लोग बहिष्कारो मे विश्वास नही रखते उनको इस बात की स्वतन्त्रता दे दी जाय कि वे चाहे तो बहिष्कार छोड दे—अर्थात् वकील यदि चाहे तो वकालत करे और बहिष्कारो को न माननेवाले भी कॉग्रेस मे शरीक हो सके तथा पदाधिकारी भी बन सके।

महात्माजी के इन प्रस्तावो पर सब लोग विचार करने लगे। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने तो इनको एक प्रकार से मजूर कर लिया। उनको कॉग्रेस मे शरीक होने का रास्ता खुलता दिखाई पडने लगा।

५४—महात्मा गांधी का इक्कीस दिनों का उपवास और एकता-सम्मेलन

यह चर्चा एक ओर चल रही थी और दूसरी ओर सारे देश मे जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुस्लिम दगे हो रहे थे। बिहार मे भी भागलपुर मे दगा हो गया। वहाँ मुझे, दूसरे भाइयो के साथ, जाना पडा। कई दिनो तक वहाँ रहकर आपस के मेल-मिलाप के प्रयत्न म लगा रहना पडा। और-और जगहो मे भी दगे हुए। इन बातों का असर गाधीजी के दिल पर बहुत हुआ। दिल्ली मे भारी दगा हो गया। वहाँ गाधीजी स्वय गये। वह कई दिनो तक वहाँ ठहरकर फिर किसी और काम से बम्बई की तरफ वापस गये। निजाम-राज्य के गुलबर्गा मे भी भारी फसाद हो गया। गाधीजी फिर दिल्ली गये। ठीक उसी समय सीमा-प्रान्त के कोहाट नगर मे बडा भारी दगा हुआ। बहुतेरे लोग वहाँ मारे गये। बहुत-सा माल लूटा गया। बहुतेरे मकान भी जला दिये गये। गाधीजी इन घटनाओ से बहुत चिन्तित और परेशान थे। इन सबसे बहुत ऊबकर उन्होने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिनो का उपवास करने का निश्चय किया। यह निश्चय उन्होने दिल्ली मे किया, जब वह मौलाना महम्मद अली के घर मे ठहरे हुए थे। वही उपवास का भी आरम्भ कर दिया।

महात्माजी के उपवास की खबर छपते ही सारे देश मे बडी चिन्ता व्याप गयी। हाल ही मे वह बडी खतरनाक बीमारी मे उठे थे। सब लोग, विशेषकर डाक्टर

अमारी—जो उनके स्वास्थ्य से अच्छी तरह परिचित थे—बहुत चिन्तित हो गये। उन्होने इस निश्चय से गाधीजी को डिगाने का बहुत प्रयत्न किया। अपने प्रेम तथा अपनी डाक्टरी कला, दोनो का प्रयोग किया। पर गाधीजी अपने निश्चय से नही डिगे। अन्त मे वह इतने सफल हुए कि उन्होने गाधीजी से वचन ले लिया कि उनकी मृत्यु ही अगर इस उपवास का नतीजा होनेवाला हो, तो उस हालत मे वह उपवास तोड डालेगे। उपवास आरम्भ हुआ। खबर पाते ही मै भी दिल्ली पहुँच गया। गाधीजी, कुछ दिनो के वाद, मौलाना महम्मद अली के घर से हटाकर, शहर के बाहर, राय बहादुर सुलतानसिंह के एक बँगले मे, ले जाकर ठहराये गये। श्री एडरूज उनकी सेवा के लिए आ गये। डाक्टर असारी तो दिन-रात देख-भाल करते ही रहते।

इधर लोगो पर इसका असर पडे बिना न रह सका। मौलाना महम्मद अली की प्रेरणा से एक सर्व-जाति-सम्मेलन दिल्ली मे किया गया। इसमे हिन्दू, मुसलमान और सिख नेताओ के अतिरिक्त ईसाई नेता भी शरीक हुए। कलकत्ते के लार्ड-बिशप डाक्टर कौस वेस्टकौट भी आये। कई दिनो तक बराबर बहस होती रही। जिन-जिन बातो को लेकर झगडे हो जाया करते थे उनके सम्बन्ध मे प्रस्ताव स्वीकार किये गये। मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे—

(१) देश मे फैले हुए झगडो और फसादो पर—जो हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच हो रहे है तथा जिनसे जान-माल की बहुत हानि हुई है और मन्दिर भ्रष्ट किये गये है—यह सभा दुख प्रकट करती है और इनको बर्बरता-सूचक और धर्म-विरुद्ध समझती है। इस सभा की राय मे किसी का अपने हाथो मे बदला लेने और सजा देने के अधिकार ले लेना केवल गैर-कानूनी ही नही, अधार्मिक भी है। सभी प्रकार के झगडों का निपटारा पचायत द्वारा किया जाना चाहिए। जहाँ यह सभव न हो वहाँ कचहरियो द्वारा तय कराना चाहिए।

(२) उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित कराने और आपस मे रवादारी का बर्ताव कायम रखने के लिए इस सम्मेलन के मत मे यह जरूरी है कि हर एक आदमी को पूरा अधिकार रहे कि वह जैसा चाहे अपना विश्वास रखे और उसे प्रकट कर सके तथा दूसरो के भावो का ध्यान रखते हुए और उनके अधिकार पर आघात न करते हुए अपने धार्मिक कामो को अदा कर सके। कोई व्यक्ति या समूह किसी दूसरे धर्म के प्रवर्तक पूज्य पुरुषो को गालियाँ न दे और सिद्धान्तो की निन्दा न करे। सभी धर्मो के पूजा-स्थान पवित्र और अक्षुण्ण समझे जायँगे। किसी भी हालत मे, चाहे कितनी भी उत्तेजना क्यो न दी गयी हो, बदला लेने के लिए भी उन पर कभी हमला न किया जाय और न उनको अपवित्र ही किया जाय। यदि कही इस तरह का काम हो तो उसकी निन्दा की जाय और सभी लोगो का यह कर्तव्य होगा कि अपनी शक्ति भर वे इस तरह की कारंवाई न होने दे।

(३) हिन्दुओ को ऐसी आशा न करनी चाहिए कि मुसलमानो से गो-वध का हक, जबरदस्ती या किसी बोर्ड के प्रस्ताव से या व्यवस्थापिका सभा द्वारा कानून

बनवाकर या अदालत के हुक्म से, छुड़वाया जा सकता है। पर मुसलमान उसे अपनी राय से छोड़ सकते हैं। इसलिए उसे उनकी ही सद्‌बुद्धि पर छोड़ देकर आपस में मेल-जोल बढ़ाना चाहिए जिसमें एक दूसरे के प्रति सद्‌भाव बढ़े। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई स्थानीय रवाज अथवा दोनों कौमों के बीच कायम हुआ आपस का समझौता बदल दिया जाय और न इसका यही अर्थ है कि जहाँ गो-वध नहीं होता है वहाँ गो-वध हो सके। जहाँ वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में मतभेद हो वहाँ उसकी जाँच राष्ट्रीय पंचायत करेगी। वध भी इस तरह किया जायगा कि हिन्दुओं को चोट न लगे।

(४) इस सम्मेलन के मुसलमान सदस्य अपने सहधर्मियों से अनुरोध करते हैं कि जहाँ तक हो सके, गो-वध कम करें। मुसलमानों को ऐसी आशा न करनी चाहिए कि वे मसजिद के नजदीक हिन्दुओं के बाजे को, जोर-जबरदस्ती या बोर्ड के प्रस्ताव से या व्यवस्थापिका सभा द्वारा कानून बनवाकर या अदालत के हुक्म से, रोकवा सकेंगे। वह हिन्दुओं की राय से ही रुक सकता है। हिन्दुओं की सद्‌बुद्धि पर ही यह छोड़ देना चाहिए कि वे मुसलमानों की भावना का आदर करें। इसका अर्थ यह न समझा जायगा कि जहाँ-कहीं रवाज हो अथवा आपस का समझौता हो वह इस प्रस्ताव द्वारा रद हो गया और न इसका अर्थ यह है कि जहाँ किसी मसजिद के सामने बाजा न बजता हो वहाँ बजने लगेगा। वस्तुस्थिति-सम्बन्धी मतभेद की जाँच राष्ट्रीय पंचायत करेगी। इस सम्मेलन के हिन्दू सदस्य हिन्दुओं से अनुरोध करते हैं कि वे मसजिदों के सामने इस तरह बाजा बजावें कि वहाँ जमायती नमाज में खलल न पड़े।

(५) इस प्रकार के प्रस्ताव आरती और अजान के सम्बन्ध में भी स्वीकृत किये गये।

(६) जहाँ मांस की बिक्री और जानवरों के वध की इजाजत है वहाँ वध के तरीके का—झटका या जिबह का—विरोध नहीं किया जायगा।

(७) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह चाहे जिस-किसी धर्म को माने और जब चाहे तब उसे बदल सके। धर्म बदलने के कारण वह दंडनीय नहीं समझा जायगा और न उसको किसी तरह का कष्ट पहुँचाया जायगा।

(८) प्रत्येक व्यक्ति अथवा समूह को अधिकार है कि बहस करके और समझा-बुझा कर दूसरों का धर्म-परिवर्तन करा सके अथवा जो उसके धर्म में से दूसरे धर्म में चला गया हो उसे वापस ला सके। पर जबरदस्ती या धोखा देकर या दूसरे किसी नाजायज तरीके से—जैसे किसी चीज की लालच देकर—कोई किसी का धर्म-परिवर्तन न करावे।

(९) धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई लुकी-छिपी बात न होनी चाहिए। किसी को यह अधिकार नहीं है कि दूसरे धर्मवाले को अपनी जगह में पूजा-स्थान बनाने से रोके या उसमें बाधा डाले। नया पूजा-स्थान दूसरे धर्म के पूजा-स्थान से कुछ दूर बनाया जाय।

(१०) पन्द्रह आदमियों की एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत बनायी जाय और उसको अधिकार दिया जाय कि भिन्न धर्मों के स्थानीय प्रतिनिधियों की राय में वहां

के लिए स्थानीय पचायत कायम करे, जो इस प्रकार सभी झगडो का निपटारा किया करे। पचायत को अपने नियम बनाने का भी अधिकार होगा। इस पचायत के सभापति महात्मा गाधी और सदस्य होगे हकीम अजमल खाँ, श्री सी० के० नरीमन (पारसी), डाक्टर एम० के० दत्त (ईसाई), मास्टर सुन्दरसिह लायलपुरी (सिख)। बाकी मेम्बरो को वे ही चुन लेगे।

इस प्रयत्न मे देश का वायुमडल सुधरता दीख पडा। सभी धर्मो के लोग आपस मे सद्व्यवहार और भाई-चारे का बर्ताव करने का निश्चय करते जान पडने लगे। एकता-सम्मेलन का असर भी बहुत अच्छा हुआ। अगर वह स्थायी हो गया होता तो बडी बात हो जाती। पर वह स्थायी न हो सका। उस समय की बँधी आशाएँ आगे चलकर पूरी न हुई।

मै भी बराबर इस सम्मेलन मे शरीक होता रहा। हर तरह से मै उसकी सफलता चाहता था। पर बावजूद अच्छे वायुमडल और सदिच्छाओ के, मेरे मन मे हमेशा शक बना रहा, क्योकि सारी बातो के पीछे उतनी जबरदस्त एकता की भावना नही थी जितनी इस शुभ प्रयत्न के फल को स्थायी बनाने के लिए आवश्यक थी। सभी मतवाले अपने हक और अधिकार पर ही अधिक जोर देते रहे, अपने कर्तव्यो पर उतना जोर नही देते थे। मै तो यही मानता हूँ कि इस प्रकार के झगडे अपने-अपने कर्तव्यो पर ही जोर देने मे सुलझ सकते है, हको और अधिकारो पर जोर डालने से नही। पर उस समय जो कुछ हुआ, देखने मे अच्छा ही लगा, इसलिए यह दिल की बात दिल के अन्दर ही रही।

उधर गाधीजी के उपवास के दिन बीतते चले जाते थे। डाक्टर असारी दिन मे दो बार उनके पेशाब की जाँच करते। एक दिन एक अद्भुत घटना हुई। मैने डाक्टर असारी से ही सुनी। एक दिन पेशाब की जाँच करने पर उन्होने देखा, उसमे असिटोन की अधिक मात्रा निकली। यह अच्छा लक्षण नही है। यदि इसकी मात्रा और बढ जाय तो आदमी बेहोश हो जाता है। उसके बाद उस आदमी को बचाना कठिन हो जाता है। इससे वह चिन्तित हुए। उन्होने महात्माजी से कहा कि अब आप खतरे के निकट पहुचने लगे है और हो सकता है कि इक्कीस दिन पूरे होने के पहले ही आपको अपने वादे के अनुसार उपवास तोडना पडे।

असिटोन की मात्रा बढती गयी। डाक्टर असारी ने निश्चय किया कि अब अधिक ठहरना बहुत खतरनाक होगा। उन्होने यह बात महात्माजी से कही। आग्रह भी किया कि अब उपवास तोडना चाहिए। वह डरते थे कि कुछ ही घटो के बाद बेहोशी आ सकती है। उन्होने यह सब कहा और खिलाने पर जिद की। महात्माजी ने कहा कि आपने अपनी विद्या से सब कुछ तो देख लिया है और सब हिसाब लगा लिया है, पर रात-भर मुझे छोड दीजिए। इस पर डाक्टर साहब राजी नही होते थे। तब गाधीजी ने कहा कि आपने सबका हिसाब तो लगाया है, पर प्रार्थना के असर का हिसाब तो लगाया ही नही, आज मुझे छोड दीजिए। डाक्टर साहब मान गये। दूसरे दिन पेशाब

की जाँच कर उन्होने कहा कि असिटोन का खतरा अब नही है और खिलाने का आग्रह छोड दिया। इसके बाद, उपवास की अवधि मे, फिर कभी असिटोन का उपद्रव न हुआ। डाक्टर असारी की चिन्ता जाती रही। उन्होने हम लोगो से कहा कि इस चमत्कार का कोई कारण हमारी चिकित्सा नही बताती—हम नही समझ सकते, यह कैसे हुआ!

महात्माजी, उपवास की पूरी अवधि मे प्रत्येक दिन, अपने नियमानुसार चर्खा कातते रहे। उनको किसी तरह चारो ओर तकिया रखकर बिठा दिया जाता। उसी तरह बैठे-बैठे वह चर्खा चला लेते। अन्त मे जब उपवास समाप्त करने का समय आया, तब प्रार्थना करके, चर्खा चलाकर और भजन गाकर, उन्होने नारगी का रस पीकर उपवास तोडा। मौलाना महम्मद अली ने इस अवसर पर बूचडखाने से एक गौ खरीद कर महात्माजी को भेट की। इसमे कितना प्रेम और सद्भाव भरा था!

५५—पटना-म्युनिसिपैलिटी मे

जिस समय मै बाबू हरिजी के मुकदमे मे पटने मे काम कर रहा था उसी समय पटना-म्युनिसिपैलिटी के सदस्यो का चुनाव हुआ। कॉग्रेस ने यद्यपि कौन्सिलो मे जाने का निषेध किया था तथापि म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मे जाना मना नही था। इसी नीति के अनुसार सरदार बल्लभभाई पटेल अहमदाबाद-म्युनिसिपैलिटी मे चुने गये और वहाँ के प्रेसिडेण्ट हुए। पडित जवाहरलालजी इलाहाबाद-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हुए। पटने मे भी राय हुई कि म्युनिसिपैलिटी के चुनाव मे कॉग्रेस की ओर से भाग लिया जाय। पटने के प्रमुख कॉग्रेसी लोग खडे भी हुए—जैसे मौलवी खुरशेद हसनैन, सर्वश्री अनुग्रहनारायणसिंह, जगतनारायणलाल, बदरीनाथ वर्मा, अब्दुलबारी और मै। हम लोगो की राय थी कि मौलवी खुरशेद हसनैन चेयरमैन और अनुग्रह बाबू वाइस-चेयरमैन बनाये जायँ। चुनाव मे कठिनाई काफी थी, क्योकि पटने मे कुछ लोग बहुत दिनो से म्युनिसिपल कमिश्नर होते चले आये थे, उनको हटाना कठिन था। फिर भी कॉग्रेस के बहुतेरे मेम्बर चुने गये, पर बहुमत नही हुआ। साथ ही, कॉग्रेसी लोग ही सगठित थे और कार्यक्रम रखते थे। दूसरे लोग व्यक्तिगत रूप से ही चुने गये थे। मौलवी खुरशेद हसनैन के चुने जाने मे काफी दिक्कत पडी, क्योकि उनके विरुद्ध एक हिन्दू खडे थे—उन्होने हिन्दू-मुस्लिम सवाल पेश कर दिया, अपने वोट के बक्स पर उन्होने गाय की तस्वीर बना दी। यहाँ तक सुना गया कि वह एक बछिया लेकर दरवाजे-दरवाजे जाते और हिन्दुओ से बछिया के लिए वोट माँगते! हम लोग चिन्तित थे कि मौलवी खुरशेद हसनैन साहब-जैसा चुस्त कॉग्रेसी यदि न चुना जायगा, तो हमारे लिए बहुत शर्म की बात होगी। हम लोगो ने भी काफी जोर लगाया। वह काफी बहुमत से चुने गये।

यह सब झगडा देखकर मौलवी खुरशेद हसनैन ने निश्चय किया कि वह चेयरमैनी के लिए उमीदवार नही होगे, मुझे ही चेयरमैन होना चाहिए। मेरी इच्छा

बिल्कुल नही थी। समय भी मेरे पास नही था, क्योंकि उन दिनो मै एक बडे मुकदमे मे काम कर रहा था। पर वह किसी तरह राजी न हुए। मुझे चेयरमैन होना मजूर करना पडा। अनुग्रह बाबू भी उसी बडे मुकदमे मे दूसरे पक्ष की ओर से काम कर रहे थे। वह वाइस-चेयरमैन हुए। इस चुनाव का नतीजा यह हुआ कि कुछ भाई, जो कॉग्रेस के हामी समझे जाते थे और जिनसे हम मदद की आशा रखते थे, हमारे पक्के विरोधी हो गये। उन लोगो ने म्युनिसिपैलिटी के अन्दर हम लोगो का एक विरोधी दल सगठित कर लिया। कोई भी बात पेश हो उसका विरोध उस दल का, विशेषकर दो-तीन भाइयों का, मुख्य काम हो गया। म्युनिसिपैलिटी के जल्सो मे बहुत समय लगता और काम कुछ भी आगे न बढता। यहाँ तक कि किसी-किसी दिन पिछली बैठक की कार्रवाई की रिपोर्ट मजूर करने मे ही तीन-चार घटे लग जाते।

खैर, हम लोगो ने काम शुरू किया। मुकदमे से फुर्सत हो जाने के बाद हम दोनो ने पूरा समय देना शुरू किया। हम दोनो म्युनिसिपल काम मे पूरे नावाकिफ थे। हम दोनो को पहला ही अवसर ऐसे काम करने का मिला था। पर हमने शीघ्र ही सब बातो को जान लेने का प्रयत्न किया और काम चलने लगा। उसी समय गया के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड का भी चुनाव हुआ। वहाँ के लोगो ने अनुग्रह बाबू को बोर्ड का केवल मेम्बर ही नही, चेयरमैन भी चुन लिया। दोनो जगहो का काम सँभालना कठिन था। इसलिए कुछ दिनो के बाद अनुग्रह बाबू ने पटना की वाइस-चेयरमैनी से इस्तीफा दे दिया। अब वह गया का ही काम सँभालने लगे। पटने मे मेरे साथ वाइस-चेयरमैन हो गये मिस्टर सैयद मुहम्मद, जो कॉग्रेस टिकट पर तो नही चुने गये थे, पर हम लोगों को बहुत ही मुस्तैद और अच्छे सज्जन मालूम हुए। उन्होने म्युनिसिपैलिटी मे काम भी अच्छा किया।

म्युनिसिपैलिटी की दिक्कते बहुत थी—आमदनी कम थी, खर्च ज्यादा था। कोई भी काम बिना खर्च के नही हो सकता था। नये टैक्स के बिना आमदनी बढ नही सकती थी। उस समय सर गणेशदत्त सिंह बिहार-सरकार के मत्री थे। उन्होने भी हम लोगो को वहाँ का अच्छा इन्तजाम करने मे प्रोत्साहन दिया। राँची जाकर मैंने उनसे म्युनिसिपैलिटी के बारे मे राय ली। जब मै राँची मे उनके साथ ठहरा था, उसी समय तार मिला कि बाबू हरिजी हाइकोर्ट मे अपील का मुकदमा जीत गये। यह जानकर बहुत खुशी हुई। इस प्रकार म्युनिसिपैलिटी का काम मै बहुत जी लगाकर करता रहा। प्राय प्रतिदिन तीन-चार घटे आफिस मे काम करता। दो-तीन घटे शहर मे घूमफिरकर मुहल्लो से परिचय प्राप्त करता और काम की निगरानी भी।

म्युनिसिपैलिटी की दिक्कते कई प्रकार की थी। शहर लम्बाई मे प्राय दस मील और औसत चौडाई मे केवल एक मील का था। इससे बहुत लम्बी सडक की जरूरत थी। मेरे-जैसे आदमी के लिए, जो शहर के पश्चिमी हिस्से मे रहता था और जिसके पास एक्के के सिवा दूसरी सवारी नही हो सकती थी, पूर्वी हिस्से की

निगरानी के लिए जाना कई घटो का काम हो जाता था। यही हाल म्युनिसिपैलिटी के वेतन-भोगी कर्मचारी लोगो का भी था। हेल्थ-अफसर और इञ्जीनियर को घोडा-गाडी के लिए भत्ता मिलता। गाडी पर चलने मे, एक्के के मुकाबले मे, इज्जत अधिक मिलती थी, पर जल्दी पहुँचने के काम मे कोई विशेष मदद नही मिलती थी बल्कि तेज एक्का गाडी से ज्यादा जल्द पहुँच सकता था। यही सोचकर, और खर्च को भी कम करने के खयाल से, मैंने एक्के पर चलना ही पसन्द किया। चेयरमैन को, सवारी के लिए या और किसी भी खर्च के लिए, भत्ता नही मिलता। एक्के का भाडा भी अपने पास से ही देना होता। गाडी का भाडा कम से कम एक्के के दुगना या तिगुना पडता। मुझसे पहले वहाँ के चेयरमैन अधिकतर पटने के नवाब-घरानो के ही लोग हुआ करते थे, जिनको सवारी की दिक्कत नही थी और जो अपने खर्च से अच्छी से अच्छी सवारी रक्खा करते थे। मै ऐसा नही कर सकता था, क्योकि मेरे पास इसके लिए रुपये नही थे। जब मैंने एक्के पर सवार होकर म्युनिसिपल आफिस मे जो मेरे ठहरने के स्थान 'खद्दर-भडार' से प्राय चार मील की दूरी पर था, जाना शुरू किया तो पटने के उच्चवर्ग के लोगो मे जहाँ-तहाँ इसकी टीका-टिप्पणी होने लगी, जिसमे कुछ पुराने खयाल के प्राचीन म्युनिसिपल कमिश्नर भी शरीक थे। पर मैंने इसकी परवा नही की। इसमे मुझे एक अँगरेज सिविलियन से प्रोत्साहन भी मिला। मिस्टर जौन्सटन पटने के अडिशनल मजिस्ट्रेट थे। वह शहर के पूर्वी हिस्से मे रहा करते थे। कचहरियाँ प्राय पश्चिमी छोर पर है। वह भाडे के एक्के पर ही कचहरी आया करते थे। इतना ही नही, कभी ऐसा भी देखा जाता कि पूरे एक्के को नहीं लेते—दूसरो के साथ साझे मे एक्का किराया करते, और जब तक दूसरा साथी न मिल जाता, एक्कावान एक्के को पडाव पर घुमाता रहता और दूसरे साझेदार के लिए चिल्लाता रहता। मै इतनी दूर तक नही गया, क्योकि मुझे एक ही स्थान तक नही जाना होता। जब मै निकलता तो निगरानी का काम करता हुआ आफिस जाता और वहाँ से फिर शहर की निगरानी करता हुआ वापस आता। इस शर्त पर कोई साझेदार नही मिल सकता था। इसलिए मुझे अपने लिए अलग एक्का लेना पडता। हाँ, जब तक अनुग्रह बाबू वाइस-चेयरमैन थे, हम दोनो साथ जाते-आते।

शहर की लम्बाई की वजह से, निगरानी के अलावा, और कामो मे भी काफी अडचन पडती थी, जिनका अनुमान आसानी से किया जा सकता है। पटना कोई नया बसता हुआ शहर नही है। वहाँ व्यापार विशेषकर स्थानीय काम के लिए ही है। पहले जब नदियो द्वारा ही माल का आयात-निर्यात हुआ करता था तब पटना विशेष महत्त्व रखता था, क्योकि यहाँ गगा बहती है। गगा-गडक-सगम तो यहाँ है ही, सोन-भद्र तथा सरयू का सगम भी यहाँ से बीस-पचीस मील के अन्दर ही है। पर रेल हो जाने मे वह बात अब न रही। इसलिए अब यह व्यापार का केन्द्र भी न रह गया। नये कल-कारखाने भी कम ही है, कोई विशेप वृद्धि उनकी अभी तक नहीं हुई है। १९२४ मे तो वे और भी कम थे। यहाँ प्रान्तीय राजनीतिक केन्द्र होने से कुछ

लोग सरकारी दफ्तरों में और कुछ वकील-बेरिस्टर—हाइकोर्ट से सबन्ध रखनेवाले—अवश्य रहते है। इसलिए जहाँ ये सब रहते है उस पश्चिमी हिस्से में कुछ रौनक है। पूर्वी हिस्सा पुराना मुहल्ला है जो अब अपना रौनक बहुत कुछ खो चुका है। इसलिए शहर की म्युनिसिपैलिटी की आमदनी कुछ ज्यादा नहीं है।

आधुनिक समय के साधनों का भी प्राय अभाव-सा ही यहाँ था। खुले पनाले होने के कारण मच्छरों की भरमार है। नाले भी साफ नहीं रखे जा सकते, क्योंकि पानी का कोई अच्छा निकास नहीं है। पहले यहाँ हर घर में कुँए की शकल के पाखाने हुआ करते थे जो कभी साफ नहीं किये जाते थे। जब वे बहुत दिनो के बाद कभी पट जाते होंगे तो उनकी बगल में दूसरे कुँए बना लिये जाते होंगे। इस कारण, शहर का स्वास्थ्य बहुत खराब रहा करता था। हम लोगो के समय के पहले से म्युनिसिपैलिटी ने इन कुँएवाले पाखानो को बन्द कर दिया था। तो भी ये जहाँ-तहाँ रह गये थे। उनको हमने बन्द कराया। प्राय ऐसे कुँओ के निकट ही प्रत्येक घर में पानी के कुँए भी हुआ करते थे। पानी प्राय सभी जगहो में खारा हुआ करता था। कहीं-कहीं मीठा पानी भी मिल जाता था। इसलिए लोग अधिकतर पीने के लिए गगाजल ही काम में लाया करते थे। बरसात में गगाजल भी गँदला हो जाया करता है। तब लोगो की दिक्कते बढ जाती थी। इसलिए यहाँ पानी-कल की आवश्यकता लोग महसूस करते थे। हमारे पहले ही पानीकल और बन्द नालो की बात चली थी। खर्च का अनुमान-पत्र भी बना था। पर अर्थाभाव से वह जहाँ का तहाँ पडा रह गया।

हमने इन सब चीजो की ओर ध्यान दिया, और खर्च का अन्दाजा लगाने लगे। एकबारगी इन सारे कामो के खर्च के लिए प्रान्तीय सरकार से मदद माँगी जा सकती थी। शायद कुछ मिल भी जाती। पर इनके चलाने और कायम रखने के लिए तो म्युनिसिपैलिटी को ही खर्च देना पडता। उसके पास इसके लिए, बिना नया 'कर' लगाये, पैसे नहीं हो सकते थे। लोगो को शुद्ध और अच्छा दूध मिलना कठिन था। हमने इस पर भी विचार किया कि म्युनिसिपैलिटी की ओर से गोशाला कायम की जाय जो मुनासिब कीमत पर लोगों को शुद्ध दूध दे सके। पर यह सब कुछ रुपयो पर ही निर्भर था। इसलिए, हमने आमदनी बढाने का रास्ता ढूँढना शुरू किया। सयुक्त प्रान्त की म्युनिसिपैलिटियो को, शहर में आनेवाले माल पर चुंगी लगाने से, बहुत आमदनी होती है। हमने पटना शहर में भी चुंगी लगाने की बात सोची। इसका अन्दाजा हमने लगाया कि चुंगी द्वारा कितनी आमदनी बढेगी। इस तरह के प्रस्ताव को पहले म्युनिसिपैलिटी से मजूर कराना होता और फिर प्रान्तीय सरकार से। जब म्युनिसिपैलिटी मजूर कर लेती तब बात आगे बढती।

म्युनिसिपैलिटी के अन्दर घूसखोरी भी खूब चलती थी। जो खर्च होता था उसका भी पूरा नफा जनता को नहीं मिलता था। हमने इसको रोकने का प्रयत्न किया। फलत कर्मचारी हमसे मन ही मन बिगड गये, यद्यपि ऊपर से वे कुछ नहीं कर सकते थे। कुछ म्युनिसिपल कमिश्नर भी इस मामले में कर्मचारियो के साथ थे

और उनसे सहानुभूति रखते थे। हमारे प्रयत्न उनको भी नापसन्द थे। वे उस दल मे बहुत उत्साह से शरीक हो गये, जो हमारे विरोध के लिए बना था। वे हर मौके पर विरोध ही विरोध किया करते। फिर भी, सब बातो को सोच-विचार कर हमने चुंगी की बात उठायी और उसे पेश किया। म्युनिसिपैलिटी के अधिकाश मेम्बरो ने विरोध किया। प्रस्ताव नामजूर हो गया। उन लोगो का कहना था कि वे उन सभी सुविधाओ से, जो हम उन्हे देना चाहते थे और जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, वचित भले ही रहे, पर किसी तरह के नये कर को मजूर नही करेगे। हमने देखा कि शहर की सफाई, सडक का सुधार और शिक्षा-सम्बन्धी कोई भी उन्नति हमारे किये न हो पायेगी। बहुत समय लगाकर और काफी परिश्रम करके हम कोई भी बात पेश करते, विरोधी दल उसका विरोध करता। इस प्रकार कोई भी अच्छा काम करना कठिन हो जाता। इसलिए बारह-चौदह महीनो तक वहाँ रहकर हमने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही न था, क्योकि समय की बरबादी केवल हाथ रहती। जनता को हमसे कोई लाभ नही पहुँचता था।

हमारे समय मे एक बात हो गयी—बिजली-कल की स्थापना। म्युनिसिपैलिटी को इसमे और कुछ नही करना था। केवल पुरानी बत्तियो की जगह, सडको पर, बिजली-बत्ती लगा लेने की बात थी। किसी तरह लोगो ने यह मजूर कर लिया। हमारे समय मे ही बिजली-कम्पनी से बातचीत तय हो गयी। हमारे हटने के कुछ ही दिनो बाद बिजली-बत्ती जलने लगी। दूसरी बात यह हुई कि हमने म्युनिसिपैलिटी के मेहतरो की हालत सुधारने का थोडा प्रयत्न किया। एक आदमी उनके मुहल्लो मे जाकर उनसे मिलता। उनके घरो और बच्चो को साफ रखने की बाते उनसे करता। सप्ताह मे एक दिन सकीर्तन या कथा का भी प्रबन्ध करता। इस अवसर पर प्रसाद के लिए कुछ मिठाई बाँटी जाती। शुरू मे इस लालच से वे लोग, विशेषकर बच्चे, सकीर्तन और कथा मे शरीक होते। इसमे जो खर्च पडता उसका प्रबन्ध बाहर से किया जाता। विशेष प्रयत्न इसका भी किया जाता कि वे शराब पीना छोड दे। कुछ सफलता होती दीख पडी। पर हम वहाँ काफी समय तक रह न सके। हम लोगों के हटने के बाद शायद यह काम बन्द हो गया।

एक तीसरा काम और भी किया गया। हमने देखा कि इन लोगो के पास पैसे तो आते है, पर उनका दुरुपयोग होता है। इससे उनकी हालत बहुत बुरी थी। मेहतर का मुशाहरा दस-बारह रुपये मासिक होता। स्त्रियों को पुरुषो से दो रुपये मासिक कम मिलता। छोटे लडको को पाँच रुपये मासिक मिलता। इस तरह, यदि एक घर मे एक पुरुष और उसकी स्त्री तथा दस-बारह बरस के दो बच्चे होते, तो उसकी मासिक आमदनी प्राय तीस रुपये हो जाती, जो किसी भी सरकारी दफ्तर के क्लर्क का मुशाहरा है। पर जब हम देखते है कि क्लर्क को साफ-सुथरे कपडे और जूते पहनकर कचहरी जाना पडता है, उसके घर के स्त्री-बच्चे स्वय कुछ नही कमा सकते—क्लर्क की आमदनी पर ही निर्भर रहते है, तो स्पष्ट हो जाता है कि मेहतर का

परिवार इस मुशाहरे के लिहाज से अधिक कमाता है। साथ ही, मेहतर को उन घरों से, जहाँ वह काम करता है, म्युनिसिपैलिटी के मुशाहरे के अलावा कुछ न कुछ मिल ही जाता है, पर्व-त्योहार के अवसर पर भी कुछ आमदनी हो ही जाती है, तो भी उनकी हालत इतनी खराब क्यों रहती है। हमने इसके दो कारण देखे, एक तो शराबखोरी और दूसरा—कर्ज पर सूद। जिस दिन मुशाहरा बँटता उस दिन उनका महाजन वहाँ हाजिर रहता। जो मुशाहरा उन्हें मिलता, महाजन ही ले लेता! उसी रुपये को वह अपने पुराने कर्ज और सूद में सधा लेता। उसी दिन से फिर कर्ज लेकर ही मेहतर अपना काम चला सकता। कर्ज का सूद भी बहुत देना पड़ता। इसका नतीजा यह होता कि वह कभी कर्ज से बरी न हो पाता। हर महीने में एक अच्छी रकम सूद में चली जाती।

हमने इस अर्थ-संकट से उनको बचाना चाहा। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि मुशाहरा महीने में एक दिन मिलता है। वे महीने में कई बार करके कर्ज लेते हैं, जिसको महीने के अन्त में सूद के साथ अदा करना पड़ता है। हमने चाहा कि वे कर्ज लेना बन्द करें; पर वे इस पर राजी नहीं होते। हमने मुशाहरा बाँटने के स्थान पर महाजनों को आने से रोकना चाहा, तो मेहतर बिगड़ गये और हड़ताल करने पर तैयार हो गये! उनका कहना था कि महाजनों से उनका काम बहुत आसानी से चलता है, इसलिए वे उनको छोड़ नहीं सकते। वे यह भी कहने लगे कि जब तक उनका कर्ज अदा न हो जाय, महाजन उनको छोड़ेंगे नहीं। हमने सारे कर्ज को अदा कर देने का वादा किया और समझाया कि महाजन से रुपये न लेने से उनको बहुत बचत होगी। वे यह जल्दी समझने को तैयार न थे। हमने महीने के अन्त के बदले बीच के पन्द्रहवें दिन मुशाहरा देने का प्रबन्ध कर दिया। यह भी कह दिया कि जब जरूरत होगी, इस शर्त पर पेशगी मुशाहरा भी मिल सकेगा और मुशाहरा मिलने के दिन पेशगी दी हुई रकम काट ली जायगी। बहुत मेहनत के बाद उन्होंने यह बात समझी, और राजी हुए। नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनों के बाद, जब उन्होंने इस प्रबन्ध से लाभ देखा तो, वे बहुत प्रसन्न हुए। मालूम नहीं, हम लोगों के हट जाने के बाद यह प्रथा जारी रह सकी या नहीं। म्युनिसिपैलिटी से हटने में इसी एक बात का अफसोस रहा कि हरिजनों की थोड़ी-बहुत सेवा शायद की जा सकती, जो न की जा सकी।

जिस समय हम लोग पटना-म्युनिसिपैलिटी में काम कर रहे थे, प्रायः उसी समय कई अन्य जिलों के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी में भी काँग्रेसी लोग चुने गये। पहले कहा जा चुका है कि गया के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड में अनुग्रह बाबू चेयरमैन हुए थे। मुंगेर-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन शाह महम्मद जुबैर और वाइस-चेयरमैन श्री श्रीकृष्णसिंह, छपरा-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन मजहरुल हक साहब, चम्पारन में पहले बेतिया-म्युनिसिपैलिटी और पीछे चम्पारन-जिला-बोर्ड के चेयरमैन श्री विपिनबिहारी वर्मा, मुजफ्फरपुर-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद वर्मा और वहाँ के

डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन श्री रामदयालुसिंह हुए। भागलपुर-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन श्री कैलासविहारीलाल हुए। दरभगा मे चेयरमैन बाबू हरिनन्दन दास और वाइस-चेयरमैन मिस्टर महम्मद शफी (बैरिस्टर) हुए। छोटानागपुर के डिस्ट्रिक्ट-बोर्डो मे चेयर-मन वहाँ के डिपुटी-कमिश्नर हो सकते थे और वाइस-चेयरमैन गैर-सरकारी आदमी। इसलिए वहाँ मानभूम मे श्री जीमूतवाहन सेन और हजारीबाग मे श्री रामनारायणसिंह वाइस-चेयरमैन हुए। इस प्रकार हमारे सूबे के अनेक स्थानो मे, इन स्थानीय सस्थाओ मे, कॉंग्रेसी लोगो के हाथों मे अधिकार आया और वे काम करने लगे। जिस तरह की दिक्कते पटने मे थी वैसी और जगहो मे नही थी। केवल छोटानागपुर मे, अक्सर चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन के बीच, उठा-पटक होती रहती थी। हमारे आदमियो ने, प्राय सभी जगहो मे, काम अच्छा किया। लोगो पर भी प्रभाव अच्छा ही पडा। पर मै इस काम से सतुष्ट न था।

चुनाव होने के पहले ही, कॉंग्रेसी लोगो मे, उमीदवार बनने के बारे मे, परस्पर बडी स्पर्धा होने लगी। कुछ लोग उमीदवार न बनाये जाने पर दुखी होते। कुछ लोग समझने लगे, हमने देश की सेवा की है, इन बोर्डो मे स्थान मिलना एक प्रकार से उसी सेवा का इनाम है। अपना दावा पेश करने मे वे अपनी सेवाओ की बात पेश करते। इससे मेरे दिल पर यह असर पडा कि अभी तो एक बहुत छोटी बात सामने आयी है और इतने ही मे लोग उमीदवार बनाये जाने के लिए अपनी-अपनी सेवाओ की तालिका तैयार करा रहे है, तो आगे चलकर न मालूम क्या होगा। मैने कुछ दिनो के अनुभव के बाद एक लेख कलकत्ते के 'मार्डनरिव्यु' मे लिखा था। उसमे अपना नाम नही दिया था। पर उसमे उस समय के अपने विचारो को व्यक्त कर दिया था। बहुत जगहो मे, काम अच्छा होने पर भी, आपस मे कुछ मनोमालिन्य हो ही गया। इस बारे मे मुंगेर का जिला-बोर्ड बिलकुल अछूता रहा। वहाँ कभी आपस की वैसी स्पर्धा देखने मे न आयी जैसी अन्य स्थानो मे। इसका श्रेय वहाँ के कार्य-कर्त्ताओ और नेताओ को है। यद्यपि मेरा अपना विचार इन बोर्डो मे शरीक होने के खिलाफ हो गया, तथापि और सभी साथियो के विचार भिन्न थे। इसलिए मैने अपने विचारो को दबा रखा। मै हमेशा कॉंग्रेसी लोगों को चुनाव मे भाग लेने देता रहा। यथासाध्य उनकी मदद भी करता रहा।

जिस समय हम लोग म्युनिसिपैलिटियो और जिला-बोर्डो मे काम कर रहे थे, बिहार की सरकार ने एक बिल पेश किया। उसका आशय यह था कि इन बोर्डो के हिसाब जॉच करनेवाले सरकारी निरीक्षक (ऑडीटर) को अधिकार होगा कि वह इस बात का फैसला कर सके कि कोई खर्च, जो बोर्ड या बोर्ड के किसी पदाधिकारी ने किया हो, गैरकानूनी है। और, यदि वह उचित समझे तो ऐसे गैरकानूनी खर्च की रकम उस पदाधिकारी से अथवा उन मेम्बरो से, जिन्होंने इस खर्च की मजूरी दी हो, वसूल करने का निश्चय करे। १९२२ मे म्युनिसिपैलिटी और जिला-बोर्ड के कानून सशोधित और परिवर्धित किये गये थे, इन बोर्डों को अपने चेयरमैन चुनने का अधिकार मिला

था और अन्य प्रकार से भी जनता के प्रतिनिधियो को कुछ नये अधिकार मिले थे। इस नये बिल का आशय यह था कि जो नये अधिकार दिये गये है वे दूसरे प्रकार से कम कर दिये जायँ। सबसे बडी बात यह थी कि हिसाब-परीक्षक को कानूनी बातों पर फैसला देने का अधिकार दिया गया था। इससे हमारे सूबे के बोर्डो मे नये चुने हुए मेम्बरो को ये बाते बहुत खटकी। दूसरे लोगो को भी ये पसन्द न आयी। बोर्डो और जनता की ओर से बिल का जोरदार विरोध होने लगा।

इसी सिलसिले मे, इस पर तथा बोर्ड-सम्बन्धी अन्य विषयो पर विचार करने के लिए, बोर्डो के प्रतिनिधियो की एक कान्फ्रेन्स करने की राय ठहरी। यह कान्फ्रेन्स पटने मे की गयी। मौलाना मजहरुल हक साहब, जो सारन-जिला-बोर्ड के चेयरमैन थे, इसके सभापति होने को थे। मुँगेर-जिला-बोर्ड के चेयरमैन शाह महम्मद जुबैर ने इसका उद्घाटन किया। मजहरुल हक साहब के अकस्मात् अस्वस्थ हो जाने के कारण मुझे ही इसका सभापति बनना पडा। सारे सूबे के प्राय सभी मुख्य-मुख्य जिला-बोर्डो और म्युनिसिपैलिटियो के प्रतिनिधि इसमे शरीक हुए। सर्व-सम्मति से आडिट-बिल की निन्दा की गयी। बोर्ड-सम्बन्धी दूसरे विषयो पर भी विचार किया गया। एक विषय, जो उन दिनों बडे महत्त्व का हो गया था, यह था कि जिला-बोर्ड के इन्जीनियर बोर्ड के नौकर न रहकर प्रान्तीय सरकार के नौकर हो। इसका भी विरोध किया गया। शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न पर भी विचार हुआ। कहा गया कि पाठ्यपुस्तकों को चुनने के लिए जो कमिटी है उसका सगठन हो और उसमे बोर्डो के प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाय। कान्फ्रेस ने एक छोटी स्थायी कमिटी कायम कर दी। और, इस प्रकार के सम्मेलन की आवश्यकता तथा उपयोगिता महसूस करके फिर समय पर मिलने का भी निश्चय किया। मै समझता हूँ कि बोर्ड से हमारे हट जाने के बाद भी यह कान्फ्रेस जब-तब होती और बोर्ड-सम्बन्धी विषयो पर विचार-विनिमय करती रही।

एक दुर्घटना इन बोर्डो के चुनावो को लेकर और भी हुई, जिसका असर बहुत बुरा पडा। १९२२ से ही हिन्दू-मुस्लिम झगड़े जहाँ-तहाँ शुरू हो गये थे। अकसर बलवे की खबर किसी न किसी जगह से आती ही रहती थी। हम लोग बहुत बेचैन रहा करते थे। अपने सूबे मे दगा न होने देने के प्रयत्न मे हम सतत लगे रहते थे। पर यहाँ भी कई जगहों मे दगे हो ही गये। आज उन सब जगहों के न तो नाम ही याद है और न क्रम से उनकी तारीख ही मै बतला सकता हूँ। इसके लिए उन दिनो के समाचारपत्रो की फाइले देखनी होंगी। पर ये दगे इतने बढ गये थे और इतने स्थानों मे होते रहे कि इनका असर पडे बिना रह नही सकता था। शुद्धि और तबलीग सगठन और तन्जीम के प्रचार ने लोगों मे इस हिन्दू-मुस्लिम कशमकश को और भी बढा दिया। आपस का मनोमालिन्य बढ़ता ही गया। जहाँ बलवा न भी हुआ वहाँ भी दुर्भाग्यवश पारस्परिक विश्वास न रहा। उधर खिलाफत का मामला एक प्रकार से, जब तुर्कों ने खलीफा को हटा दिया तो, स्वभावत कुछ ढीला पड़ गया। बहुत से मुसलमान, जो कांग्रेस मे खिलाफत के कारण ही शरीक हुए थे,

कुर्सी पर बायें से दायें— (१) सर्वश्री मृत्युञ्जयप्रसाद, (२) नर्वदेश्वरप्रसाद, (३) महेन्द्रप्रसाद, (४) राजेन्द्रप्रसाद, (५) भगवतीप्रसाद वर्मा, (६) जनार्दनप्रसाद वर्मा। बैठे हुओं में बायें से चौथे श्री लवलीनप्रसाद, और पाँचवें बाबू धनञ्जयप्रसाद।

जीरादेई (सारन) १९०३, (लेखक के मकान पर)

आहिस्ता-आहिस्ता अलग होने लगे। यह साफ दीखने लगा कि १९२१-२२ की तरह सभी बातो मे वे एकमत नही रह सकते। जनता पर दगो का विशेष प्रभाव पडता था। बिहार-जैसे हिन्दू-प्रधान सूबे मे मुसलमानों के चुने जाने मे दिक्कत पडने लगी।

पटना-म्युनिसिपैलिटी मे मौलवी खुरशैद हसनैन के चुनाव की दिक्कतो का जिक्र ऊपर कर चुका हूँ। यहाँ हम लोगो ने खूब जोर लगाया। मौलवी साहब को कुछ करने न दिया। वह बडे बहुमत से चुने गये। इसी तरह छपरे मे, मजहरुल हक साहब की सेवा और त्याग तथा व्यक्तित्व का बहुत बडा प्रभाव था। तो भी कुछ लोगो ने दिक्कत पैदा करने का प्रयत्न किया। पर वहाँ मेरे भाई साहब की बहुत धाक थी। उन्होने वहाँ उठी हुई दिक्कतो को दवा दिया। हक साहब आसानी से चुने गये। मुँगेर मे जुबैर साहब को लोग बहुत मानते थे। वहाँ कोई दिक्कत पेश न आयी। मुजफ्फरपुर मे मौलवी महम्मद शफी की सेवा और त्याग किसी से कम न था। पर कांग्रेसी लोगो मे उतना ऐक्य नही था अथवा जनता पर वे अपना उतना अच्छा प्रभाव न डाल सके। नतीजा इसका यह हुआ कि मौलवी शफी हार गये। हम सबको इसका बहुत अफसोस हुआ। पर हम लाचार हो गये। मौलवी शफी साहब के दिल पर इसका असर पडा। पर उस समय उन्होने उसे दवा रखा, और काम करते रहे। किन्तु इसका बुरा परिणाम पीछे देखने को मिला, जब उन्होने कांग्रेस छोडकर मुस्लिम सस्था कायम करने मे अपना समय लगाना शुरू कर दिया। यह कुछ दिनो के बाद हुआ; पर इसका सूत्रपात डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चुनाव की हार मे ही हो गया था। यद्यपि इन चुनावो मे यथासाध्य मुसलमानो के चुनवाने का प्रयत्न किया गया और वे अच्छी सख्या में चुने भी गये, तथापि बिहार के मुसलमानो ने महसूस किया कि वे काफी सख्या मे नही चुने गये। ऐसे मामलो मे विश्वास वडी चीज होता है। वह अकारण भी कमजोर पड सकता है। इन पक्तियो के लिखने के समय मेरे सामने उन चुनावो के नतीजो के आँकडे तो नही है, पर मै समझता हूँ कि मुसलमानो के साथ कोई अन्याय नही हुआ था। हाँ, जहाँ-तहाँ कुछ कम-बेश चुने गये हो अथवा प्रमुख व्यक्ति न चुने गये हों, परतु सारे सूबे पर दृष्टि डालने से मालूम होगा कि उस वक्त कांग्रेसी लोगो ने उनको चुनवाने मे यथासाध्य खूब परिश्रम किया और वे सफल भी हुए। पर बहुतेरे मुसलमानो का विश्वास कम हो गया, जिसका बुरा परिणाम पीछे कुछ दिनो के बाद देखने मे आया।

५६—बंगाल में दमन, स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता और बेलगाँव-काँग्रेस

गाधीजी का उपवास समाप्त होने के वाद उनको कुछ समय स्वास्थ्य-लाभ करने मे लगा। वह कोहाट जाने के लिए वेचैन थे, पर गवर्नमेंट ने वहां जाने की इजाजत नही दी। इसी समय गवर्नमेंट ने एक और चक्र चलाया। उसने एक नया आर्डिनेन्स यह कहकर जारी किया कि बगाल मे विप्लववादी लोग फिर षड्यन्त्र कर

रहे हैं और जहाँ-तहाँ उनके द्वारा हत्याएँ की जा रही हैं। 'डे' की हत्या और चन्द दूसरी घटनाओं का हवाला देते हुए इसकी आवश्यकता बतलायी गयी। साथ ही, श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा बहुतेरे दूसरे कार्यकर्त्ता एक दिन बंगाल में गिरफ्तार कर लिये गये। यद्यपि इसकी अफवाह कुछ पहले से थी कि देशबन्धु दास भी गिरफ्तार किये जायँगे, तथापि वह पकड़े नहीं गये। इस आर्डिनेन्स और इन गिरफ्तारियों से सारे देश में सनसनी फैल गयी। सब लोग क्षुब्ध हो उठे। इनसे नरम दलवाले भी काफी नाराज हुए। स्वराज्य-पार्टी के लोगों के विचार में तो यह आर्डिनेन्स विशेषत उन पर ही लागू करने के लिए बनाया गया था, क्योंकि उन्होंने बंगाल और मध्यप्रदेश में मंत्रिमंडल तोड डाला था और वहाँ नयी योजना एक प्रकार से काम नहीं कर रही थी। महात्माजी भी इससे बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने देशबन्धु दास और पंडित मोतीलालजी के साथ तुरत समझौता कर लिया। सारे देश में सभाएँ हुईं, सभी बड़े-बडे नेताओं ने पत्रों में अपने बयान छपवाये जिनमें सरकार की इन कार्रवाइयों की कडी निन्दा की गयी। पटने में भी एक बड़ी सभा हुई। उसमें सभी विचारों और दलों के लोग शरीक हुए। बंगाल में दमन-नीति चलाने की कडी आलोचना उसमें की गयी। मैंने उस सभा में जोरदार भाषण किया।

गांधीजी ने जो समझौता किया उसका आशय यह था कि कांग्रेस विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के सिवा अन्य असहयोग स्थगित कर दे और भिन्न-भिन्न प्रकार के काम कांग्रेस के अन्दर भिन्न-भिन्न जमायतें करें, पर चर्खा और खादी का प्रचार, आपस में—विशेषकर हिन्दू-मुसलमान के बीच—मेल-जोल और एकता बढाना तथा हिन्दुओं में अछूतपन दूर करने के काम सबके लिए अनिवार्य समझे जायँ, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस की अंग-स्वरूप होकर कांग्रेस की तरफ से काम करे, इसके लिए वह अपने नियम बना ले, अपने पैसे भी जमा और खर्च करे चूँकि यह देखा गया है कि जब तक सूत कातना सर्वव्यापी न हो जाय, हिन्दुस्तान कपडे के सम्बन्ध में स्वतंत्र नहीं हो सकता, चूँकि चर्खा चलाना एक जीता-जागता और साफ नजर आता हुआ उपाय है जो कांग्रेसी लोगों और भारत की जनता के बीच सम्बन्ध जोडनेवाला है, इसलिए चर्खा और खद्दर के प्रचारार्थ कांग्रेस की नियमावली में यह संशोधन कर दिया जाय कि कोई आदमी तब तक कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता जब तक उसकी उम्र अठारह बरस की न हो—जो राजनीतिक अवसरों और कांग्रेस के मौकों पर तथा कांग्रेस का काम करते समय हाथ-कता हाथ-बुना खद्दर न पहनता हो—जो प्रतिमास अपने हाथ का कता दो हजार गज अच्छा बराबर सूत, और बीमारी तथा अनिच्छा अथवा इस प्रकार के अन्य किसी कारण की हालत में इतना दूसरे का काता हुआ सूत कांग्रेस-कमिटी को न दे। इसका नतीजा यह होना था कि स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस के नाम पर कौन्सिल का काम करने का अधिकार मिल जाता था, पर कांग्रेस-मेम्बर बनने के लिए अब चार आने पैसे की जगह दो हजार गज सूत अपने हाथ से कातकर—बीमारी और अनिच्छा की

हालत मे दूसरे से खरीद कर—देना पडता था। यह समझौता अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमिटी और बेलगाँव-कांग्रेस की मजूरी के लिए पेश होने को था।

बगाल के दमन और इस समझौते पर विचार करने के लिए मौलाना महम्मद अली ने बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की। उसी समय उन्होने देश के अन्य राजनीतिक दलों को भी आमन्त्रित किया कि बगाल की स्थिति पर सब मिलकर विचार करे। गाधीजी पहले से ही इस प्रयत्न मे थे कि सब दलो को कांँग्रेस मे फिर से शरीक होने के लिए प्रोत्साहित और आमन्त्रित किया जाय। गवर्नमेंट की कार्रवाई ने इस प्रयत्न मे बडी मदद पहुँचा दी। बम्बई मे एक बडा सम्मेलन हो गया जिसमे सभी दलो के लोग शरीक हुए। बम्बई के सर दिनशा पेटिट इसके सभापति हुए। इसके पहले प्रस्ताव मे सरकार की दमन-नीति की निन्दा करते हुए स्वराज्य की माँग पेश की गयी। दूसरे प्रस्ताव द्वारा एक कमिटी नियुक्त हुई, जिसको आदेश दिया गया कि वह इस बात पर विचार करे कि किस तरह राजनीतिक दलो को कॉंग्रेस के अन्दर शामिल किया जा सकता है और स्वराज्य का एक मसविदा तैयार करे, जिसमे हिन्दू-मुस्लिम समस्या के—और इस प्रकार के दूसरे मसलो के—राजनीतिक दृष्टि से हल रहे तथा इस कमिटी की रिपोर्ट ३१ मार्च तक तैयार करके अप्रैल मे फिर कान्फ्रेन्स की बैठक की जाय। इस सर्वदल-सम्मेलन का महत्त्व यह था कि इसमे कॉंग्रेस के अलावा, जिसमे स्वराज्य-पार्टी भी शामिल थी, प्राय और जितने राजनीतिक दल थे तथा मुस्लिम लीग के लोग—सब शरीक हुए थे। इसकी कार्रवाई से सारे देश मे एक नयी लहर उठी। आशा होने लगी कि अब सब लोग फिर मिल कर, एक साथ अगर न हो तो अपने-अपने विचार के अनुसार, एक ध्येय—स्वराज्य-प्राप्ति—के लिए प्रयत्न मे लग जायँगे।

उसी समय अखिल भारतीय कमिटी की बैठक भी हुई। उसमे गाधीजी और स्वराज्य-पार्टी के बीच हुआ समझौता मजूर किया गया। अपरिवर्तनवादियो मे बहुतेरे ऐसे थे जो इस समझौते को नापसन्द करते थे। उनका विशेप विरोध इससे था कि स्वराज्य-पार्टी को कौन्सिलों में कॉंग्रेस के प्रतिनिधि-रूप होकर बोलने का हक दे दिया गया था। लोग चाहते थे कि यदि उन्हे यह अधिकार दिया जाय तो उन पर नियत्रण भी कॉंग्रेस का रहे। गाधीजी इस नियत्रण के भार को नही लेना चाहते थे। बहुत वाद-विवाद के बाद समझौता मजूर हो गया।

इन दोनो सम्मेलनो ने महात्माजी के लिए रास्ता साफ कर दिया। वह आपस की जिस फूट से दुखित थे वह बहुत हद तक दूर हो गयी। जो कुछ मनमुटाव रह गया था उसे भी दूर करने का दरवाजा खुल गया। बेलगाँव मे होनेवाली कॉंग्रेस के अधिवेशन के लिए वह सभापति चुने जा चुके थे, पर उन्होंने उसे अभी मजूर नही किया था। इन सम्मेलनो के बाद उन्होने उसे मजूर कर लिया। यह भी आशा की जाती थी कि कॉंग्रेस के समय अन्य दलवाले भी अपने वार्पिक अधिवेशन बेलगाँव मे ही करेगे जिसमे फिर सब लोगो को एक बार मिलकर आपस मे बातचीत करने का मौका

मिले। पर ऐसा हुआ नही। केवल श्रीमती एनी बेसेण्ट ने कॉंग्रेस मे शरीक होने का निश्चय कर लिया। वह अपने अनुयायियो के साथ बेलगाँव मे शरीक भी हुईं।

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे नियमानुसार बेलगाँव मे अधिवेशन हुआ। वहाँ के लोगो मे काँग्रेस के कारण उत्साह बहुत था। श्री गगाधरराव देशपाडे, बूढे होकर भी जवान की तरह, घोडे पर सवार सभी जगहों मे आते-जाते और प्रबन्ध की निगरानी करते दिखाई देते। अधिवेशन के साथ-साथ प्रदर्शनी तो बराबर हुआ ही करती है। बेलगाँव मे सगीत-सम्मेलन भी हुआ जिसमे कर्नाटक के प्रमुख गुणी और कलाकार शरीक हुए। मैसूर-दरबार से इसमे पूरी सहायता मिली थी। वहाँ के गुणी विद्वान् इसमे दरबार की ओर से भेजे गये थे। उनमे सबसे नामी श्री शेषन्नाजी थे जो वीणा के आचार्य्य समझे जाते थे। जब उपस्थित काँग्रेस-प्रतिनिधियो को समय मिला, उन्होने बहुत ही सुन्दर दक्षिणी—विशेषत कर्नाटकी—सगीत सुनाया। एक दिन गाधीजी की कुटी मे उन्होने अपनी वीणा का चमत्कार भी दिखलाया।

५७—बोधगया का मन्दिर

एक विशेष घटना यह हुई कि काँग्रेस के पास सिंहल द्वीप (सीलोन) से, डाक्टर कैसियस परेरा (Cassius Periera) के नेतृत्व मे, बौद्धो की ओर से एक मडली आयी। उसने यह माँग पेश की कि बोधगया का बुद्ध-मदिर बौद्धो के अधिकार मे दिला देना चाहिए। गया-काँग्रेस के समय ही बरमा से, भिक्षु उत्तमा के नेतृत्व मे, प्राय एक सौ भिक्षुओ की एक बडी जमायत आयी थी। बरमा हिन्दुस्थान के साथ ही था। वहाँ भी काँग्रेस-कमिटी थी। ये लोग उसी के प्रतिनिधि होकर आये थे। उनके लिए 'एक पथ दो काज' था—काँग्रेस का देखना और बोधगया मे बुद्ध-देव का दर्शन। काँग्रेस का स्थान भी बोधगया के रास्ते पर ही था। उस समय, और कोकनाडा-काँग्रेस के बाद भी, कुछ इस तरह की बात चली थी तथा मुझे इस बोध-गया-सम्बन्धी प्रस्ताव पर जाँच करने का आदेश मिला था। पर मै यह काम कर नही पाया था। बेलगाँव मे डेपुटेशन ने इस सवाल को काँग्रेस मे पेश करना चाहा। गाधीजी ने उनसे बाते कर ली। इस सम्बन्ध मे जाँच करके रिपोर्ट पेश करने के लिए गाधीजी ने मुझे इस अधिकार के साथ काम फिर सपुर्द किया कि मै और जिसको चाहूँ अपने साथ इसमे शरीक कर लूँ। इससे वे लोग सन्तुष्ट हो गये। लाला लाजपतरायजी बहुत डरते थे कि विदेशी बौद्धो को यदि मदिर पर अधिकार दिया गया तो हो सकता है कि वह विदेशी षड्यन्त्र का केन्द्र बन जाय और अन्तरराष्ट्रीय जटिलता उपस्थित हो जाय।

मैने काँग्रेस से लौटकर जाँच का काम आरभ किया। एक छोटी कमिटी बन गयी। उसमे श्री ब्रजकिशोरप्रसाद, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल और श्री रामोदार-दास (जो पीछे भिक्षु राहुल साकृत्यायन हुए) सदस्य थे। जब जाँच आरम्भ हुई तब सिंहल से फिर सिंहलवासी श्री गुणीसिंह आये। कुछ दिनो तक विहार मे रहकर

कमिटी के काम मे उन्होने बौद्धो की ओर से मदद पहुँचायी। मैने सबसे पहले हिन्दुओ का विचार जानने का प्रयत्न किया। इसलिए पटने में दो सभाएँ की गयी, पर उनमे उपस्थिति सतोषजनक नही थी, अत उनके निश्चय का कोई विशेष महत्त्व नही था। भाग्यवश उसी समय मुजफ्फरपुर में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन होनेवाला था जिसके सभापति लाला लाजपतरायजी थे। वहाँ मैं गया। बोधगया के महन्त की ओर से भी कुछ लोग सभा मे गये थे। सभा ने एक प्रस्ताव मजूर किया जिसमे हिन्दुओ और बौद्धो की सम्मिलित कमिटी के हाथों मदिर के प्रवन्ध का भार सोपने की राय दी गयी। पर साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि इस बात पर पूरी तरह विचार करने—और हो सके तो महत को भी राजी करने—के लिए एक कमिटी बनायी जाय। उसके सदस्य भी उपरोक्त चार सज्जन थे। उनके अलावा एक और सज्जन तथा बोधगया के महत भी सदस्य बनाये गये। पर जब कमिटी का काम शुरू हुआ, ये दोनो सज्जन उसमे शरीक न हुए। इस तरह हिन्दू-महासभा और कॉंग्रेस की ओर से हम चार आदमियो ने ही रिपोर्ट तैयार की। कमिटी ने सभी बातो का विचार करके एक लम्बी और महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट तैयार की। साथ ही, अपनी सिफारिश यह की कि बोधगया के मन्दिर का प्रबन्ध हिन्दुओ और बौद्धों की एक सम्मिलित कमिटी के हाथो मे दिया जाय—वहाँ की पूजा-अर्चा का प्रवन्ध बौद्ध रीति के अनुसार किया जाय, पर हिन्दुओ को भी दर्शन और पूजा का अधिकार रहे।

यद्यपि यह बौद्धो का मुख्य तीर्थस्थान है तथापि इस मन्दिर का प्रवन्ध बोध-गया के शैव महत के हाथ मे है। हिन्दू भी बुद्धदेव को अपने मुख्य दश अवतारो मे एक मानते है। तब भी उनकी पूजा हिन्दुओ मे प्रचलित नही है। कही-कही तो उनकी निन्दा भी की गयी है। इसलिए वहाँ यद्यपि पूजा का कुछ प्रवन्ध था तथापि इस महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थान के योग्य नही था। हमने समझा कि बौद्धो की शिकायत ठीक है कि पूजा का समुचित प्रबन्ध बौद्ध ही कर सकते है। इसलिए कमिटी ने अपनी ओर से ऐसी सिफारिश की। हमने महत से भी भेट करके इस बात की कोशिश की कि वह इस बात पर राजी हो जायँ कि मन्दिर का प्रवन्ध कमिटी के जिम्मे कर दिया जाय। हमने उस कमिटी की सदस्यता उनको भी देनी चाही। उनको मन्दिर से जो कुछ आमदनी चढावे के रूप मे आती हो उसका मुआवजा भी देने की बात की। पर वह किसी तरह राजी न हुए। उनका कहना था कि मन्दिर पर वह मुनाफे की लालच से अधिकार रखना नही चाहते, क्योकि मन्दिर मे जितना खर्च होता है उतना भी हमेशा चढावे के रूप मे नही आता, और यदि कुछ आता भी है तो वह इतना कम है कि वह अपनी बडी जमीन्दारी के सामने उसे कुछ नही समझने। बात भी सच है। उस मठ की आमदनी कई लाख की है। मन्दिर से शायद हजार दो हजार साल मे आते हो। पर वह यह मानते थे कि मन्दिर पर अधिकार रहने के कारण उनकी बडी प्रतिष्ठा है जो विदेशो तक पहुँची हुई है। उसे वह नही छोडना चाहते थे। हमने उनको बहुत समझाया कि हमारी बात मान लेने मे उनकी

प्रतिष्ठा घटने की जगह बहुत बढ जायगी, पर वह इस बात को नही समझ सके। हमारा प्रयत्न असफल रहा। हमने अपनी सिफारिश करके ही मामले को उपयुक्त समय के लिए छोड रखा।

वह रिपोर्ट अखिल भारतीय कमिटी के सामने पेश हुई। मजूर भी कर ली गयी। पर आज तक वह काम पूरा नही हुआ। जब कई बरसो के बाद कांग्रेस की मिनिस्ट्री बनी तो फिर एक डेपुटेशन सीलोन से आया। उसने वही माँग पेश की। मै उन दिनों बीमार होकर अपने गाँव जीरादेई मे जाकर रहता था। इसलिए वे लोग जीरादेई गये। प्रधान मत्री से भी मिले। महत किसी तरह राजी नही होते थे। इसलिए कानून द्वारा ही कुछ हो सकता था। मैने प्रधान मत्री को लिखा कि वह इस सम्बन्ध मे कानून बनाने का प्रबन्ध करे। वह इस सम्बन्ध मे विचार और राय-बात भी करने लगे। पर और-और झझटो मे फँसे रहने के कारण यह बात आगे न बढ सकी। जब मत्रि-मडल ने इस्तीफा दिया उस समय भी यह बात जहाँ की तहाँ टँगी रह गयी। मै आज भी मानता हूँ कि न्याय इसी मे है कि इस मन्दिर के प्रबन्ध का भार और अधिकार बौद्धो के हाथ मे देना चाहिए। और, चूँकि हिन्दू भी बुद्धदेव को अवतार मानते है, इसलिए प्रबन्ध-कमिटी मे हिन्दुओ को भी रहना चाहिए। इसी सिलसिले मे एक बात और उल्लेखनीय है। सिंहल मे एक प्रसिद्ध मदिर है जिसका नाम कतरगामा है। वहाँ के हिन्दू कहते है कि वह हिन्दुओ का मन्दिर है और बौद्धो ने उस पर अधिकार कर लिया है। जब यहाँ बात चल रही थी, सीलोन के हिन्दुओ की ओर से मेरे पास पत्र और तार आते रहे कि हम हरगिज बोधगया के मदिर पर बौद्धो को उस वक्त तक अधिकार न दे जब तक वे कतरगामा-मदिर पर हिन्दुओ का अधिकार न मान ले। अगर बात आगे बढती तो शायद इस सम्बन्ध की बात भी कुछ होती। पर वह समय ही नही आया। बात वैसे ही रह गयी।

यहाँ १९२५ की बात लिखते-लिखते इस विषय की चर्चा मे १९३९ तक चला आया, क्योकि इसे एक जगह कह देना ही ठीक था।

५८—बेलगाँव के बाद की कुछ घटनाएँ

बेलगांव-कांग्रेस मे स्वराज्य-पार्टी के साथ का समझौता मजूर हो गया। गाधीजी इस पर राजी-से हो गये कि जहाँ तक राजनीतिक प्रश्नों का सम्बन्ध है, उसमे स्वराज्य-पार्टी की ही प्रधानता रहे और अगर वे चाहे तो वर्किंग कमिटी भी अपनी इच्छा के अनुकूल बना ले, पर खादी-प्रचार और रचनात्मक काम मे पूरी मदद करे तथा उसका सचालन हम (गाधीजी) पर छोड दे। इसी नीति के अनुसार कांग्रेस के विधान मे सशोधन हुआ। कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए चार आना शुल्क देने के बदले अपने हाथ का कता हुआ सूत देना मजूर किया गया।

जब से गाधीजी जेल से निकले थे, उन्होने खादी-प्रचार पर बहुत जोर डाला था। मै भी अपने सूबे मे रचनात्मक काम मे ही—विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा और खादी-

प्रचार मे—लगा रहा। १९२४ के दिसम्बर मे पटने मे एक प्रदर्शनी की गयी, जिसमे चर्खा और उससे उत्पन्न सब प्रकार की खादी के नमूने दिखलाये गये। मैंने इस प्रदर्शनी को राजनीति से अलग रखा। सब लोगो को आमन्त्रित किया कि वे आकर देखे कि हाथ से किस तरह और कैसा सूत बन सकता है तथा खादी-प्रचार से गरीबो को कितना लाभ हो सकता है। सरकारी उच्च कर्मचारी भी खूब आये। उन्होने खादी की प्रगति देखी। ऐसे लोगो मे पटना-हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर डासन मिलर प्रमुख थे। दूसरे हिन्दुस्तानी और अँगरेज जज, बिहार के गवर्नर की कौन्सिल के मेम्बर सर ह्यू मैकफरसन तथा अनेकानेक उच्च कर्मचारी भी आये। चर्खे की जो प्रतियोगिता हुई उसमे मलखाचक-गाँवों-कुटीर (सारन) के दो लडको ने प्रथम पुरस्कार पाया। वे श्री रामविनोदसिंह के छोटे भाई थे। उनकी प्रगति घटे मे प्राय ६०० गज की थी। इन्ही दोनो युवको मे से एक डाक्टर सत्यनारायणसिंह है जो पीछे योरोप मे शिक्षित हो डाक्टर की डिगरी लेकर वापस आये और हिन्दी मे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुए। महीन सूत के कातनेवालो ने प्राय ३०० नम्बर तक का सूत कात कर दिखलाया। उस समय तक जो प्रगति हुई थी, मैंने उसकी रिपोर्ट अपने भाषण मे लोगो के सामने पेश कर दी। जहाँ तक मेरा अनुमान है, लोग बहुत सतुष्ट हुए। पारितोषिक-वितरण चीफ जस्टिस की पत्नी लेडी मिलर ने किया।

जो प्रदर्शनी बेलगाँव मे हुई उसका उद्घाटन करने का श्रेय मुझे मिला। शायद वह इसलिए मुझे मिला कि हमारे प्रान्त मे खादी का काम अच्छा चल रहा था। यद्यपि प्रदर्शनी मे अन्य कलाओ के नमूने भी दिखलाये गये तथापि मैंने अपने भाषण मे विशेषकर खादी के सम्बन्ध मे ही कहा। मैंने इस पर जोर दिया कि यदि प्रचारक और पैसो की कमी न हो तथा लोग खादी खरीदे, तो सारे देश के लिए थोड़े समय मे ही काफी खादी तैयार की जा सकती है।

इसी वर्ष मे एक और छोटी-सी घटना हुई जो मेरे लिए एक पुण्यस्मृति है। पटना-युनिवर्सिटी के समावर्तन-समारोह के अवसर पर सर जगदीशचन्द्र बोस दीक्षान्त भाषण करने आये। मैंने उनको बिहार-विद्यापीठ मे निमन्त्रित किया। जब मैं प्रेसिडेन्सी कालेज (कलकत्ता) मे पढता था तब डाक्टर बोस ने मुझे पढाया था। पर वह बहुत दिनो पहले की बात थी। वह भी ऊपर के दर्जो मे—जैसे बी० एस्-सी० अथवा एम० ए० मे नही, एफ० ए० मे ही मुझे उनसे पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसलिए, मैं नही समझता था कि उनको मेरे सम्बन्ध मे कुछ याद होगा अथवा वह मुझे कुछ विशेष रीति से जानते होगे। परन्तु यह जानकर मेरे आह्लाद का ठिकाना न रहा, कि वह केवल मुझे अच्छी तरह याद ही नही रखते थे, बल्कि मुझ पर प्रीति भी रखते थे। वह खुशी से विद्यापीठ आये। वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर, प्रोत्साहन देनेवाला, ओजस्वी भाषण भी किया। मैंने अपने को कृतकृत्य माना। उसी प्रेम और विश्वास का परिचय अपने मरने के कुछ पहले उन्होने दिया—बिहार मे मद्यनिषेध के लिए एक बडी रकम दी और उसके सूद की आमदनी को खर्च करने का भार मुझे दिया। वह जैसे

विज्ञान के विद्वानो मे शिरोमणि थे वैसे ही सच्चे देशभक्त और त्यागी भी। मद्यनिषेध का काम, १९४२ मे मेरे जेल आने तक, मेरी निगरानी मे, झरिया मे होता रहा। लेडी अबला बोस मेरे पास रुपये भेजती रही। जब मै जेल चला आया और काम करनेवाले भी दमन मे गिरफ्तार कर लिये गये तो जो रुपये मेरे पास बचे थे, मैने लेडी बोस और ट्रस्टियों के पास वापस कर दिये। यह इसलिए भी आवश्यक हो गया कि मेरे नाम से जितने एकौण्ट बक मे थे उन पर गवर्नमेण्ट ने रोक लगा दी। इसलिए अब रुपये के बिना, विशेषकर मेरी गैरहाजिरी मे, काम बन्द हो ही जाता। मैने सोचा कि रुपयो को अपनी जिम्मेदारी पर रखना उचित न होगा, विशेषकर जब इसका ठिकाना न था कि हम कब तक जेल मे रहेगे। मेरे लिखने पर गवर्नमेण्ट ने इस हिसाब के रुपयो को उनके पास भेज देने की इजाजत दे दी। अब प्राय सोलह महीनो तक जेल मे रहने के बाद, जब ये पक्तियाँ लिखी जा रही है, मै सोचता हूँ कि मैने रुपये वापस कर देने का निश्चय करके ठीक ही किया। अफसोस केवल इतना है कि आचार्य बोस महोदय की इच्छा मै पूरी न कर सका, पर इसमे मेरा कसूर नही है। भारतवर्ष मे राजनीति कुछ ऐसी ही चीज है। इसमे पडे हुए मनुष्य को बहुतेरे दूसरे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण काम छोडने ही पडते है। यद्यपि आज गवर्नमेण्ट ने मद्यनिषेध-सम्बन्धी कॉग्रेस-मिनिस्ट्री की नीति को उलट दिया है और झरिया मे—जहाँ इन रुपयो से काम हो रहा था—फिर भी शराब की बिक्री होने लगी होगी, तथापि मुझे विश्वास है कि जब फिर हमको समय मिलेगा, उनकी इच्छा पूरी की जायगी।

यहाँ एक और घटना का भी जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा। खादी के काम करनेवालो मे एक युवक थे श्री बब्बनसिह। सारन जिले के गोपालगज सब-डिवीजन के कैथवलिया गाँव के रहनेवाले थे। बडे भावुक थे। मुखतारकारी की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे। परतु देश की पुकार सुनकर वह विचार छोड खादी के काम मे लग गये। घर के कुछ धनी नही थे। बहुत छोटी वृत्ति के आदमी थे। अपने पैसे से खादी और चर्खे का प्रचार उन्होने शुरू कर दिया। अपनी जमीन तथा पत्नी के जेवर तक बेच डाले। इतना करने के बाद उन्होने खादी-बोर्ड से अपनी हालत कही। उस बोर्ड की ओर से उन्हे सहायता देने का निश्चय हुआ। इसी अवसर पर वह बीमार पड गये। उन्माद के लक्षण उनमे दीखने लगे। वह बार बार कहते कि उनको सॉप काट डालेगा। हमेशा चर्खा और खद्दर के गीत गाते रहते। कभी-कभी बिगड भी जाते। इसलिए लोगो ने उनको एक घर मे बन्द कर रखा था। एक दिन रात के समय चिल्लाकर कहने लगे कि सॉप आ गया और वह उससे लड रहे है। पहले तो लोगो ने उसे पागल का प्रलाप ही समझा। पर जब लोगों ने जाकर देखा तो सचमुच एक गेहुँअन साँप को वह हाथ मे पकडे हुए थे। उसने उनको कई जगह काट लिया था। उन्होने सॉप को तो मार डाला, पर स्वय भी कुछ देर मे उसके विष से मर गये।

श्री बब्बनसिंह की स्त्री ने, उनकी बीमारी के आरंभ के दिन से ही, अन्न खाना छोड दिया था। जब चौबीसवे दिन उनकी मृत्यु हो गयी, उसने स्नानादि कर सती होने की इच्छा प्रकट की। लोगो ने ऐसा नही करने दिया। उनके शव को दाह-क्रिया के लिए ले गये। उसने बहुत जोर लगाया, पर लोगो ने उसे जबरदस्ती बन्द कर रखा। उस समय वह शान्त हो गयी। चुप रहने लगी। अपने घर मे, जिसका एक कोना बहुत अँधेरा था, रहा करती। उसी कोने मे कुछ रुई और खादी रखी हुई थी। तीन-चार दिनो के बाद एक रात वह अपने घर मे सोने गयी। बब्बनसिंह के दो भाई बाहर के घर मे सोये। किसी ने कुछ सन्देह न किया। सवेरे वह नही उठी। तब लोगो को सन्देह हुआ। जब लोगो ने उस कोठरी के अन्दर जाकर देखा तो पाया कि 'रामसूरत' (यही उसका नाम था) एक हाथ मे गीता लिये और दूसरे हाथ पर टेक दिये बैठी है। बदन छूने पर मालूम हुआ कि पैर के अँगूठे से लेकर छाती तक शरीर जलकर खाक हो गया है और बाकी हिस्सा ज्यो का त्यो है। पीठ पर लटके हुए सिर के लम्बे केश कुछ जल गये थे, पर आँखो की पपनियो पर जलने का कुछ निशान न था। वही पर खादी और रुई भी यो ही बची पडी थी—उसके तन से तीन-चार फुट के अन्दर दो तरफ। घर मे जलावन की कुछ लकडी रखी गयी थी, जो गायब थी, पर वह इतनी नही थी कि उसके शरीर को खाक कर सके। इस तरह उस देवी ने अपना सतीत्व प्रमाणित करके देह-त्याग किया। इस घटना की खबर पाकर मै वहाँ गया। वहाँ के लोगो ने जैसी सब बाते कही, मैने पत्रो मे प्रकाशित करा दी। घटना विचित्र थी। इसमे कुछ चमत्कार भी अवश्य था। बहुतेरे लोग उस स्थान के दर्शनों के लिए आये थे। मैने भी, घरवालो को सात्वना देने के अलावा, इस साध्वी के स्थान को देखकर अपने को धन्य माना।

५९—देशबन्धु दास का देहावसान

देशबन्धु दास का स्वास्थ्य बेलगाँव-काँग्रेस के समय से ही खराब होने लगा। वह कुछ दिनो तक पटने मे ही अपने भाई श्री प्रफुल्लरंजन (पी० आर०) दास के साथ आकर ठहरे थे। उस समय मै उनसे अकसर जाकर मिलता रहा। उन्होने चर्खा चलाना सीखना प्रारभ किया। मुझसे कहा कि तुम खुद सिखाओ या सिखाने के लिए किसी आदमी को नियुक्त कर दो। इस सम्बन्ध मे बाते करते-करते उन्होने कहा कि इस प्रकार के काम मे हमारा हाथ नही चलता और न बुद्धि ही ठीक चलती है—यदि मुझ पर छोड दिया जाय तो मै शायद अपने ट्रक का ताला भी ठीक नही खोल सकता। मैने कई दिनो तक सूत-कताई सिखलाई। फिर जब मुझे कही बाहर जाना पडा तो एक दूसरे मित्र उनके पास इस काम के लिए जाया करते थे। पटने मे उनसे राजनीतिक बाते भी हुआ करती थी। उन्ही दिनो लार्ड बर्केनहेड भारत-मत्री नियुक्त हुए थे। यो तो वह बडे कट्टर कन्सर्वेटिव (अनुदार-दल के) और पक्के साम्राज्यवादी थे, पर देशबन्धु दास का विचार था कि वह प्रतिभाशाली और

एकवगा मिजाज के भी हैं, हो मकता है कि हिन्दुस्तान के सम्वन्ध मे वह कुछ कर जाना चाहे। इसलिए, कुछ भीतर-भीतर वात भी शायद चली। उनको वहुत आशा थी कि कुछ न कुछ उस वक्त हो जायगा, जिससे भारत और इँगलेंड के वीच सुलह-शान्ति हो सकेगी। वह यहाँ तक कहा करते कि वर्केनहेड से यदि मेरी आशा पूरी न हुई तो देश को हमारे सामने उठाने के लिए गाधीजी के चर्खे के सिवा और कुछ भी न रह जायगा।

१९२३ के चुनाव मे, जैसा पहले कहा गया है, स्वराज्य-पार्टी ने भाग लिया था। दिल्ली मे काँग्रेस के विशेष अधिवेशन ने इसकी इजाजत दे दी थी, पर कौन्सिल के कार्यक्रम को अपने हाथो मे नही लिया था। इसलिए स्वराज्य-पार्टी को उस चुनाव मे उतनी सफलता नही मिली थी जितनी उसे कॉग्रेस की मदद से मिलती, तो भी वगाल और मध्यप्रदेश मे उनकी एक अच्छी सख्या कौन्सिल मे पहुँची। इसी तरह, केन्द्रीय असम्वली मे, दिल्ली मे भी एक अच्छी सख्या मे स्वराजी लोग चुने गये। यद्यपि यथेष्ट सफलता न हुई तथापि कुछ अच्छे लोग कौन्सिलो मे पहुँच ही गये। उन्होने वहाँ की कार्रवाइयो मे एक नयी रीति और नयी दृष्टि का समावेश कर दिया। मध्य-प्रदेश मे तो स्वराजियो का वहुमत था। वहाँ उन्होने वजट और मत्रियो के मुशाहरे को नामजूर कर दिया। गवर्नर को मजबूर होकर मत्रियो को हटाना और सारा अधिकार अपने हाथो मे ले लेना पडा। इसी तरह, यद्यपि उनका बहुमत बगाल मे नही था, देशवन्धु दास के व्यक्तित्व और प्रयत्न के कारण, वहाँ का मत्रिमडल भी टूट गया। वगाल के गवर्नर को भी सव अधिकार अपने ही हाथो मे ले लेना पडा था। केन्द्रीय असम्वली मे पडित मोतीलालजी स्वराज्य-पार्टी के नेता थे। दूसरे दल और विचार-वालो के साथ मिलकर वहाँ भी वजट नामजूर करा दिया गया। बडे लाट को अपने विशेष अधिकार के द्वारा उसे मजूर करना पडा। यह सिलसिला दो बरसो तक चलता रहा। वगाल मे देशवन्धु ने दमन-सम्वन्धी विल को भी नामजूर करा दिया। इन सव वातो का असर देश के लोगो पर वहुत अच्छा पडा था। किन्तु सरकारी अधिकारि-वर्ग उतना ही नाराज भी हुआ था। महात्माजी के समझौते के कारणो मे स्वराज्य-पार्टी की यह सफलता भी एक मुख्य कारण थी। पर यह स्पष्ट था कि इस तरह की कार्रवाई वहुत दिनो नही चल सकती थी। केन्द्रीय असम्वली मे जो दूसरे दलो के साथ वातचीत करके एक पार्टी वनायी गयी थी वह आहिस्ता-आहिस्ता कमजोर पडकर टूट गयी। स्वराज्य-पार्टी दूसरे दलो से अलग हो गयी। मध्यप्रदेश मे भी भीतर-भीतर, स्वराजियो मे ही, मत्रिमडल वनाने की कुछ मुँहामुँही होने लगी, जिसमे विशेषकर वरार प्रान्त के कुछ सदस्य इसके मुख्य समर्थक थे। इन सव वातो को देखकर ही देशवन्धु दास, जो अनुभवी और दूरदर्शी दोनो ही थे, विचार कर रहे थे कि इस मौके पर यदि प्रतिष्ठा-पूर्वक कोई समझौता इँगलैंड के साथ हो जाय तो वहुत अच्छा होगा।

गवर्नमेण्ट ने नये आर्डिनेन्स और १९१८ के रेगुलेशन के अनुसार गिरफ्ता-

रियाँ करके दिखा दिया था कि वह किसी तरह के क्रान्तिकारियो को पनपने देना नही चाहती। यह नया आर्डिनेन्स तथा ये गिरफ्तारियाँ, लेबर-पार्टी (मजदूर-दल) की मजूरी से ही, जिसके प्रधान मत्री श्री रामजे मैकडोनल्ड थे, हुई थी। लेबर-पार्टी के चुनाव मे हार जाने पर कसर्वेटिव-पार्टी (अनुदार-दल) का मत्रिमडल वन गया था। उसी मे लार्ड बर्केनहेड भारत-मत्री बने थे। उन्ही से देशबन्धु दास आशा रखते थे। उनके लिए देशबन्धु ने अपने जानते रास्ता भी साफ कर दिया। देशवन्धु जानते थे कि अँगरेजो को सन्देह है कि बगाल की स्वराज्य-पार्टी और देशबन्धु दास भीतर-भीतर क्रान्तिकारियो की मदद करते है। अँगरेजो के दिल मे यह सन्देह, गोपीनाथ साहा-सम्बन्धी उनके सिराजगजवाले प्रस्ताव से, और भी पुष्ट हो गया था। देशबन्धु ने सोचा कि अँगरेज किसी प्रकार का समझौता उस वक्त तक नही करेंगे जब तक उनके दिल मे यह सन्देह बना रहेगा। यह बात उनको अँगरेजों से बातचीत करके मालूम हो गयी थी। इसलिए इसे दूर करना उन्होने आवश्यक समझा। एक वक्तव्य प्रकाशित करके उन्होने यह साफ-साफ कह दिया कि कांग्रेस या स्वराज्य-पार्टी ने भी उस नीति का समर्थन नही किया है, जिसमे हत्या जायज समझी जाती है और स्वराज्य-पार्टी के विचार मे इस प्रकार की हत्याओं से स्वराज्यप्राप्ति के रास्ते मे रोडे पड जाते है, इसलिए वह न कभी पहले इसके समर्थक थे, न अब इसका किसी तरह समर्थन कर सकते है। साथ ही, उन्होने स्वराज्य-पार्टी की अडगा-नीति को जायज बनाया। और, जब तक समझौता द्वारा कुछ तय होकर अधिकार हस्तान्तरित न हो जाय, उस नीति को जारी रखने की बात भी कह दी। इस वक्तव्य के पहले अश से अँगरेज सतुष्ट हुए। यहाँ तक कि लार्ड बर्केनहेड ने भी इस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की, पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानियों को विधान चलाने मे सहयोग करना चाहिए, जब वे ऐसा करेंगे तभी राजनीतिक प्रगति हो सकेगी। देशबन्धु दास इतने पर भी बिल्कुल निराश न हुए। उन्ही दिनो फरीदपुर मे बगीय राजनीतिक सम्मेलन होनेवाला था। देशबन्धु उसके सभापति चुने गये थे।

गाधीजी ने उन्ही दिनो बगाल की यात्रा की। प्रान्तीय सम्मेलन (फरीदपुर) मे वह भी शरीक हुए। देशबन्धु दास ने अपने भाषण मे उन्ही विचारो और उसी आशा को प्रकट किया। पर उनकी आशा पूरी न हुई। उनका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगडता ही गया। वह दार्जिलिंग चले गये। महात्माजी भी वहाँ गये। जब वे दोनो दार्जिलिंग मे थे, मै भी जलपाईगुडी तक गया। मेरा उद्देश्य था गाधीजी को बगाल से बिहार लाने का। इसीलिए मै वहाँ तक गया भी। पर अपने स्वास्थ्य के कारण मै पहाड पर नही गया। श्री मथुराप्रसादजी को ही गाधीजी के पास भेजा। महात्माजी राजी भी हुए। पर इसी बीच मे देशबन्धु की अचानक मृत्यु हो गयी। सारे देश मे उनका असामयिक मृत्यु से मुर्दनी छा गयी। उनका शव कलकत्ते लाया गया। वहाँ अभूतपूर्व दृश्य देखने मे आया। इतने अधिक लोग जलूस मे शरीक हुए कि शायद ही कभी किसी दूसरे जलूस मे उतने हुए हो। महात्माजी भी कलकत्ते मे आ गये। वह देशबन्धु-

स्मारक के लिए रुपये जमा करने तथा बगाल के राजनीतिक नेताओ से वहाँ की स्थिति सुलझाने के सम्बन्ध मे बाते करने मे लग गये। इसलिए कुछ दिनो तक उनका बिहार मे आना न हो सका।

६०—सामाजिक सुधार

उन्ही दिनो मेरे घर मे दो शादियाँ थी। एक मेरी छोटी भतीजी 'रमा' की—लखनऊ के श्री विद्यादत्त राम के साथ, और दूसरी मेरे बडे लडके मृत्युञ्जय की—श्री ब्रजकिशोरप्रसादजी की छोटी लडकी 'विद्यावती' के साथ। लखनऊ की बरात बहुत तुजुक के साथ आयी थी। आदमी कुछ ज्यादा नही थे, पर बहुत प्रतिष्ठित घराने के होने के कारण उन लोगो की शान बहुत थी। सब प्रबन्ध हम लोगो को ही करना पडा था। भाई साहब ने बहुत इन्तजाम किया था। बाबू हरिजी ने इस शादी के ठीक होने मे बडी मदद की थी। वे लोग उनके निकट सम्बन्धी थे। हम लोग यह नही चाहते थे कि किसी को कोई शिकायत हो। इसलिए ठहरने के लिए खीमो और खान-पान के लिए बहुत ही नफासत का इन्तजाम था। इसके ठीक उलटा, मृत्युञ्जय की शादी बडे सादे तरीके से हुई। हमने तो अपने घर के तीनो लडको मे से किसी की शादी मे तिलक-दहेज नही लिया, पर तीनो लडकियो की शादी मे तिलक-दहेज काफी देना पडा था। कही-कही तो जबरदस्ती, इच्छा से अधिक, देना पडा था। इस सम्बन्ध मे हमारे अनुभव हमेशा कटु रहे है। हमारे समाज मे कुरीतियाँ काफी है। जब तक वे दूर नही होती, लडकी का होना और उसकी शादी की झझट हमारे लिए दु खदायी साबित होती रहेगी। कायस्थो मे, विशेषकर श्रीवास्तवों और अम्बष्ठो में, बहुत सुधार की जरूरत है।

कायस्थ कान्फ्रेन्स (अखिल भारतीय) का जन्म प्राय कॉग्रेस के साथ ही हुआ था। मेरा खयाल है कि शायद पहले अधिवेशन मे ही इस बात पर जोर दिया गया कि लडकी के पिता से कई नामो से तिलक-दहेज की रकमे लेने की प्रथा बहुत बुरी है, उसको रोकना चाहिए। प्राय प्रत्येक अधिवेशन मे इस आशय के प्रस्ताव पास किये गये है। पर जो कान्फ्रेन्स के कर्ता-धर्ता होते उनमे बहुतेरे स्वय ही इस प्रस्ताव की अवहेलना करते। अनेक तो ऐसे भी हुए है जिन्होने कान्फ्रेन्स द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा को अधिक तिलक-दहेज लेने का कारण बना लिया। चूँकि कान्फ्रेन्स के सभापति अथवा अन्य उच्चपदाधिकारी होने के कारण कायस्थो मे उनकी बहुत प्रतिष्ठा हो गयी, इसलिए उन्होने अधिक पैसे उगाहे। इसलिए, कायस्थ कान्फ्रेन्स, सब जातीय कान्फ्रेन्सों मे पुरानी होने पर भी, अपने उद्देश्यो की सिद्धि मे बहुत सफल नही हुई है।

जब मै १९१६ मे कलकत्ते से पटने मे वकालत करने के लिए आया, उसके थोडे ही दिनो के बाद कुछ कायस्थ मित्रो ने मुझसे एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराया। उसका आशय यह था कि लडके की शादी मे, प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से, किसी नाम से, लडकी के पिता या दूसरे सम्बन्धियो से, ५१) से अधिक हम नही लेगे।

मेरा विचार इसके पक्ष मे पहले से ही था। इसलिए मैंने खुशी से प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कर दिया। भाई साहब इस विषय मे बहुत ही कट्टर विचार के थे। वह तो यह भी मानते थे कि जो कोई तिलक-दहेज अधिक लेता है या शादी मे नाच-महफिल मे अधिक खर्च करता है उसकी बरात मे जाना ही न चाहिए। इसलिए, हमारे घर मे, इन शर्तों के मानने मे कोई कठिनाई नही थी। तीन मे से मेरी दो भतीजियो की शादी इसके पहले ही हो चुकी थी। उनमे हमको तिलक-दहेज देने पडे थे। अब केवल एक लडकी ब्याहने को थी। पर तीन लडके थे, जिनमे किसी की शादी नही हुई थी। इसलिए, जहाँ देने का सवाल था वहाँ तो हम घाटे मे रहे, और जहाँ कुछ पाने की आशा की जा सकती थी वहाँ भी हमने प्रतिज्ञा करके उसका रास्ता ही बन्द कर दिया। पर यह हमने किया जान-बूझकर। उसी प्रतिज्ञा के कारण तीनो लडको की शादियाँ नयी रीति से, बिना तिलक-दहेज और बिना नाच-तमाशे के, हुई। पर कन्या-पक्ष के होने के कारण हमे तीनो लडकियो की शादियो मे तिलक-दहेज देने पडे। हमे उन सभी यातनाओ को भोगना पडा, जो हमारे समाज मे लडकी के पिता और अभिभावको को भोगनी पडती है।

इसके बाद, उसी साल के अन्त मे (१९२५ के दिसम्बर मे), जब मै कायस्थ-कान्फ्रेन्स के जौनपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया तो मैंने उसे इसलिए स्वीकार कर लिया कि शायद वहाँ जाकर कम से कम इस कुप्रथा को रोकने मे कुछ कृतकार्य हो सकूँ। वहाँ उस कान्फ्रेन्स मे दो प्रस्ताव, पुराने होने पर भी, मार्के के हुए। एक तो तिलक-दहेज-सम्बन्धी था जिसमे हमने प्रतिज्ञा को और भी कडी बना दिया। उसी प्रस्ताव मे, ऐसी शादी मे, जहाँ प्रस्ताव का उल्लघन होता हो, शरीक न होने की भी प्रतिज्ञा जोड दी गयी। दूसरे मे, कायस्थो के विभिन्न वर्गो और शाखाओ मे रोटी-बेटी के व्यवहार जारी करने पर जोर दिया गया। जहाँ तक मै जानता हूँ, तिलक-दहेज की प्रथा तो उसके बाद भी जारी रही। शायद जारी रहेगी भी, क्योकि आज के अनेक युवक तो शादी की शर्तों मे कही-कही अपनी शिक्षा—विशेषकर विदेश की शिक्षा—के खर्च की माँग भी पेश कर देते अथवा दूसरी फरमाइशे स्वय कर देते है। इसलिए यह आशा भी नही की जा सकती कि पुराने विचारवाले बडे-बूढे जब गुजर जायँगे तो इस सुधार का रास्ता साफ हो जायगा, क्योकि जिन पर आगे की आशा की जा सकती थी उनमे बहुतेरे तो पुरानो से भी अधिक व्यापार-बुद्धि रखनेवाले साबित हो रहे है। पर यह सतोष का विषय है कि अन्तर्वर्गीय विवाह कायस्थो मे होने लगे है। अब कोई इस बात के मानने मे नही झिझकता कि लडके या लडकी की शादी किसी दूसरी शाखा के वश मे करना भी उचित और ग्राह्य है। अब तो कम उम्र की छोटी विधवाओ की शादी भी हो जाती है। उस समय तक इस सम्बन्ध मे मेरे विचार साफ नही हुए थे। पर इसके बाद ही मैंने भी मान लिया कि विधवा-विवाह, विशेषकर छोटी उम्र की लडकियो का, होना अनिवार्य्य है। ऐसी कुछ शादियो में अपनी सम्मति देकर मैंने प्रोत्साहन भी दिया है।

६१—बिहार में महात्मा गांधी का दौरा और कौंसिल का चुनाव

पहले कहा जा चुका है कि बेलगांव-कांग्रेस ने उस समझौते को मंजूर कर लिया था जिसके अनुसार कांग्रेस की नियमावली में परिवर्तन करके कांग्रेस-सदस्य बनने के लिए पैसे के बदले में दो हजार गज सूत देना और कांग्रेस-कमिटी के मेम्बरों पर खादी पहनना अनिवार्य कर दिया गया था। कुछ लोग इसके गहरे विरोधी थे। कांग्रेस के बाहर के लोग जिनसे कांग्रेस में शरीक होने की आशा की जाती थी, इसके विरुद्ध थे ही। कांग्रेस के अन्दर भी एक जमात थी जो इसका पूरा विरोध करती थी। स्वराज्य-पार्टी ने इसे मंजूर कर लिया था पर उसके कुछ मुख्य सदस्य ऐसे थे जिन्होंने इसे कभी दिल से स्वीकार नहीं किया था। बेलगांव के बाद भी यह कहा जाता रहा कि सूत और खादी की शर्त लगाकर कांग्रेस ने अपने क्षेत्र को और भी संकुचित कर दिया—अब उसके सदस्यों की संख्या बहुत कम होकर रहेगी। गांधीजी की आशा थी कि सब लोग मिलकर यदि जोर लगावेंगे तो बहुतेरे चर्खा चलानेवाले हो जायेंगे और यदि सदस्यों की संख्या कम भी होगी तो जो रह जायेंगे वे पक्के और काम करनेवाले होंगे जिन पर पूरा भरोसा किया जा सकेगा। पर यह आशा पूरी न हुई। बहुत प्रयत्न के बाद भी कांग्रेस के सदस्यों की संख्या बहुत कम हो गयी। गांधीजी इससे प्रभावित हुए। उन्होंने यह विचार प्रकट कर दिया कि स्वराज्य-पार्टीवाले अगर चाहें तो उनको वह समझौते की शर्तों से मुक्त कर देंगे और केवल सूत की जगह सूत अथवा चार आने पैसे कांग्रेस की मेम्बरी के शुल्क के रूप में दिया जाना मंजूर कर लेंगे। पर गांधीजी इस बात पर राजी होना नहीं चाहते थे कि सूत को बिल्कुल एकदम उठा दी जाय और—जैसा कुछ लोग चाहते थे—खद्दर की शर्त भी उठा दी जाय। उन्होंने पंडित मोतीलालजी के साथ बातें कीं। यह निश्चय हुआ कि नियमावली में फिर संशोधन कर दिया जाय, साथ ही यह भी तय हो जाय कि जो लोग खादी के काम में लगे हैं वे उसी काम में लगे रहें और खादी-प्रचार के लिए एक अलग संस्था कायम कर दी जाय जो कांग्रेस का अंग होते हुए भी स्वतंत्र हो तथा स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस के राजनीतिक कार्यक्रम के चलाने का पूरा अधिकार दे दिया जाय।

महात्मा गांधी कुछ दिनों के बाद बंगाल का काम पूरा करके बिहार का दौरा करने के लिए आये। बिहार के दौरे का आरम्भ छोटानागपुर से ही किया गया। इसका विशेष कारण यह था कि बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन उस साल पुरुलिया में शाह मुहम्मद जुबैर के सभापतित्व में होनेवाला था। वहां के लोगों ने बहुत उत्साह के साथ तैयारियां की थीं। छोटानागपुर में प्रान्तीय सम्मेलन का यह पहला ही अधिवेशन हो रहा था। उन लोगों की प्रबल इच्छा थी कि महात्माजी भी वहां पधारें। गांधीजी ने इसे मंजूर कर लिया। एक तरह से उनकी यात्रा वहीं से शुरू हुई। इसके कुछ पहले ही महात्माजी एक बार जमशेदपुर आ गये थे। वहां मजदूर-संगठन में देशबन्धु दास दिलचस्पी ले रहे थे। वहां यूनियन

(सघ) भी कायम हुआ था। पर अभी तक उसको ताता-कम्पनी ने मजूर नहीं किया था। इस समय, देशवन्धु के वाद, श्री दीनवन्धु एण्डरूज उसके सभापति चुने गये थे। उनके अनुरोध से महात्माजी ने वहाँ जाना मजूर कर लिया था। कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री आर० डी० टाटा वहाँ आये। कम्पनी की ओर से महात्माजी का वडा स्वागत हुआ। मै भी महात्माजी के साथ था। दो दिनो तक वहाँ ठहर कर उन्होने कारखाने को भी खूब देखा। डाइरेक्टरो से बाते भी की। नतीजा इसका यह हुआ कि युनियन को ताता-कम्पनी ने मान लिया, मजदूर-मेम्वरो के मुशाहरे से काटकर उसका चन्दा जमा कर देने का भी वचन दिया। जो दूसरी शिकायते थी उनको भी दूर कर दिया। हर तरह से यह यात्रा बहुत सफल रही।

पुरुलिया का सम्मेलन बहुत समारोह के साथ हुआ। महात्माजी वम्वई की तरफ से आये। उनको हमने 'सीनी' मे डाकगाडी से उतारा। समय की वचत के लिए, वहाँ से पुरुलिया तक उन्हे एक स्पेशल ट्रेन से ले आये। सम्मेलन मे विशेषता यह थी कि एक अच्छी प्रदर्शनी उसके साथ हुई थी जिसका उद्‌घाटन गाधीजी ने किया था। सम्मेलन समाप्त करके गाधीजी ने छोटानागपुर की यात्रा आरम्भ कर दी। उमीद थी कि वह सारे सूबे का दौरा कर सकेंगे। मैंने देखा है कि महात्माजी जव कभी दौरा करने निकलते है तो लोगो की इच्छा रहती है कि वह अधिक से अधिक स्थानो मे ले जाये जायँ ताकि वहाँ की जनता उनके दर्शनो से लाभ उठा सके। यह एक प्रकार से स्वाभाविक भी है, पर यह कहीं-कही अन्दाज से अधिक हो जाता है। मुझे मानना पडता है कि इस प्रवृत्ति का शिकार, चाहे अपने मन से या मित्रो के अनुरोध से, मै भी हो चुका हूँ। जो यात्राक्रम बनाया गया वह वहुत ही कडा वना। महात्माजी का स्वास्थ्य, जो महीनो के दौरे से पहले से ही क्षीण हो गया था, उसे वर्दाश्त न कर सका। हमने यात्रा को दो भागो मे वॉटा था—पहले मे छोटानागपुर, दूसरे मे विहार के अन्य जिले। छोटानागपुर की यात्रा समाप्त करके पटने मे अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की वैठक के लिए कुछ ठहरना और फिर दूसरे जिलो मे जाना था। छोटानागपुर की यात्रा मे ही महात्माजी वहुत थक गये। अन्तिम दिन, हजारीवाग-जिले का काम समाप्त करके 'कोडरमा' स्टेशन पर रेल मे सवार होते-होते, वह वेहोश-से हो गये। मै भी साथ था। किसी भी प्रकार से भीड-भाड को रोकना कठिन हो रहा था। उनकी तवीयत कितना ज्यादा खराव हो गयी है, इसका भी पूरा पता हम लोगो को न था। अव वात खुल गयी। हमने विहार के वाकी कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया। महात्माजी को पटने मे, गगाजी के किनारे एक कोठी मे, कुछ दिनो तक आराम करने के लिए, ठहराने का निश्चय किया। इससे उनको वहुत लाभ पहुँचा। विहार के लोग जहाँ-तहाँ से आकर दर्शन भी करते रहे।

उसी समय अखिल भारतीय कमिटी की वैठक पटने मे हुई जिसमे यह निश्चय हुआ कि कांग्रेस की नियमावली मे सशोधन और उपरोक्त परिवर्तन कर दिया जाय। इस वात की भी इजाजत हो गयी कि कांग्रेस का सारा राजनीतिक प्रोग्राम, जिसमे

कौन्सिलो का चुनाव भी शामिल था, स्वराज्य-पार्टी ही पूरा करे, कांग्रेस की ओर से उमीदवार खडे किये जायें और इसके प्रवन्ध का भार स्वराज्य-पार्टी के नेता पडित मोतीलाल नेहरू ले। वही यह भी तय हुआ कि कांग्रेस के जो रुपये खादी-प्रचार के काम मे लगे है वे—कांग्रेस से सम्बद्ध, पर अपने काम के लिए स्वतत्र—एक नयी सस्था को सौप दिये जायें। इस तरह अखिल भारतीय चर्खा-सघ का जन्म हुआ। उसका विधान गाधीजी ने बनाया। उसके कई आजीवन ट्रस्टी वा प्रवन्ध-कारिणी के सदस्य हुए। उनमे एक मै भी हुआ और आज तक हूँ। महात्माजी सभापति हुए। इसके अलावा, प्रत्येक सूबे के काम की देख-रेख करने के लिए एक एजेण्ट नियुक्त किया गया। उसकी सहायता के लिए प्रान्तीय मत्री की भी नियुक्ति हुई। बिहार के लिए मै एजेण्ट नियुक्त हुआ, युक्तप्रान्त के लिए पडित जवाहरलाल, बगाल के श्री सतीश-चन्द्र दास गुप्त, तामिलनाड के श्री राजगोपालाचारी प्रभृति। इस प्रकार यह सघ, एक प्रकार से स्वतत्र होकर, खादी-प्रचार का काम करने लगा। इसने पिछले सत्रह-अठारह वरसों मे खादी-प्रचार मे और उसकी कला की उन्नति मे वहुत वडा काम किया है। जब ये पक्तियाँ लिखी जा रही है, अगर सरकार इसके कारबार को जहाँ-तहाँ तहस-नहस न कर दिये होती तो, आज कपडे की महँगी के दिनो मे इसकी उपयोगिता और भी देखने मे आती। इतने दिनो मे इसने करोड़ो रुपये गरीबो को, विशेषकर उन गरीब स्त्रियो को जो दूसरा कोई काम नही कर सकती थी, मजदूरी के रूप मे वाँटा है।

जब यह निश्चय कर लिया गया कि कांग्रेस की ओर से चुनाव की लडाई लडी जाय, तो पडितजी ने मुझसे कहा कि विहार का भार तुमको सँभालना होगा। यद्यपि मै इस विषय मे अपने वही विचार रखता था जो पहले थे, फिर भी मैने सोच लिया कि कांग्रेस ने जब निश्चय कर लिया है तो उसकी जीत कराने मे यथासाध्य प्रयत्न कर देना ही हमारा धर्म है। मैने पडितजी को वचन दे दिया और वह निश्चिन्त हो गये।

उसके थोडे ही दिनो बाद सबसे पहले कौन्सिल आफ स्टेट का चुनाव हुआ। उसमे विहार के एक मुसलमान और तीन गैर-मुस्लिम सदस्य चुने जाने को थे। मुस्लिम स्थान के लिए शाह महम्मद जुबैर और गैर-मुस्लिम स्थानो के लिए सर्वश्री श्रीकृष्णसिंह, अनुग्रहनारायणसिंह और मेरे भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद खडे किये गये। विरोधियो मे दरभगा के महाराजाधिराज और डुमरॉव के महाराजा बहादुर प्रभृति थे। चुनाव मे परिश्रम काफी पडा, क्योकि मत देनेवाले विशेषकर धनी वर्ग के—जमीन्दार, महाजन और व्यापारी—थे। उनकी सख्या बहुत नही थी, पर उनको किसी एक स्थान मे आकर मत नही देना था। वे स्वय भी किसी सरकारी उच्चपदाधिकारी के सामने कागज पर दस्तखत करके अपना सम्मति-पत्र डाक से भेज सकते थे। इसलिए एक प्रकार से कागज बटोरने की होड-सी लग गयी। मतदाताओ के पास कागजो के पहुँचने के बाद जितना जल्द उनसे दस्तखत कराकर अपने पक्ष मे भिजवाया जा

सके उतनी अधिक सफलता की आशा हो सकती थी। इसके अलावा, उडीसा भी बिहार के साथ था, वहाँ के वोट भी बटोरने थे। हम लोगो के प्रयत्न से शाह जुबैर साहब, बाबू अनुग्रहनारायणसिंह और बाबू महेन्द्रप्रसाद चुन लिये गये। चौथी जगह मे दरभगा के महाराजाधिराज चुने गये। श्रीबाबू के हारने का हम लोगो को काफी अफसोस रहा, पर लाचारी थी। यह सब १९२५ का अन्त होने के पहले ही हो चुका था।

६२—स्वराज्य-पार्टी में मतभेद और कानपुर-काँग्रेस

ऊपर उस प्रयत्न का जिक्र आया है जो सब दलो को कॉग्रेस मे शरीक करने के लिए किया गया था। यह भी कहा गया है कि बेलगाँव-कॉग्रेस के पहले ही अखिल भारतीय कमिटी ने असहयोग को स्थगित करके केवल विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार को जारी रखा था। साथ ही उसने रचनात्मक कार्यक्रम पर भी जोर दिया था। कॉग्रेस की ओर से कौन्सिलो मे राजनीतिक काम करने का अधिकार स्वराज्य-पार्टी को दे दिया गया था। इससे आशा की जाती थी कि दूसरे दलवाले कॉग्रेस मे आ जायँगे। जो सर्व-दल-सम्मेलन बम्बई मे हुआ उससे आशा और भी बढी थी। पर खेद है कि यह आशा पूरी न हुई। सर्व-दल-सम्मेलन ने जो सब-कमिटी नियुक्त की थी वह किसी नतीजे पर न पहुँच सकी। अपनी असफलता घोषित करके वह चुप बैठ गयी! पर इसके बाद भी किसी न किसी रूप मे मिलाप की चर्चा होती ही रही। नरम दलवालो और जिन्ना-जैसे लोगों को दो-तीन बातों की शिकायत थी। एक बात तो यह थी कि कॉग्रेस ने यद्यपि उस वक्त असहयोग स्थगित कर दिया था तथापि उसने उसे एक-बारगी हमेशा के लिए छोड नही दिया था। कॉग्रेस के असहयोग और सत्याग्रह को हमेशा के लिए छोड़ देने की बात तो दूर रही, उनके लिए तो वह देश को तैयार करना चाहती थी, और इस विषय मे अपरिवर्तनवादी तथा स्वराजी दोनो सहमत थे। इन दोनो मे मतभेद इस विषय मे नही था—जो भेद था वह यह था कि कौन्सिलो के द्वारा देश को तैयार करने मे मदद मिलेगी या बाधा पडेगी। अपरिवर्तनवादी लोग कौन्सिल के कार्य को सत्याग्रह के रास्ते मे बाधक समझते थे। स्वराजी लोग कौन्सिलो को भी देश की तैयारी मे लगाना चाहते थे। दूसरी बात यह थी कि कॉग्रेस खादी और चर्खे के प्रचार पर बहुत जोर ही नही देती थी, बल्कि उसने बेलगॉव मे खादी पहनने को—कम से कम कॉग्रेस के काम मे लगे रहने के समय—अनिवार्य्य कर दिया था। उसने मेम्बरी के लिए सूत कातना भी अनिवार्य्य कर दिया था। कांग्रेस के बाहर के लोग न तो चर्खे मे विश्वास करते थे और न खादी पहनने की जरूरत ही महसूस करते थे। कांग्रेस के अन्दर भी कुछ लोग इस विचार के थे, जिनमे मुख्यत महाराष्ट्र के कुछ लोग थे, पर उनकी सख्या थोडी थी। तीसरी चीज, जिससे बाहरी लोग घबराते थे, यह थी कि कांग्रेस ने कौन्सिल के काम का भार और अधिकार स्वराजियो को सौप दिया है। बाहरी लोगो मे अधिक ऐसे ही लोग थे जो इन कौन्सिलो को विशेष महत्त्व देते थे। वे यह समझने लगे कि कांग्रेस के अन्दर जाकर

भी वे इन कौन्सिलो मे अपने लिए स्थान सुरक्षित न कर सकेगे और न वहाँ अपनी नीति किसी प्रकार चला सकेंगे, क्योकि वहाँ तो नीति स्वराजियो की ही चलेगी। वे उस अडगा-नीति को पसन्द नही करते थे और मानते यह थे कि मन्त्रि-मडल मे सबको भाग लेकर विधान को काम मे लाना चाहिए। इसलिए जो कुछ थोडी-बहुत आशा कभी-कभी अकुरित भी हुई, वह इन मौलिक मतभेदो के कारण शीघ्र ही मुर्झा गयी। पटने मे अखिल भारतीय कमिटी ने, सितम्बर १९२५ मे, स्वराज्य-पार्टी को ही कॉग्रेस का सगठन एक प्रकार से सिपुर्द कर दिया। अब बाहर के लोगो का कॉग्रेस मे शरीक होना और भी कठिन हो गया।

ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि स्वराज्य-दल के अन्दर, विशेषकर मध्यप्रदेश मे, जहाँ असम्बली मे उनका बहुमत था, देशबन्धु दास के अन्तिम दिनो मे ही, मन्त्रिमडल के सम्बन्ध मे कुछ कानाफूसी होने लगी थी। उनकी मृत्यु के कुछ ही दिनो बाद यह बात खुल गयी कि वहाँ के कुछ लोग मन्त्रिपद-ग्रहण के पक्ष मे थे। अभी मन्त्रिमडल तो वहाॅ न बन सका, पर एक प्रमुख स्वराजी श्री ताॅम्बे ने—जो स्वराज्य-पार्टी की ओर से असम्बली के मेम्बर और उसी पार्टी की ओर से खडा करके असम्बली के प्रेसिडेण्ट चुनवाये गये थे—वहाॅ के गवर्नर की एग्जिक्युटिव कौन्सिल की मेम्बरी मजूर कर ली। उन्होने ऐसा करने के पहले न अपने साथियो की सम्मति ली, न पार्टी की और न उससे इस्तीफा ही दिया। इससे पार्टी मे बडी खलबली मची। पडित मोतीलालजी नेहरू ने सख्त रुख अख्तियार किया। उधर महाराष्ट्र के श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर ने श्री ताॅबे का समर्थन किया। श्री जयकर ने भी एक प्रकार से—उनका नही, पर पद-ग्रहण का—समर्थन ही किया। मध्यप्रदेश मे श्री अभ्यकर ने जोरो से इसकी निन्दा की। डाक्टर मुजे और श्री अभ्यकर मे बडा मतभेद हो गया। ये सब लोग स्वराज्य-पार्टी के प्रमुख व्यक्तियो मे थे, इसलिए यह गृह-कलह बहुत बढ गया। महाराष्ट्र मे श्री केलकर और श्री जयकर ने प्रतिक्रियात्मक सहयोग का प्रचार आरम्भ किया। पडित मोतीलालजी नेहरू पार्टी की अडगा-नीति पर डटे रहे और उसका प्रचार करने लगे।

इसी मतभेद के जमाने मे कानपुर मे काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू चुनी गयी। एक बरस पहले वह दक्षिण-अफ्रिका से लौटी थी। वहाँ उन्होने बहुत काम करके बडा नाम हासिल किया था। यदि गाधीजी का चलता तो वह शायद उनको बेलगाँव-काँग्रेस मे ही सभानेत्री बनाते, पर लोगो के अनुरोध को मानकर उन्होने सभापतित्व स्वीकार कर लिया था। एक प्रकार से बेलगाॅव के पहले से ही, सब लोगो के दिल मे, कानपुर-काँग्रेस के उस उच्च पद के लिए, सरोजिनी देवी चुनी जा चुकी थी।

कानपुर-कॉग्रेस की विशेषता यह थी कि स्वराज्य-पार्टी को ही कार्यक्रम देना था। इसलिए पडित मोतीलालजी की राय से ही वर्किंग कमिटी ने कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति के वास्ते प्रस्ताव तैयार किया था। दक्षिण अफ्रिका मे हिन्दुस्तानियो

के विरुद्ध जो नया कानून बन रहा था उसका विरोध किया गया। एक दूसरे प्रस्ताव मे, बरमा मे भी जो हिन्दुस्तानियो के विरुद्ध कारंवाई हो रही थी उसकी निन्दा की गयी। पर सबसे महत्त्व का प्रस्ताव वह था जिसका सम्बन्ध कौन्सिलो से था। उसमे यह कहा गया कि असम्बली में प्रस्ताव पास करके देश की ओर से जो स्वराज्य की मॉग पेश की गयी है उसे मानकर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को उसी के अनुसार विधान बनाना चाहिए। यदि वह ऐसा न करने की इच्छा प्रकट कर दे, अथवा फरवरी के अन्त तक इसके सम्बन्ध मे कुछ न कहे, अथवा जो कुछ कहे वा करे वह सन्तोषजनक न हो, तो कौन्सिलो के स्वराजी मेम्बर अपने बयान देकर वहॉ से चले आवे और जब तक फिर आज्ञा न हो, वापस न जायँ और तब रचनात्मक कार्यक्रम मे लग जायँ। विरोधियो का कहना था कि १९२६ की जनवरी से मार्च तक जो बैठक, प्रान्तीय और केन्द्रीय असम्बली की, होनेवाली थी वही प्राय अन्तिम बैठक थी जिसमे—१९२६ मे होनेवाले चुनाव के पहले—स्वराजी लोग शरीक हो सकते थे, इसलिए वे अगर निकलते है तो इसी बैठक के अन्तिम कई दिनो के इजलास मे शरीक न हो सकेगे, यह कोई विशेष महत्त्व की बात न होगी। हॉ, अगर निकलना ही है तो हमेशा के लिए निकल आते तो एक बात होती।

जो हो, कॉग्रेस ने यही निश्चय किया, जिसका अर्थ प्रतिक्रियात्मक-सहयोग-वादियो ने यह लगाया कि फिर एक प्रकार से असहयोग हौले-हौले कॉग्रेस-कार्य्यक्रम मे दाखिल होने लगा और इस अवस्था मे उनका कार्यक्रम चल ही नही सकेगा। इसलिए श्री जयकर, श्री केलकर और डाक्टर मुंजे प्रभृति कौन्सिल से इस्तीफा देकर अलग हो गये। उन्होने प्रतिक्रियात्मक-सहयोगवादियो की नयी पार्टी कायम की। मेरा निजी विचार हमेशा यह रहा है कि हमको अगर कौन्सिलो मे जाना ही हो तो वहाँ जाकर विधान के अनुसार जो कुछ हम कर सकते हो, करना चाहिए। मै अडगा-नीति को कभी समझ न सका। इस समय भी मेरा विचार यही था कि जब स्वराजी लोग वहॉ गये है तो वहॉ काम करना चाहिए, केवल अडगा नही लगाना चाहिए। पर, साथ ही, मै यह भी मानता था कि वहॉ जाना ही बेकार है, क्योकि जो अधिकार १९२० के विधान के अनुसार मिले थे वे बिल्कुल सन्तोषप्रद नही थे। वहॉ जाने से देश मे बुद्धिभेद फैलने के सिवा दूसरा कोई फल नही निकल सकता। असहयोग, जनता की विचारधारा को, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और उसकी सस्थाओ की ओर से मोडकर, जनता की अपनी स्थापित सस्थाओ की ओर खीचना चाहता था। इस प्रकार वह जनता मे रचनात्मक शक्ति जाग्रत करना चाहता था। कौन्सिल-प्रवेश इस धारा को फिर सरकारी सस्थाओ की ओर मोडता था। इसलिए मेरे विचार मे वहॉ जाना हितकर नही था। पर अगर कोई जाना ही पसन्द करे तो उसको वहॉ से जो थोडा-बहुत लाभ मिल सके उसे देश के लिए लेना चाहिए। स्वराजी लोगो का विचार था कि कौन्सिलो से बाहर रहकर असहयोग तभी किया जा सकता है जब कोई कौन्सिलो मे जानेवाला न मिले। पर ऐसा हो नही सकता। दूसरे प्रकार का असह-

योग अन्दर से किया जा सकता है और उसका रूप यही हो सकता है कि अडगा लगाकर विधान का छकडा न चलने दिया जाय। ऐसा उन्होने किया भी। बगाल और मध्यप्रदेश मे मत्रिमडल नही चल सका। स्वय गवर्नर को ही मत्रियो के अधिकार अपने हाथो मे लेने पडे थे। केन्द्रीय असम्बली मे बहुमत न होने पर भी दूसरे दलो को मिलाकर उन्होने बजट नामजूर करा दिया और वायसराय को उसे अपने विशेष अधिकार द्वारा मजूर करना पडा था। इस तरह जो कुछ अडगा नीति से हो सकता था, उन्होने कर दिखाया था और देश पर इसका असर अच्छा पडा था।

जो हो, मै तो कौन्सिल-प्रवेश का ही विरोधी था। ऐसी अवस्था मे वहाँ कौन नीति बरती जाय, इसका फैसला करनेवाला मै नही हो सकता था। मैने सोच लिया कि जो लोग वहाँ गये है वे ही इसका फैसला करें, उनकी राय से जो नीति कॉंग्रेस इस सम्बन्ध मे स्वीकार करे उसे ही मुझे भी मान लेना चाहिए, उस नीति के चलाने मे जो सहायता मै दे सकूँ, मुझे देना चाहिए। महात्माजी शायद इस हद तक स्वय जाने को तैयार नही थे, क्योंकि उन्होने कहा था कि यद्यपि स्वराजियों के खयाल से कॉंग्रेस ने कौन्सिल का बहिष्कार छोड दिया था तो भी कॉंग्रेस किसी को कौन्सिल के लिए वोट देने अथवा अन्य प्रकार से उसकी मदद करने के लिए बाध्य नही कर सकती। मै इससे कुछ आगे बढ़ता था और सोचता था कि जब कॉंग्रेस ने एक बार कौन्सिल-प्रवेश का कार्य्यक्रम अपने हाथो मे ले लिया, तो मेरे निजी विचार चाहे जो हो, मुझे यथासाध्य उस कार्य्यक्रम को सफल बनाने (अर्थात् चुनाव) मे मदद कर देना चाहिए। इसी नीति के अनुसार मैंने काम भी किया। चुनाव मे पूरी शक्ति लगाकर खूब दौड-धूप भी की।

कानपुर मे भी स्वदेशी प्रदर्शनी हुई थी। वहाँ हिन्दुस्तानी सेवा-दल का अच्छा सगठन था। एक दिन यह खबर फैल गयी कि कॉंग्रेस के पडाव मे कुछ लोग आग लगा देनेवाले है। सेवादलवालो ने डाक्टर हर्डीकर के नेतृत्व मे चौकी लगायी। अधिवेशन सफलतापूर्वक, बिना किसी उपद्रव के, समाप्त हुआ। वहाँ एक और घटना हुई थी। अजमेर कॉंग्रेस का एक सूबा समझा जाता था। विधान मे उसे भी और सूबो की तरह प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था। वहाँ के चुनाव के सम्बन्ध मे कुछ शिकायत थी। वहाँ के चुनाव को वर्किंग कमिटी ने रद कर दिया था जिस पर कुछ लोग रुष्ट होकर श्री अर्जुनलाल सेठी के नेतृत्व मे कॉंग्रेस मे या तो जबरदस्ती घुसना चाहते थे अथवा दूसरो को वहाँ जाने से रोकना चाहते थे। इस नाजुक परिस्थिति मे भी सेवा-दल को काम करना पडा था।

६३—कॉंग्रेस में एक स्वतंत्र दल

कॉंग्रेस के निश्चय के अनुसार, मार्च के महीने मे जब कोई सतोषजनक उत्तर न मिला तब, अखिल भारतीय कमिटी ने तय किया कि स्वराज्य-पार्टी के लोग केन्द्रीय असम्बली और प्रान्तीय कौन्सिलो से निकल आवे। उन्होने एक निश्चित तिथि पर

ऐसा ही किया भी। पडित मोतीलालजी ने, जो स्वराज्य-पार्टी के नेता थे, असम्वली मे एक वक्तव्य दिया। उसमे इस निश्चय के कारणो को वताकर इसका समर्थन किया। उसी तरह, अन्य सूबो के लोगो ने भी किया। स्वराज्य-दल से सभी कौन्सिले खाली हो गयी। निश्चय किया गया था कि जो लोग वाहर निकलेंगे वे अपना समय रचनात्मक काम और कॉंग्रेस के सिद्धान्तो तथा कार्य्यक्रम के प्रचार मे लगायेंगे। कुछ ने ऐसा किया, पर बहुतेरे लोग अपने निजी मनमाने काम मे ही लगे रहे। इसी साल के अन्त मे फिर नये चुनाव होनेवाले थे। इस बीच मे कुछ दु खद घटनाएँ हो गयी जिनका जिक्र कर देना आवश्यक है।

हिन्दू-मुस्लिम झगडे कई बरसो से चले आ रहे थे। हिन्दू-सभा की ओर से, विशेषकर आर्य्य-समाज की ओर से, शुद्धि और सगठन पर जोर दिया जा रहा था। उधर मुसलमानो ने भी तबलीग और तन्जीम का आन्दोलन जारी कर दिया था। कटुता बढती ही गयी थी। कोहाट के दगे का जिक्र हो चुका है और यह भी कहा गया है कि महात्मा गाधी को वहाँ जाने से गवर्नमेण्ट ने रोक दिया था। पीछे महात्माजी और मौलाना शौकत अली इस सम्बन्ध मे जाँच करने के लिए रावलपिंडी गये। वहाँ से आगे जाने की इजाजत न थी, इसलिए वही लोगो को वुलाकर यथासभव जॉच की गयी। कुछ बातों मे दोनो मे एक मत न हो सका। जब जुदा-जुदा रिपोर्टें छपी तो मालूम हुआ कि जो दो आदमी बराबर एक राय कई वरसो से रखा करते थे उनका भी इस विषय मे मतैक्य न हो सका। महात्माजी ने अपने तरीके से लिखा भी कि इससे लोगो को यह न समझना चाहिए कि हम दोनो के आपस के सम्वन्ध और व्यवहार मे किसी प्रकार का फर्क पडा है, वल्कि लोगों को यह समझना चाहिए कि ये लोग हमेशा केवल हाँ मे हाँ नही मिलाया करते,' कही-कही मतभेद भी रख सकते है। चाहे इन दोनों सज्जनों के भावो मे अन्तर न पडा हो, पर इसका असर देश पर अच्छा नही पडा। वह समस्या अधिक जटिल होती गयी। राजनीतिक मतभेद थे ही। महात्माजी एक प्रकार से सभी राजनीतिक कामो से अलग हो गये। उनका स्वास्थ्य भी बहुत खराब हो गया था। किसी तरह उन्होने कानपुर-कॉंग्रेस तक काम चला दिया। उसके बाद, डाक्टरो की राय से, उन्होने एक बरस तक साबरमती मे रहने का निश्चय कर लिया। वहाँ रहकर वह आश्रम और खादी के काम को सुसगठित करने मे लग गये। कुछ लोग, जो यह समझते थे कि महात्माजी दु खी होकर अलग हो गये है, बहुत जोर देने लगे कि उनको फिर नेतृत्व लेना चाहिए। पर बात ऐसी थी नही। उन्होने साबरमती से काम करना अपने स्वास्थ्य और देश दोनो के लिए हितकर समझा। इसलिए वह अपने निश्चय पर अटल रहे।

इधर हिन्दू-मुस्लिम झगडे बहुत बढ गये। कलकत्ते मे बहुत बडा दगा हो गया जिसमे बहुतेरे हिन्दू-मुसलमान मारे गये। हफ्तो तक बलवा-फसाद जारी रह गया। बकरीद के मौके पर कई जगह दगे हो गये। इसका नतीजा यह हुआ कि खिलाफत-कमिटी के प्रमुख लोग भी प्रभावान्वित हो गये। उसके एक विशेष अधिवेशन मे कडवे

बायें से दायें—(१) मुखदेवप्रसाद वर्मा चीफ जस्टिस जयपुर हाईकोर्ट, (२) गय बहादुर विनोदविहारी सरकार—सेक्रेटरी बगाल सरकार, (३) देशरत्न राजन्द्र बाबू, (४) जोगेन्द्रनारायण मजुमदार, जज कलकत्ता हाईकोर्ट।

—१९०६

महात्मा गांधी, राजेन्द्रप्रसाद और महादेव देसाई

बहुतेरे उसके सदस्य थे। ऊपर कहा जा चुका है कि मुजफ्फरपुर के वार्षिक अधिवेशन (हिन्दू-सभा) मे बोधगया-सम्बन्धी प्रस्ताव पास कराने मे हमने भी पूरा जोर लगाया था। इसलिए, यद्यपि कुछ लोगो को जगत बाबू का काग्रेस से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होना और हिन्दू-सभा को इतना समय देना अच्छा नही लगता था, तथापि उनके ऐसा करने मे कोई वैधानिक रुकावट नही थी। पर जब प० मालवीयजी और लालाजी ने स्वतत्र कॉग्रेस दल का सगठन कर लिया और कॉग्रेस के निश्चय के विरुद्ध कॉग्रेसी उम्मीदवारों का विरोध करने लगे, तो स्थिति बहुत बदल गयी। जगत बाबू कॉंग्रेस की ओर से उम्मीदवार खडे किये गये थे, पर उसे छोडकर उन्होने इस नरम दल की ओर से खडा होना पसन्द किया। मजबूर होकर उनका विरोध करना पडा। कुछ और लोग भी, जो कॉंग्रेस से नाराज थे अथवा जो कॉंग्रेस के विरोधी थे अथवा जिनको कॉंग्रेस ने उम्मीदवार न बनाकर किसी दूसरे को बना दिया था, इस दल मे जा मिले। ऐसे लोगो मे सारन-जिले के बाबू श्री नन्दनप्रसादनारायणसिंह शर्मा भी थे। नतीजा यह हुआ कि बिहार मे भी इस चुनाव मे काफी गर्मी आ गयी। मालवीयजी तथा लालाजी यहाँ अपने उम्मीदवारो के समर्थन मे दौरा करने लगे। पडित मोतीलालजी तथा दूसरे स्वराजी नेता कॉग्रेसी उम्मीदवारो की सहायता के लिए पहुँच गये। मुझसे जो कुछ हो सकता था, मै कर ही रहा था।

मै इसी दौरे मे छोटानागपुर गया। पुरुलिया से रॉची मोटर पर जा रहा था। गाडी खूब तेज जा रही थी, क्योकि उसी दिन रॉची मे उम्मीदवारी की दरख्वास्तो की जॉच होनेवाली थी। ठीक समय से पहुँचना जरूरी था। रास्ते मे भैसागाडी आ गयी। मोटर को उससे बचने के लिए मोडना पडा। वह काबू से बाहर होकर एक गाछ से टकरा गयी। मुझे सिर और नाक पर चोट आयी। थोडी चोट औरो को भी लगी। गाडी का कुछ अश टूट गया। पर हम लोग किसी तरह कुछ देर के बाद रॉची पहुँच गये, क्योकि यह घटना राँची के नजदीक पहुँचने पर हुई थी। वहाँ तो कुछ नही मालूम हुआ कि मुझे चोट ज्यादा है। डाक्टर ने पट्टी बॉध दी। मै दौरे का काम करता रहा। छोटानागपुर का काम पूरा करके मै उत्तर-बिहार मे चला गया। बेगूसराय, समस्तीपुर इत्यादि होते हुए मुजफ्फरपुर-जिले मे गया। सीतामढी पहुँचकर, प्राय घटना के एक सप्ताह के बाद, सिर मे दर्द मालूम हुआ। मैने समझा कि थकावट अथवा सर्दी लग जाने के कारण दर्द है। कुछ दवा खा ली और आगे बढ गया। सौभाग्यवश उसी दिन पटना लौटने का कार्य्यक्रम था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते दर्द बढ गया। कई दिनो तक बहुत कष्ट हुआ। डाक्टर लोग भी कुछ निश्चय नही कर सकते थे कि यह दर्द क्यो है। पर दो-तीन दिनो के बाद सारे चेहरे पर सूजन आ गयी। तब मालूम हुआ कि वह उस चोट का नतीजा है जो मोटर की दुर्घटना मे मुझे लगी थी। मै इस बीमारी के कारण और कई जगहो मे जहाँ जाना था, नही जा सका। चुनाव मे बहुत बेहूदा प्रचार किया गया था। पडित मोतीलालजी पर खुले आम व्यक्तिगत आक्षेप किये गये। कही-कही भद्दे व्यग्य चित्र

(कार्टून) भी दिखलाये गये थे। हमने बहुत जोरो से इन सबका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि जिन स्थानो के लिए सदस्य चुने जानेवाले थे उनमे से अधिकाश कॉंग्रेस के उम्मीदवार ही चुने गये। स्वतत्र कॉंग्रेस-दल के बहुत थोडे लोग चुने गये, जिनमे बाबू जगतनारायणलाल और बाबू श्री नन्दनप्रसादनारायणसिंह शर्मा थे। ये लोग पूर्व के बिहार-कौन्सिल के स्वराज्य-दल के नेता श्री जलेश्वरप्रसाद को, जो कॉंग्रेस की ओर से खडे किये गये थे, हराकर चुने गये। लोगो के बहुत कहने और जिद्द करने पर मौलाना मजहरुल हक साहब खडे हुए थे। उनका मुकाबला किया गया। दोनों उम्मीदवारो के पक्ष मे बराबर वोट आये। चिट्ठी लगायी गयी तो हक साहब के प्रतिद्वन्द्वी के पक्ष मे चिट्ठी निकली। इस तरह, यद्यपि प्रान्तीय कौन्सिल के चुनाव मे कॉंग्रेसी लोग ही अधिक सख्या मे चुने गये तथापि हक साहब-जैसा व्यक्ति नही चुना जा सका और न कॉंग्रेस का वह उम्मीदवार जो स्वराज्य-पार्टी का नेतृत्व योग्यता-पूर्वक कर चुका था। साथ ही, यह भी स्पष्ट था कि चुने लोगो मे से, बहुमत रखते हुए भी, कॉंग्रेस के विरोध मे मत्रिमडल बन सकेगा, क्योंकि विधान के अनुसार एक अच्छी तायदाद गवर्नमेण्ट द्वारा मनोनीत सदस्यों की हुआ करती थी। कॉंग्रेस-विरोधी लोग और ऐसे मनोनीत सदस्य मिलकर कॉंग्रेस-दल से सख्या मे अधिक हो जाते थे। केन्द्रीय असेम्बली मे भी हमारी काफी सफलता रही। वहाँ जो एक-दो जगहे हमारे हाथ मे न आई उनमे भी कॉंग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले ही चुने गये। बिहार-कौन्सिल मे कई आदमी जो स्वतत्र चुने गये थे, कॉंग्रेस के साथ ही रहते थे। स्वतत्र कॉंग्रेस-दल के लोगो मे कुछ कॉंग्रेस के साथ और कुछ मत्रिमडल के साथ हो गये थे। इस तरह, इस चुनाव से कोई बात साफ नही हुई। मत्रिमडल के साथ कॉंग्रेस का जो पहले सद्भाव था वह अब न रहा, क्योकि चुनाव के समय हमको मत्रियो और उनके द्वारा समर्थित उम्मीदवारो का विरोध करना पडा था। जब वे ही लोग फिर मत्री बन गये और उनका विरोध करना कॉंग्रेसी मेम्बरो का प्रधान काम हो गया तब यह अनबन और भी बढती गयी। मत्री सर गणेदत्तसिंह, कॉंग्रेसी उम्मीदवार के भय से, कई जगहो से खडे हुए थे। पर कही से अपने स्थान को सुरक्षित न देख उन्होने मिल-मिलाकर एक उम्मीदवार को, एक ऐसे स्थान से जहाँ कॉंग्रेस ने कोई उम्मीदवार नही खडा किया था, बिठा दिया और वहाँ से स्वय निर्विरोध चुने गये। इस चुनाव मे धर्मगत और जाति-गत भेद-भावो का प्रचार करके कुछ लोगो ने नफा उठाया। शायद सभी कॉंग्रेसवाले भी इससे अपने को बचा न सके।

मेरा विचार था, और अब वह और भी दृढ हो गया है, कि जो भेद-भाव हिन्दुओ और मुसलमानो मे फैल रहा था वह इन्ही दोनो तक सीमित न रहेगा। हिन्दुओ मे जो अनेकानेक जातियाँ है, एक दूसरे से उसी प्रकार आपस मे झगड़ने लगेगी जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान लड रहे है। मुसलमानो मे भी भिन्न-भिन्न दल पैदा हो जायँगे। शिक्षित वर्ग की लडाई सरकारी नौकरियो और सरकार से सम्बद्ध सस्थाओ की मेम्बरी इत्यादि के लिए होती है। किसी न किसी समय हिन्दू-समाज की भिन्न

जातियो मे इस प्रकार की स्पर्धा बढेगी और वे आपस मे लडेगी। इस चुनाव मे ये बाते कुछ-कुछ देखने मे आ गयी। मैंने एक लेख इस आशय का 'देश' मे लिखा था, जिसको कुछ लोगों ने नापसन्द किया था। उस समय से आज तक के अनुभवो न मेरे इस विचार को और भी दृढ कर दिया है कि जब देश के स्थान पर हम किसी जाति-विशेष अथवा धर्म-विशेष अथवा दल-विशेष को बिठाना चाहते है, तब इस तरह की लड़ाई हुए बिना नही रह सकती। देश-सेवको के लिए एक ही रास्ता है कि कम से कम तब तक, जब तक देश पूर्णरूपेण स्वतत्र नही हो जाता, किसी स्थान अथवा प्रतिष्ठा के लिए लालायित न हो और केवल सेवा को ही ध्येय बनाकर काम करते जायँ। मै इसको एक प्रवचनामात्र मानता हूँ जब कोई यह सोचता और कहता है कि सेवा करने के लिए उसे किसी पद-विशेप की आवश्यकता है तथा उस पद के विना वह सेवा नही कर सकता। सेवक के लिए हमेशा जगह खाली पडी रहती है। उम्मीद-वारो की भीड सेवा के लिए नही हुआ करती। भीड तो सेवा के फल के बँटवारे के लिए लगा करती है! जिसका ध्येय केवल सेवा है, उसका फल नही, उसको इस धक्के मे जाने की और इस होड मे पडने की कोई जरूरत नही है।

वर्ष समाप्त होने के समय, दिसम्बर मे, गोहाटी मे कॉंग्रेस का वार्षिक अधि-वेशन होनेवाला था। सभापतित्व के लिए वहुत जगहो से मौलाना मजहरुल हक का नाम आया था। बिहार के लोग बहुत चाहते थे कि वह चुने जायँ। यहाँ से केवल उनका ही नाम भेजा गया था। पर उन्होंने अन्तिम चुनाव के पहले ही घोषणा कर दी कि वह इस प्रतिष्ठा के लिए उम्मीदवार नही है, लोगो को कोई दूसरा योग्य व्यक्ति चुन लेना चाहिए। इस इनकार का कारण उनके समान व्यक्तित्व और ध्येयवाले महा-पुरुष के योग्य ही था। उन्होंने लिखा कि वह उस समय अपने सूबे मे हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हल करने के काम मे लगे है, कॉंग्रेस के सभापति हो जाने से वह उतना समय अपने सूबे के इस काम को न दे सकेगे। हममे से वहुतेरो ने सोचा कि उनकी यह दलील ठीक नही थी। पर इसमे दूसरे की बात ही क्या चल सकती थी। उनके हट जाने पर श्री श्रीनिवास अय्यङ्गर एकमत से निर्विरोध सभापति चुने गये, क्योकि डाक्टर अनसारी ने भी, जिनका नाम प्रस्तावित हुआ था, अपना नाम हटा लिया था।

भाई साहब और मै, सपरिवार दोनो साथ, कानपुर-काग्रेस मे गये थे। वही मीरा बहन से मेरी पहली मुलाकात हुई। वह कुछ दिन पहले हिन्दुस्थान आ चुकी थी, पर मुझसे मुलाकात नही हुई थी। उन दिनो से ही उनकी भक्ति और विश्वास तथा श्रद्धा की छाप मेरे दिल पर पड गयी। वह एक अँगरेज अडमिरल की लडकी है। उनके पिता हिन्दुस्थान मे अडमिरल रहे थे। उस समय वह भी अपने पिता के साथ वम्वई मे थी। ऐसी महिला का महात्माजी के आश्रम मे आना और वहाँ के लोगों के साथ हिल-मिल जाना अँगरेजों को कब पसन्द हो सकता था। कुछ अँगरेजी पत्रो ने यह समाचार छापते हुए लिखा कि गाधीजी ने उनको एक प्रकार से फुसला कर रख लिया है। बात ऐसी थी नही। मीरा बहन ने इसका खण्डन किया।

बात यह थी कि जर्मन-युद्ध के समय वह युद्ध की मारकाट से ऊब गयी। वह इस तलाश मे घर छोड रोमाँरोलाँ के पास गयी कि वह इस प्रकार के भीषण जीवन से बचने का कोई रास्ता बता देगे। श्री रोमाँरोलाँ ने उन्हे गाधीजी की पुस्तके पढने की सलाह दी और कहा कि उनकी पिपासा वही बुझ सकेगी। गाधीजी की लिखी जो पुस्तके मिल सकी, मीरा बहन ने पढी। वह जैसे-जैसे पढती गयी, उनका विश्वास जमता और दृढ होता गया। अन्त मे उन्होने गाधीजी के पास आना चाहा, पर गाधीजी ने उन्हे रोका। विलायत मे ही वह यथासाध्य आश्रम का जीवन बिताने लगी। अन्त मे, जब उन्होंने बहुत जिद किया, तब गाधीजी ने आने की अनुमति दी। तब से वह बराबर उनके साथ है। जो कुछ उनका अपना था, गाधीजी को समर्पित कर दिया है।

वही से मै कायस्थ-कान्फ्रेन्स का सभापतित्व करने के लिए जौनपुर गया। इसका जिक्र ऊपर कर चुका हूँ। कुछ भाइयो ने इस बात को नापसन्द किया। उनका कहना था कि काँग्रेसी लोगों को किसी जाति-विशेष की सस्था से लगाव न रखना चाहिए; क्योकि इससे उनकी राष्ट्रीयता को धक्का पहुँचता है और जनता मे बुद्धि-भेद हो सकता है। मैने किसी जाति-विशेष की राजनीतिक उन्नति अथवा उसके अधिकारो की रक्षा के खयाल से सभापतित्व नही स्वीकार किया था। मैने सोचा था कि हमारे समाज मे बहुत कुरीतियाँ प्रचलित है, यदि हम अपने समाज की विशेष सस्था मे सम्मिलित होकर उन्हे हटाने मे कुछ भी सफल हो सकेंगे तो यह अच्छा ही होगा। मैने वहाँ जो भाषण किया वह भी ऐसा ही था कि उसमे राष्ट्रीयता-विरोधी एक भी बात नही थी और न जाति-जाति के बीच भेद बढानेवाली कोई बात थी, बल्कि मैने तो उस मच से भी राष्ट्रीयता का ही समर्थन किया था। कान्फ्रेन्स मे अन्य जाति के स्थानीय लोग भी आमन्त्रित किये गये थे। जो ऐसे लोग वहाँ उपस्थित थे, उन्होने मुझे भाषण के लिए बधाई देते हुए कहा कि जातीय कान्फ्रेन्स के मच से इसी प्रकार के भाषण हुआ करे तो आपस में झगड़े ही न हों।

कायस्थ-कान्फ्रेन्स पुरानी सस्था है। उसके अनेक बूढे और कार्य-कुशल सेवक है। मै उनके लिए एक नया अजूबा व्यक्ति था, क्योंकि उसके पहले मै कभी कायस्थ-कान्फ्रेन्स मे नही गया था। मेरा भाषण भी शायद पुराने विचारवाले लोगों मे से कुछ को पसन्द न आया हो। इसलिए मै समझ सकता था कि कुछ ने वहाँ की कार्रवाई पसन्द नही की, पर अधिवेशन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। मुझे अफसोस यही है कि जिस आशा और अभिलाषा से मै उसमे शरीक हुआ था वह बहुत करके पूरी न हुई। इसका दोष दूसरों पर न डालकर मुझे अपने ऊपर लेना चाहिए; क्योकि मै दूसरे कामो मे फँस जाने के कारण अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न भी न कर सका।

६४—बिहार-विद्यापीठ और खादी-प्रचार-कार्य

उन दिनो मेरा अधिक समय खादी के काम की देखभाल मे और बिहार-विद्यापीठ के खर्च के लिए रुपये जमा करने में लगता था। शुरू मे ही हम लोगों ने

देख लिया कि विद्यापीठ के प्रति बहुतेरे भाई एक प्रकार से तटस्थ-से थे। कुछ लोग तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। १९२१ मे इस भाव का कुछ प्रदर्शन होने लगा था। सबसे अधिक आश्चर्य और दु ख की बात यह थी कि जिन लोगों ने बहुत जोर देकर उसे कायम कराया था, वे ही लोग या तो उदासीन हो गये या विरोधी। शुरू मे इसका आरम्भ किया गया था एक भाडे के मकान मे। प्राय दो सौ रुपये मासिक भाडा दिया जाता था। हमने सोचा कि खर्च यथासाध्य कम करना चाहिए। निश्चय किया कि सदाकत-आश्रम मे, जिसे मजहरुल हक साहब ने खोल रखा था और जिसमे उन्होने कुछ मकान भी बनवा लिये थे, इसे ले जाया जाय। हक साहब ने इस बात को बहुत पसन्द किया। हम विद्यापीठ वही ले गये। कुछ नये मकान भी बनवा लिये गये, जहाँ प्राय सभी छात्र और अधिकाश शिक्षक भी रहने लगे। छात्रो की सख्या कम होने लगी थी। जिलो मे जो स्कूल खुले थे वे भी जहाँ-तहाँ बन्द होने लग गये थे। लोगो का उत्साह कम होता गया। बहुतेरे स्कूल अर्थाभाव और छात्राभाव से बन्द हो चुके थे। तो भी १९२६ के मार्च मे ९ हाई स्कूल, १६ मिडिल स्कूल और ३० प्राइमरी स्कूल चल रहे थे जिनमे क्रमश छात्रो की सख्या ७९७, १२८५ और १०१९ और शिक्षको की सख्या ७९, ७० और ३४ तथा खर्च १९५०), १२६०) और ४२६) मासिक था— अर्थात् स्कूलो की सख्या ५५ थी जिनमे १८३ शिक्षक काम कर रहे थे और ३६३६) मासिक खर्च हो रहा था। पर कुछ स्कूल सभी मुसीबतों को झेलते हुए कायम रह गये और आज तक चल रहे है। विद्यापीठ का रहना हमने आवश्यक समझा। इसके लिए रुपये जब-तब, जरूरत पडने पर, जमा करते गये।

हमने महाराष्ट्र मे देखा था कि कई सस्थाएँ लोग वार्षिक चन्दे से चलाते है। चन्दे की रकम किसी एक आदमी की बहुत बडी नही होती है, पर बहुत-से लोग पाँच या दस या इससे भी कम प्रतिवर्ष देने का वादा कर देते है और सस्था की वार्षिक रिपोर्ट वी० पी० द्वारा ऐसे सभी मेम्बरों के पास भेज दी जाती है। चन्द दिनो मे ही चन्दे के सभी रुपये वी० पी० के जवाब मे आ जाते है। हमने भी कुछ ऐसा ही करने को सोचा। घूम-घूमकर पाँच रुपये वार्षिक चन्दावाले मेम्बर बनवाये। जो लोग एक-मुश्त बडी रकम दे देते उनको आजीवन सदस्य अथवा ट्रस्टी बना लेते। पर हमारे सूबे मे लोगो को इस प्रकार नियमित रूप से प्रतिवर्ष चन्दा देने की आदत नही पडी है। जिन्होने वादा किया और मेम्बरी का फारम भर दिया उन्होने भी साल के अन्त मे बडी कठिनाई से रुपये दिये, एक-दो बरस के बाद वह भी बन्द कर दिया! यह सभव नही था कि प्रमुख लोग हर साल मेम्बरो के पास, वादा किया हुआ चन्दा वसूल करने के लिए, जायँ। इसलिए यह उपाय हमारे लिए कारगर नही साबित हुआ। घूम-घूमकर, जहाँ गये वहाँ से, हमेशा कुछ लाना ही पडता रहा। हाँ, पटने मे कुछ सज्जनो ने मासिक कुछ देना स्वीकार किया। उनमे से बहुतेरे बराबर देते रहे है। शुरू मे ही एक सज्जन (श्री भगवानदास) ने कुछ जमीन दान कर दी थी, जिसकी थोडी आमदनी हर साल मिलती जाती थी। कुछ दिनो के बाद मुजफ्फरपुर के श्री

गजाधरप्रसाद साहु ने अपने ट्रस्ट मे से विद्यापीठ के लिए भी कुछ दिया, जो रकम बराबर मिलती जाती थी। इस तरह विद्यापीठ की आर्थिक कठिनाई हमेशा बनी रही है।

हमने इस बात की कोशिश की कि अच्छे विद्वानो को वहाँ बुलावे जिसमे जनसाधारण को उसकी उपयोगिता और वहाँ मिलनेवाली शिक्षा के प्रति विश्वास हो। काशी मे प्रसिद्ध विद्वान् श्री रामदास गौडजी आये। इसी तरह बगाल से कुछ ऐसे विद्वान् शिक्षक लाये गये, जिन्होने युनिवर्सिटी मे ख्याति के साथ परीक्षाएँ पास की थी। कुछ दिनो के बाद, प्राचीन भारतीय इतिहास के ख्यातनामा विशेषज्ञ श्री जयचन्द्र विद्यालकार भी विद्यापीठ मे इतिहास के शिक्षक होकर आये थे। उनके साथ मेरा परिचय उसी समय हुआ जो आगे चलकर अधिक घनिष्ठ हो गया तथा भारतीय इतिहास-परिषद् के जन्म के कारणो मे एक मुख्य कारण हुआ। किन्तु इतने पर भी विद्यार्थियो की सख्या कम होती गयी। हमने वहाँ के पाठ्यक्रम मे भी जब-तब परिवर्तन किया। इस बात की भी चेष्टा की कि विद्यार्थी केवल पुस्तकी विद्या न पाकर अधिक कार्य-कुशल देश-सेवक बने। पर सब कुछ करने पर भी राष्ट्रीय शिक्षा बहुत ही परिमित क्षेत्र मे रह गयी। तब भी, जहाँ तक रह गयी है, हमारे विद्यार्थी और शिक्षक अच्छे सेवक निकले है। सत्याग्रह के समय उन्होने हमेशा बहुत काम किया है।

मार्च १९२६ मे, समावर्तन के अवसर पर, दीक्षान्त भाषण के लिए, श्री राजगोपालाचारी निमत्रित किये गये थे। उन्होने कहा था कि ये विद्यालय हमारे उत्साह की ज्योति को जगाये रखे हुए है। यह बात अक्षरश सत्य है। समावर्तन सस्कार बडे उत्साह के साथ हुआ। उनका भाषण भी बहुत ही सुन्दर और जोरदार हुआ। जो लोग उस उत्सव मे शरीक हुए, सबने उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की। विद्यापीठ और उसके छात्रो की सरलता तथा सरकारी युनिवर्सिटी के समावर्तन-समारोह की शान-शौकत याद करके सब लोग हमारी छोटी सस्था की उपयोगिता मानने लगे थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि विद्यापीठ के अतिरिक्त मेरा अधिक समय खादी के काम मे लगता था। जब से खादी का काम आरम्भ हुआ, मेरी दिलचस्पी उसमे थी, पर इन दिनो जितना समय मै उसमे दे सका उतना पहले कभी न दे सका था और पीछे भी न दे सका। बिहार मे खादी का काम १९२१ मे ही आरम्भ हुआ, जब स्वराज्य-कोष के रुपयो मे से एक अच्छी रकम बिहार-प्रान्तीय कमिटी को इस काम के लिए मिली। इस काम के चलाने का भार शुरू मे प्रान्तीय कमिटी ने ही लिया। कई जिलो मे उसकी ओर से कुछ लोग इसके चलाने के लिए नियुक्त किये गये। अनुभव न तो प्रान्तीय कमिटी मे किसी को था और न उन लोगो मे से किसी को। नतीजा कुछ अच्छा नहीं हुआ।

कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री रामविनोदसिंह ने स्वतत्र रूप से यही काम शुरू किया। उनको श्री आचार्य कृपालानी से मदद मिली। मधुबनी मे एक उत्पत्ति-केन्द्र खोलकर वह अच्छी खादी तैयार करने लगे। यह खादी दूसरे प्रान्तो तक पहुँची। खादी-सम्बन्धी काम मे बिहार का नाम उन्होने ऊँचा किया। आचार्य कृपालानी की सिफारिश और

मेरी अनुमति से उनको काम बढाने के लिए एक वडी रकम का कर्ज खद्दर वोर्ड की ओर से मिला। प्रान्तीय कमिटी का काम उतना सफल न हुआ, क्योकि काम फैलाया गया वहुत, पर उसमे न तो शास्त्रीय ज्ञान का अधिक उपयोग हुआ और न व्यापार-बुद्धि का ही। इसलिए उसमे घाटा भी काफी रहा। जव अखिल भारतीय चर्खा-सघ की स्थापना हो गयी और मै एजेण्ट नियुक्त हुआ तथा श्री लक्ष्मीनारायण मत्री बने, तब नये सिरे से सारे काम का सगठन किया गया। बहुत-से भडार बन्द कर दिये गये। जहॉ बिना घाटे के काम हो सकता था वहॉ काम जारी रखा गया। इससे कुछ कॉग्रेसी कार्यकर्त्ता असन्तुप्ट भी हुए। जो खादी के काम मे आये उनका नियत्रण भी अधिक होने लगा। एकचित्त होकर इस काम मे लगने के लिए उन पर जोर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि काम की व्यवस्था बहुत सुधर गयी। खादी की उत्पत्ति और बिक्री बढ़ने लगी।

मै उन दिनो प्राय सभी उत्पत्ति-केन्द्रो मे, बरस मे एक वार, जाया करता था। वहाँ एक-एक दो-दो दिन रहकर काम देखा करता था। भडार मे, जहॉ सूत की खरीद और रूई की बिक्री होती थी, खुद बैठता भी था। अपने हाथो रूई-सूत तौलता और बेचता-खरीदता था। कपडे की बुनाई को भी जाकर देखता और तैयार कपडे पर दाम बैठाने के काम मे यथासाध्य भाग लेता। इससे मेरा निजी ज्ञान बढता गया। साथ ही यह भी अनुभव होता गया कि हम इस विषय मे कितनी कम जानकारी रखते है और इस जानकारी का न होना ही घटी के मुख्य कारणो मे था। जो हम खर्च का अनुमान-पत्र बनाते, उसे चर्खा-सघ के मत्री श्री शकरलाल बैंकर और उनके दफ्तर के लोग खूब जाँच-समझ कर ही मजूर कराते। पर तो भी कई वार घाटा हो गया।

उस समय खादी-प्रचार के लिए हम सबकी इच्छा रहती थी। अखिल भारतीय चर्खा-सघ की भी नीति थी कि हम जितनी सस्ती खादी बना और बेच सके उतना ही अच्छा है। इसी नीति के अनुसार सस्ती से सस्ती दर पर सूत खरीदने, कम से कम बुनाई देकर उसको बुनवाने और दूकानो मे कम से कम खर्च करके उसे बेचने का प्रयत्न किया जाता। इसका नतीजा यह होता कि कार्यकर्त्ताओ की कमी और अयोग्यता के कारण दूकानो मे बिक्री ठीक न होती, माल का हिसाव ठीक न रहता और उत्पत्ति-केन्द्रों का हाल यद्यपि कुछ वेहतर होता तथापि पूरा सतोषजनक न हो पाता था। इसलिए इस देखभाल की वहुत जरूरत होती। इतना हम अवश्य कहेगे कि उन दिनो जितनी शाखाएँ थी उनमे विहार की खादी वहुत करके सस्ती और अच्छी भी होती थी। महीन खादी के लिए आन्ध्र मशहूर था। विहार की 'कोकटी' सभी सूबो मे जाती। इससे विहार की ख्याति काफी हो गयी। रँगाई-छपाई का काम भी शुरू कर दिया गया था। अब रग-बिरग की खादी मिल सकती थी, पर मेरे सन्तोष के लायक अभी पक्का सगठन नही हो पाया था।

जव काम आरम्भ किया गया था तो खादी-विभाग का दफ्तर और मुख्य

भडार पटने मे ही था। खादी तैयार होती विशेषकर दरभगा-जिले मे, पर केन्द्र-भडार पटने मे ही था। इसमे असुविधा काफी थी, पर हम सभी पटने मे ही रहते थे, इसलिए केन्द्र-भडार और दफ्तर को वहॉ से हटाने की इच्छा न होती। जब लक्ष्मी बाबू मत्री हो गये और काम बढाने का विचार हुआ तो निश्चय किया गया कि कार-बार पटने से हटाकर मुजफ्फरपुर ले जाया जाय। इसमे पटने के मित्रो का बहुत विरोध हुआ, पर मैंने इसकी उपयोगिता देख ली और हटाने की राय दे दी। मुजफ्फरपुर मे, अखाडा-घाट पर, गडकी नदी के किनारे, कुछ झोपडे बने, जिनमे कार्यकर्त्ता रहने लगे और जहाँ रँगाई इत्यादि का काम होने लगा। स्थान बहुत अच्छा था। मै भी कभी-कभी जाकर वहाँ रहता। माल रखने का गुदाम और मुख्य भडार शहर मे, सरैय्यागज मे, भाडे के मकान मे रखे गये थे। यहॉ से काम बहुत बढा। कुछ दिनो के बाद हमने महसूस किया कि यह प्रबन्ध भी ठीक नही है, क्योकि उत्पत्ति-केन्द्र मुख्यत दरभगा-जिले मे थे। वहाँ से कपडा तैयार कराकर मुजफ्फरपुर लाया जाता। मुजफ्फरपुर में धुलाई, रँगाई, छपाई इत्यादि का काम होता। तब वहॉ से बिक्री के लिए भडारो मे खादी भेजी जाती। इसमे खर्च अधिक पडता। इसलिए निश्चय हुआ कि मुख्य भडार मधुबनी (दरभगा) मे ही ले जाया जाय। इसके पहले रामविनोद बाबू का भडार वहाँ था ही। इसलिए चर्खा-सघ का काम वहॉ अधिक न करके पडौल मे ही होता था, ताकि दोनो सस्थाओ मे आपस मे प्रतिस्पर्धा न हो तथा दोनों स्वतत्र रूप से काम चलाते और बढाते जायँ। पर कुछ दिनो मे, रामविनोद बाबू और उनके सहकर्मियों मे—जिनमे मुख्य श्री ध्वजाप्रसाद और रामदेव ठाकुर थे—मतभेद हो गया। रामविनोद बाबू का काम भी चर्खा-सघ के मुकाबले मे कम हो गया। इसलिए अब मधुबनी जाने मे ही सुविधा देखी गयी। एक तो वह बहुत बडा केन्द्र हो सकता था, दूसरे अनेक अन्य उत्पत्ति-केन्द्रों के लिए वह एक ऐसी जगह थी जहॉ से कार्यकर्त्ताओं के आने-जाने मे काफी सुविधा थी। तीसरे रेल, तार, डाक, बक इत्यादि की भी सुविधा थी। इसलिए मुजफ्फरपुर से दफ्तर और केन्द्र-भडार हटाकर मधुबनी ले जाये गये। आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ चर्खा-सघ का अपना मकान बन गया। आज तो वह एक देखने योग्य स्थान हो गया है। इसमे न जाने कितने बरस लगे है, पर एक स्थान पर ही इसका जिक्र कर देना ठीक समझा।

१९२६ मे खादी-सम्बन्धी मेरा मुख्य काम यह भी रहा कि स्थान-स्थान पर खादी-प्रदर्शनी कराऊँ। मेरा प्रयत्न था कि खादी मे सब लोगो की दिलचस्पी पैदा हो। इसी उद्देश्य से पटने की प्रदर्शनी सफलता-पूर्वक की गयी थी, जिसका जिक्र पहले आ गया है। १९२६ की प्रदर्शनियो मे भी इसकी विशेष चेष्टा की गयी। जहॉ-तहॉ अँगरेजो और दूसरे विदेशियो ने भी दिलचस्पी ली। बेतिया (चम्पारन) की प्रदर्शनी का उद्घाटन उस समय के बेतिया-राज के मैनेजर मिस्टर एच० सी० प्रायर, आई० सी० एस० ने किया। मिस्टर रथरफोर्ड के हट जाने पर वही वहॉ मैनेजर हुए थे। मोतीहारी की प्रदर्शनी का उद्घाटन रेवरेण्ड जे० जेड० हौज ने किया। वह एक प्रतिष्ठित

पादरी थे, जिनका परिचय गाधीजी से और मुझसे पहले से ही था। जमशेदपुर मे भी एक मार्के की प्रदर्शनी की गयी। इतने बडे कारखानेवाले शहर मे—जहाँ की चिमनियाँ दिन-रात धुँआ उगलती रहती है, जहाँ गला हुआ लोहा नदी के झरने के समान बहता रहता है, जहाँ लोहे की बडी-बडी सिले आसानी से आटे की रोटी की तरह बेल दी जाती है और पत्तर अथवा लम्बी-लम्बी रेल-लाइने बेली जाती रहती है—छोटी तकली और चर्खे की प्रदर्शनी एक अजीब-सी चीज थी। इसका आयोजन करना ही एक साहस का काम था। उस बडे कारखाने के अफसरो को इस छोटी कल की करामात दिखाने की बात तो और भी बडे दुस्साहस की थी। पर हमने ऐसा ही किया। ताता-कम्पनी के बडे अफसर मिस्टर टेम्पुल से—जो खुद इञ्जीनियर थे और जमशेदपुर के टाउन-एडमिनिस्ट्रेटर भी—प्रदर्शनी के उद्घाटन करने का अनुरोध किया गया। उन्होने इसे मान लिया। खादी की उपयोगिता पर सुन्दर भाषण भी किया। कम्पनी के जेनरल मैनेजर मिस्टर कीनन और उनकी पत्नी, जो दोनो अमेरिका-निवासी थे, प्रदर्शनी मे आये। दोनो ने कुछ खादी भी खरीदी। कम्पनी के दूसरे बडे-बडे अफसर भी, प्राय सभी, प्रदर्शनी मे आये। खादी की बिक्री भी अच्छी हुई। लोगो के आग्रह से एक और प्रदर्शनी शहर के एक दूसरे मुहल्ले मे भी की गयी। इस साल मे सूबे के प्राय सभी बडे-बडे शहरो मे प्रदर्शनियाँ की गयी। उनका उद्घाटन अक्सर स्थानीय प्रतिष्ठित लोगों द्वारा कराया गया। कई जगहो मे मैंने ही उद्घाटन किया। इन प्रदर्शनियो से केवल खादी-सम्बन्धी प्रचार ही नही हुआ, खादी खूब बिकी भी। जो माल नया तैयार हो गया था, उसकी निकासी मे पूरी मदद मिली। १९२५ मे गाधीजी ने बिहार के कुछ जिलो मे जो दौरा किया था उसमे खादी और देशबन्धु दास-स्मारक-कोष के लिए रुपया जमा किया था। बिहार मे प्राय पचास हजार रुपये जमा किये गये थे। वह रकम पूँजी मे जोड दी गयी थी। इससे काम खूब बढने लगा था।

किन्तु महात्माजी का स्वास्थ्य प्राय ठीक न रहता। रुधिर का दवाव अधिक हो जाया करता। वह गर्मी के दिनो मे मैसूर-राज्य के नन्दी-पहाड पर आराम करने के लिए गये। मै भी वहाँ गया। उनके साथ कई दिनो तक ठहरा। स्थान बहुत ही रमणीय था। पहाड पर चढना कुछ मेहनत का काम था। पर अभी तक मेरा दमा इतना ज्यादा नही बढा था। प्राय गर्मियो मे तो मै अच्छा रहता ही हूँ। इसलिए मैं पहाड पर पैदल ही चढ गया। यो ही वापसी मे उतरा भी। उस प्रदेश की यह मेरी पहली यात्रा थी। वहाँ से महात्माजी के साथ बँगलोर आया और ठहरा। वहाँ खादी की एक बडी प्रदर्शनी हुई, जिसमे विशेष भाग तामिलनाड ओर आन्ध्र की शाखाओं ने ही लिया। अपने ढग की वह प्रदर्शनी बहुत ही अच्छी हुई। वही से मैसूर-राज्य मे खादी-प्रचार का सगठित रूप से सूत्रपात हुआ। उस अवसर पर खादी-सम्बन्धी प्रक्रियाओं के प्रदर्शन के साथ-साथ खादी-सम्बन्धी भाषण भी हुए।

हिन्दी-प्रचार का काम भी दक्षिण मे हो रहा था। वहा एक विशेष सम्मेलन

करके कुछ परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र वितरित किये गये। मैंने पहले-पहल हिन्दी-सम्बन्धी उत्साह देखा। एक ही साथ पति-पत्नी, माँ-बेटी, बाप-बेटे और मित्र-पुत्र हिन्दी पढ़नेवाले मिले, एक ही साथ परीक्षा में वे बैठते भी। मेरे लिए यह सब नया अनुभव था। उस यात्रा को अपने लिए मैं बहुत ही शिक्षाप्रद मानता हूँ।

बँगलोर में प्रदर्शनी समाप्त होने के बाद मैंने दक्षिण के कई स्थानों का भ्रमण किया। तामिलनाड के मुख्य भंडार को देखा। वह तिरुपुर में था। दूसरे कई और भंडारों को भी जाकर देखा। राजाजी ने अपना आश्रम सेलम जिले में बना रखा था। वहाँ वह खादी का काम बहुत जोरों से चला रहे थे। वहाँ भी गया। इन सब जगहों में वहाँ के काम की परिपाटी और संगठन-विधि का पूरी तरह अध्ययन किया। जो कुछ नया और जानने योग्य वहाँ मिला उसको अपने सूबे में दाखिल करने का प्रयत्न भी किया। वहाँ का संगठन और हिसाब रखने का तरीका मुझे बहुत पसन्द आया। मैंने उसका अध्ययन कर लिया। उन दिनों सबसे अधिक खादी की उत्पत्ति तामिलनाड में होती थी। सबसे बढ़िया महीन खादी (कोकटी को छोड़कर) आन्ध्र देश में बनती थी। इसलिए मैंने सोचा कि तामिलनाड का संगठन देखने के बाद आन्ध्र भी जाना चाहिए। वहाँ के चर्खा-संघ के मंत्री श्री सीताराम शास्त्री का आग्रह भी था कि मैं चलूँ और खादी-सम्बन्धी भाषण भी करूँ।

लौटने के समय मैं आन्ध्र होते लौटा। मैं आन्ध्र के कई जिलों में गया। सभी जगहों में मैंने खादी-सम्बन्धी भाषण किया। मेरे भाषण वहाँ अँगरेजी में ही हुए। मैंने देखा कि मैं जिस शास्त्रीय रीति से खादी के सम्बन्ध में लोगों को समझाता उसका असर काफी अच्छा पड़ता—विशेषकर शिक्षितवर्ग पर जो अक्सर खादी की उपयोगिता और सफलता के सम्बन्ध में बहुत शंका-सन्देह रखा करता था। वहाँ के लोगों का कहना था कि मेरी यात्रा से खादी-प्रचार में अच्छी सहायता मिली। जब मैं पटने लौट आया तो कुछ भाइयों का विचार हुआ कि जो कुछ मैंने अपने भाषणों में कहा है वह लेखबद्ध कर दिया जाय तो अच्छा होगा। इसलिए मैंने अपने भाषणों का सारांश लिख डाला। 'एकनामिक्स आफ खादी' (खादी का अर्थशास्त्र) के नाम से वही एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी-रूपान्तर भी 'खादी का अर्थशास्त्र' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस तरह उस साल का बहुत समय खादी के काम में ही बीता।

६५—मेरी आसाम-यात्रा

कानपुर-कांग्रेस के समय आसाम से कुछ लोग आये थे जिनमें एक प्रमुख व्यक्ति श्री नवीनचन्द्र बारदोलाई थे। वह मेरे एक पूर्व-परिचित मित्र थे। इनके साथ उस समय से ही घनिष्ठता हो गयी थी जब हम दोनों कलकत्ता-हाइकोर्ट में वकालत किया करते थे। असहयोग-आन्दोलन में वह आरम्भ से ही आ गये थे और अपने प्रान्त के प्रमुख लोगों में से थे। इन लोगों की इच्छा थी कि कांग्रेस को आसाम में निमंत्रित

करे। इस सम्बन्ध मे इन्होंने मेरी राय ली। मैंने इनको मना किया, क्योंकि गया-कॉंग्रेस के अनुभव ने मुझे बता दिया था कि कॉंग्रेस का आयोजन वहुत विस्तार ले चुका है और आसाम छोटा प्रान्त है। पहले तो काफी रुपये जमा करने मे ही मुश्किल हो सकती है, क्योंकि आसाम केवल छोटा ही नही, गरीव सूवा भी है। दूसरे कॉंग्रेसी लोग सरकारी प्रान्त के केवल उसी हिस्से को आसाम कहते है जहॉं की भाषा असामिया है अर्थात् ब्रह्मपुत्र की घाटी। जो बँगला बोलनेवाला हिस्सा है, जिसे सुरमा घाटी कहते है, वह तो बगाल के साथ है। इस तरह सूबा और भी छोटा हो गया है। कार्य-कर्त्ताओ की सख्या भी काफी नही है। तने पर भी उन लोगो का उत्साह वहुत था। उन्होने मेरी बात नही मानी, कॉंग्रेस को आमत्रित कर ही दिया।

उन लोगो की यह भी इच्छा थी कि कॉंग्रेस के पहले ही उस प्रान्त मे खादी के काम का पुन सगठन हो जाय। पहले कुछ काम हुआ था, पर वह योग्य कार्य्यकर्त्ता के अभाव से ठीक चला न था, उसे बन्द कर देना पडा था। उन्होने इसके पुन सगठन मे मेरी सहायता मॉंगी। मै इनकार न कर सका। वहॉं जाने का वचन दे दिया। कुछ दिनो के बाद वहॉं गया भी। आसाम के कई जिलो मे, जहॉं खादी का काम अच्छी तरह चल सकता था, भ्रमण किया। इस यात्रा का अनुभव वहुत ही अच्छा रहा। खादी के लिए आसाम एक अत्यन्त उपयुक्त प्रान्त है, क्योंकि इसके लिए वहॉं जैसी सुविधाएं है वैसी शायद ही किसी सूबे मे हो। रेशम के कीडे पालने, उनसे सूत निकालने और उस सूत को बुन लेने की प्रथा अभी तक आसाम मे जारी है। कपडा बुनना वहॉं की स्त्रियॉं उसी तरह जानती है जिस तरह हमारे सूबे की स्त्रियॉं कुछ सीना-पिरोना। अच्छे घरों की लडकियो की तो शादी ही नही हो सकती यदि वे अच्छी तरह बुनाई न जानती हो। वह बुनाई भी मामूली बुनाई नही, वे अपने करघो पर रग-बिरगे फूल भी बुन सकती है। निहायत खूबसूरत फूलदार किनारी के साथ साडियॉं भी बुन सकती है। प्राय सभी घरो मे करघे चला करते है। करघे भी वहुत सादा वॉंस के ही बने होते है। बुनाई के अलावा वहॉं की स्त्रियॉं सूत कातना भी जानती है। मुझे वहॉं यह देखकर वहुत आश्चर्य और प्रसन्नता हुई कि वहॉं के खद्दर-भडार मे स्त्रियॉं तैयार कपडा लेकर आती और उससे रूई बदलकर ले जाती। अथवा, इसी बात को हम इस तरह भी कह सकते है कि हम जैसे दरभगा-जिले के भडारो मे रूई देकर सूत बदलते थे वैसे ही वहॉं के भडारो मे रूई देकर कपडा वदला जाता था। इसका कारण यही था कि वहॉं चर्खे और करघे का घर-घर प्रचार है। हम तो कुछ स्त्रियो से सूत कतवाते है। वह सूत फिर बुनकर को बुनने के लिए देते है और वह उसे बुनता है। वहॉं यह बीच का कदम गैर जरूरी हो गया है। उस प्रान्त के कुछ हिस्से मे रूई भी पैदा होती है, जो वहुत अच्छी तो नही कही जा सकती, पर तो भी काम चलाने के लिए ठीक है। इस तरह उस सूबे मे खादी-प्रचार के लिए वहुत अच्छा सुयोग मैंने पाया। मैंने चर्खा-सघ मे आकर वहुत जोर दिया कि इस काम के लिए आसाम को कुछ रुपये दिये जायँ। मत्रीजी यह नही चाहते थे, क्योंकि उनका पहला

अनुभव ठीक न था। आखिर उन्होने और कौन्सिल ने मेरी बात मान ली। कुछ रुपये दिये गये। वहाँ का काम फिर सगठित रूप से चलने लगा।

इस यात्रा मे मैंने एक बात देखी। नवगाँव-जिले के गाँवो मे भ्रमण करते समय देखा कि वहाँ बहुत जमीन परती है, जो अभी तक आबाद नही की गयी है। जमीन पर बहुत अच्छी और हरी घास लगी हुई थी, क्योकि वहाँ की जमीन मे यो ही काफी नमी रहती है। कही-कही इन बडी परतियो में कुछ झोपडे नजर आते थे, जिनमे थोडे ही आदमी देखने मे आये। अभी तक जमीन पर कोई फसल नही थी और न जोतने-बोने का कोई चिह्न ही देखने मे आता था। पूछने पर मालूम हुआ कि इस तरह की गैर आबाद जमीन आसाम मे कुछ है। वहाँ का कानून कुछ ऐसा था कि जो आदमी ऐसी गैरआबाद जमीन मे आ करके बैठ जाय और उसको आबाद करना शुरू कर दे तो कुछ काल मे उसपर उसको स्वत्व प्राप्त हो जाता था। वहाँ से नजदीक ही बगाल का मैमनसिंह-जिला है, जिसकी आबादी बहुत है और जहाँ जमीन की कुछ कमी होने लगी है। इसलिए वहाँ से कुछ लोग आकर इन गैरआबाद टुकडो पर झोपडे बनाकर रह जाते है। उन्हे वे आहिस्ता-आहिस्ता आबाद करने लगते है। इस तरह कुछ दिनो मे जमीन पर अपना हक कायम कर लेते है। ये लोग प्राय सभी मुसलमान है। इनसे वहाँ की गैरआबाद जमीन आबाद होती जा रही है। साथ ही, आगन्तुक मुसलमानो की सख्या सूबे के मुसलमानो की सख्या बढाती जा रही है। पूछने पर यह भी मालूम हुआ कि कोई भी इस तरह से आकर वहाँ जमीन ले सकता है, चाहे वह किसी भी प्रान्त का हो। मैंने सोचा कि बिहार मे, विशेषकर छपरा-जिले मे, इतनी अधिक आबादी हो गयी है कि जमीन की कमी के कारण लोगो को लाखो की सख्या मे प्रतिवर्ष प्रान्त के बाहर मजदूरी करने के लिए जाना पडता है। उनमे से न मालूम कितने हजार इसी आसाम मे आते है। यहाँ कुछ महीनो तक रहकर मजदूरी करके कुछ कमा लेते है। फिर अपने घर कुछ महीनो के लिए चले जाते है। मेरी यात्रा मे मेरे जिले के आदमी प्राय सभी जगहो मे मिल जाते थे। अपनी बोली और चाल-ढाल से वे बडी आसानी से पहचाने जाते थे। पूछने पर गाँव का नाम भी मालूम हो जाता था। मैंने सोचा कि जो लोग इस तरह यहाँ आकर कुछ महीनो के बाद ही घर चले जाते है वे यदि यहाँ स्थायी रूप से जमीन हासिल करे तो एक पथ दो काज हो सकता है—छपरे की आबादी मे कमी हो सकती है और ये लोग हर चार-पाँच महीने पर जो रेल-भाडे मे खर्च करते है वह बच जाय तथा इनको जमीन भी मिल जाय।

इस विषय मे वहाँ के लोगो से बाते हुई। उन्होने इस बात को पसन्द किया, क्योकि बिहारी मजदूरो से उनका परिचय था, उनको वे पसन्द करते थे। मैमनसिंह के आदमी उनके काम के नही होते। वे उन्हे इसलिए पसन्द नही करते थे कि मैमनसिंहवालो का व्यवहार वहाँ के स्थानीय लोगो के साथ अच्छा नही होता था। कुछ लोग तो मैमनसिंह के मुसलमानो की अपेक्षा बिहार के हिन्दुओ का वहाँ जाकर

बसना अपने लिए बेहतर समझते थे। कारण, हिन्दू-मुस्लिम झगडे उन दिनो हुआ ही करते थे। वे चाहते थे कि वहाँ इस तरह आगन्तुक मुसलमानो की सख्या न बढे तो वहाँ के हिन्दुओ के हक मे अच्छा होगा। बात भी ऐसी थी कि मुसलमानो की सख्या बगाली आसाम मे अधिक थी-और यह गैरआबाद जमीन शुद्ध आसामी बोलनेवाले हिस्से मे थी, जहाँ मुसलमानो की सख्या कम थी। वहाँ के हिन्दू डरते थे कि यहाँ यदि मैमनसिंह से मुसलमान इस तरह आकर बसते रहे तो एक दिन उस हिस्से मे भी मुसलमानो की सख्या अधिक हो जायगी। वे खुद सब जमीन आबाद नही कर सकते थे। नियमानुसार कोई भी बाहर से आकर आबाद कर सकता था। ऐसी अवस्था मे उनके लिए यही बेहतर था कि बिहार के हिन्दू ही आकर बसे। बिहार लौटने पर मैंने इस जमीन का और इसके मिलने के नियम का जिक्र कुछ भाइयो से किया। पर वहाँ कोई गया नही। जहाँ तक मै जानता हूँ, शायद दो-चार ही बिहारियो ने वहाँ जाकर जमीन ली हो।

मैंने इसका जिक्र अपने भाई साहब से भी किया। उन्होने कई बरसो के बाद वहाँ जाकर जमीन देखी। गैरआबाद जमीन के सिवा उन्होने आबाद जमीन लेने की बात भी सोची। स्वर्गीय बाबू शभूशरण और बाबू अनुग्रहनारायणसिंह के साथ मिलकर एक बगाली सज्जन ने भी प्राय एक हजार एकड जमीन कई हजार रुपये पर मोल ली। सुना था कि जमीन अच्छी थी। नारगी का बागीचा था। आबाद करने के लिए मोटर-ट्रैक्टर था। एक बँगला भी था। जमीन जगल के बीच मे थी। वहाँ जगली जानवर, विशेषकर शेर और हाथी, आ जाया करते थे। तब भी जमीन आबाद करने का प्रबन्ध किया गया। बैल वगैरह रखे गये। पर वहाँ की आबहवा इतनी खराब थी कि जो कोई जाता, मलेरिया ज्वर से ग्रस्त हो जाता। शायद पुराने मालिक के बेचने का भी यही कारण था। भाई साहब कई बार वहाँ गये। अनुग्रह बाबू और शभू बाबू भी गये। मै कभी न गया। पर उन लोगो के जाने पर भी आबादी का सिलसिला ठीक जमता न था। कई बरसो के बाद भाई साहब वहाँ गये थे। वही से ज्वर लिये वापस आये। उसी बीमारी ने उनको मजबूर कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु भी हो गयी। उसके पहले ही शभू बाबू की मृत्यु हो चुकी थी। अब किसी के मन मे उत्साह नही रह गया। हम लोगो ने जमीन को यो ही छोड दिया। मालगुजारी बाकी पड जाने से शायद वह नीलाम हो गयी होगी। इसमे हम लोगो का कई हजार रुपयों का नुकसान हुआ था। केवल बाबू महेन्द्रसिंह और श्री रामरक्ष ब्रह्मचारी वहाँ कुछ जमीन लेकर आबाद करा सके। वह जमीन आज तक उनके भाई या कोई दूसरे सबॉग रहकर आबाद कराते और कुछ हासिल कर लेते हैं। ये सब बाते उस एक साल की ही नही है। यह प्राय सात-आठ बरसो की घटनाओ का सक्षिप्त वर्णन है। पर यहाँ एक ही स्थान पर दे देना ठीक मालूम पडा। अब सुना है कि वहाँ के उस कानून मे कुछ परिवर्तन हुआ है। अब उतनी आसानी से बाहर के लोगो को जमीन नही मिल सकती। उसका अधिक हिस्सा शायद स्थानीय लोगो के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गयी है।

६६—गोहाटी-काँग्रेस

गोहाटी मे जो कॉग्रेस का अधिवेशन हुआ उसके लिए वहॉ के लोगो ने बडे उत्साह के साथ ब्रह्मपुत्र के किनारे ही कॉग्रेस-नगर बनवाया था। उस स्थान और शिविर का दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। खादी का काम बहुत आगे बढ निकला। वहॉ की प्रदर्शनी भी बहुत अच्छी हुई। प्रदर्शनी के सफल बनाने मे चर्खा-सघ का ही मुख्य प्रयत्न हुआ करता था। इसलिए चर्खा-सघ मे उसके प्रबन्धक अनुभव प्राप्त करते जा रहे थे। मुझे याद है कि उस प्रदर्शनी मे चर्खा-सघ की बिहार-शाखा के कार्य-कर्त्ताओ ने बहुत कमम किया था। इस बार कॉग्रेस के सभापति थे मद्रास के श्री श्रीनिवास ऐयगर। स्वागताध्यक्ष थे श्री तरुणराम फूकन और मत्री श्री नवीनचन्द्र बारदोलाई। उन लोगो ने प्राणपण से सुप्रबन्ध की चेष्टा की थी। ठीक कॉग्रेस के अधिवेशन के कुछ दिन पहले एक आततायी मुसलमान ने दिल्ली मे स्वामी श्रद्धानन्दजी को उनके घर मे घुसकर मार डाला था। इससे सारे देश के हिन्दुओ मे बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिसका असर गोहाटी मे उपस्थित लोगो पर भी पडे बिना न रह सका। सबसे बढकर हिन्दुओ के दिल दुखानेवाली बात यह हुई कि हत्या करनेवाले उस आदमी के मुकदमे की पेशी मे मौलाना महम्मद अली-जैसा नेता भी गया। हिन्दुओ के दिल पर इससे यह असर पडा कि मौलाना साहब भी उसके साथ सहानुभूति रखते है और शायद इस हत्या को पसद भी करते हो। स्वामीजी कई बरसो से शुद्धि और सगठन के काम मे बहुत दिलचस्पी लेते आ रहे थे। इससे कट्टर मुसलमान उन पर क्रुद्ध थे। उनकी हत्या का यही कारण भी था। उन दिनो किसी न किसी धार्मिक कारण से इस प्रकार की कई हत्याएँ हिन्दुओ की हुई। बलवा-फसाद तो हो ही रहे थे। इससे सारे देश का वायुमडल बहुत बिगड गया था। जो सुन्दर समा १९२१ मे देखने मे आया था वह एकबारगी जाता रहा।

अधिवेशन मे कोई विशेष महत्त्व की बात नही हुई। गाधीजी उन दिनो कॉग्रेस मे जाते तो थे, पर एक प्रकार से तटस्थ-से रहते थे, क्योकि उन्होने इस काम को स्वराज्य-पार्टी के हाथो मे सौप दिया था। एक घटना गोहाटी मे हुई जो यहॉ लिख देना अनुचित न होगा। नाभा (पजाब) के महाराज पदच्युत किये गये थे। उनके कुछ अनुयायी इससे बहुत रुष्ट थे। वे चाहते थे कि कॉग्रेस इस सम्बन्ध मे सरकार की निन्दा का प्रस्ताव करे और दूसरे प्रकार से पदच्युत महाराज की सहायता करे। महात्माजी की गैरहाजिरी मे विषय-निर्वाचिनी समिति मे एक प्रस्ताव स्वीकृत भी हो गया। पर महात्माजी को यह बात पसन्द नही थी, क्योकि वह देशी रियासतो के झगडे मे कॉग्रेस का पडना, रियासतो और कॉग्रेस दोनो के लिए, हानिकर समझते थे। इसलिए उन्होने विषय-निर्वाचिनी से इस पर फिर विचार करने का आग्रह किया। उन्होने इस विषय पर कोई प्रस्ताव न होने दिया। इससे श्री हार्निमैन, जो बम्बई की ओर से प्रतिनिधि होकर कॉग्रेस मे आये थे, बहुत असन्तुष्ट हुए थे। उन्होने

पुनर्विचार का बहुत विरोध किया था। उस समय देशी रियासतो के सम्बन्ध मे मेरी कुछ भी जानकारी न थी। इस नीति को मै ठीक-ठीक न समझ पाया था। पीछे, कई बरसो के बाद, कॉंग्रेस की नीति के सम्बन्ध मे, कॉंग्रेसी लोगो मे बडा मतभेद पैदा हुआ। कई बरसो तक, हर साल, यह एक विशेष विवादग्रस्त विषय बना रहा। इसका जिक्र फिर आगे आवेगा।

गोहाटी-कॉंग्रेस के समय बहुत पानी बरसा जिससे वहॉं के प्रबन्धकों और आगन्तुको को कष्ट उठाना पडा था। पर इस विघ्न के पडने पर भी वहॉं का अधिवेशन सफलतापूर्वक हुआ। सब काम निर्धारित रीति से समाप्त हुए, रामगढ-कॉंग्रेस की तरह सारा इन्तजाम ही तहस-नहस न हुआ। पर इससे खर्च बढ गया और आमदनी, जिसका बडा हिस्सा दर्शकों के टिकट से ही आता है, घट गयी। स्वागत-समिति को बहुत घाटा सहना पडा। उसको अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी से सहायता मॉंगनी पडी। सहायता दी गयी, पर पर्याप्त नही। श्री फूकन और श्री बारदोलाई को निजी तौर पर नुकसान उठाना पडा। यह झगडा बहुत दिनो तक चलता रहा। इधर हाल मे वर्किंग कमिटी ने उसका बाकी हिसाब चुकाकर वहॉं के मामले का अन्त किया है। मैंने जिस बात से डरकर अपने मित्र श्री बारदोलाई को कॉंग्रेस के आमन्त्रित करने से मना किया था वह बात होकर ही रही। प्रकृति के प्रकोप ने आमदनी घटाकर आर्थिक स्थिति को और भी जटिल बना दिया।

ऊपर कहा चुका हूँ कि अहमदाबाद के अधिवेशन से ही प्राय प्रतिवर्ष कोई न कोई इस विषय पर एक प्रस्ताव उपस्थित करता कि कॉंग्रेस का ध्येय केवल स्वराज्य न रखकर पूर्ण स्वतत्रता बना दिया जाय और यह हर साल नामजूर कर दिया जाता। गोहाटी के सभापति श्री ऐयगर इसके समर्थक हो गये। इसमे अब जोर आने लगा। पर गोहाटी तक यह पास न हो सका था।

जब से कॉंग्रेसी लोग कौन्सिलो मे गये, कुछ लोग उसी काम मे लग गये; कुछ लोग खादी-प्रचार मे लगे रहे और कुछ लोग कॉंग्रेस के सगठन का काम करते रहे। कौन्सिलो मे जो काम होता उसका समाचार-पत्रो मे खूब प्रचार होता। लोगो ने काम भी अच्छा किया। केन्द्रीय असेम्बली मे पडित मोतीलालजी ही नेता हुए। वहाँ उन्होने और दलो के लोगों के साथ मिलकर कई बार सरकारी बजट को नामजूर करा दिया। दूसरे विषयो पर भी उन्होंने सरकार के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार कराये। श्री श्रीनिवास ऐयगर भी वहाँ के सदस्य थे। कई बातों मे पडितजी से उनका मतभेद हो जाया करता, पर अभी बात कुछ बिगडी नही थी। वहाँ पर सबसे विशिष्ट बात यह हुई कि श्री बिट्ठलभाई पटेल सभापति चुने गये। उन्होंने अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा का बहुत सुन्दर प्रमाण दिया। हर तरह से निरपेक्ष रहते हुए भी कई बार उन्होने गवर्नमेण्ट को बडी मुश्किल मे डाल दिया।

६७—हिन्दू-मुस्लिम समस्याएँ

गोहाटी-कांग्रेस के बाद श्री श्रीनिवास ऐयगर ने दो बातो पर विशेष जोर दिया। इन्ही के सम्बन्ध मे उन्होने काम भी किया। जैसा कहा जा चुका है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या बहुत जटिल होती जा रही थी। बलवा-फसाद तो होते ही रहते थे। आपस मे, कांग्रेसी लोगो मे भी, अविश्वास की मात्रा बढती जाती थी। उन्होने इसका प्रयत्न किया कि यह मामला किसी तरह सुलझ जाय। इस झगडे के दो पहलू है—एक धार्मिक और दूसरा राजनीतिक। साधारण जनता, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, धार्मिक पहलू से अधिक दिलचस्पी रखती है। शिक्षितवर्ग और धनीवर्ग के लोग, जो बाहर-भीतर की कुछ बातो से वाकिफ है, राजनीतिक पहलू मे ज्यादा दिलचस्पी रखते है। दोनो का एक दूसरे पर असर पडता ही रहता है। और, शिक्षितवर्ग, जिसे राजनीतिकवर्ग भी कह सकते है, साधारण जनता की इस दिलचस्पी को भी अपने काम मे लाता है। दोनो के दो प्रकार के प्रश्न होते है और उनके हल भी दो प्रकार के है।

हिन्दू गाय के लिए पूज्य भाव और श्रद्धा रखते है। गोवध के नाम से ही वे बहुत उत्तेजित हो जाते है। यह बात विशेषकर बिहार और युक्तप्रदेश मे है। इसी गोवध के कारण न मालूम कितने बलवे हो चुके है। यह कोई नई बात भी नही है। मुसलमान बादशाहो ने भी महसूस किया था कि गोवध से हिन्दुओ के दिल को कितनी ठेस लगती है। उनमे जो उदार थे उन्होने, हिन्दुओ को मर्माहत होने से बचाने के लिए, गोवध का निषेध भी कर दिया था। वह भावना हिन्दुओ मे आज तक वर्तमान है। इस भावना से शिक्षित हिन्दू भी एक-दम बचे नही है। वे भी गोवध से उत्तेजित हो जाते है। उधर मुसलमान बकरीद के दिन कुर्बानी करना अपना फर्ज समझते है। गरीबो के लिए यह फर्ज गाय की कुर्बानी से ही अदा हो सकता है, क्योकि उसमे कम खर्च पडता है। इसलिए उस दिन जहाँ-तहाँ गाय की कुर्बानी के कारण झगडे हो जाया करते है। जहाँ मुसलमानों की आबादी ज्यादा है वहाँ तो कुर्बानी हो जाया करती है। पर जहाँ उनकी आबादी कम है वहाँ कुर्बानी प्राय कभी नही होती। बहुत करके झगडा ऐसे स्थानो मे होता है जहाँ मुसलमान नये तौर पर कुर्बानी करना चाहते है। हो सकता है, किसी गाँव मे पहले कोई ऐसा मुसलमान न था, जो गाय की अथवा कोई भी कुर्बानी कभी कर सकता हो। अब उनमे से कोई कुछ पैसे कमाकर कुछ समृद्ध हो गया। उसकी इच्छा हुई कि वह भी अपने धर्म के अनुसार कुर्बानी करे। वहाँ के हिन्दू इस बात को बर्दाश्त न कर सके। बस झगडा हो गया।

बिहार की सरकार ने इस झगडे को निपटाने के लिए एक फिहरिस्त बना रखी है कि किन-किन गाँवों मे बराबर से कुर्बानी होती आयी है। यदि ऐसे किसी गाँव मे कुर्बानी पर हिन्दू हस्तक्षेप करते है तो उनको दबा कर वहाँ कुर्बानी करवा देती

है। जहाँ मुसलमान नये सिरे से कुर्बानी करना चाहते है वहाँ उनको भी रोक देती है। यही नीति बहुत दिनो से बिहार-सरकार बर्तती आयी है। मुसलमान इससे सन्तुष्ट नही होते। वे कहते है कि एक तो यह फिहरिस्त ही ठीक नही है, क्योकि कुर्बानी तो हमेशा छिपा करके ही की जाती है, खुले आम कभी नही होती, इसलिए इसका सबूत मुसलमानो की गवाही के सिवा दूसरा कुछ हो ही नही सकता—हिन्दू तथा सरकारी अफसर भी इस गवाही को जल्दी सच नही मानते, दूसरे उनका हक है कि वे अपने धर्म का पालन करे, इसलिए रवाज की कोई बात हो ही नही सकती; जहाँ रवाज न भी हो वहाँ भी वे जब चाहे तब कुर्बानी कर सकते है और उनको इसका हक होना चाहिए। यही झगडे का घर हो जाता है। बकरीद के मौके पर हमेशा अन्देशा रहता है कि कही झगडा न हो जाय। सरकार भी बहुत चौकन्ना रहती है।

मुसलमानो की ओर से, मसजिद के सामने होकर बाजे-गाजे के साथ हिन्दुओं के जलूस निकालने का, विरोध किया जाता है। कहा जाता है कि मसजिद मे नमाज पढनेवाले मुसलमानो के ध्यान मे बाजे के कारण खलल पडता है, इसलिए वे बाजा नही बजने देना चाहते। इसलिए भी अक्सर हिन्दुओ के त्योहारो के दिन झगडे हो जाया करते है। यह बात बिहार मे उतनी नही थी जितनी कई दूसरे सूबो मे। जब से आपस का वैमनस्य फैला, मुसलमानो की ओर से जहाँ-तहाँ इस पर भी जोर दिया जाने लगा। इसके सम्बन्ध मे बिहार के हिन्दू कहते है कि गाय की कुर्बानी के मुकाबले मे रखने के लिए मसजिद के सामने बाजे न बजने देने की बात मुसलमानो ने जबरदस्ती नये सिरे से उठाई है और यह केवल एक अडगा खडा करने की बात है। जो हो, बिहार मे भी कही-कही झगडे होने लगे। कही-कही तो, जैसे पटना-शहर मे, यह झगडा अभी तक नही होने पाया है, क्योकि यहाँ के कुछ ऊपर के दर्जे के मुसलमानो ने इसे अपने जोर से रोक दिया और बाजा बजाने का विरोध होने ही न दिया।

बात तो यह है कि प्रतिदिन न मालूम कितनी ही गाये कसाईखानो मे मारी जाती है। वे मारी जाती है या तो गोश्त खाने के लिए अथवा चमडे इत्यादि बेचकर पैसे बनाने के लिए। विशेषकर जहाँ गोरो की फौजी छावनियाँ है अथवा कलकत्ता-जैसे शहर मे जहाँ गोरो की अधिक आबादी है, वहाँ तो अच्छी-अच्छी गाये भी मारी जाती है। किन्तु इस पर हिन्दू विशेष ध्यान नही देते। प्रतिदिन के गोवध को वे सह लेते है, पर बकरीद के दिन धार्मिक प्रवृत्ति से की गयी कुर्बानी को वे नही बर्दाश्त करते। इसी तरह, बडे-बडे शहरो मे बडी से बडी मसजिदो के चारो ओर ट्राम, मोटर, गाडी-छकडे और दूसरे प्रकार की शोर मचानेवाली चीजो का शोर दिन-रात होता रहता है। मुहर्रम के दिनो मे, मुसलमानो के ही जलूसो मे, भयकर शोर मचता है, बाजे बजते है। इनसे तो मुसलमान नही घबराते, मगर हिन्दुओ के किसी धार्मिक अथवा सामाजिक जलूस के बाजे को सहन नही

कर सकते। जो हो, यह एक बीहड मसला है। साधारण जनता इससे ही अधिक सम्बन्ध रखती है।

शिक्षित और राजनीतिक वर्ग के लोग सरकारी नौकरी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी एव कौन्सिल की मेम्बरी इत्यादि मे बहुत दिलचस्पी लेते है। यदि उनमे मुसलमानों की सख्या उनकी इच्छा के अनुसार न हुई तो मुसलमान बिगड जाते है; यदि हिन्दुओ की राय मे मुसलमानों की सख्या उचित अनुपात से अधिक हो गयी तो हिन्दू बिगड जाते है। यहाँ जो थोडा-बहुत अधिकार हिन्दुस्तानियो को मिला है अथवा मिल सकता है उसके बँटवारे का प्रश्न है। जो लोग उस अधिकार को बर्तना चाहते है वे उसमे किसी तरह ठेस लगने से आवेश मे आ जाते है।

श्री श्रीनिवास ऐयगर की बहुत इच्छा थी कि कोई समझौता हो जाय। पर यह हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न जितना जटिल उत्तर-भारत मे है उतना दक्षिण मे नही है। वहाँ अधिक झगडा ब्राह्मण और अब्राह्मण तथा स्पृश्य और अस्पृश्य हिन्दुओं के बीच है। मुसलमानों की सख्या वहाँ कम है। जिस गोवध के कारण उत्तर-भारत मे इतने अधिक दगे हुआ करते है उसके लिए उधर उतने झगडे नही होते। हाँ, उधर कुछ झगडे बाजे के प्रश्न पर होते है और वह ईसाइयों के साथ भी। इसलिए इस समस्या की जटिलता और हिन्दुओं की भावनाओ का अन्दाजा दक्षिणी लोग ठीक नही आँक सकते। श्री श्रीनिवास ऐयगर कुछ जल्दीबाज भी थे। जितनी तेजी से वह बोलते थे उतनी ही तेजी से अपनी राय भी कायम कर लेते थे। एक बार राय कायम कर लेने पर उससे जल्दी हटना नही चाहते थे। बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी, पर व्यवसायात्मिका नही थी। इसलिए जहाँ तक कानून के पुस्तकी ज्ञान का सम्बन्ध होता था वहाँ तक तो वह बहुतेरो को मात कर सकते थे, पर जहाँ कार्य्यकुशलता की बात आती वहाँ उनकी बुद्धि उतनी कारगर न होती। उन्होने अपने सभापतित्व के समय मे इस बात का प्रयत्न किया कि हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जाय। पर जिसको वह समझौता मानते थे उसे हिन्दू जनता तो जरूर, और काँग्रेसी हिन्दू भी शायद, स्वीकार न करते। इसलिए उनका यह सत्प्रयत्न सफल न हो सका।

६८—साइमन-कमीशन और मद्रास-काँग्रेस

१९२० मे नया विधान बना था। उसमे एक नियम था कि दस बरसो पर पार्लेमेण्ट उस विधान के कार्य्यान्वित किये जाने की रीति पर और राजनीतिक परिस्थिति पर पुर्नविचार करेगी तथा आवश्यकतानुसार इसकी जाँच कराने के लिए किसी को नियुक्त करेगी। जब से यह विधान बना, काँग्रेस ने इसका विरोध ही किया। १९२० के चुनाव मे काग्रेसी लोग शरीक न हुए। उन्होने, और उनके तथा खिलाफत-कमिटी के कहने से प्राय सभी जानदार हिन्दुओ और मुसलमानो ने, इसका बहिष्कार ही किया था। यो तो कोई न कोई चुना जाकर उन जगहो को भर देता था, पर ससार यह जानता था और सरकार भी अन्दर-अन्दर मानती थी कि

जनता के सच्चे प्रतिनिधि उन धारा-सभाओ मे नही आये थे, क्योकि कॉंग्रेसी और खिलाफती लोगो ने अपने को केवल उमीदवारी ही से अलग न रखा था, वरन् मत देनेवालो को भी मना किया था कि मत देकर चुनाव मे हिस्सा मत लो। इसका नतीजा यह हुआ था कि बहुत कम मतदाताओ ने मत दिया था। १९२३ के चुनाव मे कॉंग्रेस ने इतना ही किया था, कि जो कॉंग्रेसी धारा-सभाओ मे जाना चाहे वह जा सकता है, पर चुनाव मे कॉंग्रेस भाग न लेगी। इसलिए, यद्यपि उस बार कॉंग्रेसी चुने गये और कुछ अधिक मतदाताओ ने चुनाव मे भाग लिया, तो भी यह नही कहा जा सकता था कि वह चुनाव भी सारी जनता के प्रतिनिधि चुनवाने मे सफल हुआ था। १९२६ के चुनाव मे कॉंग्रेस ने भाग लिया और जनता ने भी खूब जोरो से मत दिया। इस चुनाव का नतीजा यह हुआ कि जहाँ तक चुनाव मे सफलता मिल सकती थी, कॉंग्रेस को मिली, पर विधान ही ऐसा बना था कि जिससे कॉंग्रेस का और जनता के प्रतिनिधियो का बहुमत न हो सके। इसलिए, अधिक सख्या मे चुने जाने पर भी, सरकारी और सरकार द्वारा नामजद मेम्बरो को मिलाकर जो थोडे लोग चुने जा सकते थे, कॉंग्रेस के विरुद्ध बहुमत पा सके, पर वह भी सब जगहो मे नही। जो लोग चुने गये वे भी, विशेषकर केन्द्रीय धारा-सभा मे, पडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व मे, सरकारी पक्ष को हमेशा हराते रहे। इन सब बातो से सरकार भी शायद सोचती रही कि इस असन्तोष को दूर करना चाहिए। इसलिए दस बरसो का इन्तजार न करके उसने १९२७ मे ही एक कमीशन नियुक्त किया और घोषणा की कि वह कमीशन १९२८ के आरम्भ मे भारत पहुँचकर जाँच का काम शुरू करेगा। इस कमीशन के सभापति सर जान साइमन थे। दूसरे सभी सदस्य अँगरेज थे। एक भी हिन्दुस्तानी उसमे नही था। इस घोषणा के प्रकाशित होते ही सारे देश मे बहुत असन्तोष देखने मे आया। कॉंग्रेसी लोगो का तो कहना ही क्या, जो लोग नरमदल के थे वे भी बहुत असन्तुष्ट थे। हिन्दू और मुसलमान सभी इस विषय मे प्राय एकमत हुए। ऐसा मालूम होने लगा कि फिर एक बार सभी मिलकर इसका विरोध करेगे।

पटने मे इस विषय की एक कान्फ्रेन्स हुई। सर अली इमाम सभापति हुए। सभी दल के लोग शरीक हुए। निश्चय किया गया कि सब लोग मिलकर इस कमीशन का बहिष्कार करे। इसके नेता सर अली इमाम हुए। मुझे याद है कि इस विषय मे उनसे मेरी बाते हुई थी। मैने उनसे कहा था कि हम लोगो को यह देखकर बडी खुशी है कि उनके-ऐसे सरकार द्वारा प्रतिष्ठा-प्राप्त और नरम विचार के लोग भी इस कमीशन का विरोध करने पर तैयार है—जनता तो इस काम मे उनका साथ देगी ही, यदि कॉंग्रेस तथा दूसरे लोग भी मिलकर काम करेगे तो इसमे शक नही कि बहिष्कार पूरा हो सकेगा। किन्तु उन लोगो के विचार मे बहिष्कार का अर्थ इतना ही था कि इस कमीशन के सामने आकर कोई अपनी राय न दे और न दूसरे किसी प्रकार से इसके काम मे मदद पहुँचाये। पर हम बहिष्कार का अर्थ इससे अधिक लगाते थे। हम जनता को भी इस बहिष्कार मे शरीक करना चाहते

थे। वह तभी हो सकता था जब बहिष्कार का रूप विरोधी प्रदर्शन का हो जाय। हमने उनसे कहा कि आप लोग कमीशन के सामने मत जायें और न दूसरी तरह से उसकी कोई मदद करें, हम लोग प्रदर्शन द्वारा जनता के असन्तोष को दिखला देंगे। पर अली इमाम जनता के रोष और प्रदर्शन से बहुत घबराते थे। यद्यपि इस चीज को उन्होंने बहुत पसन्द नहीं किया तथापि कमीशन से इतने असन्तुष्ट थे कि इस बात को मान लिया।

जो बात बिहार में थी वही सारे देश में थी। सभी दल के लोग कमीशन के सम्बन्ध में कहने लगे कि इसमें किसी एक भी हिन्दुस्तानी को स्थान न देकर ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों का बड़ा अपमान किया है, इसलिए वे इस कमीशन के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करेंगे। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कमीशन में किसी भारतीय को स्थान तो न दिया, पर इतना कह दिया कि कमीशन के सलाहकार की तरह से कुछ लोग उसके साथ रहेंगे और हर सूबे में इस प्रकार के सलाहकार नियुक्त किये जायेंगे। हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो ब्रिटिश सरकार का साथ देने को हमेशा तैयार रहते हैं, चाहे सरकार जो कुछ भी करे। इस मौके पर भी ऐसे लोग उसे मिल ही गये। पर यह एक सन्तोष का विषय है कि किसी भी राजनीतिक दल की ओर से कोई आदमी शरीक न हुआ।

कमीशन को १९२८ में आना था। उसके सामने पेश करने के लिए गवर्नमेण्ट मसाला तैयार करने लगी। दूसरे लोग उसके बहिष्कार की बात करने लगे। इसी बीच में मद्रास में होनेवाली कांग्रेस का समय आ पहुँचा। डाक्टर अनसारी सभापति चुने गये। महात्माजी कांग्रेस में गये। कांग्रेस का यह अधिवेशन एक प्रकार से महत्त्व रखता है। साइमन-कमीशन के आने की बात देश के सामने थी ही। कांग्रेस ने सोचा कि केवल विरोध करना ही काफी नहीं है। इसलिए उसने निश्चय किया कि एक ऐसी कमिटी मुकर्रर की जाय जो और सब दलों के लोगों के साथ मिलकर भारत के लिए एक विधान तैयार करे। यह विधान साइमन-कमीशन के सामने पेश करने के लिए नहीं था, पर यह सोचा गया कि इसके द्वारा हम अपने विचारों और माँगों को देश के सामने रख सकेंगे तथा सब दल मिलकर इसे मंजूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार को मजबूर कर सकेंगे।

मद्रास-कांग्रेस में भी पूर्ण स्वतंत्रता-सम्बन्धी एक प्रस्ताव पेश हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू कुछ दिनों तक योरप में रहकर हाल ही में वापस आये थे। वह इसके बड़े समर्थक थे। उन्होंने ही इसे विषय-निर्वाचिनी समिति में जोर लगाकर पास कराया। मैंने इसका विरोध किया। मेरा विचार था कि हमको कोई ऐसा प्रस्ताव नहीं पास करना चाहिए जिसको हम कार्यान्वित करने के लिए तैयार न हों। उस समय मैं देश में कोई ऐसी तैयारी भी नहीं देखता था, जिसके बल पर यह भरोसा किया जाय कि हम इस ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु यह प्रस्ताव बहुमत

से पास हो गया। मगर अभी यह एक प्रस्ताव के रूप मे ही था। दो वरसो के वाद, लाहौर-कॉग्रेस मे, यह कांग्रेस के विधान मे उसका ध्येय बना।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता-सम्बन्धी एक प्रस्ताव भी, कॉग्रेस के सामने पेश करने के लिए, विषय-निर्वाचिनी समिति ने स्वीकार किया। उसमे और-और वातो के अलावा गोवध के सम्बन्ध मे यह कहा गया था कि मुसलमानो को इसका पूरा हक है और वे जहाँ चाहे ऑख बचाकर गोवध कर सकते है। यही वात श्री ऐयगर पहले भी कहा करते थे। अब यह बात कांग्रेस के प्रस्ताव-रूप मे आयी। मैंने समझा कि चाहे इसका औचित्य जो हो, हिन्दू जनता इसको कदापि न मानेगी, यदि मुसलमान इस हक का इस्तेमाल करना शुरू करेंगे तो इसका नतीजा, बहुत बडे पैमाने पर वलवा-फसाद के सिवा, दूसरा कुछ न होगा, यह किसी तरह से देश के लिए हितकर न होगा। गाधीजी विषय-निर्वाचिनी मे नही आये थे। जब श्री ऐयगर ने कॉग्रेस के पहले ही यह बात चलाई थी तो मैंने गाधीजी को इसी आशय का पत्र लिखा था। इसलिए महात्माजी पहले से ही इस प्रश्न के दोनो पहलुओ को जानते थे। जब विषय-निर्वाचिनी ने इसे प्रस्ताव-रूप मे स्वीकार कर लिया तो मैंने जाकर उनसे कहा। वह स्वय उसकी दूसरी बैठक मे आये। उनके कहने से इस पर पुनर्विचार किया गया। प्रस्ताव का रूप कुछ बदल कर ऐसा बनाया गया जो सवको स्वीकार हो जाय। पर मै जानता हूँ कि कुछ मुसलमान भाइयो को यह बहुत बुरा लगा। आपस के मतभेद की जो खाई बन गयी थी वह और भी चौडी हो गयी!

६९—लंका की यात्रा

मेरे घर की स्त्रियो की इच्छा हुई कि मद्रास-कॉंग्रेस के समय उधर से ही वे तीर्थाटन भी करती आवे, क्योकि रामेश्वरजी वहाँ से करीब है। मेरे साथ भाई साहव की धर्मपत्नी, मेरी स्त्री और कई अन्य मित्रों के घर की महिलाएँ मद्रास गयी। जाने के समय हम लोग गोदावरी-स्नान के लिए राजमहेन्द्री मे ठहर गये थे। कॉग्रेस के अधिवेशन के बाद मदुरा, रामेश्वर आदि तीर्थों मे और लोगो के साथ गये। रामेश्वरजी के दर्शन के बाद हम लोग लका चले गये। घर के लोगो को वही छोड दिया। लका जाने की एक सुविधा यह भी थी कि उन दिनो श्री रामोदारदासजी वहाँ लानिया के एक महाविद्यालय मे बौद्ध-ग्रन्थो का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने, कई वरसो तक छपरे मे कॉंग्रेस का काम करके और कई वार जेल-यात्रा करने के वाद, बौद्ध-ग्रन्थो के अध्ययन के लिए वहाँ जाने का निश्चय किया था। उनको वहाँ सस्कृत पढाने तथा पाली मे त्रिपिटकादि ग्रन्थो के अध्ययन का सुअवसर मिला। कुछ दिनो के वाद, बौद्धधर्म मे दीक्षित होकर, वह श्री राहुल साकृत्यायन के नाम से मशहूर हुए और भिक्षु हो गये। उस समय वह केवल अध्ययन कर रहे थे, वाजाव्ता भिक्षु नही वने थे।

जव हम लोग वहाँ गये, उन्होने लका के मुख्य-मुख्य स्थानो मे हमे ले जाने का प्रवन्ध किया। हमने भाडे पर एक लारी ली और कई दिनो तक वहाँ घूमते-फिरने

रहे। यह हम लोगो के लिए पहला ही अवसर था कि इस सुन्दर टापू मे हम भ्रमण कर रहे थे। टापू की खूबसूरती और हरियाली ने हम लोगो को मुग्ध कर लिया। कडी के सुन्दर मदिर मे जाकर हमने दर्शन किया। वहाँ से नूरएलिया के पहाड पर जाकर एक रात वितायी। वहाँ से सीताएलिया गये। कहा जाता है कि यही पर रावण ने श्री जानकीजी को कैद करके अशोकवाटिका मे रखा था। वहाँ जाते समय एक विचित्र चीज हम लोगों ने देखी। सीताएलिया, नूरएलिया से, कुछ दूर है। नूरएलिया पहाड की चोटी है और सीताएलिया पहाड के नीचे है। इसके चारो ओर पहाड है। ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति ने मानो एक कटोरा वना दिया है, जिसकी दीवारे पहाड की है और जिसके पेंदे मे एक छोटा-सा झरना है, वही एक छोटा मदिर-सा है जहाँ श्री जानकीजी कैद की गयी थी। पहाड से उतरने मे मोटर को कई वार चक्कर लगाना पडता है। उतरते समय हमने देखा कि कुछ दूर तक चारो तरफ फैला हुआ रक्ताशोक का जगल है। पहाड काटकर जो सडक वनी थी उसकी वगल मे दीवार की तरह पहाड खडा था। उस दीवार मे कई तरह की मिट्टी या पत्थर देखने मे आते थे। उसमे एक तह, जो प्राय दो-तीन फुट चौडी थी, ऐसी मिट्टी की थी जो विलकुल राख-जैसी थी। हमने इस मिट्टी को खोदकर देखा। ऐसा मालूम होता था कि जैसे ऊपर-नीचे पथरीली मिट्टी की तह है और वीच मे यह एक तह राख की है। अशोक के पत्ते और राख हम अपने साथ भी लाये थे। इनको देखकर रामायण मे वर्णित अशोकवाटिका और हनुमानजी द्वारा लका के जलाये जाने की वात याद आ गयी।

अनेक स्थानों को—जिनमे एक सुन्दर गुफा भी थी जिसमे वहुत प्राचीन, पर सुन्दर, चित्र वने थे—देखते हुए हम लोग अनुराधपुर मे पहुँचे। यहाँ एक वहुत वडा स्तूप है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र महेन्द्र ने, यही पर आकर, गया से लायी हुई महावोधि वृक्ष की एक शाखा लगायी थी। हम लोग वहाँ रात मे नव वजे के करीव पहुँचे थे। पीपल के एक वृक्ष के पास वौद्धो की धार्मिक सभा हो रही थी। उसमे एक भिक्षु कुछ उपदेश कर रहे थे। दृश्य वहुत ही सुन्दर था। हृदय पर उसका वहुत असर पडा। हम उपदेश को समझ तो न सके, पर वहाँ वैठी हुई श्रोतामडली वीच-वीच मे जो 'साधु! साधु' कह उठती थी उसे हम समझ सके। लोगो ने वताया कि पीपल का वह वृक्ष वही है, जिसे महेन्द्र ने लाकर वहाँ लगाया था। यो तो वोधगया मे भी जो महावोधि-वृक्ष है वह भी उस समय का नही है, पर उसी स्थान पर उसी वृक्ष का वशज है। उसी तरह अनुराधपुर का महावोधि-वृक्ष भी महेन्द्र का ही लगाया हुआ नही है, उसका वशज है जो उसी स्थान पर आज तक किसी न किसी तरह से कायम है। पर इससे भी अधिक चमत्कार और आश्चर्य की वात हमको यह सुनायी गयी कि वहाँ जो दीप जल रहा था वह भी महेन्द्र का जलाया हुआ है! उस समय से आज तक वह दीप कभी वुझा नही है। वौद्धो ने उसे वाईस-तेईस सौ वरसो से वरावर जलाये रखा है! यदि यह सच है तो शायद दुनिया मे ऐसी कोई दूसरी अग्नि-शिखा न मिलेगी जो दो हजार वरसो से भी ज्यादा समय से वरावर जलती आ रही हो।

सीलोन की यात्रा समाप्त करके हम लोग रामेश्वरजी लौटे। वहाँ से परिवार के लोगो को लेकर, जिन तीर्थ-स्थानो मे पहली बार न जा सके थे उनमे होते हुए, छपरे वापस आये। छपरे आकर हमने यह सुना कि हमारी गैरहाजिरी मे ही भाई साहब ने फोते मे नश्तर लगवा लिया था। कुछ थोडी चीनी उनके पेशाब मे आती थी। इससे घाव भरने मे कुछ दिक्कत होने लगी। बीच मे एक समय तो ऐसा आ गया था कि सब लोग बहुत चिन्तित हो गये थे। हम लोग सफर मे थे, इसलिए हम लोगो को तार द्वारा भी खबर नही दी जा सकती थी। पर ईश्वर की दया से, हमारे लौटने के पहले ही, चिन्ता की अवस्था बीत चुकी थी। अब वह अच्छे हो रहे थे। थोडे दिनो मे फिर बिलकुल चगे हो गये।

७०—मेरी योरप-यात्रा

बाबू हरिजी के मुकदमे मे डुमरॉव के महाराज ने प्रिवी कौन्सिल मे अपील कर दी थी। अब अपील की पेशी का समय नजदीक आ गया था। बाबू हरिजी चाहते थे कि मै भी वहाँ के बैरिस्टरो की मदद के लिए विलायत जाऊँ। मै पहले ही कह चुका हूँ कि उन्होने असहयोग के आरम्भ के समय से ही मुझसे वचन ले लिया था कि उनके मुकदमे मे मै बराबर काम कर दूँगा। इसी वचन की पूर्ति मे हाइकोर्ट की पेशी के समय भी मैने काम किया था। अब विलायत जाने की बारी आई तो इनकार नही कर सकता था। और, कुछ यह भी लालच हुई कि इसी बहाने विदेश की यात्रा भी हो जायगी। इसलिए, अब हम वहाँ जाने की तैयारी करने लगे।

हमारा भतीजा जनार्दन, जो लोहा बनाने का काम सीखने वहाँ गया था, हाल मे ही लौटा था। ताता-कम्पनी (जमशेदपुर) मे उसे नौकरी भी मिल गयी थी। वहाँ के रहन-सहन के सम्बन्ध मे उससे तथा दूसरे मित्रो से सलाह करके मैने सर्दी के लिए गर्म कपडे बनवाये। मै बराबर केवल खादी ही पहना करता था। वहाँ जाकर भी इस नियम को भग करना मैने उचित न समझा। इसलिए कशमीरी ऊन के कपडे ही खादी-भडार द्वारा मँगाकर बनवाये। कपडे की काटछॉट भी देशी रही। अँगरेजी पोशाक न पहनने का ही निश्चय कर लिया। फलस्वरूप दो बाते हुई। बहुत कम खर्च मे काम के लायक काफी कपडे तैयार हो गये। पोशाक चूँकि हिन्दुस्तानी थी, इसलिए उसमे कुछ भूल अथवा भद्दापन भी हो तो कोई विदेशी समझ नही सकता था। अँगरेजी पोशाक और रहन-सहन अख्तियार करने पर उन लोगो के फैशन और रीति-नीति के अनुसार ही चलना-फिरना, कपडा पहनना और खाना-पीना पडता है। अपने रहन-सहन कायम रखने से यह सब झझट दूर हो जाती है। विशेषकर मुझ-जैसे आदमी के लिए यह झझट कुछ कम नही है, क्योकि मैने कभी जीवन-भर मे कपडे और फैशन पर ध्यान ही नही दिया है। हमने कपडे को शरीर गर्म रखने और लज्जा-निवारण का साधनमात्र समझा है। इसी नीति को बराबर बर्तता आया हूँ। ४५-५० की अवस्था मे नये सिरे से विदेशी फैशन को स्वीकार करके उसके तह-पेच को समझना

और कपडे पहनना तथा समय-समय पर उसे बदलते रहना मेरे लिए कम कठिन काम न होता। और, ऐसा करने से काफी खर्च भी बढ जाता। इसलिए, मैंने वहाँ भी अपनी ही चाल चलना बेहतर समझा। ऐसा ही प्रबन्ध भी किया।

बाबू हरिजी चाहते थे कि मुझे हर तरह से आराम रहे—इँगलैंड मे भी, जहाँ तक हो सके, उनका काम करते हुए, आराम से ही रहूँ। इसलिए उन्होने आग्रह किया कि मै अपने साथ अपना नौकर भी ले जाऊँ और बराबर फर्स्ट-क्लास मे ही सफर करूँ। मेरे सभी दोस्त, जिनको इँगलैंड का कुछ भी अनुभव था, इसको गैर-जरूरी समझते थे, पर उन्होने नही माना। मैंने गोवर्धन को साथ ले लिया। मार्च के आरम्भ मे ही, एक शुभ दिन को, जिसे उनके ज्योतिषी ने निश्चित कर दिया था, मै घर से रवाना होकर बम्बई पहुँचा। वहाँ खादी-भडार मे कुछ और कपडे तैयार करने को कह दिया। वहाँ से, महात्मा गाधीजी से विदा लेने के लिए, साबरमती चला गया। रवाना होने के दिन भाई साहब भी बम्बई पहुँच गये। कैसर-हिन्द जहाज मे बम्बई मे चला।

यह मेरी पहली विदेश-यात्रा थी। मै यहाँ भी उन लोगो के ससर्ग मे बहुत न पडा जो विदेशी ढग से रहते और खाते-पीते है। जाने के पहले एक दिन श्री सच्चिदानन्द सिंह (अब डाक्टर) ने मुझे अपने यहाँ अँगरेजी ढग से टेबुल पर खिलाया था। मैंने काँटा-चमचे का इस्तेमाल देख लिया था। इत्तिफाक से जहाज पर मेरे कमरे मे एक पारसी सज्जन थे। वह विदेश मे सैर करने के लिए ही जा रहे थे। उनसे तो जान-पहचान हो ही गयी, पर दूसरे कोई मुलाकाती भाई या बहन उस जहाज मे नहीं थे। मेरी आदत भी कुछ ऐसी है कि मै किसी से स्वत मुलाकात या जान-पहचान करने मे बहुत सकुचाता हूँ। इसलिए जहाज पर किसी भी देशी या विदेशी यात्री से एक-दो दिनो तक मुलाकात या बातचीत नही हुई। पर इतना मै देखता था कि मेरी हिन्दुस्थानी पोशाक की ओर बहुतेरों की आँखे जाती थी। मै डेक पर अपनी कुर्सी रखकर कुछ पुस्तके पढता अथवा टहलता रहता। समुद्र बहुत शान्त था। इसलिए किसी किस्म की मतली, चक्कर वगैरह मुझे नही आया।

दो दिनों के बाद एक अँगरेज सज्जन, जो आइ० एम० एस० (इडियन मेडिकल सर्विस) के पेन्शन पाये हुए अफसर थे, मेरे नजदीक आये। मुझसे वह बाते करने लगे। मेरे खद्दर के कपडे और एकान्त मे चुप बैठे रहने से उनका और उनकी स्त्री का ध्यान आकर्षित हुआ था। पेन्शन पाने के बाद वह किसी कमीशन के मेम्बर होकर फिर हिन्दुस्थान आये थे। अपना काम पूरा करके वह वापस जा रहे थे। दोनो प्राणी बहुत ही अच्छे मिजाज के थे। वे गाधीजी के सम्बन्ध मे कुछ जानते थे। खद्दर के सम्बन्ध मे भी अखबारो मे कुछ पढा था। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्थान मे गाधीजी को देखते, पर इसका सुअवसर न मिल सका। जब बातचीत से उनको मालूम हो गया कि गाधीजी के साथ मेरा कैसा सम्बन्ध है तो उनकी दिलचस्पी और भी बढ गयी। हमसे वे बराबर बातचीत किया करते। उनको यह जानकर कौतूहल हुआ कि मै मासाहारी

नही हूँ। वे स्वय भी मासाहारी न थे। उन्होने मुझसे यह कहकर मुझे चकित कर दिया कि हिन्दुस्थान मे शाकाहारी होकर रहना बहुत कठिन है, क्योकि यहाँ शाकाहारी के उपयुक्त खाद्य पदार्थ बहुत कम मिलते है। उन्होने मुझे बतलाया कि इँगलैड और तमाम योरप मे ऐसे बहुतेरे रेस्तराँ है जिनमे शाकाहारी भोजन मिल सकता है। वहाँ सब्जी बहुतायत से मिल सकती है—दूध और दूध मे बने हुए बहुत तरह के खाद्य-पदार्थ मिल सकते है। पर वहाँ के लोग अडे को भी शाकाहार मे ही दाखिल करते है। शाकाहारी खूब अडे खाते है। जो लोग पक्के शाकाहारी है वे दूध और दूध के बने पदार्थ भी नही खाते, क्योकि वे दूध को भी जानवर के खून का एक परिवर्तित रूप ही मानते है। इसलिए, उन्होने मुझे चेता दिया कि इंगलैड मे यदि मुझे किसी रेस्तराँ मे खाना पडे, तो खास तौर से मुझे कह देना होगा कि मुझे अडे से भी परहेज है, तभी वह बिना अडे के भोजन देगे, अन्यथा प्राय सभी चीजो मे किसी न किसी रूप मे अडे का अश रहेगा ही। साथ ही, उन्होने यह भी कहा कि बिना अडे के बिस्कुट इत्यादि भी सब जगह नही मिलते, पर यदि कोई दूकानदार कहे कि बिस्कुट या खाने की अन्य वस्तु बिना अडे के बनी है, तो मुझे उसकी बात मान लेनी चाहिए, क्योकि उसका स्वार्थ सच बोलने मे ही है। अडा महँगा पडता है। ये सब बाते मेरे लिए नयी थी। पर उस दम्पती की मुलाकात ने मेरे लिए इस प्रकार की बहुत-सी जानने लायक बाते बता दी। प्रतिदिन के जीवन के काम मे आनेवाले नुस्खे उन्होने बता दिये। मै अपने नियम के अनुसार वहाँ भी रह सका।

रास्ते मे मुझे ऐसा मालूम हुआ कि जब तक जहाज स्वेज नहर मे गुजरता है तब तक टामस-कुक-कम्पनी की ओर से ऐसा प्रबन्ध रहता है कि जो मुसाफिर चाहे, मोटर द्वारा जाकर 'कैरो' नगर और उससे थोडी दूर पर स्फिक्स को देख आ सकता है। मैने यह देख लेना अच्छा समझा। मेरे ही जैसे कुछ और मुसाफिर भी थे, जिन्होने टामस-कुक के साथ वहाँ जाने का प्रबन्ध कर लिया। हम लोग बहुत सवेरे ही, करीब पाँच बजे, जहाज से उतरकर मोटर पर कैरो चले गये। कैरो मे पहुँचने पर, मुँह-हाथ धोने और कुछ हल्का नाश्ता कर लेने के लिए, एक होटल मे हम लोग ले जाये गये। उसके बाद कैरो का अजायबघर देखने गये। वही पिरामिडो की खुदाई मे निकली हुई चीजे सुरक्षित रखी गयी है। यह बडा सुन्दर सग्रह है। प्राचीन मिस्र के कितने बडे नामी और प्रतापी बादशाहो के शव (ममी), जो पिरामिडो मे निकले है, वहाँ सुरक्षित है। अब देखने मे वे काले पड गये है, पर मनुष्य का चेहरा और हाथ-पैर तो ज्यो के त्यो है। वे जिस महीन कपडे मे लपेटकर गाडे गये थे वह कपडा भी अभी तक वैसे ही लिपटा हुआ है। यह कपडा बहुत ही बारीक हुआ करता था। सुना जाता है कि यह भारतवर्ष से ही जाया करता था। उन दिनो के वहाँ के निवासियो का विश्वास था कि आराम के सभी सामान यदि मुर्दे के साथ गाड दिये जायँ तो परलोक मे भी उनसे वह आराम पा सकता है। इसी विश्वास के अनुसार, पिरामिडो के अन्दर, शव के साथ, सभी आवश्यक वस्तुएँ गाडी जाती थी—पहनने के कपडे और गहने, बैठने

के लिए चौकी इत्यादि, खाने के लिए अन्न, शृङ्गार के सामान, सवारी के लिए रथ और नाव भी। वे सब चीजे एक से एक अच्छी बनी है। उनसे जान पडता है कि उस समय भी लोग सोने का व्यवहार जानते थे।

सुना है कि इसी प्रकार की खुदाई से मोहन-जोदडो (सिन्ध) मे जो गेहूँ निकला वह बो देने पर उग गया। जादूघर के सग्रह और विशेषकर प्रतापी राजाओ के शव देखकर मनुष्य के जीवन की अनित्यता साफ-साफ दीखने लगी। ऐसे दृश्य देखकर यह मालूम होने लगता है कि हम जो कुछ अपने बडप्पन के मद मे करते है, वह सब कितना तुच्छ और अस्थायी है। जिन बादशाहो के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उन्होने अपने जमाने मे बहुत जुल्म किया था उनके शव उसी तरह आज भी पडे है। जो विशेष करके वहाँ का इतिहास नही पढता उसे उनके नामो तक की अब खबर नही है। मैने कुछ चित्र खरीदे। यद्यपि अजायबघर का सफर बहुत अच्छा रहा तथापि मेरे दिल पर क्षणभगुर जीवन की असारता का गहरा असर पड़ा। मै वहाँ से उदास ही निकला।

उस म्युजियम को देखने के बाद हम लोगो को शहर की कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध इमारते और दूसरी मशहूर जगहे दिखलायी गयी, जिनमे एक बडी और सुन्दर मस्जिद भी है। मिस्र मे मुसलमान पूरब रुख मुँह करके नमाज पढ़ते है, क्योंकि वहाँ से काबा पूरब पडता है। यह हिन्दुस्थानी के लिए कुछ अजूबा-सा मालूम पडता है। वहाँ की मस्जिद भी इसी कारण से हिन्दुस्थान की मस्जिदों जैसी पूरब रुख की न होकर पश्चिम रुख की होती है। यह बडी मस्जिद भी वैसी ही थी। वहाँ की भाषा अरबी है, पर योरपीय भाषाओं मे से अधिक प्रचार वहाँ फ्रेच का है। लोग साफ मालूम पडते थे। पुलिसवाले तुर्की फेज पहने हुए थे। कैरो यद्यपि पुराना शहर है, तथापि जिस हिस्से को हमने देखा वह बहुत कुछ आज-कल के शहरो जैसा ही था।

दोपहर का भोजन करके हम लोग कुछ दूर तक मोटर पर पिरामिड देखने गये। एक स्थान पर पहुँचकर मोटर छोड देनी पडी। ऊँटो पर सवार होकर पिरामिडो तक जाना पडा। मेरे लिए ऊँट की सवारी बिलकुल नयी थी, क्योकि मै कभी हिन्दुस्थान मे ऊँट पर न चढा था। पर एक बार चढ जाने पर कोई विशेष बात न हुई। पिरामिडो को नजदीक जाकर देखा। ये बहुत ऊँची चौखूँटी इमारते है। हमारे देश मे ईंटो का पजावा जैसे वनता है वैसे ही ये पत्थरो के बहुत बडे-बडे चौरस किये हुए टुकडो से वने है। पजावे की तरह ही नीचे की चौडाई ज्यादा है जो ऊपर की ओर कम होती गयी है। ईंटो का पजावा तो छोटा होता है, ये बहुत बडे और बहुत ऊँचे है। जिस परिमाण मे ये ऊँचे और चौड़े है उसी परिमाण मे इनमे लगी हुई पत्थर की ईंटे भी पजावे की ईंटो से लम्बाई-चौडाई और मोटाई मे अधिक है। मेरा अनुमान है कि एक-एक ईंट शायद चार-पाँच हाथ लम्बी होगी। इसी के अनुसार उसकी चौडाई और मोटाई भी होगी। न मालूम कितने दिनो मे एक-एक ईंट काटकर इतनी बडी इमारत तैयार हुई होगी। इसमे कितने गरीबो ने अपनी जिन्दगी का कितना

हिस्सा लगाया होगा ? यह सब किसी एक राजा के नाम को उसके मरने के बाद भी, कायम रखने के लिए किया गया था। नाम तो अब केवल पुस्तको मे रह गया है। ये इमारते, जिनसे मनुष्य कोई लाभ नही उठा सकता, अपनी जगह पर आज भी, हजारो बरसो के बाद ज्यो की त्यो, खडी है। उनमे से अनेको के अन्दर की खुदाई हुई है। उन्ही मे से निकले हुए सामान का सग्रह कैरो के अजायबघर मे है। मुझे स्मरण है कि हाल मे हम लोगों ने अखबारो मे पढा था कि कब्रे खोदनेवाले की मृत्यु हो गयी थी। जिस किसी ने यह प्रयत्न किया वह मर गया। खोदनेवाला मर तो गया, पर वहाँ की खुदाई से बहुत सामान निकला।

स्फिक्स एक अजीब चीज है। मनुष्य का मुंह और शरीर जानवर का है। एक बहुत बडी मूर्ति उस रेगिस्तान मे इसी शकल की बनी पडी है। सुनते है कि प्राचीन काल मे इससे प्रश्न किये जाते थे और यह भविष्य की बाते बता देता था। पर यह जो कुछ कहता था, उसका समझना बहुत कठिन था। अब ये बाते तो नही है, पर यह मूर्ति यो ही खडी उस प्राचीन समय का स्मरण कराती रहती है।

यह सब देखकर हम लोग सध्या तक वापस आकर रेल पर सवार हुए। पोर्ट-सईद मे प्राय ११ बजे रात के करीब पहुँचे। वहाँ जहाज पहुँच गया था। हम सब अपने-अपने कमरे मे जाकर सो रहे। खाना-पीना रास्ते मे रेल मे ही हो चुका था।

भूमध्यसागर मे पहुँचने पर कुछ सर्दी लगने लगी। लाल समुद्र तो बहुत गर्म था—अरब-सागर से भी अधिक। भूमध्यसागर मे हवा भी जोर से चलती थी, इसलिए जहाज कुछ हिलता था। मुझे एक दिन कुछ मतली-सी आयी, पर अधिक नही। रास्ते मे जो देखने को मिला, मै सब कुछ देखता गया। इटली के नजदीक सिसिली टापू के पास होकर ही जहाज गुजरा। वहाँ का शहर कुछ दूर पर देखने मे आया। पहाड तो साफ नजर आता था। कई दिनो के बाद हम लोग मार्सेल्स (फ्रान्स) पहुँच गये। रास्ते मे कोई विशेष बात नही हुई। कभी-कभी कोई टापू नजर आ जाता था तो सब लोग उसे देखने लगते थे। समुद्र-यात्रा मे चारो ओर पानी ही पानी दीखता है। इससे दिन-रात पानी देखते-देखते एक-दो दिनो के बाद ही जी ऊब जाता है। अगर कही कोई दूसरा गुजरता हुआ जहाज नजर आ गया या जमीन देखने मे आ गयी, तो बहुत आनन्द होता है। सभी मुसाफिर उसे इस तरह देखने लगते है मानो उन्होने कभी जमीन देखी ही नही है।

हम लोग मार्सेल्स मे सवेरे ही उतरे। वहाँ एक होटल मे ठहर गये। वहाँ भी कुक-कम्पनी की कृपा से शहर के सभी देखने योग्य स्थानो को देख लिया। टामस-कुक का प्रबन्ध बहुत अच्छा होता है। यात्रियो को उनका दुभाषिया मुख्य-मुख्य स्थान दिखला देता है। उनकी अपनी मोटर-गाडी रहती है। ऐसा अच्छा प्रबन्ध रखते है कि निश्चित समय के अन्दर सब कुछ आदमी देख लेता है। सवेरे जहाज से उतरते ही, रात मे रवाना होनेवाली गाडी मे, अपने लिए जगह मैने ठीक करा ली थी।

दिन-भर घूम-घाम कर रात की गाड़ी से पेरिस के लिए रवाना हो गया। पेरिस से गाड़ी बदलकर कैले पहुँचा। वहाँ फिर जहाज पर चढ़कर सन्ध्या होते-होते डोवर में उतर गया। डोवर से रेल पर चलकर रात के प्रायः ९ बजे लंदन पहुँच गया। वहाँ मैं मार्च के तीसरे सप्ताह में पहुँचा था पर अभी तक काफी सर्दी थी। स्टेशन पर पहले से वहाँ पहुँचे हुए मित्र मिल गये। मैं सीधे उस मकान में चला गया जो पहले से किराये पर लिया गया था। वह गोल्डर्सग्रीन में था। हम लोग कुछ दिनों तक वहीं ठहरे रहे।

वहाँ पर सब प्रबन्ध पहले से ही था। श्री महावीरप्रसाद बैरिस्टर और श्री कुँवरबहादुर पहले से ही वहाँ ठहरे थे। इसलिए वहाँ घर-जैसा ही मालूम हुआ। फिर गोवर्धन के मेरे साथ आ जाने से खाना भी हिन्दुस्तानी मिलने लगा। जैसे यहाँ हम लोग भात-दाल रोटी-तरकारी खाते हैं वैसे ही वहाँ भी खाने लगे। मैं तो मुकदमे की पैरवी के लिए गया था। जिस रात मैं पहुँचा, लोगों से कुछ बातचीत करके सो गया। पहुँचते ही मालूम हो गया कि सवेरे उठकर बैरिस्टर के यहाँ जाना होगा क्योंकि उसने आपस में बातचीत करने के लिए समय दिया है। इसलिए लंदन पहुँचने के बारह घंटों के अन्दर ही मैं काम में जुट गया। और जब तक मुकदमा खतम न हुआ दिन-रात उसी के काम में लगा रहा।

७१—लन्दन में मेरा कार्यक्रम और मुकदमे की पैरवी

मेरा कार्यक्रम वहाँ यह था कि मैं अपनी आदत के मुताबिक बहुत सवेरे उठता। वहाँ लोग सवेरे बहुत देर तक सोये रहते हैं। अधिकतर रात की पहली पहर में ही जागकर काम करते हैं। मैं ऐसा कभी नहीं करता। वहाँ भी ऐसा न कर सका। जब सब लोग सोये ही रहते थे मैं मुँह-हाथ धोकर और स्नान कर कपड़े पहन कमरे में बैठ जाता और मुकदमे के कागज पढ़ने लगता।

सब लोग सवेरे प्रायः नव साढ़े नव बजे तैयार होते। उस समय तक मैं प्रायः दो घण्टे काम कर चुका होता था। उसके बाद नाश्ता करके प्रायः दस बजे लाइब्रेरी में चला जाता। वहाँ कानून की पुस्तकें पढ़ने लगता। वहाँ के हमारे एटर्नी ने लाइब्रेरी में हमारे लिए सुविधा करा दी थी। इससे अँगरेजी कानून की हर तरह की पुस्तकें देखने को मिल जातीं। एक बजे दिन तक इस तरह काम करके मैं नजदीक के ही एक शाकाहारी लोगों के रेस्तराँ में चला जाता। वहाँ कुछ फल रोटी-दूध इत्यादि खा लेता। कहने से सब कुछ बिना अंडे के वह बना देते। दो-एक दिनों में तो वहाँ के आदमियों ने मुझे पहचान लिया, इसलिए पहुँचने पर कुछ कहने की भी जरूरत नहीं पड़ती। फिर सन्ध्या तक कोर्ट में काम करके प्रायः छः बजे वहाँ से वापस आता। आना-जाना रेल से होता जो जमीन के भीतर से चलती है। घर पर सन्ध्या का भोजन करके शाम को कुछ देर के लिए टहलने जाता और लौटकर कुछ काम करके सो जाता। किसी-किसी दिन बैरिस्टरों के साथ सलाह-बात होती। उसके अनुसार इस कार्यक्रम

मे तबदीली हो जाती। इस तरह प्राय दो महीने बीते। अब बाबू हरिजी भी पहुँच गये। इस बीच मे मुझे कुछ दिनों के लिए हाइथ मे जाकर रहना पडा था।

हमारी तरफ के सीनियर बैरिस्टरो मे एक श्री लक्समूर थे, जो थोडे ही दिनो के बाद वहाँ के हाइकोर्ट के जर्ज हो गये। उनका घर था हाइथ के पास एक गाँव मे। ईस्टर की छुट्टी मे वह अपने घर गये। हमारी ओर से उनसे कहा गया कि यह मुकदमा बहुत पेचीदा है, यदि आप कहे तो कागज पढने मे आपकी सहायता करने के लिए हममे से कोई आपके साथ वहाँ जाय। पहले वह राजी नही होते थे, पर बहुत कहने-सुनने पर वह राजी हो गये। मै हाइथ मे ठहरा। वहाँ से उनका घर सात-आठ मील की दूरी पर था। रोज सवेरे नव बजे उनकी मोटर आकर मुझे ले जाती। साढे नव बजे से हम लोग काम करने बैठ जाते। बीच मे एक घटा दोपहर के भोजन के लिए और आधा घटा चाय के लिए छोडकर प्राय. साढे छ-सात बजे तक काम करते रहते। मै फिर हाइथ उसी तरह चला आता। दोपहर का खाना उन्ही के यहाँ खाता। उनकी पत्नी को मेरे शाकाहारी होने की बात मालूम हो गयी थी। उन्होंने उसके लिए प्रबन्ध कर लिया था। प्राय पन्द्रह दिनो तक वहाँ रहा। काम के सिलसिले मे उनसे बहुत घनिष्ठता हो गयी।

हमारे सबसे सीनियर बैरिस्टर श्री अपजौन थे। उनकी अवस्था उस समय पचहत्तर से अधिक हो गयी थी। अब भी वह काफी परिश्रम कर लेते थे। स्वास्थ्य उनका बहुत अच्छा था। मुकदमे के कागज प्राय पन्द्रह हजार पृष्ठो मे छपे थे। बाते भी बहुत पेचीदा थी। कही-कही एक ही कागज पचीस-तीस पृष्ठों का होता, पर उसमे हमारे काम की केवल तीन-चार ही पक्तियाँ मिलती। हम लोगो के पास पटने से ही पूरा-पूरा नोट तैयार था। हम समझते थे कि हम अगर बैरिस्टरो के साथ बैठे और ऐसे दस्तावेजो के आवश्यक भाग की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर दे तो उनका समय बच जायगा। इसलिए ही हम चाहते थे कि हमारे साथ वे कागज पढे। पहले कोई राजी नही होता था, पर मिस्टर लक्समूर राजी हो गये। मिस्टर अपजौन नही राजी हुए। इसके लिए अलग से फीस देने को कहा। यहाँ हिन्दुस्तान मे ऐसा ही हुआ था। कागज पढने के लिए जब हममे से किसी के साथ सीनियर लोग बैठने तो उसके लिए फी घटा ८५) अलग फीस लेते। प्राय १५००० पृष्ठ इस तरह ८५) घटे के हिसाब से पढवाये गये थे। बाबू हरिजी चाहते थे कि जो खर्च पडे, यही बात वहाँ भी की जाय। पर मिस्टर अपजौन, जिनको हमारी ओर से सबसे पहले बहस करनी थी, इस पर किसी तरह राजी न हुए। उनका कहना था कि जो फीस हमको मिली है वह केवल इजलास पर बैठने या खड़े होने के लिए ही नही है, कागज पढना हमारा कर्त्तव्य है, क्योकि इसके बिना वहाँ हमारा जाना बेकार होगा, इसलिए कागज पढने के लिए अलग फीस मै नही लूँगा और मै अपना काम खुद कर लूँगा—हाँ, अगर कही किसी विषय पर नोट की जरूरत होगी तो माँगूंगा, तुम लोगों को कोई नोट देना हो तो दे देना, मै उसे देख लूँगा; यहाँ का रवाज

कागज पढने के लिए किसी दूसरे के साथ बैठने का नही है, जब कभी दूसरे लोगो के साथ राय-मशविरा करना होगा तो बुला लूँगा, उसकी उचित फीस—जो कनसल-टेशन की होती है—लूँगा।

बाबू हरिजी कुछ घबराये, क्योकि वह समझते थे कि इतना वयोवृद्ध इतने कागजो को खुद पूरी तरह शायद न पढ सकेगा और पढते-पढते घबरा जायगा, क्योकि जैसा ऊपर कहा गया है, किसी बहुत लम्बे कागज मे २५–३० पृष्ठ पढने के बाद दो-चार पक्तियाँ काम की मिलेगी और हो सकता है कि वह उन पक्तियो को लाँघकर आगे बढ जाय और यह न समझे कि यह कागज किसलिए दाखिल किया गया है। जब उनसे यह कहा गया कि आपका समय बहुत फजूल चीजो के पढ़ने मे व्यर्थ लगेगा तो उन्होने जवाब दिया कि मै एक पक्ति भी बिना पढे नही छोड़ूँगा—तुम समझते हो कि वही दो-चार पक्तियाँ जो तुम बताओगे, जरूरी है, पर बहस मुझे करनी है, हो सकता है कि मै अपनी बुद्धि और अनुभव से दो-चार पक्तियाँ ऐसी दूसरी भी निकाल लूँ जिनसे हमारा काम निकले और जिनको तुम लोगो ने गैरजरूरी समझा है, इसलिए मै अकेला ही सब पढ़ूँगा और तब जरूरत पडने पर कुछ पूछना होगा तो पूछूँगा।

इसका उत्तर कुछ नही था। बाबू हरिजी को चुप रह जाना पडा। पर वह शकित ही रहे।

प्रिवी कौन्सिल का कायदा है कि दोनो पक्ष अपनी बहस का साराश लिखकर दाखिल कर देते है। इसे केस पेश करना कहते है। केस बडी सावधानी से तैयार किया जाता है, क्योकि उसके बाहर की बातों पर बहस नही हो सकती। एक पक्ष को दूसरे पक्ष का केस, अपना केस दाखिल करने के पहले, देखने को नही मिलता। इसलिए दोनो पक्षो को, विपक्षी के केस का उत्तर भी, अपने केस मे, पहले से ही अन्दाज से दे देना पडता है। जब मिस्टर अपजौन ने हम लोगो का केस तैयार किया, हमने उसे देखा। हम सबको, विशेषकर बाबू हरिजी को, पूरा विश्वास हो गया कि उन्होने सारी पेचीदगियो को अच्छी तरह समझ लिया है और सभी कागजो को पूरा-पूरा पढ लिया है। इससे हम लोगो को पूरा सन्तोष हो गया। कानूनदाँ लोगो के बर्ताव का यह बहुत ऊँचा आदर्श मेरे देखने मे आया। मै तो इस पर मुग्ध हो गया। अफसोस के साथ कहना पडता है, अपने देश मे इतना ऊँचा आदर्श मैंने नही देखा था!!

मिस्टर अपजौन से मेरी जान-पहचान विचित्र तरीके से बढ गयी। मेरा हिन्दुस्तानी लिबास देखकर वह समझते थे कि मै या तो बाबू हरिजी हूँ या उनका कोई सम्बन्धी, जो मुकदमे की पैरवी के लिए आया है। वह मुझे वकील नही जानते थे। एक दिन 'कन्सलटेशन' मे उन्होने कुछ प्रश्न किये। मै पीछे बैठा था, मैंने उत्तर दे दिया। उन्होने मेरी ओर देखा, पर कहा कुछ नही। पीछे हममे से एक आदमी से, जो उनके यहाँ वकील की हैसियत से आया-आया करते थे, उन्होने कहा कि हम

लोगों का मवक्किल तो बडा होशियार मालूम होता है, उसने मेरे प्रश्नो का अच्छा उत्तर दिया था। इस पर हमारे सहकर्मी ने मेरे बारे मे बताया कि मै मवक्किल नही बल्कि एक वकील हूँ और अपनी वकालत छोड दी है। इससे उनका कुतूहल कुछ बढ गया। पीछे उन्होने मुझसे बहुत काम लिया। अनेक प्रकार के नोट तैयार करने की फरमाइश की। मै बराबर तैयार करके दे देता। जब मुकदमे की पेशी का समय आया तो उन्होने मुझसे पूछा, क्या तुम इजलास पर हाजिर रहना चाहते हो? मेरे 'हाँ' कहने पर बोले, यह जरूरी नही है, तुम्हारा समय दूसरे तरीके मे बेहतर उपयोग मे आवेगा, मुझे बहुत विषयो पर नोट चाहिए, तुम घर पर रहकर तैयार करो। मैने कहा, यदि मै नोट तैयार करके दे दिया करूँ और घर पर रहना जरूरी न हो तो? उन्होंने कहा, नही, नोटों के तैयार करने मे समय लगेगा, तुम हाजिर नही हो सकोगे, पर यदि तुम नोट मे देरी न करो और इजलास पर भी हाजिर रह सको तो मुझे कुछ उज्र नही है, पर नोट मे देरी मै बर्दाश्त नही कर सकूँगा। यह बात मशहूर थी कि वह बहुत बदमिजाज है, अपने विरोधी और साथी बैरिस्टरो तथा जजो से भी उलझ जाया करते है। इसलिए मै बहुत डरता था, पर मैने देख लिया कि वह मेरे नोटो से सन्तुष्ट हो जाते थे। वह टेलिफोन कर देते थे कि मै इजलास लगने के दस या पाँच मिनट पहले उनसे मिलूँ। वहाँ वह घर से ही उन विषयो को नोट करके लाते जिन पर मुझसे वह नोट लिखाना चाहते थे। मुझे वह उन नोटो को लिखवा देते। मै उसके पहले के नोट देखकर आता और उनमे जो कुछ पूछना होता, पूछ लेता। यदि मै पहले से कागज-पेन्सिल लेकर तैयार न रहता तो इस पर भी वह बिगड जाते। समय का इतना सदुपयोग करते कि एक मिनट भी बर्बाद न होने पाता।

मैने एक बात और देखी। वह हमारे देश के, विशेषकर पटने और कलकत्ते के, वकीलो और बैरिस्टरो के लिए अनुकरणीय है। जब मै वकालत करता था, मेरा अनुभव हुआ कि कोर्ट मे जाने पर जब तक हम घर लौटकर नही आते तब तक का हमारा अधिकाश समय, जो अपने मुकदमे की पेशी मे नही लगता, प्राय बेकार बरबाद हो जाता है। बार-एसोसिएशन या पुस्तकालय मे बैठकर हम लोग बहुत कम कागज अथवा पुस्तके पढते है। हम लोग अपने मुकदमे की बहस की तैयारी घर पर ही किया करते है। कोर्ट मे जब मुकदमा पेश होता है और जब तक चलता रहता है तब तक, जिसका मुकदमा रहा उसका समय तो उपयोग मे आया, पर जिन दूसरे लोगो की मुकदमे की पेशी नही हुई है वे केवल गपशप मे सारा समय बिताते है। कही-कही शतरज की बाजी भी जम जाती है। मेरा अपना अनुभव भी यही था कि वहाँ पर बैठकर कागज या पुस्तक पढना बहुत मुश्किल है, क्योकि इसके लिए वहाँ का वायुमडल अनुकूल नही रहता। जहाँ सब लोग गपशप और हँसी-मजाक कर रहे हो वहाँ कोई कैसे पढ सकता है। इसलिए मुकदमो के कागज पढने का सारा समय घर पर ही निकालना पड़ता है। मेरे पास काफी मुकदमे रहा करते थे। इसलिए मुझे

बराबर प्राय ३-४ बजे तड़के ही उठकर तैयारी करनी पड़ती थी। वहाँ मैंने देखा कि बैरिस्टर अपना सारा काम चाहे लाइब्रेरी में या अपने चेम्बर में ही पूरा करते हैं। इजलास पर जजों के बैठने के कुछ पहले ही आ जाते हैं। फिर इजलास उठ जाने के बाद भी घंटा दो घंटा बैठ जाते हैं। बीच में जब मुकदमे की पेशी से छुट्टी मिलती है, काम करते हैं। कोई-कोई तो घर पर मुकदमे के कागज ले भी नहीं जाते। यहाँ तक कि घर में कानून की पुस्तकें भी नहीं रखते। उनका विचार है कि घर तो बस घर ही है—वहाँ बालबच्चों से मिलना, बातें करना, खाना-पीना, दिल बहलाना, अथवा जी चाहे तो इच्छा के अनुसार दूसरी पुस्तकें पढ़ना चाहिए, पेशे का काम तो दिन-भर में चाहे चेम्बर में चाहे इजलास पर ही करना चाहिए। इस प्रकार दिन का पूरा समय ठीक उपयोग में आता है तथा रात और सवेरे का समय अपना होता है, जिसे हम जिस तरह चाहे अपने उपयोग में ला सकते हैं।

वहाँ के बहुतेरे वकील-बैरिस्टर सनिवार और रविवार को लंदन से बाहर चले जाते हैं। मिस्टर अपजौन बिला नागा प्रत्येक शुक्रवार की संध्या को इजलास से उठकर सीधे स्टेशन जाते थे। वहाँ से रेल द्वारा लंदन से प्राय ७० मील की दूरी पर अपने गाँव के घर में जाकर रहा करते थे। फिर रविवार की संध्या को लंदन चले आते थे। सप्ताह के अन्तिम दो दिनों को हमेशा गाँव की खुली हवा में ही बिताते थे। हम लोगों की इच्छा थी कि जब तक यह मुकदमा पेशी में रहे, वह लंदन में ही रहें। हम समझते थे कि सनीचर-इतवार को ही दूसरे पक्ष की बहसवाली और अपनी बातें उनसे कहने का मौका मिल सकेगा, क्योंकि और दिनों तो सारा समय इजलास पर ही लग जायगा। उनसे कहा गया कि आप सनीचर-इतवार को लंदन में ही रहें और उन दिनों के लिए भी वैसे ही फीस ले लें जैसे पेशी के दिन की लेते हैं। उन्होंने इसे मंजूर नहीं किया। फीस की लालच भी उन्हें अपने इस नियम से न हटा सकी। अन्त में बहुत जिद करने पर उन्होंने कहा कि सप्ताह के ये दो दिन यदि मैं गाँव की खुली हवा में न बिताऊँ तो सप्ताह के बाकी पाँच दिन मैं काम के लायक नहीं रहूँगा—क्या तुम समझते हो कि मैं यदि यह नियम न रखता तो आज इस उम्र में इतना काम कर सकता था? मवक्किल को समझा दो कि यहाँ रहने से मैं उनका काम बिगाड़ूँगा, बनाऊँगा नहीं, इसलिए वह जिद्द छोड़ दें। हम लोग भी उनकी बात समझ गये। यदि हमारे देश के लोग भी इस तरह समय का उपयोग करते और स्वास्थ्य का खयाल रखते, तो हमारी जिन्दगी कुछ लम्बी हो जाती और हम काम भी अधिक कर सकते।

हम लोगों का, खासकर हमारे बड़े-बड़े बैरिस्टरों का, खयाल था कि हमारा मुकदमा बहुत मजबूत है, हम जरूर जीतेंगे। मिस्टर अपजौन का कहना था कि हमको शायद बहुत जवाब देने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। मुकदमे की बहस २०-२२ दिनों तक दूसरे पक्ष की ओर से चली। अभी शायद एक-डेढ़ महीने तक और उधर की

ही बहस चलती। इसी बीच मे कचहरी प्राय तीन महीनो के लिए बन्द होने जा रही थी। इसका नतीजा यह होता कि मुकदमे की पेशी फिर अक्टूबर मे होती और शायद दिसम्बर तक चली जाती। उन दिनो सर्दी काफी पडेगी और हममे से बहुतेरे उसे सह न सकेंगे, खासकर मैं तो उस सर्दी को बर्दाश्त कर ही नही सकता था। बाबू हरिजी इससे बहुत घबराये। एक मौका मिला तो किसी दूसरे से बिना पूछे ही सुलह की बात तय कर ली। वह जानते थे कि वकील-बैरिस्टर सुलह करने की बात पसन्द नही करेंगे, क्योकि वे तो मुकदमा जीतने मे दृढ आशावान् थे। तब भी, खर्च बचाने और जाडे की दिक्कतो से बचने के लिए, बहुत नुकसान उठाकर, उन्होने सुलह कर ली। सब बाते तय कर लेने पर, लिखकर दाखिल करने के समय, उन्होने ये बाते सबसे कही। दूसरे को अब कुछ कहना नही था। सुलहनामा पेश हो गया। मुकदमा अचानक एक दिन, जुलाई के अन्तिम सप्ताह मे, समाप्त हो गया। हम सबको छुट्टी मिल गयी।

मिस्टर अपजौन मुकदमे की बाते छोड कभी दूसरी बाते नही करते थे। उनके साथ मेरा इतना काम पडा कि उन्होने मेरे सम्बन्ध मे कुछ जानने की इच्छा से श्री कुँवरबहादुर से कुछ बाते पूछी। उनको यह मालूम हो गया कि अब वकालत छोड कर मैं गाधीजी के साथ काम करता हूँ। इससे उनको आश्चर्य हुआ। एक दिन मुझसे पूछा भी। यह भी कहा कि गाधीजी उनके मवक्किल रहे है। जलियाँवालाबाग के हत्याकाण्ड के लिए जेनरल डायर पर मुकदमा चलाने के सम्बन्ध मे उनसे राय ली गयी थी। उन्होने राय दी भी थी। मैंने उनसे कहा कि गाधीजी डायर पर मुकदमा चलाने के विरुद्ध थे, हो सकता है कि प० मोतीलालजी और देशबन्धु दास ने आपकी राय मँगवायी हो। इस पर उन्होने कहा, मैने समझा कि कांग्रेस की ओर से गाधी ने ही मेरी राय मँगवायी है। उस समय तक मैं खुद भी नही जानता था कि हत्याकाण्ड का मामला इस हद तक पहुँचा है और विलायत के बैरिस्टर से राय ली गयी है। मेरे सम्बन्ध मे उन्होने इतना ही कहा, तुमको वकालत नही छोडनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे मुकदमा खतम होने पर एक दिन बाते करूँगा। लेकिन मुकदमा तो अचानक समाप्त हो गया और मुझे बहुत जल्दीबाजी मे लदन छोड देना पडा; इसलिए उनसे फिर बाते न हुई।

७२—युद्धविरोधी सम्मेलन में

लदन छोडने का एक विशेष कारण हुआ। जिस दिन मुकदमा समाप्त हुआ उसके दो ही दिनो के बाद, आस्ट्रिया के छोटे गाँव सन्तासवर्ग मे, जो वियना मे कुछ दूर पर है, एक अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन होनेवाला था। मैं इस विषय मे कुछ दिलचस्पी रखता था। मिस्टर फेनर ब्राकवे उसके सभापति होनेवाले थे। बिहार के ही श्री तारिणीप्रसादसिंह ने, जो इँगलैंड मे बहुत दिनो मे थे और जो उस सम्मेलन मे जानेवाले थे, मुझसे कहा कि मैं भी चलूँ तो अच्छा होगा। इस तरह

के सम्मेलन की बात मैंने पहले से भी सुन रखी थी। उसमे जाने का पहले से ही इरादा कर रखा था। मुकदमा खतम हो जाने से बहुत अच्छा सुयोग मिल गया। इसलिए मै वहाँ जाने को तुरत राजी हो गया। हम लोग एक और पजाबी मित्र के साथ रवाना हो गये। दूसरे दिन वहाँ पहुँच गये। रास्ते मे कोई विशेष घटना न हुई। योरप के छोटे-छोटे देशो का केवल कुछ अन्दाज मिल गया। जब गाडी चार-पाँच घटे चलकर ठहर जाती तब जान पडता कि अब दूसरे देश की सीमा पर हम पहुँच गये। वहाँ उस देश के कर्मचारी चुंगी के लिए हमारे सामान देखने आ जाते। हमारे पासपोर्ट (राही परवाना) को भी जाँचते। इस तरह आस्ट्रिया प्राय २४ घटो मे हम पहुँचे। रास्ते मे तीन-चार बार सामान दिखलाना पडा।

युद्ध-विरोधी सम्मेलन हुआ था एक गाँव मे, जहाँ एक छोटी पहाडी पर पुराना गिरजाघर था। उसमे जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रान्स, इँगलैंड, प्लस्तीन, चेकोस्लोवेकिया, हालैंड इत्यादि अनेक देशो के प्रतिनिधि उपस्थित थे। प्रतिनिधि-सख्या बहुत बडी नही थी, किन्तु अपने-अपने स्थान पर सभी बहुत धुन से युद्ध-विरोधी प्रचार के काम मे लगे थे। इनमे से बहुतेरो ने इसके लिए सजा भुगती थी, जेलखाने हो आये थे। जब उन लोगो को मेरे बारे मे यह मालूम हुआ कि मै गाधीजी के साथ काम करता हूँ तो उनका स्वभावत मेरी ओर ध्यान आकर्षित हो गया। वे लोग मुझसे गाधीजी के कामो और कार्यशैली के सम्बन्ध मे बहुत पूछताछ करते रहे। कान्फ्रेन्स मे भी कुछ कहने का मुझसे आग्रह किया गया। मैंने महात्माजी के कार्य के सम्बन्ध मे कुछ बाते बताई। भारत मे उन दिनो बारडोली का सत्याग्रह चल रहा था। उसकी कुछ-कुछ खबर हमको वहाँ मिली थी। मैंने विशेषकर चम्पारन और बारदोली के सत्याग्रह के सम्बन्ध मे ही भाषण किया। मैंने यही दिखलाया कि किस तरह उनकी अहिसा की नीति सार्वजनिक प्रश्नो के हल करने मे काम मे लायी जाती है और वह कहाँ तक सफल हुई है। हम लोग वहाँ दो-तीन दिन ठहरे। बहुत अच्छा समय बीता।

कान्फ्रेन्स की कार्रवाई—जर्मन, फ्रेञ्च, अँगरेजी और एसपरेण्टो—चार भाषाओ मे होती थी। एक जर्मन युवक, जिसकी चर्चा पहले कर चुका हूँ, चारो भाषाओ का ऐसा अच्छा पडित था कि चाहे किसी भी भाषा मे भाषण हो वह शीघ्रलिपि (शार्ट-हैण्ड) मे पूरा भाषण लिख लेता था और अपने नोट को सामने रखकर पूरा का पूरा भाषण बाकी तीन भाषाओ मे उल्था करके सुना देता था।

कान्फ्रेन्स मे युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पास किये गये। यह निश्चय हुआ कि कान्फ्रेन्स के बाद, कुछ मुख्य स्थानो मे, कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि जाकर युद्ध-विरोधी भाषण द्वारा प्रचार करे। वहाँ से कुछ दूर पर ग्राट्ज नामक शहर है। वहाँ डाक्टर स्टाण्डिनाथ अपनी धर्मपत्नी के साथ रहा करते थे। यह वहाँ के मेडिकल कालेज मे शिक्षक थे। महात्माजी से इस दम्पती का पत्रव्यवहार हुआ करता था, यद्यपि ये लोग उस समय तक हिन्दुस्तान नही आये थे। मेरे योरप आने के समय महात्माजी ने मुझे इनके नाम एक पत्र दिया था और कहा था कि उधर जाना हो तो इनसे

मिल लेना। जब ग्राट्ज भी जाने की बात हुई तो मैंने उनको सूचना दे दी और गाधीजी का पत्र भी भेज दिया। कान्फ्रेन्स के मत्री इँगलैंड के श्री रनहम ब्राउन थे। उनके साथ कई और प्रतिनिधि वियना और ग्राट्ज जाने के लिए नियुक्त किये गये। वियना में एक सभा हुई जिसमे वहाँ के एक प्रसिद्ध पादरी श्री उदा सभापति हुए। वहाँ की सभा मे कुछ ऐसे लोग आये थे जो बीच-बीच मे बहुत शोर मचाते रहे। मैं उनकी बात समझ नही सकता था, इसलिए यह नही कह सकता कि वह क्या बोलते या चाहते थे, पर इतना तो मालूम हुआ कि वे लोग विरोधी विचार के थे। उस सभा मे इससे अधिक कोई घटना नही हुई।

दूसरे दिन हम लोग ग्राट्ज गये। वहाँ सन्ध्या को ५ बजे हम पहुँचे। सात बजे से सभा होनेवाली थी। स्टेशन पर डाक्टर स्टाण्डिनाथ अपनी स्त्री के साथ आये थे। उन्होने मुझे अपने यहाँ ठहरने के लिए निमत्रित किया और मैं उनके साथ चला गया। दूसरे साथी कही दूसरी जगह ठहरे, जिसका मुझे पता न था, हम समझते थे कि फिर दो घटो के बाद तो मुलाकात होगी ही। डाक्टर स्टाण्डिनाथ के घर से थोडी ही दूर पर सभा-स्थल था। उनके घर पर हाथ-मुँह धो कुछ खाकर, उन दोनो के साथ मैं, सभा-स्थान के लिए, समय से कुछ पहले, रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर उस बडे कमरे के अन्दर गया जहाँ सभा होनेवाली थी। इस तरह की सभा मैंने कभी देखी न थी। एक बडा हाल था जिसमे प्राय चार-पाँच सौ आदमी बैठ सकते थे। छोटी-छोटी मेजे सारे कमरे मे रखी थी। प्रत्येक मेज के चार तरफ से पाँच-छ आदमी बैठे थे। प्रत्येक आदमी के सामने शराब का गिलास रखा था। प्राय सभी सिगरेट या सिगार पी रहे थे। सारा कमरा धुएँ से भरा हुआ था। कमरे के अन्दर जाने के लिए एक तरफ दरवाजा था। कमरे के दूसरे छोर पर, दीवार के नजदीक, लकडी का एक चबूतरा (प्लाटफार्म) बना था, जिस पर पाँच-सात कुर्सियाँ रखी थी और एक लम्बी-सी मेज भी। उस प्लाटफार्म के एक कोने के नजदीक एक छोटा-सा दरवाजा भी था, जिसका किवाड बन्द था। हम लोग कमरे के अन्दर घुसे। मेरी पोशाक से ही शायद कुछ लोग समझ गये कि मैं भी उन लोगो मे से हूँ जो वहाँ भाषण करने आये हैं। कमरे मे घुसते ही मुझसे एक आदमी ने पूछा कि मैं जर्मन मे भाषण करूँगा या किसी दूसरी भाषा मे। मैंने कह दिया कि मैं अँगरेजी जानता हूँ और जो कुछ कहना होगा, अँगरेजी मे कहूँगा—यदि प्रबन्धको ने भाषान्तर का कोई प्रबन्ध किया होगा तो मेरे भाषण का भाषान्तर कोई कर देगा।

हम ज्योही कमरे के बीच तक पहुँचे, एक ओर शोर-गुल शुरू हुआ। मैं कुछ समझ न सका, पर उस दम्पती ने मुझसे कहा, विरोधी लोग यह शोर मचा रहे हैं। हम तीनो सीधे उस मच की ओर चले गये। प्रोफेसर स्टाण्डिनाथ उस प्लाटफार्म के कोनेवाले दरवाजे की तरफ गये। उसे उन्होंने खोलना चाहा, पर वह बन्द था। इस बीच मे कोई १०-१२ आदमी उछल कर मच पर चले आये। वे घूसे-मुक्के से मेरे ऊपर प्रहार करने लगे। उन दोनो (दम्पती) ने बीच मे पडकर कुछ चोटें अपने

ऊपर ले ली। इतने ही मे आक्रमणकारियो मे से कुछ ने कुर्सियो को पटक-पटक कर तोड़ डाला और उनके टूटे हिस्सो से हम पर प्रहार करना जारी रखा। बेचारे दम्पती घायल हो गये। उनके सिर से लहू बहने लगा। मैं भी घायल हो गया। मेरे सिर से भी लहू चूने लगा। हम लोग समझ ही न सके कि यह क्या हुआ और हम पर क्यो हमला किया गया। उस समय मेरे मन मे अनायास यह खयाल आया कि अब यहाँ से नीचे उतर जाना चाहिए। हम प्लाटफार्म से कूदकर नीचे उतर गये। हमे पता न था कि नीचे बैठे हुए लोगो का क्या रुख है। जब तक हम पर हमला हो रहा था, कोई न उठा और न कोई कुछ बोला। हम जब नीचे उतर गये तब भी कोई कुछ न बोला। उनके बीच होकर हम दरवाजे की तरफ चले गये। केवल एक स्त्री हमारे साथ हो गयी और बाहर निकलने पर प्रोफेसर स्टाण्डिनाथ से कुछ बाते करती रही। हम लोग खून से तर हुए ही घर पहुँच गये। वहाँ प्रोफेसर ने पहले मेरे घाव को धोकर पट्टी बाँधी। उसके बाद अपनी स्त्री के और अपने घाव धोये। वे लोग अँगरेजी कम जानते थे। मुश्किल से वे अपने विचारो को बता सकते थे।

मैने समझा कि जिन लोगो ने हमला किया था वे उस दल के थे जो युद्ध के पक्ष मे है, इसलिए युद्ध-विरोधी प्रचार को वे रोकना चाहते थे। अपने साथियो की मुझे कुछ भी खबर न मिली। पीछे सुना कि वे लोग प्लाटफार्म के छोटे दरवाजे के नजदीक हमारे इन्तजार मे बाहर खडे थे। उनको पीछे मालूम हुआ कि भीतर यह घटना हो गयी। सभा तो हो ही न सकी, वे लोग भी चले गये। मैं दूसरे ही दिन सवेरे वहाँ से वियना के लिए रवाना हो गया। मुझे कुछ दूर तक पहुँचाने के लिए स्टाण्डिनाथ सपत्नीक साथ आये। पट्टी हम तीनो को बँधी हुई थी। रेल के यात्रियो ने हमारा हाल पूछा। जब डाक्टर स्टाण्डिनाथ ने सब बाते कह दी तो एक स्त्री ने अपनी गठरी खोलकर कुछ खाने की चीजे मुझे दी। पर वे मास की बनी थी, हम नही ले सके। धन्यवादपूर्वक डाक्टर ने उसे समझा दिया। मैने देखा कि उस सुदूर विदेश मे भी साधारण जनता किसी परदेसी के लिए वही भाव रखती है जो हम हिन्दुस्तान मे कही भी देख सकते है। इस घटना की खबर समाचार-पत्रो मे छपी। वहाँ के पत्रो ने इस पर टिप्पणी भी की। यहाँ हिन्दुस्तान तक खबर पहुँच गयी। महात्माजी को भी इधर-उधर से कुछ सुनने को मिला। मैने तो उस समय किसी को न लिखा। पर डाक्टर स्टाण्डिनाथ ने महात्माजी को लिख भेजा। उन्होने 'यग इण्डिया' मे पहले-पहल पूरा हाल छाप दिया।

७३—श्री रोमा रोलाँ से मुलाकात और युवक-सम्मेलन में

मैं वहाँ से सीधे स्विटजरलैण्ड गया। मेरी बहुत इच्छा थी कि श्री रोमा रोलाँ से जाकर मिलूँ। इसलिए मैं वहाँ गया जहाँ वह बराबर रहा करते है। पर वहाँ उनकी बहन से मुलाकात हुई तो मालूम हुआ कि वह गर्मी के कारण कार्टरीगी पहाड पर गये है। मैं वहाँ चला गया। रास्ता बहुत ही सुन्दर था। रेल ऊँचे पहाड पर आहिस्ता-

आहिस्ता चढती गयी। वहाँ बर्फ से ढके पहाड थोडी दूरी पर नजर आ रहे थे। मै एक होटल मे ठहराया गया। श्री रोमा रोलाँ ने ही सब प्रबन्ध कर दिया था। दो दिनो तक वहाँ रहा। उनसे भेट हुई। बाते भी हुई। पर मुश्किल यह थी कि वह अँगरेजी नही बोल सकते थे और मै फ्रेन्च नही समझता था। होटल मे एक अँगरेजी जाननेवाला उन्होने खोज निकाला। पर उसकी विद्या भी कुछ अन्दाज की ही थी। उनसे मिलकर मुझे जितना लाभ होना चाहिए था, न हो सका। उन्होने ग्राट्ज की घटना का हाल पत्रो मे पढा था। मेरे पट्टी बँधे हुए सिर और हाथ को उन्होने देखा। वहाँ से रवाना होकर, स्विटजरलैण्ड के कुछ और शहरो को देखते हुए, मै लदन के लिए चल पडा। मैने बर्नबेल, न्युटाटेल, लोसान और जेनीवा शहरो को देखा। न्युटाटेल मे एक छोटी, पर अचम्भा पैदा करनेवाली, घटना हुई। मै वहाँ बाजार मे घूम रहा था। एक दूकान मे हाथ का बुना हुआ कुछ कपडा बिकता था। मै वहाँ गया। एक लडकी बेचने का काम कर रही थी। वह अँगरेजी जानती थी। जब मैने हाथ के बुने कपडे की बात की और उसने मेरी पोशाक देखी तो समझ लिया कि मै हिन्दुस्तान का रहनेवाला हूँ। मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वह गाधीजी का केवल नाम ही नही जानती थी, बल्कि जो ग्रन्थ उनके सम्बन्ध मे उसे मिले थे उन्हे पढ भी गयी थी। उसने मुझे म्युनिक की एक दूकान का पता दिया जहाँ हाथ के बुने कपडे मिल सकते है। अपनी दूकान मे रखे हुए पुराने स्विस चर्खे का नमूना भी दिखलाया। वह हमारे देश के पुत्तीवाले चर्खे के समान ही था, पर वह ऊँची कुर्सी या स्टूल पर बैठकर चलाया जा सकता है। मैने वहाँ पहले-पहल समझा कि गाधीजी के सम्बन्ध मे श्री रोमा रोलाँ की पुस्तक ने कितना प्रचार कर दिया है।

स्विटजरलैण्ड के शहरो को देखता हुआ मै पेरिस पहुँचा। वहाँ भी एक या दो दिन ठहर शहर देखकर लदन पहुँचा। लदन मे अपने मकान पर मै सध्या समय ६-७ बजे पहुँचा। घर मे पहुँचने पर सन्नाटा पाया, कोई नही था। पूछने से मालूम हुआ कि हमारी गैरहाजिरी मे एक भयकर दुर्घटना हो गयी है। श्री सत्यरजनप्रसाद सिंह, जो हम लोगो के साथियो मे थे, एक दिन कही से लौटते समय, ठीक अपने मकान के सामने ही, बस से उतरे और सडक पार करने मे मोटर मे धक्का खाकर बेहोश गिर गये। उनकी अवस्था बहुत खराब थी। सभी लोग उस नर्सिंग होम (शुश्रूषागृह) मे गये थे जहाँ उनकी चिकित्सा हो रही थी। मुंह-हाथ धोकर मै भी तुरन्त वहाँ गया। चोट लगने के बाद से उनको होश कभी नही हुआ। जब मै पहुँचा, वह बेहोश ही थे। हालत चिन्ताजनक थी। उसी रात उनकी मृत्यु हो गयी।

मेरी इच्छा थी कि मुकदमा खतम हो जाने पर मै लदन देखूँगा और अन्यत्र भी कुछ घूम-फिरकर हिन्दुस्थान लौटूँगा। पर इस दुर्घटना मे सभी लोगो का चित्त बहुत उदास हो गया। हम सबकी इच्छा हो गयी कि जल्द से जल्द अब हिन्दुस्थान वापस चला जाय। अब वहाँ ठहरकर किसी चीज को देखने का जरा भी जी नही चाहता था। उनकी मृत्यु के बाद दो-तीन दिनो तक वहाँ मृत्यु-सम्बन्धी कारोनर की

जाँच के लिए ठहरना पडा। उसने फैसला दिया कि दुर्घटना से मृत्यु हुई है. किसी का दोष नही है, और हमको शव दे दिया। उसको हम लोगो ने वहाँ के क्रिमेटोरियम मे जलाया। मै उसी रात एडिनबरा चला गया। वहाँ से वापस आकर हम सब लोग रवाना हो गये। लदन मे कुछ नही देख सका। यहाँ तक कि ब्रिटिश म्युजियम का भी दर्शनमात्र ही हुआ। उसके अन्दर जाकर कुछ देख न सका।

हम लोग लदन से इस इरादा से रवाना हुए कि मार्सेल्स मे 'मुलतान' जहाज पर सवार होगे, जो अगस्त के अन्तिम सप्ताह मे किसी दिन वहाँ से रवाना होनेवाला था। बीच मे दस-बारह दिन मिल जाते थे। मैने सोचा कि इन दस-बारह दिनो को योरप के देशो के देखने मे लगाऊँगा। इन्ही दिनो हालैण्ड मे युवको का एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन होनेवाला था। मै वहाँ भी गया। उसी सम्मेलन मे बगाल के डाक्टर सन्याल से भेट हुई। वह भी कुछ-कुछ युद्ध-विरोधी सम्मेलन ही था। उसमे भी कई देशो के युवक आये थे। एक विशेषता यह भी थी कि उसमे अमेरिका के बहुत प्रतिनिधि थे। पूर्वोक्त सन्ताग्सवर्ग के युद्ध-विरोधी सम्मेलन से यहाँ प्रतिनिधियो की सख्या बहुत अधिक थी, पर जितनी गम्भीरता और हार्दिक उत्साह वहाँ था, यहाँ मैने नही देखा। यह सम्मेलन भी किसी शहर मे न होकर एक गाँव मे ही हुआ था। हम सब किसी मकान मे न ठहर कर खीमे मे ठहरे थे। प्रबन्ध बहुत सादा था। समय पर 'साइरेन' बजता था। सभी लोग अपने गिलास और तश्तरी लेकर एक बडे खीमे मे पहुँच जाते। वहाँ लकडियों के पटरे जोडकर काम चलाऊ मेजे और बेचे बनी थी। वही खाना या नाश्ता मिल जाता। फिर साइरेन बजने पर सम्मेलन मे सभी पहुँचते थे। तब वहाँ भाषण होते। मैने देखा कि देश-देशान्तर के उन युवको की पूरी दिलचस्पी सभी राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय विषयो मे है। वहाँ बडे उत्साह के साथ राष्ट्रसघ (League of Nations) जैसी सस्थाओ और उनकी कार्रवाइयो तथा उपयोगिता पर बहुत बहस हो रही थी। कुछ जर्मन भी उसमे शरीक थे। मैने अनुगान किया कि उस देश मे आपस मे मतभेद है—दूसरे देशो के प्रतिनिधियो मे भी वहाँ की समस्या-सम्बन्धी विचार-शैली मे भेद है। इस सम्मेलन मे भी मैने भाषण किया।

७४—जर्मनी और इटली की सैर तथा स्वदेश में वापस

वहाँ से मै बर्लिन गया। यहाँ पर अपने ठहरने और कार्यक्रम का कुछ वर्णन कर देना अच्छा होगा। मैने एक यात्रा-क्रम बना लिया था जिसमे जर्मनी के तीन शहर रख लिये थे—बर्लिन, लीपजिग और म्युनिख। इटली मे वेनिस और रोम तथा फ्रान्स के दक्खिन मे नीस होते हुए मार्सेल्स पहुँचने का विचार था। समय इतना कम था कि इससे अधिक कही जा नही सकता था और इन शहरों मे भी पूरा समय नही दे सकता था। मै प्राय रात की गाडी से रवाना होता। वहाँ की गाडियो मे अधिक महसूल देने पर सोने के लिए जगह मिल जाती है। इसलिए मै ऐसी गाडी चुन लेता जो रात को दस-ग्यारह बजे रवाना होती और लक्ष्य-स्थान पर सवेरे पहुँचती। सोने का

टिकट लेकर रात को आराम से गाडी मे सोता। सवेरे गाडी मे ही मुँह-हाथ धोकर उतरता। स्टेशन पर उस कमरे की तलाश कर लेता जहाँ मुसाफिरो के सामान हिफाजत के लिए रख लिये जाते है। प्राय प्रत्येक स्टेशन पर टामस-कुक का प्रतिनिधि मिल ही जाता, केवल लीपजिग मे वह नही मिला था।

बर्लिन स्टेशन पर उतरने पर पहले कोई परिचित आदमी नही मिला। पर जब मै टैक्सीवाले से सिर्फ अपने इशारो के सहारे अँगरेजी होटल की तलाश करने के प्रयत्न मे लगा था, टामस-कुक का आदमी नजर आ गया। वह मुझे एक होटल मे ले गया। इत्तिफाक से बाबू हरिजी भी उसी होटल मे पहुँचे। उनसे मुलाकात हो गयी। दो या तीन दिनो तक मै वहाँ ठहरा। घूम-घूमकर बर्लिन देखा। वहाँ श्री बी० चट्टोपाध्याय से मुलाकात हुई। रूस से उनका कुछ सम्बन्ध था। कहते थे कि मै यदि वहाँ जाना चाहूँ तो वह पासपोर्ट का प्रबन्ध कर सकेगे। पर समय की कमी के कारण मै यह लाभ न उठा सका। बर्लिन मे मै एक ऐसे रेस्तराँ मे जाकर खाया करता था जहाँ शाकाहार मिल सकता था। उसी ने सारे योरप के बडे-बडे शहरो के शाकाहारवाले रेस्तराँ की फिहरिस्त दे दी। उसमे सबके नाम और पते छपे थे। स्टेशन पर उतर, उसी कागज को दिखला कर, मै ऐसे रेस्तराँ तक पहुँच जाता और वही भोजन करता। कुछ दिक्कते अडे के कारण होती, पर मैने एक-दो शब्द सीख लिये थे (जिनको अब भूल गया हूँ) जिनसे यह जता देता कि मुझे अडे से भी परहेज है।

लीपजिग मे केवल दिन-भर ठहरा। वहाँ टामस-कुक का प्रतिनिधि नही मिला। इसलिए वहाँ अपनी बुद्धि से ही काम लेना पडा। इँगलैड जाने के पहले कई महीनो तक मैने लुई कोहिनी की जल-चिकित्सा-पद्धति से कटि-स्नान (hip bath) किया था, जिससे कुछ लाभ भी हुआ था। उनकी पुस्तक भी अँगरेजी मे पढी थी। इसलिए मेरी अभिलाषा हुई कि स्वय जाकर उनसे मिलूँ। इसी लिए मैने अपने यात्रा-क्रम मे लीपजिग को रखा था। स्टेशन से उतर कर सीधे उनके चिकित्सालय मे गया। वहाँ सुना कि उनकी मृत्यु हो गयी है और वह भी विचित्र तरीके से। वह फल खाने के बडे पक्षपाती थे। अवस्था काफी हो गयी थी, तो भी किसी पेड पर फल तोडने चढे और गिर गये। चोट गहरी लगी, मर गये। उनके लडके थे, जो अँगरेजी नही के बराबर जानते थे। उनसे किसी प्रकार बाते हुई। उन्होने मेरे लिए स्नान-विधि और भोजनादि-सम्बन्धी नुस्खा लिखकर दिया। वही एक बार स्नान कराकर दिखला भी दिया। वह नुस्खा जर्मन भाषा मे था। मै उससे लाभ न उठा सका और वही पर वह खो भी गया!

खाने के समय मै वहाँ एक रेस्तराँ मे गया। वहाँ तो एक भी आदमी अँगरेजी जाननेवाला न था! मै बडी मुश्किल से नौकर को कुछ बतलाने की कोशिश कर रहा था। एक स्त्री मुझसे कुछ दूर टेबुल पर खाने बैठी थी। उसने मेरी दिक्कत देखी। मेरे पास वह आ गयी। वह अँगरेजी खूब जानती थी। थी तो वह जर्मन, पर उसका पति अमेरिकन था, जो उस समय अमेरिका गया था। उसने मेरी पूरी मदद की। उस दिन

टामस-कुक के प्रतिनिधि का काम उसी ने कर दिया। घूम-फिरकर तमाम शहर भी दिखला दिया। सध्या को रेल मे सवार करा दिया। इस प्रकार की सहृदयता अक्सर नही देखने मे आती।

अपने यात्राक्रम के अनुसार मैं म्युनिख गया। वहाँ पर वह मशहूर सेलरहौस देखा, जिसमें अक्सर हिटलर के भाषण हुआ करते हैं। वहाँ के मशहूर म्युजियम को भी देखा, जिसमे वैज्ञानिक वस्तुओं का सग्रह है। वहाँ तलाश करते-करते उस दूकान तक भी पहुँचा जहाँ—न्युटाटेल मे मुझसे कहा गया था—हाथ के बुने कपडे मिलते हैं। पर ऐसा कोई कपडा मिला नही।

म्युनिख से मै वेनिस गया। अजीब शहर है। समुद्र घर-घर मे है। घर से निकलकर नाव पर ही बाहर जाया जाता है। नाव के सिवा वहाँ कोई दूसरी सवारी नही होती। पानी के बीच मे चट्टान हैं, उन्ही पर मकान बने हैं। जो मशहूर गिरजाघर है वहाँ कुछ खाली जगह है। वहाँ मैं सध्या समय टहलता रहा। रात के दस-ग्यारह बजे होटल मे जाकर ठहरना चाहा, पर वहाँ इतने मच्छर थे कि मसहरी लगाने पर भी वहाँ ठहरना मुश्किल हो गया। इसलिए, गाडी के समय से पहले ही, स्टेशन चला आया।

रोम मे दो दिनो तक ठहरा। नयी और पुरानी चीजे, टामस-कुक के प्रबन्ध मे, खूब देखी। इटली के दोनो शहरो मे, फौज के बहुत-से आदमियो को, जहाँ-तहाँ आते-जाते देखा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि फौज का वहाँ बहुत जोर है। मेरी यात्रा कुछ ऐसी रही कि यात्रियो द्वारा देखे जानेवाले स्थानो के सिवा मै और कुछ न देख सका, न किसी से मिल सका। समय भी न था और इसका प्रबन्ध भी न था। पहले से यदि प्रबन्ध होता तो कुछ लोगो से मिलता। समय रहता तो वहाँ की परिस्थिति जानने का भी प्रयत्न करता। पर ऐसा न हो सका, जिसका अफसोस रहा, पर लाचारी थी।

अन्त मे मार्सेल्स के लिए रवाना हुआ। रास्ते मे नीस मे उतरा। वहाँ भागलपुर-निवासी श्री दीपनारायण सिंह से भेट हो गयी। चन्द घटों तक उनका साथ रहा। वहाँ पास ही के मशहूर कैसिनो को भी जाकर देखा, जहाँ लोग जुआ खेलते हैं। इन सब चीजो के देखने मे मेरा जी नही लगा। तुरत मैं मार्सेल्स चला गया। दूसरे ही दिन जहाज पर सवार होना था। बाबू हरिजी से मुलाकात हो गयी। रात भर एक होटल मे ठहरे। दूसरे दिन 'मुलतान' जहाज पर सवार हो गये। जहाज हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गया। इस बार हम लोग आठ-दस आदमी साथ थे, इसलिए जहाज मे किसी किस्म की दिक्कत न हुई। मेरी तबीयत कुछ खराब हो गयी। एक-दो दिनो तक समुद्र की हवा लगते ही फिर दमा हो गया। पर वह जल्द ही अच्छा भी हो गया। हम लोग बम्बई मे, सितम्बर के दूसरे सप्ताह मे, उतर गये। जहाज पर कोई विशेष घटना न हुई। ढाका-युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर सर फिलिफ हार्टोग उसी जहाज से लौट रहे थे। उनसे मुलाकात हो गयी। जहाज पर अक्सर उनसे बातें हुआ करती थी।

७५—साइमन-कमीशन का पुनरागमन और देशभ्रमण

बम्बई मे जहाज से उतरकर मै सीधे अहमदाबाद चला गया। वहाँ एक-दो दिन ठहर कर फिर पटने लौटा। मेरी गैरहाजिरी मे दो बहुत महत्त्वपूर्ण घटनाएँ देश मे हो चुकी थी—(१) बारदोली मे जमीन पर 'कर' बढाने के कारण सत्याग्रह, और (२) देश के निमित्त सभी दलवालो से मिलकर विधान तैयार करने के लिए नेहरू-कमिटी का सगठन। बारदोली का सत्याग्रह खूब सफल रहा। सरकार ने अपनी ओर से हर तरह से उसे दबाने का प्रयत्न किया। लोगो ने भी उत्साहपूर्वक दमन को बर्दाश्त किया। दमन झेलने मे जनता को पूरी सफलता मिली। गाधीजी का आशीर्वाद और साहाय्य तो था ही, आन्दोलन के सचालन का सारा भार वास्तव मे सरदार वल्लभभाई पटेल पर ही था। उन्होने उसे बडी चतुरता, धीरता, निर्भीकता और परिश्रम के साथ चलाया था। सभी दल के लोगो ने उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आन्दोलन समझा था। सबने सहायता भी दी थी। सरदार ने गुजरात से बाहर के लोगो को आने से मना कर दिया था। इसलिए दूसरे प्रान्त के कार्यकर्त्ता बाहर से ही जो सहायता पहुँचा सकते थे, पहुँचाते रहे। वहाँ कोई गया नही। सारे देश के सामने सत्याग्रह का एक आदर्श नमूना आ गया। लोगो को यह मालूम हो गया कि सगठन और त्याग काफी हो तो अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा जबरदस्त सरकार भी दबायी जा सकती है। जिस चीज की बाट लोग १९२१ से ही जोह रहे थे उसे एक तालुके मे सरदार ने प्रत्यक्ष दिखा दिया। अब इसके बाद लोग यही सोचने लगे कि सारे देश को बारदोली कैसे बनाया जाय। इस सत्याग्रह ने देश मे नयी जान डाल दी। जो सत्याग्रह आगे १९३० मे हुआ, उसके लिए जमीन भी तैयार कर दी।

मद्रास-कॉंग्रेस मे ही एक कमिटी नियुक्त हुई थी। उसको यह काम सपुर्द किया गया था कि सभी दलो के नेताओ से मिलकर वह एक योजना तैयार करे। साइमन-कमीशन का बहिष्कार तो सबने किया था, पर वह अपना काम करता ही जा रहा था। सोचा गया कि जब तक अपनी ओर से तैयार करके कोई योजना सरकार के सामने नही रखी जायगी तब तक यही समझा जायगा कि हम लोग केवल नुक्ताचीनी कर सकते है, कोई रचनात्मक काम नही कर सकते। इसलिए इस कमिटी को सब दलो के लोगो से सहायता मिली। पडित मोतीलाल नेहरू इसके सयोजक थे, इसी लिए इसका नाम नेहरू-कमिटी पडा। इस कमिटी ने योजना तैयार कर ली थी। सब दलो के प्रतिनिधियो ने, कुछ बातो को छोडकर, अधिकाश बातो को स्वीकार भी कर लिया था। अब इस योजना को कॉंग्रेस के सालाना जल्से के समय एक सर्व-दल-सम्मेलन मे बाजाब्ता मजूर करा लेना था। कॉंग्रेस से भी इसे स्वीकृत करा लेना रह गया था। दिसम्बर मे कॉंग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते मे होनेवाला था। पडित मोती-लाल नेहरू सभापति चुने गये। नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर सारे देश मे चर्चा हो रही थी। सब विचारशील लोग इसके बारे मे अपने-अपने विचार प्रकट करने जा रहे

थे। यह योजना औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत का ध्येय मानकर ही बनायी गयी थी। इसलिए, वे कॉंग्रेसी जो पूर्ण स्वराज्य के पक्षपाती थे, इससे सन्तुष्ट नही थे। इनमे मुख्य थे श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री श्रीनिवास ऐयगर।

स्वदेश मे मेरे वापस आने के कुछ दिन बाद, सर्दी शुरू होते ही, साइमन-कमीशन फिर हिन्दुस्तान वापस आ गया। जिन सूबों मे वह अब तक नही जा सका था उनमें जाने लगा। पजाब मे, उसके बहिष्कार और विरोध-प्रदर्शन मे, लाला लाजपतराय जी शरीक हुए थे। पुलिस ने प्रदर्शकों पर लाठियाँ चलाई थी। पूज्य लालाजी को पुलिस की लाठियों से बहुत चोट लगी थी। वह बीमार पड गये। फिर अच्छे भी न हुए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनकी मृत्यु, उन लाठियो की करारी चोट के फल-स्वरूप, कुछ दिनों मे ही हो गयी। जब कमीशन युक्त-प्रान्त मे पहुँचा, वहाँ भी प्रदर्शको पर पुलिस ने लाठी चलाई। पडित जवाहरलाल नेहरू को भी चोट लगी थी। इस तरह यह कमीशन पुलिस की लाठियो के साथ देश का भ्रमण कर रहा था! अब पटने मे उसके आने के दिन मुकर्रर हो गये!

मेरी गैरहाजिरी मे बिहार मे भी दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई थी। 'सर्चलाइट' अखबार पर हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर कुर्टने टिरल ने अदालत की मानहानि का मुकदमा चलाया था। पटना-हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर डासन मिलर उसी साल पेन्शन लेकर चले गये। वह एक अत्यन्त शान्त-प्रकृति, पर स्वतत्र विचार के, जज थे। यद्यपि वह मुकदमो को ठीक समझने मे थोडा समय लेते थे; पर उनके फैसले बहुत अच्छे हुआ करते थे। सभी लोग उनसे सन्तुष्ट थे। उनके जाने पर इँगलैंड से नये चीफ जस्टिस आये, जो लोगो से मिलने-जुलने मे तो बहुत अच्छे थे, पर मिजाज के एकबग्गा थे और अक्सर फैसलो मे बहक जाया करते थे। इनके एक फैसले पर 'सर्चलाइट' ने कडी टीका की थी। इसी के लिए उस पर मुकदमा चला था। इस मुकदमे का महत्त्व इतना अधिक हो गया कि प्रयाग से श्री मोतीलाल नेहरू और सर तेजबहादुर सप्रू तथा कलकत्ते से श्री शरत्चन्द्र बोस बहस करने आये। कुछ दिनो तक पटने मे बडी चहल-पहल रही। मैंने सुना कि बहुत ही सुन्दर और जोशीली बहसे हुईं। अन्त मे 'सर्चलाइट' को कुछ सजा हुई। इससे शिक्षित जनता मे, विशेषकर वकीलो मे, काफी खलबली हुई थी।

दूसरी घटना गया-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड से सम्बन्ध रखती थी। वहाँ श्री अनुग्रह-नारायण सिंह चेयरमैन थे। पहले कहा जा चुका है कि प्रान्तीय कौन्सिल के चुनाव मे सर गणेशदत्त सिंह का, जो १९२१ से ही मत्री होते चले आते थे और जो मत्री की हैसियत से सभी म्युनिसिपैलिटियो और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों की देखभाल करते आ रहे थे, कॉंग्रेस ने विरोध किया था। विरोध की गम्भीरता देखकर वह चार जगहो से उमीदवार थे। सभी जगहों मे कॉंग्रेस के उमीदवार उनका विरोध कर रहे थे। एक जगह, गया मे, एक दूसरे सज्जन के कारण, जो अपने को कॉंग्रेस का हमदर्द बताते थे,

उमीदवार नही खड़ा किया गया था। अन्त मे, उसी जगह से, उक्त सज्जन की उमीदवारी हटवा कर, सर गणेशदत्त चुने गये थे।

इस चुनाव की एक और घटना लिख देता हूँ। बेगूसराय के इलाके से भी सर गणेशदत्त उमीदवार थे। वहाँ भूमिहार-ब्राह्मणो की, जिस जाति के सर गणेशदत्त भी है, बहुत अच्छी आबादी है। वह उसी उमीद पर वहाँ से खडे हुए थे। किन्तु कांग्रेसी उमीदवार भी भूमिहार-ब्राह्मण ही थे। फिर भी सर गणेशदत्त की ख्याति अपनी जाति मे कई कारणो से बहुत थी। मै चुनाव के सिलसिले मे वहाँ गया। एक वडी सभा हुई। उसमे सर गणेशदत्त के मददगार भी आये। उन्होने मुझसे प्रश्न किया, सर गणेशदत्त के विरोध मे कांग्रेस क्यो उमीदवार खडा कर रही है? उन्होने सर गणेशदत्त की सभी वाते कही, जिनमे मुख्य यह थी कि वह जब से मत्री बने है तब से उन्होने अपने वेतन का थोड़ा ही अश अपने खर्च के लिए लिया है, अधिकाश रुपये परोपकार के लिए दान कर दिये है। बात सच थी। उन्होने कई लाख रुपयो का ट्रस्ट कायम करके एक बहुत अच्छा आदर्श पेश किया था, जिसके लिए हम सब उनके बडे प्रेमी और प्रशसक थे। पर यह सब होते हुए भी वह कांग्रेस के कार्यक्रम से सहमत नही थे और केवल इसी कारण से उनका विरोध करना पडा था। मैने सभा मे यही कहा कि कांग्रेस देश-भर की सस्था है, यदि सर गणेशदत्त उसके नियत्रण मे काम करना स्वीकार कर ले तो कांग्रेसी उमीदवार हटा लिये जायँगे, पर इतनी बडी सस्था किसी व्यक्ति को मनमानी करने के लिए छोडना नही चाहती। मैने उनके सहायको से भी कहा कि मै एक दिन और ठहरूँगा, इस बीच वे लोग उन्हे बुला लावे, अथवा उनका पत्र या तार मँगवा ले, जिसमे वे मेरी शर्त मजूर करा ले, तो मै कांग्रेसी उमीदवार हटा लूँगा। सभा मे अधिकाश लोग उनकी जाति के ही थे, जिन पर उनको पूरा भरोसा था। मेरी बात को उन सब लोगो ने बहुत पसन्द किया। मै वहाँ ठहर भी गया, पर उनके आदमी फिर नही लौटे। मैने देखा कि वहाँ की जनता पूरी तरह कांग्रेस के पक्ष मे हो गयी। इसी के वाद सर गणेशदत्त ने गया मे उन महाशय को हटाकर किसी तरह अपने निर्विरोध चुने जाने का प्रवन्ध कर लिया।

यह वात तो बीत चुकी थी, पर उनके हृदय मे कांग्रेस के प्रति वहुत रज था, जिसको वह जब तक सार्वजनिक काम करते रहे, कभी भूले नही। गया-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड मे उनको अपने उन्ही मित्र को चेयरमैन बनाना था जिन्होने अपनी उमीदवारी हटाकर उनको मत्री बनने का मौका दिया था। इसलिए उन्होने कई उपायो से वहाँ के चेयरमैन श्री अनुग्रहनारायण सिंह को हटा दिया—यहाँ तक कि उनको मेम्बर होने के हक से भी वचित कर दिया। जब मै इँगलैंड से लौटा तो यह षड्यत्र देखकर मुझे वहुत रज हुआ। हमारे सभी कांग्रेसी मित्र वहुत ही क्षुब्ध थे। हम लोगो के दिल मे यह भी शक था कि उन दिनो देश मे साइमन-कमीशन भ्रमण कर रहा था और उसके सामने यह वात भी आनेवाली थी कि जो थोडे-वहुत अधिकार दिये गये थे उनका प्रयोग भी हिन्दुस्तानियो ने कहाँ तक ईमानदारी और सफलता से किया है। विहार के

सबसे ज्यादा आमदनीवाले डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड को इस प्रकार अयोग्य साबित करने का प्रयत्न, हम समझते थे, विशेषकर इसलिए भी किया गया है कि साइमन-कमीशन के सामने गवर्नमेण्ट इसको भी हमारी अयोग्यता के दृष्टान्त-स्वरूप पेश कर सके। इसलिए, सारे सूबे मे काफी आन्दोलन हुआ। गया मे सभा हुई। मै भी वहा गया। उसमे मेरा एक बहुत ही कडा भाषण हुआ, जैसा पहले कभी शायद ही हुआ हो। जो-जो अभियोग जिला-बोर्ड पर लगाये गये थे, उनकी जाच कांग्रेस की ओर से हमने कराई। सब आरोपो को हमने निर्मूल पाया। तब प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन करने का विचार हुआ। वह पटने मे ही हुआ। उसके सभापति अनुग्रह बाबू बनाये गये। स्वागताध्यक्ष श्री सच्चिदानन्द सिंहजी हुए। इस कान्फ्रेन्स की तिथि साइमन-कमीशन के पटने पहुँचने के एक या दो दिन पहले रक्खी गयी थी। सोचा गया था कि जो लोग कान्फ्रेन्स मे आवेगे वे कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन करने मे भी शरीक हो सकेगे। कान्फ्रेन्स सफलता-पूर्वक समाप्त हो गयी। उसके दूसरे दिन सवेरे ही साइमन-कमीशन स्पेशल ट्रेन से आनेवाला था।

हमने सुना कि स्पेशल ट्रेन पटना-जकशन के विशेष प्लाटफार्म पर, जिस पर प्रिन्स आफ वेल्स उतारे गये थे, लगायी जायगी। वह ठीक हार्डिज-पार्क के सामने पडता है। वहाँ, हार्डिज-पार्क के सामने, लकडियो के मजबूत बल्ले गाडकर, जनता की भीड को आगे बढने से रोकने के लिए, प्रतिबन्ध लगाया जा रहा था। हमने पजाब और युक्तप्रान्त मे लाला लाजपतराय तथा पडित जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओ पर लाठी बरसाने की बात जान ली थी। इससे हमे कुछ आश्चर्य नही हुआ। हम समझते थे कि प्रदर्शन के समय कुछ खून-खराबा होगा। परन्तु जनता मे उत्साह बहुत था, जिसका कुछ नमूना हम प्रान्तीय सम्मेलन मे देख चुके थे।

उसी दिन सध्या को श्री सच्चिदानन्द सिंह ने मुझे अपने यहाँ बुलाया। मैने वहा पहुचकर देखा कि पुलिस के इन्सपेक्टर-जेनरल मिस्टर स्वेन वहाँ उपस्थित है। उन्होने मुझसे कहा कि उन्ही के कहने से श्री सिंह ने मुझे वहा बुलाया है और वह मुझसे साइमन-कमीशन के सम्बन्ध मे बाते करना चाहते है। उन्होने कहा कि वह नही चाहते कि जैसी दुर्घटनाएं पजाब और युक्तप्रान्त मे हुई है वैसी बिहार मे भी हो, उससे हम दोनो की बदनामी है। उन्होने यह भी कहा कि कोई ऐसा रास्ता अगर निकल सके जिससे पुलिस और प्रदर्शको मे मुठभेड न हो तो अच्छा होगा। मैने कहा, जनता तो निरस्त्र है ही, वह बिलकुल अहिंसात्मक रहेगी, जो कुछ होगा आपकी ओर से ही होगा। उन्होने विश्वास दिलाया, वह ऐसा नही होने देगे, परन्तु भय इस बात का प्रकट किया कि बहुत भीड जमा हो जाने पर कही किसी दल को किसी आदमी ने कुछ बेतुकी बात कह दी अथवा बदतमीजी कर दी तो उसका असर सारी जनता पर पड जाता है—उसे कोई रोक नही सकता, इसलिए भीड इकट्ठी होने मे ही खतरा है। मैने साफ-साफ कह दिया कि यह तो नही रुक सकता। उनके पूछने पर मैने यह भी कह दिया कि शायद दस हजार आदमी आ जायें। यह सख्या मैने उनसे-

डरते कम करके कही, क्योकि उस दिसम्बर के जाडे मे सवेरे साढे छ वजे गाडी पहुँचती थी, मुझे भय था कि शहर के लोग उस समय वडी सख्या मे जमा न हो सकेगे। अन्त मे उन्होने कहा कि भीड अगर आवेगी ही तो क्या कोई ऐसा उपाय नही हो सकता कि दोनो दलो के आदमी एक साथ न हो, अलग-अलग रहे। मैंने इसे खुशी से स्वीकार कर लिया और कह दिया कि सडक के एक ओर स्वागत करनेवाले रहे और दूसरी ओर विरोधी लोग। इसको उन्होने वहुत पसन्द किया और मैंने भी—विशेषकर इस कारण से कि इस तरह यह वात भी साफ हो जायगी कि स्वागत करनेवाले कितने कम और विरोधी कितने ज्यादा है। वात तय हो गयी। मैंने कह दिया कि हमारा कोई आदमी काठ के वने वॉध के वाहर नही जायगा—हम शहर की ओर सडक से उत्तर और दूसरे पक्ष के लोग सडक से दक्खिन, रेलवे लाइन के पास, रहेगे।

दूसरे दिन प्राय तीन वजे रात को ही हम लोग उठे। सारे शहर मे प्रभात-फेरी लगने लगी। भीड स्टेशन की तरफ उमड चली। छ वजते-वजते प्राय २५-३० हजार लोगो की भीड हम लोगो के अहाते मे आ गयी। उधर तो कुछ लोग मोटर पर सवार होकर आये, कुछ लारियाँ शहर मे लोगो को जुटाकर लाने के लिए घूमती रही, पर शायद ही डेढ दो सौ आदमी उधर के अहाते मे होगे, जिनमे अधिकाश सरकारी नौकर और उनके चपरासी वगैरह थे। ऐसा भी देखा गया कि कुछ लोग उनकी लारी पर चढकर आये और उस अहाते मे गये, पर जव उनको यह मालूम हुआ कि वह स्वागत करनेवालो का दल है और विरोधी दल सडक के उस पार है, तो वहाँ से सीधे निकलकर इधर चले आये। मै वहाँ अपने आदमियो के सामने, जिनको लकडी के कठघरे से दो हाथ अलग ही रखा था, टहल रहा था। वहाँ मिस्टर स्वेन से मुलाकात हुई। उन्होने इस इन्तजाम पर सन्तोष प्रकट किया ओर वधाई दी। मैंने उनसे पूछा कि मेरा दस हजार आदमियो के आने का वादा पूरा हुआ या नही। उन्होने कहा, उससे कही अधिक आदमी है। जव मैंने उनकी इस राय को—कि दोनो पक्ष के लोग दो तरफ रहे—मान लेने का कारण वताया, तो वह वहुत हँसे। इस तरह, वहुत ही खूवी और शान्ति के साथ प्रदर्शन हुआ। काला झडा दिखलाने और 'साइमन-गो-वैक' के नारे के सिवा दूसरा कुछ नही हुआ।

इस प्रदर्शन मे सूवे-भर के कांग्रेसी लोग वडी सख्या मे शरीक हुए थे। जव वे अपने-अपने स्थान को गये तो इस उत्साहपूर्ण प्रदर्शन की कथा साथ लेते गये। इससे सारे सूवे मे उत्साह उमड उठा। कुछ दिनो तक तो जहाँ-तहाँ सडको पर, यो ही विना समझे, छोटे-छोटे वच्चे भी 'साइमन-गो-वैक' चिल्लाया करते। इन और इस प्रकार के कारणो से देश मे नयी जागृति के लक्षण दीखने लगे थे। ऐसा मालूम होने लगा कि १९२१ के दिन फिर लौटेगे। इसी वीच कलकत्ते मे कांग्रेस का अधिवेशन और सर्वदल-सम्मेलन होने के दिन आ गये। सर्वदल-सम्मेलन के सभापति डाक्टर अनसारी थे और कांग्रेस के पडित मोतीलाल नेहरू।

७६—कलकत्ता-कांग्रेस और सर्वदल-सम्मेलन

मै सर्वदल-सम्मेलन मे शरीक तो हुआ, पर पहले से सभी बातो को जानता नही था, इसलिए कुछ विशेष वहाँ करता न था। एक रात, मुझे स्मरण है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या के कुछ प्रश्नो पर बाते होने लगी। यह पूरा सम्मेलन नही था, कुछ मुख्य-मुख्य लोग इसमे थे। वहाँ मिस्टर जिन्ना ने, जहाँ तक मुझे याद है, दो बातो पर बहुत जोर दिया। वह चाहते थे कि केन्द्रीय असम्बली मे मुसलमानो के लिए एक तिहाई जगहे सुरक्षित रहनी चाहिए और सूबो को उन सभी विषयो पर अधिकार मिलना चाहिए जो केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को साफ तौर पर विधान मे दे दिये गये हों। मुझे याद है कि इन बातों पर बहुत रात तक बहस चलती रही। पर लोगो ने इसे स्वीकार नही किया। विरोधियो मे सबसे जबरदस्त श्री जयकर मालूम होते थे। उनके साथ हिन्दू-सभावाले लोग थे, पर बोलनेवाले वही एक थे। अन्त मे यह बात तय न हो पायी। सम्मेलन ने यह नीति रक्खी थी कि जिस विषय पर सबकी राय न हो उसके सम्बन्ध मे नोंट कर लिया जाय कि इस विषय मे किसकी क्या राय है। खुले सम्मेलन मे मौलाना महम्मद अली ने भी कुछ सशोधन पेश किये, जिनको लोगो ने बहुमत से नामजूर कर दिया। सम्मेलन ने उपरोक्त तरीके से अपना काम तो समाप्त किया; पर यह जाहिर हो गया कि मुसलमानो के साथ- बात नही पटी। इसी का नतीजा हुआ कि इस सम्मेलन के समाप्त होते ही मुसलमानों का भी एक सर्वदल-सम्मेलन हुआ, जिसमे अनेकानेक कांग्रेसी मुसलमान भी जा मिले। उनमे मुख्य अली बन्धु-द्वय, मौलवी महम्मद शफी प्रभृति थे। यहाँ से साफ-साफ मुसलमानों का एक प्रभावशाली दल कांग्रेस से अलग हो गया। इस प्रकार, जिस समस्या के हल के लिए यह सम्मेलन हुआ था वह अधिक जटिल हो गयी, जिसका बुरा नतीजा आगे और देखने मे आया। मिस्टर जिन्ना ने इसके बाद ही मुसलमानो की ओर से अपनी चौदह मांगे पेश की, जिनकी मजूरी को उन्होने किसी भी समझौते के लिए अनिवार्य बतलाया।

उधर कांग्रेस मे नेहरू-रिपोर्ट को लेकर स्वराज्य की परिभाषा के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद था। पहले कहा जा चुका है कि प० जवाहरलाल, सुभाष बाबू, श्री ऐयगर प्रभृति पूर्ण स्वराज्य को ही कांग्रेस का ध्येय स्वीकार कराना चाहते थे। दूसरे लोग केवल 'स्वराज्य' शब्द से ही सन्तुष्ट थे और सोचते थे कि यह शब्द हमे इस बात के लिए पूरा मौका देता है कि जब समय आयेगा तब हम निश्चय कर सकेंगे कि हम औपनिवेशिक स्वराज्य से सन्तुष्ट रहेगे अथवा पूर्ण स्वतन्त्रता ही लेंगे। नेहरू-रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्य को ही ध्येय मानकर तैयार की गयी थी। दूसरा कुछ हो भी नही सकता था, क्योकि उसके तैयार करने मे नरम दल के लोगो का—विशेषकर सर तेजबहादुर सप्रू प्रभृति का—पूरा हाथ था। यदि वह न मानी जाती तो शायद वह योजना तैयार होकर एक सर्व-दल-सम्मेलन के सामने तक पहुँच नही

पाती। इसलिए, यदि कांग्रेस उस मौलिक भित्ति को ही अपने प्रस्ताव से वदल देती, तो नेहरू-रिपोर्ट उस हद तक भी सर्वमान्य होती जिस हद तक उसे सर्व-दल-सम्मेलन ने स्वीकृत किया था। कांग्रेस की विषय-निर्धारिणी समिति मे इस विपय पर वहुत वहस हुई। महात्माजी का विचार था कि नेहरू-रिपोर्ट मजूर की जाय। पर गाधीजी हमेशा अपने विचार के विरोधियो के साथ राय कर लेने के लिए तैयार रहते है। अत मे उन्होने पूर्ण स्वराज्य के समर्थको के साथ, जिनके मुखियो के नाम मै ऊपर दे चुका हूँ, यह समझौता कर लिया कि एक वरस तक कांग्रेस का ध्येय जैसा है वैसा ही रहे—यदि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस वर्ष के भीतर नेहरू-रिपोर्ट को मान लेती है और हिन्दुस्थान को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देती है तो ठीक, नही तो एक वरस के वाद कांग्रेस पूर्ण स्वतत्रता को ही अपना ध्येय मान लेगी और उसी के लिए काम करेगी, अर्थात् एक वरस के भीतर मिल जाय तो हम औपनिवेशिक स्वराज्य से ही सन्तुष्ट होगे, नही तो फिर औपनिवेशिक स्वराज्य की बात ही न रहेगी, कांग्रेस पूर्ण स्वतत्रता पर ही अडी रहेगी। यह तय हो जाने पर हम सबने समझा कि अव मामला तय हो जायगा। पर दूसरे दिन सुभाष बाबू की ओर से मालूम हुआ कि वह इस समझौते को नही मानते। इससे महात्माजी को बहुत दु ख हुआ, क्योकि पूर्व-रात्रि मे सुभाष बाबू ने उसे मान लिया था। मालूम होता है कि उनके साथियो और अनुयायियो ने इसे पसन्द नही किया, इसलिए वह फिर मुकर गये। पडित जवाहरलाल और श्री श्रीनिवास ऐयगर, चाहे वे पसन्द न भी करते हो, समझौते पर अडे रहे। महात्माजी ने इस वात की कडी आलोचना भी की थी। अन्त मे महात्माजी ने उस समझौते के प्रस्ताव को पेश किया और वह स्वीकृत हो गया।

इस कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी मे और विपयो पर भी मतभेद रहा। ऐसा मालूम होता था कि कुछ लोग गाधीजी की नीति से सन्तुष्ट नही है—जैसे कुछ कम्युनिस्ट लोग, जिनमे मुख्य थे श्री निम्वकर और श्री मोगलेकर, जो अखिल भारतीय कमिटी मे वहुत वोला करते थे। इस कांग्रेस मे एक विशेष घटना यह हुई कि कलकत्ते के मजदूरो का एक वहुत वडा दल, प्रदर्शन करने के लिए जलूस वनाकर, कांग्रेस-नगर तक पहुँचा। वह कांग्रेस-पडाल मे जाना चाहता था। कुछ लोगो का अनुमान था कि उनका इरादा पहले मे ही पडाल मे जाकर वैठने का था, ताकि अधिवेशन के समय वे वहाँ से हटे नही और इस तरह सव काम तितर-वितर कर दे। पर शायद ऐसी उनकी इच्छा नही थी, क्योकि महात्माजी ने आकर उनमे कुछ कहा और वे लौटकर चले गये। इस कांग्रेस की स्वागत-समिति से विहार के लोगो का कुछ मतभेद, प्रवन्ध के सम्वन्ध मे, हो गया। विहार के सभी प्रतिनिधियो ने कांग्रेस मे जाने मे इनकार कर दिया। सुभाष वावू को यह खवर मिली। वह स्वय आये। उन्होने शिकायत को दूर कर देने का वचन दिया। तव लोग कांग्रेस के अधिवेशन मे शरीक हुए।

कलकत्ता-कांग्रेस का अधिवेशन एक प्रकार से वडे महत्त्व का हुआ। पूर्ण स्वतन्त्रता का ध्येय इसी ने एक तरह से स्वीकार कर लिया, क्योकि इसी ने निश्चय किया

कि औपनिवेशिक स्वराज्य से कॉंग्रेस एक बरस के बाद कदापि सन्तुष्ट न होगी। हो सकता है कि कांग्रेस मे बहुत लोग ऐसे भी हों जो समझते हो कि यह प्रस्ताव मान तो लिया गया, पर एक बरस के बाद फिर देखा जायगा। किन्तु गाधीजी कांग्रेस के प्रस्तावो को बहुत महत्त्व देते हैं—विशेषकर उस हालत मे जब उनमे कोई वादा या प्रतिज्ञा की गयी हो। इसलिए, उन्होने तो मान लिया कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को १९२९ के ३१ दिसम्बर के पहले ही कुछ करके तय कर लेना चाहिए, नही तो अगले अधिवेशन मे कांग्रेस को पूर्ण स्वराज्य अपना ध्येय बना लेना ही पडेगा।

मै इस विषय मे दुविधा मे था। ब्रिटिश विधान का मै पक्षपाती था। मै मानता था कि उपनिवेशों को अपने कारबार चलाने की पूरी स्वतत्रता है। इसलिए, यदि हमको भी वह स्वतत्रता मिल जाय तो हमारे लिए वही काफी समझना चाहिए। पूर्ण स्वतत्रता तो गौरव का विषय अवश्य है, पर अन्त मे दुनिया की जातियो और देशो के बीच किसी न किसी प्रकार का ऐसा समझौता जरूर करना पडेगा जिससे वे एक दूसरे के साथ बँधी रहे। यदि ऐसा न हुआ तो लडाइयाँ होती रहेगी। ब्रिटिश साम्राज्य दुनिया के कई देशों के लोगो का उस प्रकार का एक सगठन है ही, उसमे शरीक रहने मे हमारी कोई हानि नही है, बल्कि कई बातों की सुविधा ही है। इसके अलावा हम अभी इतने सगठित भी नही है कि हम ब्रिटिश सरकार को मजबूर करके पूर्ण स्वतत्रता ले सके। इन्ही कारणो से मैंने मद्रास-कॉंग्रेस मे पूर्ण-स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध किया था। मुझे कभी-कभी ठेस भी लगा करती थी, जिससे ऊबकर मै कभी-कभी. पूर्ण-स्वराज्य की बात भी किया करता था। पर वह ठेस ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशो का हिन्दुस्थानियो के साथ व्यवहार से लगा करती थी—विशेषत दक्षिण अफ्रिका मे हिन्दुस्थानियो के साथ जो व्यवहार हुआ करता था उससे मै इतना घबराता था कि कभी-कभी तो मै यह भी सोचता कि ऐसे साम्राज्य के साथ सम्बन्ध रखने से ही हमको क्या लाभ, जिसके किसी भी भाग मे हमारे देशी भाइयो के साथ ऐसा बुरा व्यवहार हो सकता है। फिर मै सोचता कि जब तक हमको वही अधिकार और स्थान प्राप्त नही है जो उन उपनिवेशो को है तभी तक ऐसा होता है, जब हमको भी वैसा ही मिल जायगा तब ऐसी बात न हो सकेगी। इस प्रकार से मै अपने दिल को सन्तोष भी दिया करता था।

इसी तरह की उधेड-बुन मेरे दिल मे हुआ करती थी। मै इसी खयाल से, विशेषकर उपनिवेशो के विधान और अधिकारो के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल करने के लिए, प्रोफेसर कीथ के ग्रन्थो को पढा करता। १९२६ मे जो इम्पीरियल कान्फ्रेन्स के निश्चय हुए उन्हे भी मैंने देखा था। सब बातो पर सोच-विचार करने के बाद, बावजूद उन ठेसो के, मै उस समय तक औपनिवेशिक स्वराज्य से ही सन्तुष्ट था और पूर्ण स्वराज्य को कॉंग्रेस का ध्येय मानना अपने रास्ते की कठिनाइयाँ बढा लेना समझता था। मै उस समय प० जवाहरलाल के इस कथन को ठीक नही समझता था कि हमारी बात विदेश के लोग नही समझ सकते, क्योकि औप-

निवेशिक स्वराज्य तो अँगरेजो ने अपनी जाति और अपने देश के लोगो को ही दिया, जिनके साथ उनके हजारो प्रकार के सास्कृतिक और सामाजिक तथा धार्मिक सम्बन्ध थे, परन्तु हमारे साथ तो उनका उस तरह का एक भी सम्बन्ध नही है, ऐसी अवस्था मे न तो वे हमे दे सकेगे और न हम उसे लेकर सन्तुष्ट हो सकेगे। मेरे दिल पर स्वर्गीय गोखले की वह बात इस प्रकार जम गयी थी कि मै सहसा उसको अभी हटा नही सकता था। जब १९१० मे उन्होने मुझे सर्वेण्ट्स् आफ इण्डिया सोसाइटी मे शरीक होने के लिए कहा था तभी उन्होने यह भी कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य का जो चित्र हम अपने सामने रखते है वह तो यह है कि जितने लोग इसके अन्दर है सभी बराबरी का दर्जा पायेगे और सभी मिलकर इसका प्रबन्ध करेगे, इसलिए जब वह समय आ जायगा तब साम्राज्य रह ही नही जायगा और अगर रहा भी तो अपनी बहुल सख्या के कारण भारतीय इसको अपना साम्राज्य बना लेगे। मै यही सोचता था कि सचमुच हमको भी यदि वही स्थान और अधिकार मिल जायँगे, जो इँगलैड और दूसरे उपनिवेशो को मिले है, तो वास्तव मे हमे इससे अधिक की आवश्यकता न होगी। जो हो, कलकत्ते मे काँग्रेस ने निश्चय कर लिया कि १९२९ के अन्दर ही औपनिवेशिक स्वराज्य होना चाहिए।

७७—मेरे लिए एक दुःखद घटना

ऊपर मै कह चुका हूँ कि देश मे नयी जागृति के चिह्न दीखने लगे थे। कलकत्ते से लौट कर गाधीजी ने भी कॉग्रेस के काम मे बहुत अधिक मनोयोग देना शुरू किया। १९२९ के अन्दर और भी घटनाएँ हुई, जिनके फलस्वरूप जागृति बहुत बढ गयी। गाधीजी का विचार हमेशा यह था कि हमारे देश की गरीबी के कारणो मे एक मुख्य कारण यह है कि इस देश से कपडे का व्यवसाय अँगरेजो ने उठा लिया है, जिसका फल यह हुआ है कि चर्खे-कर्घे बन्द हो गये और करोडो गरीबो की रोजी का जरिया उनके हाथो से छिन गया। इसलिए, वह चर्खे को फिर जिलाना चाहते थे। खादी-सम्बन्धी सारी प्रवृत्ति इसी कारण प्रेरित की जा रही थी। वह चाहते थे कि भारत मे एक सूत भी विदेशी न आवे। वह इस वस्त्र-व्यवसाय को जगाना चाहते थे जिसमे फिर गरीबो की वह रोजी लौट आवे। इसके लिए वह हर तरह के विदेशी कपडो का भारत मे आना बन्द करना चाहते थे, केवल इँगलैड के ही कपडे का नही। दूसरे लोग विदेशी कपडे के बहिष्कार का अर्थ अक्सर अँगरेजी कपडे का ही बहिष्कार मान लिया करते थे। उन लोगो की इसमे विशेष दिलचस्पी नही थी कि भारत मे यह व्यापार गाँव-गाँव मे फिर से जारी हो जाय। वे इतने मे ही सन्तुष्ट हो जाते कि सिर्फ अँगरेजी कपडा न आवे। वे यह मानते थे कि केवल अँगरेजो के साथ हमारा झगडा है, इसलिए उनके ही देश के सामान का हम बहिष्कार करे और इस तरह उन पर जोर डाले तथा अपनी माँग मानने के लिए उन्हे मजबूर करे। गाधीजी इस प्रकार के बहिष्कार को हिंसामूलक समझते थे और बराबर इसे रोकते थे। कलकत्ता-

काँग्रेस के बाद स्वदेशी की लहर एक बार और चली। गाधीजी ने उसे केवल ब्रिटिश-माल-बहिष्कार का रूप न देकर विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का रूप दे दिया। वह केवल बहिष्कार से ही सन्तुष्ट न थे। उसके साथ-साथ वह चर्खा-प्रचार भी उतना ही आवश्यक समझते थे। चर्खा-प्रचार का काम तो चर्खा-सघ कर रहा था। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के लिए एक कमिटी बनायी गयी, जो इसके लिए बहुत जोरो से प्रचार करने लगी। १९२९ का साल इसी काम मे लगा। जो कुछ भी जागृति हुई, उससे इसको लाभ पहुँचा और इसका असर उस जागृति पर पडा।

गाधीजी ने कई जगहों पर विदेशी वस्त्रो को जलवाया, जिससे जनता मे अधिक उत्साह बढने लगा। कलकत्ते मे वह एक दिन के लिए आये। बरमा जा रहे थे, रास्ते मे ठहर गये। वहाँ पर लोगो ने सार्वजनिक सभा की। उसमे विदेशी वस्त्र जलाने का भी प्रबन्ध किया। विदेशी वस्त्र जलाये गये। पर पुलिस ने इसके पहले ही किसी भी स्क्वायर मे इस तरह की कार्रवाई करने की मनाही कर दी थी। सभा हो गई। कपडे जला भी दिये गये। हम सब वहाँ से चले भी आये। तब पुलिस ने आकर आग बुझा दी। जो लोग वहाँ रह गये थे उन्हे तितर-बितर कर दिया। दूसरे दिन महात्माजी पर मुकदमा चला जिसकी सुनवाई प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट के सामने हुई। गाधीजी तो कुछ बोलना नही चाहते थे, पर वकीलो ने बहुत बहस की कि यह कार्रवाई गैरकानूनी थी और जिस कानून के आधार पर यह मुकदमा जारी हुआ था वह लागू नही था। पर मिस्टर रौक्सबरा ने, जो अब कलकत्ता-हाइकोर्ट के जज है, फैसला खिलाफ दिया। गाधीजी पर एक रुपया उदूल-हुक्मी के लिए जुर्माना किया। गाधीजी रगून चले गये थे। वहाँ से उनके लौटने के बाद ही इसका निपटारा हुआ।

इसी समय, कलकत्ते मे गाधीजी के रहते-रहते, एक और बात हुई, जिसके साथ मेरा निजी सम्बन्ध था। घटना दु खद है, पर सक्षेप मे लिख देना आवश्यक जान पडता है। १९२१ मे ही खादी-प्रचार का काम आरभ किया गया था। हमारे सूबे मे श्री रामविनोद सिंह ने बहुत उत्साह और योग्यता के साथ इसको शुरू किया था। पहले बतला चुका हूँ कि उनकी सफलता और कार्य्य-कुशलता से प्रभावित होकर उन्हे तिलक-स्वराज्य-फड से पचीस हजार ऋण दिया गया था, जिससे उन्होने खादी के काम को बहुत आगे बढाया था। यह भी लिख चुका हूँ कि अपने साथियो से उनका मतभेद हो गया, क्योकि उनके विचार से इस सस्था को रामविनोद बाबू ने अब अपनी निजी सम्पत्ति बना ली थी। ऋण के लिए सिफारिश करनेवाले आचार्य कृपालानी भी इसी निश्चय पर पहुँच गये थे। वह भी जोर लगा रहे थे कि चर्खा-सघ उनसे रुपये वापस ले ले। बिहार-शाखा का एजेण्ट होने के कारण यह भार मेरे सिर पर आ जाता था। चर्खा-सघ के प्रान्तीय मन्त्री श्री लक्ष्मीनारायण ने, चर्खा-सघ के निश्चय के अनुसार, रुपयो का हिसाब माँगा। हिसाब मे उनके और रामविनोद बाबू के बीच मतभेद हो गया। बात गाधीजी तक पहुँची। उन्होने आज्ञा दी कि श्री सतीशचन्द्र दास ुप्त इस बात की जाँच करके रिपोर्ट करे।

सतीश वावू ने कलकत्ते मे ही जाँच की। लक्ष्मी वावू वगैरह वहीं सव कागज-पत्र लेकर गये थे। मै भी था। मै इस जाँच मे शरीक नही हुआ था, पर उनकी रिपोर्ट से मुझे दु ख हुआ। रुपये तो कम या वेश जो कुछ वाकी हो, श्री रामविनोद सिंह से विहार-चर्खा-सघ को ही पाना था। पर उन्होने रिपोर्ट मे विहार-शाखा की अयोग्यता की शिकायत की। हिसाव भी जैसा रामविनोद वावू कहते थे वैसा ही स्वीकार किया। मैने उसे देखा तो मुझे वहुत वुरा लगा—इसलिए ही नही कि विहार-शाखा के विरुद्ध फैसला था, वल्कि इसलिए कि उन्होने अपने अधिकार की सीमा से वाहर जाकर विहार-शाखा को अकुशल और अव्यावहारिक ठहराया था। मैने महात्माजी से कहा कि मै इस फैसले से वहुत असन्तुष्ट हूँ, आपको स्वय हिसाव देखना-समझना होगा, क्योंकि एक ओर सार्वजनिक सस्था है जिसके सचालन का काम कई त्यागी और सच्चे सेवक वहुत उत्साह और परिश्रम के साथ कर रहे है तथा दूसरी ओर एक कार्य्यकर्त्ता है जो व्यवहार-कुशल है और जिन्होने खादी-प्रचार का वहुत काम भी किया है, पर जिनके विरुद्ध शिकायत है कि वह सार्वजनिक सस्था के धन द्वारा वनी-वनायी सस्था को अपनी निजी सम्पत्ति मान बैठे है—इसमे भी कोई हर्ज नही, क्योकि उन्होने परिश्रम और समय लगाया है, पर चर्खा-सघ के रुपये तो ठीक वापस मिल जाने चाहिए।

वरमा से गाधीजी के लौटने पर, कलकत्ते मे, जव सव वाते उनके सामने पेश की गई तव उन्होने सव कुछ स्वय देखने का वचन दिया। वात वहुत दिनो तक चलती रही। हिसाब की जाँच के लिए महात्माजी ने श्री नारायणदास गाधी को तैनात किया। अन्त मे, जो हिसाव चर्खा-सघ की ओर से पेश किया गया था उसे ही श्री. नारायणदास ने ठीक समझा। गाधीजी ने रामविनोद वावू से कहा कि इसमे यदि भूल है तो हमको समझाओ। इसके लिए दिन भी नियत किया गया। पर वात आगे वढी नही, वही की वही रह गयी। हाँ, गाधीजी ने समझ लिया कि हमने जो वात कही थी वही ठीक है।

इस घटना को मै दु खद इसलिए मानता हूँ कि इसके चलते रामविनोद वावू और श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त के सम्वन्ध मे यहाँ कुछ लिखना पडा। इससे भी अधिक दु ख मुझे उस समय की सारी वातो से हुआ था। सार्वजनिक जीवन मे हमे इस तरह अनेक वार ऐसे काम करने पडते है जिनको हम व्यक्तिगत हसियत से करना पसन्द नही करते, पर जिन्हे कर्त्तव्य के अनुरोध से तो अप्रिय होने पर भी करना ही पडता है। श्री रामविनोद सिंह को मै उस समय से जानता हूँ जव वह भागलपुर-कालेज मे पढते थे और प्रथम जर्मन-युद्ध के समय नजरवन्द किये गये थे। उस समय की मुलाकात, गाधीजी के चम्पारन आने पर, अधिक गहरी हो गयी। असहयोग-आन्दोलन मे, विशेपकर खादी को लेकर, उनसे मेरा सम्पर्क ही नहीं वडा, वल्कि उनकी कार्य्यकुशलता मे मेरा विश्वास भी और वढ गया। ऐसे व्यक्ति के सम्वन्ध मे कुछ भी कहना पडे तो वह दु खद होता ही है। सतीश वावू के लिए मेरे हृदय

मे जो श्रद्धा और प्रेम है, वह मैं कहना नही चाहता। उनकी कार्य-क्षमता और उनका त्याग अतुलनीय है। उनकी भी कृपा मेरे ऊपर रहती है। इसलिए यह दुर्घटना स्वभावत मेरे लिए बहुत दु खद हुई थी।

७८—राजबन्दियों का वर्गीकरण

१९२९ मे एक बहुत मशहूर षडयत्र का मुकदमा, 'लाहौर-कौन्सपिरेसी केस' के नाम से, लाहौर मे चला। इसके अभियुक्त थे सरदार भगतसिह। मुकदमा बहुत दिनो तक चला। मुजरिम लोगो ने जेल के अन्दर, असुविधाओं के विरुद्ध, अनशन कर दिया। अनशन कई दिनो तक चला। अनशन करनेवालों मे से एक नवयुवक श्री यतीन्द्रनाथ दास, साठ दिनो के बाद, शहीद हो गये। इस मुकदमे की खबरे अखबारो मे छपा करती। अनशन की खबरे भी लोग पढा करते। सारे देश मे काफी सनसनी थी। जब श्री यतीन्द्रनाथ की मृत्यु हो गयी, यह सनसनी और भी ज्यादा बढ गयी। उनके शव को गवर्नमेण्ट ने उनके मित्रो को दे दिया। वह रेल पर बडे सम्मान के साथ लाहौर से कलकत्ते लाया गया। जिन शहरों से होकर वह गाडी आयी उनके स्टेशनो पर बडी भीड लगी। लोगो ने शव पर पुष्प-हार चढाये तथा दूसरे प्रकार से भी उसकी प्रतिष्ठा की। जो जागृति कुछ पहले से ही हो रही थी वह और भी अधिक हो गयी। सारे देश मे बडा उत्साह उमड आया। श्री यतीन्द्रनाथ की मृत्यु का एक फल यह भी हुआ कि गवर्नमेण्ट ने कैदियो का—उनके रहन-सहन, शिक्षा इत्यादि के हिसाब से—तीन भागो मे वर्गीकरण कर दिया। यह तुरत तो न हो पाया, पर जब १९३० मे सत्याग्रह हुआ तो सत्याग्रही कैदी भी तीन वर्गो मे बाँटे गये। थोडे लोगो को ए० क्लास मिला, उनसे कुछ अधिक को बी० क्लास और बहुत बडी सख्या सी० क्लास मे ही रक्खी गयी। गवर्नमेण्ट ने इस बात को मजूर नही किया कि राजनीतिक कैदियो का एक अलग वर्ग या क्लास होना चाहिए। यह प्रश्न अभी तक ज्यो का त्यो है।

जिस तरह का वर्गीकरण गवर्नमेण्ट ने किया वह हमारे लिए हानिकारक है। यह सच ह कि जो आदमी अपने घर पर बहुत आराम से रहता आया है वह जेल मे भी उसी तरह से रखा जाय, वही भोजन उसे दिया जाय, वही कपडे उसे पह-नाये जायँ, जो मजदूरी करनेवाले गरीबो को मिलते है, तो उसकी सजा उसके लिए कही अधिक कष्टकर हो जाती है। और, यदि कानून की मन्शा जुर्म के लिए सबको समान दण्ड देना है तो इस तरह उसकी सजा यही अधिक हो जाती है। यही कहकर तीन विभागो मे कैदी बाँटे गये। परतु, जो लोग एक साथ काम कर रहे है और एक ही काम मे लगे हुए है वे जेल के भीतर जाने पर यदि एक दूसरे से अलग कर दिये जायँ—इधर कुछ को सोने के लिए चारपाई मिले, भोजन मे थोडा दूध-घी भी रहे, चिट्ठी लिखने और मुलाकात करने की सुविधाएँ भी अधिक हो, और उधर अधिकाश को मिला करे लोहे के तसले मे मोटे चावल का भात, लोहे के

वर्तन मे वनने के कारण अधिक पानीवाली काली दाल, नाममात्र की तरकारी, पहनने के लिए छोटा जाँघिया, अधबँहिया कुर्ता, तथा उनके साथ जेल के अधिकारियो का वर्ताव भी उन कैदियो के समान ही हो जो चोरी इत्यादि के लिए जेल मे बन्द हो, तो उन अधिकाशो के मन मे असन्तोष पैदा होना स्वाभाविक है। मालूम नही, गवर्नमेण्ट ने किस नियत से इस प्रकार का वर्गीकरण किया है।

राजनीतिक कैदियो का एक ही वर्ग हो, जो सुविधा ए० अथवा वी० वर्ग को मिलती है उससे उन्हे कम भी मिले, पर बर्ताव सवके साथ समान हो—इसके लिए की गई आज तक की सभी कोशिशे निष्फल हुई है। गवर्नमेंट अपनी सुविधा के लिए राजनीतिक कैदियो को एक प्रकार से अलग करती है, पर यह कहने पर कि वे अलग समझे जायँ और उनके साथ भिन्न व्यवहार हो, हमेशा यह कह दिया जाता है कि गवर्नमेट राजनीतिक तथा अन्य कैदियो मे कोई फर्क नही समझती। बिहार-प्रान्त मे, १९३० के आन्दोलन मे, १२ से १४ हजार तक, सत्याग्रह के कारण राजनीतिक कैदी हुए। पर इनमे २० से अधिक को ए० क्लास नही मिला। बी० क्लासवालो की सख्या तीन से चार सौ तक होगी, इससे अधिक नही। बाकी सबके सब सी० क्लास मे रक्खे गये। वर्गीकरण भी जिला-मजिस्ट्रेट या किसी दूसरे अधिकारी की इच्छा के अनुसार ही हुआ करता था। सेठ जमनालाल बजाज का लडका सी० क्लास मे रक्खा गया। एक ही घर का एक भाई ए० या बी० मे रक्खा गया और दूसरा सी० मे। इस तरह की गडबडी बहुत रही। इसके अलावा, बिहार मे सी० क्लासवालो की एक वडी—यानी चार-पाँच हजार की—जमायत पटना-कैम्प-जेल मे रक्खी गयी। यह जेलखाना खुले मैदान मे, जहाँ कोई वृक्ष नही, टिन की दीवारों और छप्परो का वना था। बरसात मे, जमीन नीची होने के कारण, नीचे के फर्श मे नमी या सील हो जाती थी। गरमी मे टिन के दीवार-छप्पर तप जाते थे। मारे गरमी के लोग परेशान हो छटपटा जाते थे। सर्दी मे टिन वाहर की सर्दी को रोक नही सकता था। कभी-कभी तो हवा की नमी टिन मे लगकर पानी हो जाती और विना वरसात के ही वर्षा होने लगती। कैदियों के कष्टो का कुछ ठिकाना न था। इन सवका नतीजा यह हुआ कि सी० क्लासवालो मे बहुत असन्तोप पैदा हुआ। असन्तोष का कुछ हिस्सा उनके प्रति भी था जिनको ए० या वी० क्लास मिला था। मनुष्य मे मामूली तौर पर डाह की कुछ मात्रा होती ही है। कुछ लोग इसके शिकार हो ही गये, यद्यपि इस वर्गीकरण मे ए० वी० क्लासवालो का कोई दोप नही था।

हाँ, ऐसा भी कही-कही हुआ होगा कि कोशिश-पैरवी कराकर लोगो ने ए० या वी० क्लास लिया हो, यद्यपि ऐसे लोगो की सख्या थोडी ही होगी। ऐसा भी किसी ने नही किया कि वह अपना ए० या वी० क्लास छोड दे और दरखास्त देकर सी० क्लास करा ले। कही-कही कुछ ए० या वी० क्लासवालो ने अपना खाना छोडकर कुछ दिनो तक सी० क्लास का भोजन लिया, पर यह वहुत दिन तक नही चला। इसमे कोई शक नही कि इस प्रकार के वर्गीकरण मे कांग्रेमी कार्य्यकर्त्ताओ मे कुछ मनोमालिन्य

वढा, पर ऐसा न समझना चाहिए कि यह मनमुटाव वहुत वडे पैमाने पर हुआ। सी० क्लासवालो मे अधिक से अधिक सख्या ऐसे लोगो की ही रही जिनमे इतनी उदारता थी कि उन्होंने खुद समझा और दूसरो को भी समझाया कि वर्गीकरण मे हम लोगो का हाथ नही है—जो जेलखाने भेजता है वह जिसे जहाँ भेजता है, जिसे जिस तरह रखना चाहता है, उसे वहाँ जाना पडता है और वैसे रहना पडता है। एक ही कसूर के लिए अगर एक आदमी को तीन महीनों की और दूसरे साथी को तीन साल की कैद मिलती है, तो जिस तरह इसके लिए तीन महीनेवाले की शिकायत नही की जा सकती, उसी तरह ए० वी० क्लासवाले की शिकायत भी वेजा है। यह सब होते हुए भी, कुछ लोगो के दिल मे तो वर्गीकरण के कारण दूसरो के प्रति अश्रद्धा हो ही गयी।

गाधीजी का विचार हमेशा रहा है कि हमे कैदी कैदी मे फर्क नही करना चाहिए, यदि सब राजनीतिक कैदी अपना अलग वर्ग बना लेगे तो दूसरे गरीब जो जेल मे आते है, चाहे उनका जो भी कसूर हो, उसी हालत मे पडे रह जायँगे जिसमे वे अब तक रहे है, इसलिए हमको यदि आन्दोलन करना हो तो इसलिए करे कि सभी कैदियो की हालत मे सुधार हो। ठीक इसी नीति के अनुसार गाधीजी तीसरे दर्जे के डब्बे मे चलते है और चाहते है कि दूसरे बडे लोग भी चले तो रेल के तीसरे दर्जे की हालत सुधर जाय। पर काँग्रेस के अन्दर भी सभी लोग इस मत के नही है। इसलिए अभी तक कुछ ऐसा नही हो पाया। जब मै पहले जेल मे गया तो मेरा विचार होता था कि इस मामले का निपटारा वाहर से अधिक सुगमता-पूर्वक हो सकेगा, मै कैदियो द्वारा आन्दोलन कराना पसन्द नही करता था। पर अब मेरा विश्वास हो गया है कि इस सम्बन्ध में जो कुछ करे, कैदी ही कर सकते है—बाहर के लोग विशेष कुछ नही कर सकते। हाँ, यदि समझदार लोगों के हाथो मे अधिकार आ जाय तो वे शायद कुछ कर सके। अब तक अनुभव भी यही वतलाता है कि कैदियो की हालत मे जो कुछ थोडा-बहुत सुधार हुआ है वह कैदियो के आन्दोलन के कारण ही हुआ है। जो थोडी सुविधाएँ लोगो को मिली है, वह भी श्री यतीन्द्र दास के प्राणत्याग का ही फल है।

७९—जमशेदपुर के मजदूरों की हड़ताल

विहार मे जमशेदपुर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँ हिन्दुस्थान का ही नही, सारे एशिया का सबसे वडा लोहे का कारखाना है, जो ससार के वडे कारखानो मे भी शायद दूसरा या तीसरा स्थान रखता है। उसके साथ अनेक दूसरे कारखाने भी है, जो उसके मुकावले मे तो छोटे है, पर यदि वह न होता तो वडे ही समझे जाते। जाहिर है कि ऐसे शहर मे मजदूरो का प्रश्न एक अत्यन्त महत्त्व का प्रश्न होता है। इस सूबे मे मजदूरो का सगठन एक विशेष महत्त्व रखता है, क्योकि यहाँ कोयले की खाने भी सभी सूबो से ज्यादा है। ऊख के कारखाने भी, युक्तप्रान्त छोडकर, इसी सूबे मे सबसे अधिक है। सब सूबो से अधिक चीनी यही वनती है।

मै स्वय मजदूरो के प्रश्न मे कभी दिलचस्पी नही लेता था। उसका कारण यह

नही था कि मै इसके महत्त्व को नही समझता था, बल्कि कारण यह था कि मेरे हाथ मे दूसरा काम इतना ज्यादा था कि इसे हाथ मे लेने की मेरी हिम्मत न पडती थी। कोई दूसरा भी इसे हाथ मे लेना नही चाहता था। इसका नतीजा यह हुआ कि हम इस मामले मे बहुत पीछे पड गये। जमशेदपुर, झरिया इत्यादि स्थानो मे, स्थानीय लोगो ने अथवा अन्यत्र से आकर बाहर के लोगो ने, कुछ किया। पर वह हमको सन्तोषप्रद नही प्रतीत होता था। मै १९२१ से ही जब-तब जमशेदपुर जाया करता था। कांग्रेस का प्रचार-कार्य करके चला आता। उसी तरह झरिया के साथ भी मेरा वैसा ही सम्बन्ध था। मजदूरो के सगठन को मैने कभी अपने हाथ मे नही लिया। जमशेदपुर मे एक सघ बना था, जिसके सभापति दीनबधु एण्डरूज हुए थे। गाधीजी वहाँ गये थे। ताता-कम्पनी के डाइरेक्टर स्वर्गीय आर० जी० टाटा आये थे। मै भी गाधीजी के साथ था। मजदूर-सघ को श्री टाटा ने मान लिया। वह कुछ काम करता चला आया। श्री एण्डरूज वहाँ रहते नही थे, कभी-कभी आ जाया करते थे। इसलिए, यद्यपि उनकी सहानुभूति से लाभ तो होता तथापि सगठन उतना मजबूत नही हुआ जितना होना चाहिए।

मजदूरो की शिकायतो के कारण १९२८ मे वहाँ हडताल हुई। हडताल कुछ दिनो तक चली। श्री सुभाषचन्द्र बोस कलकत्ते से आये। मजदूर-सघ के वह सभापति हुए। अन्त मे उन्होने ताता-कम्पनी के साथ समझौता किया। पर इस समय वहाँ मजदूरो के सगठन मे एक दूसरे सज्जन दिलचस्पी लेने लग गये थे। उन्होने इस समझौते को मन्जूर नही किया। कुछ मजदूरो को लेकर उन्होने अलग सघ कायम कर लिया। श्री सुभाषचन्द्र के विरुद्ध उनकी ओर से बुरी तरह का प्रचार होने लगा। पर बात तो तय हो गयी थी और सब मजदूर अब एक मत के नही थे, इसलिए कम्पनी को और कुछ करना नही पडा। यह सब मेरी गैरहाजिरी मे हुआ था। वहाँ मजदूरो मे दो दल हो गये थे। उनकी सस्थाएँ भी दो थी। इन दोनो मे आपस का मनोमालिन्य भी काफी था।

इसी समय वहाँ एक दूसरी कम्पनी के कारखाने मे, जिसका नाम टिन-प्लेट-कम्पनी है, हडताल हुई। वहाँ के लोगो ने भी श्री सुभाषचन्द्र बोस की मदद माँगी। वह आये। हडताल चली। पर कम्पनी के मालिको ने बहुत कडा रुख अख्तियार किया। वे किसी तरह से मजदूरों की सुनने को तैयार नही होते थे। सुभाष बाबू ने मुझे भी खबर देकर बुलवाया। इस हडताल मे दिलचस्पी लेने के लिए मुझसे कहा। प्रोफेसर अब्दुल बारी वहाँ सुभाष बाबू की मदद कर रहे थे। मैने भी, अपने सूबे मे होने के कारण और मजदूरो की माँगों को न्याययुक्त समझकर, इस हडताल का समर्थन किया। इसके बाद उसके चलाने का प्राय सारा भार प्रो० अब्दुल बारी और मेरे ऊपर आ गया। मै कई बार वहाँ गया। हडताल प्राय ८-१० महीनो तक चलती रही। मैने गवर्नमेंट से इस बात की सिफारिश की कि वह यह मामला, 'ट्रेड्स डिस्प्युट ऐक्ट' के अनुसार, पचायत मे दे दे। पर वह इस पर राजी न हुई। तब चीफ सेक्रेटरी और

गवर्नमेण्ट के मेम्बर से मैंने भेंट की। उन्होने यही कहा कि गवर्नमेण्ट इस हडताल को गलत और अकारण समझती है, क्योकि जमशेदपुर के मजदूरो के नेता श्री होमी भी इसके विरुद्ध है। यह वही सज्जन थे जिन्होने ताता-कम्पनी मे सुभाष बाबू का विरोध करके दूसरी सस्था कायम कर ली थी। इस समय गवर्नमेण्ट को इनकी राय इसलिए ठीक जँची कि वह कुछ करना नही चाहती थी और कम्पनी की मदद करना पसन्द करती थी। जो हो, हजार कोशिश पर भी कम्पनी टस से मस न हुई। आठ-दस महीनो तक चलकर हडताल समाप्त हो गयी। पर बहुतेरे मजदूर, जिन्होने काम छोड दिया था, अपने काम पर वापस नही गये। अथवा, जो जाना भी चाहते थे उन्हे कम्पनी ने उनकी जगह पर वापस नही लिया।

८०—एक घरेलू घटना और सरकारी घोषणा का अर्थ

१९२९ का मेरा अधिक समय विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार मे लगा, जिसका रचनात्मक रूप खादी की उत्पत्ति होता है। इसके अलावा जमशेदपुर के मामले ने भी कुछ समय लिया। खादी के काम की देखभाल के लिए मै मधुबनी मे, जहाँ अब चर्खा-सघ का मुख्य केन्द्र और प्रान्तीय दफ्तर हो गया था, कुछ दिनो ठहरा रहा। काम को आगे बढाने के सम्बन्ध मे कार्यकर्त्ताओ से परामर्श किया। वही मुझे तार मिला कि मेरे भतीजा जनार्दन के एक पुत्र पैदा हुआ है। स्वभावत भाई साहब को खुशी हुई और हम सब खुश थे। पुरानी रीति के अनुसार भाई साहब ने मित्रो के अनुरोध से इस खुशी मे कुछ खर्च भी कर दिया। नाच-तमाशे के दिन तो नही थे; क्योकि उन्होने व्रत ले लिया था कि शादी-ब्याह मे भी नाच वगैरह नही करायेंगे। इसलिए, इस मौके पर भी नाच वगैरह तो नही हुए, परन्तु पूजा-पाठ हुआ। अपने नौकरो और सरोकारियो को कपडे वगैरह उन्होने खूब बाँटे। मै भी उत्सव मे छपरे गया। सब लोग बहुत खुशियाँ मना रहे थे। यहाँ यह सब इसलिए लिखना पडा कि इसका अन्त बहुत दु खद हुआ।

बच्चा बहुत सुन्दर और होनहार निकला। हम दोनो भाई उसे बहुत प्यार करते थे, क्योकि उन दिनो घर मे वही एक लडका था। १९२९ के दिसम्बर मे बीमार पडकर मै दिसम्बर और जनवरी मे अपने गाँव जीरादेई मे कुछ दिनो तक रहा। बच्चा वही था। उसको खेलाने और उसके साथ खेलने का सुअवसर मिला। कलकत्ते के श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी भी प्राय एक महीने तक मेरे साथ वही ठहरे थे। रोज-रोज के लाड-प्यार से लडके के साथ बहुत स्नेह हो गया। वह जैसे-जैसे बढता गया, स्नेह भी घना होता गया। पर जब वह पाँच साल से कुछ अधिक का हुआ तो भाई साहब की मृत्यु के दो महीने बाद वह भी पटने मे टाइफाइड से पीडित होकर जाता रहा! मै पटने मे ही था। यथासाध्य डाक्टरों ने भी उसे बचाने की चेष्टा की, पर वह सब निष्फल हुई। अब भी जब उसकी स्मृति आ जाती है, चित्त विह्वल हो जाता है, मै अपने को मुश्किल से सँभाल पाता हूँ। इसलिए, जब १९४१ मे मेरे बड़े लडके मृत्युञ्जय

के पुत्र हुआ तो मैंने सख्ती से रोक दिया कि इसके जन्म के कारण किसी प्रकार का उत्सव न मनाया जाय। मैंने आज तक अपने दिल मे बैठे हुए इस कारण को कभी किसी से कहा नही, आज ही पहले-पहल इसे यहाँ लिख रहा हूँ।

अस्तु। इस समय हिन्दुस्थान के बडे लाट लार्ड अर्विन थे। वह छुट्टी लेकर कुछ दिनो के लिए इँगलैंड गये। वहाँ पर हिन्दुस्थान की परिस्थिति के सम्बन्ध मे उन्होने बातें की। इस समय वहाँ भी मजदूर-दल का मन्त्रिमडल बना था। श्री रामजे मैकडोनल्ड प्रधान मत्री और श्री वेजवुडबेन भारत-मत्री थे। लार्ड अर्विन ने वहाँ से लौटकर ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा की। उसमे उन्होने यह कहा कि जो घोषणाएँ ब्रिटिश-सरकार की ओर से हो चुकी है उनमे भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य निहित है। शायद उन्होंने यह भी कहा कि इस विषय पर विचार करने के लिए एक गोलमेज कान्फ्रेन्स लदन मे की जायगी। यह घोषणा यहाँ की परिस्थिति देखकर की गयी थी। साइमन-कमीशन का बहिष्कार भारत के सभी दलो ने किया था। उसके विरुद्ध प्रदर्शनो मे लोगो पर लाठियाँ चली थी। देश के कई मान्य लोग भी घायल हुए थे। सारे देश मे हलचल थी। उसमे लाहौर-षड्यत्र के अभियुक्तो की भूख-हडताल ने और भी जान डाल दी थी। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का प्रचार जोर पकडता जा रहा था। कलकत्ता-कॉंग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया था कि १९२९ के भीतर यदि औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो काँग्रेस पूर्ण स्वतत्रता को अपना ध्येय बना लेगी।

गवर्नमेण्ट ने शायद सोचा था कि यह घोषणा इस अशान्ति को शान्त करने मे सफल होगी। घोषणा के अर्थ के सम्बन्ध मे पत्रो मे कुछ वाद-विवाद होने लगा। नरम दलवाले कुछ सन्तुष्ट मालूम पडने लगे। पर यदि उसकी अच्छी तरह छानबीन की जाती तो सरकार की सभी घोषणाओ की तरह उसके भी कई अर्थ निकल सकते थे और गवर्नमेण्ट अपनी सुविधा के अनुसार जब जैसा चाहती उसका अर्थ वैसा निकाल सकती थी। काँग्रेस के लोगो ने उसे कलकत्ता-कॉंग्रेस की मॉग की पूर्ति करनेवाली घोषणा नही समझा। इसका खुलासा पीछे हुआ तो मालूम हो गया कि कॉंग्रेस का सन्देह बिलकुल ठीक था और दूसरो ने अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ निकाला था जो शब्दो से नही निकल सकता था।

ठीक लाहौर-कॉंग्रेस के पहले गाधीजी और पडित मोतीलाल नेहरू लार्ड अर्विन से मिले। उन्होने वायसराय से इसका अर्थ पूछा तो मालूम हुआ कि जो उन लोगो ने समझा था वही ठीक था, दूसरो ने मनमाना अर्थ निकाला था! अभी औपनिवेशिक स्वराज्य दूर था! जो उसे आया हुआ समझे हुए थे उन्होंने श्री वेजवुडवेन के उस भाषण को, जिसमे उन्होने कहा था कि औपनिवेशिक स्वराज्य तो वास्तव मे काम कर रहा है (Dominion Status in action), वाक्चातुरी न समझ कर शाब्दिक अर्थ लगाने मे भूल की थी। यह हमारे लिए इस बात की एक चेतावनी निकली कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की घोषणाओ को खूब बारीकी के साथ देखना चाहिए, उनसे

मनमाना अर्थ नहीं निकालना चाहिए। इस चेतावनी के लिए हमें उनका अनुगृहीत होना चाहिए!

८१—मेरी बरमा-यात्रा

जब हम लोग बाबू हरिजी का मुकदमा समाप्त करके इँगलैंड से लौट रहे थे, बाबू हरिजी ने ख्वाहिश जाहिर की थी कि मैं एक बार बरमा जाऊँ और जियावाडी में जो कुछ उन्होंने किया है उसे देखूँ। मेरी भी इच्छा थी कि उनकी उस कीर्ति को भी देखूँ और बरमा-प्रान्त में भ्रमण भी करूँ। यह ख्वाहिश १९२८ में पूरी न हुई। १९२९ में बाबू हरिजी खुद बरमा गये। मैंने भी सोचा कि वहाँ जाने का यह अच्छा मौका है। इसी बीच एक और बात सामने आ गयी। जिस तरह दीवान जयप्रकाशलाल (बाबू हरिजी के स्वर्गवासी पिता) ने बरमा में, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के प्रोत्साहन से, जमीन ली थी उसी तरह एक अँगरेज नीलवर मिस्टर मिलन ने भी बरमा में बहुत जमीन ली थी। शाहाबाद जिले में वह नील का काम किया करते थे। उन्होंने भी बिहार से खासकर शाहाबाद से, किसानों को ले जाकर, बाबू हरिजी की तरह ही, अपनी जमीन पर बसाया था। कुछ और लोगों ने भी वहाँ जमीन ली थी, पर वे उसका ठीक प्रबन्ध न कर सके, अन्त में जमीन उन्होंने छोड़ दी या वह जब्त हो गयी। पर इन दो बड़े जमीन्दारों ने वहाँ बहुत बड़ी जमीन्दारी हासिल कर ली। बहुत परिश्रम और अध्यवसाय से, काफी रुपये खर्च करके, ऐसे जगलों को—जहाँ हाथी और शेर बसते थे—काट-काटकर, जमीन साफ करके इन लोगों ने बिहारियों को बसाया था। वहाँ धान, ईख और दूसरी फसलें भी पैदा होती थी। मिस्टर मिलन के रैयतों में कुछ अशान्ति-सी व्याप रही थी। रैयतों ने यहाँ पत्र भेजा था कि मैं जाकर उनकी मदद करूँ। शायद उन्होंने सुना था कि मैंने गाधीजी के साथ चम्पारन में काम किया था, इसलिए मेरी सेवा पर उनका कुछ विश्वास हो गया था। बस, इस दूसरे सुयोग को पाकर मैंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। श्री मथुराप्रसादजी के साथ नवम्बर में वहाँ गया। मिस्टर मिलन की जमीन्दारी का नाम था 'चौतगा' और बाबू हरिजी की जमीन्दरी का 'जियावाडी'। मै इन दोनो जगहो मे गया। रगून में भी कुछ दिन ठहरा। कुल मिलाकर शायद पन्द्रह दिन वहाँ रहा। और कही नही जा सका। इसलिए मडले वगैरह कुछ न देख सका।

स्टीमर का सफर मामूली था। समुद्र शान्त था। जहाज मे आराम था। हम लोग मजे में पहुँच गये। कुछ दूर से ही रगून के बौद्ध मन्दिरो के सुनहले कँगूरे और गुम्बद नजर आये। नजदीक पहुँचते-पहुँचते उनका बडा अग दीखने लगा। रगून के लोगो ने अच्छी खातिरदारी की। एक सार्वजनिक सभा में मुझे मानपत्र दिया गया। मैंने उसके उत्तर में कहा कि हिन्दुस्थान और बरमा का पुराना सम्बन्ध आज के सम्बन्ध से भिन्न प्रकार का था। भारत ने भी अपना साम्राज्य दूसरे देशो में स्थापित किया था। पर आजकल के साम्राज्य की तरह वह हिंसा, अस्त्र-शस्त्र और सैन्य-बल की नीव

पर स्थापित नही था। वह धार्मिक साम्राज्य था। भारत का सम्बन्ध दूसरो के साथ एक रेशमी डोरी से गुंथे मणियो का-सा था, जो एक दूसरे के साथ रहते तो है, पर एक दूसरे पर हुकूमत नही करते। आज भी जब ससार मे होता हुआ खून-खराबा देखता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि भारतवर्ष की वह धार्मिक एक-सूत्रता, जो सेना के बल से नही वरन् धर्म और चरित्र द्वारा ही स्थापित की गयी थी, आज के साम्राज्य से कही अधिक स्थायी और प्राणिमात्र के लिए कही अधिक लाभदायक साबित हुई है। भारतवर्ष से, विशेषकर अपने जन्मस्थान विहार से, बौद्ध धर्म एकबारगी उठ गया है, तब भी आज उसे ससार के अधिक से अधिक मनुष्य मानते है। वे लोग आज भी उस धर्म के प्रवर्त्तक के साथ सम्बन्ध रखनेवाले स्थानो को तीर्थस्थान मानते है। बुद्धदेव ने जहाँ जन्म लिया, जहाँ उन्होने सिद्धि प्राप्त की, जहाँ अपना धर्मचक्र चलाया, वे सभी स्थान आज भारत मे दुनिया के बौद्धो के लिए पुण्यतीर्थ बने हुए है। उन्ही तीर्थो के कारण ससार के बौद्ध, हमारी आज की पतित अवस्था मे भी, हमे आदर की दृष्टि से देखते है। किसी राजनीतिक साम्राज्य को यह सौभाग्य न प्राप्त हुआ है और न होगा। बरमा मे जाकर मेरे हृदय के अन्दर ये सब भाव स्वत प्रकट हो गये।

वहाँ चौतगा के रैयतो से मै मिला। मालिक तो वहाँ नही थे, विलायत मे थे, पर उनके कर्मचारी और उनके पुत्र वहाँ थे। उनसे रैयतो की शिकायतो के सम्बन्ध मे बाते हुई। रगढग से मालूम हुआ कि बाते तय हो जायँगी। पर अन्त मे विलायत से कुछ तार आ गया। हाथ मे आयी हुई सफलता भी निकल गयी! पर मुझे विश्वास है कि वहाँ के लोगो की हालत बहुत-कुछ सुधर गयी, यद्यपि सब बाते हमारे सामने तय न पा सकी।

जियावाडी मे भी रैयतो की कुछ शिकायते थी। पर बाबू हरिजी की कार्य-कुशलता और व्यवहार-पटुता के कारण वे उस समय तक उग्र रूप नही धारण कर पायी थी। हम लोगों को उनके सम्बन्ध मे कुछ करना नही पडा। कुछ दिन ठहरकर वहाँ का हालचाल देखा। वहाँ के गाँवो मे जाने पर ऐसा नही मालूम होता था कि हम बिहार से बाहर आये है। वही भोजपुरी बोली, वही कपडे, वही रहन-सहन, उसी तरह के मकान और वैसी ही खेती-बारी। मैंने मुकदमे के समय कागजो को पढा था। उनको पढ़ने से ही बाबू हरिजी की कार्य-दक्षता और प्रवन्ध-शक्ति का मै कायल हो गया था। अब उस एक समय के, अर्थात् ३० बरस पहले के, जगल को लहलहाते हुए गाँवो के रूप मे देखकर और भी श्रद्धा हो गयी। आज उनमे हजारो बिहारी रहते और खेती करके सुख से जीवन बिताते है तथा बाबू हरिजी को भी लाखो रुपयो की सालाना आमदनी दे देते है। हमारे सामने उन्होने रैयतो की एक सभा भी की जिसमे खैरखाहो को मुरेठा बाँटा और दूसरे प्रकार से भी आदर दिया। बिहार-विद्यापीठ के लिए भी कुछ रुपये वहाँ मिले। रगून के व्यापारियो ने भी दिये जिन्हे लेकर मै वापस आया।

रगून मे भी बिहारियो की खासी आबादी है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जीरादेई का रहनेवाला मेरा एक पुराना नौकर रगून मे आकर मुझसे मिला। वहाँ

वह कही नौकरी करता था। मेरे आने की खबर सुनकर वह मुझसे मिलने आया। वहाँ गुजराती और मारवाडी व्यापारी काफी हैं। पर गाँवो मे ज्यादातर मद्रास के रहनेवाले चेट्टी लोग है जो अधिक रुपये लगाने या कर्ज देने का काम करते है। आन्ध्र के भी बहुत लोग है, पर वे भी बिहारियो की तरह नौकरी या मजदूरी करते है। उसी समय आन्ध्र के श्री नागेश्वरराव पतलू भी वहाँ गये थे। रगून मे हम दोनो को भोज दिया गया, जिसमे वहाँ के बहुतेरे मशहूर बरमी और हिन्दुस्तानी शरीक हुए। मेयर वहाँ के एक मुसलमान सज्जन थे। श्री अब्बास तय्यबजी के सुपुत्र तय्यबजी रैयतों के काम मे बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। ये सब लोग भोज मे शरीक थे। एक अँगरेज सज्जन भी, जो पीछे वहाँ की कौन्सिल के स्पीकर या सभापति हुए, उस भोज मे थे।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सभी लोग जमीन पर बैठकर भोजन करते गये। अँगरेज महाशय भी हम लोगो के साथ ही उसी तरह बैठे। बिहार मे ऐसा कोई भोज मैने नही देखा था। गाधीजी के आश्रम के सिवा और कही भी, उस समय तक, मैंने इस तरह सब लोगो को हिन्दुस्तानी तरीके से जमीन पर बैठकर खाते नही देखा था। यह हमारी कमजोरी है कि हम यदि किसी विदेशी को खिलाते है या दूसरे प्रकार से उसका आदर करते है, तो वह जैसे खाता-पीता या रहता है उसी की हम नकल करते है। वह स्वय तो अपने घर मे वैसे रहता ही है और वही भोजन उसी तरीके से किया ही करता है, फिर हमने अपने यहाँ के भोज मे उसे अपनी विशेषता क्या दिखाई? विदेशियों मे जो सहृदय होंगे और इस देश के सम्बन्ध मे कुछ जानने की इच्छा रखते होगे, वे शायद दिल मे चाहते भी होंगे कि हिन्दुस्तानियों के घर मे वे अपने ही घर की नकल न देखकर हिन्दुस्थान का भी कुछ देख सके। पर हम न मालूम क्यो भद्दी नकल पसन्द करते है और अपनी रीति-नीति को छुपाने की चीज मान लेते है! जो हो, मुझे रगून मे यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ। रगून से मै जहाज पर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया।

८२—लाहौर-काँग्रेस और मौलाना मजहरुल हक की मृत्यु

जहाज पर ही दमा का दौरा बहुत जोरों से शुरू हो गया। हालत इतनी खराब हो गयी कि जहाज के डाक्टर को सुई देने की जरूरत पड़ गयी। कलकत्ते मे जहाज से उतरकर मै अपने मित्र श्री योगेन्द्रनारायण मजुमदार बैरिस्टर के घर जाकर ठहर गया। तीन-चार दिनों के बाद मुंगेर मे बिहार प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स होनेवाली थी। मै उसका सभापति चुना गया था। मैने सोचा कि कलकत्ते मे दो-तीन दिनो तक आराम करूँगा और भला-चगा होकर मुंगेर जाऊँगा। अब तक मैने हकीम और वैद्य की दवा के सिवा एलोपैथिक एलाज कराया था। मेरे मित्र का विचार हुआ और मैंने भी पसन्द किया कि एक बार होमियोपैथिक को भी आजमाया जाय। एक बूढे डाक्टर को जिन पर उनका बहुत विश्वास था, उन्होने बुलवाया। डाक्टर ने सब बाते देख-सुनकर मुझसे कहा कि वह इसी शर्त पर इलाज करेगे कि मै कुछ दिनों तक लगातार

उनका इलाज कराऊँ और जब तक उनका इलाज होता रहे तब तक दूसरा इलाज न करूँ—हो सकता है, उनके इलाज से पहले बीमारी बढ जाय, यदि ऐसा हो तो मुझे डरना न चाहिए, यह शुभ लक्षण होगा। मैंने उनकी ये सब बाते मान ली। उन्होने एक खूराक दवा दी और कहा कि अब दो महीनो तक दूसरी दवा नही लेनी होगी। मैंने वह खूराक वही खा ली, दो महीनो के लिए दवा से छुट्टी मिल गई।

मैं वही बैठकर प्रान्तीय सम्मेलन के लिए भाषण भी लिख रहा था। तीसरे या चौथे दिन, रात की गाडी से, मैं मुंगेर के लिए रवाना हुआ। गाडी मे भीड बहुत थी। रात-भर बैठे रहना पडा। शायद हवा भी लगी। नतीजा यह हुआ कि मुंगेर पहुँचते-पहुँचते तबीयत बहुत खराब हो गयी। मैं सम्मेलन मे शरीक न हो सका। मेरा भाषण किसी ने पढ सुनाया। दिसम्बर का आरम्भ था। थोडे ही दिनो के बाद लाहौर मे कांग्रेस होनेवाली थी। पडित जवाहरलाल नेहरू मनोनीत सभापति थे। देश के सामने औपनिवेशिक और पूर्ण स्वराज्य की बहस चल रही थी। मैंने मुंगेर के अपने भाषण मे औपनिवेशिक स्वराज्य का ही समर्थन किया था। मैं तो वहाँ इतना सख्त बीमार हुआ कि मैं उस सम्मेलन के निश्चयो को भी न जान सका। पर पीछे मालूम हुआ कि मैं प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का सभापति चुना गया।

वादा के अनुसार मैंने कोई दवा नही खायी। मैंने समझा कि यह उभडी हुई बीमारी डाक्टर के कहने के अनुसार ही है—उसकी दवा की प्रतिक्रियामात्र है और जल्द ही अच्छा हो जाऊँगा। पर ऐसा हुआ नही। मुंगेर से किसी तरह भाई साहब मुझे पटने लाये। यहाँ भी खाँसी और ज्वर का प्रकोप रहा। यहाँ के डाक्टर बनर्जी बराबर देखते रहे। डाक्टर फणि मुखर्जी ने एक्सरे मे फेफडे की जाँच की। उस जाँच से वह और डाक्टर बनर्जी कुछ चिन्तित हुए। वे लोग मुझे देखते तो थे, पर मैं किसी की दवा नही खाता था। कलकत्ते के होमियोपैथिक डाक्टर के पास रोज टेलीफोन किया जाता। उत्तर मिलता कि कुछ घबराने की बात नही है और न दवा की जरूरत है। एक दिन पटने के डाक्टर लोग अधिक चिन्तित हो गय। उन्होने स्पष्ट कहा कि दूसरे दिन तक यदि हालत न सुधरी तो चिन्ताजनक हो जायगी और वे मुझे दूरवर्ती डाक्टर के आशीर्वाद के भरोसे बिना इलाज के नही छोडेंगे।

कलकत्ते खबर दी गयी। डाक्टर पटने बुलाये गये। उन्होने एक दवा देने को कहा, जो पीछे मालूम हुआ कि केवल पानी था। उनके आ जाने से यहाँ के डाक्टरो ने जवाबदेही से अपने को बरी समझा। वह यहाँ दो दिन ठहरे, पर दवा कोई नही दी। इन्ही दिनो बीमारी स्वय कम होने लगी। चार-पाँच दिनो मे ज्वर के साथ ही खाँसी जाती रही। एक्सरे से फिर परीक्षा की गयी। फेफडा बिलकुल साफ निकला।

मैं जीरादेई चला गया। जो मित्र लाहौर-कांग्रेस मे जानेवाले थे, चले गये। मैं न जा सका। जैसा कह चुका हूँ, श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी के साथ प्राय एक महीना घर पर रहा। उनसे बाते करता, अखबारो मे कांग्रेस का हाल पढ़ता और एक छोटी-सी पुस्तिका के लिए लेख लिखता। विषय उसका था अहिंसा (nonviolence)।

मैंने उसे सतीश बाबू को दिखलाया। उन्होंने वडी प्रशसा की। कहा कि वह उसे वनारस लौटने पर एक वार अच्छी तरह पढेंगे और कुछ आवश्यक सशोधन भी वतावेंगे, तव छापने लायक होगा। उसे वह लेते गये। उसके वाद ही १९३० का सत्याग्रह छिड़ गया। मैं उसमे इस तरह वझ गया कि फिर उसकी ओर ध्यान ही न गया। न मालूम उस लेख का क्या हुआ!

लाहौर-कॉंग्रेस वडी धूमधाम से समाप्त हुई। वहाँ जाने के पहले ही गाधीजी और पडित मोतीलाल नेहरू ने दिल्ली मे वायसराय से मुलाकात की थी। वहाँ स्पष्ट हो गया था कि उनकी घोषणा कॉंग्रेस की माँग पूरी नही करती। इसलिए एक प्रकार से निश्चय-सा ही हो गया था कि वहाँ कॉंग्रेस का ध्येय वदला जायगा। वह वदल भी दिया गया। अव पूर्ण स्वतत्रता ध्येय हो गया जिसे अव तक हम प्राप्त नही कर पाये हैं और जिसके लिए हमे अभी वहुत परिश्रम और त्याग करने की जरूरत है।

उधर लाहौर-कॉंग्रेस हो रही थी, इधर अपने गाँव मे ठहरे हुए मजहरुल हक साहव का देहावसान हो गया। पटने से जाकर हक साहव छपरा जिले मे, ओदर के नजदीक फरीदपुर मे, रहा करते थे। वहाँ उनकी कुछ जमीन्दारी थी। एक वहुत वडा आम का वाग उन्होंने लगाया था। उसी वाग मे एक छोटा-सा वँगला था जिसमे वह रहा करते थे। पास की ही नदी 'दाहा' की वाढ मे अपने वडे पुत्र के अचानक डूवकर मर जाने के वाद से वह वहुत उदास हो गये थे। आध्यात्मिक विषय (spiritualism) पर वहुत पुस्तकें पढा करते थे। इस विषय पर उनके पास एक खासा पुस्तकालय हो गया था। कभी-कभी मैं वहाँ जाया करता था। वह मुझे भी उस विषय का अध्ययन करने को कहा करते थे। मैंने कुछ पुस्तकें पढी भी। पर वहुत दौड-धूप करते रहने से मुझे पढ़ने का समय नही मिलता था। वही पर, चन्द दिनो की वीमारी के वाद ही, उनकी मृत्यु हो गयी। उनका यह गाँव मेरे गाँव से प्राय पाँच मील की दूरी पर है। खवर पाते ही मैं वहाँ गया और उनकी वेगम साहवा से भेट कर समवेदना प्रकट की।

उनकी मृत्यु से हम सवको वडा दुःख हुआ। हममे से कुछ का विचार था और देश के कई सूवो ने भी इच्छा प्रकट की थी कि वह कॉंग्रेस के सभापति वनाये जायँ, पर उन्होंने स्वय इस विचार को प्रोत्साहन नही दिया, वल्कि लोगो को मना कर दिया कि ऐसी वात न चलाओ। वह एक प्रकार से ससार से विरक्त हो गये थे और एक फकीर का ही जीवन विता रहे थे। उनके चले जाने से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और समझौते का वहुत वडा स्तम्भ टूट गया। इस विषय मे हम निराधार हो गये। सुना कि पटने मे सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे उनके नाम पर कोई स्मारक स्थापित करने का निश्चय किया गया। पर वह आज तक, १५ वरसों के वाद भी, प्रस्ताव के ही रूप मे पडा है! स्मारक अभी तक नही वना! मेरा विचार रहा है कि एक राष्ट्रीयभवन (National Hall कौमी हाल) वने जो उनका स्मारक हो। पर वह भी अभी तक विचार की श्रेणी से थोड़ा ही आगे वढा है। कुछ जमीन ली गयी

है। उसके साथ के दो छोटे मकान भी बन गये है। बडे हॉल के लिए नक्शा भी तैयार हो गया है। पर अभी हॉल की नीव तक नही पडी है। देखे, ईश्वर इसे कब पूरा करता है।

८३—स्वतन्त्रता-दिवस और नमक-सत्याग्रह

लाहौर-कॉग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को कॉग्रेस का ध्येय बना दिया था। साथ ही, उसने इसके लिए सत्याग्रह करने का आदेश भी दिया था। प्राय पिछले दो बरसो से जो नयी जागृति दीख रही थी उसी का यह फल था। कॉग्रेस के अधिवेशन के थोडे ही दिनों के बाद वर्किंग कमिटी ने सारे देश को आदेश दिया कि तारीख २६ जनवरी को स्वतत्रता-दिवस मनाया जाय। उस दिन उस साल रविवार था। एक सुन्दर ओजस्वी वक्तव्य निकाला गया, जिसमे देश की स्थिति और स्वराज्य-प्राप्ति की प्रतिज्ञा थी। आदेश था कि सभी जगहो मे बडी-बडी सभाएँ करके उपस्थित लोगो से वही घोषणा दुहरवायी जाय, भिन्न-भिन्न प्रान्त के लोग अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा मे भाषान्तर करा ले और ऐसा प्रबन्ध करे कि जनता उसे समझकर दुहरावे, कोई दूसरा भाषण उस अवसर पर न किया जाय, केवल घोषणा ही दुहरायी जाय, ये सभाएँ सेपहर के समय हो, सवेरे जहाँ हो सके वहाँ राष्ट्रीय झण्डे का अभिवादन किया जाय, यही कार्यक्रम सारे देश मे मनाया जाय।

मै उस समय तक घर पर ही आराम कर रहा था। उसी दिन पहले-पहल घर से बाहर निकलने का निश्चय किया। आस-पास की कई जगहो से लोगो का आग्रह हुआ कि मै वहाँ सभा मे चलूँ। यदि सभाएँ एक ही समय पर न होने को होती तो मै दिन-भर मे कई सभाओ मे शामिल हो सकता, पर ऐसा नही करना था। इसलिए मै मोटर पर गया। आध घटे आगे-पीछे दो जगहो की सभाओ मे शरीक होने का विचार किया—एक तो गाँव मे होनेवाली थी, दूसरी 'सीवान' शहर मे। गाँव की सभा करके जब सीवान जा रहा था, मोटर बिगड गयी। मालूम हुआ कि सीवान न पहुँच सकूँगा। पर कृपा करके पुलिसवालो ने अपनी गाडी पर स्थान दे दिया। मै ठीक समय पर सीवान पहुँच गया। वहाँ भी एक बडी सभा मे एकत्र हुई एकचित्त जनता से उस प्रतिज्ञापत्र को दुहरवा सका।

इस समय देश मे जागृति बहुत देखने मे आयी। प्राय सभी शहरो और बहुतेरे गाँवों मे स्वतत्रता-दिवस का कार्यक्रम पूरा किया गया। इन शुभ चिह्नो से मालूम पडता था मानो देश कोई बडा कदम उठाने जा रहा है। सभी जगहो मे सत्याग्रह की चर्चा हो रही थी। बारदोली मे सत्याग्रह की विजय हाल ही हो चुकी थी। वह लोगो के दिल को बहुत उत्साहित कर रही थी। लोग इस बात की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब, कहाँ और किस तरह सत्याग्रह का आरम्भ किया जायगा। गाधीजी के लेख लोगो मे नयी जान फूँक रहे थे।

महात्मा गाधी उन दिनो साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम मे रहते थे। वहाँ

वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। इसमें उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ करने की बात कही। इस विषय पर बहुत बातचीत होती रही कि देश अभी तैयार है या नहीं। बहुतेरे लोगों का विचार था कि अभी कुछ और तैयारी कर लेनी चाहिए। पर महात्माजी तथा जवाहरलालजी बहुत ही उत्सुक थे। इस बात पर भी बहुत बहस होती रही कि कौन-सा कानून तोड़ा जाय। महात्माजी का दृढ़ विचार था कि आरम्भ तो नमक-कानून से ही किया जाय। उनका कहना था कि इस कानून के कारण नमक पर 'कर' लगता है—गरीबों को जो नमक मुफ्त मिल सकता है, अथवा बहुत कम दाम में मिल सकता है वह महँगा मिलता है—बहुत-से गरीब इस कारण से उतना नमक नहीं खा सकते जितना उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—नमक हमारे खाद्य पदार्थों में एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, यह समुद्र के किनारे जमा करने से ही मुफ्त में मिल सकता है, दूसरी जगहों में भी मिट्टी से बनाया जा सकता है, जहाँ नमक का पहाड़ है वहाँ भी लोग खोद कर बिना दाम के निकाल सकते हैं, पर गवर्नमेण्ट केवल 'कर' प्राप्त करने के लिए इसके जमा करने पर प्रतिबन्ध लगाती है, ईश्वर ने जल और वायु की ही तरह नमक भी मुफ्त बाँटने का प्रबन्ध किया है मगर सरकार लेने नहीं देती। इसलिए गांधीजी का विचार था कि इससे खराब दूसरा 'कर' नहीं हो सकता इसके विरुद्ध सत्याग्रह करने की बात गरीब भी आसानी से समझ लेंगे, संसार के लोग भी मान लेंगे कि यह न्याय है।

महात्माजी का हमेशा यही तरीका रहा है कि एक छोटी चीज को लेकर उससे बड़ा नतीजा निकालना चाहते हैं। उनका खयाल था, यदि एक अन्यायपूर्ण 'कर' का हम इस तरह प्रतिरोध कर सकेंगे तो दूसरे सभी करों का नियन्त्रण हम कर सकेंगे। इसी तरह जब उन्होंने पंजाब के हत्याकाण्ड और खिलाफत के लिए न्याय पर जोर दिया था तब वह यही समझते थे कि हममें यदि इनके लिए इन्साफ पा लेने की शक्ति आ जायगी तो वही शक्ति हमें और-और गैरइन्साफों को भी हटाने की शक्ति दे देगी। इसी तरह, नमक-कानून तोड़कर, हम सब प्रकार से अपनी इच्छा के अनुसार सरकार से काम करा लेने की शक्ति प्राप्त कर लेंगे।

ये बातें हम लोग ठीक समझ नहीं पाते थे। हमारे सामने कई दिक्कतें थीं। हममें से बहुतेरे यह नहीं समझ पाते थे कि सरकार पर जोर डाले बिना हम उसे मजबूर कैसे कर सकेंगे। साथ ही, इससे भी अधिक अड़चन इस बात की मालूम होती थी कि नमक का कानून हम तोड़ेंगे तो कैसे। जो समुद्र के किनारे रहते हैं वे तो वहाँ किनारे पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक जमा करके अथवा नमकीन पानी गर्म करके कानून भंग कर सकते हैं। परन्तु भारत की अधिकांश जनता जो समुद्र के किनारे नहीं रहती, कैसे कानून तोड़ेगी? हाँ, बहुत जगहों में, खासकर बिहार और युक्तप्रान्त में, मिट्टी से नमक बनाया जाया करता था। एक जाति 'नोनिया' होती है जो यही काम किया करती थी। अब, जब से विदेशी या देशी नमक सभी जगहों पर, समुद्र के किनारे से अथवा खेवड़ा से, पहुँचने लगा है तब से इनका रोजगार

ही बन्द हो गया है। वहाँ पर यदि सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक बनाया जाय तो कानून-भग हो सकता था। पर क्या इस तरह नमक बनाने मे साधारण लोगो का उत्साह होगा? क्या पढे-लिखे लोग इसमे दिलचस्पी लेगे? केवल 'नोनिया' ही इस काम को सफलता-पूर्वक कर सकते है। पर वे गरीब और अशिक्षित है। उनसे इसकी आशा करना ठीक नही जँचता। उनको प्रोत्साहन देकर कानून तोडवाना भी न्याययुक्त नही मालूम होता। ये सब बाते गाधीजी से कही गयी। पर उनका निश्चय अटल रहा कि नमक-कानून ही तोडना चाहिए, इसमे जनता उत्साह से भाग लेगी, यही चीज सारे देश मे चल सकेगी।

मुझे भी इस कार्यक्रम की सफलता मे काफी सन्देह था। मैंने उनसे कहा कि बिहार मे चौकीदारी-टिकस एक ऐसा 'कर' है जो सभी लोगो को देना पडता है। उससे गरीब बहुत असन्तुष्ट है। उसकी वसूली मे भी गरीबो पर काफी सख्ती की जाती है। बाकी 'कर' के लिए उनके बर्तन-बासन भी जब्त होकर नीलाम कर दिये जाते है। मैंने कहा कि बिहार मे इस टैक्स के बन्द करने मे ज्यादा आसानी होगी। जनता बहुत जल्द और खुशी से इसका देना बन्द कर देगी। बिहार के लिए चौकीदारी टैक्स बन्द करने की ही आज्ञा दी जाय। महात्माजी ने कहा, यदि तुम इससे काम शुरू करोगे तो बहुत जल्द हार जाओगे, पहले नमक-कानून तोडकर ही कार्यारम्भ करो, पीछे यदि लोगो मे काफी उत्साह आ जायगा तो टिकसबन्दी का विचार करना। मैंने बात सुन तो ली, पर मन मे बैठी नही। मै सोचता था कि इस सीधे रास्ते को छोडकर नमक-कानून के फेर मे पडना क्यो जरूरी है। पर गाधीजी के इन विषयो के अनुभव का मै कायल था। मेरा विश्वास हो गया था कि वह बहुत दूर तक देख लेते है जहाँ तक हम नही देख सकते। इसलिए, कुछ दिनो से, मैंने अपना यह तरीका बना लिया था कि अपने विचार उनके सामने रख दूँ, यदि वह मान ले तो ठीक, नही तो उनकी राय के मुताबिक काम करना ही ठीक है। अन्त मे, मेरा अनुभव बताता था, उन्ही की राय ठीक निकलती थी। मैंने इस अवसर पर भी निश्चय कर लिया कि बिहार मे भी नमक-कानून ही तोडा जायगा, यद्यपि मै अभी तक इस बात को पूरी तरह समझ नही पाया।

८४—गांधीजी की डाण्डी-यात्रा और बिहार में नेहरूजी का दौरा

वर्किंग कमिटी की बैठक के बाद गाधीजी ने अपने लिए एक तिथि मुकर्रर कर दी। उसी दिन वह आश्रम से निकल पडेगे। प्राय एक महीना तक पैदल चलकर, सूरत-जिले के 'डाण्डी' नामक गाँव मे, समुद्र के किनारे पहुँचेगे। वही वह पहले-पहल नमक-कानून खुद तोडेगे। इस निश्चय को मजूर कराने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक साबरमती मे की गयी। यह बैठक तो हुई, पर उस समय तक महात्माजी डाण्डी-यात्रा के लिए निकल चुके थे। इसलिए वर्किंग कमिटी के निश्चय को ही अखिल भारतीय कमिटी ने मजूर कर लिया।

डाण्डी-यात्रा के पहले, जो एक प्रकार से सत्याग्रह का आरम्भ था, गाधीजी ने अपने नियम के अनुसार एक पत्र बडे लाट को लिख भेजा। उसमे उन्होने सभी बाते बता दी। सत्याग्रह के आरम्भ की बात भी लिख दी। यह पत्र उन्होने एक अँगरेज सज्जन के हाथ भेजा। उनका नाम मिस्टर रेनल्ड्स था। उस समय वह साबरमती मे रहते थे। किन्तु, जैसा सोचा गया था, कोई सन्तोषजनक उत्तर नही आया। यात्रा आरम्भ करते समय उन्होने काँग्रेस-कमिटियो और काँग्रेसी लोगो को मना कर दिया कि जब तक मै आदेश न दूँ, तब तक कोई सत्याग्रह न करे—यदि सरकारी आज्ञाएँ बुरी भी लगे, तो भी उन्हे मानना ही चाहिए।

इरादा था कि तारीख ६ अप्रैल तक वह डाण्डी पहुँच जायँगे और उसी दिन स्वय सबसे पहले सत्याग्रह करेगे। सत्याग्रह-आश्रम के ८० या ८१ आदमियो को उन्होने यात्रा मे अपने साथ लिया। क्रम यह था कि सवेरे कुछ दूर तक जाना होता था। दोपहर को किसी निश्चित स्थान मे स्नान, भोजन और विश्राम किया जाता था। फिर सेपहर को कुछ दूर जाया जाता। सध्या को कही डेरा पड जाता। वही रात का विश्राम होता। फिर दूसरे दिन सवेरे वही क्रम शुरू होता। यह यात्रा प्राय एक महीने की हुई। बीच मे बहुतेरे गाँव और कुछ शहर भी मिले। प्राय १५० मील की यात्रा थी। प्राय १२–१३ मील रोज चलना पडा था। जिस दिन गाधीजी साबरमती से निकले उस दिन आश्रम पर रात-भर बहुत भीड लगी रही। सवेरे हजारो आदमियों के जयजयकार के बीच होकर गाधीजी और उनके साथी निकले। उन लोगो के पास अपनी-अपनी झोली मे उनके आवश्यक सामान थे। बडा ही उत्साह था। देखने से मालूम होता था मानो सारा अहमदाबाद और वहाँ का इलाका उमड आया है।

गाधीजी ने यह भी घोषणा कर दी कि स्वराज्य के बिना वह अब फिर साबरमती आश्रम मे नही लौटेगे। यात्रा का पूरा विवरण समाचारपत्रो मे छपता रहा। इसका असर सारे देश पर जादू के ऐसा पडता रहा। सभी जगह लोग बहुत आतुर होकर ६ अप्रैल की बाट जोह रहे थे। लोग चाहते थे कि हमको भी सत्याग्रह का सुअवसर मिले। काँग्रेस के लोग बैठे नही थे। वे भी बडे जोरो से चारो ओर प्रचार के काम मे लगे थे। गाधीजी जैसे-जैसे बढते गये, देश का उत्साह भी बढता ही गया। सरदार वल्लभभाई, यात्रा का आरम्भ होने के पहले ही, गिरफ्तार कर लिये गये थे। इसलिए वह यात्रा मे अथवा उसके बाद आरम्भ होनेवाले सत्याग्रह मे शरीक नही हुए।

इसी बीच मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक अहमदाबाद मे हुई। वहाँ से पडित मोतीलाल, प० जवाहरलाल प्रभृति के साथ हम लोग जम्बूसर तक गये। वही गाधीजी से मुलाकात हुई। हम लोग भी उनके साथ कुछ दूर तक गये। फिर अपने अपने स्थान को लौट आये। मैने बिहार मे आकर सब जगह के लोगो को आदेश दे दिया कि जब तक गाधीजी का हुक्म न निकले, कोई सत्याग्रह न करे। पडित

जवाहरलालजी से, चार-पाँच दिनो के लिए बिहार मे दौरा करने का, आग्रह किया। वह प्रसन्नतापूर्वक राजी हो गये। हमारी इच्छा थी कि जो थोडा समय मिलता है उसमे अधिक से अधिक स्थानो मे सभाएँ हो जायँ और अधिक से अधिक लोगो को उनके ओजस्वी भाषण सुनने का सुअवसर मिल जाय। इसलिए पहले से कार्यक्रम बना दिया गया। जहाँ-जहाँ सभा होनेवाली थी, ठीक समय पर लोगो को इकट्ठे होकर इन्तजार करने को कहा गया। मुझे याद नही है कि वह कहाँ-कहाँ और किन जिलो मे गये, पर कार्यक्रम मैने ऐसा बनाया कि सभाओ मे उनका कम से कम समय लगे। तीन मोटरे साथ थी। पहली मोटर मे कुछ ऐसे लोग थे जो आगे जाकर सभा मे राष्ट्रीय गान वगैरह गाकर शान्ति करा देते। जब सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते, मै दूसरी मोटर से पहुँच जाता। जब तक पडित जवाहरलालजी तीसरी मोटर से नही पहुँच जाते, तब तक मुझे जो कुछ कहना होता सो कह देता। मेरे पहुँचने पर पहली गाडी आगे बढ जाती। पडितजी के पहुँचने पर मै दूसरी गाडी पर अगली सभा के लिए रवाना हो जाता। इस प्रकार किसी को किसी दूसरे के भाषण के लिए इन्तजार न करना पडता। वह समय भी नष्ट न होता जो सभा मे पहुँचकर लोगो को शान्त करने और उनके उत्साह को सँभालने मे लगता है, क्योकि यह काम तो पहले ही हो चुकता। पडितजी की यह यात्रा बहुत सफल रही। इससे सारे सूबे मे, जहाँ पडितजी नही भी जा सके, पूरा उत्साह उमड आया।

८५—बिहार में नमक-सत्याग्रह

नेहरूजी की यात्रा का अन्तिम दिन था। वह प्रयाग चले जानेवाले थे। मुझे जहाँ तक याद है, यह अन्तिम सभा छपरा-जिले के महाराजगज कस्बे मे सध्या के समय हुई थी। वही पर तार द्वारा या समाचारपत्रो से पता मिला कि ६ अप्रैल से सब लोग अपने-अपने स्थान पर सत्याग्रह का आरम्भ कर सकते है, गाधीजी का यही आदेश है। इस सूचना ने एक प्रकार से हमारे कार्यक्रम को गडबडा दिया। हमने अभी निश्चय नही किया था कि कौन कहाँ से सत्याग्रह आरम्भ करेगा। सभी जगहो मे रातोरात खबर दे दी गयी। चम्पारन के लोगो ने पहले से सोच रखा था कि विपिन बाबू मोतीहारी से पैदल चलकर, सात-आठ दिनो की यात्रा के बाद, जोगापट्टी के पास पहुँच सत्याग्रह आरम्भ करेगे। उन्होने ६ अप्रैल को ही यात्रा आरम्भ कर दी। मुजफ्फरपुर-जिले मे भी ऐसा ही हुआ। दो-चार दिनो के अन्दर ही सभी जगहो मे नमक-कानून टूटने लगा। जिस दिन विपिन बाबू ने नमक बनाया, मै वहाँ पहुँच गया। पर मेरे पहुँचने के पहले ही वह गिरफ्तार कर लिये गये थे। वही एक बगीचे मे मजिस्ट्रेट ने कचहरी लगा दी और चटपट मुकदमा देखकर उनको सजा भी दे दी। मै रास्ते मे मोटर से उन स्थानो को देखता गया जहाँ-जहाँ सत्याग्रही यात्री लोग ठहरे थे। जिले का प्राय एक आधा हिस्सा, लम्बाई मे, इस यात्रा मे पड गया था। आरम्भ से अन्त तक, सारे रास्ते मे, सडको पर अनगिनत मेहराब-तोरण-पताका इत्यादि

लोगो ने लगाया था। अभूतपूर्व उत्साह का प्रदर्शन था। जहाँ कानून तोडा गया था वहाँ के लोगो के उत्साह का तो ठिकाना न था।

मजिस्ट्रेट एक ऐसे सज्जन थे, जिन्होने १९२१ मे पटना-कालेज से असहयोग करके कुछ दिनों तक हमारे राष्ट्रीय महाविद्यालय मे निवास किया था। अपने घरवालो के जोर देने पर वह फिर वापस चले गये थे। पढने मे वह तेज थे। पुन कालेज की परीक्षा पास कर शीघ्र ही डिप्टीमजिस्ट्रेट हो गये। ८–१० बरसो की नौकरी के बाद इस दर्जे पर पहुँचे थे। मैंने देखा कि मुकदमे की सुनवाई के समय जब तक इजलास लगा रहा, उन्होने एक बार भी सिर न उठाया। सिर नीचा किये ही जो कुछ लिखना था लिखा और उसी तरह हुकुम भी सुना दिया। वहाँ से विपिन बाबू को मोटर पर मोतीहारी-जेल ले आये।

मै भी अपनी गाडी पर मोतीहारी तक आकर पटने के लिए या किसी अन्य स्थान के लिए रवाना हो गया। उधर गाधीजी ने नमक जमा किया, पर सरकार ने उनको पकडा नही। सारे देश मे अनगिनत स्थानों पर लोग नमक बनाने लगे। गिरफ्तारियाँ होने लगी। अपने लिए मैंने यह कार्यक्रम बना लिया कि सभी जिलो मे दौरा करके सत्याग्रहियो को उत्साहित करूँ। एक-दो दिनों के भीतर सारे जिले मे दौड जाता। जहाँ-जहाँ नमक बना होता अथवा बनने की तैयारियाँ होती, सत्याग्रहियो से जाकर मिल लेता। जहाँ तक हो सकता, सार्वजनिक सभाएँ भी कर लेता।

मै दो-चार दिनों के अन्दर ही, आधी रात को पहुँचनेवाले स्टीमर से, पटना पहुँचा। वहाँ गगा-घाट पर ही लोगो ने कहा कि पटना-शहर मे उस दिन सत्याग्रह आरम्भ किया गया है। उसका रूप यह था कि कुछ सत्याग्रही बाकरगज मुहल्ले से निकलकर झडा लिये शहर मे जा रहे थे जहाँ वे नमक बनानेवाले थे। जब वे सुलतानगज थाने के सामने पहुँचे तो पुलिस ने उन्हे रोक लिया। अभी तक उनका कसूर इतना ही था कि वे झडा लेकर, पाँच-सात आदमियो का जलूस बनाकर, सडक से जा रहे थे। वे गिरफ्तार भी नही किये गये थे, पर पुलिस के सिपाहियो ने कतार बाँध कर उनका रास्ता रोक लिया था। वे दिन-भर वही खड़े रहे। रात को भी वही सड़क पर ही सो गये थे।

मै सीधे उस स्थान पर गया। देखा कि सिपाही सडक रोके खडे और सत्याग्रही खुशी से बीच सड़क पर सोये है। उनके सोने के लिए मुहल्ले के लोगों ने बिस्तरे भी दे दिये थे, समय पर उनको भोजन भी करा दिया था। मेरे जाने पर वे उठे। मुझसे बहुत प्रेमपूर्वक मिले। रात को तो कुछ होनेवाला न था, मै सदाकत-आश्रम चला गया। दूसरे दिन खूब सवेरे ही फिर उस स्थान पर पहुँचा। मै तो सारे सूबे का चक्कर लगाया करता था और आश्रम मे बैठे-बैठे श्री व्रजकिशोर बाबू सभी जगहो मे आवश्यकतानुसार आदेश तथा सहायता भेजा करते थे। इस बार अभी तक कॉग्रेस कमिटी गैरकानूनी नही करार दी गयी थी और न सदाकत-आश्रम ही जब्त हुआ

था। इसलिए यह काम वहाँ से चलता रहा। गिरफ्तारियाँ भी उन्ही लोगो की होती जो नमक बनाते, और सबकी नही।

दूसरे दिन सवेरे वहाँ पुलिस की भीड बहुत थी। घुडसवार भी आ गये थे। सुना कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी थाने मे मौजूद है। इधर जनता की भीड भी बढने लगी। मैने समझा कि सत्याग्रही या तो गिरफ्तार कर लिये जायँगे या मारपीट कर छोड दिये जायँगे। मुझसे एक आदमी ने आकर कहा कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मुझे थाने पर बुलाते है। मै वहाँ गया। उन्होने मुझसे कहा कि सत्याग्रहियो को मै हटा लूँ, नही तो उनको कार्रवाई करनी पडेगी। मैने कहा, आप उन्हे गिरफ्तार कर सकते है। उन्होने कहा कि वह भीड को भी हटावेगे और ऐसा करने मे उनको सख्त कार्रवाई करनी पड़ सकती है। मैने स्वयसेवको को हटाने से इनकार कर दिया। इस पर उन्होने मुझसे कहा कि इसकी जवाबदेही मेरे ऊपर रहेगी और वह मुनासिब कार्रवाई करेगे। मैने समझा कि हो सकता है, वह लाठी या गोली भी चलवावे। मैने बेहतर समझा कि और साथियो से सलाह कर लूँ। यह मैने उनसे कहा। उन्होने कहा कि इसके लिए वह आध घटे का समय देगे। जब मै चलने लगा तो उन्होने अपनी घडी निकाली और कहा कि मै अपनी घडी उनकी घडी से मिला लूँ। यह मुझे बुरा मालूम हुआ। मैने कह दिया कि मै इसकी जरूरत नही समझता। वह अपनी घडी देखते रहे। मैने यह भी कह दिया, यदि आध घटे के भीतर मै उनके सन्तोष के योग्य उत्तर न दूँ तो वह जो मुनासिब समझे करे। मै सीधे मोटर पर सदाकत-आश्रम गया। सबकी राय हुई कि हम कुछ नही कर सकते, मजिस्ट्रेट जो चाहे करे। मैने तुरन्त टेलीफोन द्वारा सुलतानगज थाने मे यही उत्तर दे दिया। फिर यह समझकर कि अब वहाँ कुछ न कुछ होगा, मै जल्दी से मोटर पर वहाँ के लिए रवाना हुआ।

रास्ते मे, बाकरगज मे, उधर से मजिस्ट्रेट को मोटर पर लौटते देखा। उन्होने भी मुझे देखा। मुसकुराते हुए वह आगे बढ गये। मैने समझा कि वहाँ कुछ कार्रवाई करके वह लौट रहे है। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि उन्होने पहले सत्याग्रहियो को चले जाने की आज्ञा दी, जब वे नही हटे तो कुछ दूरी पर खडे घुडसवारो को घोडे दौडाने की आज्ञा दे दी। जब घोडे चले तो लडके सडक पर लेट गये। इस तरह रास्ते को उन्होने रोक लिया। घोडे वहाँ तक दौडते आये, पर उनके पास पहुँचकर रुक गये। तब वे लडके उठा-उठाकर एक मोटर-लारी मे रख दिये गये। इस प्रकार गिरफ्तार कर वे हटा दिये गये।

अब, हमने निश्चय कर लिया कि सत्याग्रही पाँच-पाँच का जलूस बनाकर दिन-भर वहाँ जाते रहे। जब एक जत्था गिरफ्तार हो जाय तो दूसरा चले। ऐसा ही दिन-रात हो। अप्रैल का महीना आधा से अधिक बीत चुका था। गर्मी काफी पड रही थी। हमारे सत्याग्रहियो को भी धूप लगती थी। पुलिसवाले तो दिन-रात खडे रहते ही थे। एक-दो दिनो तक इस तरह चला। तब मैने तरीके मे कुछ परिवर्तन कर

दिया। दिन-रात गिरफ्तारी का इन्तजार न करके समय मुकर्रर कर दिया गया। दिन-रात मे चार या पाँच जत्थे नियत समय पर जाते। वे शुरू मे तो गिरफ्तार कर लिये जाते, पर पीछे जब दर्शको की बहुत भीड जुटने लगी तो घुडसवार घोडे दौडाते और लोगों को डडो से पीटते। सत्याग्रही तो इस धक्कमधुक्की मे कभी गिरफ्तार होते, कभी नही भी होते, पर जनता पर खूब मार पडती। यह विशेपकर सुबह और सेपहर के समय, जब जत्था जाता तभी, हुआ करता। मै भी समय पर पहुँच जाया करता और जनता की भीड मे रहकर सब देखा करता। शायद पुलिसवाले मुझे पहचानते थे, इसलिए मुझे कभी चोट न लगी। पर प्रोफेसर अब्दुल बारी को बहुत चोट लगी थी।

यह सिलसिला कई दिनो तक चलता रहा। रोज भीड बढती गयी। मोर्चे का स्थान सुल्तानगज थाने से पश्चिम की ओर हटता-हटता पटना-कालेज के सामने तक आ गया। हमारे आदमी और साधारण जन भी बराबर शान्ति बनाये रखते। जो मारपीट होती, पुलिस की ओर से ही। एक दिन का जिक्र है, मिस्टर सैयद हसन इमाम की बीबी ने कही से आते समय पुलिस को मारपीट करते देखा। कई आदमियो के सिर फूट गये थे। इसका उनके दिल पर बहुत असर हुआ। उन्होने जाकर हसन इमाम साहब से कहा कि बहुत खूनखराबा होने की सम्भावना है। उस समय तक मुझे मालूम नही था कि हसन इमाम साहब इस बात मे कुछ दिलचस्पी ले रहे हैं। इस सम्बन्ध मे मै उनसे मिला न था और न उनसे कुछ बाते करने का मुझे मौका ही मिला था। अपनी बीबी की बात सुनकर उन्होने मुझे तुरन्त टेलीफोन से बुलाया। मैने सब बाते ब्योरे से कह सुनायी। वह बहुत भावुक सज्जन थे। सब बाते सुनकर उनको भी क्रोध हो आया। वह आवेश मे आ गये। उन्होने कहा कि वह पूरी मदद करेगे। यह उत्साह उनका बढता गया। यह मै फिर आगे बताऊँगा।

इसी बीच ईस्टर की छुट्टी आ गयी। मैं इस सत्याग्रह को धार्मिक युद्ध समझता था। मैने सोचा कि यह यदि धार्मिक चीज है तो इसके द्वारा किसी को अपने धर्म-पालन मे बाधा न पहुँचनी चाहिए। मैने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिख दिया कि पुलिस-कर्मचारियो मे कुछ क्रिस्तान भी है जो ईस्टर मे कुछ धार्मिक क्रिया करते होंगे, इसलिए सोमवार को जत्था नही जायगा, फिर मगलवार से नियमानुकूल जत्थे जाया करेगे। शुक्रवार को भी दोपहर के समय जाने के लिए जो जत्था मुकर्रर था उसको मैने रोक दिया, क्योकि घुडसवारो मे अधिक मुसलमान ही थे। मैने यह पत्र सच्चे दिल से लिखा था। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पत्र पढने पर टेलीफोन द्वारा मुझसे पूछा कि मैने जो लिखा है वह क्या सचमुच धार्मिक खयाल से ही लिखा है। मैने कह दिया कि वास्तव मे सच्चे दिल से ही लिखा है। इस पर उन्होने कहा कि मै उनसे मिलूँ, वह विचार करेगे कि यह झगडा किस तरह सुलझ सकता है।

दूसरे ही दिन, सोमवार था, मै गया। बहुत देर तक बाते हुई। मैने कह दिया कि यहाँ झगडा बहुत छोटा है। पाँच आदमियो का जलूस सडक होकर जाना चाहता है। इसमे कोई कानून के विरुद्ध बात नही है। वह जलूस को निकल जाने

दे, उसे रोके नही, सारा झगडा मिट जायगा। जब जत्था नमक बनाकर कानून तोडे, गिरफ्तार किया जाय, कानूनन जो सजा हो, दी जाय। उन्होने दूसरी सडक से जलूस ले जाने की बात कही। मै इस पर राजी न हुआ। बात इतने ही तक होकर रह गयी। दूसरे दिन सवेरे जो जत्था गया वह गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद भीड खुद हट गयी। मारपीट की नौबत ही नही आयी। यह भी देखा गया कि पुलिस की सख्या बहुत कम है, घुडसवार तो है ही नही। पुलिस के असिस्टेंट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गिरफ्तारी की। सत्याग्रही तुरन्त कचहरी मे पेश किये गये। मुकदमा चल ही रहा था कि दूसरे जत्थे के आने का समय हो गया। वह जत्था सीधे रास्ते से चला गया। किसी ने उसको नही रोका। हम लोग कचहरी मे ही थे कि यह खबर मिली। उन सत्याग्रहियो को भी कचहरी उठने तक की कैद की सजा हुई। हुक्म सुनाकर हाकिम उठ गये। हम सब सत्याग्रहियो के साथ ही वह भी वहाँ से निकले। अब साफ हो गया कि जत्थे को पुलिस नही रोकेगी। सध्या को भी जत्था गया। पर कोई रोक-टोक नही हुई। इसके बाद जत्था भेजना बन्द कर दिया गया। पर नमक बनाने का काम जारी रहा, इसलिए लोग गिरफ्तार होते रहे। पटना-शहर मे भी गिरफ्तारियाँ होती रही।

८६—नमक-सत्याग्रह के बाद का कार्यक्रम

उधर गाधीजी कुछ दिनो के बाद गिरफ्तार हो गये। धरासना मे, जहाँ नमक का सरकारी गोला है, सत्याग्रही धावा बोलने लगे। वहाँ बाहर मैदान मे ही नमक बहुत जमा किया पडा रहता है। स्वयसेवक उसे लूटने तो जाते नही थे, पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध उस स्थान पर पहुँचना चाहते थे। इसलिए वहाँ वे खूब लाठियों से पीटे जाते। पहले गाधीजी, उसके बाद श्री अब्बास तैयबजी और श्रीमती सरोजिनी नायडू उन स्वयसेवको का नेतृत्व करते रहे। वे एक पर एक गिरफ्तार होते गये। वहाँ स्वयसेवको के बेरहमी से पीटे जाने, लाठियो की चोट से बेहोश होने, बेहोशी की हालत मे घसीटकर झाडियो मे छोड दिये जाने और वहाँ से कॉंग्रेसी खाटो पर उठा ले जाकर कॉंग्रेसी अस्पताल मे पहुँचाये जाने की रोमाचकारी खबरे छपती रही। इनसे उत्साह बढता ही जाता था, घटता न था। यह जानते हुए भी कि बहुत जोरो से मार खाना है, वहाँ सैकडों आदमी रोज जाते। यह बात जब तक बरसात शुरू न हो गयी और वहाँ जाना-आना असम्भव-सा न हो गया तब तक बराबर जारी रही।

बिहार-सूबे मे समुद्र-तट तो था नही। पर सभी जगहो पर कुछ न कुछ नमकीन मिट्टी मिल जाती, उसे जमा करके उसका पानी चुला लेते और उसे हाँडी मे गर्म करके सुखा देते, कुछ नमक-जैसी चीज निकल आती। मैने खुद कहीं नमक नहीं बनाया, पर जहाँ जाता वहाँ के बने हुए नमक को सभाओं मे बेचता या नीलाम करता। उससे खर्च के कुछ रुपये भी मिल जाते और खुलेआम कानून भी टूटता, क्योंकि बिना

कर दिये नमक बेचना, जैसा ही सूझे है वैसा नमक बनाना। पर मैं बहुत दिनों तक गिरफ्तार नहीं हुआ।

पंडित जवाहरलालजी की गिरफ्तारी शुरू में ही हो गयी। उनके स्थान पर पंडित मोतीलालजी काम करने लगे। वह भी प्रायः जून के अन्त तक गिरफ्तार नहीं किये गये। मुझे भी वर्किंग कमिटी का मेम्बर बना लिया था। इस बीच में जब तब प्रयाग में वर्किंग कमिटी की बैठक भी होती। वहाँ से आवश्यकतानुसार आदेश निकलते। जिस प्रकार की मदद लोग माँगते, दी जाती। सारे देश में गवर्नमेण्ट की दमन-नीति जोरों से चल रही थी। गिरफ्तारियाँ जितनी हो सकती थीं उतनी गवर्नमेण्ट न करती। उसने यह नीति ग्रहण की कि कुछ ही कानून तोड़नेवाले गिरफ्तार किये जायँ अधिकांश मारपीट कर ही छोड़ दिये जायँ। इसलिए, जहाँ कहीं लोग जमा होकर नमक बनाते, पुलिसवाले पहुँचते—हाँड़ी और चूल्हा तोड़-फोड़ डालते, जो लोग वहाँ रहते उनमें से एक-दो को गिरफ्तार करते और दूसरों को लाठियों से पीटकर चले जाते। इससे नमक बनना बन्द न होता, फिर नयी हाँड़ी पहुँच जाती, नया चूल्हा बन जाता और नमक बनानेवालों की तायदाद ज्यों की त्यों बनी रहती। गाँववाले यह काम लुक-छिपकर तो करते नहीं थे, क्योंकि खुलेआम करने की आज्ञा थी। मैं बराबर दिन-रात दौरा कर रहा था। सभी जगहों में देखता कि लोग गाँव के किसी मुख्य स्थान में केले के थम्भ चारों ओर गाड़कर, झण्डे और बन्दनवार लगाकर, घिरी जगह बना लेते। वहीं चूल्हा और मिट्टी से पानी चुलाने के लिए छोटी कोठी बना लेते। गाँव के सभी लोग जानते कि कहाँ नमक बनता है। किसी आगन्तुक व्यक्ति अथवा पुलिस को नमक बनाने की जगह का अनायास ही पता लग जाता।

ऊपर कह चुका हूँ कि मुझे कुछ दिनों तक गवर्नमेण्ट ने गिरफ्तार नहीं किया। यह भी कह चुका हूँ कि सत्याग्रह आरम्भ होने के पहले मुझे नमक-सत्याग्रह की सफलता में सन्देह था। पर तब भी मैंने इसके लिए पूरा प्रयत्न किया। जैसे-जैसे गांधीजी अपनी यात्रा में डाँडी की ओर आगे बढ़ते जाते थे, देश में उत्साह उमड़ता जाता था। यह सब देखकर मेरा विश्वास भी दृढ़ होता गया कि इसमें पूरी सफलता होगी। तब मैं और भी जोर लगाता गया। पंडित मोतीलालजी का भी कुछ ऐसा ही हाल था। उन्होंने भी प्रयाग के अपने आनन्द-भवन में ही, जैसे प्रयोगशाला में कोई प्रयोग होता है वैसे ही फिल्टर कागज के जरिये मिट्टी से नमक निकाला। उन्होंने उसे बहुत गर्व के साथ हम लोगों को दिखलाया। हम लोगों को भी इसका गर्व रहा। उनकी आज्ञा और सम्मति से बिहार की स्थिति की ओर ध्यान रखते हुए मैंने यह कार्यक्रम बनाया कि बिहार में जून तक नमक बनाया जाय—अर्थात् इसी पर अधिक जोर रहे; इसके बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार पर जोर लगाया जाय, साथ ही मद्य-निषेध भी चले। बरसात में नमक नहीं बन सकता, इसलिए जून के बाद विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध के लिए पहरे बैठाने का काम चालू किया जाय; बरसात समाप्त होने पर चौकीदारी-टैक्स बन्द करने का कार्यक्रम चलाया जाय।

इस कार्यक्रम का यह अर्थ नही था कि जब नमक बन रहा हो तब विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का काम होवे ही नही। अर्थ केवल इतना ही था कि उस समय एक चीज पर जोर देकर जनता का ध्यान उसी पर ज्यादा खीचा जाय और उसमे पूरी सफलता प्राप्त की जाय। इस प्रकार, एक काम पर जोर देने से वह अधिक तेजी से चलता।

मुझे खबर मिली थी कि आरम्भ मे गवर्नमेण्ट का विचार मुझे गिरफ्तार करने का नही था। मै तो गवर्नमेण्ट के विचार की परवा न करके काम करता ही जाता था। कुछ दिनो के बाद पता चला कि जिला-मजिस्ट्रेटो को प्रान्तीय सरकार की अनुमति मिल गयी है—अगर वे चाहे तो मुझे गिरफ्तार कर सकते है। मेरा कार्यक्रम ऐसा रहता कि मै किसी जिले मे चला जाता, एक मोटर मँगनी की या भाडे की ले लेता, सवेरे पाँच-छ बजे स्नानादि से निवृत्त होकर एक तरफ निकल जाता, दिन भर बारह-पन्द्रह जगहो मे छोटी-मोटी सभाएँ करता, रास्ते मे जहाँ-जहाँ नमक बनता होता उसका मुलाहजा करता, रात मे १०-११ बजे दौरे से लौटता। इस तरह हर जिले के काफी बडे हिस्से का दौरा कर लेता। दो या तीन दिनो मे एक जिले का दौरा समाप्त करके दूसरे जिले मे निकल जाता। मैने देखा, गाँवो मे इस बात की स्पर्धा होती कि उनके अधिक आदमी गिरफ्तार हो। जहाँ नमक नही बना रहता वहाँ के लोग, जब तक नमक वहाँ नही बनता, लज्जित रहते। मै लोगो को विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, मद्यनिषेध और नमक बनाने की बात समझाता। अक्सर लोग चौकीदारी टिकस और लगान देना बन्द करने की बात पूछते। उनसे कह देता कि यह चालू कार्यक्रम पूरा हो जाने पर उसकी आज्ञा निकलेगी। तब तक लोग उसके लिए तैयारी करे। लोग इसे समझ जाते।

८७—विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार और मद्यनिषेध

शहरो का कार्यक्रम, नमक के अलावा, अधिकतर वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध का होता। प्रयाग मे वर्किंग कमिटी की बैठक के समय यह मालूम हो गया कि देश की कई जगहो मे विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का काम भी जोरो से चल रहा है। यह काम बिहार मे भी शुरू हो गया। व्यापारियो और जनता दोनो मे बडा उत्साह था। इसलिए यह बहुत आसानी से आगे बढने लगा। जिस तरह गाँव-गाँव मे नमक बनाने की होड-सी लग गयी उसी तरह बडे-बडे शहरो मे यह होड लग गयी कि वहाँ की दूकानो और आढतो मे जितना भी विदेशी कपडा हो उसकी बिक्री बन्द कर दी जाय। महात्माजी ने लिखा था कि इन पर तथा मद्य की दूकानो पर पहरे का काम अधिकतर स्त्रियो के ही हाथ मे रहे और वे इसे पूरा करने का भार अपना समझे। इसलिए कही-कही स्त्रियाँ दूकानो पर पहरा देने लगी। किसी ने कही पर एक तरीका जारी कर दिया और वह प्राय सभी जगहो मे चल पडा। वह यह था कि सभी कपडे के दूकानदार अपनी दूकान के विदेशी वस्त्रो को बाँधकर उस पर कांग्रेस की मुहर लगाकर

रख देते और लिखकर वादा कर देते कि जब तक कॉंग्रेस का हुक्म न होगा उस गॉठ को फिर नही खोलेगे। व्यापारी अक्सर आपस मे ही कमिटी बना लेते जिस पर कॉंग्रेस की देख-रेख रहती अथवा जिसमे कॉंग्रेस के प्रतिनिधि भी रहते। वे इस कमिटी पर सारे विदेशी वस्त्र के इस प्रकार बँधवा देने और बिक्री न होने देने का भार डाल देते। यदि कोई व्यापारी वादा-खिलाफी करता तो उसे वह कमिटी जुर्माने का दण्ड भी देती और इस तरह उन पर पूरा शासन रहता। जो व्यापारी राजी न होता उसकी दूकान पर पहरा (पिकेटिङ्ग) बैठाया जाता और उसकी बिक्री बन्द हो जाती।

आज भी यह याद करके बहुत प्रसन्नता होती है कि बिहार के प्राय सभी शहरो के और बहुतेरे गॉवो के छोटे-छोटे व्यापारियो ने भी अपने सभी विदेशी कपडो को गॉठो मे बॉधकर कॉंग्रेस की मुहर लगवाकर अलग रख छोडा। सारे सूबे मे पहरे का काम थोडा ही करना पडा और वह बहुत सफलता-पूर्वक हुआ। पहरा शुरू करते ही गॉठो का बँधना शुरू हो जाता और दो-चार दिनो मे ही काम पूरा हो जाता। यह दृश्य मैंने प्राय सभी जगहो मे देखा। विचार तो था कि आधा जून बीत जाने के बाद इस कार्यक्रम पर जोर दिया जायगा, पर मेरा खयाल है कि जून का अन्त होते-होते यह काम भी सारे सूबे मे पूरा हो गया था। जो काम होता था उसमे देखादेखी का बडा प्रभाव होता था। यदि खबर मिल गयी कि किसी एक शहर के व्यापारियो ने गाँठ बाँधना शुरू कर दिया तो दूसरे शहर के व्यापारी इस पर विचार करने लगते और वहॉ के कॉंग्रेसी भी उन पर जोर डालने लगते, बस वहॉ भी काम शुरू हो जाता और जल्द ही समाप्त भी। पडित मोतीलालजी से कानपुर, दिल्ली, पजाब इत्यादि के बडे-बडे व्यापारी मिलते और उनसे बाते करके उन केन्द्रो मे किस तरह यह काम पूरा कराया जाय और इसमे भारतीय मिलवालो से किस तरह मदद ली जाय, इस पर विचार करते। प्रतिज्ञा-पत्र का मसविदा तैयार कराकर सर्वत्र भेज दिया गया था। जनता और व्यापारी अपनी-अपनी प्रतिज्ञा पर दस्तखत करते।

किसी-किसी सूबे मे मद्य-निषेध पर अधिक जोर दिया गया। वहॉ इसी को लेकर सरकारी दमन चला। लोगो को कैद और गोलियो तक का शिकार बनना पडा। ऐसी रोमाचकारी घटना सीमाप्रान्त मे हुई। बहुत-से पठान गोलियो के शिकार हुए। सारे देश मे सनसनी फैल गयी। श्री बिट्ठलभाई पटेल ने, जो असेम्बली के प्रथम निर्वाचित सभापति (स्पीकर) थे, अपने पद से इस्तीफा दे दिया। वह सीमाप्रान्त के गोलीकाण्ड की जाँच मे जा लगे। उनकी रिपोर्ट को गवर्नमेण्ट ने जब्त कर लिया। उसका बहुत प्रचार न हो सका। पर जितनी कुछ खबर छपी थी उसी का असर सारे देश मे बिजली की तरह बहुत तेजी से काम करता। जब सभी जगहो पर एक से एक उत्साह-वर्धक कार्रवाइयाँ हो रही हो तब यह चुनना फर्ज हो जाता है कि किस-किसका जिक्र किया जाय। मुझे इस बात का अफसोस है कि अभी तक देशव्यापी सत्याग्रह का विस्तृत इतिहास नही लिखा गया। पर कुछ ऐसी बाते हैं, जिनका जिक्र कर देना अच्छा होगा।

बिहार पर्दा-प्रधान प्रदेश है। जब मैं इँगलैंड में था, यहाँ पर्दा हटाने का एक विशेष प्रयत्न आरम्भ हुआ था। दरभंगा-जिले के युवक श्री रामनन्दन मिश्र अपने घर के लोगों की इच्छा के विरुद्ध अपनी स्त्री को पर्दे से बाहर ले आये। उसे वह साबरमती आश्रम में भी कुछ दिनों के लिए ले गये। महात्माजी ने श्री मगनलाल गांधी की पुत्री श्री राधा को उनकी शिक्षा और पर्दा-निवारण के काम के लिए बिहार भेजा। श्री मगनलालजी यहाँ का काम और अपनी पुत्री को देखने आये। वह अचानक बीमार पड़ गये और पटने में उनकी मृत्यु हो गयी। इसका असर विचित्र पड़ा। पर्दा-निवारण का काम जोरों से आरम्भ हुआ। इसके लिए एक प्रान्तीय सम्मेलन हुआ, जिसमें अगुआ श्री व्रजकिशोरप्रसाद भी हुए। काम चलता रहा। जो काम गया-कांग्रेस के समय छोटे पैमाने पर आरम्भ हुआ था वह बढ़ता ही गया।

जब १९३० का सत्याग्रह आरम्भ हुआ और गांधीजी ने मद्यनिषेध तथा विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार को खासकर स्त्रियों का काम बताया, तो स्त्रियों में उत्साह की लहर बढ़ चली। शहरों में जहाँ-जहाँ दूकानों पर पहरे का काम होता, स्त्रियाँ ही करती। दूकान पर उनके खड़ी हो जाते ही कोई खरीदार उस तरफ झाँकने की हिम्मत न करता। दूकानदार भी सहम जाते और उनके साथ भद्रता-पूर्वक व्यवहार करते। पटने में इस प्रकार का पहरा दो-चार दिनों के लिए कुछ दूकानों पर बिठाना पड़ा था। इसमें मुख्य काम करनेवाली श्रीमती विन्ध्यवासिनीदेवी थी। ऐसी -ऐसी स्त्रियाँ भी इसमें शरीक हुई जो कभी घर के बाहर न निकली होंगी। सवेरे ही ८-९ बजे तक कांग्रेसी कार्यकर्ता उनको अपने-अपने घरों से बुला लाकर नियत दूकान पर बिठा जाते। फिर समय हो जाने पर उन्हें उनके घरों पर पहुँचा भी देते। एक दिन का जिक्र है, एक किसी घर की नववधू आ गयी। स्वयंसेवक उसे घर वापस पहुँचा देना भूल गया। रात हो गयी। उसे कोई ले जाने नहीं आया। एक दूसरी काम करनेवाली स्त्री के पति अपनी पत्नी को अपने घर ले जाने के लिए आये, तो उन्होंने इस लड़की को एक दूकान पर खड़ी देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उसे घर ले जाने के लिए कोई नहीं आया है, इसलिए वह अभी तक वहाँ खड़ी है। उन्होंने उसे अपनी मोटर पर चढ़ा लिया और चाहा कि उसके घर पहुँचा दें। पर वह अपना घर भी नहीं पहचान सकती थी, क्योंकि घर से बाहर कभी निकली न थी। शहर के सभी घरों को प्राय एक तरह का देखकर अपना ही बता देती। हमारे यहाँ रवाज है कि स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती। इसलिए वह अपने पति का नाम भी नहीं बता सकती थी जिससे उसके घर का पता चले। वह शायद कैथी लिपि में अपना नाम लिख लेती रही हो, इससे ज्यादा पढ़ी-लिखी भी न थी। वह मोटरवाले सज्जन कैथी नहीं जानते थे कि उसके पति का नाम उसमें लिखवाकर घर का पता लगा ले। कुछ देर तक यहाँ-वहाँ मोटर दौड़ाते रहे। फिर उसके पति का नाम उससे लिखवाकर किसी से पढ़वाया। तब घर का पता लगा। इस तरह उसे उसके घर तक पहुँचा दिया। यह घटना मैंने इसलिए लिख दी है कि पाठक इससे देख सकेंगे

कि स्त्रियों मे कितना उत्साह था और किस तरह अशिक्षिता स्त्रियाँ भी इस काम मे आ लगी थी।

८८—बिहार में बीहपुर का सत्याग्रह

एक बार मै प्रयाग गया था। वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक थी। वहाँ से पटने वापस आया तो सुना कि भागलपुर-जिले के 'बीहपुर' गॉव मे नये ढग का सत्याग्रह शुरू हो गया है। इसकी कुछ खबर प्रयाग मे ही मिल गयी थी। पटने मे कुछ अधिक बाते मालूम हुई। तब मैने तुरन्त वहाँ जाने का निश्चय किया। 'बीहपुर', गगा के उत्तर, भागलपुर से थोडी ही दूर है। बी० एन० डब्लू० (अब ओ० टी०) रेलवे का छोटा-सा जकशन है, जहाँ से भागलपुर-घाट की गाडी जाती है। यहाँ का सारा इलाका बरसात मे जलमग्न हो जाता है। ऐसे दियारो मे जैसा देखा जाता है, यहाँ के लोग बडे बहादुर और लठधर है। यहाँ कांग्रेस के लिए लोगो मे बहुत उत्साह था।

१९२९ मे ही एक बार मै बहुत आग्रह से यहाँ बुलाया गया था। लोग मुझे आसपास के गाँव मे भी ले गये थे। बहुत उत्साह और प्रेम के साथ वहाँ के लोगो ने मेरा स्वागत किया था। वहाँ से कुछ दूर गौरीपुर गॉव है जहाँ मै गया था। लौटने के समय बहुत जोर से पानी बरसने लगा। बीच मे एक नदी पार करनी पडती थी। हाथी की सवारी थी। नदी पार करके हाथी पर हम लोग खूब भीग गये। जब बीहपुर मे सभा-स्थल पर पहुँचे तो देखा कि बहुत बडी भीड जमा है—यद्यपि खूब पानी बरस रहा है तथापि एक आदमी भी हटता नही है। मुझे भी उसी बरसते पानी मे खडा होकर भाषण करना पडा। इस तरह वहाँ के उत्साह का नमूना मैने कुछ पहले ही देख लिया था। वहाँ का कुछ इतिहास भी मैने सुन लिया था। उसमे से एक बात यहाँ लिखता हूँ। वहाँ एक अँगरेज की जमीन्दारी थी। रैयतो से एक जमीन की खातिर बहुत दिनों से झगडा चला आता था। कचहरियो मे बहुत मामले-मुकदमे चले थे। गोरे साहब ने जमीन की रक्षा के लिए कुछ गोरखो को नौकर रखकर रखवारी का काम उन्हे सपुर्द किया था। सुना जाता है कि बरसात के दिनो मे एक रात को उस इलाके के लोगो ने सभी गोरखो को, जिनकी सख्या बीस-पचीस थी, मारकर बढी हुई गगा मे फेक दिया। पता भी न लगा कि किसने मारा और उनके शव क्या हुए।

ऐसे स्थान की जनता मे सत्याग्रह के लिए उत्साह होना कोई आश्चर्य की बात नही थी, पर वे अहिसात्मक रह सकेंगे, इसी का डर था, और आश्चर्य भी। वहाँ पर एक नये ढग का सत्याग्रह, गॉजे की एक दूकान के सम्बन्ध मे, आरम्भ हो गया। रेलवे-प्लाटफार्म के पास ही पश्चिम तरफ कुछ जमीन है जिसमे कांग्रेस का आश्रम बना हुआ था। वहाँ एक छोटी कोठरी थी, जिसमे खादी-भडार था, जहाँ सूत खरीद कर रखा जाता था, बेचने के लिए रुई तथा कपडे रखे जाते थे। दूसरी कोठरियो मे कांग्रेस के कार्य्यकर्त्ता और स्वयसेवक रहा करते थे। उन दिनो ये मकान झोपडे जैसे थे।

अब तो वहाँ आश्रम के लिए सुन्दर पक्का मकान बन गया है, जो रेल के यात्रियो को रेल पर से ही देख पडता है।

स्टेशन के दक्खिन पाँच-सात दूकानो का एक छोटा-सा वाजार है। इन्ही मे से एक दूकान मे गाँजा बिका करता था। कॉग्रेसी स्वयसेवको ने गाँजे की दूकान पर पहरा बैठाया। पुलिस ने एक दिन कार्य्यकर्त्ताओ को आश्रम से मार-पीटकर निकाल दिया। आश्रम को भी दखल कर लिया। रूई-सूत-खादी इत्यादि को इधर-उधर फेंक-फॉक दिया। जब आस-पास के लोगो को मालूम हुआ कि पुलिस ने इस तरह आश्रम पर कब्जा कर लिया है तो उन्होने आश्रम को दखल करना चाहा। इसके लिए पहले चार-पाँच आदमियो का जत्था हाथ मे झडा लिये वहाँ गया। जाहिर है कि जहा पुलिस का जत्था हथियारबन्द बैठा था वहाँ चार-पाँच आदमी खाली हाथ जाकर जबरदस्ती दखल नही कर सकते थे। यह सिर्फ सत्याग्रह का एक जरिया था। पुलिस भी इसे वैसा ही समझती थी। वह उन लोगो को, जो जत्था बनाकर जाते थे, गिरफ्तार कर लेती थी। यह काम प्रतिदिन एक बार, तीसरे पहर चार-पाँच बजे के करीब, होता।

इस बात की खबर चारो ओर फैली। जैसे पटने मे तमाशा देखने के लिए भीड जमा हो जाया करती थी वैसे ही वहाँ भी जत्थे के जाने के समय भीड लग जाया करती। कभी-कभी पुलिस जत्थे को गिरफ्तार न करके उनको मारपीट कर छोड देती। प्रतिदिन दर्शको की भीड बढती गयी। जब पटने मे मुझे सविस्तर समाचार मिला तो मै कुछ मित्रो के साथ भागलपुर गया। वहाँ से दूसरे दिन दोपहर को वीहपुर पहुँचा। उस दिन हम लोगो के जाने की खबर फैल गयी। इसलिए भीड बहुत बडी जमा हो गयी। दिन मे तीन बजे के करीब सब लोग एक बगीचे मे जमा हुए। मैने उनको समझाया कि चाहे जो हो, अपनी ओर शान्ति रखनी चाहिए, किसी तरह कोई आदमी कोई हिंसात्मक कार्य्य न करे। जत्थे का समय हो जाने पर सब लोग सडक पर और उसके इधर-उधर खडे हो गये। कुछ लोग उस छोटे-से वाजार मे भी जमा हो गये। हम लोग भी जहाँ-तहाँ खडे थे। मै बाजार के सामने एक ऐसे स्थान पर था जहाँ से वह स्थान नजर आता था जहाँ पुलिस के आदमी खडे थे और जहाँ तक जत्था जा सकता था। वहाँ पहुँचने पर जत्था चाहे पीटा जाता, चाहे गिरफ्तार कर लिया जाता। भीड प्राय १५-२० हजार आदमियो की थी।

सत्याग्रहियो का जत्था निकला और सडक होकर उस स्थान तक पहुँचा जहाँ पुलिस खडी थी। वह सहूलियत के साथ गिरफ्तार कर लिया गया, मार-पीट नही हुई। हम लोगो ने समझा, उस दिन का काम समाप्त हुआ, अव सव लोग चले जायँगे। जनता अव तितर-वितर होना ही चाहती थी कि आश्रम के अन्दर से पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट कुछ लट्ठधारी सिपाहियो के साथ निकले। सडक पर खडी जनता पर लाठियाँ वरसाने का उन्होने हुक्म दिया। सडक वहाँ पर ऊँची है, आश्रम और वाजार दोनो ही नीची जमीन म है। पुलिसवाले बेतहाशा लाठियाँ चलाते भीड को चीरते, स्टेशन तक आ गये। न मालूम कितने आदमियो को लाठियाँ लगी, पर कोई कुछ

न बोला। वहाँ से पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ वे लोग बाजार मे पहुँच गये जहाँ मै खडा था। कुछ दूर पर, एक दूकान के ओसारे से, सुपरिण्टेण्डेण्ट ने चारो ओर निगाह दौडायी। वहाँ से चिल्लाते हुए कहा कि मारो सालों को। पुलिस उसी तरह लोगो पर बेतहाशा लाठियाँ चलाते आगे बढी। मुझ पर चार-पाँच लाठियाँ पडी। एक युवक स्वयसेवक ने बीच मे पडकर कुछ लाठियो के जोर को अपने ऊपर झेल लिया। इसलिए, यद्यपि मुझे भी चोट लगी तथापि उतनी न लगी जितनी लग सकती थी। मुझसे कुछ दूर पर श्री बलदेवसहाय और श्री मुरलीमनोहरप्रसाद थे। उनको भी कुछ चोट लगी। कुछ दूर पर प्रोफेसर अब्दुल बारी भी थे। उनको बहुत चोट लगी। वह गिर गये। उनका सारा बदन लहू-लुहान हो गया।

इस प्रकार मारते-पीटते पुलिस का जत्था सुपरिण्टेण्डेण्ट के पीछे-पीछे फिर आश्रम मे चला गया। भीड तो लाठी चलने के पहले से ही छँट चली थी। लोग जहाँ-तहाँ चले गये। हम लोग जो भागलपुर से आये थे, वही ठहरे रहे, क्योकि हमारी गाडी ७-८ बजे रात को वहाँ से छूटती थी। भीड के छँटने और पुलिसवालो के चले जाने पर उस बाजार मे रहनेवाले एक डाक्टर आये। वह हम लोगों क घावों को धोकर पट्टी बाँधने लगे। हम लोग वही बाजार के सामने खुले मैदान मे घास पर पडे थे। इसी बीच पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट, सिपाहियो और पुलिस-इन्सपेक्टर के साथ, फिर उधर आता नजर आया। हम लोगों ने सोचा, शायद फिर हम पर लाठियो का वार हो, पर वैसा हुआ नही। वे लोग कुछ दूर अलग ही ठहर गये। इन्सपेक्टर ने भागलपुर के प्रसिद्ध वकील और कॉग्रेसकर्मी श्री पटल बाबू को, जो हम लोगो के साथ आये थे, गिरफ्तार कर लिया। वे लोग उनको साथ लेकर वापस चले गये। हम लोग रात की गाडी से भागलपुर पहुँचे। वहाँ बडी सनसनी फैल गयी। मै भी एक-दो दिन ठहर गया।

भागलपुर, बिहार-भर मे, विदेशी कपडे की आढतो का, सबसे बडा केन्द्र है। और-और जगहो मे प्राय व्यापारियों ने विदेशी कपडे की गाँठे बाँधकर मुहरबन्द रख छोडी थी, पर अभी तक भागलपुर मे ऐसा नही हुआ था। उक्त घटना के बाद वहाँ भी स्त्रियो ने दूकानों पर पहरा देना आरम्भ किया। मेरे पास दूकानदार आकर कहने लगे कि वे गाँठ बाँधकर मुहर लगवा देने के लिए तैयार है। उन्होने आपस की कमिटी भी बना ली। दो-चार दिनों के अन्दर वहाँ भी सब विदेशी वस्त्र, बिक्री के बाजार से उठाकर, गाँठों के अन्दर मुहरबन्द करके, रख दिये गये। बीहपुर की घटना का तत्काल फल यह हुआ कि यह काम बिना परिश्रम के वहाँ हो गया।

हम लोगो के साथ असेम्बली के दो सदस्य, श्री अनन्तप्रसाद और श्री कमलेश्वरी-सहाय, बीहपुर गये थे। भीड-भाड मे उनको भी कुछ धक्का तो जरूर लगा था, पर पुलिस के सामने ठीक न पडने से वे लाठियों की चोट से बच गये थे। पर सारा खेल उन्होने अपनी आँखो देखा था। वे भी वहाँ से बहुत उत्तेजित होकर लौटे थे। उन लोगो की भी राय यही थी कि लाठी बिलकुल बिना कारण चली थी, क्योकि लाठी चलने के पहले ही भीड का हटना शुरू हो गया था—दो-चार मिनटो के अन्दर

ही लोग जहाँ-तहाँ चले गये होते, और हम लोगो पर किया गया प्रहार तो और भी बिना कारण था। इसलिए, उन्होंने अपने इस्तीफे भेज दिये। आज ठीक स्मरण नही है, पर शायद कुछ दूसरे लोगो ने भी, जब इस घटना का हाल सुना तो, इस्तीफे भेज दिये।

सबसे विचित्र एक दूसरी बात हुई। पुलिसवालो मे दो दल हो गये। कुछ तो ऐसे थे जो सुपरिण्टेण्डेण्ट के हुक्म को ठीक मानते और खूब लाठियाँ फटकारते थे। पर कुछ ऐसे भी थे जो लाठी के प्रहार को गलत समझते थे और होशियारी से हाथ बचा देते थे। हम लोगो पर जो लाठियाँ पडी वे एक ही दल की थी, दूसरे की नही। सुपरिण्टेण्डेण्ट आगे-आगे चल रहा था और ये लोग उसके पीछे-पीछे चारो ओर लाठियाँ हरहराते जाते थे। जब लाठी की चोट से अब्दुल बारी प्राय वही बेहोश होकर गिर गये, तब भी एक सिपाही ने उन पर फिर लाठी उठाई। वह अचेत गिरे हुए बारी साहब पर लाठी मारना ही चाहता था कि एक दूसरे सिपाही ने उसकी लाठी को अपनी लाठी पर रोक लिया। एक-तीसरे सिपाही ने तो बारी साहब को मारनेवाले उस सिपाही को ही लाठी मार दी। दोनो दल इस प्रकार आपस मे लडते-झगडते आगे निकल गये और अब्दुल बारी उस भारी चोट से बच गये। यह बात खुद अब्दुल बारी ने हम लोगो से कही।

हम लोग जब भागलपुर मे ठहरे थे तो प्राय गगा-स्नान करने जाते थे। वहाँ दूसरे दिन कुछ आदमियो से घाट पर भेट हो गयी। वे भी स्नान करने आये थे। उन्होने यह सारा किस्सा कह सुनाया और इसके बाद की घटना भी कह दी। वे पुलिस के उस दूसरे गोल के थे, जिसने अब्दुल बारी पर दूसरा वार रोका था। उन्होने कहा—"जब हमने देखा कि हमारा वह साथी, जिसको हमने लाठी मारने से रोका था और जिस पर हमने खुद लाठी का वार कर दिया था, सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास जाकर नालिश करेगा तो हम जल्द दौडकर उससे आगे पहुँच गये और जाकर पहले हमने ही नालिश कर दी कि दूसरे दल के सिपाहियो को लाठी चलाना नही आता, भीड पर लाठी चलाने के बदले वे अपने लोगो पर ही लाठियाँ झाड देते है, इसीलिए कुछ पुलिसवाले भी लाठी के शिकार बन गये है, यह सब हम कह ही रहे थे कि दूसरे दलवाले भी पहुँच गये, उन्होने सुपरिण्टेण्डेण्ट से नालिश की कि इन्ही लोगो ने उन पर लाठियाँ मारी है।" पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने दोनो दलो के बयान सुनकर वहाँ कुछ न किया, उन्हे सीधे भागलपुर की पुलिस-लाइन मे भेज दिया।

एक और विचित्र घटना हुई। पुलिस के इन्सपेक्टर छपरा-जिले के रहनेवाले थे। वह मेरे स्कूल के साथी थे। हम दोनो चार बरसो तक एक साथ पढे थे। एक साथ ही एण्ट्रेन्स भी पास किया था। उसके बाद मैं कलकत्ते पढने चला गया। वह पुलिस की नौकरी मे चले गये। तब से हम दोनो की मुलाकात नही हुई थी। पर यह मैं जानता था कि वह पुलिस मे है। अब वह कुछ बूढे-से भी हो गये थे। उनके केश प्राय सफेद हो गये थे। जब उस दिन हम लोग घास पर पडे थे, सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ वह दूसरी बार पटल बाबू को गिरफ्तार करने आये। उन्होंने आहिस्ता से

मुझे प्रणाम किया। मैने उन्हे पहचाना नही, पर उन्होने मुझे पहचान लिया था। पीछे दरियाफ्त करने पर उनका नाम मालूम हुआ। मैने खादी-भडार के एक कार्य्य-कर्त्ता रामविलास शर्मा को बीहपुर भेजा कि वहाँ के पुलिस-अफसर से कहकर खादी-सूत-चर्खे इत्यादि जो इधर-उधर फेंके पडे थे उन्हे एकत्र करके लावे और भागलपुर-भडार मे जमा करा दे। रामविलास बहुत बोलक्कड और शोख मिजाज के है। उन्होने सुन लिया था कि इन्सपेक्टर मेरे साथी है। वहाँ पहुँचने पर उन्होने देखा कि वही महाशय वहाँ के इन्चार्ज है। उनसे जाकर वह मिले। कुछ बाते करने पर पता लग गया कि इन्सपेक्टर साहब उस दिन की घटना से कुछ लज्जित-से है। इस पर शर्मा ने मेरा हवाला देकर उनसे कहा कि मै उनका साथी हूँ और उस दिन उनके प्रणाम करने पर भी उन्हे ठीक न पहचान सकने का मुझे बहुत अफसोस है। वह जैसे-जैसे उनसे ये बाते करते जा रहे थे, उनके चेहरे का रग बदलता जा रहा था। उन्होने शर्मा से कहा, इन सब बातो की चर्चा मत कीजिए। इतना कह दूसरी ओर उन्होने मुँह फेर लिया। रामविलास ने मौका देखकर कुछ और बाते छेड दी। फिर मेरा जिक्र करते हुए कहना शुरू कर दिया कि मुझे इस बात का बहुत अफसोस रहा कि इतने दिनो के बाद देखादेखी हुई तो पुराने साथी से कुछ बाते भी न हो सकी। इस पर फिर उन्होंने रामविलास को आगे बाते करने से रोका। रामविलास ने देखा कि उनकी आँखे डबडबा गयी थी।

मै जानता हूँ कि इस प्रकार की घटनाएँ अनेक स्थानो मे हुई। एक दूसरे पुलिस-अफसर का भी यही हाल हुआ। उन्होने रात को मुझसे मुलाकात की। आँसू बहाते हुए मेरे पैर पकड लिये। कहा कि उस जिले मे उनके रहते-रहते ऐसी घटना हुई कि मै लाठी से पीटा गया और वह कुछ भी न कर सके। यहाँ पर यह भी लिख दूँ कि १९३३ की जनवरी मे जब दुबारा सत्याग्रह के समय मै पटना-जेल से हजारीबाग-जेल मे पहुँचाया गया, तो हजारीबाग-रोड-स्टेशन से हजारीबाग तक जो पुलिस-इन्सपेक्टर मुझे पहुँचाने गये थे वह यही इन्सपेक्टर थे। पर वह रात का समय था। जाडे के कपडों मे वह भी खूब छुपे थे और मै तो था ही। लारी की अगली सीट पर वह बिना कुछ बोले बैठ गये। हम लोग पीछे बैठे और खूब सवेरे ही जेल के दरवाजे पर पहुँच गये। हम लोगो के उतरते-उतरते ही वह कही हट गये। रास्ते मे वह कही एक शब्द नही बोले थे जिससे मै पहचान सकूँ। जेल के फाटक पर भी देखा नही। पीछे जेलर ने हमसे उनका नाम कहा। यह भी कहा कि रास्ते-भर वह किसी तरह अपनी पहचान बचाते आये है। जेलर भी छपरे के रहनेवाले थे। वह हम लोगो के एक दूसरे साथी के छोटे भाई थे। इस कारण हम उन्हे लडकपन से ही जानते थे।

बीहपुर मे लाठी-प्रहार के बाद भी जत्था वैसे ही प्रतिदिन जाता रहा। वह गिरफ्तार होता या पीटा जाता। जब तक गाधी-अर्विन-समझौता न हुआ और कांग्रेस ने सत्याग्रह बन्द न किया, यह क्रम बराबर जारी रहा। पीछे जत्थावाले बहुत बेरहमी

से पीटे जाने लगे। एक स्वयसेवक आज तक हम लोगो के पास सहायता के लिए आया करता है। उसको बहुत पीटा था। अन्त मे साइकिल का पम्प उसके कान मे लगाकर इस तरह हवा भर दी थी कि उसके कान की झिल्ली फट गयी। वह अभी तक उसकी तकलीफ सह रहा है।

१९३२ मे जब सत्याग्रह फिर आरम्भ हुआ तब गवर्नमेण्ट ने बीहपुर के आश्रम को जब्त नही किया—यद्यपि समझौते के जमाने मे बहुत कोशिश करने पर भी इसे छोडने पर राजी नही हुई थी। जमीन के मालिक ने आश्रम की जमीन कांग्रेस को लिख दी थी। हम लोगों का उस पर पूरा कानूनी हक था। पर सरकारी कर्मचारियो ने किसी दूसरे आदमी को खडा करके जमीन लिखवा लेने का प्रयत्न किया था। जब हमने नालिश करने की धमकी दी तब वह आश्रम हमे वापस मिला। जिस समय पुलिस ने आश्रम पर कब्जा किया-था, जब्ती का कोई हुक्म नही निकला था। पीछे भी कभी बाजाब्ता जब्ती नही हुई थी। तो भी वे उसे छोडना नही चाहते थे। किसी से लिखवाकर उस पर बिलकुल झूठा दावा कर रहे थे। वही हमको साफ मालूम हो गया कि सरकारी कर्मचारी अपना पक्ष-समर्थन करने-कराने के लिए चाहे जो कुछ भी कर सकते है। इसके लिए मुझे उस समय के चीफ सेक्रेटरी मिस्टर हैलेट (अब युक्तप्रान्त के लाट सर मौरिस हैलेट) से और बिहार के लाट से भी, समझौते के जमाने मे, भेट करनी पडी थी।

८९—मेरी गिरफ्तारी : छपरा-जेल में

पटना लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि अब मेरी गिरफ्तारी के लिए गवर्नमेण्ट का हुक्म हो गया है। मैंने पूर्ववत् अपना दौरा जारी रखा। कई जिलो मे घूम आया, पर कही गिरफ्तार न किया गया। पीछे मालूम हुआ कि मै एक जिले से दूसरे जिले मे बहुत जल्दी घूमकर चला जाता हूँ। इसलिए जिला-मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करके एक बला अपने ऊपर नही लेना चाहते। इस तरह मै बचता चला गया। इसी बीच मे एक दिन श्री विट्ठलभाई पटेल पटने मे आये। वह हाल ही मे केन्द्रीय असम्बली के सभापति-पद को छोड चुके थे। इससे लोगो मे उनके प्रति श्रद्धा और भी बढ गयी थी। पटने मे एक सार्वजनिक सभा की गयी। मिस्टर हसन इमाम उसमे खादी का जाँघिया और अधबँहियाँ पहन कर आये। वही खबर मिली कि उसी दिन सवेरे पडित मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। मैंने समझ लिया, अब मेरी गिरफ्तारी मे भी देर न होगी। मैंने चलते समय मिस्टर हसन इमाम साहब से मुलाकात की। उन्होने बहुत उत्साहपूर्वक आश्वासन दिया। कहा, बच्चू, तुम्हारे गिरफ्तार हो जाने से काम रुकेगा नही। मै उसी सभा के बाद, श्री विट्ठलभाई पटेल को बिहार से बिदा करके, खुद छपरा-जिले के दौरे पर चला गया।

वहाँ भी तीन दिनो का कार्य्यक्रम था। जिले के पश्चिमी भाग मे प्रारम्भ करके तीसरे दिन पूर्वी भाग समाप्त कर पटने पहुँच जाना था। पहली रात जीरादेई

मे और दूसरी छपरे मे बितानी थी। तीसरी रात को पटने पहुँचना था। दो दिन वीत चले थे। दूसरे दिन शाम का कार्य्यक्रम पूरा करते बहुत रात हो गयी। सध्या के वदले रात १२ बजे छपरा पहुँचा। बिहार-बक मे पहुँचने पर मालूम हुआ कि भाई कही गये है—छपरे मे नही है और पुलिसवाले प्राय १०-११ बजे तक मेरे इन्तजार मे बक मे ठहरे रहे है। मै समझ गया कि गिरफ्तारी के लिए खोज कर रहे होगे। मै भोजन करके सो गया। सवेरे उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, करीब ८॥ बजे, मोटर पर गडखा के लिए रवाना हुआ। वही पर पहली सभा होनेवाली थी। पुलिसवालो को मालूम ही था। इसलिए वे लोग गडखा मे जाकर मेरा इन्तजार करने लगे। एक दल उस रास्ते पर ठहरा रहा जिधर से मै गडखा पहुँचनेवाला था। मै अभी छपरा-शहर के वाहर भी नही गया था कि गडखा की ओर से एक मोटर पर पुलिसवाले लौटते मौना मुहल्ले मे ही मिल गये। उन्होने इशारा करके मेरी गाडी को रुकवाया। मुझसे कहा कि मेरी खोज मे वे पहले दिन से घूम रहे है। मै उनके साथ उनकी गाडी पर हो लिया। उन्होने कहा कि बक मे यदि किसी से मिल लेना हो अथवा कुछ ले लेना हो तो उधर से चल सकते है। मै बक मे गया। वहाँ घर के लोगो से भेट कर ली। कुछ खा भी लिया। एक-आध घटे के भीतर ही तैयार होकर उनकी गाडी पर फिर सवार हो गया। अभी तक इस बात की खबर शहर मे पहुँची भी न थी कि मै सीधे जेल ले जाया गया।

जेल का यह मेरा पहला अनुभव था। एक बार मै छपरा-जेल मे कुछ मित्रो से मिलने गया था। पर इससे ज्यादा उसके या किसी भी जेल के सम्बन्ध मे नही जानता था। जेल मे उस समय प्राय ३००-४०० सत्याग्रही कैदी थे। उनको मालूम हो गया कि मै फाटक के अन्दर पहुँच गया। वे जयजयकार करते फाटक के पास पहुँच गये। जेलर कुछ घबरा गये। उन्होने अन्दर का फाटक नही खोला। इस पर लोग और भी शोर करने लगे। मैने जेलर से कहा कि मुझे अन्दर ले चले, सब शान्त हो जायँगे। उन्होने कहा कि जब तक ये लोग फाटक के नजदीक रहेगे, फाटक खोलने का नियम नही है, इसलिए ये लोग जब चले जायँ तभी वह मुझे अन्दर ले जायँगे। मै सत्याग्रहियो से कुछ कह भी नही सकता था, क्योकि छोटे सूराख से कहाँ तक बाते हो सकती थी। मै जानता था कि यह उत्साह केवल स्वागत के लिए है, मेरे अन्दर जाते ही और भेट होते ही सब शान्त हो जायँगे। पर जेलर इस वात को नही समझ सकते थे। कुछ देर के वाद फाटक खोलकर वह मुझे अन्दर ले गये। सभी लोग इतना ही चाहते थे। सब मेरे साथ हो लिये और मुझे जहाँ रहना था वहाँ तक पहुँचाकर अपने-अपने स्थान को चले गये। इसी बीच मे वाहर से जयजयकार की आवाज आने लगी। वहाँ की जेल मे एक दोमहला मकान है। उस पर भी कुछ लोग रहते थे। उन्होने देखा कि एक वडी भीड जेल की तरफ जयजयकार करती आ रही है। वह भीड वाहर सडक पर थी। जेलर और भी घबरा गये थे। उन्होने जेल के वार्डरो को फाटक पर से वन्दूक छोडने का हुक्म दिया। आवाज

हम लोगो ने सुनी और समझा कि शायद कही गोली तो नही चली। पर बात ऐसी नही थी। जेल एक तरह से बीच शहर मे है, चारो ओर सडक है। लोगो ने केवल जेल के इर्द-गिर्द जलूस घुमाकर और नारे लगाकर काम समाप्त किया। पर जेलर अपनी घबराहट मे खामखाह् बन्दूक छुडवाने लगे। खैरियत थी कि खाली फायर किया जाता था। सुना कि पीछे जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को इसकी खबर मिली तो उन्होने जेलर को डॉटा कि यह बडी भूल थी—यदि जनता बन्दूक छूटते देखकर बिगड जाती तो वह झूठे फायर से उसे कैसे रोक सकते, खासकर जब उन्होने पुलिस या मजिस्ट्रेट को भी खबर नही दी थी।

मेरा पहला अनुभव विचित्र रहा, क्योकि पीछे जब औरो के अनुभव से मैंने अपने अनुभव को मिलाया तो मालूम हुआ कि औरो को ऐसा अनुभव नही हुआ था। उस समय तक छपरे मे कैदियो के वर्गीकरण का कोई इन्तजाम नही था। मेरे सम्बन्ध मे कोई खास हुक्म भी न था। इसलिए मैं लोहे के तसले मे जो कुछ वहाँ मिलता वही खाता। घर से लोगो ने खाना भेजा, पर मैंने मना कर दिया और उसे नही खाया। जेलर का कहना था कि मै जब तक हाजती (undertrial) हूँ तब तक घर का खाना खा सकता हूँ, पर फाटक पर जाकर खाना होगा। मै तो यो ही इनकार करता, इस शर्त ने और भी मजबूर कर दिया। दूसरे दिन भाई साहब छपरा पहुँचे। मुकदमे की पेशी के समय, जो जेल मे ही हुई, आकर मिले। जेलर कायदा बर्तने मे इतने सख्त थे कि मेरे घर से कुछ आम आये तो उन्हे भी फाटक पर आकर ही खाने के लिए सवाद भेजा। मैंने इनकार कर दिया। आम भी वापस कर देने को कह दिया। तब तक आम लानेवाला आदमी वापस चला गया था। फिर उन्होने खुद आकर कहा, तो मेरे कारण पूछने पर कहने लगे कि जेल मे एक कैदी दूसरे कैदी को अपना खाना नही दे सकता, इसलिए उसे बाहर की चीज भी हम अन्दर खाने नही देते। पीछे मालूम हुआ कि यह उनका मनगढन्त नियम था, किसी दूसरी जेल मे ऐसा नही हुआ।

जिन मजिस्ट्रेट के सामने मेरा मुकदमा पेश हुआ, उनकी मेरी पहले से मुलाकात थी। मेरे वकालत के दिनो मे वह मेरे मवक्किल रह चुके थे। उनके निजी मुकदमे मे मैं काम कर चुका था। इत्तफाक की बात, १९३३ मे जब मैं पटने मे गिरफ्तार हुआ, वह पटने के सब-डिवीजनल अफसर थे। उस बार भी उनको ही मेरी सजा सुनानी पडी। मुकदमे मे कुछ कहना-सुनना तो था नही, कोई दफा लगाकर मुझे छ महीने कैद की सजा उन्होने दे दी।

मुझे कुछ भी मालूम न था कि मुझे वही रखेगे या कही अन्यत्र ले जायेंगे। पर इतना मै जानता था कि सूबे के प्रमुख लोग हजारीबाग-जेल मे रखे गये है। जेलर ने भी कुछ नही कहा कि मैं वही रहूँगा या हजारीबाग भेजा जाऊँगा। इस तरह पाँच-छ दिन बीत गये। एक दिन सध्या को भोजन करके मैं अपने वार्ड के छोटे आँगन मे, एक कुर्ता पहने और एक अँगोछा हाथ मे लिये, घूम रहा था। जेलर

स्नानादि से निवृत्त होकर नाश्ता कर लिया। सोनईस्ट-ब्रैक स्टेशन पर गया-जिले के पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिले। उन्होने मुझे एक मोटर पर सवार कराकर, हजारीबाग के लिए, एक इन्सपेक्टर के साथ, रवाना किया। वहाँ मै एक बजे दिन के कुछ पहले पहुँच गया। मित्रो के साथ वहाँ रखा गया। इस लम्बी-चौडी यात्रा की बाते जब मित्रो ने सुनी तो बहुत चकित हुए। मिस्टर खाँ ने छपरे मे ही पूछने पर इस तरह ले जाने का कारण बताया था—गवर्नमेण्ट नही चाहती कि छपरा, सोनपुर, पटना और गया स्टेशनो पर लोगो की भीड जमे और प्रदर्शन हो, इसलिए यह रास्ता सोचकर निकाला गया है। साथ के इन्सपेक्टर ने भी कहा कि रास्ते मे कही भी मोटर न ठहराने का हुक्म है और औरगाबाद (गया) मे जहाँ कस्बे के बीच होकर सडक जाती है वहाँ मोटर को तेज ले जाने का हुक्म है। ऐसा उन्होने किया भी।

छपरा-जेल से मेरे निकल आने पर जब जेलर मेरा सामान लाने अन्दर गये तो लोगो को मालूम हो गया कि मै वहाँ से हटा दिया गया। वहाँ के लोगो मे बडी उत्तेजना फैली। कुछ लोगो ने कोठे पर से चिल्लाना शुरू कर दिया कि मुझे किसी अज्ञात स्थान मे ले गये। शहर के किसी आदमी ने दौडकर विहार-ब्रक मे पहुँच भाई को खबर दे दी। वह अपनी मोटर पर तुरत छपरा-स्टेशन पहुँचे। वहाँ उन्हे मालूम हुआ कि मै किसी गाडी मे नही सवार कराया गया हूँ। उन्होने समझा कि शायद किसी आगे के स्टेशन पर सवार करायेगे। पर उन्हे यह क्या पता कि सोनपुर की ओर न जाकर मुझे बनारस की ओर ले गये है। वह सोनपुर तक मोटर से पहुँचे। जब वहाँ भी मुझे न पाया तो निराश होकर फिर छपरे लौट गये। बाद जब मालूम हुआ कि मै हजारीबाग पहुँच गया तो वह आकर मुझसे मिले।

९०—हजारीबाग-जेल में

हजारीबाग-जेल के जेलर बाबू नारायणप्रसाद मेरे पूर्व-परिचित थे। उनके एक बडे भाई मेरे स्कूल के साथी थे, जिनसे मेरी मित्रता थी। मै उनके घर पर कभी-कभी जाया करता था। वह बडे कार्य-कुशल और विचारशील जेलर थे। उन्होने मुझे वही स्थान दिया जहाँ रामदयालु बाबू, श्री बाबू, विपिन बाबू प्रभृति रहते थे। जेल मे मेरा समय कुछ पढने और सूत कातने मे बीतता था। पीछे सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर ऐयगर से कहकर मै उस कारखाने मे, जहाँ कपडा और नेवार बुना जाता था, बुनाई का काम करने लगा। इन पाँच-छ महीनों मे मैंने प्रायः दो सौ गज नेवार और १४–१५ गज कपडे भी बुन लिये। पर वह कपडा चर्खे के सूत का नही था, जेल का ही था, इस-लिए उसे वही छोड दिया। पर नेवार को चलने के समय दाम देकर खरीद लिया। मै जुलाई के पहले सप्ताह मे गिरफ्तार हुआ था और दिसम्बर के अन्त तक वहाँ रह कर रिहा हुआ। समय बीतते देर न लगी।

इस बीच मे श्री दीपनारायण सिंह भी वहाँ पहुँच गये। वह भी हमारे साथ ही उसी कमरे मे रहे। दक्षिण-अफ्रिकावाले स्वामी भवानीदयाल भी उसी वार्ड मे रहने

थे। दूसरे वार्ड मे जो मित्र रहते थे वे भी जेलर से इजाजत लेकर जब-तब हम लोगो से मिलते रहते थे या हम ही उनके वार्ड मे जाकर उसी तरह मिलते थे। किसी बात की तकलीफ नही थी। पुस्तको के सम्बन्ध मे कुछ रुकावट थी। कोई पुस्तक, पुलिस अथवा मजिस्ट्रेट के 'पास' किये बिना, हम लोगो को नही मिलती थी। पास करनेवाले सज्जन कुछ बहुत पढे-लिखे नही मालूम होते थे। जिस पुस्तक के नाम मे किसी तरह 'पालिटिक्स' या 'पोलिटिकल' शब्द आ जाय उसे वे हरगिज नही पास करते। जिसमे ये शब्द न आवे उस पुस्तक को, चाहे उनके दृष्टिकोण से वह कितनी भी खराब पुस्तक क्यो न हो, वे पास कर देते। उदाहरणार्थ, वहाँ की एक मजाक की बात सुन लीजिए।

किसी ने 'इकनामिक्स' की एक पाठ्य पुस्तक, जो कालेजो मे पढाई जाती थी, मँगायी। उसका नाम था Text Book of Political Economy, उसे उन्होने नामजूर कर दिया चूँकि नाम मे 'पोलिटिकल' शब्द था। पर A B C. of Communism और Theory of Leisure class के पास करने मे वे नही हिचके। पहली पुस्तक को न मालूम क्या समझ कर पास किया, पर दूसरी के सम्बन्ध मे हम लोगो का अनुमान हुआ कि उन्होने समझा होगा, इसमे ऐसे लोगो के मन-बहलाव की बाते होगी जिनके पास बहुत अवकाश का समय रहता है!

मैंने जेल मे सोचा कि गाधीजी के लेख अधिकतर उनके साप्ताहिको की फाइलों मे ही पडे है। यद्यपि मद्रास के प्रकाशक श्री गणेशन ने उनको इकट्ठा करके पुस्तकाकार मे प्रकाशित किया है और उसके लिए मैंने एक लम्बी भूमिका भी लिखी है, तो भी मेरा विचार हुआ कि यदि एक-एक विषय के सभी लेखो का अलग-अलग सग्रह छापा जाय और आरम्भ की छोटी-सी भूमिका मे उन लेखो का सक्षिप्त अर्थ दे दिया जाय, जिससे पाठक उस विषय पर उनके विचारो को थोडे शब्दो मे जान ले और तब उनका विस्तार-पूर्वक उनके अपने शब्दो मे एक जगह अध्ययन करे, तो अच्छा होगा। इसलिए, मैंने उन लेखो को कई विभागो मे बाँटा। जैसे अहिंसा, स्वराज्य, सत्याग्रह, शिक्षा, खादी इत्यादि। फिर प्रत्येक विषय पर छोटा लेख लिखा जिसमे उनके विचारो का साराश था। लेखों को चुन लिया। कुछ मित्रो ने अलग-अलग उनकी नकल भी तैयार कर दी। मेरी भूमिका भी पूरी हो गयी। इसी समय मै छूट गया।

बाहर आने पर समय न मिला कि उसे फिर एक बार देखकर छपवाऊँ। गाधीजी से भेट होने पर उनसे पूछा कि ऐसा करना क्या वह पसन्द करेंगे। उन्होने अपनी अनुमति दे दी। यह भी कहा कि कुछ दिन पहले किसी ने गुजराती मे ऐसा ही सग्रह छापा भी है। कुछ और मित्रो ने भी इसे पसन्द किया। विशेषकर पुरुलिया के श्री निवारणचन्द्र दास गुप्त ने इसे बहुत पसन्द किया था। उन्होने भूमिका मे कुछ सुधार भी बतलाये थे, जिनको मैंने मान लिया था। १९३१ मे यह चीज प्रेस मे न जा सकी। जब १९३२ मे फिर हम लोग गिरफ्तार हो गये तो सदाकत-आश्रम भी जब्त हो गया। बस फिर वह लिखी हुई चीज मुझे नही मिली। न मालूम कहाँ रखी गयी और किस तरह गायब हो गयी!

जेल के अदर चर्खा चलाने और उद्योग-धन्धे के अलावा धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन भी हुआ करता था। छपरे के प० भरत मिश्रजी भी साथ थे। उनसे श्री वाल्मीकीय रामायण की कथा और प० विष्णुदत्त शुक्ल से दुर्गा सप्तशती की कथा सुनी। स्वय पहले-पहल मुख्य उपनिषदो को आद्योपात पढ गया।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, हजारीबाग-जेल मे सूबे के प्राय सभी जिलो के प्रमुख कांग्रेसी लोग भेजे गये थे। मै बराबर सूबे मे बहुत दौरा किया करता था। अधिकतर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओ को जानता था। पर जेल मे जितने दिनो तक एक साथ रहने का मौका मिला उतना कभी बाहर नही मिला था। वही स्वामी भवानीदयाल के साथ बहुत दिनों तक रहकर एक दूसरे को जानने-पहचानने का मौका मिला। वह स्मृति सदैव एक मीठी स्मृति बनी रहेगी। मुजफ्फरपुर-जिले के ठाकुर नवाबसिह एक पुराने विचार के वयोवृद्ध सज्जन थे—अथवा यो कहे कि अँगरेजी शिक्षा से अनभिज्ञ, तो बेहतर होगा। गाधीजी के असहयोग-आन्दोलन ने गॉवो मे बहुतेरी को प्रभावित किया था। बिहार मे विशेषकर गॉवो के लोगो पर ही अधिक प्रभाव पडा था। इसके विपरीत पास के ही सूबा युक्तप्रान्त मे अधिक प्रभाव शहरो पर पडा था। चम्पारन मे गाधीजी के काम से देहात के लोग परिचित हो गये थे। इसलिए किसानो मे, जो अधिकतर गाँवो मे ही रहते है, उनका बहुत प्रभाव था। उसी प्रभाव मे पडकर ठाकुर नवाबसिह इस आन्दोलन मे शुरू से ही आ गये थे। आये भी तो अकेले नही। उनके लडके, भतीजा, पोता सबके सब साथ आये। सीतामढी-सबडिवी-जन मे जो कुछ होना हो, जो कुछ करना हो, ठाकुर नवाबसिह पर उसका भार पडता। वही नेतृत्व करते। आधुनिक रीति से शिक्षित न होकर भी वह इतने समझ-दार थे कि सब बातो को जल्द समझ लेते। कांग्रेस की आज्ञा को पूरा करने और कराने मे यथासाध्य खूब चेष्टा करते। वह भी अपने पुत्र के साथ उसी जेल मे थे। उनको भी अधिक जानने का सुअवसर मुझे वही मिला। उन्होने अपने जीवन के अन्त तक अपना विचार दृढ रक्खा। १९४२ के अगस्त मे, गाधीजी और दूसरो की गिरफ्तारी के बाद, जो हलचल शुरू हुई उसमे भी वह उसी उत्साह, निर्भीकता और दृढ विश्वास के साथ शरीक हुए जिसके साथ वह शुरू मे आन्दोलन मे आये थे। सीतामढी नैपाल के निकट है। वह पुलिस की धाँधली से बचकर काम करने के लिए नैपाल की तराई मे चले गये। वही से कांग्रेस का काम करते रहे। वही बीमार पड़े और हमने जेल मे सुना कि उनका देहावसान हो गया।

स्वामी सहजानन्द भी जेल मे थे। बहुतेरे लोग उनसे गीता पढते थे। मेरी भी इच्छा थी, पर समयाभाव से यह पूरी न हुई। पर सबसे अधिक मेरी घनिष्ठता श्री निवारणचन्द्र दास गुप्त से बढ गयी। वह एक साधु प्रकृति के पुरुष थे। उन्होंने गाधीजी के असहयोग-आन्दोलन को केवल एक राजनीतिक आन्दोलन ही न मानकर धार्मिक उत्थान का एक साधन भी माना था। उनके साथ हम लोगो ने पतञ्जलि के योग-सूत्र का अध्यययन किया। वही उनकी विद्वत्ता और गम्भीर गवेषणा-शक्ति का पता

चला। यह भी मालूम हुआ कि उन्होने किस तरह अपने जीवन को उन शास्त्रीय नियमों के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया है। कुछ दिनो के बाद क्षयरोगग्रस्त होकर वह एक ऐसा स्थान खाली छोड गये जिसकी अभी तक पूर्ति नही हुई है।

जेल मे कुछ बातो मे आपस की सुखद प्रतिद्वन्द्विता भी हुई। कुछ लोगो ने 'बन्दी' या 'कैदी' नाम का एक हस्तलिखित मासिक पत्र निकाला। दूसरो ने 'कारागार' नाम का दूसरा मासिक निकाला, जिसमे यह लिखा कि कैदी या बन्दी तो आते-जाते रहते है, बदलते रहते है, पर कारागार तो स्थायी रूप से चलता ही रहता है। इन पत्रो मे राष्ट्रीय आन्दोलन-सम्बन्धी लेख लिखे जाते थे। एक विशेषाक मे सभी जिलो के प्रमुख कार्यकर्त्ताओ से, अपने-अपने जिले मे आन्दोलन की प्रगति पर, लेख लिखवाये गये। मेरा खयाल है कि उससे बहुत-कुछ ऐसा मसाला मिलता जिससे आन्दोलन का इतिहास लिखा जा सकता। याद नही, वह विशेषाक कहाँ है। इन पत्रिकाओ के मुख्य प्रबन्धक और लेखको मे सर्वश्री स्वामी भवानीदयाल, गगया के बाबू मथुराप्रसाद सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी और उत्साही युवक महामायाप्रसाद थे। एक-दो अको मे कुछ चित्र भी थे जिनके बनाने वा बनवाने का श्रेय गिद्धौर के कुमार कालिकाप्रसाद सिंह को था।

इस जेल-यात्रा मे हमको जेल की बातो का विशेष ज्ञान या अनुभव नही हुआ; क्योकि एक तो अपने ही लोग इतने थे कि दूसरो की ओर ख्याल अधिक गया ही नही; दूसरे मामूली कैदियो से मिलने का बहुत मौका भी न मिला। हम लोगो के काम कर देने के लिए जो कैदी मिलते थे, अथवा जब मै कारखाने मे नेवार या कपडा बुनने जाया करता तो वहाँ जो कैदी काम करते थे, बस उनसे ही मुलाकात होती थी, दूसरो से नही। पर इनमे ही जो मिले उनमे बहुतेरे अच्छे भी मालूम पडे। किसी न किसी कारण से वे जेल चले आये थे। पर उनमे मामूली तौर पर कोई ऐसी बात नही नजर आती थी जिसके लिए उन्हे लम्बी सजा का मिलना उचित मालूम हो। इस सम्बन्ध मे पीछे अनुभव प्राप्त हुए, जिनका जिक्र किसी दूसरे अवसर पर किया जायगा।

हम लोगो को शुरू मे कोई अखबार नही मिलता था, जिसकी जरूरत सभी बहुत महसूस करते थे। पर जेल एक ऐसी जगह है जहाँ प्रबन्ध करने पर सब कुछ मिल सकता है। इस विशेष प्रबन्ध के लिए लोगो ने एक विशेष शब्द खोज निकाला। उसे 'तिकडम' कहते है। कुछ लोग 'तिकडम' से कभी-कभी कोई न कोई अखबार मँगा ही लेते थे। उसे पढकर छपी खबरो को दूसरो तक पहुँचा देते थे। कुछ दिनो के बाद एक सज्जन सबकी राय से कही से अखबार प्राप्त कर पढ लेते और सबको खबर सुना देते। जब खबर सुनाने का समय आता, सभी लोग उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते। उनकी स्मरणशक्ति और कहने का ढग भी ऐसा था कि सब लोग बहुत प्रसन्न हो जाते। गवर्नमेण्ट ने कुछ दिनो के बाद अखबार देना मजूर किया। पर जैसा उसका सब काम हुआ करता है, दिखाने के लिए तो कहा गया कि अखबार दिये जाते है, पर हम लोगो को मिलता था सप्ताह मे एक ही अखबार एक ही बार,

और वह भी 'स्टेट्समैन' का साप्ताहिक सस्करण। वह विदेशो के लिए छपा करता था। उसमे विशेषकर ऐसे विचार रहा करते थे, जिनके जानने की उत्सुकता हम लोगो मे शायद ही किसी को होगी। खबरे उसमे केवल ऐसी होती जिनमे विदेशी पाठको की ही अधिक दिलचस्पी हो सकती थी और जो एक सप्ताह पुरानी भी होती। भारत मे रहनेवालो को, विशेषकर सत्याग्रहियो को, उन खबरो से कोई लाभ नही। चाहे विधान के रूप मे हो, चाहे किसी दूसरे प्रकार के सुधार के रूप मे हो, ब्रिटिश सरकार जो सहूलियते देने की घोषणा करती है, उनकी अधिकतर यही हालत हुआ करती है। कहने के लिए एक चीज दी तो गयी, पर जिसमे कोई सार नही, असली तत्त्व नही। इन्ही चीजो से जेल का समय कटता था।

९१—गोल-मेज-कान्फ्रेन्स और पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु

उन्ही दिनो, मेरे हजारीबाग पहुँचने के कुछ ही दिनो बाद, लदन मे होनेवाली गोलमेज-कान्फ्रेन्स की बात छिडी। सबसे पहले पडित मोतीलालजी से हुई मुलाकात की बात मिस्टर स्लोकोम्ब ने प्रकाशित की। उसके बाद सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर बीच-बचाव करने लगे। उनके ही बीच-बचाव से पडित मोतीलाल, पडित जवाहरलाल और डाक्टर महमूद से—जो नैनी-जेल से पूना ले जाये गये जहाँ महात्मा गाधी और वर्किंग कमिटी के कुछ दूसरे मेम्बर थे—बाते हुई। पर पटरी नही बैठी और मामला टूट गया। मैने अपने लोगो मे, जो हजारीबाग-जेल मे थे, एक बात देखी। जब समाचारपत्रो मे समझौते की कोई खबर छपती तो उसे वे बहुत उत्सुकता से पढते और सभी बातो पर आपस मे बहुत बहस करते। ऐसा मालूम होता कि उनमे से बहुतेरे समझौते के लिए उत्सुक है। हाँ, कुछ लोग अवश्य ऐसे थे जो इस बात पर डटे रहते थे कि जब तक स्वराज्य-सम्बन्धी सन्तोषजनक बात न तय पावे, समझौता नही होना चाहिए। पर दूसरे ऐसे लोग भी थे जो समझते थे कि गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे कुछ न कुछ सन्तोषजनक बात हो जायगी, इसलिए इस समय यहाँ अधिक झगडा न उठाकर वहाँ जाना स्वीकार कर लेना चाहिए। जब समझौता न हो सका तो ऐसे लोगों को वह जरूर नापसन्द हुआ।

दिसम्बर मे जेल से छूटकर मै सीधे बम्बई गया, क्योकि उस समय बम्बई ही एक प्रकार से आन्दोलन का केन्द्र हो रहा था। वहाँ आजाद-मैदान मे सभाएँ होती और लाठियो द्वारा भग की जाती, बहुतेरे घायल होते। सब लोगों की सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध कॉंग्रेस-अस्पताल मे था। वहाँ का रूई-बाजार बहुत दिनो तक बन्द रहा। दूसरे प्रकार से वहाँ की जनता आन्दोलन मे खूब भाग ले रही थी। वहाँ जाकर मै सब लोगों से मिला। सरदार वल्लभभाई से भी भेट हुई।

बिहार मे चौकीदारी-टिकस बन्द करने का कार्यक्रम चल रहा था। गवर्नमेण्ट सख्ती से उसे दबा रही थी। जिससे दो-चार आने का भी पावना रहता उनका बहुत माल बरबाद कर दिया जाता। जहाँ किसी गाँव के लोगो ने टिकस बन्द किया, गांव

ही लूट लिया जाता। मैंने एक गाँव के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल की जो हम लोगो की ही जमीन्दारी मे था। वहाँ पुलिस ने जाकर एक आदमी को गोली से मार डाला था और दूसरो को खूब पीटा था। एक दूसरे गाँव मे मैंने खुद जाकर देखा था, वहाँ घर मे घुसकर गल्ला रखने की कोठियाँ तोड डाली गयी थी, सभी बासन-बर्त्तन चूर कर दिये गये थे, यहाँ तक कि चारपाइयो की बुनावट काट दी गयी थी, मकान के लकडी के खम्भे भी काट दिये गये थे। एक गाँव की यह कैफियत थी कि पुलिस के चले जाने के बाद वहाँ गाँव मे न एक घड़ा था और न एक रस्सी, जिससे लोग कुएँ से पानी निकाल कर प्यास बुझा सके। इस तरह की बाते अनेक गाँवो मे हुई थी। हमारी गैरहाजिरी मे अनेक जगहो मे गोली भी चली थी। दमन बहुत जोरो से चल रहा था। पीछे जब गवर्नमेण्ट ने यह देखा कि केवल जेल जाने से लोग नही डरते तो जुर्माना करना शुरू किया। जुर्माने की अच्छी-अच्छी रकमों की वसूली मे घर-वालो के साथ ज्यादतियाँ की जाती, एक के बदले दस का माल बर्बाद किया जाता। हाइकोर्ट मे किसी ने अपील कर दी तो एक ऐसा फैसला हो गया कि हिन्दू के सयुक्त परिवार मे एक आदमी के कसूर के लिए सारे परिवार का सयुक्त धन नीलाम या जब्त नही किया जा सकता। इससे कुछ रुकावट पडी, तो भी जुर्माना और चौकीदारी-टिकस न देने के कारण जो लूटपाट होती उससे लोगो मे आतक-सा फैलता दीख पड़ा। किन्तु इतने पर भी आन्दोलन चल ही रहा था, कही भी रुका नही था।

प्राय इसी समय पडित मोतीलालजी रिहा हो गये। उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड गया था। मै प्रयाग जाकर उनसे मिला। वह इलाज के लिए कलकत्ता गये। कुछ दिनो तक वहाँ ठहर कर प्रयाग वापस आये। उन्होने आन्दोलन-सचालन का भार अपने ऊपर ले लिया था, यद्यपि वह अस्वस्थ थे। मै उनकी आज्ञा के अनुसार काम करता। इस समय कॉग्रेस की वर्किंग कमिटी को गवर्नमेण्ट ने गैरकानूनी करार दे दिया था। इसी तरह प्रान्तीय तथा दूसरी बहुतेरी कमिटियाँ भी गैरकानूनी हो गयी थी। इसलिए वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक गैरकानूनी थी, पर बेजाब्ता तौर पर हम लोग बैठक कर सकते थे। उधर इँगलैड मे गोलमेज-कान्फ्रेन्स का काम प्राय समाप्त हो चुका था। कुछ काम आगे न बढा। प्रधान मत्री मैकडोनल्ड ने एक भाषण देकर उसे स्थगित किया—उसमे गोल-गोल बाते थी। उन लोगो की इच्छा जान पडी कि कॉंग्रेस को कान्फ्रेन्स मे शरीक करने का एक और प्रयत्न किया जायगा। इस भाषण के कुछ पहले ही पडितजी की राय से वर्किंग कमिटी के वे मेम्बर प्रयाग बुलाये गये जो बाहर थे। सबके पास पत्र भेज दिये गये। इसकी सूचना अखबारो मे नही दी जा सकती थी और दी भी नही गयी थी। लाहौर मे पुलिस ने एक सदस्य की तलाशी ली। उनके पास वह पत्र मिल गया। यह बात अखबारो मे छप गयी। हम लोगो ने देख लिया। तब तक मिस्टर मैकडोनल्ड का भाषण पत्रो मे आ गया। हम लोग सोच रहे थे कि यह बैठक यदि हुई तो सब लोग एक साथ ही गिरफ्तार कर लिये जायँगे, जैसा पहले वर्किंग कमिटी के साथ हो चुका था। पडितजी ने आज्ञा दी कि

अखवारो मे छपवा दो कि श्री मैकडोनल्ड के भाषण पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक अमुक तिथि पर प्रयाग मे होगी। उधर मालवीयजी भी अस्वस्थ अवस्था मे इसी समय छूटे। वह भी निमत्रित किये गये।

वह दिन आ गया। वर्किंग कमिटी के जो मेम्वर आ सकते थे, प्रयाग मे आ गये। हम सब समझते थे कि गैरकानूनी बैठक मे सब लोग गिरफ्तार हो जायँगे, पर पडितजी कहते थे कि जब हम मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण पर विचार करने की घोषणा कर चुके है तब वे गिरफ्तार नही करेगे। ऐसा ही हुआ भी। उस दिन तीसरे पहर से रात को देर तक बातचीत होती रही। एक निश्चय तक हम लोग पहुँचे जिसमे हमने मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण को ना-काफी समझा और उसे ना-मजूर किया। पडितजी अपनी अस्वस्थता की हालत मे भी बराबर काम करते रहे, हम लोगो के हजार कहने पर भी नही माना। प्रस्ताव तैयार हो गया। पडितजी का विचार हुआ कि उसे तुरन्त प्रेस मे दे देना चाहिए, क्योकि ऐसा न करने से लोगो मे यह जानकर ढिलाई आ जायगी कि कुछ सुलह होने जा रही है। मैने कहा कि इसे एक बार और देखकर सवेरे प्रेस मे दिया जाय। पडितजी ने इस वात को मान लिया। वर्किंग कमिटी की खबर इँगलैड पहुँच गयी थी। वहाँ से श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर तेजवहादुर सप्रू और श्री जयकर का तार उसी रात हम लोगो के सो जाने के वाद पडितजी को मिला, जिसमे उन्होने लिखा था कि वे हिन्दुस्थान लौट रहे है और जव तक उनसे वर्किंग कमिटी की मुलाकात न हो ले तव तक वह कोई आखिरी फैसला न करे। दूसरे दिन सवेरे जब मै पडितजी से मिला, उन्होने तार दिखलाया और कहा कि अव उस प्रस्ताव को अखवारो मे मत दो, केवल इतना ही दे दो कि वर्किंग कमिटी तार पहुँचने के पहले ही फैसले पर पहुँच गयी थी, पर तार पाकर उसका प्रकाशन स्थगित रखती है। मै इस समय प्रयाग मे प्राय बरावर स्वराज्य-भवन मे ही रहा करता था।

इन सब बातो का नतीजा यह हुआ कि गवर्नमेण्ट ने वर्किंग कमिटी के सभी मौजूदा और भूतपूर्व मेम्वरो को छोड दिया। जव से सत्याग्रह शुरू हुआ था, वर्किंग कमिटी के मेम्वर की गिरफ्तारी पर उसके स्थान मे कोई स्थानापन्न मेम्वर वना दिया जाता था। इस तरह आरम्भ के और स्थानापन्न मेम्वरो की सख्या खाली हो गयी थी। सवके सव छोडे गये। छूटते ही गाधीजी प्रयाग पहुँच गये। सव लोग वुलाये गये। वहाँ वाते शुरू हुई। पडितजी का स्वास्थ्य दिन-दिन विगडता गया। जवाहरलालजी इसी कारण मीयाद पूरी होने के पहले ही छोड दिये गये थे। जब मै सोचता हूँ कि उस वीमारी की हालत मे भी पडितजी वरावर काम करते रहे और वार-वार रोकने पर भी नही मानते थे—विशेपत उस रात को जव वर्किंग कमिटी की वैठक देर तक होती रही और प्रस्ताव वनाने-सुधारने मे उन्होने कितना परिश्रम किया—तो मै यह समझ जाता हूँ कि पडितजी की वीमारी यद्यपि मामूली वीमारी नहीं थी और उनकी अवस्था भी काफी हो गयी थी तथापि उन्हे यदि इतना अधिक परिश्रम न करना पड़ता तो शायद उनकी वीमारी वढती नही तथा देश को उनकी वुद्धिमत्ता एव

दृढता से और भी कुछ दिनों तक लाभ उठाने का सुअवसर मिलता। उनके इन अन्तिम दिनों में उनके साथ रहने का सौभाग्य मैं अपने लिए बड़े महत्त्व का समझता हूँ। उसी समय उनकी वीरता-गम्भीरता, सेवाशक्ति और देश-प्रेम का पूरा परिचय मुझे मिला। वह एक क्षण भी देश में चलते हुए आन्दोलन, उसकी प्रगति तथा देश के भविष्य की बात छोड़कर कुछ दूसरा सोचते नहीं थे। अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न कर देशोद्धार की चिन्ता में लगे रहते।

कलकत्ते के कविराज श्री श्यामादास वाचस्पति आये, परिश्रम करने से मना करते रहे, पर पंडितजी कहाँ माननेवाले थे! अन्त में उनकी हालत खराब हो गयी। एक दिन, चिकित्सा के लिए उनको लखनऊ ले जाने का निश्चय हुआ। पंडित जवाहरलाल आ चुके थे। वह उनको लेकर वहाँ गये। पंडितजी इतने खुश-मिजाज थे कि उस समय भी वह मजाक से नहीं बाज आये। चेहरे पर कुछ सूजन आ गयी थी। जब मैं उनके चलने के समय प्रणाम करने गया तो हँसते हुए उन्होंने वहाँ उपस्थित लोगों से कहा—मेरा चेहरा देखो, मैं Beauty Competition (सौन्दर्य-प्रतियोगिता) में Compete (स्पर्द्धा) करने जा रहा हूँ। सब लोग जबरदस्ती मुस्कराये; पर सबके दिल में आशंका थी कि शायद अब फिर उनके दर्शन न होंगे! वैसा ही हुआ भी। लखनऊ जाते ही उनका शरीरान्त हो गया। मैं अभी उनको लखनऊ के लिए रवाना करके पटने पहुँचा ही था कि यह दुःखद समाचार आ गया। मैं उलटे पाँव फिर प्रयाग गया, पर मेरे पहुँचने के पहले ही उनके शव का दाहकर्म किया जा चुका था।

इस समय पंडितजी की मृत्यु से सारे देश में हाहाकार मच गया, शोक उमड़ आया। देश-भर में न मालूम कितनी शोक-सभाएँ हुईं। प्रयाग की सार्वजनिक शोक-सभा में मैं भी शरीक हुआ और मैंने भी कुछ शब्द कहे थे। पर देश जो क्षति अनुभव कर रहा था वह शब्दों से व्यक्त नहीं की जा सकती थी। उनके अभाव का अनुभव इस कारण और भी खलता और सालता था कि ठीक उसी समय वर्किंग कमिटी के लोग देश की परिस्थिति पर विचार कर रहे थे, गवर्नमेण्ट से कुछ बातचीत चल रही थी या चलनेवाली थी; ऐसे ऐन मौके पर पंडितजी की दूरदर्शिता और नीतिनिपुणता से देश वंचित हो गया।

९२—गांधी-अर्विन-समझौता

विलायत से लौटे हुए गोलमेज-सभा के सदस्यों की मुलाकात वर्किंग कमिटी से हुई। वहाँ का सब हाल उन्होंने बताया। और सब चीजों के अलावा महात्माजी इस पर बहुत जोर दे रहे थे कि गवर्नमेण्ट को इस बात पर राजी होना चाहिए कि आन्दोलन के दबाने में उसके कर्मचारियों ने जो ज्यादतियाँ की हैं उनके सम्बन्ध में एक निष्पक्ष अदालत जाँच करे। पर लार्ड अर्विन इस बात को सुनना भी नहीं चाहते थे। प्रयाग में ऐसा मालूम पड़ा कि बातें आगे बढ़ेंगी ही नहीं, यहीं पर मामला समाप्त हो जायगा।

महात्माजी भी अपनी बात पर डटे रहे। वायसराय से उनकी भेंट की बात चली, पर जब तक गाधीजी अपनी बात पर अडे रहते, यह होनेवाली न थी। अन्त मे एक दिन महात्माजी ने अपनी ओर से वायसराय के पास पत्र लिखा और उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए समय माँगा। इसी से मुलाकात का रास्ता खुल गया। दिल्ली मे दोनो की मुलाकात हो गयी। हम लोग वर्किंग कमिटी के मेम्बर भी वहाँ बुलाये गये। मै भी जाकर डाक्टर अनसारी के मकान पर ठहरा जहाँ दूसरे लोग भी ठहरे थे। महात्माजी की मुलाकात लगभग बीस दिनो तक रोजाना होती रही। कभी-कभी तो महात्माजी दिन-दिन-भर वायसराय के यहाँ रह जाते, कभी-कभी बहुत रात बीतने पर वापस आते। जिस दिन वही रह जाते, मीरा बहन उनका भोजन ले जाती। वहाँ से वापस आने पर महात्माजी हम सबको इकट्ठा करके वहाँ की बातचीत का साराश कह हम लोगो की राय ले लेते। जिस दिन रात मे देर करके आते और हम लोग सो गये रहते, तो भी सब उसी समय फिर उठकर उनसे सभी बाते सुन लेते।

गुजरात मे किसानो की बहुत जमीन आन्दोलन मे जब्त कर ली गयी थी, सरदार बल्लभभाई पटेल इस पर अडे थे कि वह सब वापस होनी चाहिए, उधर बम्बई की सरकार इस बात को मानती न थी। अन्त मे, इस विषय की जाँच होगी, इसी पर बात तय हुई। नमक के लिए ही सत्याग्रह आरम्भ हुआ था। महात्माजी इस पर बहुत जोर दे रहे थे कि इस सम्बन्ध मे गरीबो को काफी सुविधा मिलनी चाहिए। पडित जवाहरलालजी सारी बातचीत से असन्तुष्ट थे। उनको डर था कि इस प्रकार के समझौते से देश पीछे हट जायगा। औरो का विचार था कि सन्तोषजनक समझौता यदि हो सके तो अच्छा होगा, बुरा नही। महात्माजी रोज सवेरे टहलने जाया करते थे, मै भी साथ जाया करता। एक दिन मैने कहा कि ऐसा उपाय कीजिए कि समझौता हो जाय, पर समझौता ऐसा हो जिससे हमारी हार न जान पडे, जीत ही जान पडे। महात्माजी हँसे और बोले कि समझौते से हार-जीत थोडे ही मालूम होगी—यदि जीत है तो, चाहे समझौता जो भी हो, जीत है और लोग ऐसा ही अनुभव करेगे, यदि हार हुई है तो, चाहे ऊपर से हम कुछ भी कहे, हम हारे ही है और लोग भी ऐसा ही समझेगे। अन्त मे जो समझौते की शर्ते कलमबन्द की गयी उन पर कई दिनो तक बहुत छानबीन के साथ विचार होता रहा। महात्माजी को उधर लार्ड अर्विन के साथ उसके प्रत्येक शब्द पर विचार करना पडता और इधर हम लोगो के साथ भी।

लार्ड अर्विन और महात्माजी, दोनो ही, बहुत ही सहिष्णुता और धीरज के साथ, समझौते के मसविदे को अन्तिम रूप दे चुके थे। जब हम लोगो मे बाते हुई तो एक वाक्य उसमे ऐसा था कि महात्माजी उसमे असत्य की गध देखने लगे। लार्ड अर्विन के साथ बाते करने के समय उनको उन शब्दो का वह अर्थ नही सूझा था। जब हम लोगो से बाते होने लगी तो हममे से किसी ने उस वाक्य का यह नया अर्थ लगाकर कुछ चर्चा की। सुनते ही महात्माजी के कान खडे हो गये। उन्होने गौर से

फिर पढा और कहा कि यह अर्थ भी हो सकता है; पर यदि यह अर्थ है तो वाक्य असत्य है। इस बीच मे लार्ड अर्विन ने विलायत से समझौते की उसी रूप मे मजूरी मँगा ली। जब महात्माजी ने जाकर यह बात उनसे कही तो लार्ड अर्विन भी मुश्किल मे पड गये। महात्माजी किसी तरह उस रूप मे उसको स्वीकार नही कर सकते थे; क्योंकि उसमे असत्य की गध थी। अन्त मे लार्ड अर्विन ने उस वाक्य को बदल दिया और महात्माजी ने इस सशोधित रूप मे उसे स्वीकार कर लिया। बात तय हो गयी। मै तो समझौते से खुश था। पडित जवाहरलालजी को छोडकर प्राय. सभी सदस्य खुश थे। पडितजी बहुत दुखी थे। महात्माजी ने उनको बहुत समझाया, पर उनको सन्तोष न हुआ।

अब तक सत्याग्रह स्थगित नही किया गया था। समझौते की बातचीत चल रही थी और सत्याग्रह भी जारी था। स्वभावत. बातचीत चलने के कारण सत्याग्रह की प्रगति धीमी पड गयी थी; पर इस बीच भी कई स्थानो मे गम्भीर घटनाएँ हो गयी। महात्माजी ने वाइसराय को उनसे अवगत कर दिया। वायसराय ने उनके सम्बन्ध मे पूछ-ताँछ करने का वचन भी दे दिया। समझौते पर हस्ताक्षर होते ही वर्किंग कमिटी ने सभी सूबों को आदेश दे दिया कि सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय। गवर्नमेण्ट ने भी काँग्रेस-कमिटियो पर से प्रतिबन्ध उठा लिया।

उन्ही दिनों मेरे छोटे लडके धन्नू की शादी की बातचीत चल रही थी। उसके लिए दिन भी मुकर्रर हो गया था। भाई ने वह दिन यह सोचकर मुकर्रर किया था कि उसके पहले ही लार्ड अर्विन से होनेवाली बातचीत समाप्त हो जायगी और मै शादी मे शरीक हो सकूँगा। पर बात बढती गयी। ऐसा मालूम होने लगा कि उस दिन तक कुछ तय न हो सकेगा। मैंने खबर दे दी कि यदि बात समाप्त हो जायगी तो मै आ जाऊँगा, पर यदि न हुई तो मेरे लिए इन्तजार न करके नियत दिन पर शादी कर दी जाय। किन्तु शादी के ठीक दो दिन पहले समझौते पर हस्ताक्षर हो गया। मै उसी दिन जीरादेई के लिए रवाना हो गया। बरात की रवानगी से करीब पन्द्रह घटे पहले जीरादेई पहुँच गया। समझौते की शर्तों मे सत्याग्रहियो की रिहाई की बात भी थी। इसलिए, मैंने कुछ मित्रो को, जो हजारीबाग-जेल मे थे, आमन्त्रित कर दिया था, पर कोई पहुँच न सका। मै किसी तरह बरात मे शरीक हो सका।

मेरा विचार है कि लार्ड अर्विन ने समझौता सच्चे दिल से किया। वह चाहते थे कि जो बाते तय पा चुकी है वे ठीक-ठीक बर्ती जायँ और पूरी की जायँ। समझौते को सिविल-सर्विस के लोग पसन्द नही करते थे। उनके ही बाधा डालने के कारण इसके तय होने मे इतना समय लगा था। लार्ड अर्विन ने हिन्दुस्थान मे और लेबर गवर्नमेण्ट ने इंगलैंड से इस पर जोर डालकर समझौता कराया। हम आशा करते थे कि एक बार बात तय हो जाने पर सब काम ठीक चलेगा और हम लोग चैन से रचनात्मक काम कर सकेंगे। पर दुर्भाग्यवश लार्ड अर्विन का समय पूरा हो गया था। वह शीघ्र ही, एक-डेढ महीने के बाद ही, चले जानेवाले थे। उनकी जगह पर लार्ड

विलिंगडन वायसराय होकर आये। वह बम्बई और मद्रास के गवर्नर रह चुके थे। हिन्दुस्थान से उनका बहुत पहले का परिचय था। सिविल सर्विस की गतिविधि से भी वह खूब परिचित थे। उन्होने आकर सिविल सर्विस का ही साथ दिया। उनके हिन्दुस्थान पहुँचते ही हवा का रुख बदल गया। चूँकि समझौता हो चुका था, उसे खुलेआम तो वह तोडना नही चाहते थे, पर उसकी शर्तो के पूरी करने मे हर तरह आनाकानी होने लगी।

हम यह मानते है कि यह समझौता बडे महत्त्व का था। पहली बात तो यह थी कि यह पहला ही अवसर था जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतीय जनता की किसी प्रतिनिधि सस्था से बातचीत और समझौता करने पर तैयार हुई थी। दूसरी बात यह थी कि नमक के सम्बन्ध मे गरीबो को बहुत-सी सहूलियते मिल गयी। तीसरी बात यह थी कि कॉंग्रेस को गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे जाकर विधान-रचना मे हाथ बॅटाना था। विधान मे जो सरक्षण और बचाव की शर्ते अँगरेजो के बचाव और सरक्षण के लिए रक्खी जानेवाली थी वे अब इस दृष्टि से देखी जानेवाली थी कि वे भारत के लिए भी हितकर है या नही और वे तभी मानी जानेवाली हो जब जनता के लिए हितकर हो। चौथी बात यह थी कि सारे भारत के लिए एक केन्द्रीय सरकार को कॉंग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, पर प्रान्तो को अपना प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता होनेवाली थी ओर इस केन्द्रीकरण मे देशी रजवाडे भी शरीक होनेवाले थे। इस तरह कई बातो का चित्र—धुँधला ही सही—सामने आ गया था। इसलिए, मै तो इसका पक्षपाती था और इससे सन्तुष्ट भी। अफसोस यही रहा कि ब्रिटिश सरकार की ओर से यह भी, पहले की अनेकानेक घोषणाओ और प्रतिज्ञाओ की तरह, पूरा नही किया गया।

९३—कराची-कॉंग्रेस

दिल्ली मे समझौता हो जाने के बाद कॉंग्रेस का अधिवेशन करना पक्का हो गया। यह निश्चय हुआ कि अधिवेशन मार्च के अन्दर ही कराची मे होगा। समय बहुत कम था। पर कराची के कार्य्यकर्त्ताओ ने प्रबन्ध करना स्वीकार कर लिया। लाहौर मे बहुत सर्दी के कारण निश्चय हुआ था कि अधिवेशन दिसम्बर मे न होकर फरवरी या मार्च मे हुआ करेगा। इसलिए जो अधिवेशन मामूली तौर पर लाहौर-कॉंग्रेस तक दिसम्बर मे हुआ करता था उसका इस साल मार्च मे होना नियमानुकूल ही था। सयोग से समझौता हो जाने के कारण जो अडचन रास्ते मे थी वह भी हट गयी। सरदार वल्लभभाई सभापति चुने गये।

लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमा का जिक्र ऊपर आ चुका है। उसकी सुनवाई बहुत दिनो तक चली। उसका अन्तिम फैसला अब हुआ। सरदार भगतसिह को, उनके कुछ साथियो के साथ, फॉसी की सजा मिली। दूसरो को लम्बी-लम्बी कैद अथवा कालापानी की सजा मिली। अनशन के कारण श्री यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु से देश मे हलचल मच ही गयी थी। अब इस घटना से और भी सनसनी मची। [illegible]

युवक ही इस मुकदमे मे अभियुक्त थे। मुकदमे की खबरे बहुत दिनो तक अखबारो मे छपती रही, क्योकि मुकदमा बहुत दिनो तक चलता रहा। इससे बहुत लोग इसमे दिलचस्पी लेने लग गये थे। सरदार भगतसिह ने बडी बहादुरी के साथ मुकदमे मे भाग लिया था, जिसका असर भी लोगो पर बहुत पडा था। इसलिए फासी की सजा से सारे देश मे रोष छा गया। महात्माजी ने लार्ड अर्विन से कहा कि फासी की सजा को बदलकर कैद या कालापानी की सजा कर दे। लार्ड अर्विन के जाने का समय भी बहुत निकट था, वह महात्माजी की बात न मान सके, उन्होने तो समझौता ही अपने सगी-साथी अफसरो की राय के खिलाफ किया था, अब यह एक और काम उनकी राय के खिलाफ न कर सके। मामला बहुत दिनो तक यो ही टँगा रहा। लोगो को उमीद होने लगी थी कि शायद फाँसी से वे बच जायँ।

अन्त मे लार्ड अर्विन ने गाधीजी से अपनी असमर्थता प्रकट की, पर यह कहा कि यदि वह चाहे तो कॉग्रेस के बाद तक वह फाँसी रोक देगे। शायद उनका मतलब था कि फाँसी से क्षुब्ध होकर कॉग्रेस शायद समझौते को नामजूर कर दे अथवा कांग्रेस के समय गाधीजी से काँग्रेस मे जानेवाले रुष्ट हो जायँ। वह इसे बचाना चाहते थे। पर गाधीजी ने इसे मजूर नही किया। उन्होने कह दिया कि फाँसी से उनको रिहा नही कर सकते तो अच्छा यही होगा कि जो कुछ करना हो, कॉग्रेस के पहले ही कर दिया जाय, क्योकि ऐसा न करने से देश और कॉग्रेस के साथ धोखा होगा। ऐसा ही हुआ। कॉग्रेस के ठीक पहले फाँसी हो गयी। यह खबर पत्रो मे छपी। उसके साथ यह खबर भी छपी कि शव के साथ भी बे-इज्जती की गयी। इससे लोगो मे बहुत क्षोभ पैदा हुआ। युवक लोग गाधीजी से भी असन्तुष्ट हुए। वे लोग यह नही समझ सकते थे कि गाधीजी से जो कुछ हो सका, उन्होने किया और यदि वह सरदार भगतसिंह को न बचा सके तो इसमे उनका दोष नही था। कराची के रास्ते मे गाधीजी के सामने विरोध प्रदर्शन किया गया। कही तो लोग कपडे के काले फूल, अपना शोक और गुस्सा दिखलाने के लिए, गाधीजी को देने के लिए ले आये। उन्होने उन फूलो को स्वीकार किया और जरा भी अपनी ओर से क्रोध अथवा घबराहट के चिह्न नही दिखलाये।

कराची-कांग्रेस मे भी बराबर इसी प्रकार की सनसनी रही। इसका यह अर्थ नही था कि लोग गाधीजी के प्रति अनादर का भाव रखते हो। जब सुबह-शाम खुले मैदान मे वह प्रार्थना करते, वहाँ जनता की बडी भारी भीड इकट्ठी हो जाती। उनके दर्शनो के लिए वैसी ही भीड हुआ करती जैसी कही भी हुआ करती थी। पर लोगो के दिल को जो चोट पहुँची थी उसके प्रदर्शन का यह एक रास्ता मिल गया, जिसमे लोग अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर सके। इस मनोव्यथा का एक विशेष कारण था। सरदार भगतसिह और उनके साथियो की बहादुरी के लिए तो दर्द था ही, उनके विरुद्ध यह भी अभियोग था कि उन्होने उस अँगरेज अफसर को मारा था, जिसके सम्बन्ध मे समझा जाता था कि उसी ने साइमन-कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन मे लाला

लाजपतराय पर लाठी चलायी थी, जिससे अन्त मे उनकी मृत्यु हो गयी थी। जो हो कराची का अधिवेशन बडे मार्के का हुआ।

लाहौर मे ही निश्चय हुआ था कि जब कॉग्रेस फरवरी-मार्च मे होगी तो वह सध्या के समय हो सकेगी और इसलिए पडाल पर छाजन की जरूरत न होगी। इस तरह खुले मैदान मे आसमान के नीचे काँग्रेस का यह पहला अधिवेशन था। सध्या से आरम्भ होकर रात को देर तक बैठक होती। दिन मे विषय-निर्वाचिनी की बैठक सायेदार पडाल मे होती। इससे पडाल बनाने का खर्च बच गया, पर उसके बदले मे रोशनी का प्रबन्ध काफी करना पडा। दृश्य बहुत सुन्दर था। उस समय बिलकुल नया होने के कारण बहुत हृदयगाही भी था। उत्साह का तो कोई ठिकाना न था। सत्याग्रह के बाद पहला अधिवेशन था। लोग इस बात को नही भूल सकते थे कि सत्याग्रह के फल-स्वरूप ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने कॉग्रेस के साथ सुलह की है। बहुतेरे ऐसे लोग थे जो सत्याग्रह मे कैद हुए थे और उस सुलहनामे के कारण समय से पहले ही छूटे थे। यद्यपि अभी बहुतेरे नही छोडे गये थे और जिनके छूटने के सम्बन्ध मे लिखा-पढी चल रही थी अथवा किसी कारण जिनको सरकार सुलहनामे की शर्तो के अन्दर छोडने योग्य नही समझ रही थी। तो भी समझौते के कारण मुक्त सत्याग्रहियो की खासी सख्या वहाँ पहुँच गयी थी। लाहौर-षड्यन्त्र के अभियुक्तो की फाँसी और सजा का भी असर पडा ही था। इन सबका नतीजा वहाँ की बहस और बातचीत मे झलक जाता था।

कराची मे दो मुख्य प्रस्ताव हुए। एक प्रस्ताव तो समझौता-सम्बन्धी था, जिसमे समझौता मजूर किया गया। इस पर बहस काफी हुई। समय भी इसमे बहुत लगा। दूसरा प्रस्ताव बडे महत्त्व का था। उसमे स्वराज्य-प्राप्त भारत के लिए कार्य्य-क्रम का खाका बताया गया था। इसने एक प्रकार से भारतीयो के मौलिक अधिकारो को, जिनमे आर्थिक स्वतन्त्रता की भी कुछ बात आ गयी है, पहले-पहल कॉग्रेस के मच से घोषित किया। नेहरू-रिपोर्ट मे कुछ बाते इस प्रकार की थी, पर जितना स्पष्ट और विस्तृत यह खाका था, विशेषकर आर्थिक विषयो को लेकर, उतना नेहरू-रिपोर्ट मे नही था। इस प्रस्ताव के श्रीगणेश का श्रेय पडित जवाहरलाल नेहरू को ही है। महात्माजी ने और सरदार वल्लभभाई ने उनकी ही राय मानकर इसे स्वीकार किया। यह एकबारगी नया विषय था जिस पर बहुत विचार-विमर्श नहीं हुआ था। विषय-निर्वाचिनी के समक्ष भी, जल्दी मे और अधिवेशन की समाप्ति के समय ही, पेश हुआ। वहाँ लोगो को इसकी शिकायत हुई कि इतने बडे निश्चय पर पहुचने के पहले प्रतिनिधियो को सोचने-विचारने का पूरा समय नहीं दिया गया। इसलिए प्रस्ताव को कॉग्रेस ने स्वीकार तो कर लिया, पर उसके साथ एक बात जोड दी। वह बात यह थी कि इस प्रस्ताव पर सभी प्रान्तीय कमिटियाँ अपने विचार प्रकट करे और एक उप-समिति उन पर विचार करके अखिल भारतीय कमिटी मे उचित सशोधन पेश करे तथा अखिल भारतीय कमिटी इसे उचित सशोधन के साथ अन्तिम स्वीकृति दे।

कराची-कॉंग्रेस मे यह भी तय हुआ कि गवर्नमेण्ट यदि बुलायेगी तो गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे कॉंग्रेस के प्रतिनिधि भी शामिल होंगे। उस समय यह नही निश्चय हुआ कि कितने प्रतिनिधि होगे और इस सम्बन्ध मे गवर्नमेण्ट से हमारी क्या माँग होगी। कॉंग्रेस का पूर्ण-स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हो ही गया था और आगे के लिए विधान कैसा हो, इसका भी थोडा स्पष्टीकरण समझौते मे तथा कराची के प्रस्तावो द्वारा हो गया था। सोचा गया था कि और जो कुछ होगा उसके मुतल्लिक वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय-कमिटी आदेश देगी। बातचीत चलने पर महात्माजी की राय वर्किंग कमिटी मे हुई कि अगर जाना पडा तो कॉंग्रेस अपना प्रतिनिधि केवल उनको ही भेजे। वहाँ हाथ गिनकर कुछ होनेवाला नही है। यदि वे लोग बात माननेवाले होगे तो एक आदमी काफी होगा। यदि न माननेवाले होगे तो भारी भीड भी उनको मजबूर न कर सकेगी।

९४—तिरंगे झण्डे का राष्ट्रीय रूप

कराची से लौटने पर मेरा बहुत समय उन सत्याग्रहियो के मुक्त कराने के लिए पत्र-व्यवहार मे लगा जो अब तक जेलो मे बन्द थे। इसी तरह अपने-अपने सूबे मे सभी लोगो को बहुत लिखा-पढी करनी पडी। समझौते की शर्तों मे हमको तो केवल सत्याग्रह बन्द कर देना था। उसे हमने एक घोषणा निकाल कर और सभी मातहत कमिटियों को आदेश भेजकर पूरा कर दिया। पर सरकार को तो बहुत बाते करनी थी। लार्ड अर्विन के चले जाने के बाद उसमे बहुत आनाकानी हुई। महात्माजी तथा कॉंग्रेस के अध्यक्ष सरदार बल्लभभाई पटेल अखिल भारतीय विषयो पर भारत-सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करते रहे। स्थानीय प्रश्नो पर प्रान्तीय कमिटी के लोग प्रान्तीय सरकारो से लिखापढी और बातचीत करते रहे। महात्माजी को इस सम्बन्ध मे सरकारी कर्मचारियो से भेट भी करनी पडी। मुझे भी अपने सूबे मे चीफ सेक्रेटरी मिस्टर हैलेट और प्रान्तीय गवर्नर सर स्टिफेन्सन से भेट करनी पडी थी। बहुत बातो मे सफलता भी मिली। पर इसमे इतना समय लगा और इतनी झझट हुई कि जी ऊब गया। वहाँ हमने समझा कि जिसको हम स्पष्ट और निश्चित समझते थे वह किस तरह अस्पष्ट और अनिश्चित कर दिया जाता था। आज इसके उदाहरण याद नही है, पर उस समय के समाचार-पत्रो के देखने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित हो जायगी। उत्साह की केवल एक ही बात थी, वह यह कि पटना-कैम्प-जेल या दूसरी जेलो से दल के दल बन्दी छूटकर सदाकत-आश्रम मे आते और एक रात या कुछ समय ठहरकर भोजन आदि करके नेताओ की जय मनाते हुए अपने-अपने घरो को चले जाते थे। घर जाने का रेलभाडा वगैरह तो उन्हे सरकार से मिल जाता था, मगर कुछ मदद प्रान्तीय कोष से भी मुझे देनी पडी। स्वराज्य के देशभक्त सैनिको की यह लहर चित्त के उद्वेग को कुछ-कुछ शान्त करती रही।

कुछ दिनो के बाद बम्बई मे वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उस समय एक

महत्त्व का प्रश्न यह भी था कि हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर कॉंग्रेस का क्या रुख होगा। कलकत्ता-कॉंग्रेस के बाद ही बहुतेरे मुसलमान कॉंग्रेस से अलग हो गये थे। वे मुसलमानो की अलग सस्था कायम करके अपनी मॉगे पेश कर रहे थे। मिस्टर जिन्ना की चोदह मॉगे मशहूर हो चुकी थी। गवर्नमेण्ट द्वारा की जानेवाली गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे शरीक होने के पहले हमे अपने विचार तो साफ कर लेने चाहिए। इस विषय पर उस अधि-वेशन मे विचार हुआ। मै बम्बई पहुँचकर बीमार पड गया। इसलिए, यद्यपि मै जिस कमरे मे था उसके पास के ही कमरे मे बैठक हो रही थी तथापि, मै शरीक न हो सका। वहॉ पर यह निश्चय किया गया कि कॉंग्रेस मुसलमानो तथा दूसरी अल्पसख्यक जातियो के साथ वैसा ही समझौता कर सकती है जो राष्ट्रीय भावना का विरोधी न हो—हॉ, यदि और सब जातियॉ किसी समझौते को मान ले तो कॉंग्रेस भी उसे स्वीकार कर लेगी। समझौते के मुख्य सिद्धान्तो की गणना भी सक्षेप मे उसमे दे दी गयी थी। इसे वर्किंग कमिटी के मुसलमान मेम्बरो ने स्वीकार ही नही किया था। उनके ही जोर से वर्किंग कमिटी ने उसे तैयार किया और माना था। वे चाहते थे कि जब दूसरे लोगो ने बहुत बाते कही है तो कॉंग्रेस को भी अपना विचार स्पष्ट कर देना चाहिए ताकि देश के लोगो को वे बाते मालूम हो जायँ और कॉंग्रेस-प्रतिनिधि को जहॉ मौका मिले वहाँ उन्हे अधिकार-पूर्वक कह सके तथा पेश कर सके।

अखिल भारतीय कमिटी की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई, जिसमे मौलिक अधिकारों-वाले कराची के प्रस्ताव पर विचार किया गया। सब-कमिटी ने अपना काम पूरा किया था, सभी प्रान्तीय कमिटियो की सम्मति प्राप्त करके अपनी रिपोर्ट तैयार की थी। कोई विशेष महत्त्वपूर्ण सशोधन नही हुआ। कुछ मामूली बाते जोड-घटाकर मौलिक अधिकार उस अधिवेशन मे स्वीकृत हो गये।

उस समय एक और झगडा चल रहा था। राष्ट्रीय तिरगा झडा कभी बाजाब्ता मजूर नही हुआ था, पर १९२१ से ही यह प्रचलित हो गया था। इसमे तीन रग के कपडे होते थे। सबसे नीचे लाल, उसके ऊपर हरा और सबके ऊपर सफेद, बीच मे चर्खे का चित्र होता। गाधीजी ने और दूसरे लोगो ने तीन रगो का अर्थ बता दिया था जिसे सब लोगो ने मान लिया था। लाल रग हिन्दुओ का सूचक था और उनकी सख्या सबसे अधिक होने के कारण सबके आधार-स्वरूप वही सबसे नीचे था। उसके बाद मुसलमानो की सख्या है, इसलिए लाल के ऊपर उसका हरा रग आता था। सफेद रग मे और सभी लोग सम्मिलित थे, उनकी सख्या हिन्दू और मुसलमान से कम होने के कारण वह सबसे ऊपर रखा गया था। हम अहिंसात्मक तरीको के द्वारा ही स्वराज्य-प्राप्ति करना चाहते थे, इसलिए बीच मे उसका चिह्न चर्खा दिया गया था। इसमे सिक्खो को असन्तोष था। वे कहते थे कि उनके लिए एक अलग रग होना चाहिए और झडे मे उसको भी स्थान मिलना चाहिए। उन लोगो ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन मे काफी भाग लिया था। एक जीती-जागती अल्पसख्यक जाति उनकी है। यद्यपि हिन्दू-महासभा उनको भी हिन्दू ही समझती है और ऐतिहासिक विचार से भी

वे हिन्दू-जाति की ही एक उपजाति हैं, तथापि वे अपने को पृथक् करना चाहते थे। इस विषय पर विचार करने के लिए एक सब-कमिटी बनायी गयी। उसने अपनी रिपोर्ट पेश की और झडे के रूप मे परिवर्तन कर दिया। उमी की रिपोर्ट अखिल भारतीय कमिटी ने मजूर कर ली। झडा तिरगा ही था, पर उसके रगो मे और उनके स्थान मे परिवर्तन हो गया। लाल रग उठा दिया गया, उसके स्थान पर सुनहला केसरिया रग कर दिया गया। सबसे नीचे हरा रग, उसके बाद सफेद रग और सबमे ऊपर केसरिया रहा। सफेद कपडे पर चर्खे का चित्र। सबसे महत्त्व की बात यह हुई कि रगो मे जो जातिगत अर्थ लगा दिया गया था वह हटा दिया गया। अब कोई रग किसी जाति-विशेष का द्योतक न रहा। इस पर सिख भी राजी हो गये। उनका रग केसरिया है। यद्यपि वह झडे की खूबसूरती के लिए लिया गया था तथापि उनके लिए वह सन्तोषप्रद हुआ। देखने मे भी नया राष्ट्रीय झडा अधिक सुन्दर था। इसलिए, इस प्रस्ताव से देश को केवल एक अधिक सुन्दर राष्ट्रीय झडा ही नही मिला, बल्कि रगो के जाति-विशेष-द्योतक होने से जो एक झगड़ा खडा हो गया था वह समाप्त हो गया और सारे देश के सामने कॉंग्रेस ने बाजाब्ता अपने प्रस्ताव द्वारा झडा उपस्थित कर दिया।

मै इस वर्ष विहार के कई जिलो मे दौरे पर गया। लोगो को रचनात्मक काम मे लगाने के विचार से ही यह दौरा किया गया था और इसमे कुछ सफलता भी मिली। एक अनुभव यहॉं लिख देना अच्छा मालूम होता है। जब मै १९२१ मे संथाल-परगना मे गया था तो वहॉं इतना दमन हुआ था कि मुझे कही ठहरने की जगह मिलने मे दिक्कत होती थी। वहाँ के पाकुर कस्बे की घटना का जिक्र पहले कर चुका हूँ। इस बार मै जिले के अदर दूर-दूर गाँवो तक गया। बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। पाकुर मे रात के नव बजे रेल से उतरा। वहॉं स्टेशन पर लोगो ने दीवाली मनायी थी। रोशनी के मारे चारो ओर जगमग हो रहा था। बहुत धूमधाम के साथ शहर तक जलूस निकला। वहॉं के बडे जमीन्दारो के यहॉं मै ठहराया गया। मैने उनकी ही मोटर पर सारे जिले का दौरा किया। उन्होने कहा भी कि यह १९२१ की कुछ मार्जना है।

९५—गोलमेज-सभा में गांधीजी

गोलमेज-कान्फ्रेन्स के दिन नजदीक आ गये। पर अभी तक समझौते की सभी बातें पूरी नही हुई थी। विशेषकर एक बात थी जिस पर सरदार पटेल का बहुत जोर था। गुजरात के गॉंवो मे जो जमीन जब्त वा नीलाम कर ली गयी थी उसके सम्बन्ध मे अभी तक जॉंच का काम आरम्भ नही हुआ था। बडी कठिनाई सरकार की ओर से पेश की जा रही थी। महात्माजी पत्र-व्यवहार करते-करते ऊब गये थे। इँगलैड से जोर था कि महात्माजी को जरूर वहॉं किसी न किसी तरह जाना ही चाहिए। महात्माजी को सिमला भी समझौते के सम्बन्ध मे जाना पडा। मालूम होता

था कि इस बार भी कॉंग्रेस गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे शरीक न हो सकेगी। अत मे सभी बाते मान ली गयी। देर इतनी हो चुकी थी कि यदि महात्माजी उस सप्ताह के जहाज से रवाना न होते तो वहाँ पहुँचने मे बहुत देर हो जाती। इसलिए महात्माजी को सिमले से ही सीधे बम्बई जाकर जहाज पकडना पडा। जहाज को भी उनके लिए कुछ देर तक इन्तजार करना पडा था। विशेष प्रबन्ध द्वारा बडी मुश्किल से वह सिमले से बम्बई पहुँचाये गये।

गुजरात मे जॉच शुरू हुई। सरदार ने मुझे वहाँ बुलवा भेजा। मै गया। बारदोली मे जॉच हो रही थी। श्री भूलाभाई देसाई जनता की ओर से वकालत कर रहे थे। सरकार की ओर से थे उस जिले के सरकारी वकील। मै भी जॉच-कचहरी मे कभी-कभी जाता। कई हफ्तो तक जॉच चलती रही। अत मे कुछ सरकारी कागज पेश करने की बात आयी, जो पेश नही किये गये और हाकिम ने भी इसे मान लिया। श्री भूलाभाई ने उसे इनसाफ का खातमा समझा और जॉच मे भाग लेने से इनकार कर दिया। इसके बाद एकतरफा सरकार के पक्ष की रिपोर्ट हो गयी। मै वहाँ गया था इस खयाल से कि सरदार को उनके काम मे कुछ मदद दूं। पर उनको मेरी मदद की जरूरत ही न पडी। वहाँ के ही काम करनेवाले काफी रहे। हाँ, कॉंग्रेस-प्रेसिडेण्ट की हैसियत से उनके पास जो पत्र आते अथवा प्रश्न पूछे जाते उनके सम्बन्ध मे बातचीत हुआ करती। मै प्राय दो हफ्ते तक रहकर वापस चला आया। वहाँ रहते-रहते मैने बिहार के पत्रो मे कुछ लेख लिखे थे जिनमे गाधीजी की चम्पारन-यात्रा-सम्बन्धी कुछ बाते थी।

महात्माजी इँगलैड पहुँचे। पर उनके वहाँ पहुँचते-पहुँचते वहाँ का मन्त्रिमडल बदल गया। अब वेजवुडबेन के स्थान पर सर सेमुयल होर भारत-मत्री हुए। पर मिस्टर मैकडोनल्ड अपने दल—लेबरपार्टी—के अधिकाश लोगो से अलग होकर प्रधान-मत्री बने रहे। यद्यपि नाम के लिए तो यह सब दलो का मन्त्रिमडल था तथापि वास्तव मे यह कान्सर्वेटिव (अनुदार) दल का ही मन्त्रिमडल बना। इसलिए वहाँ से जो थोडी-बहुत उदारता की आशा की जा सकती थी उसका रास्ता भी बन्द हो गया। गाधीजी ने कॉंग्रेस की मॉग पेश की। उनकी बहुत आवभगत और खातिरदारी भी हुई। पर हिन्दुस्तान के लिए कुछ भी सतोषजनक विधान न बन सका। प० मालवीयजी और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी वहाँ आमन्त्रित होकर गये थे। कॉंग्रेस की ओर से केवल महात्माजी ही थे और उसकी ओर से वही बोलते थे। जैसा बराबर होता आया है, दूसरे लोग सरकार के नामजद थे। चुन-चुनकर ऐसी जमायत जुटायी गयी थी जो कभी एकमत शायद हो ही नही सकती थी। महात्माजी ने बहुत प्रयत्न किया कि एक ही कॉंग्रेसी मुसलमान सही, मगर बुलाया जरूर जाय। पर गवनमेण्ट उस पर राजी न हुई। शायद दूसरे मुसलमान मेम्बरो ने इसका विरोध किया था। वहा इस बात का भी प्रयत्न हुआ कि आपस के झगडे तय हो जायें पर वह न हो सका। वहां शायद हो भी नहीं सकता था।

एकता तो हुई नही, इसके बदले मे अँगरेज, मुसलमान और हरिजनो मे एक प्रकार का समझौता हुआ। जब आपस मे बाते तय न हो सकी तो मिस्टर मैक-डोनल्ड ने साम्प्रदायिक मसले पर अपना फैसला दिया जिसके द्वारा मुसलमानो की प्राय सभी माँगे पूरी कर दी गयी। इससे हिन्दुओ और सिखो मे बडा क्षोभ उत्पन्न हुआ। इसमे हरिजनो के लिए भी अलग चुनाव की व्यवस्था थी। महात्माजी ने इसका बहुत विरोध किया था। उन्होने अपने एक भाषण मे यहाँ तक कह दिया था कि हरिजनो के लिए यदि अलग निर्वाचन-क्षेत्र कायम किये गये और उनको सवर्ण हिन्दुओ के चुनने मे अथवा सवर्ण हिन्दुओ को उनके चुनने मे भाग लेने का अधिकार न मिला, तो इस प्रकार की अलग निर्वाचन-विधि का वह तीव्र विरोध करेगे तथा अपनी जान तक दे देने के लिए तैयार रहेगे। ब्रिटिश सरकार को कुछ करना तो था नही, इस-लिए आपस की फूट को बहाना बना लिया। यहाँ के जो लोग गये थे, इस बात को समझ गये। उन्होने आपस मे राय करके आगाखाँ को अपना नेता बनाकर एक सयुक्त विधान तैयार कर पेश किया। पर उनकी भी एक न सुनी गयी। तब, जैसा ब्रिटिश चाहते थे वैसे ही विधान की योजना बनाने का उन्होंने आपस मे निश्चय कर लिया।

यहाँ हिन्दुस्थान मे भी हालत दिन-दिन बदलती-बिगडती जा रही थी। हम समझ गये कि गवर्नमेण्ट कोई न कोई बहाना खोज रही है जिसकी आड मे समझौते को खतम करके वह काँग्रेस से बदला लेना चाहती है। सिविल-सर्विसवालो की राय तो ऐसी बराबर से ही थी। लार्ड विलिंगडन की भी यही राय थी। इसलिए अब किसी उपयुक्त अवसर का ही इन्तजार था। प्राय दो बरसों से सभी चीजो का दाम घटता गया था—विशेषकर गल्ले का। इस वजह से किसानो को रुपये मिलने मे बहुत कठिनाई हो रही थी। वे लगान अदा नही कर सकते थे, क्योकि इतना पैदा ही नही होता था जिसे बेचकर वे लगान अदा कर सकते और अपना दूसरा जरूरी काम कर सकते। खासकर युक्तप्रान्त की परिस्थिति बहुत नाजुक हो चली थी। १९३० के सत्याग्रह के समय से ही किसानो की हालत खराब हो रही थी और वहाँ बहुतेरे किसान काँग्रेस से आशा रखते थे कि उनको सहूलियत दिलवाने मे काँग्रेस समर्थ होगी। कही-कही, विशेषकर इलाहाबाद-जिले मे, लगानबन्दी का आन्दोलन भी चला था। सुलहनामे के बाद अब लगानबन्दी को रोकना था, क्योकि हमे हर प्रकार के सत्याग्रह को रोक देना था। पर वहाँ की स्थिति राजनीतिक ही नही थी, किसानो की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि वे यदि लगान अदा करना चाहते भी तो कर नही सकते थे। काँग्रेस सत्याग्रह तो बन्द कर देती, पर उनकी इस आर्थिक असमर्थता को दूर करके उनसे लगान दिलवा देना उसके या किसी के बूते की बात नही थी। यदि वह लगान देने को न कहे तो समझा जाता कि समझौते को वह पूरा नही कर रही है। इसलिए वहाँ आवश्यक हो गया कि राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति को बिलगाकर, लगानबन्दी का आन्दोलन—जो सत्याग्रह का अग था—न चलाकर, किसानो की आर्थिक स्थिति के अनुसार, उनके लिए सहूलियत प्राप्त करने का

प्रयत्न किया जाय। ऐसा ही किया गया, पर गवर्नमेण्ट कब इस बात को माननेवाली थी!

उधर जमीन्दार भी अपनी रकम वसूल किये बिना सन्तुष्ट होनेवाले नही थे। गवर्नमेण्ट ने लगान मे कुछ माफी दी, पर वह इतनी कम थी कि उससे बहुत सहूलियत नही मिली। इसके अलावा किसानो ने जो थोडा-बहुत अदाकारी का प्रयत्न किया और कुछ दिया, उसका असर उनके लिए अच्छा न हुआ, क्योकि जो बाकी रह गया उसी के लिए उनके खेत की जब्ती हो गयी और अपनी जमीन से वचित कर दिये गये। पहले का बकाया ज्यों का त्यो पडा ही रहा। इस बात की बहुत कोशिश की गयी कि कुछ और माफी कराकर, लगान घटाकर, उनकी मदद हो। पर पहले तो गवर्नमेण्ट कुछ करने पर राजी नही होती और अगर राजी भी होती तो वह इतना कम होता कि उससे किसानों के लिए कोई सुविधा नही मिलती। पडित जवाहरलाल, श्री पुरुषोत्तमदास टडन और उस समय के प्रान्तीय कार्यो के अधिकारी सभापति स्वर्गीय श्री तसद्दुक अहमद शेरवानी ने बहुत प्रयत्न किया कि कुछ हो जाय, पर वे नाकामयाब रहे। कामयाब हो तो कैसे हो ? गवर्नमेण्ट कुछ और ही सोच रही थी। वह अगर कुछ करना भी चाहती थी तो उसे कांग्रेस के आग्रह से नही करना था; क्योकि ऐसा होने से कांग्रेस का प्रभाव किसानो मे बढ जाता। इसलिए हर तरह से हारकर वहाँ की प्रान्तीय कमिटी ने निश्चय किया कि वह किसानों को परामर्श दे कि वे अपनी असमर्थता के कारण लगान न दे। यह एक प्रकार से लगानबन्दी का आन्दोलन समझ लिया गया। अखिल भारतीय वर्किंग कमिटी की अनुमति के बिना वह ऐसा नही कर सकती थी। इसलिए उसने अनुमति माँगी।

उधर बगाल मे भी विकट परिस्थिति हो गयी। वहाँ की प्रान्तीय गवर्नमेण्ट हमेशा क्रान्तिकारी दल से आतकित रहा करती थी और यो ही बहुतेरे युवको को जेलों मे बन्द रखती आ रही थी। गाधी-अर्विन-समझौते मे सत्याग्रही बन्दियो के छूटने की ही बात हुई थी और उनके ही छूटने मे बहुत कठिनाई पड रही थी। गवर्नमेण्ट की ओर से तरह-तरह के बहाने निकाले जा रहे थे। क्रान्तिकारी लोगो का तो कहना ही क्या था। इससे वहाँ लोग बहुत क्षुब्ध थे। इसी बीच मे हिजली-कैम्प-जेल मे, जहाँ क्रान्तिकारी नजरबन्द और कैदी थे, एक घटना भी हो गयी, जिसमे जेल के अन्दर गोली चली और कुछ बन्दी घायल हुए और शायद एकाध मारे भी गये। इससे और भी खलबली मची। चटगाँव मे किसी पुलिस-कर्मचारी को एक क्रान्तिकारी ने मार डाला। इसमे कोई हिन्दू-मुस्लिम बात नही थी, क्योकि क्रान्तिकारियो ने कितने ही हिन्दू-पुलिस-अफसरो को भी मार डाला है। वे किसी भी सरकारी कर्मचारी को उसकी जाति अथवा धर्म के कारण नही मारते, बल्कि जिसको देश-द्रोही समझते है उसी को मारते है, चाहे वह किसी भी जाति व धर्म का हो। पर वहाँ उसको हिन्दू-मुस्लिम झगडे का रूप दे दिया गया और वहाँ के हिन्दुओ के साथ बहुत ज्यादतियाँ की गयी जिनमे अँगरेजो और अर्ध-गोरा का भी पूरा हाथ था।

इन सब बातो से बगाल मे बडी खलबली थी। गवर्नमेण्ट भी नये आर्डिनेन्स निकालने मे हिचक रही थी। बगाल-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन, ब्रह्मपुर (मुर्शिदाबाद) मे, वयोवृद्ध प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री हरदयाल नाग के सभापतित्व मे हुआ। सरदार पटेल ने श्री अणे और मुझको कांग्रेस की ओर से वहाँ भेजा। हम लोगो ने सम्मेलन मे शिरकत की और मैने बगाल मे भाषण भी किया। इसी प्रकार सीमा-प्रान्त की हालत भी कुछ अच्छी नही थी। वहाँ भी दमन चल रहा था। इस तरह जैसे-जैसे गोलमेज-कान्फ्रेन्स का काम समाप्त होने पर आ रहा था वैसे-वैसे यहाँ की परिस्थिति और भी कठिन होती जा रही थी। हम समझ रहे थे कि अब मामला फिर बिखरेगा और झगडा फिर होगा।

जब वर्किंग कमिटी के सामने युक्तप्रान्त की दर्खास्त पर विचार होने लगा तो हम लोगो ने अपनी बडी जवाबदेही महसूस की। अभी तक गाधीजी लौटे नही थे। उनकी गैरहाजिरी मे लगानबन्दी आरम्भ करना हमारे लिए कहाँ तक उचित होगा और यदि उचित भी हो तो हम कहाँ तक उसे चला सकेंगे—इत्यादि, हर पहलू से कई दिनो तक हम लोग विचार करते रहे। मेरे मन मे सन्देह था कि वहाँ की जनता उस दमन को बर्दाश्त कर सकेगी वा नही जो लगानबन्दी के कारण अवश्य होगा। बिहार मे चौकीदारी-टिकस एक मामूली टिकस है, जो किसी पर भी १२) सालाना से अधिक नही हो सकता है तथा मामूली तरह से गरीबो पर छ या बारह आना सालाना होता है—मामूली किसानो पर एक-डेढ रुपया अथवा इससे कुछ ज्यादा, हैसियत के मुताबिक, हुआ करता है। इसके बन्द करने पर जितनी ज्यादतियाँ हुई थी, मैने अपनी आँखो गाँवो मे जा-जाकर देखी थी। अभी एक बरस भी नही बीता था कि यह सब देखने को मिला था। इससे मै बहुत डरता था कि लगान बन्द करने की बात बडी गभीर हुआ करती है। जमीन्दार का लगान बन्द होने से वह सरकारी मालगुजारी नही दे सकेगा। इसलिए सरकारी आमदनी का एक बहुत बडा अग रुक जायगा और सरकार को भी अपना काम चलाने मे अडचन पडेगी। इसलिए इसके बन्द किये जाने पर सरकार की ओर से भी बडी सख्ती होगी। मैने इन्ही कारणो से बार-बार इस बात को पूछा कि जनता कहाँ तक दमन बर्दाश्त करने के लिए तैयार होगी। इसका कोई उत्तर निश्चयात्मक रूप से तो दिया नही जा सकता था, पर वहाँ के भाइयो ने इस बात का आश्वासन दिया कि जनता बहुत हद तक मुसीबत बर्दाश्त करने के लिए तैयार है।

सरदार पटेल का विचार था कि जब वहाँ की प्रान्तीय कमिटी और प्रमुख लोग वहाँ की परिस्थिति ऐसी समझते है कि इसके सिवा दूसरा कोई चारा नही, और इसके कारण जो दमन होगा उसे भी बर्दाश्त करने के लिए जनता को तैयार मानते है, तो हम लोग अखिल भारतीय वर्किंग कमिटी के मेम्बर किस तरह अनुमति देने मे आनाकानी कर सकते है। अन्त मे बहुत सोच-विचार कर, बहुत प्रतिबन्धो के साथ, अनुमति दी गयी। वह भी, अभी तुरत लगानबन्दी करने की नही, तैयारी करने की।

सरकार तो इसी की ताक मे बैठी थी। उसने तुरत ही कार्रवाई शुरु कर दी। असल वात तो यह थी कि गल्ले की कीमत इतनी गिर गयी थी कि लगान अदा करना ही असभव था। इस वात को कुछ दिनो के वाद वहाँ के गवर्नर हेली साहव ने खुले तौर पर स्वीकार भी किया। उन्होने यहाँ तक कह डाला कि जव तक इस विषम लगान-कानून का मौलिक सुधार न होगा, समाज का सारा सगठन डावाँडोल रहेगा। पर उस समय काँग्रेस को दवाना ही मजूर था, दूसरी कार्रवाई शुरु कर दी गयी।

९६—सरकार का भयंकर दमन-चक्र

गोलमेज-कान्फ्रेन्स का काम समाप्त होते ही गाधीजी निराश होकर, हिन्दुस्थान के लिए रवाना हो गये। उनके भारत पहुँचने के दिन वम्वई मे वर्किंग कमिटी की वैठक रखी गयी। सव लोग अपने-अपने सूबे से वम्वई के लिए रवाना हुए। वगाल मे दमन-चक्र चल ही रहा था। इसी वीच सीमा-प्रान्त मे भी खाँ अव्दुल गफ्फार खाँ, डाक्टर खाँ साहब और दूसरे नेता एकाएक गिरफ्तार कर लिये गये। वे अपने सूबे से वाहर नजरवन्द करके जहाँ-तहाँ भेज दिये गये। युक्तप्रान्त मे श्री पुरुषोत्तमदास टडन और शेरवानी साहव भी गिरफ्तार हो गये। हम जिस गाडी से जा रहे थे उसी से पडित जवाहरलालजी भी वम्वई जा रहे थे। डाकगाडी, प्रयाग से थोडी ही दूर पर, एक छोटे स्टेशन पर ठहर गयी। वहाँ पहले से मोटर लेकर पुलिसवाले पहुँचे थे। पडितजी वही गिरफ्तार कर लिये गये। हम लोग सीधे वम्वई चले गये।

वम्वई मे महात्माजी के स्वागत की वडी तैयारी थी। जिन रास्तो मे उनको जाना था उनके सव मकान जन-समूह से खचाखच भरे थे। सडके भी लोगो से भरी थी। इस तरह की भीड शायद ही किसी दूसरे अवसर पर किसी को देखने के लिए इकट्ठी हुई हो। निश्चित स्थान पर पहुँचते ही गाधीजी से सभी वाते कही गयी। वह भी समझ गये कि गवर्नमेण्ट अव दमन खुले तौर पर करना चाहती है। वर्किंग कमिटी की वाजाव्ता वैठक हुई। तत्कालीन परिस्थिति-सम्वन्धी एक लम्वा प्रस्ताव स्वीकार किया गया। गाधीजी ने वायसराय को तार दिया जिसमे प्रस्ताव का साराश वताया और उनसे मुलाकात की अनुमति माँगी। यह सव हो जाने पर हम सव अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हुए।

जव मै रवाना होते समय महात्माजी से अन्तिम विदाई लेने गया तो देखा कि मिस्टर वेन्थल उनसे वाते कर रहे है। वह भी गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे हिन्दुस्थान के अँगरेजो के प्रतिनिधि होकर गये थे। वहा पर उन्होने मुसलमानो और अँगरेजो का गठवन्धन कराने की वहुत-सी कार्रवाइया की थी। हम लोग तो समझ गये थे कि अव कुछ होनेवाला नही है—वहुत शीघ्र दमन होगा और काग्रेस को मजवूर होकर फिर सत्याग्रह करना पडेगा। हम लोगो मे से किसी की इच्छा नही थी कि

सत्याग्रह आरम्भ किया जाय—न इसके लिए तैयारी थी और न मानसिक तत्परता ही। हॉ, हमारे मान्य साथियो को गवर्नमेण्ट ने अकारण गिरफ्तार कर लिया था। उनके सम्बन्ध मे पहले वायसराय से बातचीत करना जरूरी था। और, जब ऐसी ही मजबूरी हो तो कुछ करना भी लाजिम था। पर गाधीजी के हिन्दुस्तान लौटने के पहले से ही यहाँ की गवर्नमेण्ट ने सब तैयारियॉ कर ली थी। उसकी ओर से वार भी हो चुका था। उसकी तैयारियो की कुछ खबर हम लोगो को पहले से ही इधर-उधर से मिल गयी थी। यहॉ तक कि डाक्टर अनसारी को इसका भी पता चल गया था कि किस प्रकार के आर्डिनेन्स जारी किये जायँगे। उन्होने ये बाते आपस के लोगो को बता दी थी। अब तो बात और स्पष्ट हो गयी थी।

बम्बई से चलकर मैंने सोचा कि अब तो बिहार मे भी दमन होगा ही, इसलिए अपने लोगो से एक बार मिल लेना अच्छा होगा। इटारसी जकशन से मैंने कई तार भेजे, जिनमे बिहार-प्रान्तीय वर्किंग कमिटी की बैठक पटने मे करने की बात के अलावा उसके मेम्बरो के लिए निमत्रण भी थे। जब दूसरे दिन सवेरे पटने पहुँचा तो मालूम हुआ कि वहॉ तार पहुँचा ही नही है। तारो को गवर्नमेण्ट ने रोक लिया था। तब भी कुछ लोग पटने मे पहुँच ही गये। वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक भी हमने कर ली। उसी रात को महात्माजी की गिरफ्तारी हो गयी थी। उनके साथ सरदार वल्लभ-भाई तथा दूसरे कई प्रमुख कॉंग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे। यह सब हम अखबारो मे देख चुके थे और समझ गये थे कि अब हम लोगो की गिरफ्तारी भी शीघ्र ही हो जायगी। इसलिए पटने मे पहुँचते ही हमने वर्किंग कमिटी का काम कर लिया। सब लोगो के लिए आदेश तैयार करके उसे छपवाने का भी प्रबन्ध कर दिया। यह सब काम पूरा करके हम जब तक तैयार हुए तब तक पुलिस के आने की सूचना मिली। वह अभी सदाकत-आश्रम तक पहुँची नही थी, पर आ ही रही थी। हम भी गिरफ्तार होने का इन्तजार करने लगे। श्री रामदयालु बाबू, प्रोफेसर अब्दुल बारी तथा दो-एक और सदस्य काम खतम करके चले जा चुके थे। तिरहुत के कुछ सदस्य दोपहर के स्टीमर से दीघाघाट तक आये थे, मगर जेल से बाहर रहकर कॉंग्रेस का काम करते रहने के खयाल से उधर ही रह गये।

पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट कई सशस्त्र सिपाहियों के साथ आ धमके! आश्रम को उन्होने घेर लिया। हम दो-चार आदमी जो बैठे थे उनसे वे पूछने लगे कि क्या हम वर्किंग कमिटी की बैठक कर रहे है। हमने स्पष्ट कह दिया कि वह काम पूरा हो चुका और बहुतेरे सदस्य जहाँ-तहाँ चले गये। उन्होने सरकारी विज्ञप्ति दिखलाई, जिसके द्वारा कॉंग्रेस-कमिटी और उसकी सभी शाखाएँ गैर कानूनी करार दी गयी थी। पुलिस ने पहले तो टेलीफोन अपने कब्जे मे किया। फिर राष्ट्रीय झण्डे के स्थान पर अपना—ब्रिटिश सरकार का—झण्डा लगा दिया। तब वहाँ की तलाशी शुरू की। तलाशी मे कोई खास चीज तो मिली नही, पर उसमे कई घटे लग गये। हम सब गिरफ्तार कर लिये गये, पर अभी वही रहे। प्राय. दिन के एक-दो बजे से रात

के आठ बजे तक हम सब वही रहे। आश्रम और विद्यापीठ की सभी इमारतें जब्त कर ली गयी। विद्यापीठ के जितने विद्यार्थी और शिक्षक वहाँ थे, सबको चले जाने की आज्ञा हुई। सर्वश्री व्रजकिशोरप्रसाद, मथुराप्रसाद, कृष्णवल्लभ सहाय, जगतनारायण बी० एस-सी० और मैं तथा प्रजापति मिश्र भी गिरफ्तार कर लिये गये। रात में नव बजे हम लोग बाँकीपुर-जेल पहुँचाये गये। पुलिस की लारी में अपना सामान लेकर हम सब सवार हुए। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी साथ ही जेल में पहुँचे। अपना-अपना बिस्तर, बक्स वगैरह सब सामान हम लोगों को स्वय उतारना और ढोना पडा। सुपरिण्टेण्डेण्ट की यही आज्ञा थी।

रात को एक गन्दे 'वार्ड' मे, जो खाली रखा गया था, हम लोग बन्द कर दिये गये। बिछाने को कुछ कम्बल मिले। खाने के लिए बाजार से पूरी मँगा दी गयी। वहाँ पेशाब की इतनी बदबू थी कि हम रात-भर चैन से सो न सके। बाजार की पूरी भी कुछ वैसी ही थी जो रुचि से खाते न बनी। दूसरे दिन सवेरे अँगरेज सिविल सर्जन, जो जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे, आये। उन्होने कहा कि यदि हम चाहे तो अपना भोजन बाहर से मँगवा सकते हैं। हम लोगो ने कह दिया कि जो कुछ जेल से मिलेगा वही हम लोग खायँगे। वही लोहे का तसला और वही खाना मिला जो सब कैदियो को मिलता है। हम लोगो ने उसे ही खाया। दो दिनो के बाद गवर्नमेण्ट का हुक्म आया कि हम लोग 'अपर डिवीजन' (ऊँचे दर्जे) के कैदी समझे जायँ। तब से कुछ अलग खाना मिलने लगा। दूसरे दिन से ही हम एक दूसरे वार्ड मे ले जाकर रखे गये। जेल मे ही हम लोगो पर मुकदमा चलाया गया। व्रजकिशोर बाबू को ५ महीने और बाकी सबको छ महीनो की सजा मिली। चन्द दिनो के बाद हम सब हजारीबाग-जेल भेज दिये गये। वही हमने अपनी मीयाद पूरी की।

हम लोग तो गिरफ्तार हो गये, इसलिए बाहर के आन्दोलन में कुछ भी भाग न ले सके, पर बाहर के लोगो ने बहुत काम किया। लार्ड विलिंगडन ने डीग मारी कि दो सप्ताहो मे वह सारा मामला खतम कर देंगे, पर यह आन्दोलन भी प्राय दो बरसो तक चलता रहा। उस समय तो लोगो मे बहुत ही उत्साह था। न मालूम कहाँ से नये नेता निकल आये, जिन्होने अपने-अपने ढग के कार्यक्रम भी बना लिये और कानून-भग का काम जोरो से चलने लगा। कानून तोडने मे विशेष कठिनाई भी न थी। सरकार की ओर सभी जगहो मे सभा, जलूस इत्यादि की मनाही थी। इस हुक्म का विरोध होने लगा, सभाएँ होने लगी, जलूस निकलने लगे। सभाओ और जलूसो पर लाठियाँ चलती—कही-कही गोलियाँ भी चलती, पर वे होते ही रहे। सभी काँग्रेस-कमिटियो के मकानो और आश्रमो को सरकार ने जब्त कर लिया था। उन पर लोग धावा करते, और जैसे बीहपुर (भागलपुर) के आश्रम पर पिछले सत्याग्रह मे बराबर धावे होते ही रहे वैसे ही अनेक आश्रमो पर धावे होने लगे। सदाकत-आश्रम पर भी रोज-रोज धावे होते रहे और लोग गिरफ्तार भी होते रहे। यहा के झडे

पर खास हमला होता रहता। 'युनियन जैक' लगे हुए लग्गे को लोगों ने आखिर झुका कर ही छोडा।

यह वार गवर्नमेण्ट ने ४ जनवरी को आरम्भ किया था। थोडे ही दिनो वाद २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाने का निश्चय लोगों ने कर लिया। उस दिन कई जगहो मे गोलियाँ चली। मोतीहारी मे वहाँ की जिला-कमिटी के मकान के सामने-वाले मैदान मे वडी सभा हुई, जिसमे गाँवों से भी वहुत लोग आये थे। वहाँ पर गोली चली और कई आदमी मारे गये, पर लोग हटे नही। आज भी उस स्थान पर शहीदो के नाम पर चबूतरा वना हुआ है। अन्त मे गोली चलाना वन्द कर जव पुलिसवाले चले गये, तव भी जनता वहाँ डटी रही। रात को वही रहकर लोगो ने उसी स्थान पर लिट्टी लगाकर खाया। दूसरे दिन जहाँ-तहाँ गाँववाले चले गये। मुँगेर-जिले के तारापुर और बेगूसराय मे भी वहुत लोग गोलियो के शिकार हुए। एक विद्यार्थी ने गोली खाकर मरते दम ये शब्द कहे—"मैं स्वराज्य के लिए मर रहा हूँ, लोकमान्य तिलक के निकट पहुँचकर सन्देश कहूँगा।" इस तरह की वहादुरी अनेकानेक जगहो के लोगो ने विहार मे दिखलायी। फिर १९३० की तरह सूबे भर के सभी जेलखाने भर गये और पटना-कैम्पजेल भी। १९३० से इस वार यही फर्क था कि जेलो मे अधिक सख्ती हो गयी। 'अपर डिवीजन' मे वहुत थोडे लोग रखे गये। विहार मे ऐसे लोग यो तो पहले भी कम ही थे, पर इस वार उनकी सख्या और भी कम हो गयी। गवर्नमेण्ट जितनी जल्दी और तेजी से आन्दोलन वन्द करना चाहती थी, न कर सकी, वह चलता ही रहा। हम लोग हजारीवाग मे उसी तरह दिन विताने लगे। नयी वात यह हुई कि इस वार हम लोगों को कारखाने मे जाने की इजाजत नही मिली, क्योकि समझा जाता था कि वहाँ मामूली कैदियो से हमारी मुलाकात होगी और हम उनको विगाड या वहका देगे। इसलिए हम इस वार उस तरह का कुछ काम नही कर सके, पर सूत अधिक काता गया। धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन भी खूब हुआ—कुरान-शरीफ, वौद्धधर्म के ग्रन्थ, वायविल आदि भी पढे गये।

इस वार की जेल-यात्रा मे एक अद्भुत घटना हुई। श्री महामायाप्रसाद एक वहुत स्वस्थ युवक थे। वह वहुत कसरत वगैरह किया करते थे। हम लोगो के भोजन की देख-रेख उन्ही के जिम्मे थी। एक दिन एप्रिल मे, जव गर्मी काफी हो गयी थी, वह चौके से दोपहर को आये। तवीयत कुछ सुस्त हो गयी थी। सवने समझा कि कोई मामूली-सी वात होगी। दूसरे दिन से आहिस्ता-आहिस्ता उनकी वोली वन्द होने लगी। दिन मे वह इस तरह वन्द हो गयी कि अ-आ ऊँ-ऊँ भी नही कर सकते थे। जो कुछ कहना होता, लिखकर वताते। वाते सुनते-समझते थे, पर वोल नही सकते थे। वहाँ के डाक्टरो और सिविल सर्जन ने देख-भाल की, पर कुछ कर न सके। उनकी मीयाद भी पूरी हो चली थी। इसलिए वह छोड़ दिये गये। कलकत्ते मे वह इलाज कराने गये। वहाँ के डाक्टरो और वैद्यो की हजार कोशिश के वाद भी उनकी आवाज न खुली। सभी लोग कहते थे कि आवाज की नली मे कोई कसर नही है, पर

तो भी आवाज निकलती नही। यही कैफियत प्राय दो बरसो तक रही। जब १९३४ मे डाक्टर अनसारी योरप गये, वह भी उनके साथ गये। वहाँ वियना (आस्ट्रिया) मे एक विशेषज्ञ ने इलाज किया, जिससे एक-दो हफ्तो के अन्दर ही आवाज कुछ-कुछ निकलने लगी। कुछ दिनो बाद पूरा स्वस्थ होकर वह स्वदेश वापस आ गये। अब उनकी आवाज पूर्ववत् हो गयी है। बडी-बडी सभाओ मे भी वह भाषण करते है और उनकी आवाज सब लोगो तक पहुँच जाती है।

इस प्रकार सब तरफ कानून-भग चल ही रहा था कि एक विचित्र बात कॉग्रेस के अधिवेशन के सम्बन्ध मे हुई। ऊपर कह चुका हूँ कि इस बार सरकार ने गिरफ्तारियाँ ४ जनवरी को ही आरम्भ कर दी थी। कॉग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मार्च मे होने-वाला था। उत्कल (उडीसा) के लोगो ने कॉग्रेस को आमत्रित किया था। वे तैयारियाँ भी कर रहे थे। जब एकाएक वार शुरू हो गया तो वहाँ के लोग भी गिरफ्तार हो गये। बिहार और उडीसा एक ही (सम्मिलित) प्रान्त थे। इसलिए वहाँ के भी प्रमुख कॉग्रेसी लोग, जो अपर-डिवीजन मे थे, हजारीबाग ही आ गये और हम सब साथ ही थे। उडीसा मे अधिवेशन होने की बात तो अब थी नही, पर जो लोग बाहर थे उन्होने सोचा कि अधिवेशन मार्च मे कही न कही अवश्य होना चाहिए। गवर्नमेण्ट तुली हुई थी कि अधिवेशन वह किसी तरह न होने देगी। लोगो ने निश्चय किया कि अधिवेशन दिल्ली मे होगा। उसके लिए दिन भी नियत करके घोषित कर दिया गया। पडित मदनमोहन मालवीयजी का सभापतित्व भी घोषित हो गया। बहुतेरे लोग भिन्न-भिन्न सूबो से, किसी न किसी तरह, नियत दिन के पहले ही, दिल्ली पहुँचकर जहाँ-तहाँ ठहर गये। लोगो ने इस बात की भी घोषणा कर दी कि नियत तिथि पर, १० बजे दिन को, घटाघर के सामने, चाँदनी चौक मे अधिवेशन होगा। मालवीयजी दिल्ली के लिए रवाना हुए। वह सीधे रेल से दिल्ली तक नही गये, कही रास्ते मे मोटर पर हो लिये। गाजियाबाद और दिल्ली के बीच मे वह गिरफ्तार कर लिये गये। इसकी भी सूचना लोगो को मिल गयी। ठीक अधिवेशन के दिन भीतर-भीतर यह खबर उडा दी गयी कि चॉदनी चौक मे अधिवेशन न होकर कही नयी दिल्ली मे होगा। यह खबर इस तरह फैलायी गयी कि पुलिस को इसी पर विश्वास हो गया। इसलिए उस दिन पुलिस की तैयारी चॉदनी चौक मे न होकर उस दूसरे स्थान मे रही। ठीक समय पर बाहर से आये हुए प्रतिनिधि, जो घटाघर के पास की गलियो म जहाँ-तहाँ थे, चारो ओर से निकल आये। वे घटाघर के सामने बीच सडक पर ही जमा हो गये। कॉग्रेस के नियमानुसार मनोनीत सभापति की गैरहाजिरी मे अहमदाबाद के एक मिल-मालिक सेठ रणछोडदास सभापति चुने गये। उनका छोटा-सा भाषण हुआ। एक समयानुकूल प्रस्ताव बाजाब्ता पेश हुआ और सबने मजूर किया। यह हो ही रहा था कि पुलिस को इसकी खबर मिल गयी। घुडसवार और दूसरे जत्थे, जो लारियो पर सवार थे, वहाँ पहुँच गये ओर उपस्थित लोगो को लाठियो द्वारा तितर-बितर कर दिया। पर इसके पहले ही सारी कार्रवाई खतम हो चुकी थी। यह खबर

अखबारों में छपी। लोगो का इससे बड़ा मनोविनोद रहा। इत्तफाक से सेठ रणछोड़-दास गिरफ्तार भी न हुए। मालूम नही कि सचमुच उस नाम के सेठ सभापति हुए थे या यो ही उनका नाम घोषित कर दिया गया। पर इतना ठीक है कि यह अधिवेशन कांग्रेस के बाजाब्ता अधिवेशनों मे नही गिना गया। दूसरे अधिवेशनो के सभापतियो की तरह इसके सभापति को अखिल भारतीय कमिटी की आजीवन सदस्यता नही मिली।

इस बार देश ने कांग्रेस का पूरा साथ दिया। गवर्नमेण्ट ने पिछली बार ही देख लिया था कि धन की मार बहुत जबरदस्त होती है। इसलिए इस बार बड़ी-बड़ी रकमो के जुर्माने हुए। कांग्रेस की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। कांग्रेस का मकान तो कही था ही नहीं, बैंको में जो कुछ कांग्रेस के हिसाब में जमा मिला वह भी जब्त हुआ। पर कांग्रेस का बहुत-कुछ गवर्नमेण्ट को मिला नही। गवर्नमेण्ट तथा दूसरे लोगों का भारी भ्रम है कि कांग्रेस के पास बहुत रुपये है और वह रुपयो के बल मे काम करा लेती है। १९२१ मे एक बार कांग्रेस ने बडी रकम जमा की थी। वह राष्ट्रीय शिक्षा और खादी मे बहुत-कुछ खर्च हुआ। इसके अलावा कांग्रेस के सगठन मे भी खर्च हुआ। उसके बाद सभी प्रान्तो की कमिटियाँ अपनी जरूरत के अनुसार खर्च जमा कर लिया करती है। वह रकम बहुत बडी नही होती। यदि कांग्रेस के सामने कोई काम आ जाता है तो वह उसके लिए तत्काल पैसे जमा कर लेती है। पर कांग्रेस की किसी भी कमिटी के पास बहुत रुपये नहीं जमा रहते। हाँ, जहाँ-तहाँ छोटे मकान कांग्रेस के हो गये है। वे भी स्थानीय लोगो से तत्काल ही जमा किये हुए पैसो से बनाये गये है। पर इतना ठीक है कि जब जैसी जरूरत होती है, जनता से पैसे मिल जाते है। जहाँ कांग्रेस का सगठन अच्छा है—कार्य्यकर्त्ताओ के प्रति लोगों मे श्रद्धा और विश्वास है—लोगो के पास पैसे है, वहाँ अधिक पैसे मिल जाते है, पर जहाँ इनमें किसी बात में कमी है वहाँ कम मिलते है।

गांधीजी का विश्वास है और इसी नीति पर वह चलते है कि सार्वजनिक सस्था को अपने खर्च के लिए धन इकट्ठा करके जमा नही रखना चाहिए, आवश्यकता-नुसार पैसे जमा करके काम चला लेना चाहिए, इससे वह सस्था निरकुश नही हो सकती, क्योंकि यदि उसने काम ठीक नही किया तो वह अपनी लोकप्रियता खो बैठेगी और पैसे नही मिलेंगे, इस तरह उस सस्था को अपने जीवन के लिए जनता पर निर्भर रहना पड़ता है और वह अपने कर्तव्य को ठीक निबाहने पर ही जीवित रह सकती है। मेरे अनुभव ने इस बात को अक्षरश सत्य साबित पाया है। हमारा प्रान्त एक गरीब सूबा है। बड़े-बड़े जमीन्दारो से कांग्रेस का सम्बन्ध नही के बराबर रहा है। पर जब कभी जरूरत पडी है, मध्यम वर्ग के लोगो ने आवश्यकतानुसार हमे धन दिया है। मै मानता हूँ कि धन-सग्रह मे हमारी शक्ति और हमारा समय बहुत व्यय होता है और यदि इस चिन्ता से हम मुक्त रहते तो शायद काम अधिक कर सकते। काम करनेवाले बहुत रहे है—अच्छे समझदार और कांग्रेस के सच्चे अनुयायी, पर रुपयों की कमी के कारण उनको हम आश्रमो मे रहने तक के लिए भी खर्च नही दे सकते है,

उनके वाल-वच्चो और घरवालो के लिए कौन कहे! वहुतेरे तो इस मजवूरी से दु ख के साथ कभी-कभी अपनी रोटी की फिक्र मे कॉग्रेस के काम से अलग भी हुए है। यह सव होते हुए भी, मै समझता हूँ कि धनाभाव से हमारा काम कभी रुका नही है। एक प्रकार से हमारी गरीवी हमारा सहायक भी रही है। गरीव सूवे की प्रान्तीय कमिटी वहाँ के जन-साधारण का प्रतिनिधित्व गरीव रहकर ही कर सकती है। इसलिए मै यह भी मानता हूँ कि हम अपने सूबे के ठीक प्रतिनिधि रहे है।

यहाँ मै एक आवश्यक—पर अप्रस्तुत—विषय की आलोचना मे वहक गया! जो हो, हमारे सूबे मे गवर्नमेण्ट को कॉग्रेस के हिसाब मे अधिक धन नही मिला। पर हमारे मकान सभी जब्त रहे। जव वे हमे वापस मिले, बहुतेरो की हालत रद्दी हो गयी थी।

गवर्नमेण्ट ने इस बार कॉग्रेस या उसके किसी कार्य्यकर्त्ता को आर्थिक या किसी तरह की मदद देना जुर्म बना दिया था। कई नये आर्डिनेन्स बन गये थे जो मामूली तौर पर लडाई के दिनो मे ही और मुल्को मे बना करते है। इसलिए हमारे बाहर रह जानेवाले कार्य्यकर्त्ताओ को बहुत जगहो मे किराये पर भी मकान नही मिलते थे। सवारी भी जल्दी न मिलती। बहुत आतक फैलाने का प्रयत्न किया गया। पर काम रुका नही, क्योकि जनता बराबर मदद करती रही। और, कुछ लोग ऐसे थे जो अखिल भारतीय कमिटी के दफ्तर को अपने हाथ मे रखकर सारे देश मे समय-समय पर आदेश पहुँचाते तथा सभी जगहो की कार्रवाई की खबर लेते रहे।

इस तरह, यद्यपि कॉंग्रेस गैर-कानूनी सस्था हो गयी, जिसके न घर थे, न दफ्तर, न पैसे, न सदस्य और न पदाधिकारी, तो भी जैसे किसी गुप्त स्थान से भूर मे पानी निकलता ही रहता है वैसे ही कॉग्रेस का कार्य्यक्रम भी कही गुप्त स्थान से निकल ही आता और उसको पूरा करनेवाले भी यथास्थान और यथासमय मिल ही जाते। लार्ड विलिंगडन की वह मदपूर्ण धमकी कि कॉग्रेस दो हफ्तो मे समाप्त कर दी जायगी, पूरी नही हुई। हजारीवाग-जेल के अन्दर इतनी कडाई थी कि खॉ अब्दुल गफ्फार खॉ और डाक्टर खॉ साहव उसी जेल मे थे, पर हम लोगो से उनकी एक वार भी मुलाकात न हुई।

९७—हरिजनों के लिए गांधीजी का अनशन

छ महीनो की सजा काटकर मै हजारीवाग से रिहा हो गया। कुछ घटो के लिए मुझे हजारीवाग शहर मे ठहरना था। उसी समय मुझे जोरो से जाडा-बुखार आ गया। मुझे कुछ ठहर जाना पडा। जव कुछ स्वस्थ होकर मै पटने आया तब भी वीमार ही था और कमजोरी तो वेहद थी। मैने कुछ अच्छा होकर वाहर की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के कार्य्यकर्त्ताओं मे मेरी मुलाकात हुई। सूबे मे भी जो वाहर थे उनसे भेट हुई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैने मदद भी की, पर काम चलाने का भार मैने अपने ऊपर नही लिया, जो लोग चला

रहे थे उन्हीं पर रहने दिया। अखिल भारतीय कमिटी के काम में ही मैंने अधिक दिलचस्पी ली और समय दिया। मैं काशी में पंडित मालवीयजी से जाकर मिला और वहाँ कई दिनों तक ठहरा रहा। फिर वम्बई भी गया और कलकत्ते भी। सभी जगहों में कार्यकर्त्ताओं से मिला और यथासाध्य रुपये जमा करने में उनकी कुछ मदद की। अभी तक पूरा स्वस्थ नहीं हो पाया था, पर ऐसा बीमार भी न था कि काम रुक जाय।

मैं मानता था कि मुझे बाहर नहीं रहना चाहिए और सोच भी रहा था कि कोई उपयुक्त अवसर मिले तो फिर जेल-यात्रा करूँ। इतने ही में एक दिन अखबारों में महात्माजी के अनशन की बात पढ़ी। हम जब से वम्बई में गांधीजी से मिलकर अलग हुए थे, उनकी कोई खबर हमको नहीं मिली थी। पर गवर्नमेण्ट के साथ उनका कुछ दिनों में पत्र-व्यवहार चल रहा था। पहले कह चुका हूँ कि गोलमेज-कान्फ्रेन्स में उन्होंने अस्पृश्य-वर्ग के लिए अलग चुनाव-क्षेत्रों का प्राणपण से तीव्र विरोध किया था। मिस्टर मैकडोनल्ड ने अपने फैसले में अलग क्षेत्र कायम करने की बात कह दी थी। महात्माजी ने अपने उसी भाषण की याद दिलाते हुए कहा था कि गवर्नमेण्ट इस फैसले को नहीं बदलेगी तो वह आमरण अनशन करेंगे इसलिए गवर्नमेण्ट के न मानने पर उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। सरकार ने सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया और उसके प्रकाशित होते ही देश-भर में बड़ी सनसनी पैदा हो गयी।

महात्माजी यरवदा-जेल में थे। वहीं अनशन आरम्भ हुआ। मैं खबर पाते ही बम्बई पहुँचा। पूज्य मालवीयजी भी पहुँचे। श्री राजगोपालाचारी भाग्यवश बाहर थे, वह भी आ गये। और लोग भी जो बाहर थे, बम्बई पहुँच गये। महात्माजी के अनशन को छुड़ाने की कोशिश होने लगी। पर महात्माजी अपनी प्रतिज्ञा से कब डिगनेवाले थे। मिस्टर मैकडोनल्ड के फैसले में एक बात यह भी थी कि वह फैसला तब तक कायम रहेगा जब तक उन जातियों के लोग, जिनका फैसले से सम्बन्ध था, आपस के समझौते में उसके स्थान पर कोई दूसरी बात तय न कर लें। स्वभावतः इस ओर लोगों का ध्यान गया। अब भी इस बात की कोशिश होने लगी कि अस्पृश्य-वर्ग के लोगों को ही राजी करके अलग निर्वाचन-क्षेत्र छुड़वाये जायँ। बम्बई में डाक्टर अम्बेदकर रहते थे। सरकार ने उनको ही अस्पृश्यों का नेता बनाकर गोलमेज-कान्फ्रेन्स में भेजा था। उनसे बातें होने लगीं। एक-दो दिन बीत गये, पर कोई बात तब तक तय न हो सकती जब तक गांधीजी से भी राय न ले ली जाय। इस बीच में अस्पृश्य-वर्ग की जनता में भी हलचल मच गयी, क्योंकि अस्पृश्यता-निवारण में गांधीजी ने बहुत काम किया था। उस वर्ग के लोग देखने लगे कि इनकी मृत्यु यदि इसी कारण हो जायगी तो उनके लिए यह एक अमिट कलंक हो जायगा।

गांधीजी ने जिस कारण से अलग क्षेत्र का विरोध किया था वह कारण भी कुछ लोग अवश्य समझते थे। गांधीजी का कहना था कि अस्पृश्य-वर्गवाले हिन्दू हैं, पर किसी कारण से समाज में ऐसी रूढ़ि हो गयी है कि हिन्दू-जाति के इतर वर्ग उनको आज अस्पृश्य समझने लगे हैं। वह खुद इस अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज

का कलक मानते थे, और इसे हटा देना चाहते थे। यो तो जो अस्पृश्य, ईसाई या मुसलमान हो जाता है और इस प्रकार हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्म से अलग हो जाता है, वह उनसे बिल्कुल कट जाता है और यद्यपि वहाँ भी कुछ हद तक अस्पृश्यता रह ही जाती है तथापि वह हिन्दुओ के लिए अस्पृश्य नही रह जाता। इसलिए यह प्रश्न उनके सम्बन्ध मे ही होता था जो हिन्दू रह जाते है। गाधीजी समझते थे कि राजनीतिक चुनाव के लिए भी यदि अलग क्षेत्र हो जायँगे तो यह एक नया अछूतपन हो जायगा और जहाँ अछूतपन न दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है तथा जहाँ इसके दूसरे रूप हट रहे है वहाँ यह उसका एक नया कारण एव रूप हो जायगा। अछूतो के शिक्षित नेतावर्ग यह मानते थे कि जब सब अधिकार चुनाव के ही बल पर अवलम्बित होगे तो उनको भी अपने सख्या-बल का लाभ मिलना चाहिए और वह तभी पूरी तरह मिल सकेगा जब उनके लिए अलग चुनाव-क्षेत्र हो जायँगे। इसलिए गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे डाक्टर अम्बेदकर ने इस पर जोर दिया था।

बम्बई और पूना के बीच मे कुछ लोग दौड-धूप करने लगे, पर यह बहुत असुविधाजनक था। इसलिए सब लोग, जिनको इसमे कुछ करना था, पूना ही चले गये। डाक्टर अम्बेदकर और उनके कुछ साथी भी पूना गये। वहाँ दो-तीन दिनो तक बाते चली। महात्माजी से भी जेल मे भेट करने की अनुमति मिल गयी थी। वहाँ फाटक के नजदीक ही एक छोटे-से वार्ड मे गाधीजी से मुलाकात हुआ करती, जहाँ एक आम के गाँछ - के नीचे उनकी चारपाई रहती। श्री राजगोपालाचारी, पडित मालवीयजी, श्री ठक्कर बप्पा, सेठ घनश्यामदास बिडला, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास प्रभृति ने बहुत काम किया। डाक्टर अम्बेदकर, डाक्टर सोलकी प्रभृति भी अपनी ओर से बराबर बातचीत मे शामिल रहे। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते, मै घबराता था, क्योकि बातचीत मे गाधीजी को पूरा परिश्रम पडता और मै डरता था कि वह इतने परिश्रम के साथ बहुत देर तक अनशन बर्दाश्त नही कर सकेगे। जब-जब बाते होती, मै भी शरीक होता, पर अपनी आदत के मुताबिक बाते बहुत कम करता। गाधीजी ने एक दिन सध्या को डा० अम्बेदकर से बहुत बाते की और उनसे जोरदार अपील भी की। बाते तय हो गयी। मुख्य शर्ते यह थी कि अलग निर्वाचन-क्षेत्र नही होगे, उनके बदले मे चुनाव का तरीका यह होगा कि निर्धारित सख्या मे अस्पृश्य वर्ग के लिए जगहे सुरक्षित रहेगी, चुनाव के समय अस्पृश्य मतदाताओ को अधिकार होगा कि प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवार मनोनीत कर दे, यदि चार से अधिक उम्मीदवार हो तो केवल उनके ही वोट से चार ही चुन लिये जायँ और इन चार की ही उम्मीदवारी कायम रहे, चारो नामो पर वोट लिये जायँ और वोट सवर्ण तथा अस्पृश्य सभी हिन्दू दे और जो सबसे अधिक वोट पावे वे ही चुने जायँ, यह दस बरसो तक रहेगा और उसके बाद इस पर फिर विचार किया जायगा। मिस्टर मैकडोनल्ड के फैसले मे अस्पृश्यो को जितनी जगहे मिली थी उनकी सख्या बहुत बढा दी गयी। वह उनकी जनसख्या के

अनुरोध से बढ़ायी गयी। ये शर्तें तय हो गयीं और प्रधान मन्त्री मैक्डोनल्ड के पास तार भेज दिया गया। उन्होंने इसे मंजूर कर लिया और अपने फैसले को इस हद तक बदल दिया।

इतना हो जाने पर गांधीजी के अनशन का कोई कारण नहीं रह गया। उसे उन्होंने समाप्त कर दिया। इस समझौते से हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाजी और डाक्टर अम्बेडकर ने अपने कलम आपस में अदल-बदल कर लिये। यह राजाजी की इच्छा से हुआ; क्योंकि वह बहुत ही खुश थे। विलायत से उत्तर आने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ, शायद चौबीस घंटों के अन्दर ही मंजूरी आ गयी। पर ये चौबीस घंटे भी हम लोगों को बहुत बोझ गुजर रहे थे। उस दिन सबेरे से ही हम सब परेशान थे। होते-होते दोपहर का समय हो गया। मालूम हुआ कि उत्तर आ गया है और जल्द ही जेल में पहुँचनेवाला है। उसी दिन विश्वकवि रवीन्द्रनाथ पूना पहुँचे। वह रवाना हुए थे गांधीजी को देखने के लिए। उस समय तक समझौते की खबर उनको नहीं थी। पूना पहुँचने पर उन्हें इसकी खबर मिली। वह ठीक उसी समय जेल में पहुँचे जब समझौते की मंजूरी की खबर वहाँ पहुँची और गांधीजी के अनशन छोड़ने का समय आ गया। बड़ा ही शुभ मुहूर्त था वह। प्रार्थना की गयी। गुरुदेव ने एक सुन्दर गान गाया और आशीर्वाद दिये। इसके उपरान्त गांधीजी ने नारंगी का रस पीकर उपवास समाप्त किया। सारे देश में खुशियाँ मनायी गयीं। अछूतोद्धार की जबरदस्त लहर चल पड़ी।

९८—अछूतोद्धार का प्रयत्न

कुछ राजनीतिक प्रश्नों पर समझौता हो जाने से ही गांधीजी सन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे। उनके हृदय में तो अस्पृश्यता को जला देने के लिए एक आग धधक रही थी। वह आग केवल चुनाव में एक क्षेत्र अथवा अस्पृश्यों को कुछ सुरक्षित जगहें मिल जाने से कैसे बुझ सकती थी? वे सब सवाल उस समय तक उठते ही रहेंगे जब तक उनके साथ अछूतपन का व्यवहार होता रहेगा और हिन्दू-जाति उनको मनुष्य की श्रेणी से एक प्रकार अलग ही समझती रहेगी। इसलिए वह यह भी चाहते थे कि इसे निर्मूल कर देने का भी उपाय किया जाय। वहाँ से बम्बई में आकर एक अच्छी सभा हुई जिसमें हिन्दुओं की ओर से इस बात की प्रतिज्ञा की गयी कि वे अछूतपन को दूर कर देने का पूरा प्रयत्न करेंगे। इस काम को चलाने तथा दूसरे प्रकार से अछूतों की सेवा करने के लिए एक संस्था कायम की गयी। गांधीजी ने उस समय तक 'अछूत' शब्द के बदले में 'हरिजन' शब्द का व्यवहार आरम्भ कर दिया था। इसलिए उस संस्था का नाम 'हरिजन-सेवक-संघ' रखा गया। उसके सभापति हुए सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मन्त्री श्री अमृतलाल ठक्कर जिनको लोग प्रेम से ठक्कर बापा कहा करते हैं। वह संस्था अभी तक अच्छी तरह काम कर रही है। सारे देश में उसकी शाखाएँ कायम हो गयी हैं। ठक्कर बापा के पैरों में मानो चक्र है! वह अपनी वृद्धावस्था में भी सारे

दीनबन्धु एड्रूज, देशरत्न राजेन्द्र बाबू और गुरुदेव

देश का दौरा करते हुए सभी जगहो मे हरिजनो की सुविधा तथा शिक्षा का प्रबन्ध करके हर प्रकार की सेवा करते रहते है।

उस समय यह भी विचार हुआ कि अछूतपन दूर करने का एक स्पष्ट तरीका, जिसे सभी समझ और अपनी आँखो देख सकते है, यह है कि मदिरो मे जहाँ उनका प्रवेश-निषेध है वहाँ उनका प्रवेश कराया जाय, मदिरो को उनके लिए भी वैसे ही खुलवाया जाय जैसे वे दूसरे हिन्दुओ के लिए खुले है। इसी तरह सार्वजनिक कुँओ मे उन्हे जल भरने का भी अधिकार होना चाहिए। जहाँ दूसरे हिन्दू जा सकते है बैठ सकते है, वहाँ जाने-बैठने आदि का अधिकार और सहूलियत उन्हे भी मिलनी चाहिए। गाधीजी के उपवास के समय ही बहुत जगहो मे हिन्दुओ ने मन्दिरो के दरवाजे उनके लिए खुलवाने शुरू किये और उनके दूसरे स्वत्व भी बहुत जगहो मे स्वीकार किये गये। पर इतने बडे देश के लिए ऐसे स्थानो की सख्या अभी बहुत कम थी। इस उत्साह का एक नतीजा यह हुआ कि बम्बई की सभा के बाद बहुत जगहो मे इस सम्बन्ध के सम्मेलन होने लगे जिनमे अस्पृश्यता-निवारण के प्रस्ताव स्वीकृत होते—मन्दिर खुलवाये जाते इत्यादि। इस प्रकार का एक सम्मेलन बिहार मे, छपरे मे, थोडे ही दिनो के बाद, हुआ जिसमे काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भगवानदास ने सभापति का आसन सुशोभित किया। बहुत उत्साह देखने मे आया और जनता की ओर से हरिजनो के प्रति बहुत प्रेम तथा क्रियात्मक सहानुभूति प्रदर्शित की गयी।

बम्बई मे ही राजाजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मै उनके साथ मद्रास जाऊँ। अछूतपन का कट्टरपन और भयकर रूप सबसे अधिक उसी इलाके मे देखा जाता है। मालाबार मे तो अछूतपन यहाँ तक है कि कुछ जातियाँ उस सडक पर नही चलने पाती जिस पर सवर्ण हिन्दू चलते है। जहाँ उन जातियो के लोग सडक पर चलने पाते है वहाँ भी उनको पुकारते जाना पडता है जिसमे दूसरे अनजान से कही उनके नजदीक न पहुँच जायँ। कुँआ और तालाब मे पानी भरने की तो बात ही नही हो सकती। इसके अलावा दक्षिण मे बहुत बडे-बडे मन्दिर है। कुछ तो ऐसे है जहाँ हिन्दुस्थान के हर कोने से यात्री जाया करते है। इन मन्दिरो का नियत्रण पचायत द्वारा होता है। पच कही-कही जनता द्वारा चुने जाते है और कही-कही गवर्नमेण्ट द्वारा मनोनीत होते है। यदि उन लोगो मे प्रचार हो और वे मन्दिरो को खोल दे तो बहुत बडी बात हो जायगी। मै राजाजी के साथ वहाँ गया। मदुरा और श्रीरगम् के मन्दिर खुलवाने का बहुत प्रयत्न किया गया। वहाँ के पुजारियो और सचालको से बहुत बाते हुई। कुछ सहानुभूति भी दिखलाते थे। हम लोग कई दिनो तक यह प्रयत्न इन दोनो स्थानो मे करते रहे। सार्वजनिक सभाएँ की गयी। पडितो से भी बहुत बाते होती रही। पर इन बडे मन्दिरो के खुलवाने मे हम लोग समर्थ नही हुए। कुछ दूसरे मन्दिर, जिनका उतना अखिल भारतीय महत्त्व नही था, खोले गये। इससे इतना तो अवश्य जान पडा कि काम यद्यपि कठिन है तथापि असम्भव नही है। जिन लोगो को हम बहुत कट्टर

समझते थे वे भी बात सुनने और बात करने के लिए तैयार थे। हम वहाँ से निराश होकर नही, बल्कि बहुत आशा लेकर उत्तर की ओर आये।

हमारे प्रयत्न का फल तुरन्त तो नही मिला, पर कई बरसो के बाद मालाबार मे, जहाँ सबसे ज्यादा कट्टरपना था, त्रावकोर के महाराज ने वहाँ के सबसे प्रसिद्ध श्री पद्मनाभजी के मन्दिर को खोल दिया, सारे राज्य मे राज्य के सभी मन्दिर खोल दिये गये। मद्रास मे भी कानून बनाकर राजाजी ने, जब वह प्रधान मत्री थे, मदुरा के मन्दिर को खुलवा दिया। उसी समय यह बात भी चल पडी कि कानून बनाकर मन्दिर खुलवाये जायँ। कानून का क्या रूप हो और उसमे कैसी शर्ते रहे, इस पर विद्वान् लोग विचार करने लगे, जिसका फल पीछे देखने मे आया। सबसे बडी विचित्र बात दक्षिण मे यह देखने मे आयी कि वहाँ के अब्राह्मण सवर्ण हिन्दुओं की अपेक्षा वहाँ के ब्राह्मण ही इस सुधार के लिए अधिक तैयार पाये गये। वहाँ से लौटते समय मै आन्ध्र-प्रदेश के कतिपय स्थानो मे ठहरता हुआ आया। वहाँ भी वैसी सुधार की लहर देखने मे आयी। वहाँ भी मै कई जगह मन्दिर खोलने के उद्योग मे शरीक हुआ।

उत्तर-भारत मे भी इसी तरह लहर दौड़ गयी। अनेकानेक स्थानो मे सभाएँ होने लगी, मन्दिर खुलने लगे और दूसरे प्रकार से भी अछूतपन दूर करने के प्रमाण क्रियात्मक रूप मे दिये जाने लगे। गाधीजी जेल से ही इस विषय पर बयान देते थे। गवर्नमेण्ट ने इस बात की इजाजत दे दी थी कि अछूतोद्धार-सम्बन्धी उनके बयान समाचार-पत्रो मे छपने के लिए भेजे जा सकते हैं। इस अधिकार का उन्होने बहुत तत्परता से उपयोग किया और उनके बहुत से लेख प्रकाशित होने लगे। कुछ दिनो के बाद उन्होने महसूस किया कि इस तरह पत्रो मे बयान छपना काफी नही है, इसके लिए एक अपना पत्र निकलना चाहिए। 'यग इण्डिया' उनका बन्द हो चुका था। इसलिए हरिजनो की सेवा के लिए अँगरेजी मे 'हरिजन' और भारतीय भाषाओ मे 'हरिजन-बन्धु' तथा 'हरिजन-सेवक' के नाम से साप्ताहिक-पत्रो का जन्म हुआ, जो कई बरसो तक चले। पर इसी बीच मे और भी बहुत-सी बाते हुई जिनका जिक्र पहले आना चाहिए।

एक तरफ इस तरह हरिजन-सेवा और अस्पृश्यता-निवारण के लिए अभूतपूर्व उत्साह पैदा हुआ, दूसरी ओर अनपेक्षित दिशाओ से विरोध के कुछ चिह्न भी देखने मे आये। एक तो सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि इस सारे प्रयत्न को कुछ हरिजन लोग नापसन्द करते थे। उनका कहना था कि यह एक ढोगमात्र है जो उनकी राजनीतिक जागृति मे बाधक होगा, उनको राजनीतिक और आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त हो जायगी तो अछूतपन स्वय दूर हो जायगा, जब तक वह नही होती तब तक सवर्णो द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न उनको फिर गफलत की नीद मे सुला देगे जिससे वे औरो की अपेक्षा दुनिया की होड मे पीछे रह जायँगे। इसलिए वे चाहते थे कि उनमे जो असन्तोष है वह और भी बढे और उसी से जागृति पैदा होगी। उनकी ओर से 'हरिजन' नाम का भी विरोध किया गया। वे इस प्रश्न को धार्मिक और सामाजिक नही समझते थे, इसे केवल आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से ही देखते थे। हरिजन-

मेवक-सघ और गाधीजी के प्रयत्नो का उद्देश्य उनकी राजनीतिक और आर्थिक उन्नति मे वाधा डालना तो था ही नही—सच तो यह कि पूना के समझौते मे उनको प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओ मे इतनी जगहे मिल गयी थी जितनी मि० मैकडोनल्ड ने भी नही दी थी। और किसी प्रकार का वास्तविक विरोध था भी नही पर उनके दिल मे सन्देह था और उसका कोई उपाय न था। जब काम जोरो से चलने लगा तो वहुतेरो का सन्देह कुछ हद तक दूर हुआ, पर उसने इतनी गहरी जड पकड ली थी कि पीछे वह फिर स्पष्ट हो गया। उनमे जो शिक्षित थे और देश-विदेश की वाते समझ सकते थे, वे यह भी देखते थे कि जो शासन-विधान बनने-वाला है उसमे वोट देनेवालो को अधिकार मिलेगा, और इसलिए अपनी सख्या पर ध्यान रखकर उससे पूरा लाभ उठाना चाहते थे। इसकी कोई शिकायत भी नही कर सकता था, पर इसके लिए अछूतपन दूर करने के प्रयत्न को ढोग समझना बिल्कुल गलत था। सवर्ण हिन्दुओ मे भी कुछ ऐसे जरूर थे जो उनके इस रुख से वहुत असन्तुष्ट हो गये और समझने लगे कि राजनीतिक अधिकार से व्यक्तिगत लाभ उठाने के लिए कुछ पढे-लिखे लोगो का ही यह विरोध है। जो हो, विरोध का रूप क्रियात्मक नही हुआ, केवल मन्तव्यो और वयानो द्वारा ही जहाँ-तहाँ प्रकाशित होता रहा।

दूसरी वाधा कॉग्रेसी लोगो मे से भी कुछ की ओर से पडने लगी। यह तो जाहिर है कि जिस समय गाधीजी ने अनशन आरभ किया, सत्याग्रह चल रहा था, गवर्नमेण्ट जोरो से दमन कर रही थी। उन लोगो का कहना था कि ऐसे समय मे महात्माजी ने इस झगडे को खडा करके जनता का ध्यान सत्याग्रह की ओर से खीचकर एक सामाजिक प्रश्न पर केन्द्रित कर दिया—देश के लिए यह समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ लडने का था, न कि हिन्दू-समाज की हजारो वरस की बुराई को दूर करने का। वे लोग समझते थे कि इस तरह यह सत्याग्रह कमजोर कर दिया गया, कॉग्रेस के कुछ कार्यकर्त्ता अछूतोद्धार के काम मे लग गये, कुछ तो वाजाब्ता हरिजन-सेवक-सघ के पदाधिकारी वनकर अपना सारा समय उसी मे देने लग गये। यद्यपि यह वात ठीक थी कि ध्यान उस ओर खिच गया ओर कुछ काम करनेवाले भी हरिजन-सेवा मे लग गये, तथापि यह विचारणीय है कि जो लोग सत्याग्रह का काम छोडकर इसमे आ सके थे, उनमे थोडे ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का काम करने के लिए तैयार थे—किसी न किसी कारण से उनमे से वहुतेरे अव उस काम मे अलग होना ही चाहते थे, और वे यदि इस काम मे लगे भी तो इससे सत्याग्रह-सम्बन्धी काम उन्होने छोडा नही, यदि यह काम न होता तो भी वे सत्याग्रह छोडनेवाले ही थे। यह भी एक वात है कि हरिजन-सेवक-सघ मे काम करनेवालो मे ऐसे लोगो की वहुत वडी सख्या थी जो काग्रेस और सत्याग्रह मे नही काम करते थे। इसके सवसे वडे और उत्कृष्ट उदाहरण तो उस सघ के सभापति सेठ घनश्यामदास विडला और मत्री श्री ठक्कर वप्पा ही है।

जो हो, काग्रेसी दल मे इस प्रकार का असन्तोष पैदा हुआ। जो लोग इस

विचार के थे वे यह नही देख पाते थे कि हमारे देश मे विदेशी राज्य का मुख्य और मूल कारण हमारी कमजोरियाँ है जो हमारे समाज मे अथवा व्यक्तिगत रूप से हममे घर कर गयी है। गाधीजी ने आरभ से ही, इन कमजोरियो को दूर करने के लिए ही, रचनात्मक काम पर इतना जोर दिया है। हम जैसे-जैसे आगे बढते है, इन कमजोरियो को महसूस करते है और देखते है कि इनकी वजह से हमारी गाडी कदम-कदम पर रुक जाती है। यदि इस कमजोरी को हम दूर कर सके—करोडो भाइयो और बहनो को इनका शिकार होने से बचा सके, तो यह बहुत बडी सेवा होगी। इससे स्वराज्य भी, यदि वह सच्चा है और सबके लिए एक तरह होनेवाला है, नजदीक आ जाता है। मै तो हमेशा रचनात्मक कार्य्यक्रम का कायल रहा हूँ और यथासाध्य अपनी ओर से प्रयत्न भी करता रहा हूँ, पर यह बात कॉंग्रेस के सभी लोगो की नही है। दो विचार-धाराओं का विरोध और टक्कर है। कौन कह सकता है कि कौन-सा विचार ठीक है। हम इतना ही कह सकते है कि हम अपने विचार को दृढता और विश्वास के साथ ठीक मानते है। हम यह भी समझते है कि ऐसा न मानने से ही हमारी बाधाओ को दूर करने का उतना जबरदस्त प्रयत्न नही किया जाता जितना किया जाना चाहिए और इसीलिए वे दूर नही हो रही है।

इन अनपेक्षित विरोधो के अलावा कट्टर सनातनी लोगो का विरोध तो था ही। उसका प्रदर्शन कुछ दिनो के बाद देखने मे आया जब गाधीजी दौरे पर निकले। कई जगहों मे उन पर हमले किये गये। पूना मे ही, जहाँ इस सारे आन्दोलन के उग्र रूप का जन्म हुआ था, सार्वजनिक सभा मे जाते समय गाधीजी पर बम फेका गया। विहार-जैसे गाधी-भक्त और श्रद्धालु सूबे मे भी गाधीजी की मोटर पर लाठियो के प्रहार हुए। यह काण्ड देवघर-वैद्यनाथ-धाम मे हुआ था, जहाँ मोटर के 'हूड' के कारण ही बापू चोट से बचे, मोटर की छत तो लाठियों से चूर ही हो गयी। आज, इतने दिनों के बाद, जब सारी बातो पर मै विचार करता हूँ तो मुझे मालूम पडता है कि जो हुआ और किया गया, सब ठीक ही था। इस कुप्रथा के दूर होने मे सफलता भी काफी मिली है, यद्यपि अभी हम यह नही कह सकते कि इसमे हम पूरे सफल हुए है। वास्तव मे अभी बहुत सफर करना रह गया है। पर जब हम यह याद करते है कि हजारों बरसो की रूढि—जो हमारी नस-नस मे समा गयी है, जिसका हमारे धर्म के साथ एक प्रकार का अविच्छिन्न सम्बन्ध-सा जुट गया है—कितनी जबरदस्त है, तो जो प्रगति इसमे अब तक हुई है वह कम नही जान पडती। कुछ और धक्के लगेंगे और यह पुरानी दीवार गिर जायगी। काम करनेवालो को विश्वास और दृढता के साथ काम करते रहने की जरूरत है।

९९—प्रयाग का एकता-सम्मेलन

दिल्ली मे नव-स्थापित हरिजन-सेवक-सघ की बैठक हुई। यद्यपि मै उसकी कार्य्य-कारिणी का सदस्य नही था, तथापि बुलाया गया। मै दिल्ली गया। दुर्भाग्य-

बग मुझे ज्वर हो गया। दमे का दौरा भी शुरू हो गया। मुझे वहाँ कई दिनो तक ठहर जाना पडा। उन दिनो दिल्ली मे श्री ठक्कर बप्पा बिडला-मिल्स म नजी मडी मे, ठहरा करते थे। मै भी वही ठहरा था, पर जब तबीयत कुछ ज्यादा खराब मालूम पडी तो श्री घनश्यामदास बिडला ने मुझे नयी दिल्ली के बिडला-हाउस मे, जहाँ वह खुद रहते है, बुला लिया। कलकत्ते मे जो होमियोपैथी इलाज मैने शुरू किया था, अभी तक उसे ही यथासाध्य जारी रखता आया था। इसलिए वहाँ भी होमियोपैथी इलाज ही कराया। डाक्टर युद्धवीरसिंहजी अच्छे होमियोपैथ डाक्टर है और कॉंग्रेसी भी है। उन्ही की दवा हुई थी। फायदा भी हुआ। अभी कुछ अच्छा हो ही रहा था कि खबर मिली, इलाहाबाद मे युनिटी-कान्फ्रेन्स (एकता-सम्मेलन) होने जा रहा है। उसमे शरीक होने के लिए मै भी बुलाया गया। मै दिल्ली से सीधे प्रयाग चला आया।

इस सम्मेलन मे मुख्य-मुख्य हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई नेता शरीक हुए थे। कॉंग्रेसी लोग तो अधिकतर जेल मे ही थे। पर जो बाहर थे वे बुलाये गये थे। मौलाना शौकत अली और मौलाना जफर अली भी शुरू मे ही आ गये। कुछ दिनो के बाद मौलाना शौकत अली किसी काम से चले गये। पर दूसरे लोग बराबर भाग लेते रहे। मि० मैकडोनल्ड का फैसला तो निकल ही चुका था। उसमे प्राय सभी मॉंगे, जो मुसलमानो की ओर से पेश की गयी थी, मान ली गयी थी। एक चीज यह रह गयी थी कि केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा मे मुसलमानो की सख्या एक-तिहाई होनी चाहिए और सिन्ध को एक अलग सूबा बना देना चाहिए। इन विषयो पर अभी फैसला नही हुआ था। कान्फ्रेन्स का काम बहुत लम्बा बढ गया। प्राय तीन हफ्तो तक हम लोग प्रतिदिन सवेरे से दोपहर तक बैठते थे और फिर सेपहर से रात के प्रायः ८-९ बजे तक बैठा करते थे। बैठके डा० कैलाशनाथ काटजू के निवास-स्थान पर, उनके मकान के बडे हाल मे, हुआ करती थी। आपस मे हर बात पर बहुत बहस होती। जो कुछ मुसलमानो की ओर से कहा जाता अथवा जो कुछ उन्हे मैकडोनल्ड-फैसले से मिला था, सबकी माग सिखो की ओर से होती। यदि मुसलमानो को वायसराय की कौन्सिल मे जरूर जगह मिलनी चाहिए तो सिखो को भी अवश्य ही। यदि मुसलमानो के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्र है तो सिखो के लिए भी जरूर चाहिए। इस तरह सभी बातो पर बहुत जोरदार बहस होती। सिखो और मुसलमानो मे बारीकी और उलझन ढूँढ निकालने की होड-सी लग गयी थी। पर लोगो के मिजाज मे गर्मी या तुर्शी नही होती थी। इतने दिनो की गरमागरम बहस मे दो-तीन ही ऐसे मौके आये जब किसी ने कुछ आवेश मे आकर कोई कडी बात कह दी अथवा वहा से उठकर चले जाने की तैयारी दिखलाई। मालवीयजी के धैर्य्य की सीमा नहीं थी। दूसरे लोग तो बहस से थक जाते थे, चाहते थे कि कुछ भी तय हो जाय अथवा जिस बात पर एक-मत न हो उसे छोडकर अन्य बातो पर विचार किया जाय, पर मालवीयजी छोडते ही नही थे। आखिर बहुत-सी बातो पर एकमत

हो भी गया। पर इस बात पर एकमत नही हो सका कि केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा मे मुसलमानो के लिए एक-तिहाई जगहे सुरक्षित रहनी चाहिए। इसमे हिन्दुओं की ओर से सब मे तीस जगहे देने की बात कही गयी। कई दिनो तक बाते करने के बाद सब मे एकतीस वा बत्तीस तक जगहे देने की रजामन्दी जाहिर की गयी, पर ३३⅓ तक अभी नही पहुँचे थे। उसी तरह सिन्ध के अलग सूबा बनाने के बारे मे भी एक-मत नही हो सका था। पर मालूम होता था कि इसमे रजामन्दी शायद हो भी जाय।

अन्त मे राय ठहरी कि जो दो-तीन बाते इस तरह की अनिश्चित रह गयी है उनके सम्बन्ध मे एक सप्ताह के बाद कलकत्ते मे फिर सब लोग मिले और वही अन्तिम निर्णय किया जाय। मैकडोनल्ड-फैसले मे यह बात थी कि वह फैसला रद कर दिया जायगा यदि हिन्दू, मुसलमान और दूसरे लोग आपस मे मिलकर कोई दूसरा समझौता कर लेगे। इसी शर्त के कारण अस्पृश्य लोगो के अलग निर्वाचन-क्षेत्र को, पूना का समझौता हो जाने पर, मि० मैकडोनल्ड ने हटा दिया। यह सम्मेलन इसी आशा से किया गया था कि आपस का समझौता यदि हो जायगा तो जो कटुता मैकडोनल्ड-फैसले से पैदा हुई थी वह दूर हो जायगी। पर हम लोग अभी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के हथकडो को नही समझ पाये थे। जब बहुत बातो मे एक-मत हो गया और ऐसा मालूम हुआ कि अब केवल केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा की जगहो की बात ही रह गयी है और वह भी शायद कलकत्ते मे तय हो जायगी, ठीक उसी समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने इँगलैंड से एक विज्ञप्ति निकाल दी। हम लोग कलकत्ते जा रहे थे और रास्ते मे रेल पर ही यह विज्ञप्ति देखने को मिली। इसमे केन्द्रीय असेम्बली मे एक-तिहाई जगह की माँग मजूर कर ली गयी थी! जिस चीज पर हम इतनी बहस कर चुके थे तथा जिस पर एक बार और विचार करने के लिए हम कलकत्ते जा रहे थे, वह सरकार ने ठीक इसी अवसर पर दे दी! हम समझ गये कि अब इस सम्मेलन का काम समाप्त हो गया! ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मैकडोनल्ड-फैसले को किसी तरह बदलना नही चाहती है। उसके कायम रहने से ही आपस के झगडे कायम रहेगे। वह अगर हमारे समझौते के कारण रद कर दिया गया और उसके स्थान पर हमारा आपस का समझौता रह गया, जिसे सभी मानने के लिए नैतिक रूप से भी बाध्य होगे, तो फिर ब्रिटिश राज्य को तीतर-बटेरो-जैसी लड़ाई कराने और देखने का मौका नही मिलेगा, और न बिल्लियो की लडाई मे बन्दर को दोनो के हिस्से खाते रहने का ही सुअवसर प्राप्त होगा। इसलिए, यह अवसर उस फैसले की एक कमी की पूर्ति के लिए ठीक उपयुक्त समझा गया और वह तुरन्त घोषित कर दिया गया। सम्मेलन समाप्त हो गया!! हम कलकत्ते मे मिले, पर इस मिलने मे कुछ तथ्य नही था।

सम्मेलन का इतना अच्छा असर सारे देश पर पडा था कि सभी लोग आशा लगाये हुए थे कि अब मामला तय होकर ही रहेगा। इसकी खबर पाकर अलवर के महाराज प्रयाग आ गये थे। उनकी तथा प० मालवीयजी की इच्छा थी कि सम्मेलन

के अन्तिम अधिवेशन मे, जो खुलेआम सभा के रूप मे होगा, वह भी वोले। वह सभा हुई भी जिसमे वताया गया कि सब वाते तय हो गयी है और जो दो-एक वात रह गयी है वह भी तय हो जानेवाली है। महाराज का भी अच्छा भाषण हुआ। पीछे जो उनके साथ व्यवहार हुआ उससे मालूम हो गया कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मे वह जितना असन्तुष्ट थे उससे भी अधिक ब्रिटिश गवर्नमेण्ट उनमे असन्तुष्ट थी। थोडे ही दिनो के वाद वह गद्दी से उतारे गये। कुछ दिनो के वाद उन्होने इंगलैंड मे आत्महत्या कर ली।

उस सभा तक हम लोग यही समझ रहे थे कि इस सम्मेलन के द्वारा हम एकता कायम कर लेंगे। मुझे इस सम्मेलन मे एक वात से तो आशा हुई, मैंने देखा कि वहुत वातो मे एकमत हो गया। पर वहस से मैं भी कभी-कभी ऊव जाता था, यद्यपि मै वहस मे वहुत कम योग देता था। कभी-कभी तो मै ऐसा अनुभव करता था कि छोटी वातो को लेकर हम आपस में जल्दी एकमत नही हो सकते थे। ३२ और ३३⅓ मे वहुत थोडा ही फर्क है, पर हम इसको भी न सुलझा सके। इसके लिए सम्मेलन को स्थगित करना पड़ा, जिसका नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने लकडी मार दी और इस गिरह का सुलझना असभव-सा हो गया।

१००—मेरी दुबारा गिरफ्तारी और बिहार की युनाइटेड पार्टी

कलकत्ते मैं गया एकता-सम्मेलन के काम से, पर वहाँ कुछ ठहर जाना पडा। मैंने वहाँ आन्दोलन के लिए भी कुछ काम कर लिया। उन दिनो रुपये की जरूरत थी। इस जरूरत को पूरा करने मे मैंने कुछ हाथ वटा लिया। लोगो मे आन्दोलन के प्रति उत्साह और श्रद्धा थी, पर लोग वहुत डर गये थे। इसलिए कोई धनी आदमी खुल्लम-खुल्ला मदद करने को तैयार नही था। पर चुपचाप पैसे देनेवाले वहुत थे। मैं इसका एक वहुत ही अच्छा उदाहरण यहाँ वता देना ठीक समझता हूँ। जव मैं वनारस मे ठहरा हुआ था, एक दिन कही जाते समय, सडक पर एक पुराने परिचित मित्र से मुलाकात हो गयी, जो गाधीजी के यहाँ आया-जाया करते थे। उन्हे देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वहाँ उन्होने मुझसे इतना ही जान लिया कि मैं वावू शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ ठहरा हूँ। वह आकर मुझसे मिले। उन्होने कहा—सुना है कि आन्दोलन मे रुपयो की जरूरत है और यह जरूरत मद्रास तथा विहार मे विशेष महसूस हो रही है। मैंने कहा, रुपयो की जरूरत तो है ही। रुपये वह साथ लाये थे। आज मुझे ठीक स्मरण नही है, पर अखिल भारतीय काम के लिए आठ या दस हजार के नोट मेरे हाथो मे उन्होने रख दिये। मैं वहुत कृतज्ञ हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार रुपयो को जहाँ-तहाँ भिजवा दिया। इसी तरह लोगो की मदद कलकत्ते मे भी मिली। कलकत्ते से मैं पटने वापस आ गया।

मुझे जेल से निकले प्राय छ महीने वीत चुके थे। दिन वीतते देर नहीं लगती। इसी वीच मे दो वार वीमार पडा, गाधीजी के उपवास और पूना के सम-

झोते के समय वहाँ हाजिर रहा, हरिजन-सेवक-सघ-सम्बन्धी यात्राएँ और सभाएँ की, प्रयाग के एकता-सम्मेलन के लम्बे अधिवेशन मे काम करना और फिर कलकत्ते मे उसी के लिए आना पडा। यह सब करता हुआ भी मै बराबर महसूस किया करता था कि मुझे बाहर नही रहना चाहिए। मै ही काँग्रेस का सभापति अथवा डिक्टेटर समझा जाता था और उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार अपनी जगह पर किसी को मनोनीत करना था। प्रयाग मे एकता-सम्मेलन समाप्त होने के समय ही मैने सोच लिया था कि अब मै कलकत्ते से लौटकर ही जेल-यात्रा कर दूँगा। वहाँ पर राजाजी और श्री अणे भी थे। उनसे मैने सलाह ली और राजाजी को मनोनीत करना चाहा। पर उन्होने अभी कुछ देर तक हरिजन-सेवा का काम और करने की इच्छा प्रकट की। आपस की राय के बाद मैने श्री अणे को मनोनीत कर दिया। मेरी गिरफ्तारी के बाद वही डिक्टेटर हुए।

कलकत्ते से लौटकर मै पटने मे उपयुक्त दिन की इन्तजारी कर रहा था। बडे दिन की छुट्टियाँ आ गयी थी। मैने सोच लिया था कि ४ जनवरी (१९३३) को मै किसी तरह गिरफ्तार हो जाऊँगा। ४ जनवरी को ही १९३२ मे गवर्नमेण्ट ने गाधीजी को गिरफ्तार करके दमन शुरू किया था। उसकी यादगार मे इस वर्ष भी सभी जगहो मे एक विज्ञप्ति कॉग्रेस की ओर से पढी जानेवाली थी। इसी बीच मे एक दिन श्री कृपालानी, जो बाहर थे, मुझसे मिलने आये। वह कुछ रुपयो के बन्दोबस्त के लिए ही आये थे। जो कुछ कलकत्ते मे हुआ था, मैने उनको बतला दिया। किसी मित्र के नाम से, जो मुझे याद नही है, उनको एक पत्र भी दे दिया। वह उस पत्र को लेकर जा रहे थे। पटना-स्टेशन पर वह गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी होते ही उन्होने पत्र को फाडकर फेक दिया। पर पुलिस ने टुकडो को एकत्र कर साट करके पूरा पत्र फिर तैयार कर लिया। उन पर मुकदमा चला। वह बॉकीपुर-जेल के अन्दर ही पेश हुआ। मै भी पेशी मे मुकदमा देखने गया। मुकदमा समाप्त होने पर मै बाहर निकला। अपनी सवारी पर ज्यो ही सवार होना चाहता था कि पुलिस अफसर ने आकर मुझे खबर दी कि मुझे भी यहाँ रह जाना चाहिए। मै तुरत फिर फाटक के अन्दर दाखिल हुआ। कृपालानीजी और बाबू मथुराप्रसाद पहले ही से वहाँ आ गये थे—मथुरा बाबू ४ जनवरी की घोषणा पढने के लिए। मै भी उनका साथी हो गया। एक-दो दिनो के बाद मुझ पर भी मुकदमा चला। मथुरा बाबू को १८ महीने, कृपालानीजी को छ महीने और मुझे १५ महीनो की सजा हुई। मुझे आश्चर्य्य हुआ कि मुझे १५ महीने क्यो मिले, जब मथुरा बाबू को अठारह महीने दिये गये। मैने मजाक मे मजिस्ट्रेट से पूछा भी। यह वही पूर्व-परिचित मजिस्ट्रेट थे जिन्होने मुझे छपरे मे सजा दी थी और जो मेरी वकालत के समय के मेरे पुराने मवक्किल भी थे। खैर, चन्द दिनो के बाद हम लोग हजारीबाग पहुँचा दिये गये।

हजारीबाग मे फिर उसी तरह पढने और चर्खा चलाने मे समय बीतने लगा। खाँ साहब दोनो भाई अभी तक वही थे। कुछ दिनो के बाद अखबारो से पता चला

कि गाधीजी को हरिजनो के सम्बन्ध मे लिखने की जो सुविधा मिली थी वह बन्द कर दी गयी, इसलिए उन्होने अनशन कर दिया, अन्त मे सरकार को सुविधा देनी पडी और उनको छोड देना भी पडा। बाहर निकलकर उन्होने देश की परिस्थिति देखी। उन्होने हरिजनो के प्रति सवर्ण हिन्दुओ की ओर से प्रायश्चित्त और उनके कर्तव्यो को जताने के लिए २१ दिनो का उपवास किया। इससे हम लोग बहुत चिन्तित हुए! वहाँ प्रतिदिन हम लोग प्रार्थना करते। यो तो सध्या के समय, ठीक कोठरी बन्द होने के पहले, सामूहिक प्रार्थना हम लोग बराबर करते ही थे, पर इस उपवास के दिनो मे और भी अधिक प्रार्थना होती। कोई गीता-पाठ करता, कोई रामायण की आवृत्ति करता, कोई केवल फल खाकर रहता। अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार बहुतेरो ने कुछ न कुछ आत्मशुद्धि के लिए वहाँ किया। जिस दिन यह २१ दिनो का व्रत निर्विघ्न समाप्त हुआ, उस दिन हम लोगो ने इकट्ठे होकर विशेष प्रार्थना की और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

इस उपवास के असर से अच्छे हो जाने के बाद गाधीजी ने ऐसे कांग्रेसियो की सभा की, जो बाहर थे। उसमे देश की परिस्थिति पर बहुत विचार-विमर्श हुआ। उस समय प० जवाहरलालजी भी बाहर आ गये थे। हम लोगो को पूरा पता तो नही चला; क्योकि उन दिनो अखबार भी हमे नही मिलते थे—केवल 'स्टेट्समैन' का विदेशो के लिए प्रकाशित साप्ताहिक सस्करण ही मिला करता था। पर कोई न कोई बाहर से नया गिरफ्तार होकर आ ही जाता था और उससे कुछ न कुछ पता लग जाता था। हम लोगो ने चाहे 'स्टेट्समैन' मे पढा अथवा किसी ने बाहर से वहाँ पहुँचकर कहा कि सत्याग्रह का रूप व्यक्तिगत कर दिया गया है। सभी सूबो मे फिर से कुछ जागृति हुई। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से फिर जेलो मे गये। इसमे बिहार ने अच्छा उत्साह दिखलाया। यहाँ छ-सात सौ से अधिक लोग गिरफ्तार हुए। पर हम लोगो को ऐसा भी मालूम होने लगा कि लोगो मे कुछ सुस्ती आ गयी है। जनता ने इस सत्याग्रह मे भी पूरा उत्साह दिखलाया था और यह सुस्ती आरभ के प्राय अठारह महीनो के बाद देखने मे आयी। मेरा अपना खयाल था कि इसके कारणो मे एक कारण यह भी था कि काम करनेवाले कुछ छुपकर काम करने लगे। सत्याग्रह मे जनता की श्रद्धा तभी तक बनी रहती है जब तक काम करनेवाले, विशेषकर मुख्य काम करनेवाले, हिम्मत से अपने ऊपर गवर्नमेण्ट की मार झेलते रहते है अथवा झेलने के लिए तैयार रहते है। जब मुख्य काम करनेवाले, आन्दोलन को चलाने के लिए अपनी हाजिरी जरूरी समझ, बाहर रह जाते है—कुछ सरकारी दमन से बचने या भागने के लिए नही, तब भी लोगो की कुछ धारणा जरूर हो जाती है कि यह अपने को बचा रहे है। इससे जनता मे त्याग का उत्साह कम होने लगता है।

जब गवर्नमेण्ट ने बहुत सख्ती के साथ दमन करके कांग्रेस के लिए न मकान रहने दिया, न पैसे और न खुले तौर पर काम करनेवाले, तब कुछ लोगो ने सगठन

को बनाये रखने के लिए छुप करके ही काम करना शुरू कर दिया। उन्होने काम भी किया और कॉंग्रेस के सगठन को टूटने भी नही दिया। प्राय सभी प्रान्तो की प्रान्तीय कमिटियाँ काम करती रही और उसी तरह जिलो मे भी कमिटियो के प्रतिनिधि काम करते रहे। यह शृंखला टूट नही सकी। अखिल भारतीय कमिटी के आदेश और मन्तव्य सभी प्रान्तों मे पहुँचते रहे और उनके अनुसार थोडा-बहुत काम भी होता रहा। पर साधारण जनता मे, जिनमे से नये कार्यकर्त्ता और सत्याग्रही मिलते, उत्साह कम होने लगा। छुपकर काम करने का असर अन्तत अच्छा नही हुआ। सत्याग्रह की लडाई इस सम्बन्ध मे अन्य लडाइयो से विभिन्नता रखती है। इसमे नेताओं को ही आगे रण मे कूदना पडता है—अपने को ही उन्हे सबसे पहले आग मे झोंकना पडता है। आजकल की शस्त्र की लडाई मे जनरल आगे नही जाता—बहुत करके तो वह लडाई के मैदान मे भी नही जाता—वह पीछे से ही सेना का सचालन करता है। सेना भी यह आशा रखती है कि जनरल पीछे रहकर अपने को सुरक्षित रखता हुआ सेना का सचालन करेगा। इसलिए उसके पीछे रहने से भी सेना पर बुरा प्रभाव नही पड़ता। पर सत्याग्रह मे सेना भी आशा रखती है कि सरदार ही सबसे आगे जूझेगा। इसलिए इसमे उसके पीछे पडने से सेना मे स्वाभाविक असन्तोष और कमजोरी आ जाती है। ऐसा ही १९३३ मे भी हुआ।

जब मैं बाहर था, १९३२ मे एक बात इस सूबे मे हुई। गोलमेज-कान्फ्रेन्स वगैरह की कार्रवाइयों से इतना निश्चित जान पडता था कि कुछ न कुछ शासन-विधान मे सुधार तो होगा ही और चाहे वह सुधार कॉंग्रेस को सन्तुष्ट करे या न करे, नये चुनाव तो होगे ही, जिनमे जनता को भाग लेना पडेगा। बिहार ही क्या, सारे देश मे किसानों की ही बडी सख्या है। उनके हाथों मे बहुत वोट होगे। कॉंग्रेस का उनमे पूरा प्रभाव था। इसका प्रदर्शन १९२३ और १९२६ के चुनावो मे हो चुका था। १९३० और १९३२-३३ के सत्याग्रह के बाद वह प्रभाव बढा ही था, घटा नही था। यह समझ करके बिहार के गवर्नर ने बिहार के जमीन्दारो को किसानो मे सगठन करने के लिए प्रोत्साहन दिया था। जाहिर था कि किसानो का झगडा अभी जमीन्दारो के साथ ही हुआ करता था। इसलिए उन्होने एक नयी पार्टी बनायी जिसमे किसानो को भी मिलाने का प्रयत्न किया गया। पार्टी का नाम 'युनाइटेड पार्टी' पडा। उन लोगो की इच्छा थी कि जब तक कॉंग्रेसवाले लड रहे है, हम लगान-कानून मे कुछ ऐसी तब्दीली करेगे जिससे किसानो को कुछ सहूलियत मिल जाय और इस तरह उनको मिला लेगे—जब नया चुनाव आवेगा और कॉंग्रेस उसमे भाग लेगी, तो यह युनाइटेड पार्टी इतनी मजबूत हो गयी रहेगी और किसान इसका इतना साथ देते रहेगे कि कॉंग्रेस मुकावला नही कर सकेगी।

इस पार्टी के नियम कुछ बुरे नही थे, यद्यपि कॉंग्रेस की निगाह मे वे काफी नही थे। इसने भी अपना उद्देश्य (औपनिवेशिक स्वराज्य) मान लिया और जिस तरह के प्रस्ताव लिबरल फेडरेशन मे हुआ करते है उस तरह के कुछ प्रस्ताव भी किये।

विहार मे कॉंग्रेस के अलावा कोई दल नही था, एक तरफ था सरकार या उसके मददगारो का दल और दूसरी तरफ कॉंग्रेस या सरकार से लडनेवालो का दल, लिवरल जैसे वीच के विचार रखनेवाला कोई दल नही था। इस पार्टी के लोगो ने मेरी भेट और वातचीत भी हुई थी। मैने समझ लिया था कि यह प्रयत्न कांग्रेस का प्रतिद्वन्द्वी दल खडा करने के लिए किया जा रहा है और इसमे गवर्नर का भी इशारा है। तो भी मेरे मन मे एक क्षण के लिए भी यह सन्देह न हुआ कि यह दल कांग्रेस का मुकावला कर सकेगा। कॉंग्रेस का प्रभाव उसकी सेवा और त्याग के कारण है। इस पार्टी मे वह बात नही हो सकेगी। मै यह भी समझता था कि जो पार्टी चुनावो मे जगह लेने को ही मुख्य उद्देश्य मानकर बनायी जा रही है उसमे आपस के झगडे हुए बिना भी न रहेगे, क्योकि पार्टी के अन्दर उमीदवारो की सख्या जगहो से कई-गुना अधिक हो जायगी। इसके अलावा आपस की प्रतिद्वन्द्विता भी होती रहेगी। इसलिए मुझे इसका डर नही था कि यह पार्टी कॉंग्रेस का मुकाबला कर सकेगी। मैने यह भी समझा कि यदि एक ऐसी बीचवाली पार्टी हो जाय तो कुछ बुरा भी न होगा, क्योकि जब कभी गवर्नमेण्ट से लडाई करने मे कॉंग्रेस बझ जाती है तो रचनात्मक काम करनेवाला भी कोई नही रह जाता। शायद इस पार्टी से मौके पर देश की कुछ सेवा हो सकेगी। मैने यह भी सोचा कि यदि यह किसानो को अपनी ओर से कुछ सहूलियत दे भी देगी तो उससे किसानो को लाभ ही पहुँचेगा—फिर जब कॉंग्रेस के साथ इसका मुकावला होगा तो किसान केवल कॉंग्रेस का ही साथ देगे और स्वराज्य की बात को नही भूलेगे। इसलिए मै इस पार्टी के सगठन से बिलकुल निश्चिन्त था। इसके मुख्य काम करनेवालो से बाते हुई तो मैने अपने विचार भी कह दिये। उन्होने इच्छा प्रकट की कि मै इस सम्बन्ध मे एक वक्तव्य प्रकाशित कर दूँ। मै राजी हो गया। एक छोटा वक्तव्य मैने पत्रो मे दे दिया। उसमे इतना ही लिखा कि यह पार्टी यदि अपने प्रकाशित उद्देश्यो के अनुसार काम करती रहेगी तो मै आशा रखता हूँ कि इससे देश का भला ही होगा, बुरा नही।

इस वक्तव्य की खबर हजारीबाग मे मित्रो को मिल गयी थी। कुछ लोग इससे असन्तुष्ट हुए। वहाँ मेरे पहुँचने पर इस सम्बन्ध मे बाते हुई। मैने अपने विचार बता दिये। पर शायद वे सन्तुष्ट न हुए। हम लोग वही थे जब इस पार्टी की ओर से लगान-कानून मे कुछ सशोधन की बात चल पडी। मै तो यह सब जानता ही था और जान करके भी निश्चिन्त था। पर कुछ मित्र इससे और घबराये। वे सोचने लगे, इस तरह पार्टी अपना प्रभाव किसानो मे जमा लेगी। उनका विचार हुआ कि इसका विरोध होना आवश्यक है। कॉंग्रेस तो जेल मे थी और गैर-कानूनी रास्था भी बना दी गयी थी, इसलिए किसान-सभा ही विरोध कर सकती थी। शायद पहले की ही सभा थी जो कॉंग्रेस के जोर के कारण कुछ विशेष काम नहीं कर रही थी। उसे कुछ लोग पुन जीवित करने का प्रयत्न कर रहे थे। वहाँ से उन लोगो को प्रोत्साहन के सन्देश भेजे गये। स्वामी सहजानन्दजी से विशेष अनुरोध किया गया

कि वह किसान-सभा का सगठन करके लगान-कानून के सुधार के प्रस्ताव का विरोध करावें। मैं इसको गैर-जरूरी समझता था। कारण ऊपर बता चुका हूँ। पर मैं इसका विरोध नहीं कर सकता था। मैं चुप रहा। व्रजकिशोर बाबू भी किसान-सभा-जैसी एक दूसरी सस्था की जरूरत नही समझते थे। पर उन्होंने बाहर रहकर भी और मैंने भीतर से इसका विरोध नही किया। इस तरह किसान-सभा का जबरदस्त सगठन हम लोगों की गैर-हाजिरी मे ही होने लगा। लगान-कानून-सुधार का विरोध सख्ती से होने लगा। पहले के कुछ किसान-सभा के प्रमुख कार्य्यकर्त्ता इस किसान-सभा का विरोध और सुधार का समर्थन जोरो से करने लगे। यह बात एक-डेढ बरस तक चलती रही। जेल से हम लोगो के छूटने तक यह तय नही हुई थी।

१०१—मेरी बहुत सख्त बीमारी

मैं १९३३ की जुलाई के पहले सप्ताह मे बीमार पड गया। कुछ खासी शुरू हो गयी। शायद अचानक ठढ लग जाने से ही ऐसा हुआ। पहले तो हमने समझा कि यह मामूली खाँसी है, जल्द आराम हो जायगी। पर यह कम न होकर दिन-दिन बढती गयी। दमा भी जोर पकड गया। एक बार तो इतने जोर से उठा कि प्राय दो दिनो तक मैं बहुत परेशान रहा। उसके बाद सुई दी गयी। दम कुछ कम हुआ और तब कुछ खाने के लिए मैं बैठा। जैसे ही चमच मे लेकर दूध और रोटी का टुकडा मुँह मे दिया कि फिर दम बहुत जोरो से शुरू हो गया और सास इस तरह घुटने लगा कि मानो प्राणान्त हो जायगा। मैं बेहोश-सा हो गया। जेल-डाक्टर ने आकर कुछ सुँघाया, तब होश हुआ। उसके बाद बहुत जोर मल (ऑव) पड गया। दिन मे चौबीस-पच्चीस बार दस्त होने लगा। कमजोरी बहुत बढ गयी। शरीर बहुत दुर्बल हो गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गवर्नमेण्ट को लिखा, यह पटना-अस्पताल मे दवा के लिए भेजे जायँ। पहले इस पर कुछ खयाल नही किया गया। भाई साहब को खबर मिली। वह घबराकर वहाँ पहुँचे। मेरी हालत देखकर बहुत चिन्तित हुए। राची गये। कुछ मित्रो से मिले। अन्त मे गवर्नमेण्ट का हुक्म मुझे पटने भेजने के लिए हुआ। यह हुआ सितम्बर के पहले सप्ताह मे, बीमारी शुरू होने के दो महीने बाद। हुक्म यह था कि मैं पटना-जेल भेजा जाऊँ और पटना-अस्पताल से बीमारी की जाँच की जाय। मुझे जब हुक्म बताया गया तो मैंने कहा कि पटना-अस्पताल मे यदि नहीं जाना है—पटना-जेल मे ही जाना है, तो बेहतर है कि यहीं रहूँ। पर मुझको बताया गया कि यही कायदा है लिखने का, इसका अर्थ यह है कि मैं अस्पताल मे भेजा जा रहा हूँ।

दूसरे दिन सवेरे किसी तरह मुझे पटने ले आये। भाई भी साथ ही आये। यहा पहले जेल मे लाकर वहाँ से फिर तुरन्त ही अस्पताल ले गये। अस्पताल मे मैं उन मकानो मे से एक मे रखा गया जिनमे रोगी भाडे देकर रहते है और जिनमे थोडी जगह घर के बाल-बच्चो के रहने की भी होती है। मेरी भौजाई, पत्नी और

नोकर भी साथ रहने लगे। डाक्टर बनर्जी ने मेरे पहुँचते ही जाँच की। हालत खराब देख तुरन्त अपनी चिकित्सा आरम्भ कर दी। डाक्टर रघुनाथशरण तथा दूसरे डाक्टर भी जो पहले से मुझे जानते थे, आया-जाया करते थे। पुलिस का पहरा रहता था, पर किसी के आने-जाने की मनाही न थी। कई दिनो तक तो हालत खराब रही, पर आहिस्ता-आहिस्ता सुधरने लगी। मल ओर ज्वर कुछ सँभाल मे आये। खाँसी भी कुछ कम हुई। अभी बीमारी गयी नही थी, उसका उग्र रूप कुछ कम हुआ था। बीमारी को दूर करने के लिए दवा अब शुरू हो रही थी कि एक दिन सेपहर को ३-४ बजे अचानक खबर मिली—गवर्नमेण्ट का हुक्म आया है कि मै तुरन्त बाँकीपुर-जेल भेज दिया जाऊँ। शायद किसी ने गवर्नमेण्ट के पास कुछ खबर दे दी थी या चुगली कर दी थी कि मेरे पास बहुत लोग मिलने आते है और मै वहाँ खाट पर पड आन्दोलन चला रहा हूँ। बात बिलकुल झूठी थी। मुझसे लोग मिलने आते थे जरूर—और वह बीमारी के कारण स्वाभाविक था, पर मैने किसी से आन्दोलन के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा था।

जो हो, अस्पताल से तुरन्त मै बाँकीपुर-जेल पहुँचाया गया। डाक्टर बनर्जी साहब खबर पाते ही आये। उनको बहुत अफसोस हुआ, क्योकि वह बीमारी का इलाज अब शुरू कर रहे थे, अब तक तो उग्र कारणो को ही कम कर पाये थे। वहाँ जो दवा इत्यादि वह दे रहे थे उसे लिखकर उन्होने एक रिपोर्ट भी साथ कर दी। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर स्ट्रिक्लेण्ड से, जो जिले के सिविल सर्जन भी थे, उनकी बाते भी हुई। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उनके ही इलाज को जारी रखने का इरादा बतला दिया। जेल मे वही दवा जारी रही। मै कुछ अच्छा तो हो ही गया था। जेल मे भी सुधार जारी रहा। अब सर्दी के दिन आ रहे थे, जब मेरी तबीयत अक्सर खराब हुआ करती है। एक दिन अचानक फिर बडे जोर का दमा शुरू हो गया। दो दिनो मे हालत बहुत खराब हो गयी। सिविल सर्जन ने बहुत प्रयत्न किया, पर कुछ सफल न हुए। हालत देखकर वह भी कुछ घबराये। उन्होने फिर गवर्नमेण्ट के पास लिखा या टेलीफोन किया, डाक्टर बनर्जी को भी मुझे देखने के लिए लाये। डाक्टर बनर्जी ने कुछ दवा दी। उस रात को मै कुछ सो सका, पर बहुत सुधार नही हुआ। अन्त मे सिविल सर्जन ने फिर गवर्नमेण्ट मे बाते करके मुझे जेल मे अस्पताल भेजने का प्रबन्ध किया। जब उन्होने मुझसे यह कहा कि गवर्नमेण्ट का हुक्म मुझे अस्पताल भेजने का आ गया, तो मैने कहा कि इस तरह जेल से अस्पताल और फिर अस्पताल से जेल आना-जाना मै नही बर्दाश्त कर सकता—जो होना होगा, यहीं होगा। इस पर उन्होने आश्वासन दिया कि इस बार जब तक डाक्टर लोग मुझे आराम करके वापस न करेंगे तब तक मै अस्पताल मे ही रखा जाऊँगा।

बात यह थी कि पहली बार के हुक्म मे केवल जाच के लिए ही अस्पताल ले जाने की बात थी, पर वहाँ डाक्टरो ने दवा करना शुरू कर दिया था, इससे गवर्नमेण्ट ने उनसे कैफियत मागी थी। पर जेल के इन्सपेक्टर-जेनरल, सिविल सर्जन

और अस्पताल के डाक्टर, सबने जवाब दिया था कि इलाज से अलग जाँच के कोई मानी नही है और हालत इतनी खराब थी कि दवा देना आवश्यक था। इस बात की रिपोर्ट डाक्टरी भाषा में गवर्नमेण्ट को दी भी गयी थी। इससे गवर्नमेण्ट का मुँह बन्द हुआ, पर तुरन्त मुझे वापस भेज देने का हुक्म निकाल दिया गया। जब जेल मे दुबारा बीमारी बहुत बढ गयी तो सबने मिलकर साफ हुक्म कराया कि आराम होने तक मै वही रखा जाऊँ। सिविल सर्जन का इशारा इसी की तरफ था जब उन्होने कहा कि मुझे आराम होने तक वही रहना होगा।

मै अस्पताल मे बहुत बुरी हालत मे पहुँचाया गया। इस बार सख्ती भी काफी थी। हुक्म था कि घर की दो स्त्रियाँ साथ रह सकती है और काम के लिए एक या दो नौकर, कोई दूसरा मिलने के लिए नही आ सकता, हफ्ते मे एक बार घर के लोगो से मुलाकात हो सकती है—वह भी पुलिस और जेल के कर्मचारी की हाजिरी मे। मुझे इसमे कोई खास तकलीफ नही थी, क्योकि मै पहले भी किसी से आन्दोलन की बाते नही किया करता था, और अभी तो इतना बीमार था कि चारपाई से उठकर कुर्सी पर भी नही बैठ सकता था। इस बार की बीमारी पहले से भी बहुत कडी थी। हजार कोशिश करने पर भी उसमे कमी नही आती थी। कभी-कभी तो ऐसा मौका आया कि सुई पर सुई देनी पडी। साँस का फूलना चार-पाँच घटो के लिए कुछ कम हो जाता, फिर ज्यो का त्यो, बस फिर सुई दी जाती। नवम्बर-दिसम्बर बहुत खराब गुजरे। यद्यपि मै बहुत बीमार पडा करता हूँ तथापि इतनी सख्त बीमारी कभी हुई नही। दिसम्बर मे अस्पताल के डाक्टरो ने गवर्नमेण्ट को लिखा कि हालत खराब है और बीमारी कब्जे मे नही आती है, रात को इतनी परेशानी रहती है कि मेडिकल कालेज के दो विद्यार्थी बारी-बारी से जागकर देखभाल करते है। पर गवर्नमेण्ट का काम जल्दी तो होता नही। अन्त मे हुक्म हुआ कि मेडिकल बोर्ड मेरी जाँच करे। इस बोर्ड मे वही डाक्टर बनर्जी थे, वही सिविल सर्जन थे और एक तीसरे थे मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल। मेरा अनुभव था कि दिसम्बर के अन्त से हर साल बीमारी का जोर कुछ कम हो जाया करता है। इस साल भी वैसा ही हुआ। जब मेडिकल बोर्ड १९३४ की जनवरी के पहले सप्ताह मे जाँच करने आया, बीमारी मे कमी आ गयी थी। सब हालत और प्रतिदिन की रिपोर्ट देखकर बोर्ड ने मुझे छोड देने की सिफारिश की। मुझसे यह कहा नही गया। एक साल से अधिक जेल मे हो चुका था—१५ महीनो की सजा थी। शायद डेढ दो महीने मीआद के बाकी रह गये थे। रिपोर्ट पर गवर्नमेण्ट ने १९३४ की १५ जनवरी को विचार किया—मुझे छोड देने का निश्चय किया। मै उस दिन भोजन करके चारपाई पर लेटा हुआ था। एक आदमी ने आकर नौकर से खबर दी कि सर गणेशदत्तसिंह ने सँदेशा भेजा है—गवर्नमेण्ट ने आज निश्चय किया है कि मै छोड दिया जाऊँ और अब एक-आध दिन मे यह हुक्म जेल की मार्फत पहुँच जायगा। नौकर ने मेरी भौजाई और पत्नी से यह कहा—फिर उन्होने मुझे खबर दी।

१०२—बिहार का प्रलयंकर भूकम्प

अस्पताल मे चारपाई पर लेटे-लेटे मै सोच रहा था—जब बीमारी का बहुत जोर था, जिस वक्त अब-तब की नौवत थी, उस वक्त तो गवर्नमेण्ट ने कुछ किया ही नही, अब जब कुछ अच्छा हो गया हूँ, स्वास्थ्य मे दिन-दिन उन्नति होने की सम्भावना और आशा है तथा मीयाद भी प्राय पूरी हो चली है, तब यह मुफ्त का अहसान मुझ पर क्यो लादा जा रहा है। बीमारी की सख्ती के दिनो मे तो घर के किसी आदमी से, भाई से भी, हफ्ते मे एक ही बार पुलिस के सामने मुलाकात हो सकती थी। सख्ती इतनी थी कि एक बार मेरी भौजाई चली गयी और मेरे भतीजे की स्त्री दो-चार दिनो के लिए सेवा करने आयी, उसका एक चार साल का बच्चा था जो उससे कही अलग नही रह सकता था, इस पर भी उज्र हुआ कि हुक्म दो आदमी के रहने का है, यह तीसरा बच्चा साथ नही रह सकता। उसे चला जाना पडा। अब क्यो यह मुफ्त का अहसान लिया जाय?

मै इसी उधेड-बुन मे लगा चारपाई पर करवटे बदल रहा था कि चारपाई हिलती हुई जान पडी। फिर मकान के दरवाजे और जँगले हिलने लगे। मुझे आभास हुआ कि मै बीमारी के कारण इतना कमजोर हो गया हूँ और इतनी देर से सोच-विचार मे लगा रहा हूँ, इसलिए मेरे दिमाग मे चक्कर आ गया है। मै यह सोच ही रहा था कि मेरी भौजाई ने दूसरे कमरे से चिल्लाकर कहा कि धरती डोल रही है। मै तुरन्त समझ गया। कहा कि सब निकल भागो। तुरन्त चारपाई से उतरकर बाहर निकल गया। सामने के मैदान मे जाकर खडा हो गया। धरती इतने जोरो से डोल रही थी कि खडा रहना कठिन था। साथ ही साथ भयानक गडगडाहट थी, सैकडो रेलगाडियो के एक साथ चलने के बराबर आवाज हो रही थी। कुछ दूसरे बीमार, जो आस-पास के मकानो मे थे और जो चल सकते थे, मेरे नजदीक ही आकर खडे हो गये। मैदान मे बहुत-सी गाये चर रही थी, वे पूँछ उठाकर इधर-उधर दौडने लगी। एक बार सब मिलकर जहाँ हम लोग खडे थे वहाँ इस तरह दौडी आयी कि जान पडा, हम लोगो पर हमला कर रही है। पर ऐसा कुछ न करके हम लोगो के पास दौडती आकर खडी हो गयी, मानो उन्होने उस स्थान को निरापद समझा अथवा हम लोगो को अपना हितैषी मानकर हमारे पास रहना ही अच्छा समझा। इतने मे ही, कुछ दूर पर, नर्सो के रहने का बडा दोमजिला मकान धडाम से गिर पडा। पर गडगडाहट इतनी थी कि मकान गिरने की आवाज कम ही सुनाई दी, केवल धूल-गर्द को जोरो से उडते देखकर ही हमने समझा कि वह मकान गिरा है अस्पताल के कुछ हिस्से जहाँ-तहाँ गिरे, पर सौभाग्यवश कोई मरा नही और न कोई घायल ही हुआ। कुछ देर मे शान्ति हुई।

मैने करीब ४॥ मिनट तक भूकम्प जारी रहने का अन्दाजा लगाया था। पीछे सूबे के भिन्न स्थानो से खबरे आयी तो जान पडा कि ८॥ मिनट मे ९

मिनट तक भूकम्प का जारी रहना देखा गया था। सब लोग जहाँ-तहाँ से डरे-घबराये निकलने लगे। अब घर के अन्दर जाने की किसी की हिम्मत नही होती थी। मै जब से अस्पताल आया था, यह पहला ही अवसर था कि कमरे के बाहर निकला था और पहला ही अवसर था जो दूसरे लोगो से बाते हुई। बाते और क्या हो सकती थी, भूकम्प के बारे मे ही थी। मित्र लोग शहर से दौडकर देखने आये कि मेरी क्या हालत है। आहिस्ता-आहिस्ता खबर आने लगी कि शहर मे बहुत मकान गिरे है। कुछ लोग अस्पताल मे घायल लाये भी गये। हम लोगो की चारपाई बाहर मैदान मे ही निकाल दी गयी थी। वही सध्या तक हम पडे रहे। जनवरी का जाडा था। हवा जोरो से चल रही थी। कडाके की सर्दी पड रही थी। मेरे सामने प्रश्न हुआ कि रात को क्या किया जाय। मकान के अन्दर जाकर लोगो ने देखा तो कई जगह दीवार फट गयी थी, पर कोई हिस्सा गिरा नही था। मैने सोचा कि रात मे बाहर रहने से तो सर्दी के कारण मेरी अवश्य ही बीमारी बढ जायगी और मै बच न सकूँगा, यदि फिर रात मे भूकम्प आया तो फिर निकल आवेगे। हिम्मत करके मै मकान के अन्दर चला गया। देखादेखी कुछ और मरीज गये, पर सब नही। पास मे बच्चो का वार्ड था, उसका एक हिस्सा गिर गया था, दीवारे कुछ कमजोर हो गयी थी, इसलिए अस्पतालवालो ने सबकी चारपाइयाँ मैदान मे ही रखवा दी और उसी सर्दी मे वे रात काटने लगे। रात को एक बजे भूकम्प का एक धक्का और आया। यह भी जबरदस्त था, क्योकि चारपाई इतनी हिली कि मै जाग उठा। सब फिर बाहर निकल आये। पर यह उतनी देर तक न रहा जितनी देर दिन का भूकम्प रहा था। किसी तरह रात कटी। हम लोगो को बाहर की खबर उस दिन कुछ न मिली। शहर की थोडी खबर मिली जिससे मालूम हुआ कि शहर की काफी बर्बादी हुई है।

दूसरे दिन सवेरे १० बजे डाक्टर बनर्जी मुझे देखने आये। मै उनसे बाते करते-करते बरामदे से नीचे उतर ही रहा था कि एक झोका और आया। हम दोनो बाहर निकल गये। उनसे पहले-पहल मालूम हुआ कि मुँगेर की हालत खराब है, यद्यपि कुछ भी साफ खबर नही मिली है। वह मुँगेर के ही रहनेवाले है, अत बहुत चिन्तित थे। उन्होने यह भी कहा कि गवर्नमेण्ट की आज्ञा हुई है कि जितने डाक्टर मिल सके, तैयार रखे जायँ कि जहाँ जाने का हुक्म मिले, तुरन्त चले जायँ और अस्पताल मे भी घायलो के लिए जगह तथा दूसरे प्रबन्ध ठीक रखे जायँ। अब कुछ पता चला कि यह भूकम्प कुछ दूर तक करामात दिखला गया है। यह भी सुनने मे आया कि सरकारी सेक्रेटेरियट का एक हिस्सा गिर गया है, सब काम तितर-बितर है, इसी हल्ले मे मेरी रिहाई का हुक्म भी न आ सका। मै दो दिनो के बाद छोडा गया। उस दिन सिविल सर्जन ने आकर मुझसे चार बजे सेपहर को कहा कि मै छोड दिया गया और मै जो चाहूँ कर सकता हूँ। पुलिस का पहरा हटा लिया गया। कुछ लोगो की धारणा है कि भूकम्प के कारण गवर्नमेण्ट ने मुझे छोड दिया। जैसा ऊपर बताया गया है, मुझे बीमारी के कारण छोडने का निश्चय भूकम्प के चन्द घटे पहले ही हो

चुका था और उसकी सूचना भी मुझे मिल गयी थी। भूकम्प से रिहाई मे दो दिनो की देर हो गयी, क्योकि सब मामला ही गडबड मे पड गया। जब उत्तर बिहार की शोचनीय दशा का पता दो दिनो के बाद कुछ लगने लगा तो गवर्नमेण्ट ने उधर के रहनेवाले कुछ सत्याग्रहियो को छोड दिया। उन लोगो को मालूम हो गया कि मै भी मुक्त हूँ। मै सोच ही रहा था कि भूकम्प-पीडित लोगो की सहायता के लिए कुछ न कुछ करना होगा, तब तक वे लोग आ गये। उनको मैने तिरहुत के जिलो मे भेजा। कुछ रुपये उधार लेकर उनके लिए कम्बल खरीदवाये, उन लोगो के पास ओढने को कुछ नही था, वे सब गरमी मे गिरफ्तार हुए थे और चलने के वक्त वही गरमी की धोती और कुर्ता वापस लिये थे। कुछ खर्च के साथ किसी तरह चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभगा और सारन की खबर लेने के लिए उनको भेजा। रेल, तार, सब बन्द थे। इसका भी पता न था कि वे किस तरह जा सकेगे। उन्होने हिम्मत करके नाव पर और पैदल जाकर पता लगाना शुरू किया।

मैने मदद के लिए रुपयो की फिक्र की और एक अपील निकालने का विचार किया। कई दिन बीत चुके थे, अभी तक कुछ भी ठीक खबर नही मिली थी। पर जो थोडी-बहुत खबर मिली थी वह बहुत भयानक थी। डाक्टरो ने मुझे अस्पताल मे ही रोक रखा था। मै बहुत कमजोर था, पर न मालूम इस समय कहाँ से उत्साह और शक्ति आयी। मैने जिद्द करके काम शुरू कर ही दिया, पर अस्पताल मे से ही। हजारीबाग से मथुरा बाबू और सत्यनारायण बाबू छूटकर अस्पताल मे मेरे पास आ गये। कुछ मित्र अस्पताल मे ही मिले और राय ठहरी कि एक अपील निकाली जाय तथा रिलीफ-कमिटी के नाम से एक कमिटी बना ली जाय। हमने तय कर लिया कि यह कमिटी केवल काँग्रेसी लोगो की ही न होकर सभी दलो के लोगो की होगी। हम बराबर, जब कभी कोई सकट आया, इस तरह का काम करते आये थे। इसलिए इस बार भी वही करना था, पर अभी यह नही मालूम था कि यह कितना बडा काम होगा। अब तक भी क्षति की पूरी खबर नही मिली थी। गवर्नर ने भी एक सार्वजनिक सभा करने की सोची। मिस्टर सैयद अब्दुल अजीज, जो उन दिनो एक मिनिस्टर थे, मुझसे अस्पताल मे ही मिले। उन्होने कहा कि अलग अपील न करके गवर्नमेण्ट के साथ मिलकर काम करना ही अच्छा होगा। शफी दाऊदी साहब भी मिले और उनकी भी यही राय हुई। उन्होने यह भी कहा कि अपील से आये रुपयो के अलावा गवर्नमेण्ट अपने रुपये भी खर्च करेगी, और हम लोगों की अपील में बहुत मिलने की आशा नही की जा सकती है, क्योकि सत्याग्रह के कारण काँग्रेस का सगठन तितर-बितर हो गया है तथा काम करनेवाले भी बहुतेरे जेलो मे है। मैने उन दोनो सज्जनो से कह दिया कि इस मामले मे गवर्नमेण्ट जो कुछ भी करेगी उसमे हम लोगो का विरोध तो होगा ही नही; पर कुछ ऐसे लोग भी होगे जो गवर्नमेण्ट को पैसे न देकर यह चाहेगे कि गैर-सरकारी सस्था भी काम करे, हम लोग हर सकट के समय कुछ इस तरह का करते आये है, इसलिए जनता भी कुछ हमसे आशा रखेगी, गवर्नमेण्ट से हमारा

मुकावला नही है, जो लोग हमको देंगे उसी का अच्छा से अच्छा इस्तेमाल करके हम चुप हो जायँगे और गवर्नमेण्ट हमसे अगर कुछ काम लेना चाहेगी तो उसके करने मे भी हम नही हिचकेंगे। ऐसा कहकर मैंने कुछ मित्रो से वाते की तो उन्होने मेरी राय पसन्द की।

एक दिन एक छोटी सभा हुई जिसमे विहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी के नाम से एक सस्था स्थापित की गयी। मै उसका प्रधान वनाया गया और उसी के नाम मैंने अपील निकाली। उसके वाद गवर्नमेण्ट की ओर से सार्वजनिक सभा हुई। उसमे मै भी शरीक हुआ। उन्होने भी अपील निकाली। मेरी अपील पर चारो ओर से रुपये और सामान आने लगे। अखवारो मे अव ध्वस का विवरण भी छपने लगा। उसको पढ-पढकर सारे देश मे और विदेशो मे भी विहार के प्रति वहुत सहानुभूति उत्पन्न हो गयी। पडित जवाहरलाल पटने आये। तिरहुत और मुंगेर मे जाकर, जहाँ ध्वस सवसे अधिक हुआ था, उन्होने अपनी आँखो हाल देखा। मुंगेर मे तो उन्होने गिरे मकानो का मलवा खोदकर मुर्दे निकालने मे भी मदद की और एक तरह से सवके लिए नमूना पेश किया। वगाल से सकट-त्राण-समिति की ओर से श्री सतीशचन्द्र गुप्त रुपये और माल-असवाव लेकर चले आये। मैंने गाधीजी को भी तार द्वारा सूचना भेजी। वह उन दिनो वहुत दूर मद्रास-प्रान्त मे कही हरिजन-यात्रा मे घूम रहे थे। तार पाते ही उन्होने भी अपील निकाली, और स्वय पैसे जमा करने लगे। कमिटी की ओर से सभी जिलो मे मुख्य कार्य्यकर्त्ता नियुक्त किये गये और उनकी मातहती मे अनेकानेक काम करनेवाले काम करने लगे। हिन्दुस्थान के सभी प्रान्तो से रुपये आने लगे—कपडा, चावल, दूसरे खाद्य पदार्थ, वर्तन, कम्वल, दवा इत्यादि पहुँचने लगे। सव चीजों की जरूरत थी। पटने से हम आवश्यकतानुसार सवको पीडित जिलो मे भेजने लगे। दो-चार दिनों के अन्दर ही काम वहुत वढ गया। हमारे साथी वहुतेरे जेलो मे थे। गवर्नमेण्ट ने प्राय- सवको—जो तिरहुत, भागलपुर और पटना कमिश्नरियो के रहनेवाले थे—धीरे-धीरे छोड दिया। वे लोग भी आकर काम मे जुट गये।

पडित जवाहरलालजी ने एक दिन पटने मे ठहरकर केन्द्रीय दफ्तर के सगठन और दूसरी वातो मे अपनी सलाह से मदद की। वह दो वार इस सूवे मे आये और जी-जान से काम मे मन लगाने लगे थे, पर खेद है कि इसके वाद ही वह गिरफ्तार कर फिर जेल मे वन्द कर दिये गये। इसलिए हमको उनके नेतृत्व का अधिक लाभ न मिल सका। सेठ वल्लभभाई पटेल भी जेल मे ही थे। उन्होने गुजरात मे, वहाँ की प्रलयकारी वाढ के समय, लोक-सेवा का जो प्रवन्ध किया था उसके अनुभव का भी हमको लाभ नही मिला। पर महात्माजी, सेठ जमनालाल वजाज तथा सरदार के सहकारी श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम प्रभृति आ गये। युक्तप्रान्त से आचार्य्य नरेन्द्रदेव और श्री श्रीप्रकाशजी पहुँच गये। सव वाहर के आये भाइयो और वहनो के नाम गिनाना मुश्किल है। यदि किसी का नाम छूट जाय तो हमारे लिए शर्म की वात होगी। पर कुछ नाम ऐसे है, जिनका उल्लेख न करना अत्यन्त कृतघ्नता होगी। इनमे

श्री जे० सी० कुमारप्पा है। यह हिसाव-जाँच का काम किया करते थे, विलायत से इसकी शिक्षा प्राप्त कर वम्वई मे वडी-वडी कम्पनियो के हिसाव जाँचा करते थे, गाधीजी के साथ आ जाने पर वह काम छोडकर गुजरात-विद्यापीठ मे काम कर रहे थे, जव कॉग्रेस ने एक ऐसी कमिटी वनायी जिसके जिम्मे भारतवर्ष पर लादे हुए कर्ज की जॉच करने का भार दिया तो यह भी उसके सदस्य वनाये गये, महात्माजी ने इनको हिसाव की देखरेख के लिए यहाँ भेज दिया। इतना कहना अत्युक्ति नही है कि यदि यह न आ गये होते और सारे हिसाव का एक अच्छा सगठन न कर दिये होते तो हम मुश्किल मे पडते। हमारे काम करनेवालो की सख्या प्राय २००० से भी अधिक होगी। वे १२ जिलो मे वँटे हुए थे। उनमे थोडे ही ऐसे थे जो हिसाव कुछ भी जानते हो। काम भी वहुत प्रकार के थे और सवका हिसाव अलग-अलग रखना पडता था। यह काम इतना फैला हुआ था कि उसका सँभालना वहुत ही कठिन था। पर इनके वताये तरीके से हिसाव रखने पर सव काम ठीक हुआ।

मैंने शुरू मे ही विहार-वक को कमिटी का खजाची वना दिया था। रुपये कमिटी के पास और सीधे बक के पास आते थे। एक दिन मे २००-३०० मनीआर्डर पहुँचते थे। सैकडो पार्सल रोज आते और उनमे हर तरह की चीजे आती। सवका हिसाव अलग-अलग रखा जाता। केन्द्रो मे पहुँचकर जव रुपयो अथवा चीजो का खर्च होता तो उसका भी हिसाव केन्द्रीय दफ्तर के निरीक्षण मे ही रखा जाता। कुछ दिनो के बाद जव हमने पहली रिपोर्ट निकाली और उसके साथ पैसे तथा सामान देनेवालो की नामावली छापी तो वह प्राय ४०० पन्ने की पुस्तक हो गयी। हमने जनता से अपील की कि यदि किन्ही दाता का नाम उसमे न छपा हो तो वह मुझे सूचना दे। हर्ष का विषय है कि यद्यपि कई हजार दाताओ ने सीधे हमारे पास या वक के पास पैसे और सामान भेजे थे तथापि मेरे पास थोडे ही, शायद १०-१२ ही, पत्र आये जिनमे शिकायत थी कि उनके नाम नही छपे है। जव जॉच की गयी तो उनके नाम भी छपे मिले, केवल गलती यह हुई थी कि किसी दूसरे सूवे या शहर के नीचे उनके नाम छप गये थे। इसी से सवको सन्तोप हो गया कि हिसाव का काम वहुत पक्का रहा। इस पर मैंने इसलिए यहाँ इतना जोर दिया कि सार्वजनिक काम मे रुपये-पैसो के मामले मे सफाई निहायत जरूरी है। काम करनेवाले ठीक और उचित तरीके से पब्लिक के दिये रुपये खर्च करे भी और हिसाव ठीक न रखे तो वदनामी हो जाती है। अक्सर वदनामी वे-वुनियाद होती है, क्योकि खर्च तो ठीक हुआ रहता है, पर हिसाव के ज्ञान के अभाव के कारण अथवा काम करनेवालो की सुस्ती या आलस के कारण हिसाव ठीक न रहने से वदनामी हो जाती है। जव आशा से अधिक लोगो मे उत्साह दीखा और रुपये वरसने लगे तो मुझे यही चिन्ता थी कि लोगो का विश्वास कही झूठा न पडे। पर ईश्वर की दया से, और खासकर कुमारप्पा जी और उनके अधीन काम करनेवाले सैकडो कार्य्यकर्त्ताओं की चतुरता एव मुस्तैदी से, काम भली भाँति पूरा हो सका। हम कह सकते है कि लोगो के दिये हुए रुपये और

सामान का अच्छा से अच्छा उपयोग हुआ। वास्तव मे जैसा सद्व्यय होना चाहिए था, वैसा ही हुआ।

१०३—बिहार-सेंट्रल-रिलीफ-कमिटी की सेवाएँ

मै कैद से मुक्त होने के बाद भी १० दिनो तक अस्पताल मे रहा। पर अब बाहर भी आया-जाया करता। डाक्टर बनर्जी से डरता था कि कही काम करने से रोक न दे, पर दिन-दिन ताकत बढती गयी। काम की भीड इतनी थी कि सवेरे चार बजे उठ जाता और चारपाई पर से ही लिखने का काम शुरू कर देता। पत्रो की भरमार थी। उनका उत्तर देना, पत्रो मे आयी हुई खबरो के साराश को फिर नयी अपील के रूप मे भेजकर लोगो को यहाँ की दुर्दशा की सूचना देना तथा अपने केन्द्रो से आये हुए पत्रो के उत्तर देना, यह कुछ कम काम नही था। मिस्टर अजीज ने अपना एक छोटा मकान दफ्तर के लिए दिया, पर शीघ्र ही काम इतना बढ गया कि वहाँ जगह ना-काफी हो गयी। तब हमने एक दूसरा बडा मकान भाडे पर लिया। दफ्तर के कई विभाग कर दिये गये। सबके चार्ज मे एक-एक प्रमुख कार्य्यकर्त्ता रखा गया। शुरू मे श्री जयप्रकाशजी ही दफ्तर के चार्ज मे रहे। पीछे जब अनुग्रह बाबू छूटकर चले आये और काम भी बहुत बढ गया तो उन्होने उसे सँभाला। जो कमिटी हमने बनाई उसमे सभी दलो और सूबो के लोगो को, जिन्होने मदद पहुँचायी थी, सदस्य बना लिया।

थोडे ही दिनो के बाद गाधीजी आये। उनके आने के पहले मैंने सोचा कि मे उसके पूर्व ही एक बार उन स्थानों को जाकर देख आऊँ जहाँ सबसे अधिक नुकसान हुआ है। यह प्राय भूकम्प के एक महीने बाद हुआ। अब तक मै दफ्तर मे रहकर काम करता था, कुछ तो कमजोरी के कारण और कुछ काम की भीड से। अब सहायक लोग आ गये, काम बँट गया और उन लोगो ने उसे सँभाल लिया तो मै बाहर निकला। मै जहाँ-जहाँ गया वहाँ की हालत देखकर रिपोर्ट भेजता गया जो छोटी पुस्तिका के रूप मे छप भी गयी। अपने कार्य्यकर्त्ताओ, दाताओ और सहानुभूति दिखलानेवालो को सब बातो से आगाह रखने के लिए हमने एक 'बुलेटिन' निकालना शुरू कर दिया जो कुछ दिनों तक नियमित रूप से निकला, पीछे अनावश्यक समझ कर बन्द कर दिया गया।

जिन्होने कमिटी के पास रुपये और सामान भेजे अथवा स्वय आकर उसके सगठन मे योगदान किया उनके अलावा बहुतेरी दूसरी सस्थाएँ निजी तौर से काम करने आयी। इन सबका हमारी कमिटी के साथ सहयोग था। हम प्रयत्न करते कि हम सबके काम मे विरोध न हो और न एक ही काम दो सस्थाओ द्वारा दुबारा किया जाय। इससे यह फायदा हुआ कि सार्वजनिक धन, चाहे वह कमिटी के पास आया हो या किसी दूसरी सस्था के पास, अच्छे व्यवहार मे ही आया। ऐसी सस्थाएँ तो बहुत थी जिनकी पूरी सूची प्रकाशित रिपोर्ट मे मिलेगी। पर सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यहाँ मुख्य के ही नाम दे सकता हूँ। वे थी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी,

मेमन रिलीफ सोसाइटी और श्रीरामकृष्ण-मिशन। बाबा गुरुदत्तसिंहजी के दल ने भी अच्छा काम किया। रेडक्रास और इंडियन मेडिकल ऐसोसिएशन ने भी मदद की। श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त की मार्फत बंगाल की संकट-त्राण-कमिटी ने भी दवा सवारी आदि की अच्छी सहायता की।

एक ओर गवर्नमेण्ट की अपील थी और दूसरी ओर बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी की। कुछ दिनो तक तो जनता का और दान देनेवालो का इतना उत्साह रहा कि दोनो के फण्ड प्राय बराबरी मे चलते रहे। हम भी रोजाना की आमदनी प्रकाशित करते और गवर्नमेण्ट भी करती। महात्माजी जब आ गये और सेठ जमनालाल बजाज अपने साथियो के साथ बिहार मे बैठ गये तो मेरे सिर से बोझ कुछ हलका हो गया। लोगो को राहत पहुँचाने मे कठिनाइयाँ बहुत थी। पहले तो रेल-लाइने टूट गयी थी। माल रेल पर नही जा सकता था। रास्तो के पुल टूट गये थे। इसलिए बैलगाडी और मोटर-लारी पर भी ले जाना आसान नही था। रहने के लिए बहुत जगहो मे मकान नही मिलता था। बहुत जगहो मे पानी का कष्ट था। हमको रिलीफ-कमिटी की ओर से कई मोटर-लारी खरीदनी पडी। आहिस्ता-आहिस्ता सडके कुछ सुधरी। पुल तो नही बने, पर उनके पास से होकर, जहाँ कोई बडी नदी नही थी, दूसरा रास्ता निकल गया। नदियो मे नाव से भी काम लिया जाने लगा। रिलीफ-कमिटी के झोपडे सभी जगहो मे बन गये। कार्य्यकर्त्ताओ के सगठन मे श्री कृपालानी, श्री हार्डीकर और श्रीमती सोफिया सोमजी ने बडा काम किया। काम करनेवालो की देख-रेख भी कुछ सहज नही थी। कार्य्यकर्त्ताओ के लिए हमे सैकडो साइकिले देनी पडी। उनके रहने के लिए झोपडे बनाने तथा खाने का प्रबन्ध करना पडा। पर यह जानकर आश्चर्य होगा कि अपने कार्य्यकर्त्ताओं के खाने का खर्च दो आने रोज से अधिक हम नही देते थे। वे उसी मे जो कुछ हो सकता, खाकर काम करते। उतना ही उनके लिए काफी था। महात्माजी भी उन जिलो मे गये जहाँ बहुत क्षति हुई थी। उनका जाना दो दृष्टियो से आवश्यक था। एक तो क्षति को वह खुद देख ले और जहाँ इतनी और इतने प्रकार की क्षति हुई है वहाँ किसकी पूर्ति करने का हम प्रयत्न करे, यह निश्चय करने मे हमारी सहायता करे। दूसरी बात यह भी थी कि उनके जाने से लोगो की हिम्मत बढती और विपत्ति मे ढाढस होता। इसलिए सभी जगहो मे इस बात पर बहुत जोर दिया गया कि महात्माजी सभी जगहो मे जायँ। यह तो सम्भव नही था, पर तो भी बहुत जगहो मे वह गये। उन अभूतपूर्व हृदय-विदारक दृश्यो को उन्होने देखा जो भूकम्प ने उपस्थित कर दिये थे।

हमारे सामने दो प्रकार के प्रश्न थे। भूकम्प के कारण लोगो के घर गिर गये, जो कुछ घर मे था बर्बाद हो गया। खाने को अन्न नही, पहनने को कपडे नही। अन्न मिले भी तो उसे पकाने के लिए बर्तन नही। रहने को घर नही। कुएँ भर गये। तालाबो मे बालू भर गयी। इसलिए पीने को पानी नही। यह सब ऐसी माग थी जिनका तुरत होना आवश्यक था। इसलिए महात्माजी के आने के पहले ही भोजन,

कपडा, वर्तन आदि जहाँ तक हो सका हमने लोगो को बाँटा। उससे भी पहले जहाँ तक हो सका, मकानो का मलबा हटाने का प्रयत्न किया गया, ताकि उसके नीचे दबे लोग निकाले जायँ। इस काम मे रिलीफ-कमिटी बहुत कुछ नही कर सकी। यह काम जो कुछ हुआ, स्थानीय लोगो ने ही किया, क्योकि रिलीफ-कमिटी के सगठित होते और कार्य-कर्त्ताओ के पहुँचते-पहुँचते जो मलवे के नीचे दबे थे वे या तो निकाल लिये गये थे या मर चुके थे, पर जो बच गये थे उनको तत्काल मदद देने के काम मे रिलीफ-कमिटी ने पूरा हाथ बँटाया। महात्माजी के पहुँचते-पहुँचते यह काम भी बहुत-कुछ हो चुका था यद्यपि अभी एकबारगी खतम नही हुआ था। अब जो कुछ रह गया था वह कुछ अधिक स्थायी काम था। इसमे दो-तीन प्रकार के काम मुख्य थे और हमको निश्चय करना था कि हम कौन काम करे।

ऊपर कहा जा चुका है कि लाखो लाख मकान गिर गये थे। मकान वनवाने मे लोगों की सहायता करना एक वहुत वडा काम था। इसी तरह लाखो लाख कुँएँ वालू से भर गये थे। बहुतेरे ऐसे गाँव थे जहाँ कुँओ मे पानी था ही नही। यहाँ तक कि कही-कही गहरे गड्ढे इस तरह भर गये थे कि वहाँ यह पता नही चलता था कि यहाँ कभी गड्ढा रहा है। कही-कही छोटी-मोटी नदियो का पेट बालू से बिल-कुल भर गया था। पानी का घोर कष्ट था। यह किसी एक गाँव या इलाके की बात नही है। गगा के उत्तर प्राय सभी जिलो मे, सैकडो मील की लम्बाई और प्राय ४०-५० मील की चौडाई मे, थोडी या बहुत एक ही हालत थी। पानी किस तरह पहुँचाया जाय, यह वडा बीहड प्रश्न था। तीसरा प्रश्न जो हमको बहुत परेशान कर रहा था, वह खेतो मे वालू का आ जाना था। खेतो मे पानी के फौवारे निकले और पानी के साथ-साथ वालू भी निकली। वह इतनी अधिक निकली कि खेत बालू से पट गये। जब पानी सूखा तो मालूम होने लगा कि सारा इलाका बालुकामय मरुभूमि हो गया। यदि यह बालू यो ही छोड दी गयी तो यहाँ अब फिर कोई फसल न होगी, ऐसा भय होने लगा। इसलिए यह बालू किसी तरह साफ की जा सकती है या नही, यह विचारणीय था। हमने खुद देखा कि कही-कही वालू पाँच-छ फुट गहरी पड गयी थी। एक जगह थोडी जमीन मे बालू साफ करने का प्रयोग करके देखा तो उसमे इतना ज्यादा खर्च पडा कि वह असम्भव जान पडने लगा।

एक और तात्कालिक प्रश्न ईख के कारण उठ खडा हुआ। उत्तर-बिहार मे चीनी के वहुत कारखाने है। लोग ईख की खेती करते है और उन कारखानो के हाथ ईख वेच देते है। इससे उनको पैसे मिल जाते है। भूकम्प ने प्राय सभी कार-खानो को वेकार कर दिया। वे सब रुक गये। करोडो की ईख खेतो मे खडी थी। अब वह वेकार होने लगी। हमने यह सोचा कि पुराने कोल्हू फिर चालू किये जायँ जिससे कुछ भी तो ईख का गुड वन जाय और किसानों को कुछ भी तो वच जाय। गवर्नमेण्ट ने भी इसको पसन्द किया। दोनो सस्थाओ की ओर से कोल्हू बाँटे गये। पर कोल्हू मिलने मे भी कठिनाई थी, क्योकि वे इतनी अधिक सख्या मे तैयार नही

थे। उनके लिए बाजार ही नही था, इसलिए उनका बनना एक प्रकार से रुक गया था। तो भी कई हजार कोल्हू हमने और गवर्नमेण्ट ने बाँटे और कुछ ईख इस तरह बचायी गयी। पर भाग्यवश कुछ दिनो के बाद बहुतेरी मिलो की मरम्मत हो सकी और उन्होने अपना काम शुरू कर दिया। इस तरह, जितनी क्षति हो सकती थी उतनी नही हुई।

इनके अलावा छोटे-मोटे और भी बहुत-से प्रश्न थे। इन पर विचार कर तात्कालिक सहायता का काम समाप्त करके आगे के लिए निश्चय करना था। इस-लिए कमिटी की एक बैठक पटने मे की गयी। इसमे सभी सूबो के प्रमुख लोग जो इसके सदस्य थे, आये। इसने प्रस्ताव किया कि गवर्नमेण्ट के काम मे हम हर तरह से सहयोग देने को तैयार है। अपने काम के लिए इसने एक कार्य-कारिणी बना दी। मामूली नियम भी बना दिये। इतनी बडी कमिटी का बारबार इकट्ठा होना मुश्किल था। इसलिए कार्य-कारिणी पर ही काम का सारा भार आ पडा। वह बराबर मिला करती और सब बातो पर निश्चय किया करती। महात्माजी की राय हुई और हम सब लोग इससे सहमत हुए कि बालू हटाने का काम हमारे लिए असम्भव है, इसलिए उसमे हम हाथ न लगावे, मकान बनवाने के काम मे हम सहायता दे सकते है, पर उससे भी अधिक आवश्यक और उपयोगी काम पानी पहुँचाने का था, इसमे व्यक्तिगत मदद का भी मौका रहेगा, इसलिए विशेष व्यक्ति के साथ पक्षपात करने का मौका कम आयेगा तथा हमारा काम भी अधिक स्वच्छ होगा, इसलिए हम पहले कुँआ और तालाब बनवाये जिनसे मनुष्य और पशु के लिए पानी की सुविधा हो।

परन्तु यह काम भी इतना बडा था कि हमारे सब पैसे खर्च हो जाते तब भी इसका थोडा अंश भी पूरा न होता। फिर भी पहले इसी पर जोर देने का निश्चय हुआ। इसमे भी प्रश्न उठा कि हम 'ट्यूब वेल' बनवाये अथवा पक्के कुँए। 'ट्यूब वेल' बहुत जल्द तैयार हो सकते थे और यह काम ठीकेदारो के द्वारा आसानी से हो सकता था। हमने कुछ बनवाये भी। पर हमने देखा कि इनसे काम नही चलेगा। एक तो यह कि एक ट्यूब वेल से एक घडा पानी निकालने मे एक आदमी का जितना समय लग जाता है उतने ही समय मे कुँए मे चार-पाँच आदमी एक साथ ही चार-पाच घडे पानी निकाल सकते है। दूसरे इनकी मरम्मत का प्रश्न भी विकट था। बिगडने पर गाँवो के लोग इनकी मरम्मत कैसे करायेंगे। उसके लिए हमको बडा 'स्टाफ' रखना पडेगा। फिर कुछ दिनो के बाद यह बेकार हो जायगा। यह भी देखा गया कि कही-कही ट्यूब वेल और कुँओ मे बराबर ही खर्च पडता था। इसलिए हमने कुँआ बनवाने का ही निश्चय किया। सभी जगहो पर कार्यकर्त्ता लोगो ने गाववालो के सहयोग से कुँआ बनवाना आरम्भ कर दिया। हम चाहते थे कि बरसात के पहले ही अधिक से अधिक कुँएं बन जायें। इनके अलावा पुराने कुँओ की मरम्मत भी जरूरी थी। बालू निकालकर उनको साफ कर देने से ही बहुत जगहो मे काम चल

जाता था। इन सवमे गाँवो के लोग अपने शरीर से मदद कर सकते थे। उसी तरह पुराने तालाबो को साफ करा देने से मवेशियो के लिए पानी का प्रबन्ध हो जाता था। हमने कई हजार नये कुँए बनवाये और अनेक पुराने कुँओ की मरम्मत-सफाई भी करायी। कई तालाव खुदवाये या बिगडे हुए तालाबो की मरम्मत करायी। यह सब काम अप्रेल से जुलाई के पहले ही समाप्त हो गया, क्योकि उसके बाद दूसरा ही प्रश्न आ खडा हुआ और हम उसमे लग गये।

पानी पहुँचाने का निश्चय बहुत ही ठीक रहा, क्योकि उससे हम एक स्थायी काम कर सके। एक कुँआ या तालाव से वहुत लोगो को लाभ पहुँचा सके। यह गाधीजी की दूरदर्शिता का ही फल था कि इतना स्थायी काम हो सका। नही तो सब रुपये चाहे मकानो की मरम्मत मे या बालू साफ कराने मे लग जाते। तब भी फल इतना व्यापक न होता। पक्षपात के—गलत चाहे सही—अभियोग से भी हमारी सस्था न वच सकती।

१०४—भूकम्प के बाद बाढ़ की समस्या

इस काम में हम लगे ही हुए थे कि दूसरा प्रश्न आ खडा हुआ। सभी जगहो मे नदी-नाले भर गये थे। अत भय था कि गगा, सरयू, गडक-जैसी बडी-बडी नदियो का पेट भी बालू से कुछ भर गया होगा। जमीन की सतह ऊँची-नीची हो गयी थी। इन सब कारणो से आशका हो रही थी कि बरसात के दिनो मे बाढ के कारण नई विपत्ति आ सकती है। हमको उसके लिए तैयारी करनी पडी। गवर्नमेण्ट ने भी अपनी तैयारी की। हमको बहुतेरी नावे बनवाकर या खरीदकर उन स्थानो मे रखनी पडी जहाँ वाढ का अधिक भय था।

भूकम्प के वाद गरीबो के लिए, जो मजदूरी किया करते है, काम की कमी न रही। किसी न किसी तरह का काम उनको मिलता रहा। पर इस बात का भय था कि वरसात मे उन्हे काम नही मिलेगा। दो-चार दिनो तक विपत्ति-काल मे गरीबो को खाना दे देना अच्छा है, पर बिना काम कराये उनको खैरात खिलाना उन्हे निकम्मा और आलसी बनाना है। इसलिए हमने शुरू से ही यही नीति रखी थी कि यथा-साध्य विना काम कराये मुफ्त न खिलाया जाय। जनता को मजदूरो की जरूरत थी ही। सभी लोग, जो काम करा सकते थे, अपने गिरे-पडे मकानो को साफ या मरम्मत कराते। वहुतेरे तो नये मकान मे भी हाथ लगा देते। खेती का काम भी था ही। रिलीफ-कमिटी ने जो हजारों कुँए वनवाये और मरम्मत कराये तथा हजारो तालाव-पोखरे खुदवाये या साफ कराये उनमे भी वहुतेरे मजदूर काम करते रहे। कई जगहो पर हमने नयी सडके वनवा दी या पुरानी बिगडी सडको की मरम्मत करा दी। इस तरह हजारो मील सडके सारे सूबे मे हमने वनवा डाली या मरम्मत करा दी। पानी के नाले भठ गये थे। यदि वे बरसात के पहले साफ न कर दिये जाते तो पानी का निकास ही नही होता। वरसात मे गाँवो की हालत

दर्दनाक हो जाती। इसलिए इस तरह के नालो को भी हमने बहुत जगहो मे साफ कराया।

मुजफ्फरपुर-जिले मे, सीतामढी जाने के रास्ते पर, भरथुआ का एक मशहूर चँवर है। भूकम्प के पहले से ही वहाँ की हालत कुछ ऐसी खराब हो गयी थी कि बागमती नदी का पानी हमेशा वहाँ जमा रहता था। जो पहले हरी-भरी जमीन थी, जहाँ बहुत अन्न पैदा हुआ करता था, वहाँ की सारी जमीन इस तरह जलमग्न रहने लगी थी कि कुछ भी पैदा न होता। वह जल भी इतना बुरा था कि वहाँ के बडे-बडे गाँछ-वृक्ष भी सूख गये थे। बडे-बडे बगीचे यो सूखे खडे पडे थे कि देखकर आश्चर्य होता था। इस तरह का दृश्य मैंने कोसी नदी के किनारे कुछ गाँवो मे देखा है, जहाँ उसी तरह बडे-बडे पेड बिना पत्ते के सूखे खडे है। गाधीजी सफर मे वहाँ गये थे और वहा की हालत देखकर दुखी हुए थे। वहाँ के कार्यकर्त्ताओ ने इस पर बहुत जोर दिया कि कुछ उपाय होना चाहिए। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि पहले एक नाला या नहर थी जिससे वहाँ का पानी निकल जाया करता था। बागमती ने अपना पुराना घाट छोड दिया और यह नाला भर गया। उसी का यह फल था कि वहाँ पानी जम गया, जो निकल नही सकता था। यदि वह नाला किसी तरह फिर खोल दिया जाय तो वहाँ सैकडो वर्ग-मील फिर हरा-भरा हो जाय।

हम लोगो ने निश्चय किया कि गवर्नमेण्ट यदि इसका प्रबन्ध करने को तैयार न हो तो रिलीफ-कमिटी द्वारा यह काम करा दिया जायगा। हमारे अन्दाज मे खर्च प्राय ५० हजार का था। गवर्नमेण्ट से लिखा-पढी हुई। उस नहर के खुदवाने का भार ले लिया। इस तरह की छोटी-मोटी नहरे हमने और कई जगहो मे खुदवाकर बहुत-सी बर्बाद हो रही जमीन हरी-भरी बनवा दी। जहाँ गरीब स्त्रियाँ दूसरा काम नही कर सकती थी, चर्खे के द्वारा उनको काम दिया गया। इस तरह रिलीफ-कमिटी ने सूत और खादी का काम भी कई जगहो मे जारी किया। पीछे जब कमिटी का काम समेटा गया तो यह खादी का सारा काम बिहार-चर्खा-सघ के जिम्मे कर दिया गया। मकान इतने बनवाने थे कि लोगो को मकान बनाने के सामान की बहुत जरूरत थी। ईट, खपडा, रस्सी, बाँस, लकडी और लोहे के सामान इत्यादि की बडी माँग थी। हमने बहुत जगहों मे कमिटी की ओर से दूकाने खोल दी, जहा लागत-मात्र दाम पर चीजे दी जाती। पर इससे भी अधिक हमने यह किया कि ईट, लकडी, सिमेट इत्यादि के व्यापारियो के साथ बात-चीत करके लागत दाम पर अथवा बहुत कम मुनाफे पर सामान बेचने का प्रबन्ध कराया। जो हमारे पुर्जे ले जाते उनको उस नियत दाम पर सामान मिल जाता। कमिटी की ओर से उनको कुछ कमीशन दिया जाता था—कही बिना इसके भी काम चल जाता। इस तरह जो हमने कमिटी की ओर से सीधे तौर पर मदद की उसके अलावा उन सब चीजो के दाम के नियत्रण मे बहुत बडा भाग लेकर मुनासिब कीमत पर लोगो को सामान मुहैया कराया।

इस बात का भी पूरा अन्देशा था कि बरसात के महीनो मे चावल की कमी

सूबे के बहुत भागों मे होगी। देखने मे आया कि चावल का दाम कुछ चढता जा रहा है। हमने बरमा-प्रान्त से बहुत चावल खरीदकर उन सभी स्थानो मे, जहाँ अभाव का भय था, चावल की रिलीफ-दूकाने खोल दी। इसका नतीजा यह हुआ कि चावल का दाम नहीं चढा और लोगों को मुनासिब दाम पर चावल मिलता रहा। रिलीफ-कमिटी के रुपये भी चावल बिक जाने पर वापस आ गये। मलेरिया और हैजे के प्रकोप का भय अलग था। कही-कही यह हुआ भी। इसके लिए कमिटी के डाक्टरी विभाग ने अपनी शाखाएँ बहुत जगहों मे खोल दी और उनसे लोगो को बहुत लाभ पहुँचा। बाढ के दिनों मे बहुत मुश्किल से लोगों की मदद की जा सकी। कमिटी और गवर्नमेण्ट की सलाह से नावे उन स्थानों मे रखी गयी थी जहाँ बाढ का भय था। इन नावों के द्वारा बाढ-पीडितो को मदद पहुँचाने मे बहुत सहूलियत हुई।

इसके अलावा हमने बहुत-से लोगो को मकान मरम्मत करने या बनवाने के लिए नगद रुपये भी दिये। कमिटी ने निश्चय कर लिया था कि जो लोग भूकम्प के पहले अच्छे धनी-मानी थे अथवा जिनके बडे मकान थे अथवा जो बडा मकान बंनवाना चाहते थे, उनकी मदद करने मे कमिटी असमर्थ है, क्योंकि उसके पास इतने पैसे नही थे। वह तो गरीब और मझोले दर्जे के लोगो की ही मदद कर सकती थी। इसलिए उसने निश्चय किया कि किसी एक व्यक्ति को २५०) से अधिक नगद मदद नही दी जायगी। इसके अलावा रिलीफ-दर पर ईट, बॉस, लकडी, सिमेण्ट इत्यादि चीजे दी जा सकती है। गवर्नमेण्ट ज्यादा रकम की मदद देती थी। हमने उस वर्ग के लोगो की मदद का भार गवर्नमेण्ट पर ही छोड दिया। इस तरह पाठको को कुछ अन्दाज मिल गया होगा कि सहायता कितने प्रकार की देनी पडी और कितने प्रकार के काम कमिटी को करने पडे। उसकी रिपोर्ट समय-समय पर छपती गयी। वह लोगो मे, विशेषकर दान-दाताओ मे, वितरित की गयी।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण अनुभव का उल्लेख आवश्यक है। जब महात्मा गाधी भूकम्प-पीडित क्षेत्रो मे घूम रहे थे, उनके साथ इँगलैंड की दो महिलाएँ बहुत जगहो मे गयी। एक थी कुमारी मुरियल लेस्टर जिनके अतिथि महात्माजी गोलमेज-कान्फ्रेन्स के समय रह चुके थे। दूसरी थी वहाँ की, भारत से सहानुभूति रखनेवाली, एक सार्वजनिक काम करनेवाली कुमारी अगेथा हरिसन। यो तो और भी बहुत-से विदेशियो ने भूकम्प की क्षति देखी थी। सबने अपने-अपने मित्रो को लिखा था। दीनबन्धु एण्डरूज तो सभी जगहो मे, जहाँ विपत्ति पडती थी, जाया ही करते थे, बिहार मे भी आये थे। उन्होने एक पुस्तक लिखकर इँगलैंड और अमेरिका मे छपवायी थी। इन सब कामो से वहाँ के लोगो मे भी बिहार के प्रति सहानुभूति पैदा हुई थी। गवर्नमेण्ट की अपील भी वहाँ पहुँची थी। उस पर लोगो ने पैसे की भी मदद की थी।

योरप मे एक सस्था है जिसके सदस्य युद्ध के विरोधी है। पर वे मानते है कि सेना मे जिस प्रकार का नियत्रण होता है और लोगो को अपना सर्वस्व अर्थात् जान तक देने का जो अवसर मिलता है उससे बहुतेरे युवक उस तरफ आकर्षित होते है, पर

यदि इस उत्साह और त्याग-शक्ति को नर-संहार में न लगाकर जन-सेवा में लगाया जाय तो बहुत बडा काम हो जाय। इसलिए, इस संस्था के सदस्य अपने को सैनिक की भाँति नियंत्रण में रखते हुए, जहाँ कोई विपत्ति आती है वहाँ जाकर जनता की सेवा करते हैं। इसमें वे जाति वा देश का विचार नही करते। योरप में पिछले बडे युद्ध के बाद कई जगहो में, जहाँ बहुत विध्वंस हुआ था, उन्होने जाकर सेवा की थी। इसी तरह कई जगहो में पीडित जनता की सेवा करने का अनुभव उनको था। उनके नेता थे स्विटजरलैण्ड के पियर सेरेसोल। यह इन्जीनियर थे। बडे ऊँचे खानदान के थे। इनके घर के लोग अपने देश के शासन-विभाग के उच्चपदो को—विशेषकर सेना में—सुशोभित कर चुके थे। इनके पिता शायद वहा के प्रजातंत्र के प्रधान रह चुके थे। इन्होने युद्ध-विरोधी सिद्धान्त के कारण वह सब छोड दिया था और फौजी शिक्षा से इनकार करने के कारण सजा भी भोगी थी। बिहार में यह कुछ साथियो को लेकर सेवा के लिए आये।

हम लोगो ने देखा था कि कई जगहे इतनी बरबाद हो गयी थीं कि वहा के लोगो को वहाँ से हटाना ही ठीक था। हमने बहुत कोशिश की कि लोग स्थान छोड-कर कही दूर जा बसना पसन्द करे। इसके लिए दूसरे स्थानो में जमीन्दारो से बात-चीत करके जमीन बन्दोबस्त कराने का यत्न भी हम कर रहे थे, पर कहीं कोई अपने घर को छोडकर दूर जानेवाला नही मिला। इसलिए किसी बडे पैमाने पर स्थानान्तर अथवा स्थान-परिवर्तन का कार्यक्रम असंभव समझकर हमने छोड दिया। पर मुजफ्फर-पुर-जिले में कुछ गाँवो के लोग बाढ से इतने पीडित थे कि गाँव छोडकर थोडी दूर अलग बस जाने पर राजी हो गये। हमने सोचा कि इसमें मकान बनाने इत्यादि में हम उनकी मदद करे। गवर्नमेण्ट भी इस बात पर राजी हो गयी कि रिलीफ-कमिटी और गवर्नमेण्ट दोनो मिलकर इसमें खर्च करे। काम का भार एक स्थानीय कमिटी को सुपुर्द किया गया। डाक्टर सेरेसोल ने इस काम का भार लिया। हमने रिलीफ-कमिटी की ओर से उनको ही उस कमिटी का सदस्य बना दिया और उनकी मदद के लिए अपने कार्य्यकर्त्ता श्री फणीन्द्रमोहन दत्त को दे दिया।

वहा पर कई नये गाँव बसाये गये। इसमें एक साल से अधिक समय लगा। डाक्टर सेरेसोल वहा बराबर रहे। बीच में एक बार योरप गये भी, तो फिर कुछ दिनो के बाद वापस आकर काम में जुट गये। उनके साथ योरप के कई देशो के चार-पाँच साथी थे। उन्होने अपने शरीर से भी बहुत परिश्रम किया। डाक्टर सेरेसोल की अवस्था साठ से अधिक थी। बहुत लम्बे-तगडे थे। यहा की गर्मी से परेशान हो जाते थे, तो भी उस गाव में ही रहते थे। वहाँ भोजन का कष्ट था, आराम का वहा कोई सामान न था जिसके वह आदी थे। तब भी दिन-रात दौड-धूप करते रहते। उन्हे परिश्रम करते देखकर दूसरो को भी उत्साह हो जाता था। जो गाव बसाये गये उनमे मुख्य गाव का नाम शान्तिपुर रखा गया। यह सुन्दर सम्पन्न गाँव आज भी आबाद है और एक नमूने की बस्ती है।

भूकम्प और बाढ के कारण कई जगहो मे मलेरिया का बडा प्रकोप हो गया। रिलीफ-कमिटी की ओर से कई जगहो मे, मलेरिया से लोगो को बचाने के लिए, विशेष प्रबन्ध करने पडे। इनमे मुख्य है रामपुरहरि और मनुसमारा का इलाका—मुजफ्फरपुर-जिले मे, पडौल और मधुबनी का इलाका दरभगा-जिले मे तथा सुपौल का इलाका भागलपुर-जिले मे। यह इतना बडा काम हो सका कार्य्यकर्त्ताओ के उत्साह और त्याग से ही। उनकी जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। अगर मुशाहरा देकर सभी कार्य्यकर्त्ता रखने पडते तो रिलीफ-कमिटी का बहुत रुपया सिर्फ काम करनेवालो पर ही खर्च हो जाता। हम आरम्भ से ही इस बात पर बहुत ध्यान रखते थे कि असहायो को मदद देने मे ही हमारा अधिक से अधिक खर्च हो और मदद पहुँचाने के काम मे कम से कम खर्च हो। ऊपर कहा गया है कि सेवको को मोटा से मोटा भोजन हम देते थे जिसका लागत खर्च दो आने रोज के लगभग पडता था। काम प्राय डेढ साल चलता रहा। इसलिए दफ्तर मे कुछ लोग ऐसे अवश्य रखे गये जिनको कुछ निर्वाह-व्यय भी देना पडता, पर वह भी हम किफायत से किफायत दर से देते। इसके अलावा दफ्तर के लिए मकान, सामान इत्यादि का खर्च भी करना पडता था। माल ढोने के लिए और कार्य्यकर्त्ताओ तथा निरीक्षको को कम से कम समय मे अपने स्थानो पर पहुँचाने के लिए हमे लारियाँ और सवारियाँ भी खरीदनी पडी थी। यह सब खर्च सस्था के नाम से लिखा जाता। हमेशा हम इस बात पर ध्यान रखते कि सस्था-खर्च और सहायता-खर्च का अनुपात जहाँ तक कम रह सके, रहे। हम अपनी रिपोर्टो मे इसका भी बराबर जिक्र करते। शुरू मे जब लोगो को अन्न-वस्त्रादि पहुँचाना था तब केन्द्र से इनको ढोकर सहायता की जगह पर ले जाने और बाँटने का खर्च ज्यादा पडा। यह स्वाभाविक था। जब कुँआ, पोखरा, तालाब, सडक, पुल, नहर इत्यादि मे हाथ लगाया गया तो सस्था-खर्च कम हो गया। जब मकान के लिए रुपये बाँटने का समय आया तो यह खर्च और भी कम हो गया।

यहाँ एक छोटी घटना का उल्लेख आवश्यक जान पडता है। गवर्नमेण्ट ने अपने सिविल-सर्विस के एक सुयोग्य अफसर मि० ब्रेट को रिलीफ-कमिश्नर बनाया था। रिलीफ के सारे काम का भार उन्ही पर था। उन्होने रिलीफ-सम्बन्धी एक रिपोर्ट लिखी, जिसमे उन्होने विहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी का भी जिक्र किया और उसके खर्च का साराश भी उस रिपोर्ट मे दिया। वहाँ उन्होने लिख दिया कि रिलीफ-कमिटी का सस्था-खर्च ज्यादा पडा। वह रिपोर्ट लिखकर, अपना काम खतम करके, छुट्टी पर इँगलैड चले गये। यह रिपोर्ट उनके चले जाने के बाद छपी। हमने देखा कि यह सस्था-खर्च का हिसाब बिलकुल गलत है। हमने गवर्नमेण्ट को लिखा कि हमारे जाँचे और छपे हिसाब मे सस्था-खर्च तो उतना नही है, गवर्नमेण्ट के आँकडे गलत है। हमने जानना चाहा कि वे आँकडे कहाँ से कैसे निकले है। मि० ब्रेट की गैरहाजिरी मे उत्तर मिला कि आँकडे मि० ब्रेट ने तैयार किये थे और गवर्नमेण्ट को मालूम नही कि वह कैसे उन आँकडो तक पहुँचे थे। ऐसी अवस्था मे उचित

होता कि गवर्नमेण्ट अपनी भूल स्वीकार कर लेती, पर ऐसा भी नहीं किया गया और गवर्नमेण्ट की रिपोर्ट मे वे गलत अक आज भी पडे है।

जब रिलीफ का काम खतम हो गया तो जो रुपये बचे थे वे एक ट्रस्ट के जिम्मे कर दिये गये। जब कभी इस तरह की विपत्ति विहार मे आवेगी तब वे खर्च होंगे। सौभाग्यवश कोई बडी विपत्ति तबसे नही आयी है। जहाँ-तहाँ छोटी-मोटी बाढ आयी तो थोडी-बहुत सहायता की जरूरत पडी। वह सहायता उसी मे दी गयी है। ट्रस्टियो ने रुपयो को खाली न रखकर, महात्माजी की सलाह से, अधिकाश चर्खा-सघ को कर्ज दे रखा है। चर्खा-सघ कुछ ब्याज देता है और चर्खा-द्वारा रुपये गरीबो की सेवा मे लगे भी है। इस तरह एक पथ दो काज हो रहा है। ट्रस्टी थे सरदार वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज और मै। सेठजी के स्वर्गवास के बाद अब दो ही रह गये है।

१०५—सत्याग्रह स्थगित

रिलीफ-कमिटी के काम से जब महात्माजी ध्वस्त जगहो का दौरा कर रहे थे, एक घटना हुई जिसका असर यहाँ की राजनीति पर बहुत पडा। ऊपर कहा जा चुका है कि १९३३ के मध्य भाग मे ही सत्याग्रह-आन्दोलन मे सुस्ती आ गयी थी। व्यक्तिगत सत्याग्रह से कुछ जागृति देखने मे आयी, पर वह भी धीरे-धीरे जाती रही। जिस समय भूकम्प हुआ, गाधीजी दक्षिण-भारत मे हरिजन-सम्बन्धी दौरा कर रहे थे। वहाँ से ही वह बिहार आये थे। अब तक नये सुधारो की बात इँगलैंड मे कुछ आगे बढ चुकी थी। दूसरी गोलमेज-कान्फ्रेन्स के बाद कुछ और कार्रवाई हुई और एक श्वेत पत्र (White Paper) निकला जिसमे वे सिद्धान्त निश्चित किये हुए थे जिनके अनुसार नया विधान बननेवाला था। लोग समझते थे कि शीघ्र ही श्वेत पत्र के अनुसार कानून बन जायगा और नया विधान काम मे आने लगेगा। कुछ लोग सोच रहे थे कि यह नया विधान चाहे कितना भी खराब क्यो न हो और चाहे उसके अनुसार काम करना हम स्वीकार करे या न करे, कांग्रेस को चुनाव मे भाग लेना चाहिए। इस बात की चर्चा चारो ओर चलने लगी और कांग्रेसी लोगो मे भी यह बात चली। डाक्टर अनसारी, डाक्टर विधानचन्द्र राय और श्री भूलाभाई देसाई ने यह बात कांग्रेसियो मे चलाई। मै तो रिलीफ के काम मे ही व्यस्त था। इसलिए मुझे तो इस ओर ध्यान देने का अवकाश नही था। महात्माजी शायद कुछ न कुछ सोचते रहे होंगे।

उत्तर-बिहार के सफर मे एक दिन भागलपुर-जिले के 'सहरसा' नामक गाव मे हम लोग ठहरे। दूसरे दिन सोमवार था, महात्माजी का मौन-दिन। महात्माजी मौन मे कुछ लिखते रहे। मै यो भी कभी उनका समय व्यर्थ नहीं लेता, उस दिन तो वह लिख रहे थे। इसलिए दिन-भर मै उनसे कुछ बाते न कर सका। सध्या ४-५ बजे के करीब उन्होंने मेरे हाथ मे एक कागज दिया और लिखकर कह दिया कि इसको पढ कर अपनी सम्मति दो। मै उसको पढ गया। उसमे सत्याग्रह बन्द कर

देने की वात थी और चुनाव-सम्वन्धी सकेत था। उन्होंने उसमे यह वताया था कि कुछ उनके विश्वासी लोगो ने, जो जेल से निकले है, ऐसी वाते कही है जिनसे उनको इस नतीजे पर पहुँचना पडा है। देश मे व्याप्त सुस्ती के अलावा मेरे सूबे मे भूकम्प के वाद से दूसरा ही वातावरण हो गया था। यहाँ सत्याग्रह तो हो ही नही रहा था, वल्कि हम लोगो के प्राय सभी साथी जेलो से मुक्त कर दिये गये थे और रिलीफ के काम मे उनका अगर पूरा सहयोग नही था तो किसी प्रकार का विरोध भी नही था। अगर पूरे सहयोग मे किसी प्रकार की कमी थी तो वह हमारे कारण से नही थी, गवर्नमेंट ही पूरा सहयोग नही चाहती थी और हमारे सभी कामों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। इसलिए आन्दोलन को, जो बहुत-कुछ स्वय वन्द हो चुका था, वाजाब्ता वन्द कर देने की वात मुझे खटकी नही। और बाते भी ऐसी नही थी जिनसे कुछ चोट लगे। इसलिए ध्यान से पढने के वाद मैंने उस वक्तव्य के साथ अपनी सहमति प्रकट कर दी। तुरत उसकी नकल की गयी और महात्माजी का विचार हुआ कि उसे अखवारो मे भेजा जाय। वहाँ से तो तार भी नही जा सकता था। इसलिए मै किसी को उसके साथ पटने भेजने का प्रबन्ध कर रहा था कि इतने मे एक आदमी पटने से आ गया।

पटने मे डाक्टर अनसारी का तार आया था। उसी को लेकर एक आदमी को वहाँ के लोगो ने भेज दिया था। पटने मे लोगों ने समझा था कि सहरसा मे तार नही मिल सकेगा। उस तार मे डाक्टर अनसारी के पटने आने की बात थी। वह इन्ही विपयो पर महात्माजी से वाते करने आ रहे है। उनके साथ डाक्टर विधान-चन्द्र राय और श्री भूलाभाई देसाई भी आवेगे। यह तार पाकर महात्माजी ने अपने वक्तव्य को अखवारो मे भेजने से रोक दिया और पटने जाने का निश्चय किया। डाक्टर अनसारी के पहुँचने के समय हम लोग पटने पहुँच गये। डाक्टर अनसारी प्रभृति से महात्माजी की वाते हुईं और उसके बाद वह वक्तव्य अखबारो मे भेज दिया गया। इस वक्तव्य के निर्णय से बहुतेरे कॉंग्रेसी सन्तुष्ट थे, पर जो कारण वताया गया था उसे वे पसन्द नही करते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि अब प्रमुख कॉंग्रेसियो का इकट्ठा होकर इस विषय पर विचार करना आवश्यक हो गया। महात्माजी का विहार का दौरा अभी पूरा नही हुआ था। छोटानागपुर जाना बाकी था, उधर भूकम्प से नुकसान नही हुआ था, पर गांधीजी ने हरिजन-सम्बन्धी काम से उधर का भी दौरा करना पसन्द किया। वह उधर चले गये। सलाह-मशविरे के लिए प्रमुख कॉंग्रेसियो को रॉंची मे वुलाया गया। यह कोई बाजाब्ता बैठक नही थी, लोगों की राय जानने के लिए ही वुलाहट हुई थी। वहाँ मै भी गया। सभी सूबो से वहुतेरे लोग आये। दो-तीन दिनो तक वातचीत हुई। निश्चय हुआ कि पटने मे अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी की वाजाब्ता वैठक की जाय। इस बीच मे महात्माजी और जगहो का दौरा कर लेंगे। मई (१९३४) के महीने मे पटने मे यह बैठक हुई।

इस बैठक की विशेषता यह थी कि अब तक सभी कॉंग्रेस-कमिटियाँ गैर-कानूनी थी। उनमे से किसी की भी बैठक गैर-कानूनी होती। पर गवर्नमेण्ट ने भी रगढग समझ लिया था। उसकी ओर से किसी तरह की रोक-टोक नही हुई। श्रीमती राधिकासिह-हाल मे बैठक हुई और सध्या समय उसी के मैदान मे। दो प्रकार के लोग थे। जो प्रस्ताव वर्किंग-कमिटी की ओर से पेश किया गया उसमे सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश था, केवल गाधीजी को सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया था। कौन्सिल के चुनाव मे भाग लेने की भी बात थी। साथ ही, महात्माजी के वक्तव्य का समर्थन था। कुछ लोग तो प्रस्ताव के साथ सहमत थे। कुछ लोगो ने उसका बहुत तीव्र विरोध किया। विरोध उस निश्चय के साथ तो था ही, महात्माजी के वक्तव्य मे जो कारण बताया गया था उसके साथ भी था। कुछ लोग, जो सत्याग्रह बन्द करने के विरोधी नही भी थे, कौन्सिल-चुनाव मे भाग लेने के विरुद्ध थे। बहुत गरमा-गरम बहस के बाद प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस विरोध मे अधिक भाग उन लोगों का था जिन्होने 'कॉंग्रेस-सोशलिस्ट-पार्टी' बनायी। पटने मे ही, इसी अवसर पर, सोशलिस्ट लोगो ने अपनी एक अलग कान्फ्रेन्स की। उन्होने अपनी पार्टी, कॉंग्रेस के अन्दर रहकर ही, सगठित की। इसके मुख्य कार्य्यकर्त्ता और नेता आचार्य श्री नरेन्द्रदेव और श्री जयप्रकाशनारायण थे। अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी मे विरोधियो मे मुख्य आचार्य नरेन्द्रदेव ही थे।

जो हो, अखिल भारतीय कॉंग्रेस-कमिटी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इसके बाद अब गवर्नमेण्ट के लिए भी रास्ता खुल गया। उसने कुछ दिनो के बाद कॉंग्रेस-कमिटी पर से गैर-कानूनी होने का हुक्म उठा लिया। कुछ दिनो मे वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई। उसने आदेश दिया कि कॉंग्रेस का पुन सगठन जल्द से जल्द कर लिया जाय और सभी कमिटियाँ बाजाब्ता काम करना शुरू कर दे। इस बार दोनो पक्ष ने अपने-अपने मन्तव्य स्वतत्र रूप से प्रकाशित कर दिये थे। इसलिए किसी पर किसी का दावा या बन्धन नही था। गाधी-अर्विन-समझौते के बाद उसकी शर्तो को पूरा कराने मे बडी कठिनाई हुई थी। इस बार वह सब बखेडा नही था। कुछ दिनो के बाद गवर्नमेण्ट ने एक-एक करके सभी आश्रमो और कॉंग्रेस-भवनो को वापस कर दिया। वे जिस अवस्था मे थे उसी दशा मे उन्हे हमको ले लेना था और फिर मरम्मत वगैरह का सारा काम हमको स्वय करना था। इसलिए, इस बार लिखा-पढी मे न समय लगाना पडा और न सिर खपाना पडा। वर्धा मे वर्किंग कमिटी की बैठक हुई जिसमे एक कौटुम्बिक विपत्ति के कारण मै नही जा सका। इन दिनो सेठ जमना-लाल बजाज स्थानापन्न सभापति बनाये गये और वही कॉंग्रेस का सचालन करने लगे। निश्चय हुआ कि कॉंग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय। यही अधिवेशन अक्टूबर मे बम्बई मे हुआ। सभी सत्याग्रही अभी तक छूटे नही थे। सरदार बल्लभभाई, पडित जवाहरलाल प्रभृति अभी तक जेल मे ही थे। सरदार तो बम्बई-कॉंग्रेस के पहले ही निकल आये; पर पडित जवाहरलालजी बम्बई-कॉंग्रेस के बहुत बाद तक जेल मे ही रहे।

१०६—भाई की मृत्यु और ऋण-संकट

इधर मेरे घर मे बडी विपत्ति आ गयी। मै, इसी कारण से, पटना मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हो जाने के बाद वर्धा मे होनेवाली वर्किंग कमिटी मे, शरीक न हो सका। अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त होने के बाद बहुत जल्द ही यह विपत्ति आयी।

रिलीफ के काम मे भाई ने भी बहुत परिश्रम किया था। छपरे मे ही उनको अधिक काम करना पडा था। प्रान्तीय काम मे भी उन्होने अच्छा भाग लिया था। मैने ऊपर एक जगह लिखा है कि उन्होने आसाम मे कुछ जमीन ली थी। कभी-कभी वहाँ जाया करते थे। अभी तक उसका कोई समुचित प्रबन्ध न हो सका था। वह मई के महीने मे वहाँ एक बार गये। वहाँ से लौटकर आये तो उनको ज्वर हो गया। वह जगह बहुत मलेरिया-ग्रस्त थी। उनको मलेरिया ने वही पकडा जिसका असर यहाँ घर लौटने पर मालूम हुआ। पर उससे वह अच्छे हो गये। मै एक दिन छपरे गया तो उनको अच्छा पाया, पर देखा कि वह बक का काम करने लगे है। उस समय वह बहुत कमजोर थे। मैने मना किया, कहा कि अभी कुछ और आराम कर ले, शक्ति हो जाने पर ही काम करे। यह सब कहकर मै पटने चला आया। मेरे पटना लौटने के दो-चार दिनो के अन्दर ही एक दिन दोपहर को छपरे से तार आया कि उनकी तबीयत खराब है, डाक्टर रघुनाथशरण को मै भेज दूँ अथवा साथ लेकर आऊँ। तार पढकर मेरी चिन्ता बढ गयी। यह तार छपरे के सिविल सर्जन डाक्टर राजेश्वर-प्रसाद की राय से दिया गया था।

जब तक डाक्टर शरण से मिलकर छपरा जाने का निश्चय हो रहा था तब तक दोपहर का स्टीमर, जो गगा-पार जाता है, निकल गया। हम लोगो ने रात तक ठहरना मुनासिब नही समझा। मोटर पर डाक्टर शरण के साथ मै रवाना हो गया। नाव से मोटर को गगा-पार करके हम लोग आगे चले। भूकम्प के कारण सडके तो यो ही खराब हो गयी थी, रेल बन्द हो जाने से जो बहुत बैलगाडियाँ और लारियाँ चली थी उससे सडको की हालत और भी रद्दी हो गयी थी। हम लोग प्राय दस बजे रात को छपरे पहुँचे। वहाँ के सभी डाक्टर बहुत चाव और प्रेम से चिकित्सा कर रहे थे। डाक्टर राजेश्वरप्रसाद तो दिन-रात वही रहते थे। जब उन्होने हालत काबू के बाहर देखी तभी तार दिया था। ज्वर के अलावा इस समय 'किडनी' की हालत खराब हो गयी थी। इसलिए पेशाब और खून का जाँचना अत्यन्त आवश्यक था। उनको पहले कुछ चीनी की शिकायत थी और उसकी चिकित्सा भी करायी गयी थी जिससे वह कुछ सँभल गयी थी, पर कमजोरी की हालत मे शायद उसने भी जोर कर दिया था।

रात को ही पेशाब इत्यादि लेकर आदमी पटने भेजा गया। डाक्टरो ने बहुत परिश्रम किया, पर दिन-दिन बीमारी बढ़ती गयी। पटने से वैद्यराज पडित ब्रजबिहारी

चौबेजी को भी बुलाया। उन्होने भी कुछ उपचार किया, पर किसी का कुछ असर न हुआ। अन्त मे डाक्टरो की राय हुई कि शायद एक 'किडनी' निकालने से कुछ लाभ हो। डाक्टर राजेश्वरप्रसाद अच्छे सर्जन है, पर वह यह जवाबदेही अकेले लेना नही चाहते थे। डाक्टर बनर्जी के बुलाने का प्रयत्न किया गया, पर वह मेडिकल कालेज बन्द होने के कारण पटने मे नही थे। मुँगेर मे डाक्टर बटुकदेवप्रसाद वर्मा सिविल सर्जन थे। वह भी अच्छे सर्जन है। वह बुलाये गये, पर उनके हाथ मे कोई दूसरा मरीज था, जिसको तुरन्त छोडकर वह कही बाहर जा नही सकते थे। लखनऊ मे तार दिया कि वहाँ के नामी सर्जन डाक्टर भाटिया बुलाये जायँ, पर वह भी न आ सके। कलकत्ते तार दिया तो वहाँ के मित्रो ने नामी सर्जन डाक्टर पचानन चटर्जी को भेजा। पटने के कर्नल एलेक्जेण्डर को भी बुलाया। सबने देखकर वही कहा कि कमजोरी इतनी है कि छुरी लगाना ठीक न होगा। हार मानकर नश्तर की बात छोड दी गयी। इसके दो दिनों के अन्दर ही उनका स्वर्गवास हो गया।

हमने तार देकर जमशेदपुर से जनार्दन और उनके स्त्री-बच्चे को बुला लिया था। लखनऊ से दामाद और लडकी भी आ गयी। शिकारपुर की बबुनी मृत्यु होने पर पहुँची। पटने से साथ ही साथ भाई मथुराप्रसादजी आये थे। पूज्य ब्रजकिशोर बाबू भी आ गये। इस तरह सभी इष्ट-मित्रो के बीच, बाल-बच्चो से घिरे हुए, उन्होने शरीर-त्याग किया। हम सब राम-नाम ले रहे थे और गीता-पाठ कर रहे थे। हम सबके लिए तो आफत का पहाड टूट पडा। हमने घर से कभी सम्बन्ध रखा ही न था। सब कुछ वही करते थे। जब मै वकालत कर रहा था और रुपये कमा रहा था तब भी वही मेरी देखभाल करते थे। जब मै असहयोग करके फक्कड़ बन गया तब भी वही मेरी देखभाल करते थे। मेरी स्त्री और लडके भी उनके ही साथ बराबर रहे थे। मै जब कभी जाता था तो उनसे मिल आता था। उन्होने घर की स्त्रियो को कभी एक दूसरे से अलग न होने दिया, लडको मे किसी प्रकार का भेदभाव नही किया। लडके भी उनको ही पिता जानते और मानते थे। यह विपत्ति अचानक आ पड़ी। वह भी ऐसे समय आयी जब मै दूसरे काम मे व्यस्त था।

हम लोग जल्द ही दाह-क्रिया के लिए सरयूजी चले गये, जो उन दिनो छपरा-शहर से कुछ दूर पर थी। दाह-क्रिया करते देर हो गयी। दूसरे दिन सवेरे, घर के सब लोगो के साथ, मोटर पर हम जीरादेई चले गये। वही घर पर श्राद्धादि क्रिया की गयी। भाई सारे सूबे मे विख्यात थे। वह सार्वजनिक सेवा मे बहुत समय लगाते थे। इसके अलावा छपरे मे और दूसरी जगहो मे भी लोगो की सेवा-सहायता किया करते थे। किसी के घर मे यज्ञ हो, वह प्रबन्ध मे मदद करते। किसी प्रकार का सभा-सम्मेलन कही हो, वह प्रबन्ध मे जुट जाते थे। व्यक्तिगत व्यवहार लोगो के साथ इतना अच्छा रखते थे कि किसी को कोई जरूरत हो तो उसको पूरा करने मे हिचकते नही थे। इसलिए उनकी मृत्यु की खबर जब छपी तो सारे सूबे से बहुत मित्रो के सहानुभूति-सूचक तार और पत्र आने लगे। इन सबसे मुझे बड़ा ढाढ़स

हुआ। महात्माजी के सान्त्वना-सूचक शब्दो का असर तो पडे विना रह ही नही सकता था।

यह सब होते हुए भी मेरे लिए यह बहुत ही कठिन और दु ख का समय हुआ। मै कह चुका हूँ कि घर के कारबार से मेरा कुछ सरोकार नही रहा करता था। सव कुछ भाई ही देखा करते थे। यहाँ तक कि जब मै रुपये पैदा किया करता था तव भी मेरे निजी आराम और जरूरत की चीजो का खयाल वही किया करते थे। जव पटने आते, नौकर से पूछते कि मेरे कपडे तो ठीक है न, मेरी धोतियाँ अच्छी है या पुरानी हो गयी है, मेरे पास कुर्ते कितने है, मै नाश्ता क्या करता हूँ—इत्यादि। और, जरूरत के मुताविक उस नौकर को, चाहे मेरे क्लर्क मौलवी शराफत हुसैन को, जिनको हम सब 'मुंशीजी' कहा करते थे, हिदायत दे जाते। मै भी, जो कुछ खर्च के वाद वच जाता सव उनके ही हवाले कर देता। घर पर थोडी जमीन्दारी थी जिससे ४००) से ५००) तक मासिक वचत होगी। पिताजी, जमीन्दारी के काम से अलग ही रहते थे, इससे कुछ बदइन्तजामी हो गयी थी, जिसके कारण इतनी आमदनी होते हुए भी कभी-कभी कष्ट हो जाया करता। मै पहले ही लिख चुका हूँ कि जब भाई प्रयाग मे वी० ए० मे पढ रहे थे तब परीक्षा के समय उन्होने युनिवर्सिटी-फीस के लिए रुपये माँग भेजे; इतनी रकम कोई वडी चीज नही थी, पर इन्तजाम का सारा भार दीवान पर था, दीवान जल्दी न दे सके तो पिताजी ने कर्ज लेकर रुपये भिजवाये। यह तो एक साधारण उदाहरण है। रुपये की दिक्कत हमेशा रहा करती।

मै छपरे मे जुव पढता था, वहाँ नगद रुपयो की वहुत कम जरूरत होती। दो मोदियो से वात पक्की हो गयी थी। मै पुर्जा लिख देता, वे जरूरत की चीजे दे देते। सव पुर्जे लेकर वे जीरादेई जाते और रुपये वही से पाते। केवल स्कूल-फीस और पुस्तक अथवा कपड़ा खरीदने के लिए नगद रुपये की जरूरत होती। जव कोई घर से जमीन्दारी के मुकदमे की पैरवी के लिए आता तो उससे मै ले लेता। इसके लिए एक आदमी, जिनका नाम किन्नू राय था, नियुक्त थे। वह हमेशा छपरा आते-जाते रहते। इसलिए मुझे कभी कोई तकलीफ नही हुई। पर यह बात भाई के साथ नही थी। उनको पटने या प्रयाग मे खर्च के लिए हर महीने नगद रुपये चाहिए था। इसके लिए उनको वहुत कष्ट झेलना पडा था। इस वात को वह भूले नही थे। इसलिए, पिताजी के देहान्त के वाद, जब उन्होने जमीन्दारी का इन्तजाम सँभाला तो मेरे पास खर्च भेजने का वहुत अच्छा प्रवन्ध कर दिया, वल्कि सच तो यह है कि पिताजी के जीवन-काल मे ही, जव वह प्रयाग से वी० ए० पास करके आ गये, जमीन्दारी का काम देखने लगे। प्रवन्ध उन्होने अच्छा कर दिया।

पिताजी के मरने के समय थोडा कर्ज था। उनकी मृत्यु के वाद एक भतीजी की शादी हुई, उसमे भी कुछ कर्ज हो गया। इस तरह कई हजार का कर्ज था। पर इतनी जमीन्दारी के लिए यह कर्ज कुछ इतना वडा न था कि अदा ही न हो सके, विशेषकर अगर कुछ बाहर की नगदी आमदनी हो जाय। भाई साहव विहार-वक की

छपरा-शाखा के मैनेजर थे। पर उनको इतना वेतन नही मिलता था कि वहाँ का सब खर्च चलाकर वह कुछ बचा सके। मै कुछ कमाता था जरूर, पर खर्च भी काफी करता था। इसलिए यह कर्ज अदा न हो सका। एक और लडकी की शादी आ गयी। उसमे भी खर्च पडा। चाची मर गयी। उनके श्राद्ध मे खर्च पडा। पर इन सबसे कर्ज बढा नही, बल्कि आमदनी कुछ बढ गयी, क्योकि १२००) की सालाना आमदनी जो चाची को तीर्थाटन के लिए मिली हुई थी, अब बचने लगी। तो भी किसी तरह बोझ हल्का न हुआ। पर सब लोग बडे आराम से रहते। ऊपरी ठाठ-बाट बहुत अच्छा था। नाम और यश अच्छा फैला। भाई साहब बहुत ही उदार थे। खर्च काफी किया करते थे, किसी व्यसन या शौकीनी मे नही, पर तरह-तरह के दूसरे खर्च थे। इसलिए अच्छा प्रबन्ध होने पर भी पहले का कर्ज अदा न हो सका। वह आशा लगाये थे कि मै इतने पैसे कमा लूँगा कि कर्ज आसानी से अदा हो जायगा। जब मैने वकालत छोडने का निश्चय कर लिया तो उनकी सब आशाओ पर पानी फिर गया। पर कभी उन्होने एक शब्द भी मुझसे कहा नही।

वह जानते थे कि सार्वजनिक सेवा की ओर मेरी अभिरुचि उनके ही प्रोत्साहन से हुई थी। जहाँ तक हो सका, वह बराबर इसमे मेरी मदद ही करते थे। कभी असन्तोष प्रकट न करते। मुझे इस तरह के काम से रोकने का खयाल भी अपने मन मे न आने देते। इसलिए, अपनी सब सासारिक आशाओं पर पानी फिरते देखकर भी वह खुश ही रहे और हमेशा मुझे खुश रखने के प्रयत्न मे ही लगे रहे। उन्होंने यह सोचा कि बक की नौकरी से आमदनी ज्यादा नही हो सकती। ज्यादा मुशाहरावाली दूसरी नौकरी चाहते तो मिल जाती, क्योकि चुस्त मैनेजर होने की उनकी काफी ख्याति थी। पर जिस बक के स्थापित होने मे उन्होने मदद की थी उसको किसी तरह छोडना नही चाहते थे। इसके अलावा उसमे सुविधा भी थी। वह नौकर की तरह नही, मालिक की तरह काम करते। उतना परिश्रम शायद ही कोई नौकर (मैनेजर) किसी बक का करता हो। साथ ही, वह प्राय रविवार को जीरादेई चले जाते और घर का कारबार देख आते। सार्वजनिक कामो मे भी वह बहुत समय लगाते। बक के अधिकारियों की ओर से इसमे कभी रुकावट नही डाली जाती। उन्होंने इन्ही कारणो से बक से अलग होना तो गैरमुनासिब समझा, पर सोचा कि किसी दूसरे उपाय से कुछ आमदनी बढाई जाय। इसलिए उन्होने चावल की एक मिल खोली।

मै तो कॉग्रेस के काम मे व्यस्त था, मिल का काम बहुत आगे बढ जाने पर मुझे इसका पता लगा। भाई के हाथ मे बक का काम, कोआपरेटिव-सोसाइटियो का काम और दूसरे-दूसरे इतने अधिक काम थे कि वह इस मिल की देख-रेख मे खुद समय न दे सके। उन्होंने दूसरो पर भरोसा किया। दूसरे लोग, चाहे अनुभव के अभाव से, चाहे सुस्ती से, चाहे और किसी कारण से, ठीक प्रबन्ध न कर सके। मिल मे रुपयो की कमी हो गयी। धान का मौसम बीतता जाता था। यदि उस समय धान न खरीदा गया तो मुनाफा न होगा। पर आशा की जाती थी कि यदि किसी से रुपये

लेकर लगा दिये जायँ तो मौसम वीतने पर चावल विक जाने से रुपये वापस आ जायँगे और महाजन को अदा कर दिये जायँगे। वाजार की हालत ऐसी समझी जाती थी कि लागत रुपयों के व्याज देने के वाद भी अच्छा मुनाफा रहेगा। उन्होने ऐसा ही समझा और मुझसे कहा कि सेठ जमनालालजी से एक 'सीजन' के लिए कुछ रुपये ला दो। सेठजी ने इस वात को मजूर कर लिया। रुपये आ गये। मिल खूब जोरो से चलने लगी। तैयार होने के पहले ही चावल विक जाता। खरीदारो की भीड लगी रहती। सव समझते थे कि खूव मुनाफा होगा। मिल के सचालक महाशय ने दाम लगाने मे ही भूल कर दी थी। लागत से कम दर पर ही चावल विक रहा था। ऐसी अवस्था मे खरीदारो का टूट पडना कोई आश्चर्य नही था। जितना ज्यादा चावल वनता और विकता, घाटे की रकम उतनी ही वढती गयी। सेठजी के रुपये आ जाने से मैने भी थोड़ी दिलचस्पी ली। एक दिन मिल मे गया। वहाँ ठहर कर हिसाव देखा। मालूम हुआ कि लागत से कम पर ही चावल विक रहा है। मैनेजर मेरी वात मानते नही। अन्त मे भाई साहव को भी समय लगाना पडा। उन्होने भी हिसाव लगाकर देखा और समझ लिया कि वहुत नुकसान हो चुका है। नतीजा यह हुआ कि सेठजी का रुपया समय पर नही दिया जा सका। आहिस्ता-आहिस्ता कुछ-कुछ अदा हुआ, पर वहुत ज्यादा वाकी रह गया।

जव ऐसी अवस्था मालूम पड़ी तो हम दोनो वहुत शर्मिन्दा हुए, पर कुछ कर नही सकते थे। तकाजा होता रहा, पर रुपये अदा न हो सके। सेठजी के एक मारवाडी मित्र श्री वैजनाथ केडिया विहार मे कही थोडी जमीन लेकर खेती करना चाहते थे। एक वार सेठजी और केडियाजी दोनो जीरादेई आये। मेरी जमीन्दारी मे ७०-८० वीघे जमीन ऐसी है जो अपने जोत मे रहती है। उसमे धान, गेहूँ, ऊख इत्यादि सव प्रकार की फसले पैदा हो सकती है। मेरे मकान से प्राय एक मील के अन्दर ही वह जमीन है। सेठजी के और दूसरे कर्ज मिलकर ६०-६५ हजार होते थे। वह इस पर राजी हो गये कि यह ज़मीन और मकान उनको हम वेच दे तो वह सवका सव कर्ज चुकता कर देगे। मकान पक्का है, भड़कदार है, वना तो था दादा के समय में, पर भाई साहव ने उसमे कई हजार लगाकर उसे वढाया था और कुछ हिस्से को दो-महला वनाया था। यदि मकान और जीरात की जमीन हम उस समय वेच देते और कर्ज से मुक्त हो जाते तो हर तरह अच्छा होता। इसके वाद भी कम से कम ५००) मासिक की आमदनी जमीन्दारी से वेदाग वच जाती। हाँ, घर कही अन्यत्र वनाना पडता। पर इस समय घर के लोग अधिक छपरा रहा करते थे। छोटा घर कही अपनी जमीन्दारी मे वना लेना मुश्किल नही था। मैने इस राय को पसन्द किया और इस पर जोर दिया कि कर्ज अदा करने का इससे वेहतर रास्ता इस समय नही हो सकेगा। इसलिए इसे तय कर देना चाहिए।

सेठ लोगो से वातचीत हुई। वे तो राजी थे ही। सेठ जमनालाल वजाज ने भी वहुत जोर दिया कि यह वोझ हटा देना चाहिए, नही तो आगे चलकर यह गला दवा

देगा। भाई साहब बाप-दादा के बनाये और हम सबके जन्म-स्थान पुराने मकान को बेचने से बहुत हिचके, पर मजबूरन कुछ-कुछ राजी भी हुए। पीछे घर की स्त्रियो और कुछ मित्रो की राय से, जिनमे बाबू मथुराप्रसाद भी थे, प्रभावित होकर वह मकान और खेत बेचने पर राजी नही हुए। मामला खत्म हो गया। पैतृक मकान और जीरात के खेत तो नही बिके, पर थोडे ही दिनों मे दूसरे महाजनो का इतना जोर हुआ कि काफी जमीन्दारी बेचनी पडी।

चावल-कल के घाटे से तो दबे थे ही, उन्होने कुछ दूसरा व्यापार करना चाहा। छपरे मे बिजली का कारखाना खोलने का प्रबन्ध किया। १९३० मे, जब में जेल मे था, यह बात तय हुई। रुपये अपने पास तो थे नही, छपरा-इलेक्ट्रिक-सप्लाई-कम्पनी कायम की गयी। गवर्नमेण्ट ने लाइसेन्स उनको ही दिया, कम्पनी को नही। इसलिए बिजली-कल उन्होंने ही बनवायी। रुपये कर्ज के थे। कुछ बक से लेकर कम्पनी ने दिया। कुछ 'शेयर' बेचकर और कुछ उन्होने अपनी जवाबदेही पर कर्ज लेकर रुपये लगाये। पहले का और अबका कर्ज मिलकर बहुत हो गया था। मरने के एक-दो साल पहले ही उनको प्राय २,२००) सालाना आमदनी की जमीन्दारी बेच देनी पड़ी। तो भी अभी सब कर्ज अदा न हुआ। सेठ जमनालालजी के रुपये तो बाकी रह ही गये। दूसरे भी कई जगहों के रुपये बाकी थे। मुझे सेठजी के सिवा दूसरो के कर्ज की खबर नही थी। जब जमीन्दारी बिकी तो मैंने सोचा था कि अब बोझ हल्का हो गया होगा। पर यह कहाँ होनेवाला था। कुछ तो खर्च के कारण और कुछ इस तरह के व्यापार के कारण कर्ज बढता ही गया। कभी-कभी वह कहा करते थे कि बिजली के हिस्से अगर बिक जायँ और जो रुपये लगाये गये है वे उतर आवे तो बोझ हल्का हो सकता है। पर यह भी उन्होने आशावादी होने के कारण ही कहा था। कुछ हिस्से बेचने का प्रयत्न भी किया गया, पर चूँकि बिजली-कल पर कम्पनी का स्वत्व ही नही था, हिस्सा बिकने मे कठिनाई हुई। इस तरह अपने ऊपर कर्ज का भारी बोझ बढता गया। ब्याज भी बढता गया और अदाकारी का कोई सामान नजर नही आता था। लडके लोगो मे मेरा भतीजा इँगलैड से लोहा बनाने का काम सीखकर आया और ताता कम्पनी मे उसे जगह मिल गयी थी। वहाँ उसको ३००-३५०) के लगभग मिलता था, पर वहाँ का खर्च और घर के लोगो के वहाँ रह जाने का खर्च इतना अधिक होता कि वह बहुत बचा नही सकता। शायद भाई साहब जिस तरह मुझसे कभी कुछ नही माँगते और न मुझे आर्थिक चिन्ता मे कभी डालना चाहते, उसी तरह उससे भी कभी कुछ न चाहते और न कहते। उनकी मृत्यु हो जाने के बाद हमको इसका पता लगा कि हम कितने गहरे पानी मे उतर गये है। लोगो का उन पर इतना विश्वास था कि बिना किसी लिखा-पढी के लोगो ने हजारो-हजार का कर्ज उन्हे दे दिया था। अगर वह जीते रहते तो और भी न मालूम कितने हजार उनको लोगो से मिल जाते।

उनके मरने के बाद जब मुझे यह सब देखने की नौबत आयी तो पहले तो

मुझे यही नही मालूम था कि किसको कितना देना है और किससे कितना पाना है। मै छपरे मे ठहर गया। उनके एक विश्वासी बक के नौकर थे जो उनके निजी लेन-देन की भी पूरी खबर रखते थे। उन्होने मुझे कुछ बताया और पीछे महाजन लोग एक-एक करके खुद मेरे पास आये और कहने लगे। जब मुझे पूरा पता चल गया कि कितना देना है तो मै बहुत परेशान हो गया, क्योकि सब कुछ बेच देने पर भी सबका कर्ज अदा होना कठिन था। हाँ, यदि अच्छी कीमत आ जाय तो किसी तरह शायद सब अदा हो सके। पर अब जमीन्दारी की अच्छी कीमत देता कौन है और वह भी जब जल्दी मे बेचना हो! इतने कर्ज का भार सिर पर रखना मेरे लिए असह्य था। मै चाहता था कि किसी तरह लोग जमीन्दारी ले लेते और हमको मुक्त कर देते तो बडी कृपा होती। पर सभी महाजन जमीन्दारी लेना नही चाहते थे। मैने सबसे कहा कि मै कोई न कोई प्रबन्ध करके एक साल मे रुपये अदा करने का प्रयत्न करूँगा और जो जमीन्दारी लेना चाहे उनको तो तत्काल ही लिख देने को तैयार हूँ। लोगो का भाई साहब पर इतना विश्वास था—उनके साथ इतना प्रेम था और मुझ पर भी विश्वास था कि सभी बिना हिचक के मेरी बात मान गये। मै चाहता था कि अब सब काम छोड-छाडकर जमीन्दारी बेचने के प्रबन्ध मे लग जाऊँ और इस बोझ को हटाकर फिर सार्वजनिक काम मे आ लगूँ।

१०७—ऋणमुक्ति और बम्बई-काँग्रेस

इतने ही मे बम्बई मे होनेवाली काँग्रेस का समय नजदीक आने लगा और राभापति के लिए मेरा नाम आया। कराची-काँग्रेस के बाद उडीसा मे होनेवाली काँग्रेस के सभापतित्व के लिए भी मेरा नाम आया था और एक प्रकार से मै चुना भी गया था। पर सत्याग्रह छिड जाने के कारण वह काँग्रेस हुई ही नही। जब फिर बाजाब्ता काँग्रेस होने लगी तो स्वाभाविक रीति से मेरा ही नाम लोगो को जँचने लगा। इसके अलावा भूकम्प-सकट-निवारण के काम से सारे देश मे मेरे प्रति बहुत प्रेम और विश्वास बढ गया था। गाधीजी भी चाहते थे कि मै ही सभापति होऊँ।

भाई की मृत्यु के आघात से मै घायल था ही। उस पर कर्ज के बोझ का पता लगते ही मै और भी कातर हो गया था। मैने ऐसी अवस्था मे काँग्रेस के सभापतित्व का बोझ लेना अनुचित और असम्भव समझा। महात्माजी की ओर से श्री महादेव-भाई देसाई ने लिखा कि भूकम्प-सम्बन्धी काम से सन्तुष्ट होकर देश मेरे प्रति विश्वास और श्रद्धा दिखलाना चाहता है, मुझे इस भार को लेना उचित है, कर्ज के सम्बन्ध मे सेठ जमनालालजी से कुछ बाते हुई है, वह देखेगे। शायद वहाँ यह समझा गया था कि उनका ही अधिक कर्ज है तो वह कोई उपाय सोचकर कोई प्रबन्ध कर देगे।

सेठजी एक बार मेरे घर के लोगो से मिलने जीरादेई आये। घर के लोगो के साथ भी उनका बहुत प्रेम हो गया था। मेरी भौजाई, मेरी स्त्री और दो पतोहुएँ बहुत दिनो तक साबरमती-आश्रम मे रही थी। वही उनसे सबकी मुलाकात हो गयी

थी। इसलिए भाई के मरने पर पुछार करने वह आये थे। घर का सब हाल और कर्ज का भी कुछ हाल सुना था। उनका खयाल था कि सब जमीन्दारी यदि ठीक कीमत पर बिक जाय तो सब कर्ज अदा हो सकेगा, पर जमीन्दारी की लालच एकदम छोडनी पडेगी। मै इस पर राजी था ही। इसलिए महात्माजी ने उनका हवाला दिया और कर्ज की चिन्ता उन पर छोडकर कांग्रेस का भार उठाने को कहा। यहाँ महाजनो ने भी एक साल का समय दे ही दिया था। मैंने सभापतित्व का गुरुतर भार स्वीकार कर लिया। सेठजी ने अपने मुनीम को भेज दिया कि सब महाजनो से हिसाब कर ले जिससे इसका पूरा पता लग जाय कि कितना देन है और उनसे बातचीत भी करके यह पता लगावे कि उनमे से कौन जमीन्दारी लेने पर राजी है।

पर मेरी विपत्ति का अभी अन्त नही था। मेरे भतीजा जनार्दन का एक बच्चा था। करीब छ बरस का हो चुका था। जैसा पहले भी लिख चुका हूँ, उसे सभी बहुत प्यार करते थे। मेरी भी बहुत मुहब्बत थी। उसको ज्वर हो गया। उसके सिर मे कभी-कभी दर्द हुआ करता था। भाई साहब की मृत्यु के समय वह अपनी माँ के साथ जमशेदपुर से आया था। इलाज कराने के लिए मै उसे पटने ले आया। यहाँ उसे टाइफायड हो गया। १८-२० दिनो तक बीमार रहकर वह भी चल बसा। इसकी चोट हमको बहुत लगी। भाई साहब तो चले ही गये थे, अब यह होनहार बच्चा भी चला गया। इन सब कारणो से मै बहुत व्यथित था। पर कॉग्रेस का सभापतित्व स्वीकार कर लिया था, एक तरह से अच्छा ही हुआ, उसमे जी लग गया और अब घर की चिन्ता करने का समय ही नही रह गया। कांग्रेस के सभापतित्व की बात कहने के पहले घर की बात पूरी कर देना अच्छा होगा, यद्यपि यह अध्याय सभापतित्व के बाद भी कुछ दिनो तक चलता रहा।

जब कर्ज का सब हिसाब देख लिया गया और सेठजी को रिपोर्ट दी गयी तो इस बात का प्रयत्न किया गया कि जो राजी हो उनको जमीन्दारी दे दी जाय। कुछ महाजन राजी हुए। उनके हाथ जमीन्दारी बेच दी गयी। महाजन लोगो मे प्राय सभी, एक को छोडकर, बहुत अच्छी तरह पेश आये। एक महाशय ने कसकर सूद-ब्याज लिये—एक पैसा भी, जैसा सभी महाजन फारखती के समय किया करते है, छोडा नही। और सबो ने, भाई साहब की मृत्यु के बाद से अदाकारी के दिन तक, जो उसके सात-आठ महीने बाद हुई, ब्याज नही लिया। किसी-किसी ने और भी कुछ छोड दिया। जमीन्दारी वगैरह का अधिकाश बेच डालने पर भी, कुछ महाजनो के—जो जमीन्दारी लेना नही चाहते थे—और सेठजी के रुपये बाकी रह गये। मैंने बाकी सारी जमीन्दारी सेठजी के नाम मे जरपेशगी लिख दी और उन्होंने दूसरे महाजनो के नगद रुपये अदा करा दिये। सब रुपये उस समय वह अपने पास से नही दे सकते थे, तो उन्होने सेठ घनश्यामदास बिडला से कुछ दिलवाये और कुछ खुद दिये। इस तरह सारा का सारा कर्ज अदा हो गया। पर एक धूर जमीन भी अपनी जमीन्दारी की नही रह गयी। सेठजी को बिहार मे जमीन्दारी तो लेनी नही थी। उस समय उन्होंने उसे

इसलिए लिखवा लिया कि आहिस्ता-आहिस्ता जमीन्दारी बेचकर उनके रुपये अदा कर दिये जायँगे। यही विचार घनश्यामदासजी का भी था। इस तरह मै कर्ज के बोझ से मुक्त हो गया।

हाँ, जमीन्दारी बेचकर सेठो के रुपये अदा करने थे। जब तक अदा न हो, सूद देना था। अब जमीन्दारी मे से एक पैसा भी हम घर-खर्च मे नही ले सकते थे। जीरात की जमीन भी जरपेशगी मे थी। पर सबकी आबादी वगैरह हम लोगो को ही कराना था और उन लोगो को सूद सालाना अदा करते जाना था। जमीन्दारी का ठेका उन्होने मेरे छोटे लडके धन्नू के नाम से लिख दिया था। इस तरह, यद्यपि कानूनी तौर पर जरपेशगीदार सेठजी हुए, तथापि जमीन्दारी और जीरात हमारे ही कब्जे मे रही। उनको सिर्फ सालाना सूद मिलना था और जैसे-जैसे हो सके असल रुपये भी पाने थे। लडके लोग कुछ न कुछ पैदा कर रहे थे, इसलिए जमीन्दारी पर भोजन के लिए भरोसा करने की जरूरत नही थी। मैने इस बात की कोशिश की कि बची हुई जमीन्दारी बिके, पर अब जमीन्दारी की कीमत और भी घटती गयी। कांग्रेस-मिनिस्ट्री ने लगान घटाकर आमदनी भी कम कर दी। अब जमीन्दारी की न वह कीमत रही और न वह इज्जत। इसलिए जमीन्दारी अभी तक बिकी नही है। पर मै केवल उसे बेचने के ही भरोसे बैठा न रहा। चम्पारन मे कुछ जमीन मैने वकालत के जमाने मे ही ली थी। वहाँ पास मे ही चीनी-कल बन जाने से ऊख से कुछ पैसे मिलने लगे। जीरादेई के पास की जीरात मे भी ऊख से कुछ पैदा होने लगा। कुछ जनार्दन की कमाई से, कुछ धन्नू के ऊख के ठेके की बचत से, कुछ घर के पुराने कीमती शाल-दुशाले बेचकर, हमने सूद और असल अदा करना शुरू कर दिया। यानी जो कुछ आता और बचता, सब इसी काम मे लगा दिया जाता। इस तरह अब तक उस कर्ज की अच्छी रकम अदा हो चुकी है। पर अब भी कुछ रकम बाकी है। सूद हमेशा अदा होता गया है। अब ऐसी हालत है कि मै आशा करता हूँ, असल भी कुछ दिनो मे इसी तरह से, जमीन्दारी बिना बेचे ही, अदा हो जायगा। वे दिन मेरे लिए बहुत ही अन्धकारमय थे जब अपने ऊपर इतने कर्ज का भार मैने पाया। सेठ जमनालालजी की चतुरता और उदारता ने रास्ता निकाला और घनश्यामदासजी की सहायता लेकर उन्होने मेरे सिर के बोझ को हल्का कर दिया। जमीन तो नही बची, पर इज्जत बच गयी, ईमान बच गया, सब महाजनो का जो हम पर विश्वास था वह भी बच गया—साथ ही, देश के महत्त्वपूर्ण काम का भार उठाने की शक्ति भी बच गई।

भाई साहब गये। जमनालालजी ने उनका स्थान ले लिया। मै पहले-जैसा ही निठल्ला बना रहा। उनके प्रति शब्दो द्वारा कृतज्ञता नही प्रकट की जा सकती। साथ ही, मै अपने भतीजे जनार्दन और दोनो लडके मृत्युञ्जय तथा धनञ्जय को भी हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि ऋणसकट के इस कठिन समय मे वे भी अधीर नही हुए। घर का सब कुछ खुशी-खुशी हँसते-हँसते उन्होने दे डाला। एक प्रकार से पहला काम उनका इस बोझ को ढोना और कर्ज को अदा करने के लिए दस्तावेज

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू अपनी धर्मपत्नी के साथ (बम्बई काँग्रेस, अक्टूबर १९३४)

पर दस्तखत करना ही हुआ। उन्होने न कभी शिकायत की और न मुंह बनाया। अब वे अपना कमाते-खाते है। जो बोझ अभी रह गया है उसको भी हटाने की चिन्ता मे वे है। इस हिम्मत और सब्र के लिए उनको भी बधाई है। ईश्वर उनका भला करेगा। अभी ही अच्छे दिन लौटते दीखने लगे है।

बम्बई-कांग्रेस के दिन निकट आ गये। १९३१ के मार्च के बाद कॉग्रेस का बाजाब्ता अधिवेशन यही होनेवाला था। इस बीच मे दूसरी बार का सत्याग्रह हो चुका था। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने सुधार-सम्बन्धी अपनी नीति श्वेत पत्र के रूप मे प्रकाशित कर दी थी। विलायत मे नया विधान उसी के अनुसार बन रहा था। कॉग्रेस गैर-कानूनी सस्था अब नही थी। वह इन विषयो पर अपनी राय देनेवाली थी। साथ ही, १९३४ के नवम्बर मे ही—अर्थात् कॉग्रेस-अधिवेशन के चन्द हफ्तों के अन्दर ही, केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यो का चुनाव होनेवाला था। इस सम्बन्ध मे भी कॉग्रेस को अन्तिम फैसला देना था। भावी-विधान-सम्बन्धी नीति भी निर्धारित करनी थी। इसलिए अधिवेशन का महत्त्व काफी था। मैंने परिपाटी के अनुसार अपना भाषण लिखा। पर वह अभी पूरा न हो पाया था। मैंने सोचा था कि कुछ पहले ही वर्धा चला जाऊँगा और वहाँ एकान्त मे बैठकर उसे समाप्त करूँगा। वहाँ गाधीजी से भी बाते कर लेने का मौका मिलेगा। पर जो भाषण मैंने लिखा था उसमे प्रस्तावित विधान की काफी आलोचना थी। मैंने उसे डाक्टर सच्चिदानन्दसिह को दिखलाया कि कही किसी अश मे, अज्ञान अथवा असावधानी के कारण, मैंने कुछ भूल तो नही की है। उन्होने उसे देखा और मुझे विश्वास दिलाया कि आलोचना ठीक है और कोई भूल नही है। मै पटने से जमशेदपुर गया। वही से वर्धा जानेवाला था। पर वहाँ मुझे ज्वर दमा का दौरा हो गया। वही ठहर जाना पडा। अच्छा होकर वर्धा गया। वहाँ की अच्छी आब-हवा मे जल्द ही अच्छा हो गया। भाषण भी वही समाप्त कर सका।

१०८—बम्बई में कॉंग्रेस की तैयारी और कार्यवाही

बम्बईवालो को कॉग्रेस-अधिवेशन के प्रबन्ध के लिए कम समय मिला था। पर उन्होने बहुत ही अच्छा और विशाल आयोजन कर लिया था। जैसे रिलीफ-कमिटी के रुपये जमा करने के समय लोगो मे उत्साह हो गया था वैसे ही इस अधि-वेशन के लिए भी काफी उत्साह हो गया था। लोग समझते थे कि यह दिखला देना चाहिए कि कॉग्रेस मरी नही है। उन्होने एक कॉग्रेस-नगर बसाया था। वही समुद्र के किनारे, खुले मैदान मे, अधिवेशन के लिए, आसमान के नीचे, विराट् पडाल बनाया जिसमे प्राय एक लाख आदमी बैठ सकते थे। खादी-प्रदर्शनी का भी वैसा ही सुन्दर और विस्तृत प्रबन्ध किया। सभापति के स्वागत के लिए विशेष प्रबन्ध था। 'कल्याण' स्टेशन पर ही मैं नागपुर-मेल से उतार लिया गया। वहाँ मुँह-हाथ धोकर नाश्ता-पानी करके मैं तैयार हो गया। कल्याण मे ही कई सस्थाओं की ओर से मुझे मानपत्र दिये गिये। वहाँ से मैं घर के लोगो और कुछ मित्रो के साथ स्पेशल ट्रेन पर गया।

अधिक चुस्त और जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली सस्था हो जाय। महात्माजी के इस विचार से देश मे एक प्रकार की खलबली-सी हो गयी थी। यद्यपि महात्माजी ने इस बात का पूरा आश्वासन दिया था कि बाहर से भी वह कॉग्रेस की पूरी सहायता कर सकेंगे और उनके इस प्रकार हटने से कॉग्रेस मे कमजोरी न आकर उसकी शक्ति बढेगी, तथापि लोगो को इस आश्वासन से सतोष नही होता था। मैंने अपने भाषण मे महात्माजी के इस निश्चय का भी समर्थन किया था। पर अखिल भारतीय कमिटी के लोगो मे इससे बडा असतोष था।

मै सोचता था कि महात्माजी का यह निश्चय कॉग्रेस को कमजोर करने अथवा उसकी किसी तरह बुराई करने के लिए तो किया नही गया था, हम जब चाहेगे उनसे सलाह-मशविरा कर सकेंगे और सभी महत्त्वपूर्ण बातो मे उनका पथ-प्रदर्शन हमेशा हमे मिला करेगा, पर उनके हट जाने से एक बात अवश्य होगी—सभी निश्चयो का भार उनको ही सोच-समझकर लेना होगा, जो लोग रह जायँगे। जब से महात्माजी कॉग्रेस मे आ गये है, उनके व्यक्तित्व के सामने दूसरे लोग कुछ फीके पड जाते है। दूसरे लोग कुछ ऐसे-वैसे नही है। हमारे नेताओ मे काफी योग्यता, दूरदर्शिता और त्याग है। वे सभी प्रश्नो पर हर पहलू से विचार कर सकते है। देश के भले के लिए वे समुचित निश्चयों पर पहुँच सकते है। पर गाधीजी के नेतृत्व मे हममे से कुछ उन पर इतना ज्यादा भरोसा करते है कि वह जो कुछ कह देते है उसे हम मान लेते है। हम अपनी बुद्धि और विचार-शक्ति को काम मे लाने की जरूरत नही समझते। तो भी मै मानता हूँ कि जो निश्चय गाधीजी के नेतृत्व मे कॉंग्रेस ने किये है, बिना समझे-बूझे नही किये है। महात्माजी समझते थे कि वह अलग होकर सोचने-विचारने का भार सब लोगो पर डाल देगे। और, जो यह देखने मे आता है कि जो कुछ होता है उनके कहने से होता है, यह भावना दूर हो जायगी।

मैंने इन बातो से सहमत होकर ही उनके निश्चय का समर्थन किया था। पर दूसरे लोग इस बात पर इस दृष्टि से विचार नही कर रहे थे। कुछ तो घबराते थे कि महात्माजी के हट जाने का अर्थ उनका कॉग्रेस से बिलकुल अलग हो जाना है और अब उनकी सलाह-सम्मति भी नही मिलेगी। कुछ यह मानते थे कि उनके हट जाने से कॉग्रेस पर जनता का उतना विश्वास नही रह जायगा जितना आज है, इसलिए कॉग्रेस कमजोर हो जायगी। कुछ शायद यह भी समझते थे कि कॉंग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न विचारवाले लोगो के आ जाने से गाधीजी रुष्ट होकर हट जा रहे है, उनको किसी न किसी तरह जरूर रखना ही चाहिए। इन कारणो से विषय-निर्वाचिनी मे इस विषय पर बहुत बहस हुई। वहाँ गाधीजी से अनुरोध किया गया कि वह अपने विचार बदल दे और जिस तरह नेतृत्व करते आये है, करते रहे। पर वह अपने निश्चय पर डटे रहे। वह इसी बात पर जोर देते रहे कि उनके हटने से कॉंग्रेस का कुछ नुकसान नही होगा। साथ ही, पूछे जाने पर सलाह-मशविरा देते रहने का आश्वासन भी देते जाते थे और कॉग्रेस के विधान मे सशोधन की बात भी करते जाते थे।

अन्त में, जब यह स्पष्ट हो गया कि वह अपने निश्चय से किसी तरह डिगनेवाले नहीं हैं तब और चर्चा चलने लगी।

विधान के संशोधन में भी काफी बहस रही। एक सब-कमिटी बनायी गयी जिसने संशोधन का मसविदा तैयार किया। उसमे विशेष हाथ गांधीजी का और नई बनी हुई सोशलिस्ट पार्टी का ही रहा। एक और विवादग्रस्त विषय था जिसका सम्बन्ध प्रस्तावित भारतीय विधान के साथ था। ऊपर कहा जा चुका है कि गोल-मेज-कान्फ्रेन्स के समय प्रधान मंत्री मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय दिया था, जिसके एक अंश के विरुद्ध गांधीजी को अनशन करना पड़ा था और जो हरिजनों के साथ पूना में समझौता करके बदलवाया गया था। उस निर्णय में और भी ऐसी बातें थीं जिनको कोई भी राष्ट्रीय भावना का आदमी स्वीकार नहीं कर सकता था। पर उसमें एक शर्त लगा दी गयी थी। वह यह थी कि यदि वे सभी लोग, जिनका सम्बन्ध उससे था अथवा जिनके स्वत्व पर उसका असर पड़ता था, आपस में मिलकर समझौता कर लें और इस समझौते के द्वारा उसे बदलना चाहें तो वह बदल दिया जायगा। इसी शर्त के अनुसार उसका वह हिस्सा, जिसका सम्बन्ध हरिजनों के साथ था—उनके साथ समझौता करके, बदलवा दिया गया था। कांग्रेस की वर्किंग कमिटी ने उस निर्णय को अन्यायपूर्ण मानते हुए भी निश्चय किया था कि वह उसे न तो मंजूर करती है और न उसका विरोध ही करती है।

वर्किंग कमिटी के इस निर्णय का अर्थ यह नहीं था कि वह उसका समर्थन करती है अथवा उसे न्याय-संगत समझती है। उसने उसकी निन्दा कड़े शब्दों में की थी। इसलिए कोई यह नहीं कह सकता था कि वह किसी तरह उसका समर्थन करती है। पर वह उसका विरोध नहीं करना चाहती थी, क्योंकि विरोध का अर्थ होता था दूसरों के साथ खुल्लमखुल्ला झगड़ा, और यह विरोध अनावश्यक भी था। कमिटी ने तो सारे विधान को ही नामंजूर कर दिया था। इसलिए विधान का यह अंश भी सबके साथ ही नामंजूर हो गया था। अलग से नामंजूर करने का अर्थ यह भी होता था कि हम परोक्ष रूप में और अंशों को मान लेते हैं, तभी तो एक अंश का विशेष करके नामंजूर करते हैं। साथ ही, विधान का यही अंश ऐसा था जिसको बदलने का अधिकार हमारे हाथ में था, दूसरे किसी अंश के बदलने की शक्ति हमको विधान द्वारा नहीं मिली थी। इन्हीं विचारों से प्रेरित हो वर्किंग कमिटी ने अपना निश्चय प्रकट किया था, जिसका सारांश यह था कि कमिटी सारे विधान को नामंजूर करती है और सारे विधान के साथ-साथ यह अंश भी गिर जायगा। और, यद्यपि वह इसे राष्ट्रीयता की दृष्टि से घातक समझती है तथापि उपरोक्त कारणों से वह इसे न स्वीकार करती है और न इसका विरोध करती है। इस विषय पर पं० मदनमोहन मालवीयजी और श्री अणे के साथ बहुत बातें हुई थीं। पर न वे गांधीजी को समझा सके और न गांधीजी उनको समझा सके। कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी में इस विषय पर भी काफी बहस रही। पर यह स्पष्ट

था कि वर्किंग कमिटी की राय से ही कांग्रेस सहमत है। कई दिनो तक गरमागरम बहस के बाद प्रस्ताव तैयार हुए और कांग्रेस के आम जल्से का समय आ गया।

मै यद्यपि बहुत कमजोर हो गया था तथापि उस समय न मालूम कहाँ से शक्ति आ गयी और सब काम ठीक से अजाम देता गया। सोशलिस्ट-दल के लोग सगठित रूप से बहस मे भाग ले रहे थे। उनमे अच्छे विद्वान् और बोलनेवाले थे। वे सभी बातो मे अपने स्वतत्र विचार रखते थे। मेरे सामने अक्सर नियम के प्रश्न आते रहे। मै कभी किसी असम्बली या कौन्सिल का मेम्बर नही था। कांग्रेस की नियमावली मे ऐसे विषयो पर नियम नही है। वहाँ जब इस प्रकार के प्रश्न उठते है तो उनका निपटारा अँगरेजी पारलेमेण्ट और सभा-सोसाइटियो के नियमानुसार किया जाता है। यहाँ की असम्बली और कौन्सिल के नियम भी उसी आधार पर बने है। देश की सभा-समितियो के नियमो के भी वे ही आधार है। उन नियमो से मेरा कोई विशेष परिचय नही था। इस मौके पर बहुतेरे प्रश्न उठाये गये जिनका निर्णय मुझे वही तत्काल देना पडा। मैने अपनी बुद्धि से, जो मुझे ठीक मालूम हुआ, निर्णय दिया। पीछे मुझे यह जानकर सतोष हुआ कि मेरे निर्णय नियमानुकूल होते गये।

मैने कांग्रेस के अधिवेशन मे अपना पूरा भाषण नही पढा। गाधीजी की राय से हमने सोच लिया था कि काग्रेस का अधिवेशन निर्धारित समय के भीतर ही समाप्त करना चाहिए। स्पष्ट था कि जिस तरह के विवाद-ग्रस्त प्रश्न आनेवाले थे उनका निपटारा, यदि समय न बचाया जाता तो, नही हो सकता था। मैने अनुभव से यह भी देखा है कि सभापति के छपे भाषण का वहाँ पढा जाना लोग बहुत पसन्द भी नही करते—उसे ध्यान देकर सुनते भी नही, क्योकि छपी प्रति उनके हाथो मे होती है और उसे वे अपने सुबीते से पढ लेते है। बेलगाँव-कांग्रेस मे गाधीजी ने अपने भाषण को अधिवेशन के पहले ही बँटवा दिया था और कह दिया था कि प्रतिनिधि-गण उसे पढकर अधिवेशन मे आवे। मैने भी, इन विचारो से, भाषण पढने मे कांग्रेस का समय नही लिया। कुछ अश पढ दिया। उसके बाद मुख्य प्रस्ताव पर बहस छिड गई। वह भारतीय विधान-सम्बन्धी प्रस्ताव था। उसमे वर्किंग कमिटी के तत्सम्बन्धी निश्चय का समर्थन था। प० मालवीयजी ने उसके सशोधनार्थ प्रस्ताव दिया और बहुत जोरदार भापण भी किया। दूसरे दिन भी उस पर बहुत जोरो से बहस चली।

अन्त मे, जब उस पर राय लेने का समय आया, प० मालवीयजी उस पर फिर कुछ बोलना चाहते थे। नियमानुसार उनको कुछ कहने का अधिकार नही था, पर उन्होने ख्वाहिश जाहिर की। मेरे लिए बडी कठिन समस्या खडी हो गयी। यदि उनके व्यक्तित्व के कारण मै नियम-भग करूँ तो फिर दूसरे के लिए भी वैसा ही करना पडेगा। मैने निश्चय कर लिया कि उनको मै इसकी इजाजत नही दूँगा। बहुत नम्रता-पूर्वक मैने उनको नियम का हवाला देकर अपनी मजबूरी जाहिर कर दी। उनको जो कुछ कहना था उसका साराश कांग्रेस को स्वय कह देने का वचन भी दिया। मैने ये सब बाते कांग्रेस से भी कह दी। वहाँ कांग्रेस मे जबरदस्त जोरदार लाउड-

स्वीकार लगे थे। वहाँ जो कुछ हो रहा था, महात्मा गाधी अपनी झोपडी में बैठे-बैठे सुन रहे थे। उन्होने वह वात भी सुनी। उन्होने दूसरे दिन मुझसे हँसते-हँसते कहा भी कि तुमने मालवीयजी को बोलने से रोक दिया! मुझे इस वात का दुख हुआ कि ऐसे पूज्य व्यक्ति की वात मै नही मान सका, पर वहाँ मै राजेन्द्र नही था, कांग्रेस के सभापति की हैसियत से बैठा था, और दोनो मे वहुत वडा अन्तर है। सम्मति लेने पर वहुत वडा वहुमत वर्किंग कमिटी के पक्ष मे निकला। पर कुछ लोग, जो उसके विरोधी थे, आपे से वाहर हो गये। दो-चार आदमियो ने जूते दिखलाये जो तेज रोशनी मे साफ मुझे दीख पडे!

कांग्रेस के दूसरे प्रस्तावो पर वहुत वहस नही हुई। कांग्रेस-नियमावलीवाला प्रस्ताव तो एक प्रकार से सवकी राय से बिना वहुत बहस के ही मजूर हो गया, क्योकि उस पर वाहर ही वहुत बहस हो चुकी थी। यह प्रस्ताव बडे महत्त्व का था। अव तक कांग्रेस के प्रतिनिधियो की सख्या प्रदेश की आवादी के हिसाव से होती थी। इसका फल यह होता था कि चाहे किसी प्रदेश मे कांग्रेस का काम कुछ होता हो वा न होता हो, चाहे वहाँ कांग्रेस-कमिटियाँ काम करती हों या न करती हो, पर वहाँ की आवादी के अनुसार प्रतिनिधियो और अखिल भारतीय कमिटी के सदस्यो की सख्या पक्की रहती थी। दूसरे प्रान्त, अधिक काम करके भी, अपनी सख्या से अधिक सदस्य नही भेज सकते थे। वम्वई के विधान मे प्रतिनिधियों की सख्या कांग्रेस-सदस्यो की सख्या के अनुपात मे वना दी गयी। यह नियम बन गया कि प्रत्येक प्रतिनिधि के लिए कम के कम नियमित सख्या मे सदस्य अवश्य होने चाहिए। जहाँ उतने सदस्य न हो वहाँ प्रतिनिधि चुनने का अधिकार न रहे। बम्बई मे ५०० सदस्यो पर एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। यह सख्या पीछे वदल दी गयी है। साथ ही, यह भी खयाल था कि सभी प्रान्तो के प्रतिनिधित्व की सख्या वहाँ की आवादी के हिसाव से भी रहे। इससे यह हुआ कि यदि सारे सूवे मे जितने प्रतिनिधि आवादी के हिसाव से होते थे उतने ५०० सदस्य नही हुए तो सूवे के प्रतिनिधियो की सख्या कम हो जायगी। यदि प्रत्येक प्रतिनिधि पर ५०० से अधिक सदस्य हो गये तो प्रत्येक प्रतिनिधि के चुनाव के लिए ५०० से अधिक सदस्यो के क्षेत्र वनाये जायँगे। इस तरह सदस्य वनाने पर जोर डाला गया। साथ ही, आवादी का भी खयाल रखा गया।

दूसरा महत्त्व का प्रश्न यह था कि अल्पसख्यक मतवालो का प्रतिनिधित्व कैसे हो। यदि सीधे तौर पर सम्मति ली जाती है तो उनका एक आदमी भी नही चुना जा सकता, पर उनके मतवाले सूवो को यदि इकट्ठा किया जाय तो कुछ आदमी उनके चले आते हैं। सोशलिस्ट लोगो ने, जिनकी सख्या कम थी, परिवर्तनीय सम्मति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation by single transferable vote) पर जोर डाला। कांग्रेस के प्रतिनिधियो के चुनाव के लिए तो यह सम्भव नही था, पर अखिल भारतीय कमिटी के सदस्यो के चुनाव के लिए

यह विधान मजूर कर लिया गया। विधान मे जो परिवर्तन किये गये उनको कार्य्यान्वित करने पर उनमे कई त्रुटियाँ जाहिर हुई। उसके बाद से कई बार परिवर्तन करना पडा है, पर नियमो का जो आधार वहॉ बना वह अभी तक अपने स्थान पर है। हॉं, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद रहा है, पर अब बहुत लोग इस बात को मानने लगे है कि बहुत थोडे लोगो के हाथ में चुनाव का अधिकार रहने से यह बहुत बुरा परिणाम भी पैदा करता है। कॉग्रेस के नियमानुसार आठ प्रतिनिधि पर अखिल भारतीय कमिटी का एक मेम्बर होता है—अर्थात् यदि आठ आदमी मिल जायँ तो एक आदमी को चुन सकते है। चुनावो मे देखा गया है कि आठ आदमियो को किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जुटा लेना कठिन नही ह जो अपन को चुनवाने पर उतारू हो जाय। जो इस प्रकार अपने को चुनवाने के काम मे दिलचस्पी नही लेता, अथवा जिसके मित्र उसे चुनवा देने मे दिलचस्पी नही लेते,-वह चाहे कितना भी अच्छा काम करनेवाला क्यो न हो, नही चुना जाता। इससे छोटे-छोटे दलो की वृद्धि होती है, अच्छे-अच्छे लोग नही चुने जाते और दलबन्दी करनेवाले चुन लिये जाते है। इसलिए, अब, बहुतेरे लोग, इतने दिनो के अनुभव के बाद, समझ गये है कि यह हमारे काम की चीज नही है। पर यह अभी तक नियम मे है। वहॉ बम्बई-अधिवेशन के समय यह समझा जाता था कि इसके विरोध का एक ही अर्थ हो सकता है—वह है सोशलिस्टों को अखिल भारतीय कमिटी मे घुसने न देने का इरादा। जो हो, वहॉं तो यह स्वीकृत हो गया।

कॉग्रेस का अधिवेशन, निर्धारित समय पर, रात बारह बजे के करीब, तीसरे दिन समाप्त हो गया। मैने काम पूरा कर दिया। लोग बडे उत्साह के साथ अपने-अपने स्थान को गये। जाते ही केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बरो के चुनाव लडने थे। कॉंग्रेस के उत्साह से वही स्पष्ट हो गया कि कॉग्रेस की जीत इन चुनावो मे होगी।

मै कॉग्रेस का काम समाप्त करके अपने निवास-स्थान पर गया और रात दो बजे से दमा का दौरा शुरू हो गया। दूसरे दिन कोई दूसरा विशेष काम नही था, वर्किंग कमिटी बना लेना था। यह भार मेरे ही ऊपर था। मैने कुछ तो वही निश्चय कर लिया और कुछ पीछे। नाम अखबारो मे दे दिये गये। सबसे महत्त्व का प्रश्न मत्री का चुनाव था। मै ऐसे आदमी को चाहता था जो अपना पूरा समय इसी काम मे दे सके और जिसका मत मेरे साथ सभी बातो मे मिलता हो। मैने बहुत सोचने के बाद आचार्य कृपालानी को नियुक्त किया।

बगाल से मै एक आदमी को वर्किंग कमिटी मे लेना चाहता था। पर कुछ ऐसा सयोग पडा कि मै किसी को न ले सका। इससे वहॉ के मित्र मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। मुझे बहुत गालियाँ भी खानी पडी। मेरा बगाल के साथ पुराना परिचय और घनिष्ठ सम्बन्ध था। मै बगाल के महत्त्व को भली भॉति जानता हूँ। बगालियो मे मेरे कई घनिष्ठ मित्र भी है। पर वहाँ कुछ ऐसा सयोग हुआ कि बात नही बनी। इसका मुझे पूरा अफसोस रहा। वहॉ दो दल थे और किसी एक को वर्किंग कमिटी

में लेना दूसरे को दुश्मन बनाना था। दो के लिए जगह थी नही। यदि होती भी तो वहाँ का झगडा वर्किंग कमिटी मे आ जाने का भय था। इसलिए अपने ऊपर वदनामी लेकर भी मैंने वर्किंग कमिटी को इस झगडे से सुरक्षित रखा।

मैंने वम्वई में ही सोच लिया था कि जव गाधीजी के कथनानुसार हमने उनको कॉंग्रेस के प्रतिदिन के काम से मुक्त कर दिया है और महत्त्व के प्रश्नों पर ही उनसे राय लेना ठीक है, तो में उनको अधिक कष्ट नही दूँगा और प्रत्येक वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय कमिटी मे उनको आने का कष्ट नही दूँगा। हाँ, जो महत्त्व की वाते होंगी उनके सम्वन्ध मे उनसे मिलकर बाते कर लिया करूँगा। मैंने अपने सभापतित्व-काल मे इसी नीति से काम लिया भी, गाधीजी को कमिटियो मे आने का कष्ट नही दिया। मे वर्धा वरावर जाता-आता रहा और वही उनसे राय ले लिया करता।

१०९—केन्द्रीय असम्बली का चुनाव-संघर्ष

बम्बई से मैं पटने आया। पहला काम जो कॉंग्रेस को करना था वह केन्द्रीय असम्बली के लिए अपने उमीदवारो को खडा करना और उनको चुनवाना। गवर्नमेण्ट समझती थी कि १९३०–१९३४ के सत्याग्रह के कारण उसने कॉंग्रेस को इतना दबा दिया है कि वह अब फिर उठ न सकेगी। लार्ड विलिगडन ने १९३२ के आरम्भ मे, जब राउण्ड-टेबुल से लौटने के बाद फिर सत्याग्रह पर गाधीजी और वर्किंग कमिटी को मजबूर किया गया था, कहा था कि दो-चार हफ्तो मे आन्दोलन दबा दिया जायगा। उन्होने इसका पूरा प्रयत्न भी किया था। पर दो-चार हफ्तो के बदले दो बरसो तक आन्दोलन चलता रहा और शुरू मे तो वहुत जोरो से चला था। तो भी अभी कोई ऐसा मौका नही आया था जहाँ कॉंग्रेस की लोकप्रियता का पूरा परिचय मिल जाता। भूकम्प की सहायता और बम्बई के अधिवेशन से कुछ-कुछ पता चला था, पर अब भी सब लोगो को ओर विशेषकर गवर्नमेण्ट के लोगो को इस बात का विश्वास नही था कि कॉंग्रेस सारे देश मे लोकप्रिय सस्था है। इस चुनाव मे एक प्रकार से इस बात की जॉच होनेवाली थी कि कॉंग्रेस कहाँ तक जनता का प्रतिनिधित्व करती है। हम भी इस चुनाव को इसी कारण बहुत महत्त्व देते थे।

मद्रास-प्रान्त मे १९२० से ही वहाँ की जस्टिस-पार्टी की मिनिस्ट्री चल रही थी। उसने अपनी शक्ति बढाने और अपने को सुसगठित करने मे कोई बात उठा नही रखी थी। उसमे योग्य लोगो की भी कमी नही थी। उस दल मे ब्राह्मणेतर प्रायः सभी जाति के लोग शरीक होते थे। इसलिए इसमे भी कोई शक नही था कि साधारण जनता के ब्राह्मणेतर सभी लोगो की तरफ से वह बोला करती थी। उसने एक प्रकार से ब्राह्मण-अब्राह्मण का इतना झगडा खडा कर दिया था—लोगो मे इतना प्रचार किया था कि मालूम होता था, वहाँ कॉंग्रेस का अर्थ ब्राह्मण समझा जाता है, इसलिए वह कॉंग्रेस को ही अपना परम विरोधी सस्था मानती थी। गवर्नमेण्ट

का भी उस पर पूरा भरोसा था, क्योकि वहाँ के जमीन्दार और दूसरे धनी वर्ग तथा साधारण जनता का बहुत बडा बहुसख्यक अश उन्ही जातियो का था जो उसमे शरीक समझी जाती थी और जो ब्राह्मणेतर थी।

चुनाव तो सारे हिन्दुस्थान मे होनेवाला था। सभी सूबो मे एक दिन चुनाव के लिए नही रखा गया था। यह जरूर सोचा गया था कि एक जगह के चुनाव का असर दूसरी जगहो पर जरूर पडेगा। ऐसा प्रबन्ध तो सम्भव नही था कि एक ही सूबे मे, अलग-अलग जिलो मे चुनावो मे समय का इतना अन्तर हो कि एक का नतीजा मालूम होने पर दूसरी जगह मे चुनाव हो। पर सारे देश के लिए यह सम्भव था और ऐसा ही इन्तजाम अधिकारियो ने किया भी। चूँकि वे मद्रास पर सबसे अधिक भरोसा रखते थे, उन्होने सबसे पहले मद्रास-प्रान्त मे चुनाव रखा, उसके बाद ही और प्रान्तो मे। चुनाव मे सभी जगहो मे कॉंग्रेस ने अपने उमीदवार खडे किये और सभी जगहो मे विरोधी लोग भी खडे हुए। वे ऐसे ही लोग थे जिनकी या तो सरकार के साथ अच्छी बनती थी अथवा जो किसी विशेष दल की ओर से खडे हुए थे। पर जस्टिस-पार्टी के सिवा दूसरी कोई ऐसी जबरदस्त सस्था नही थी जिसकी ओर से कॉंग्रेस का विरोध करने के लिए उमीदवार खडे किये गये हो।

मै तो बम्बई से बीमार ही लौटा और हसब-मामूल दिसम्बर तक बीमार ही पडा रहा। इसी बीच सारा चुनाव हो गया। मै उसमे कोई विशेष भाग न ले सका। पर दूसरो ने, विशेषकर सरदार वल्लभभाई पटेल ने, बहुत सिरतोड परिश्रम किया। वह बिहार मे भी दौरे पर आये। दूसरे कई सूबो मे भी गये। मै बिहार मे ही दो-चार जगहो मे जा सका, ज्यादा कुछ नही कर सका। मद्रास मे चुनाव का नतीजा सबसे पहले मालूम होने लगा, क्योकि वही सबसे पहले चुनाव हुआ। वह नतीजा सरकारी हलको मे बहुत ही अचम्भा उत्पन्न करनेवाला हुआ। वहाँ केवल इतना ही न हुआ कि सभी जगहो मे कॉंग्रेसी चुने गये, बल्कि सभी कॉंग्रेसी बहुत बडे बहुमत से चुने गये। जो ऐसी जगहे थी, जिनके सम्बन्ध मे जस्टिस-पार्टी-वालो को कोई सन्देह नही हो सकता था और जिनको जीतना हम भी मुश्किल समझते थे, वहाँ भी कॉंग्रेस की भारी जीत हुई। उदाहरणार्थ, दो जगहे ऐसी मानी जाती थी। एक जगह थी वह जिसमे श्री सत्यमूर्त्ति चुने गये। इनके विरोधी एक अत्यन्त योग्य और जस्टिस-पार्टी के नामी मुख्य आदमी सर रामस्वामी मुडेलियर थे। दूसरी जगह वहाँ के व्यापारियो के प्रतिनिधि की थी। वहाँ से कॉंग्रेस के विरोध मे खडे हुए थे श्री (अबसर) षण्मुखम् चेट्टी और कॉंग्रेस की ओर से श्री वेकटाचलम् चेट्टी। श्री षण्मुखम् चेट्टी पहले पडित मोतीलालजी के साथ कॉंग्रस की ओर से चुने जाकर केन्द्रीय असम्बली के मेम्बर रह चुके थे और कॉंग्रेस-सदस्यो मे भी उनकी योग्यता को लोग मानते थे। उन्होने काम भी अच्छा किया था। पर सत्याग्रह के समय वह कॉंग्रेस से अलग हो गये थे। अब इस चुनाव मे उन्होने कॉंग्रेस का विरोध किया। वह चेट्टी जाति के थे। चेट्टी लोग ही मद्रास-प्रान्त मे व्यापार का काम अधिक करते है। वह

अब्राह्मण भी थे। जस्टिस-पार्टी ने उनको अपनी ओर से उमीदवार बना लिया था। फिर क्या था! सफलता के सभी कारण उनके साथ मौजूद थे। इसके अलावा, कहा जाता था कि लार्ड विलिंगडन उनको बहुत मानते थे। पर उन्होंने भी बडी गहरी हार खाई।

जैसे ही मद्रास के नतीजे अखबारों मे निकलने लगे, विशेषकर कॉंग्रेस के पक्ष के मतो की सख्या, देश मे उत्साह बढता गया। सभी सूबो मे कॉंग्रेस की बडी जीत हुई। बिहार मे भी वैसी ही हुई। यहाँ एक बडे मार्के की बात यह हुई कि एक बहुत ही बडे सेठ से मुकाबला हो गया। वह थे सेठ रामकृष्ण डालमिया। इनकी सहानुभूति कॉंग्रेस के साथ रहा करती थी। पहले जब-तब पैसे से सहायता भी किया करते थे। इस चुनाव मे इन्होने खडा होने का निश्चय कर लिया। पीछे मुझसे कहा कि कॉंग्रेसी उमीदवार श्री अनुग्रहनारायणसिंह हटा लिये जायँ। यह सम्भव नही था, क्योकि कॉंग्रेस की नीति थी कि यथा-साध्य सभी जगहो पर उमीदवार खडे किये जायँ। श्री डालमिया कॉंग्रेस के अनुशासन के अन्दर आना भी नही चाहते थे। पर उनके साथ हम सबकी व्यक्तिगत सद्भावना बनी रही। उन्होने बहुत खर्च किया, पर वह भी करारे ढग से हारे।

एक तरफ तो इस तरह की सफलता हुई जिससे सभी लोगो को बहुत आनन्द हुआ, दूसरी तरफ एक ऐसी बात भी इस चुनाव मे हुई जो बहुत दुखद थी। पहले कहा जा चुका है कि बम्बई-कॉंग्रेस के पूर्व से ही प्रधान मत्री मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के कारण कॉंग्रेसी लोगो मे मतभेद हो गया था और बम्बई-कॉंग्रेस मे पडित मालवीयजी ने उस प्रस्ताव का विरोध किया था जिसमे कॉंग्रेस का नव-विधान-सम्बन्धी मत प्रकट किया गया था—उनका सशोधन-प्रस्ताव बहुत बडे बहुमत से नामजूर किया गया था। उस विचार के लोगो ने अपनी ओर से उमीदवार खडे किये। बिहार मे भी श्री जगतनारायणलाल खडे हुए। बगाल मे तो प्राय सभी जगहो के लिए उमीदवार खडे किये गये। और सूबो मे भी कुछ लोग खडे हुए। ये लोग यो तो और सब बातो मे कॉंग्रेस से सहमत थे, पर एक इसी विषय पर ये कॉंग्रेस से अलग थे। कॉंग्रेस ने श्री अणे के विरुद्ध कोई उमीदवार नही खडा किया और वह निर्विरोध चुने गये, पर और जगहो मे दो प्रकार के कॉंग्रेसियो मे मुठभेड हो गयी। बिहार मे तो कॉंग्रेस से कोई नही जीता, पर बगाल मे प्राय सभी जगहो मे कॉंग्रेस को हार खानी पडी और उस दल के लोगो की जीत हुई। इसका विशेष कारण यह था कि श्री मैकडोनल्ड के निर्णय से बगाल के सवर्ण हिन्दुओं की सबसे अधिक हानि हुई थी। वहा मुसलमानो की सख्या प्राय ५५-५६ और हिन्दुओ की ४४ प्रतिशत के लगभग होती है। अल्प-सख्यक होने के कारण हिन्दुओ को वहाँ कुछ सुविधा मिलनी चाहिए थी। पर उस निर्णय के अनुसार दस प्रतिशत स्थान योरोपियनो को मिल गये और बाकी ९० के बँटवारे मे ५१ मुसलमानो को और ३९ प्रतिशत हिन्दुओ को मिले, अर्थात् अपनी सख्या के अनुपात से भी उनको कम जगहे धारा-सभाओ मे मिली। इसके

बाद जब अछूतो से, महात्माजी के उपवास के बाद पूना मे, समझौता हुआ तो हरि-जनो के लिए सुरक्षित स्थानो की सख्या भी बहुत बढ गयी जो हिन्दुओ के स्थानो मे से ही हो सकती थी। इसलिए वहाँ सवर्ण हिन्दुओ मे बहुत असन्तोष था। वे चाहते थे कि इस निर्णय का जबरदस्त विरोध किया जाय। इसमे कांग्रेसी और गैरकांग्रेसी सभी हिन्दू शरीक थे। इसलिए वहाँ के चुनाव मे कांग्रेस की हार हुई और इस नये दल की जीत हुई, जिसमे कांग्रेसी लोग ही चुने गये जो और बातो मे कांग्रेस का ही साथ देनेवाले थे। नवम्बर के अन्त तक सारे देश मे चुनाव हो गया और कांग्रेस की बहुत बडी जीत हुई। कांग्रेस ने अब नीर्ति भी निर्धारित कर दी थी। उसी के अनुसार केन्द्रीय असम्बली मे काम होनेवाला था।

११०—श्री जिन्ना से समझौते की बातचीत और देश भर का दौरा

यद्यपि चुनाव मे कांग्रेस की जीत हुई थी और दूसरे प्रकार मे भी मालूम पडता था कि कांग्रेस जीवित है, तथापि हम यह आवश्यक समझते थे कि उसका सगठन मजबूत बना दिया जाय, क्योकि चार बरसो की लडाई मे, जब कांग्रेस-कमि-टियाँ गैरकानूनी सस्था करार दे दी गयी थी, कांग्रेस का सगठन तितर-बितर हो गया था। उसको एक बार पुनर्जीवित और सुसगठित करन आवश्यक था। इसलिए एक बार सभी जगहो का दौरा करना आवश्यक जान पडा। प्रान्तीय कमिटियो की ओर से इस बात का तकाजा भी हुआ कि मै सभापति की हैसियत से दौरा करूँ। जाडो मे तो मेरे लिए यह सम्भव नही था, पर मैने सोचा कि जाडा कम होते ही मै बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा शुरू करूँगा—इस बीच मे, अपने स्वास्थ्य को ध्यान मे रखते हुए, अगर हो सका तो जहाँ-तहाँ जाऊँगा।

दिल्ली मे असम्बली का काम जनवरी मे शुरू होनेवाला था। वही वर्किंग कमिटी की बैठक भी की गयी। वहाँ महात्माजी भी इत्तफाक से आ गये थे। वहाँ के लोगों की इच्छा भी थी कि कांग्रेस के सभापति का दौरा वही से शुरू किया जाय। इसलिए जब मै वहाँ पहुँचा तो वहाँ के लोगो ने भी बडी शान से स्वागत किया। बम्बई ने स्वागत का एक खासा नमूना कायम कर दिया था। दिल्ली मे भी उसी प्रकार का स्वागत बहुत बडे जलूस मे किया गया। शहर के लोगो ने बहुत उत्साह दिखलाया। मै अभी तक कमजोर ही था, इसलिए स्वागत की भीड बर्दाश्त करना कुछ आसान नही था, पर मैने उसे किसी तरह सँभाल लिया।

मै जलूस के कुछ बाद ही महात्माजी से मिला। उनको सब खबर मिल चुकी थी। उन्होने एक मार्के की बात कही जिसका जिक्र शायद मैने स्वतत्र रूप से ऊपर किया है। उन्होंने कहा कि अन्त मे हमको मजबूरन सत्याग्रह बन्द करना पडा था, क्योकि जनता का उसमे उत्साह नही रह गया था और लोग कुछ दब-से गये थे, पर कांग्रेस के प्रति उनका प्रेम कम नही हुआ था, लोग चाहते थे कि कोई मौका मिले तो उसे दिखलावे, इसीलिए इस प्रकार के स्वागत मे इतना उत्साह देखने मे

आता हूँ, जैसा तुमने बम्बई मे देखा अथवा दिल्ली मे देख रहे हो—ऐसा ही स्वागत जहाँ जाओगे लोग करेगे।

मै इस प्रकार के भीड-भडक्के से बहुत घबराता हूँ। विशेषकर स्वागत और जलूस से तो बहुत डरता हूँ। पर मैंने इसे उस पद की खातिर बर्दाश्त करना मजूर कर लिया। महात्माजी ने मेरी इस राय को पसन्द किया कि मै सभी सूबो मे दौरा करूँ। मैने यह काँग्रेस के सगठन के विचार से जरूरी समझा। मैंने देखा कि जहाँ १९३२-३३ मे बहुत जगहों मे लोग काँग्रेसी कार्य्यकर्त्ताओ को अपने यहाँ ठहराने से भी हिचकते थे वहाँ १९३५ मे काँग्रेस के अध्यक्ष का इतने जोर-शोर से स्वागत करने पर तैयार थे। सभी जगहों से इस दौरे के सम्बन्ध मे मेरे साथ पत्र-व्यवहार होने लगा। तिथियाँ सोची जाने लगी। इस यात्रा को शुरू करने के पहले अपने साथ निजी काम के लिए श्री चक्रधरशरण को रख लिया। वह मुजफ्फरपुर-जिले के बेल-सड थाने के अन्तर्गत परतापुर गाँव के रहनेवाले है। १९२० से ही वह काँग्रेस का काम करते आये है। भूकम्प के समय मुजफ्फरपुर मे उन्होने अच्छा काम किया था। रिलीफ मे भी बडे उत्साह और ईमानदारी से काम किया था।

पर इस यात्रा को शुरू करने के पहले एक दूसरा प्रश्न था जिसका हल आवश्यक था। श्री मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय देकर मुसलमानो को बहुत खुश कर दिया था, पर हिन्दू उनसे बहुत क्षुब्ध थे। सभी समझदार लोग मानते थे कि यदि कोई समझौता हो जाय तो वह सबसे अच्छा होगा। इसके लिए डाक्टर अनसारी बहुत ही उत्सुक थे। उन्होने श्री जिन्ना से लिखापढी शुरू की थी। दिल्ली मे वर्किंग कमिटी के सामने उन्होने यह बात पेश की। वर्किंग कमिटी ने कहा कि यदि कोई रास्ता निकल सके तो उसे जरूर ढूँढ निकालना चाहिए। इसी बीच श्री जिन्ना भी दिल्ली पहुँच गये। एक दिन डाक्टर अनसारी के मकान पर वर्किंग कमिटी के मेम्बरो से उनकी मुलाकात और कुछ बातचीत हुई। पर वह बातचीत ऐसी नही थी कि इतने लोग एक साथ ठीक तरह से कर सके और वह इतनी जल्द तय हो जाय। अन्त मे श्री जिन्ना की राय हुई कि वह और काँग्रेस के अध्यक्ष ही बाते करे, अगर कुछ रास्ता निकल आवे तो अपनी-अपनी सस्था से उसकी मजूरी करा लेवे। डाक्टर अनसारी के घर पर पहले दिन जो बाते जिस ढग से हुई उनसे और उस ढग से मुझे कुछ विशेष आशा नही मालूम हुई, तो भी यह बात ऐसी थी कि इसमे अपनी ओर से किसी तरह की कोताही नही की जा सकती थी, इसलिए मै इसमे दिलो-जान से पड गया। मुझे इस बात का शक था कि मै इस तरह के काम के लिए कहाँ तक योग्य हूँ। पर मुझे डाक्टर अनसारी और सरदार बल्लभभाई पटेल की पूरी मदद थी। महात्माजी का आशीर्वाद भी था। इससे मै समझता था कि कोई भूल न होने पावेगी। बातचीत बहुत लम्बी चली। मुझे कई हफ्तो तक दिल्ली मे रह जाना पडा। श्री जिन्ना और मैंने खुलासगी और सफाई से बाते की। जहाँ तक मै समझ सका, हम दोनो का एक दूसरे के प्रति भाव भी अच्छा ही रहा। मैं बात-

चीत के बाद जो कुछ बाते हुई रहती उनका खुलासा उसी दिन लिख लिया करता। उस समय के वे लिखे हुए नोट आज भी कही मौजूद मिलेगे। मन्त्री श्री कृपालानी भी प्राय बराबर दिल्ली मे ही रहे। उनसे तथा डाक्टर अनसारी से सभी बाते मै बता दिया करता। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बहुत करके दिल्ली मे रही। उनको भी सब बाते मालूम हो जाती। महात्माजी तथा सरदार को भी मै पत्रो द्वारा सब बातो से आगाह रखता। सब बातो को यहाँ विस्तार से देना अनावश्यक है।

अन्त मे बात खत्म करनी पडी। समझौता नही हो सका। इसका मुझे बहुत अफसोस रहा, क्योकि मै समझता था कि हम जिन शर्तो पर समझौता करना चाहते थे और जिन पर हमने श्री जिना को राजी कर लिया था वे शर्ते देश के लिए हितकर होती। इससे भी अधिक अफसोस इसलिए हुआ कि जिस कारण समझौता न हो सका वह ऐसी बात थी जिसका कोई विशेष महत्त्व नही था—उसको न मानना अथवा उस पर जिद्द करना, मेरे खयाल मे, दोनो ही बेकार थे।

मैने बातचीत शुरू करने के पहले ही यह साफ कर लिया था कि मै केवल कॉंग्रेस की ओर से बाते कर रहा हूँ, मुझे किसी दूसरे दल की ओर से बाते करने का अधिकार भी नही है और मै दूसरो की जवाबदेही ले भी नही सकता—हॉं, हम जो कुछ तय करेगे वह कॉंग्रेस से हम मजूर करा लेगे, उसी तरह श्री जिन्ना से भी हम यही आशा रक्खेगे कि वह भी मुस्लिम लीग से समझौते को मजूर करा देगे। उन्होने यह मजूर किया था। वह देख चुके थे कि अभी हाल मे ही हमने कॉंग्रेस मे साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध मे अपना न्यारा रुख रखा था और उसके लिए हमको प० मालवीयजी-जैसे मान्य एव धुरन्धर नेता का भी विरोध करना पड़ा था। वह यह भी देख चुके थे कि हम एक सूबा छोडकर प्राय सभी सूबो मे चुनाव मे भी जीते है। इसलिए वह इस पर राजी थे। मैने यह भी साफ कह दिया था कि यदि वह मुसलमानो के लिए अलग चुनाव-क्षेत्रो को कायम रखने पर तुले होगे तो बात-चीत की कोई गुंजाइश नही है, क्योकि हम अलग चुनाव को राष्ट्रीयता की दृष्टि से इतना घातक मानते है कि यदि वह रह जाय तो किसी समझौते से कोई काम न होगा। इसलिए बातचीत इसी आधार पर शुरू होगी कि वह अलग निर्वाचन-क्षेत्र छोडने पर तैयार हो जायँ। इस पर उनकी ओर से यह प्रश्न हुआ कि यह चीज मुसलमानो को मिल चुकी है और वे इसे कुछ दिनो से काम मे लाते रहे है, इसके बदले मे उनको जब तक कुछ निश्चित रूप से न मिले तब तक उनको मनाना और राजी करना सभव न होगा।

मैने उनके लिए उतने ही सुरक्षित स्थान मान लिये जितने उनको साम्प्रदायिक निर्णय से मिले थे। हम दोनो ने इन दो बातो को मान करके ही आगे बात चलाई थी। उनकी ओर से यह मॉंग हुई कि चुनाव-क्षेत्रो मे, जहॉं मुसलमान मत-दाताओ की सख्या उनकी आबादी के अनुपात से कम हो, मताधिकार के लिए आवश्यक गुण (qualification) को कम करके भी मुसलमान मत-दाताओ की सख्या उनकी

फा० ५४

आबादी के अनुपात के अनुसार बना दी जाय। वह कहते थे कि मुसलमान गरीब हैं और बहुत जगहो मे उनमे शिक्षा भी कम है, इसलिए जहाँ टैक्स देना ही मताधिकार की पहचान होगी वहाँ बहुतेरे मुसलमान छँट जायँगे और मतदाताओ मे उनकी सख्या आबादी के अनुपात से बहुत कम हो जायगी, इसलिए यह होना आवश्यक है। पजाब के सम्बन्ध मे जो कुछ भी आँकडे मिल सके, मैने उनका खूब अच्छी तरह से अध्ययन किया। मुझे जहाँ तक पता चला, उनमे मतदाताओ की सख्या आबादी के अनुपात मे कई जगहो मे कुछ कम होती थी, पर यह बहुत बडा फर्क नही था—शायद दो प्रतिशत या इससे भी कम ही का फर्क था। जब हिन्दू और मुसलमान दोनो का सयुक्त चुनाव-क्षेत्र होनेवाला था तो मुसलमानो की यह माँग कि मतदाताओ मे उनकी सख्या आबादी के अनुपात मे हो, मुझे न्याययुक्त मालूम पडी और मैने इसे मान लिया—विशेषकर जब कॉग्रेस ने यह निश्चय कर लिया था कि चुनाव का मताधिकार सभी बालिग लोगो को दिया जाय तो यह माँग मान लेने मे मुझे कोई आपत्ति नही मालूम हुई। पर जब सिखो और हिन्दुओ से मैने बाते की तो सिखो ने इसका जबरदस्त विरोध किया। पजाब के हिन्दुओ से बाते होने पर उनमे से कतिपय मुख्य व्यक्तियो ने इसे मान लिया, पर बगाल के हिन्दू इसे किसी तरह मानने पर तैयार न हुए। जो लोग बगाल से केन्द्रीय असम्बली मे चुनकर गये थे उनमे मेरी पहले बाते हुई। उन्होने सब बाते सुन-समझकर समझौते को पसन्द किया, पर वे बगाल के और लोगो की राय लेना आवश्यक समझते थे।

पडित मालवीयजी से बाते हुईं तो उन्होने सिखो और बगाल के हिन्दुओ का हवाला देकर कहा कि जब तक वे न मानेगे तब तक वह कुछ नही कर सकते। मैने बगाल के आँकडे बहुत खोजे, पर मुझे गवर्नमेण्ट की किसी रिपोर्ट अथवा पुस्तक से कुछ भी पता न चल सका कि वहाँ की वस्तु-स्थिति इस सम्बन्ध मे क्या होगी। इसलिए, जिस तरह मै पजाब के हिन्दुओ के सामने आँकडे रखकर बहस कर सका उस तरह बगाल के हिन्दुओ के साथ नही। तब मैने भी जिन्ना से बहस की कि वह इस माँग पर न अडें, क्योकि इसमे कोई तत्त्व की बात नही है। जहाँ मुसलमानो का बहुत बडा बहुमत है वहाँ सैकडे एक या दो की कमी से चुनाव के नतीजो पर कोई विशेष प्रभाव या फर्क नही पडेगा। पर वह इस पर राजी नही होते थे। कॉग्रेस की ओर से मै उसे मान लेने पर भी राजी था। पर उन्होने इस पर जोर दिया कि पडित मालवीयजी की अनुमति भी आवश्यक है, क्योकि समझौता अगर हुआ भी और पडित मालवीयजी के नेतृत्व मे साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन होता ही रहा तो मुसलमानो को इस समझौते से कोई लाभ न होगा।

उधर उन्ही दिनो दिल्ली मे साम्प्रदायिक-निर्णय-विरोधी एक सम्मेलन हुआ जिसमे बगाल के कुछ लोग आये। उन्होने इसका पूरा विरोध किया। मै पडित मालवीयजी को किसी तरह राजी न कर सका। अन्त मे उन्होने इस बात पर भी जोर दिया कि जितनी जगहे मुसलमानो को मिली है, विशेषकर बगाल और केन्द्र मे, उन्हे भी घटाना

चाहिए और जब तक वे घटायी न जायँगी तब तक वह राजी नही हो सकते। उधर श्री जिन्ना भी इस बात पर तुल गये कि जब तक पडित मालवीयजी का हस्ताक्षर नहीं होगा तब तक वह राजी नही होगे। अपनी ओर मे वह यह कहते थे कि मुसलमान नेताओ की मजूरी वह दे सकेगे। इस प्रकार, यद्यपि यह बातचीत कॉग्रेस की ओर से मैंने शुरू की थी—और कॉग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अध्यक्षो के बीच ही यह चली थी—तथापि अन्त मे यह इसलिए टूट गई कि श्री जिन्ना केवल कॉग्रेस के साथ समझौते पर राजी नही हुए और हिन्दू-सभा की अनुमति जरूरी समझने लगे।

इधर तो बात दूसरी हो गई है। अब वह चाहते है कि कॉग्रेस, मुस्लिम लीग को, मुसलमानो की एकमात्र प्रतिनिधि-सस्था मान ले और स्वय हिन्दुओ की ओर से समझौता करने पर राजी हो जाय! कॉग्रेस न उस समय केवल हिन्दुओ की सस्था थी और न आज है। वह हमेशा से राष्ट्रीय सस्था रही है जिसमे सब जातियो और सब धर्मों के लोगो के लिए स्थान है और रहेगा। उसकी नीति भी वैसी ही राष्ट्रीय नीति है और रहेगी। उस दिन समझौता नही हुआ। यह दु ख की बात है, क्योकि उसके बाद परिस्थिति बराबर बिगडती ही गई है, और आज तो वायुमडल भी विषाक्त है।

जब तक यह बातचीत चलती रही, मै दिल्ली मे ही रहा। पर बीच-बीच मे जहाँ-तहाँ एक-दो दिनो के लिए चला जाता। मै इलाहाबाद और आगरा इन्ही दिनो मे हो आया। मार्च से बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा करने का निश्चय किया। मैने सबसे पहले पजाब जाने का ही निश्चय किया। मार्च मे वहाँ गया। सबसे पहले मै जालधर मे उतारा गया। वहाँ से कुछ दूर पर खादी का मुख्य केन्द्र आदमपुर मे है। मै वहाँ गया और वहाँ का काम देखा। जालधर से लाहौर गया। वहाँ से दूसरे स्थानो मे जाने का कार्यक्रम बना था। लाहौर मे मेरे रेल से उतरने पर हसब-मामूल बडा जलूस निकाला गया। कुछ दूर जलूस जाने के बाद ही बहुत जोरो से पानी बरसने लगा। मै खूब भीग गया। पर जलूस समाप्त करके ही मुझे फुर्सत दी गयी। जलूस समाप्त होते कुछ रात हो गई। मै लोक-सेवक-समिति (Servants of People Society) के लाजपतराय-भवन मे भोजन करने के लिए गया। भोजनोपरान्त डाक्टर सत्यपाल के घर पर ठहरने के लिए गया। पानी मे भीगना और उसके बाद रात की सर्दी लग जाना मुझसे बर्दाश्त न हो सका। दूसरे दिन सवेरे ही खाँसी-दमा शुरू हो गया। मैने उमीद की कि मेरे स्वास्थ्य के लिए अच्छे दिन आ गये और यह व्यतिक्रम दो-एक दिनो मे ठीक हो जायगा। पर वैसा न हो सका, मै बीमार पड गया। नतीजा यह हुआ कि मुझे सारे कार्यक्रम को बदल देना पडा। लाहौर मे मै कई दिनो तक पडा रहा। पानी भी कुछ न कुछ कई दिनो तक बरसता रहा। मेरे अच्छा होते-होते वह सारा समय, जो मैने पजाब-भ्रमण के लिए दिया था, समाप्त हो गया। पजाब का दौरा स्थगित करके मै सीधे बिहार वापस आ गया।

यह दु ख की बात है कि पजाब-जैसे सूबे मे कॉग्रेसी लोगो मे आपस का मतभेद बहुत है। यह उस समय भी बहुत जोर पर था। मुझे कुछ हद तक इसका

शिकार भी बनना पडा था। वह बात विनोदपूर्ण है, इसलिए यहाँ कह देना बुरा न होगा। इसमे किसी पर दोष लगाने का अभिप्राय नही है। पाठको के मनोविनोद और उन्हे यह जता देने के लिए कि आपस के मतभेद से आगन्तुक अतिथि को भी कही-कही असुविधा हो सकती है, यह लिख रहा हूँ।

पहले से निश्चय था कि हमको जालन्धर उतरना है। हम जिस गाडी से गये थे वह सवेरे ३-४ बजे के करीब वहाँ पहुँचती थी। जालन्धर मे दो स्टेशन है—एक सिटी और दूसरा छावनीवाला। मुझे मालूम नही था कि किस स्टेशन पर उतरना है, पर मै समझता था कि जहाँ-कही उतरना होगा, कुछ लोग आवेगे ही और उतार लेगे। इसलिए मै इस विषय मे निश्चिन्त था। जो स्टेशन पहले मिला, वहाँ कुछ लोग आये और उन्होने मुझे उतरने को कहा। मेरे साथ कृपालानीजी भी थे। हम लोग वहाँ उतर गये। वे लोग हम लोगो को स्टेशन के मुसाफिरखाने मे ले गये और वहाँ मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाने को कहा। हमने समझा कि लोगो का विचार है कि सवेरा हो जाने पर वहाँ से ले जायँगे। पर हमको आश्चर्य हुआ कि जिन सज्जन के यहाँ हम ठहरना चाहते थे और जिनको हमने तार दे दिया था वह (रायजादा हसराज) स्टेशन पर नही आये है। हमने सोचा कि शायद वह सवेरा होने पर आवेगे और तब हमे साथ ले जायँगे। हम लोग मुँह-हाथ धो ही रहे थे कि कुछ देर बाद मोटर पर रायजादा साहब आ गये। मालूम हुआ कि वह दूसरे स्टेशन पर इन्तजार कर रहे थे, जब हम लोग वहाँ नही पहुँचे तो वह यहाँ तलाश करने आये, जिन साहबो ने हमको उतार लिया था वे दूसरे दल के थे जो यह नही चाहते थे कि हम रायजादा साहब के साथ ठहरे—उन्होने कही अन्यत्र हमे ठहराने का प्रबन्ध किया था। दोनो मे कुछ बाते आपस मे हुई। हम अतिथि कुछ मुश्किल मे थे। अन्त मे तय हुआ कि हम रायजादा साहब के यहाँ दोपहर का भोजन करे और सवेरे उन महाशय के यहाँ नाश्ता करे जिनके यहाँ ठहराने का दूसरे लोगो ने निश्चय किया था। मै रायजादा साहब को पहले से खूब जानता था। इसी लिए उनको तार दे दिया था। पर वहाँ के लोगो की यह हालत देखकर जो प्रबन्ध उन्होने किया वही मानना पडा। हम लोग रायजादा साहब के यहाँ गये। मुँह-हाथ धोकर नाश्ता करने दूसरी जगह गये। वहाँ से आदमपुर गये। फिर लौटकर रायजादा साहब के यहाँ भोजन करके, रेल से लाहौर के लिए रवाना हो गये।

पर हमारी दिक्कते यही समाप्त न हुई। लाहौर मे कहाँ ठहरना होगा, यह समस्या अभी तक हल नही हुई थी। रेल मे एक आदमी डाक्टर सत्यपाल की पत्नी का पत्र लेकर आया और मिला। डाक्टर साहब उस समय जेल मे थे। वही प्रान्तीय कमिटी के सभापति थे। यदि वह बाहर रहते तो सारा प्रबन्ध उनका ही होता। उनके न रहने से दूसरो ने प्रबन्ध किया था। मुझे मालूम हुआ कि लोक-सेवक-समिति के सदस्यो ने, जिनमे कई परिचित मित्र थे, सभा-भवन मे ठहराने का प्रबन्ध किया है। श्रीमती सत्यपाल ने लिखा कि उनके पति जेल मे है, अत. वह आशा रखती है कि और कुछ

नही तो इस कारण से भी मै उन्ही के यहाँ ठहरने का निश्चय करूँगा। मै फिर सकट मे पड गया। दोनो पक्षो के लोगो के बीच रेल मे ही कहा-सुनी होने लगी। कृपालानीजी अपने उग्र स्वभाव के अनुसार बिगडे। उन्होने दोनो को डाँटा कि तुम लोग आपस मे बाते तय नही कर लेते और अतिथि को सकट मे डालते हो। यह भी मालूम हुआ कि उस दिन सध्या के भोजन के लिए लोक-सेवक-समिति ने शहर के कितने ही माननीय पुरुषों को भी निमत्रित कर लिया है और यदि मै वहाँ नही गया तो उनके प्रति भी अनादर होगा। अन्त मे बात यह तय पायी कि सध्या का भोजन तो लाजपतराय-भवन मे हो, पर मै जाकर ठहरूँ डाक्टर सत्यपाल के घर पर ही। जलूस मे भीगने का कारण भी कुछ ऐसा ही था। प्रबन्धको ने निश्चय कर लिया था कि जलूस किन सडको से जायगा। वे जलूस के रास्ते को, कुछ सडको को छोडकर, कुछ छोटा न बना सके।

मै डाक्टर साहब के घर पर ठहरा। दुर्भाग्यवश बीमार पड गया। अब जरूरत पडी किसी डाक्टर या वैद्य की, यह बात भी तय न हो सकी। पहले जो डाक्टर आये उनसे दूसरे दल को सतोष न था, वे अपना डाक्टर बुलाना चाहते थे। अन्त मे ऐलोपैथिक छोडकर होमियोपैथिक पर बात गयी। कुछ अच्छा होते ही मै बिहार वापस चला आया।

अप्रैल से जो यात्रा-क्रम बना था उसे मै निर्विघ्न प्राय- जून के अन्त तक ठीक-ठीक पूरा करता रहा। अप्रैल मे जबलपुर मे अखिल भारतीय कमिटी की एक बैठक की गई। इस बैठक के लिए कोई विशेष कार्य्यक्रम अथवा महत्त्व का प्रश्न नही था। पर मैने सोचा था कि साल मे दो-तीन बार अखिल भारतीय कमिटी को अवश्य मिलना चाहिए ताकि सदस्यों को काँग्रेस-सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करने का अवसर मिले। मध्यप्रदेश मे बहुत दिनो से अखिल भारतीय कमिटी की कोई बैठक नही हुई थी। इसलिए मैने वहाँ के लोगो की इच्छा के अनुसार वही बैठक बुलाई। वह सफलता-पूर्वक समाप्त हुई। वहाँ से मै यात्रा पर निकल गया। यात्रा का आरम्भ बरार-प्रान्त मे हुआ। वहाँ प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स थी जिसके सभापति पडित गोविन्दवल्लभ पन्त थे। कान्फ्रेन्स समाप्त करके मै बरार के सभी जिलों मे गया।

सभी जगहो मे सभाएँ होती, स्वागत होता, जलूस निकलता, लोगो मे उत्साह काफी दीखता। मेरे लिए इस प्रकार की यात्रा का, अपने सूबे के बाहर, यह पहला ही अनुभव था। वह अनुभव अच्छा और सुखद था, क्योकि भिन्न-भिन्न प्रान्तो को देखने के अलावा काँग्रेस के सगठन को सुदृढ बनाने का कुछ मौका मिलता और जन-साधारण से सम्पर्क बढता।

बरार की यात्रा समाप्त करके मै सीधे कर्नाटक चला गया। यहाँ के सभी जिलो मे दौरा किया। उसके बाद सारे महाराष्ट्र मे गया। मै सवेरे उठता और नहा-धोकर प्राय ७ बजे मोटर पर निकल जाता। स्थान-स्थान पर सभा करता हुआ दिन के १२ बजे तक कही पहुँचता, जहाँ भोजनादि का प्रबन्ध रहता। भोजन और विश्राम के बाद प्राय. दो बजे फिर निकल जाता और रात के ८-९ बजे तक सभा करता।

दूसरे प्रान्तो मे, जहाँ-जहाँ मैं सफर मे गया, सूत के हार मुझे दिये गये। मै सूत की मालाओ को जमा करके साथ ले आया। बुनवाने पर इतना ज्यादा कपडा हुआ कि मित्रो को कुछ बाँटने के बाद भी मुझे कई वर्षो तक खादी खरीदने की जरूरत न पडी।

महाराष्ट्र-कमिटी ने यह भी निश्चय किया था कि मै जहाँ जाऊँ, लोग कुछ पैसे भी भेट करे। उसी प्रान्त मे यह बात आरम्भ की गई। छोटी-छोटी सभाओ में लोग कुछ न कुछ पहले से जमा करके रखते, थैली भेट देते। छोटे-छोटे गाँवो मे भी इस तरह की भेट मिलती। कही-कही रास्ते मे भी गाडी रोककर भेट दी जाती। इस तरह प्राय २०-२२ हजार रुपये जमा हो गये। इसका थोडा अश अखिल भारतीय कमिटी के लिए कृपालानीजी ने ले लिया और प्राय तीन-चौथाई से भी अधिक वही की प्रान्तीय कमिटी को वहाँ के काम के लिए दे दिया गया। इस सारे सफर मे महाराष्ट्र के कार्यकर्त्ताओ की कार्य-कुशलता और कारबारी तरीके से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यात्रा-क्रम ऐसा बनाया गया था कि मुझे ठीक समय से सभी स्थानो मे पहुँचने का मौका मिला। श्री शकरराव देव मुझे यह भी कह देते कि किस स्थान पर कितनी देर ठहरना है और मै उसी के अनुसार अपने भाषण मे भी समय लगाता। अगर कुछ भी देर होने लगती तो वह छडी दिखला देते। चाहे सवेरे रवाना होने मे, चाहे दोपहर के आराम के बाद चलने मे, चाहे किसी स्थान की सभा समाप्त करने मे, वह सर्वत्र पूरी कडाई से समय पर काम करते-कराते। इससे यह हुआ कि बिना कष्ट के सारा कार्य्यक्रम दिनभर मे समाप्त होता और भोजन तथा आराम के लिए यथोचित समय मिल जाता।

ऐसा सभी सूबो मे नही हुआ। कही-कही तो रात मे एक या दो बजे भी जाकर सभा करनी पडी। हमारे अपने प्रान्त मे ही, जब १९३७ मे पडित जवाहरलालजी आये, बाँकीपुर मे रात के बारह बजे और पटना-सिटी मे रात के दो बजे—जनवरी के महीने मे—सभा हुई। जनता उस कडी सर्दी मे, सध्या छः बजे से दो बजे रात तक, खुले मैदान मे बैठी रही! जब मै महाराष्ट्र का वह सगठन स्मरण करता हूँ तो वहाँ के लोगो की कार्य-दक्षता की सराहना किये बिना नही रह सकता। पर अपने सूबे की अव्यवस्था के लिए क्या कहूँ! जनता का उतनी देर इन्तजारी करना उसके उत्साह और धैर्य्य का सूचक था, तो अतिथि के पहुँचने मे उतनी देर हमारी अव्यवहार्यता का सूचक था। पर मैने देखा है कि इस देर के कारण मे जनता का भी पूरा हाथ रहता है। जन-समूह भारी सख्या मे जमा होता है। वह यदि पहले से अपने स्थान पर ठीक नियन्त्रण मे बैठा रहे तो अतिथि को मच तक पहुँचने मे कठिनाई न हो और वहाँ पहुँचकर वह अपना काम भी जल्द से जल्द समाप्त कर सकता है। पर ऐसा होता नही। जनता की भीड अतिथि को घेर लेती है। उसका आगे बढना कठिन हो जाता है। उसके बाद मच तक पहुँचने मे भी काफी समय लग जाता है। फिर उसके बाद भी कुछ समय जनता को बैठाने और शान्त करने मे लगता है। कार्य्यक्रम बनाने मे हम इन सबकी गुंजाइश नही रखते। यदि उन जगहो के लिए, जहाँ सभाएँ होनेवाली है, गुंजाइश

रखे भी, तो रास्ते मे भीड गाडी रोक लेगी, और जो जगह कार्य्यक्रम मे नही है वहाँ भी अतिथि को कुछ कहने के लिए मजबूर करेगी। इसको तो हम न पहले से जानते है और न इसके लिए कार्यक्रम मे समय ही देते है। इसलिए समय पर कही भी पहुँचना कठिन हो जाता है।

मैने महाराष्ट्र की जनता मे सयम भी देखा। उन्होने कार्यक्रम के विरुद्ध कही भी रोका नही। न कही लोगो ने इस तरह की भीड ही की कि व्यर्थ समय नष्ट करना पडे। इसका एक सुन्दर नमूना शोलापुर मे देखने को मिला। वहाँ लोगो ने स्वागत के लिए बडी तैयारी की थी, सारा शहर सजाया था। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट ने जलूस रोक दिया। कार्य्यकर्त्ताओ ने हुक्म तो मान लिया, पर सब लोगो को मुझे देख लेने का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया। यह सब चन्द घटो मे ही कर दिया गया। लोगों को कह दिया गया कि सब अपने-अपने स्थान पर—सडको पर या दूकानों पर और मकानो मे—ठहरे रहे। मुझे उन सभी रास्तो से वे ले जायँगे जिधर से जलूस निकलने की बात थी। इस तरह लोग मुझे देख भी सकेंगे और लोगो ने जो स्वागत की तैयारी की थी उसे मै भी देख सकूँगा। लोगो ने प्रबन्धको का आदेश अक्षरश माना। मै निवास-स्थान से एक खुली गाडी मे, जो सुगन्धित फूलो से खूब सजायी गयी थी, चला। आहिस्ता-आहिस्ता उन सभी सडको से गुजरा जहाँ जलूस जानेवाला था। गाडी के साथ केवल एक दो और गाडियाँ थी जो आगे और पीछे चलती थी। सडके और मकानो तथा दूकानो के बरामदे लोगो से ठसाठस भरे हुए थे। पर कोई अपने स्थान से हमारी गाडी के पीछे या बगल मे नही दौडा। गाडी धीरे-धीरे चली, इसलिए सभी मुझे अच्छी तरह देख सके। गाडी के धीरे चलने पर भी इस चक्कर मे उससे कम समय लगा जितना जलूस मे लगता। जहाँ लोग चाहते, गाडी रोक दी जाती, लोग हार इत्यादि से स्वागत कर लेते। इस तरह मुझे शहर देखने का भी अच्छा मौका मिला। साथ-साथ दौडती हुई भीड की गर्द से और कान फाडनेवाले शोर-गुल से मै एकबारगी बच गया। लोग भी दौड-धूप के कष्ट से बच गये। गवर्नमेण्ट ने जलूस रोका था कि लोग स्वागत मे शरीक न हो सके और भीड-भाड न हो। अच्छी सूझवाले कार्य्यकर्त्ताओ की प्रवीणता और जनता के सयम का फल यह हुआ कि लोगो पर जलूस से जितना असर पडता उससे कही अधिक असर पडा।

सभी जगहो मे, हर हालत में, जहाँ गवर्नमेण्ट की रुकावट न हो वहाँ भी क्या ऐसा नही हो सकता है? हो सकता है, और अवश्य होना भी चाहिए। हमारे काम करनेवालो का बहुत समय भीड के सँभालने मे लग जाता है। कुछ मनचले लोग जलूस का प्रबन्ध बिना किसी अधिकार के अपने हाथो मे ले लेते है। इसका नतीजा यह होता है कि कुछ लोग अतिथि की गाडी के साथ-साथ चलते है जिससे वह छुप जाता है और बगल मे खडे लोग उसे देख नही पाते। तब फिर न देख सकनेवाले भी कुछ दूर तक साथ हो जाते है। इस तरह जलूस मे गडबडी मच जाती है। इतने लोगो के एक साथ ही चलने से खूब धूल उडती है। साथ के लोग हमेशा नारे लगाते चलते है।

अतिथि की नाक गर्द से और कान नारे से फटने लगते है। वह यदि मेरे-जैसा दमा का मरीज हुआ तो उसे इसका नतीजा अगर उस दिन नही तो शीघ्र ही भोगना पडता है। जलूस मे अधिक समय लगने के कारण वे लोग, जो अतिथि को देखने की इच्छा से सचमुच दूर से आते है, महरूम रह जाते है और आगे के कार्यक्रम मे भी देर हो जाती है।

मैने इसी यात्रा मे कही क्वेटा मे भयकर भूकम्प की खबर सुनी। शुरू मे कई दिनो तक वहाँ का पूरा हाल नही मिला। पर जब तफसील अखबारो मे आने लगी तो मालूम हुआ कि वहाँ की स्थिति भी कुछ बिहार-जैसी ही होगी। मैने एक रिलीफ-कमिटी बना दी और मै ही उसका सभापति बना। रुपये जमा होने लग। बिहार और क्वेटा मे दो बातो का बडा अन्तर था। क्वेटा का भूकम्प क्वेटा शहर और आस-पास के लिए उतना ही प्रलयकारी था जितना बिहार का। पर उसका क्षेत्र बिहार-सा विस्तृत नही था। क्वेटा एक फौजी छावनी है। इसलिए वहाँ फौज मौजूद थी जो लोगो को मदद पहुँचाने के काम मे लगायी गयी। पर इसी कारण वहाँ कोई भी गैर-सरकारी सस्था काम न कर सकी। अखबारो पर रोक लगा दी गई कि वे सरकारी मजूरी के बिना कोई खबर न छापे। एक-दो पत्रो के साथ, खबर छाप देने के कारण, बहुत सख्त व्यवहार किया गया। बाहर से लोगो का वहाँ जाना एकदम बन्द कर दिया गया। इसलिए वहाँ की वास्तविक स्थिति क्या थी, इसका पता किसी को न लगा। जो खबर मिली वह केवल सरकारी विज्ञप्तियो द्वारा ही, दूसरा कोई चारा न था। इस बात को लेकर अखबारो मे जोरो की चर्चा हुई। पर सुननेवाला कोई न था। फौज और सरकारी अफसरो ने जो मुनासिब समझा, किया। वहाँ के सरकारी कर्मचारियो और फौज के विरुद्ध बहुत तरह की शिकायते, वहाँ से आये हुए लोगो की जबानी, सुनने मे आयी। पर इनको कोई प्रकाशित न कर सका और न इनकी सचाई के सम्बन्ध मे किसी ने जाँच ही की। पर इसमे सन्देह नही कि इस प्रकार वहाँ अखबारो का जाना रोक देना और किसी भी बाहरी आदमी के वहाँ जाने की मनाही कर देना एक अजीब बात थी। इससे आम लोगों ने यह अर्थ निकाला कि शिकायते सही है और उन्ही पर परदा डालने के लिए यह कार्रवाई की गयी है। लोगो की इच्छा थी और बहुत सस्थाएँ तैयार थी कि वहाँ जाकर पीडितो की सहायता करे, पर किसी को वहाँ जाने की इजाजत ही न मिली।

वहाँ बहुत-से लोग सिन्ध और पजाब के थे। जो बचे उनमे बहुतेरे सिन्ध और पजाब वापस आ गये। उन लोगो से ही तरह-तरह की खबरे फैली। बाहर के लोगो ने ऐसे निराश्रय लोगो की ही सहायता की। इनकी भी सहायता जरूरी थी, क्योकि इनका सर्वस्व वहाँ खो गया था। बहुतेरो के कारबारी और कमानेवाले कुटुम्बी वहाँ मर गये थे। उनको पहले तो किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा देना जरूरी था जहाँ वे रह सके। परन्तु वैसे स्थान मे पहुँचने पर भी उनको कोई ठिकाना मिलने की आशा नही थी। इसलिए उन्हे कही भी ले जाकर कुछ दिनो के लिए उनके रहने और खाने-पीने

का प्रबन्ध कर देना तथा फिर किसी रोजगार मे उन्हे लगा देना जरूरी था। मेरी बहुत इच्छा थी कि मै वहाँ जाऊँ और जो थोडा-बहुत अनुभव बिहार के भूकम्प मे काम करने से मिला था उसका लाभ वहाँ के लोगो को देकर उनकी सहायता करूँ। पर गवर्नमेण्ट ने इजाजत नही दी। इस बात पर समाचार-पत्रो ने सरकार की निन्दा की, पर वह टस से मस न हुई।

मै कराची चला गया जहाँ बहुतेरे लोग क्वेटा से भागकर आये थे। सिन्ध के उन शहरो मे भी गया जहाँ ऐसे पीडित लोगो के आने की खबर मिली। हजारो शरणार्थियो से मुलाकात की। उनकी दुख-गाथा सुनी। तब गवर्नमेण्ट को एक पत्र लिखा। उसमे उन सभी शिकायतो का जिक्र किया जो सुनने मे आयी थी। वहाँ जाने की इजाजत भी माँगी। इसका उत्तर उस समय के भारत-सरकार के गृहसचिव श्री हैलेट—युक्तप्रान्त के गवर्नर सर मौरिस हैलेट—ने दो सतरो के पत्र मे दिया कि इजाजत नही मिल सकती और शिकायतो को भी गवर्नमेण्ट जाँच करने के योग्य नही समझती। इसलिए मुझे बाहर से ही सेवा-कार्य करना पडा। मै क्वेटा तो नही गया। पर कराची, जैकोबाबाद, सक्खर, शिकारपुर आदि सिन्ध के शहरो मे गया। डेरागाजी खाँ, मुलतान, लाहौर इत्यादि पजाब के शहरो मे भी गया जहाँ लोग भागकर वहाँ से आये थे। मैने सभी जगहो मे उनकी सहायता के लिए कमिटियाँ बना दी। कमिटियो ने उनकी यथासाध्य सहायता की। क्वेटा-रिलीफ-कमिटी की अपील पर कई लाख रुपये भी आ गये जिनका वितरण किया गया। यहाँ सहायता का रूप बिहार से बिल्कुल भिन्न था। बिहार मे की गई विविध सहायता का वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ क्वेटा मे उस स्थान पर तो हम पहुँचे ही नही जहाँ सहायता की जरूरत थी। इसलिए खास क्वेटा जाकर हम कुछ करने से मजबूर रहे। इधर ही कुछ रुपये शरणार्थियो को खिलाने-पिलाने और उनके दवादारू मे खर्च हुए। पर अधिक खर्च उनको व्यक्तिगत रूप से कही फिर जीवन आरम्भ करने के साधन पहुँचाने मे ही किया गया। इस काम का भार सिन्ध मे श्री जयरामदास और पजाब मे डाक्टर गोपीचन्द भार्गव ने ही उठाया। उनके सहायक स्थानीय लोग थे जिन्होने बडी तत्परता से काम किया।

ऊपर कहा गया है कि सफर मे ही मुझे क्वेटा की खबर मिली। कुछ दिनो तक तो मैने दौरा रोका नही, पर जब वहाँ की स्थिति की भयकरता का ठीक पता चला तो मुझे दौरा रोककर उधर जाना पडा। उस समय मै नागपुर मे दौरा कर रहा था। उसके बाद ही, बरसात के कारण, दौरा रोकना था ही। इसलिए चन्द जगहो का दौरा ही रोकना पडा। बरसात शुरू हो गयी। मै सिन्ध और पजाब मे चला गया। वहाँ बरसात बहुत कम होती है। जो होती भी है वह देर करके होती है। इसलिए कुछ हिस्सा जून का और पूरा जुलाई का महीना उन प्रान्तो मे बीता। वहा के दौरे के कारण मे और कार्य्यक्रम मे, दोनो मे, कुछ फर्क पड गया। पर काम जो राजनीतिक दौरे से होता है वह तो होता ही गया। जहाँ गया वहाँ पहले अस्पताल मे जाकर क्वेटा के घायलो को देखना। फिर उनके लिए जो छावनी बनी होती वहा

जाता और आश्रयी लोगो से मिलता। वहाँ के लोगो से कुछ रुपये जमा करता। रिलीफ के काम की निगरानी भी करता और सार्वजनिक सभा मे भाषण भी। सिन्ध और पश्चिम-पजाब मे तो केवल यही काम हुआ। पर जैसे-जैसे क्वेटा से दूर पूरब-पजाब पहुँचता गया, दूसरा काम भी कुछ कर सका। इस तरह वे महीने, जिन्हे दूसरे सूबो के दौरे मे बरसात के कारण नही बिता सकता था, सिन्ध और पजाब मे बिताये। वही जो कुछ हो सका, किया। इस यात्रा मे भी, विशेषकर पजाब मे, बहुत करके मोटर पर ही घूमना पडा। इसलिए बीच और पूरब के पजाब मे कई जिलो के अन्दर घुसकर वहाँ की हालत अच्छी तरह देख सका।

१११—कॉंग्रेस का इतिहास और देशी राज्यों की समस्या

कॉंग्रेस का जन्म १८८५ के दिसम्बर मे हुआ था, जब उसका पहला अधिवेशन बम्बई मे किया गया था। १९३५ के दिसम्बर मे उसके ५० वर्ष पूरे होते थे। इसलिए यह निश्चय किया गया था कि कॉंग्रेस की अर्धशताब्दी (स्वर्णजयन्ती) धूमधाम से मनायी जाय। इसके लिए कार्यक्रम बनाया गया था, जिसका जिक्र आगे आवेगा; पर एक बात यहाँ कह देना आवश्यक है। यद्यपि कॉंग्रेस के प्राय ५० बरस बीत चुके थे तथापि कॉंग्रेस का कोई ठीक इतिहास, शुरू से आज तक का इकट्ठा लिखा, नही मिलता था। डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने एक इतिहास लिख रखा था, पर वह अभी छपा नही था। राय हुई कि इस जयन्ती के अवसर पर एक इतिहास भी प्रकाशित किया जाय। डाक्टर सीतारमैया से मैंने अनुरोध किया कि अपने लिखे इतिहास को वह पूरा कर दे और कॉंग्रेस की ओर से वह छपवाया जाय। उन्होने इतिहास पूरा कर दिया। बरसात मे, मै और वह, वर्धा मे बैठकर, उसे दुहरा गये। इसमे कई दिन लगे। जो कुछ बाकी रह गया था उसे मै इलाहाबाद मे, स्वराज-भवन मे बैठकर, दुहरा गया।

वह इतिहास अँगरेजी मे लिखा गया था। हमने यह भी निश्चय किया कि देशी भाषाओ मे भी उसके सस्करण उसी समय निकाले जायँ। इसलिए हिन्दी, मराठी, कनाड़ी, तेलगू, तामिल, उर्दू प्रभृति भाषाओं मे उसका अनुवाद छापने का भी प्रबन्ध कर दिया गया। अँगरेजी सस्करण के छापने के खर्च का भार तो अखिल भारतीय कमिटी ने लिया, क्योकि हम जानते थे कि इसमे जो पैसे लगेंगे वे पुस्तक के बिक जाने पर वापस आ जायँगे। दूसरी देशी भाषाओ मे अनुवाद कराने और उन्हे छापने का भार कुछ प्रकाशकों ने अथवा उन प्रान्तो की कमिटियो ने ले लिया जहाँ की भाषा मे अनुवाद हुआ था। जिस दिन कॉंग्रेस की जयन्ती मनायी गयी उस दिन—जहाँ तक मुझे स्मरण है—अँगरेजी, हिन्दी, मराठी, कनाडी, तेलगू, तामिल और उर्दू के सस्करण छपकर तैयार हो गये थे। उस अवसर पर जो खरीदना चाहते थे उनको पुस्तक मिल सकी थी। यदि पुस्तके कुछ और पहले छपकर तैयार हो सकी होती तो और भी बहुत प्रतियाँ बिक सकती। तोभी हिन्दी और मराठी के दो सस्करण

उन चन्द दिनो के अन्दर ही निकालने पडे। अँगरेजी का भी कई हजार का सस्करण पूरा का पूरा बिक गया और कुछ दुबारा छापना पडा जिसकी कुछ प्रतियाँ पीछे तक बची रही। मुझे इस पुस्तक के दुहराने मे काफी समय लगाना पडा था और इसके लिए एक भूमिका भी लिखनी पडी थी।

इस जयन्ती के अवसर पर कांग्रेस-सम्बन्धी छोटी-मोटी और भी बहुतेरी पुस्तके छपी। एक मे कांग्रेस के सभी स्वीकृत प्रस्ताव इकट्ठे करके छापे गये थे। एक दूसरी मे सभी नही, पर मुख्य-मुख्य प्रस्ताव छापे गये थे। मद्रास के श्री जे० ए० नटेशन् ने कांग्रेस के सभापतियो के भाषणो को इकट्ठा करके पहले ही छापा था। उन्होने उसे १९३४ तक के भाषण के साथ छापकर पूरा कर दिया। इस तरह इस साल मे कॉंग्रेस-सबधी-साहित्य बहुत छपा और बिका।

बरसात की हवा मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल नही होती। इस साल भी कुछ तबीयत खराब रही। पर कोई विशेष तकलीफ नही हुई। मेरा काम नही रुका। काम भी एक स्थान मे बैठकर अधिक करना पडा। इसलिए दौड़-धूप के कारण जो व्यतिक्रम हुआ करता है वह नही हुआ। मैंने पहले से ही सोच रखा था कि बरसात के बाद दक्खिन भारत की यात्रा करूँगा। इसलिए मद्रास-प्रेसिडेसी के तीन सूबो—तामिल-नाड, केरल और आन्ध्र—के लिए यात्राक्रम बनाया गया। मैंने सोचा कि दशहरे के बाद यह यात्रा शुरू करूँगा। यात्रा शुरू करने के पहले मद्रास मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने का निश्चय किया। वह एक विशेष कारण से आवश्यक हो गया था।

कांग्रेस की नीति शुरू से यह रही थी कि देशी रजवाडो और रियासतो के अन्दरूनी मामलो मे वह हस्तक्षेप नही करेगी। पहले चाहे जिस कारण से यह नीति मानी गई हो, अब इसके सम्बन्ध मे बहुत मतभेद होने लगा था। देशी रियासतो मे प्रजातत्र नही है। राजाओ का मनमाना ही चलता है। कही-कही अच्छे दीवान सलाहकार मिल गये तो राज्य-प्रबन्ध अच्छा हुआ और प्रजा का कुछ लाभ भी हुआ। पर कही भी राज्य-शासन मे प्रजा को अधिकार नही था। ये रजवाडे सख्या मे छ-सात सौ है। इनमे कुछ बीघे के क्षेत्रफल और चन्द आदमियो की आबादीवाले छोटे राज्य से लेकर हजारो वर्गमील के विस्तार और करोडो की जनसख्यावाले बडे-बडे राज्य तक है। इनके अधिकार भी इसी तरह भिन्न-भिन्न है। जो बडे-बडे राज्य है वे अन्दरूनी मामलो मे प्राय स्वतत्र है। वे अपनी अदालत, कचहरी, थाना, पुलिस वगैरह सब कुछ रखते है। जो बहुत छोटे है, वे जमीन्दार वा जागीरदार के समान ही है। इनमे से कुछ का सबध ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के साथ सुलहनामे के जरिये बना हुआ है और बहुतेरो का सबध सनद द्वारा निर्धारित किया गया है। आरभ मे चाहे जो सबध रहा हो, अब तो ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट सबका सिरताज है। वह यद्यपि उनके प्रतिदिन के कारबार मे प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप नही करती, तथापि ब्रिटिश-रेजिडेण्ट या दूसरा नियुक्त अफसर अपने हलकेवाले राज्य पर काफी असर रखता है। खासकर दीवान

और मत्री की नियुक्ति मे उसकी बात खूब चलती है। इस तरह, ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट, परोक्ष रीति से, उनके अन्दरूनी मामलो मे भी, काफी दिलचस्पी लेती है।

किसी भी देशी राज्य मे ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट की मर्जी के खिलाफ कोई महत्त्वपूर्ण काम नही हो सकता। इसके अलावा जब कोई राजा या नवाब ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को नाखुश कर देता है, चाहे वह जिस कारण से हो, तो उसकी खैर नही होती। उसे शीघ्र ही अपनी गद्दी छोडनी पडती है। उसके लिए कोई न कोई कारण आसानी से सामने आ जाता है। यो तो कहा जाता है कि ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट ने अपने हाथो मे इस बात का अधिकार रखा है कि यदि कोई राजा कुशासन करे, प्रजा पर जुल्म करे, तो वह पदच्युत किया जा सकता है। पर अधिकतर बात ऐसी हुई है कि ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को नाखुश करने पर ही कुशासन की खोज की जाती है और कुशासन के नाम पर वह पदच्युत किया जाता है। यदि कुशासन के साथ-साथ कोई राजा ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को खुश भी रख सका, तो वह निर्भय और निरकुश है। पर यदि कुशासन के साथ वह ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को भी नाखुश करता है तो उसके लिए फिर कही कोई जगह नही रह जाती। इस तरह प्राय प्रतिवर्ष एक-आध राजा पदच्युत होते देखे जाते है। इतने पर भी इन राज्यो का दावा है कि वे अपना सम्बन्ध केवल ब्रिटिश ताज के साथ रखेगे और वे स्वतत्र है। यह दावा बिल्कुल खोखला है, क्योकि जब भारतीयो के खिलाफ उनको खडा करना होता है तो ब्रिटिश-सरकार उनके साथ सुलहनामो की दुहाई देती है; पर जब उसे उनके साथ अपनी मनमानी करनी होती है तो वह जो चाहती है कर गुजरती है—उनकी तथा उनकी प्रजा की एक भी नही सुनती। ब्रिटिश-सरकार के साथ ऐसा सम्बन्ध रखते हुए भी इन राज्यों का दावा है कि अपने राज्य मे वे जो चाहेगे, करेगे। इसलिए वे अपने यहॉ प्रजातत्र को फटकने नही देना चाहते।

ब्रिटिश-भारत मे पचास बरसो से अधिक काल से राजनीतिक सभाएँ होती रही है। यहाँ जनता मे काफी जाग्रति आ गयी है। ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को मजबूर होकर तथा ब्रिटिश राजनीति की प्रजातत्रात्मक पद्धति के कारण भारत के लिए भी प्रजातत्र स्थापित करने की घोषणा करनी पडी है। जो विधान समय-समय पर बनते गये है वे भारत को उसी ओर ले जाते रहे है। यह दूसरी बात है कि हम जहॉ तक जाना चाहते है वहाँ तक वह हमे नही पहुँचने देती है। तोभी इससे इनकार नही है कि यहॉ के विधान का रुख उस ओर है। ब्रिटिश-भारत और देशी रियासते, दोनों इस तरह मिले-जुले है कि कोई उनमे मामूली तौर पर भेद नही देख सकता है। भेद शासन-पद्धति मे है, पर दोनो की जनता मे भेद नही है। वही लोग जो सरहद के एक तरफ रहते है, सरहद के दूसरी तरफ भी बसते है, एक ही बोली बोलते है, एक ही धर्म मानते है, एक ही सस्कृति रखते है, आपस मे लेन-देन और शादी-ब्याह भी किया करते है। पर शासनप्रणाली मे बहुत फर्क पड़ जाता है। इसलिए जब ब्रिटिश-भारत मे जाग्रति हुई तो उसका असर देशी रजवाडो की प्रजा पर

पडे बिना नही रह सकता था। उन लोगो मे भी अपने राज्य-शासन मे अधिकार पाने की इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न हुई। वहाँ की नादिरशाही के कारण इस अधिकार की आवश्यकता भी खूब महसूस होने लगी। वहाँ भी लोगो ने कुछ सगठन शुरू किया। वे लोग भी ब्रिटिश-भारत के राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेने लगे। इस तरह यहाँ के विचारो को अपने राज्यो के अन्दर अपने साथ ले जाने लगे। इसलिए कॉग्रेस की पुरानी नीति कि वह देशी राज्यो के भीतरी मामलो मे हस्तक्षेप नही करेगी, लोगों को खटकने लगी।

नागपुर-काँग्रेस के समय, १९२० के दिसम्बर मे, जब कॉग्रेस ने नये सिरे से काँग्रेस का विधान बनाया, और भाषाओं के अनुसार काँग्रेसी सूबो का सगठन किया, तो उसने देशी रजवाडो की प्रजा को अपने पास के ब्रिटिश-भारतीय कॉग्रेस-सूबो की कमिटियो मे शरीक होने का अधिकार दे दिया। इस तरह उन सभी देशी रजवाडो की प्रजा को, जहाँ गुजराती बोली जाती है, गुजरात-प्रान्तीय कॉग्रेस-कमिटी की मातहत कमिटियो मे मेम्बर बनने और चुने जाने का अधिकार मिला। गुजरात-प्रान्तीय कमिटी को अखिल भारतीय-कमिटी के लिए अथवा काँग्रेस-अधिवेशन के लिए उतने ही सदस्य या प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला जितने ब्रिटिश गुजरात और रजवाडोवाले गुजरात (काठियावाड) की आबादी के अनुपात से मिलना चाहिए था—अर्थात् गुजरात की आबादी केवल ब्रिटिश गुजरात की ही आबादी नही मानी गयी, उसके साथ रजवाड़ोवाले गुजरात की भी आबादी जोड दी गयी, जहाँ गुजराती बोली जाती है। इस तरह, अजमेर एक छोटी जगह है जो ब्रिटिश-सरकार के अन्दर है। काँग्रेस-विधान मे वह भी एक सूबा है और उसकी आबादी केवल उस छोटे हलके की आबादी नही मानी गयी, बल्कि उसके साथ पूरे राजपूताने की आबादी भी जोड दी गयी, जिससे अजमेर को बहुत अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया।

इस नियम का अर्थ और कारण तो यह था कि कॉग्रेस देशी राज्यो के भीतर कॉग्रेस-कमिटियाँ स्थापित करना नही चाहती थी, क्योकि यदि ऐसा किया जाय, और वहाँ के शासन से किसी बात मे मतभेद हो जाय, अथवा वे काँग्रेस-कमिटियाँ स्थापित होने देना पसन्द न करे, तो उनके साथ मुठभेड हो सकती है, काँग्रेस इसे पसन्द नही करती थी। जब देशी रियासतों की जनता मे जाग्रति होने लगी तो उनकी ओर से कॉग्रेस मे माँग हुई कि काँग्रेस अपनी नीति को बदल दे और रियासतो मे भी प्रजातन्त्र के लिए कॉग्रेस उसी तरह से प्रयत्न करे जिस तरह वह ब्रिटिश-भारत के लिए करती है। उनकी इस मॉग मे न्याय था, क्योकि दोनो की जनता मे कुछ भेद नही था और काँग्रेस के लिए भी दोनो मे अन्तर करना ठीक नही था। कॉग्रेस दोनो मे अन्तर करना चाहती भी नही थी, पर वह इस झगडे को भी हाथ मे लेकर अपनी कठिनाइयो को बढाना नही चाहती थी। वह यह भी मानती थी कि यदि हम ब्रिटिश भारत मे ब्रिटिश सरकार की शक्ति के साथ कुछ कर लेगे और यहाँ प्रजातन्त्र स्थापित कर सकेगे, तो देशी राज्यो मे भी यह आसानी से हो जायगा, क्योकि वे

भी ब्रिटिश सरकार की शक्ति पर ही बहुत-कुछ अवलम्बित है। यह सब होते हुए भी इधर कई बरसो से इस विषय मे रियासती प्रजा मे काफी खलबली हो रही थी। इसके कई कारण थे।

गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे ब्रिटिश सरकार ने रजवाडो के प्रतिनिधियो को भी बुलाया था। वहाँ सारे भारत के लिए विधान बनाने का प्रयत्न किया गया था जिसके अन्दर ब्रिटिश भारत और देशी भारत दोनो का ही समावेश था। दोनो के लिए एक ही विधान बनाने का आरभ तभी हो सका जब गोलमेज मे उपस्थित राजाओ ने इसे मजूर किया कि यदि सतोषप्रद विधान बना और उनके स्वत्व उसमे सुरक्षित रहे, तो वे भी उस विधान के अन्दर अपनी रियासतो को ला सकेगे। १९३५ के विधान मे जो केन्द्रीय असम्बली बननेवाली थी उसमे दो-तिहाई प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और एक-तिहाई प्रतिनिधि देशी रियासतो के रखे जानेवाले थे। पर इसमे एक बहुत बडा अन्तर होगा कि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि तो वहाँ की प्रजा द्वारा चुने जायँगे, पर रजवाडो के प्रतिनिधि वहाँ के राजा द्वारा नामजद किये जायँगे। यह बात वहाँ की प्रजा को तो खटकती ही थी, हम सबको भी बहुत बुरी लगती थी, क्योकि हम समझते थे कि इस तरह से ब्रिटिश-सरकार कहने के लिए केन्द्रीय असम्बली को प्रतिनिधित्व का हक देती है, पर वास्तव मे उसके एक-तिहाई सदस्यो की नियुक्ति मे, रेजिडेण्टो की मार्फत, वह पूरा-पूरा हाथ बँटा सकेगी। यह भी एक विशेष कारण था जिससे कांग्रेस पर जोर दिया जाने लगा कि अब देशी रजवाडो के अन्दर भी कांग्रेस उसी तरह काम करे जिस तरह वह ब्रिटिश भारत के अन्दर जन-सगठन का काम करती है।

देशी राज्यो मे कही-कही के शासको ने आधुनिक वायु-मण्डल से प्रभावित होकर कुछ सुधार किया और कही-कही सिर्फ नाम के लिए बहुत कम अधिकारो के साथ धारा-सभाएँ भी कायम हो गयी। पर उनमे से किसी मे भी अभी तक उतने अधिकार नही मिले है जितने ब्रिटिश भारत मे १९२० के विधान के अनुसार प्रान्तो को मिले थे। पर कही-कही—जैसे बडोदा, मैसूर, ट्रावकोर आदि राज्यो मे—शिक्षा-सम्बन्धी और कुछ दूसरे सुधार ऐसे हुए है जो किसी-किसी बात मे ब्रिटिशराज्य से भी आगे है। पर प्रजा को शासन मे अधिकार अभी तक वहाँ भी नही मिले है। इस तरह के सुधार भी अभी तक इने-गिने चन्द राज्यो मे ही हो पाये है। प्रजा मे, बहुत जगहो मे, जाग्रति हो रही है। ब्रिटिश भारत तथा कुछ देशी राज्यो की हालत देखकर सब राज्यो की प्रजा अपनी-अपनी रियासतो मे भी सुधार चाहती है।

१९३०-१९३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे देशी राज्यो की प्रजा ने बहुत जगहो मे काफी भाग लिया था। गुजराती लोग और मारवाडी लोग व्यापार मे बहुत आगे बढे हुए है। वे बम्बई, कलकत्ता आदि बडे-बडे नगरो मे व्यापार के लिए जाते है। वहाँ जो आन्दोलन बढ़ा तो वे उससे अपने को अलग न रख सके। जब बम्बई और कलकत्ता-जैसे शहरो के गुजराती और मारवाडी वहाँ के सत्याग्रह मे शरीक हुए, तो

वे अपनी रियासतों में भी स्वभावतः इस आन्दोलन को उन्हीं अधिकारों के लिए ले जाना चाहते थे जिनके लिए वे ब्रिटिश-भारत में कांग्रेस में शरीक होकर लड़ रहे थे। इस तरह कांग्रेस के अन्दर एक खासा बड़ा दल तैयार हो गया था जो कांग्रेस की नीति में परिवर्तन कराना चाहता था। कांग्रेस के अन्दर ब्रिटिश-भारत के रहने-वालों में भी बहुतेरे ऐसे थे जो ब्रिटिश-भारत और देशी भारत में कोई अन्तर देखना नहीं चाहते थे। इसलिए बम्बई-कांग्रेस के समय ही यह आवाज उठायी गयी कि कांग्रेस की नीति बदली जाय।

स्वयं महात्मा गांधी का जन्म एक देशी राज्य में हुआ था। वह काठिया-वाड़ के राज्यों से अच्छी तरह परिचित हैं। ब्रिटिश गुजरात देशी राज्यों से केवल घिरा ही हुआ नहीं है बीच-बीच में दोनों के गाँव एक दूसरे से इस तरह मिले-जुले हैं कि यह कहना कठिन होता है कि कहाँ ब्रिटिश राज्य है और कहाँ किसी देशी राज्य का शासन है। इस तरह उनको और सरदार वल्लभभाई पटेल को दोनों को देशी रजवाड़ों की स्थिति का पूरा अनुभव है। वहाँ की प्रजा से भी उनका काफी परिचय है। महात्माजी का विचार था कि यदि हम ब्रिटिश भारत से देशी रजवाड़ों में काम करना शुरू करेंगे तो वहाँ काम ठीक न हो सकेगा, वहाँ की प्रजा को अपने पैरों पर खड़ा होने का वह सुअवसर भी न मिलेगा जिससे उसमें आवश्यक शक्ति पैदा हो सके। इसलिए, वह देशी राज्यों की प्रजा के साथ अपनी सहानुभूति रखते हुए भी यह नहीं चाहते थे कि कांग्रेस अपना काम रजवाड़ों में भी उसी तरह जारी करे जिस तरह वह ब्रिटिश भारत में करती है। हाँ वहाँ की प्रजा इस तरह का आन्दोलन अवश्य कर सकती है और कांग्रेस की सहानुभूति उसके साथ अवश्य है तथा रहेगी—वह सहानुभूति, आवश्यकता और सुविधा के अनुसार, क्रियात्मक भी हो सकती है और होगी पर वहाँ के आन्दोलन और संगठन का भार कांग्रेस अपने ऊपर अभी नहीं ले सकती।

महात्माजी ने अपने एक वक्तव्य में यह मत प्रकाशित कर दिया। पर उन लोगों को इससे संतोष न हुआ जो देशी राज्यों के मामले में कांग्रेस का सीधा हस्तक्षेप चाहते थे। मैंने कांग्रेस के सभापति की हैसियत से एक बयान निकाला पर उससे भी वे सन्तुष्ट न हुए। अन्त में वर्किंग कमिटी ने भी एक वक्तव्य निकाला। इसलिए मद्रास में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने का एक कारण यह भी था कि वर्किंग कमिटी के निश्चय पर वह विचार कर सके। अखिल भारतीय कमिटी ने वर्किंग कमिटी के वक्तव्य को मंजूर कर लिया और यह झगड़ा कांग्रेस के अन्दर चलता रहा; शायद अभी तक वह पूरी तरह से खतम नहीं हुआ है।

पर इन सबका एक नतीजा वह है जो हर तरह से वांछनीय था और जो गांधीजी की नीति का उद्देश्य था। अब रजवाड़ों के अन्दर वहाँ की प्रजा ने अपनी संस्थाएँ स्थापित कर ली हैं। बहुतेरे रजवाड़ों में प्रजा-मण्डल या किसी दूसरे नाम से संस्थाएँ बन गयी हैं। अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजा-मण्डल भी बन गया है। इस

तरह वहाँ के लोग अपना आन्दोलन स्वय चलाने लगे है। कांग्रेस भी, जहाँ आवश्यकता होगी, जरूर उनकी मदद करेगी। इस स्थिति तक पहुँचने मे कई साल लग गये है। १९३५ मे अभी बहुत जोरदार बहस चल रही थी। इसलिए नीति निर्धारित करके घोषणा करना आवश्यक था। यह मतभेद केवल राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध मे ही था। जहाँ तक वहाँ की प्रजातन्त्रात्मक शासन-पद्धति की बात थी, कांग्रेस भी उसे पूर्णरूपेण उसी तरह अपना उद्देश्य समझती थी जिस तरह वह ब्रिटिशभारत के लिए समझती है। इसकी घोषणा भी वह कर चुकी थी। रचनात्मक काम के सम्बन्ध में भी कोई मतभेद न था। कई रियासतो के अन्दर अछूतोद्धार-सम्बन्धी कार्य, और खादी की उत्पत्ति तथा उसके प्रचार का काम, कई वर्षो से खूब चलता रहा है; इसमे भी कोई मतभेद न था।

११२—दक्षिणभारत का दौरा

मैं वर्धा से मद्रास के लिए रवाना हुआ। वहाँ पर अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद दक्षिणभारत की यात्रा आरम्भ की गई। यहाँ का भी कार्यक्रम वैसा ही था—दिन-भर मोटर पर चलना, रास्ते मे स्थान-स्थान पर भाषण देते जाना, दोपहर को कही कुछ देर के लिए भोजन और विश्राम के वास्ते ठहर जाना, फिर रात के ९-१० बजे तक वही सिलसिला जारी रखना। प्राय सध्या तक किसी बडे स्थान पर पहुँच जाता था जहाँ रात को रहता और जहाँ सध्या के बाद ही सभा होती।

दक्षिणभारत की यात्रा में भाषा का प्रश्न उपस्थित हुआ। मध्यप्रदेश और प्राय. महाराष्ट्र तक मे मैंने हिन्दी मे ही भाषण किये। कही-कही, खासकर गाँवो मे, श्री शकराव देव मेरे भाषण का उल्था कर देते, पर अधिकाश जगहो मे हिन्दी से ही काम चल जाता। पर तामिलनाड मे यह बात नही थी। वहाँ तो मद्रास से ही मुझे अँगरेजी मे भाषण करना पडा। मैं जो कुछ कहता उसके प्रत्येक वाक्य का भाषान्तर कोई स्थानीय सज्जन कर दिया करते।

दक्षिणभारत मे हिन्दी-प्रचार का काम १९१८ से ही, महात्मा गाधीजी की प्रेरणा से, हो रहा है। तामिल-प्रदेश मे भी हजारो स्त्री-पुरुष ऐसे हो गये है जो हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। मैं जिस बडे शहर मे पहुँचता, हिन्दी-प्रचारक से मुलाकात हो जाती। कुछ तो वहाँ के ही निवासी थे जिन्होंने हिन्दी सीख ली है, कुछ उत्तर-भारत के रहनेवाले है जो बिहार तथा युक्तप्रान्त से जाकर वहाँ उस काम मे लगे हुए है। वहाँ के लोगों का हिन्दी के प्रति प्रेम और श्रद्धा अवर्णनीय है। हिन्दी-प्रचार का काम विशेषकर पढे-लिखे लोगो मे ही अधिक हुआ है। स्त्रियो ने इसमें उतना ही रस लिया है जितना पुरुषो ने। हिन्दी-पाठशालाओ मे बूढे और बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष, एक साथ शिक्षा पाते हैं। जब मैं एक बार और दक्षिण मे गया था तो मैंने देखा था कि एक ही सभा मे पिता और पुत्र, माता और पुत्री को हिन्दी-परीक्षा पास

करने के प्रमाणपत्र एक साथ ही दिये गये थे। यह सिलसिला अभी तक जारी है। लाखों लोगों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तोभी हिन्दी में भाषण करना अभी सम्भव न था, क्योंकि हजारों की संख्या में जो लोग जमा होते उनमें हिन्दी समझनेवाले थोड़े ही होते। अँगरेजी जाननेवालों की संख्या हिन्दी जाननेवालों से कहीं ज्यादा होती, तोभी सारी जनता में उनकी गणना भी बहुत थोड़ी ही होती। इसलिए, मैं चाहे अँगरेजी में बोलता या हिन्दी में, सभा में उपस्थित सौ आदमियों में प्राय ९० ऐसे होंगे ही, जो न हिन्दी समझते होंगे न अँगरेजी, और उनके लिए भाषण का भाषान्तर हर हालत में आवश्यक होता।

मद्रास-जैसे बड़े शहर में शायद अँगरेजी जाननेवालों की संख्या गाँवों की अपेक्षा बहुत अधिक होती, पर वहाँ भी अँगरेजी में भाषण समझनेवालों की गिनती थोड़ी ही होगी। पर जो थोड़े अँगरेजी जाननेवाले होते उनके बराबर भी हिन्दी जाननेवाले न होते। किन्तु इससे भी अधिक बड़ा कारण अँगरेजी में भाषण करने का यह होता कि अँगरेजी से तामिल में उल्था करनेवाला आसानी से सभी जगहों में मिल जाता, किन्तु हिन्दी में तामिल में उल्था करनेवाला मिलना कठिन होता। इसलिए मुझे तामिलनाड में और केरलप्रदेश में अधिकतर अँगरेजी में ही भाषण करने पड़े। बहुत दिनों से अँगरेजी अधिक बोलने की आदत छूट गयी थी, पर दो-चार सभाओं के बाद ही फिर मुँह खुल गया और मैं अच्छी तरह से भाषण कर सका।

एक और चीज थी जिसका जिक्र कर देना अच्छा होगा। मद्रास में 'हिन्दू' नामक अँगरेजी दैनिक-पत्र बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। इसकी बिक्री बहुत काफी है। छपाई इत्यादि भी बहुत सुन्दर है। इसका सम्पादन और समाचार-संग्रह भी बहुत ही अच्छा होता है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दुस्तान के सभी हिन्दुस्तानी पत्रों में, जो अँगरेजी में छपते हैं, यह सबसे अच्छा है तो अतिशयोक्ति न होगी। इसका मुझे अनुभव वहाँ पूरी तरह से हो गया। मैं जिस दिन मद्रास पहुँचा, स्टेशन पर लोगों ने स्वागत किया। वहीं एक छोटी-सी सभा हो गयी—छोटी इस माने में कि जो सभा समुद्र के किनारे होती उसके मुकाबले में वह छोटी ही थी। पर तोभी वहाँ हजारों आदमी मौजूद थे। वहाँ मुझे सम्मान के साथ उतार कर लोग ले गये। वहीं मुझे पहले-पहल उस प्रान्त में कुछ कहना पड़ा। वहाँ से जलूस निकला, जो शहर के कई हिस्सों से गुजरता हुआ मैलापुर गया, जहाँ मुझे ठहरना था। रास्ते में 'हिन्दू' का आफिस पड़ता था। जलूस जब 'हिन्दू'-आफिस के सामने पहुँचा, 'हिन्दू' का एक अंक, जो उन दिनों सन्ध्या के समय निकला करता था, मेरे हाथ में दिया गया। उसमें मैंने स्टेशन के स्वागत का वर्णन और वहाँ के दृश्य का चित्र तथा अपना भाषण भी देख लिया। मैं जहाँ-कहीं गया, 'हिन्दू' का सवाद-दाता मौजूद मिला करता। वह मेरे पूरे भाषण को, जो अँगरेजी में ही हुआ करता था, पूरा-पूरा अपने पत्र के पास लिख भेजा करता। इस तरह तामिलनाड में और केरल में मेरे भाषणों की जैसी पूरी और अच्छी रिपोर्ट छपी वैसी और कहीं नहीं। 'हिन्दू' के सवाददाता सभी

जगहों मे होते। ऐसा नही था कि कोई सवाददाता मेरे साथ-साथ सफर मे फिरता रहा हो। स्थानीय सवाददाता भी शीघ्रलिपि जानते थे, अँगरेजी की अच्छी लियाकत रखते थे और अपने काम मे इतने तत्पर होते थे कि मद्रास से किसी को मेरे साथ घूमने की जरूरत न हुई।

उन सभी स्थानो का नाम देना तो कठिन है जहाँ-जहाँ मै गया। यदि मै ऐसा कहूँ कि सारे सूबे मे शायद ही कोई तालुका या शहर होगा जहाँ मै नही गया, और एक तालुका से दूसरे तालुका तक के रास्ते मे शायद ही कोई मुख्य स्थान होगा जहाँ मै कुछ देर के लिए न ठहरा होऊँ, तो अत्युक्ति नही होगी। इस सफर मे भी प्राय सारा रास्ता मोटर पर ही कटा। कही-कही ऐसा हुआ कि एक रास्ते पर दो बार जाना पडा, तो वहाँ एक ओर से रेल पर सफर किया गया।

मैने ऊपर कहा है कि मद्रास मे ब्राह्मण-अब्राह्मण का झगडा कुछ वैसा ही है जैसा उत्तर-भारत मे हिन्दू-मुसलमान का अथवा बगाली-बिहारी का बिहार मे। जस्टिस-पार्टी अब्राह्मणो का दल है। वहाँ मेरे जाने के एक वर्ष पहले ही वह केन्द्रीय असम्बली के चुनाव मे कॉग्रेस से हार चुकी थी। पर उसका असर तो अभी बहुत-कुछ बाकी था। इसलिए कही-कही इस तरह के सवाल किये जाते थे जिनसे यह टपकता था कि वे लोग कॉग्रेस को ब्राह्मणो की सस्था समझते है। मैने कई जगहो मे साफ-साफ कहा कि कॉग्रेस मे सबके लिए स्थान है और आज भी उसकी वर्किंग कमिटी मे बहुत-से अब्राह्मण है। उदाहरणार्थ—महात्मा गाधी, सरदार बल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपालानी, और अपना नाम भी मैने लिया। मैने देखा कि चाहे कारण जो हो, इस तरह के प्रचार का यह बुरा फल हुआ है कि कॉग्रेस-जैसी सस्था के सम्बन्ध मे भी लोगो मे सदेह पैदा कर दिया गया है।

पर इससे भी अधिक एक दिलचस्प चीज और कही-कही देखने मे आयी। वहाँ पर एक दल अब्राह्मणो का कायम हुआ था जो अपने को स्वाभिमानी दल (सेल्फ रिस्पेक्ट पार्टी) कहा करता था। उस दल की ओर से कही-कही कुछ लोग स्वागत के समय, काले झडे दिखलाते और 'गो-बैक'—'लौट जाओ' का नारा लगाते। पर यह दल इतना छोटा होता कि केवल एक मजाक की चीज ही बन जाता। मुझे याद है कि एक सभा मे कुछ लोग 'गो-बैक' के नारे लगाकर शोर मचा रहे थे। मैने हँसकर सभा से पूछा कि कितने लोग चाहते है कि मै वापस चला जाऊँ और कितने चाहते है कि मै न जाऊँ। लोगों ने जो हाथ उठाकर अपनी राय बतलायी तो साफ हो गया कि 'गो-बैक' कहनेवालो की सख्या बहुत थोडी थी। मैने भाषण इसी प्रश्न से शुरू किया—इतने अधिक लोग चाहते है कि मै न जाऊँ और इतने थोडे लोग चाहते है कि मै जाऊँ, तो ऐसी अवस्था मे क्या करूँ? मेरे प्रश्न करते ही सारी सभा मे हँसी हुई। लोग इतना हँसे कि 'गो-बैक' कहनेवाले भी अपनी हँसी न रोक सके, वे भी उस हँसी मे शरीक हो गये। उसके बाद सभा शान्ति से हुई।

एक दूसरे स्थान मे रात को सभा हो रही थी। कुछ लोग शोर मचाने लगे।

पर सभा बहुत बडी थी। मुझ तक उस शोर का असर नही पहुँचा था। पर वहाँ के लोग उससे ऊब गये। पुलिसवाले भी गुस्से मे आ गये। शोर मचानेवालो की सख्या बहुत थोडी थी। पुलिस ने उनको पकड़कर पास के ही एक मकान मे बन्द कर दिया। जब तक सभा होती रही, उनको बन्द ही रखा। इसकी खबर मुझे पीछे लगी। पर मैंने यह देखा कि जो काले झडे दिखलाने के लिए आते वे भी कुछ देर तक शोर-गुल मचाकर भाषण होने लगने पर चुप हो जाते और उसे ध्यान से सुनते। बीच-बीच मे, विशेषकर जलूस और स्वागत के समय ही, वे अपनी शक्ति खर्च करते, मेरे भाषण के समय नही।

तामिलनाद, केरल और आन्ध्र प्रदेशो मे बहुत जबरवस्त स्वागत हुआ। प्रचार-कार्य भी काफी हुआ। आन्ध्र मे मैं सबसे पीछे आया। वहाँ एक नयी बात यह हुई कि मेरे पूरे सफर मे हिन्दी-प्रचार-सभा के श्री सत्यनारायण साथ रहे। वह आन्ध्र के रहनेवाले है। पर हिन्दी का ज्ञान उनका इतना अच्छा है कि यदि वह भाषण देने लगे तो किसी हिन्दी-भाषी को यह सदेह न होगा कि वह हिन्दी-भाषी नही है। इसलिए वहाँ मेरे भाषणो के भाषान्तर का प्रश्न बहुत आसान हो गया। आन्ध्र मे तामिल की अपेक्षा हिन्दी-प्रचार अधिक हुआ भी है। वहाँ मैंने यह भी देखा कि बहुत जगहो मे लोग मेरा भाषण हिन्दी मे ही सुनना चाहते थे। इसलिए, आन्ध्र मे कुछ स्थानो को छोडकर और सब जगहो मे मैंने हिन्दी मे ही भाषण किया। सत्यनारायणजी-जैसा भाषान्तरकार साथ मे था। जहाँ तक मै समझ सकता था, मेरे भावो का वह बहुत सुन्दर रीति से तेलगू मे उल्था करके बता देते थे। बात तो यह है कि वहाँ भी सौ मे ९० ऐसे ही लोग हुआ करते थे जो न हिन्दी जानते थे और न अँगरेजी; उनको तेलगू-उल्था के लिए हर-हालत मे इन्तजार करना पडता था—चाहे मै अँगरेजी मे बोलूँ या हिन्दी मे। यही बात तामिलनाद मे भी थी। पर आन्ध्र के जो थोडे अँगरेजी जाननेवाले होते वे भी या तो हिन्दी समझ लेते या तेलगू-भाषान्तर के लिए इन्तजार करने को तैयार होते। तामिलनाद के अँगरेजी जाननेवाले इतना सब्र नही कर सकते।

इस यात्रा से मुझे इस बात का पता चला कि हिन्दी-प्रचार-सभा ने कितने महत्त्व का काम किया है और वह काम राष्ट्र-निर्माण मे कितना सहायक हुआ है तथा आगे कितना सहायक होगा। एक बात और देखने मे आयी। मै जहाँ गया वहाँ जो थोडे मुसलमान मिले उनमे बहुतेरे टूटी-फूटी हिन्दी कुछ न कुछ समझ लेते थे। उनकी बोली तो शायद उस स्थान की ही बोली होगी, पर वे न मालूम किस तरह कुछ-कुछ ऐसी बोली समझ लेते जिसे मै समझ सकता। वह न शुद्ध हिन्दी होती और न फारसी-मिश्रित शुद्ध उर्दू। वह तो होती एक ऐसी सरल भाषा जिसे प्रत्येक हिन्दी-भाषी समझ सकता है। इस भाषा को वहाँ के लोग 'मुसलमानी' कहा करते थे। इससे अनुमान हुआ कि इसे मुसलमान ही उत्तर-भारत से उस तरफ ले गये थे।

तामिलनाद की यात्रा मे मै दो स्थानो का उल्लेख जरूरी समझता हूँ। मै

तिरुवन्नमलय मे जब पहुँचा तो मालूम हुआ कि यही रमण महर्षि निवास करते है। यात्रा का क्रम इतना कडा था कि वहाँ मै ठहर न सका। चन्द मिनटो के लिए उनका दर्शनमात्र कर सका। पर मेरी इच्छा हो गयी कि यदि हो सका तो कभी आकर अच्छी तरह से दर्शन करूँगा। कुछ दिनो के बाद श्री शकरलाल बैकर ने भी मुझे वहाँ जाने की सलाह दी। वह स्वय वहाँ कई बार गये थे और उनके हृदय पर अच्छा प्रभाव पडा था। इसलिए कई बरसो के बाद एक बार सेठ जमनालालजी के साथ मै वहाँ गया। कई दिनो तक वहाँ ठहरकर महर्षि के दर्शन करता रहा। दूसरी जगह, जिसका उल्लेख करना चाहता हूँ, चिदम्बरम् है। वही पर अन्नमलय-युनिर्वासिटी राजा अन्नमलय चेट्टियर के दान से बनी है। उन दिनो श्री श्रीनिवास शास्त्री वहाँ के वाइस-चासलर थे। उन्होने मुझे लिखा था कि जब मै वहाँ जाऊँ तो उनके ही साथ ठहरूँ। मुझे यह बात बहुत पसन्द आयी। मै दो दिनो तक उनका अतिथि रहा। यो तो श्री शास्त्रीजी से मेरा पहले का परिचय था; पर यह पहला ही अवसर था जब मै उनके साथ एक-दो दिनो तक ठहरा। इसका असर यह हुआ कि मेरी श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ गई।

केरल-प्रान्त मे मै कोचीन भी गया। वहाँ तातापुरम् मे तेल के बडे कारखाने को देखा। पर मै ट्रावनकोर-राज्य मे दो-एक स्थानों को ही देख सका। इनमे एक कन्याकुमारी है। वहाँ पर जाकर कुछ समय मैने बिताया। हिन्दुस्तान का सबसे दक्षिणी अन्तरीप, जहाँ बगाल-उपसागर और अरब-सागर मिलते है, भारत के लिए और ससार के लिए, एक विशेष महत्त्व रखता है। लोगों ने भारत के नक्शे पर भारत-माता को एक स्त्री के रूप मे चित्रित दिखलाने का प्रयत्न किया है। चित्र मे माता के चरण यही पड़ते है। मैने सुना है कि जब स्वामी विवेकानन्द इस स्थान पर पहुँचे और यहाँ की चट्टानों को, जो माता के चरण है, देखा—जिनको समुद्र बराबर अपनी लहरो से धोता रहता है—तो वह अनायास वहाँ साष्टाग दण्डवत् करके माता के चरणो मे गिर पडे। मेरी भावना भी उस स्थान पर कुछ वैसी ही हुई। फिर जब मैने यह सोचा कि कन्याकुमारी के सामने दक्खिन मे दक्षिण-ध्रुव तक कोई दूसरा टापू अथवा जमीन का टुकडा नही मिलता, तो यह भावना और भी दृढ हुई कि प्रकृति ने यही पर एक प्रकार से पृथ्वी का अन्त किया है। जमीन उत्तर-ध्रुव से साइबीरिया, चीन, तिब्बत, हिमालय होते भारत को पार करके वहाँ (कन्याकुमारी) तक फैली है। वही उसका अन्त हो जाता है। उसके दक्खिन केवल जल ही जल है जो दक्षिणी-ध्रुव तक फैला हुआ है। वह सचमुच हमारे लिए एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर एव पवित्र स्थान है जिसको देखकर कोई भारतवासी भारत की एकता और एकसूत्रता को भूल नही सकता।

कन्याकुमारी से उत्तर प्राय. श्री जगन्नाथपुरी तक मै बराबर मोटर पर घूमा। यह तो भारत के पूर्वी हिस्से मे समुद्र के किनारे-किनारे भ्रमण हुआ। उसी तरह, पश्चिमी किनारे पर भी कर्नाटक और महाराष्ट्र की यात्रा मे, बैंगलोर से लेकर गुजरात

तक, मोटर पर भ्रमण कर चुका था। बीच के शहरो मे भी वहाँ के प्राय सभी मुख्य स्थानो को देखने का अवसर मिला था। जो थोडे स्थान ऐसे थे जहाँ नही जा सका था वहाँ पीछे गया। इस प्रकार, केवल हैदरावाद-राज्य के अन्दर के स्थानो को छोडकर, मैं विन्ध्य के दक्खिन सारे भारत का पूरा दौरा कर चुका हूँ।

कार्यक्रम ऐसा वना था कि दिसम्वर की २० या २१ तारीख तक मै प्राय तीन महीनो मे सफर समाप्त करके वर्धा पहुँच जाऊँ और वहाँ से वम्वई जाऊँ जहाँ कॉंग्रेस की जयन्ती मनाने का प्रवन्ध किया गया था। मै आन्ध्र मे सवसे पीछे विशाखापट्टन (विजगापट्टम्) मे पहुँचा। वहाँ से ट्रेन पर सवार होकर रायपुर आया। रायपुर मे, श्री पडित रविशकर शुक्लजी के आग्रह से, वहाँ की सेवा-समिति के उत्सव मे शरीक होने का, पहले से ही वचन दे चुका था। उस उत्सव को देखकर वर्धा गया। वर्धा मे एक या दो दिन ठहरकर बम्वई चला गया।

११३—कॉंग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती

कॉंग्रेस-जयन्ती के अवसर पर सारे देश में उत्सव मनाने का प्रवन्ध किया गया था। मुख्य उत्सव वम्वई मे ठीक उसी स्थान पर होनेवाला था जहाँ कॉंग्रेस का पहला अधिवेशन सन् १८८५ के दिसम्बर मे हुआ था। वम्वई की प्रान्तीय कमिटी ने इस उत्सव के लिए समुचित प्रवन्ध किया था। जव मै वम्वई पहुँचा, मुझे यह मालूम हुआ कि सर दिनशा वाचा वहुत बीमार है। उस समय शायद वही एकमात्र जीवित व्यक्ति थे, जिन्होंने कॉंग्रेस के पहले अधिवेशन मे भाग लिया था। पडित मदनमोहन मालवीयजी शायद एक या दो वर्ष वाद से कॉंग्रेस मे आने लगे। सर दिनशा वाचा केवल सवसे पुराने कॉंग्रेसी ही नही थे, वह सवसे बूढे कॉंग्रेस के सभापति भी थे जो उस समय जीवित थे। इसलिए मैंने अपना कर्त्तव्य समझा कि उत्सव का कार्यारम्भ उनका दर्शन करके और उनके आशीर्वाद के साथ करूँ। इधर कई वरसो से उनका कॉंग्रेस के साथ वहुत गहरा मतभेद हो गया था। वह कॉंग्रेस से वहुत दूर हो गये थे। तो भी उनकी सेवाओ को, कॉंग्रेस के इतिहास से परिचय रखनेवाला, कोई भी भारतीय भूल नही सकता। उनके दर्शन मैंने प्राय उनकी बेहोशी की हालत मे किये, पर यह भी मेरे लिए सौभाग्य की वात थी।

जयन्ती का उत्सव वडे समारोह से वम्वई मे हुआ। भारत के प्राय सभी शहरो मे वह वहुत धूमधाम से मनाया गया। लोगो ने दिवाली मनायी, वडी-वडी सभाएँ की, कॉंग्रेस के इतिहास-सम्वन्धी भाषण किये। एक विशेष वक्तव्य जो निकाला गया था उसे पढ़कर सर्वत्र लोगो को वतलाया गया। मैंने और कही के उत्सव को तो नही देखा, पर उसके वर्णन पढे। पटने लौटने पर पटने मे मनाये गये उत्सव का हाल साथियो से सुना। शायद इस तरह का उत्सव इसके पहले कभी सारे देश मे जनता ने इतने उत्साह से नही मनाया था। उसी साल ब्रिटिश वादशाह पचम जार्ज के राज्य के २५ वर्ष पूरे हुए थे, जिसके लिए रजतजयन्ती मनायी गयी थी। लोगो के दिल मे

शायद यह भी स्पर्धा थी कि राष्ट्रीय महासभा की जयन्ती भी शान-शौकत से मनायी जाय। इस भावना को उन्होंने इस उत्सव के अवसर पर कार्य-रूप मे प्रदर्शित किया।

इस सफर मे मेरे भाषणो का लक्ष्य और तात्पर्य एक ही था—कॉंग्रेस के सगठन को मजबूत बनाना चाहिए। जहाँ तक मै समझ सका, इस दौरे का असर अच्छा ही पडा, क्योकि जनता चाहती थी कि १९३०-३४ के सत्याग्रह के बाद, जब गवर्नमेण्ट ने अपने जानने कॉंग्रेस को खूब दबा डाला था, उसे यह दिखलाने का मौका मिले कि वह अब भी कॉंग्रेस के प्रति वही प्रेम और श्रद्धा रखती है। मैंने अपने सभापतित्व-काल को इस तरह बहुत-दौड-धूप करके बिताया। शायद मेरे पहले किसी सभापति ने इतना लम्बा-चौडा सफर नही किया था। पडित जवाहरलालजी ने, जो मेरे बाद ही फिर दूसरी बार सभापति हुए, इस सिलसिले को जारी रखा। अपनी जबरदस्त शारीरिक शक्ति से उन्होंने इससे भी ज्यादा कठिन यात्रा की।

१९२९ के दिसम्बर मे लाहौर-कॉंग्रेस मे निश्चय हुआ था कि कॉंग्रेस का अधिवेशन फरवरी या मार्च मे हुआ करे। इमी निश्चय के अनुसार कराची का अधिवेशन १९३० के दिसम्बर मे न होकर १९३१ के मार्च मे ही होना था। १९३० के दिसम्बर मे सत्याग्रह चल रहा था। इसलिए उस समय अधिवेशन नही हो सकता था। पर नियमानुकूल उसे १९३१ के मार्च मे ही होना था और वह कराची में हुआ भी। १९३२-३३ मे सत्याग्रह के कारण बाजाब्ता अधिवेशन नही हुआ। पर पुलिस की आज्ञा के विरुद्ध, दिल्ली और कलकत्ते में, नियमानुसार समय पर, लाठियो के प्रहारों के बीच, अधिवेशन हुए। १९३४ मे बाजाब्ता अधिवेशन हुआ, पर मार्च मे नही, क्योकि उस समय कॉंग्रेस गैर-कानूनी सस्था थी। वह अधिवेशन अक्टूबर मे बम्बई मे हुआ। अब १९३५ के मार्च मे यदि अधिवेशन होता तो वह पिछले अधिवेशन के पॉंच महीने बाद ही पडता। इसलिए निश्चय किया गया कि १९३५ के बाद ही अधिवेशन किया जाय—१९३६ के फरवरी-मार्च मे। पडित जवाहरलालजी बम्बई-अधिवेशन के समय जेल मे थे। बाद जेल से छूटने पर, श्रीमती कमला नेहरू की बीमारी के कारण, वह उनके पास योरप चले गये, जहाँ देवीजी का देहान्त हो गया। पडित जवाहरलालजी ही कॉंग्रेस के सभापति चुने गये थे। इसलिए उनके वापस आ जाने पर और आ जाने के बाद देश की परस्थिति समझ लेने पर ही अधिवेशन हो सकता था। इसलिए दूसरा अधिवेशन १९३६ के अप्रैल मे लखनऊ मे हुआ। १९३५ के अन्त तक मै सफर और जयन्ती मे लगा रहा। उसके बाद सर्दी के कारण कुछ अस्वस्थ भी हो गया। कुछ आराम कर लेना भी आवश्यक था। इसलिए ज्यादा लम्बा सफर नही कर सका।

जिस दिन पडित जवाहरलालजी योरप से कमलाजी का 'फूल', लेकर हवाई जहाज से उतरे, मै उनके स्वागतार्थ प्रयाग गया। वह शोक का दिन था, क्योकि कमलाजी-जैसी निपुण काम करनेवाली और देश के साथ प्रेम रखनेवाली स्त्री विरल ही मिलती है। इस पर उनका विदेश मे देहान्त होना और जवाहरलालजी का उनकी राख के

साथ वापस आना—सभी दु ख को बढानेवाली बाते थी। बडे समारोह के साथ उनका अस्थि-विसर्जन त्रिवेणी-सगम पर किया गया। इसके बाद से ही लखनऊ-कॉंग्रेस की तैयारी होने लगी।

एक प्रश्न जवाहरलालजी के सभापतित्व के सम्बन्ध मे उठा था। उस समय तक कॉंग्रेस का एक अलिखित नियम माना जाता था कि जिस सूबे मे सालाना अधिवेशन हो उस सूबे का आदमी सभापति नही हो सकता। जवाहरलालजी युक्तप्रान्त के रहनेवाले ही नही थे, वहाँ की प्रान्तीय कमिटी के प्रधान या सभापति नही तो प्रधान काम करनेवालो मे जरूर थे। इसलिए कुछ लोगो ने यह प्रश्न उठाया कि वह सभापति हो सकते है या नही। पर गाधीजी ने राय दी कि ऐसी कोई बात विधान मे नही है और इसकी कोई आवश्यकता भी नही है, इसलिए पडितजी के सभापति चुने जाने मे कोई बाधा नही होनी चाहिए।

११४—लखनऊ-कॉंग्रेस

लखनऊ के अधिवेशन के पहले वर्किंग कमिटी की एक बैठक दिल्ली मे हुई जिसमे महात्माजी भी आये। जवाहरलालजी बहुत दिनो के बाद लौटे थे और विलायत जाने के पहले भी बहुत दिनो से जेल मे थे। इसलिए उनकी इच्छा थी और यह मुनासिब भी था कि भावी सभापति वर्किंग कमिटी से, कॉंग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले ही, मिल ले और अधिवेशन के विचारार्थ विषयों पर भी विचार-विनिमय कर लें। जवाहरलालजी के विचार पहले से ही साम्यवाद के पक्ष मे है और योरप की यात्रा के बाद उनके विचार अधिक पुष्ट हो गये थे। हम सब उस विषय को न तो बहुत समझते थे और न मानते थे। देश मे कॉंग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट-पार्टी का जन्म हो ही गया था। पडितजी यद्यपि उस पार्टी मे शरीक नही हुए तथापि बहुत से विषयो मे एक विचार होने के कारण उनकी राय उस पार्टी के साथ मिल जाती थी। दिल्ली की बैठक मे हमने देखा कि कई विषयो पर उनका और मेरा मतभेद है। यह मतभेद कार्यक्रम के सम्बन्ध मे उतना नही होता जितना दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे। हम दोनो यदि किसी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे एक राय भी रखते तो उस नतीजे पर हम दो रास्ते से पहुँचे होते। यदि एक ही बात को कहना भी चाहते तो उसे दो प्रकार की भाषा मे कहते। यदि एक ही रास्ते पर चलना भी चाहते तो दो प्रकार की सवारियो पर चलना चाहते। यदि एक ही प्रस्ताव करना चाहते तो उसकी अलग-अलग भूमिका बनाते। इतनी भूमिका यहाँ दे देना आवश्यक है, क्योकि पीछे चलकर वह मतभेद प्रकट हो गया और लखनऊ-कॉंग्रेस मे तो सर्वथा स्पष्ट हो गया।

लखनऊ-अधिवेशन के कई दिन पहले प्रयाग मे वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। अनुभव से देखा गया है कि वर्किंग कमिटी मे कॉंग्रेस के लिए प्रस्तावो के तैयार करने में काफी समय लगता है। शुरू मे तो हम सुस्ती से काम करते है, अर्थात् छोटी-मोटी बातो में भी अधिक समय लगाते है; पर जब विषय-निर्वाचिनी की बैठक का

समय पहुँच जाता है तो जल्दी-जल्दी उसके लिए प्रस्ताव तैयार करने पडते हैं। इसका नतीजा होता है कि सब प्रस्ताव ठीक समय पर तैयार नही हो पाते या ठीक समय से छपकर सदस्यों मे बाँटे नही जा सकते और इस बात की उनकी शिकायत रह जाती है। इसीलिए लखनऊ-काँग्रेस के कुछ पहले सोचा गया कि वर्किंग कमिटी की बैठक कुछ पहले ही हो और प्रस्ताव तैयार करके प्रकाशित कर दे अथवा छपवा ले ताकि विषय-निर्वाचिनी के समय जल्दी न करना पडे। हाँ, अगर कोई नयी बात पैदा हो जाय अथवा कोई ऐसा विषय उपस्थित हो जाय जिस पर विचार करना आवश्यक है तो उस पर उस समय भी विचार किया जा सकता है। इसलिए, यद्यपि नियमावली मे कोई ऐसी बात नही थी तथापि यह बैठक कई दिन पूर्व ही की गई। वही कुछ प्रस्ताव तैयार किये गये और कुछ लखनऊ के लिए छोड रखे गये।

लखनऊ-अधिवेशन मे, जैसा ऊपर कहा गया है, मतभेद रहा। यदि कोई यह कहे कि किस विषय में मतभेद रहा, तो शायद इसे उस रीति से बता देना कठिन है, पर जैसा ऊपर कहा गया है, मतभेद अधिकतर दृष्टिकोण का ही था। ऊपर कहा जा चुका है कि बम्बई-काँग्रेस के समय सुधार-सम्बन्धी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के प्रस्ताव मालूम हो चुके थे, यद्यपि अभी पूरा कानून नही बना था। बम्बई-कांग्रेस ने उसे नामजूर कर दिया था। मेरे दक्षिण-भारत के दौरे मे मुझसे इस सम्बन्ध के प्रश्न किये जाते—विशेषकर यह कि कांग्रेस नये विधान के अनुसार मत्रिपद ग्रहण करेगी या नही। काँग्रेस के अन्दर एक दल पैदा हो गया था जो यह कहा करता था कि कांग्रेस को मत्रिपद ग्रहण करना चाहिए, दूसरा दल इसके विरुद्ध था। विरोधियो मे सबसे अधिक बोलने-वाले सोशलिस्ट लोग ही थे। काँग्रेस ने यद्यपि विधान को नामजूर कर दिया था तथापि उसने इस बात का निश्चय नही किया था कि वह अपनी नामजूरी को किस तरह व्यक्त करेगी। काँग्रेस के नामजूर कर देने से वह कानून रद नही हो जाता था। इसलिए, उसके अनुसार जो चुनाव होगे उनमे काँग्रेस भाग लेगी वा नही; चुनाव का बहिष्कार उस तरह करेगी या नही जिस तरह उसने १९२० के चुनाव का किया था। यदि चुनाव मे भाग लेगी तो उसके बाद वह क्या करेगी? यदि काँग्रेस को बहुमत मिल जाय तो उस हालत मे क्या वह स्वय मत्रिमडल न बनाकर दूसरों को भी बनाने न देगी? अथवा, वह किसी दूसरे प्रकार से अडगा-नीति द्वारा उस विधान को बेकार बनावेगी। उसकी नीति का सफल होना या न होना बहुत करके उसके सदस्यो के बहुमत से चुने जाने पर ही निर्भर था, इसलिए चुनाव के पहले कुछ भी निश्चित रूप से तय कर देना सम्भव और उचित नही था। अत मुझसे जब कोई प्रश्न करता तो मुझे यही कहना पडता कि काँग्रेस ने विधान को नामजूर कर दिया है, पर वह नामजूरी किस तरह कार्यान्वित होगी, इसका निश्चय अभी नही हुआ है, समय आने पर ही निश्चय किया जायगा। इस उत्तर के लोग तरह-तरह के अर्थ लगाते। पर बात यह थी कि काँग्रेस ने इससे ज्यादा अभी तक निश्चय किया ही नही था। यदि मैं सभापति की

हैसियत से कुछ कह देता तो अभी से आपस का मतभेद इस विषय पर केन्द्रित हो जाता—दिन-रात यही बहस चलने लगती।

एक दूसरा प्रश्न था जिसके सम्बन्ध मे यद्यपि मतभेद मौलिक नही था तथापि जब-तब सामने आ जाता था। यूरोप मे युद्ध का वातावरण पैदा हो गया था इटली ने अबीसीनिया पर चढाई करके उसे दखल करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। इँगलैंड ऊपर से शायद इटली की उस कार्रवाई को नापसदीदा बताता था—अथवा इँगलैंड के कुछ लोग इसकी निन्दा करते थे। पर वह सचमुच इस बात को लेकर इटली से भिडना नही चाहता था। राष्ट्रसघ (League of Nations) ने अबीसीनिया के साथ सहानुभूति दिखलाई, पर इससे कुछ अधिक नही किया। कुछ दिनो तक इँगलैंड ने इटली पर आर्थिक दबाव डालने का भी प्रयत्न किया। पर वह भी कुछ ऐसे ही वैसे। हमारे कॉग्रेसी सोशलिस्ट चाहते थे कि हम इस प्रकार का प्रस्ताव पास करे कि भारतवर्ष किसी लडाई मे अँगरेजो की मदद नही करेगा और साथ ही वे अबीसीनिया के साथ हमदर्दी भी दिखलाना चाहते थे। जहाँ तक सताये हुए मुल्क के साथ हमदर्दी का सवाल था, किसी प्रकार का मतभेद नही था, पर और तरह से इस प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय विषय पर अपनी राय दे देना मुझे कॉग्रेस के लिए कबल-अजवक्त मालूम पडता था। पर इसका अर्थ यह नही था कि मै ब्रिटिश सरकार को लडाई मे मदद देने के पक्ष मे था। इसलिए यदि ऐसे विषय पर कोई प्रस्ताव मुझे बनाना पडता तो मै केवल सहानुभूतिसूचक प्रस्ताव बनाता। पर दूसरे पक्ष के लोग सहानुभूति के साथ युद्ध-विरोधी राय भी प्रकट करना चाहते थे।

जो हो, प० जवाहरलालजी की राय हमारी राय से नही मिलती थी। पर अन्तर्राष्ट्रीय विषयो मे हम मानते थे कि वह हमसे कही अधिक जानकारी रखते है और उनके विचारो की हम बहुत कद्र करते थे। इसलिए, उनकी ही बात मान लेते। मिनिस्ट्री के सम्बन्ध मे भी उनकी राय स्पष्ट थी कि वह मिनिस्ट्री मे कॉग्रेस की शिरकत नही चाहते थे। हमने अभी तक अपनी राय पक्की नही की थी। हम सचमुच इस प्रश्न को उस समय तक उठाना नही चाहते थे जब तक हमारे सदस्यो की सख्या और शक्ति का ठीक पता न लग जाय। जवाहरलालजी ने अपने विचारो को जाहिर कर दिया—यद्यपि उसके साथ-साथ उन्होने यह भी कह दिया कि ये उनके निजी विचार है, कॉग्रेस ने अभी तक कोई निश्चय नही किया है।

आज यह कहना मुश्किल है कि लखनऊ मे किन बातो पर मतभेद हुआ। पर इतना निश्चय है कि कई विषयो पर हुआ और कमिटी मे कई बातो मे बहुमत हमारे साथ रहा। पर जैसा ऊपर कह चुका हूँ, वे कोई मौलिक बाते नही थी जिनके कारण हम दोनों का अलग हो जाना अनिवार्य्य हो जाय—जैसा गया मे स्वराज्य-पार्टी और अपरिवर्तनवादियो के लिए हो गया था, विशेषकर कार्यक्रम मे कोई मौलिक भेद नही था। हम लोग जवाहरलालजी की कार्यदक्षता, त्याग, परिश्रम और विचारगाम्भीर्य के कायल थे। उनसे अलग होना हम हरगिज किसी तरह पसन्द नही करते थे। वह भी

समझते थे कि सूबो मे काम करनेवालो और असर रखनेवालो मे शायद हम लोग ज्यादा जबरदस्त थे, इसलिए वह भी हमको अलग करना या हमसे अलग होना नही चाहते थे। बात यह थी कि दोनों पक्ष परस्पर पूरा सम्मान का भाव रखते थे और जानते थे कि देश के लिए आपस की जुदाई हितकर नही होगी। शायद हम यह भी समझते थे कि हम एक दूसरे की त्रुटियो को पूरा करते थे। हम यह भी समझते थे कि चाहे हममे जितना भी मतभेद हो, देश यह नही बरदाश्त करेगा कि हम एक दूसरे से अलग हो जायँ। यहाँ पर मैंने एक ही जगह कितनी बाते कह दी! इससे यह न समझना चाहिए कि उसी समय कोई दो दल बन गये थे। दो विचार-धाराएँ मात्र थी—किसी ने कोई दलबन्दी नही की थी और न नये मतभेद उसी दिन इतने स्पष्ट हो गये थे कि हमारे लिए अलग होने की बात उठ खडी हुई हो। एक तरह से यह विचार-भेद की धारा भीतर-भीतर तब से आज तक चली आ रही है। गाधीजी उस समय लखनऊ-कांग्रेस मे आये तो जरूर थे, पर उन्होने इस बहस मे बहुत भाग नही लिया और जो कुछ हमने किया, अपनी समझ के अनुसार ही किया। पीछे जब यह बहुत बडा लोकव्यापी युद्ध खडा हुआ तो बातो मे गाधीजी के साथ भी मतभेद मालूम हो गया।

कांग्रेस के बाद जब वर्किंग कमिटी के सगठन का समय आया तो जवाहरलालजी को कुछ कठिनाई अवश्य हुई। वह नये विचारवाले लोगों को उसमे लेना चाहते थे। हम भी इसके विरोधी नही थे; पर हम यह अवश्य चाहते थे कि यदि हम वर्किंग कमिटी मे रहे तो उसका सगठन ऐसा हो कि हमारी बातें भी सुनी जायँ। महात्माजी ने इस विषय मे जवाहरलालजी को राय दी कि वह जिनको उचित समझे, समाजवादियो मे से वर्किंग कमिटी मे ले ले और शायद उन्होने उनके नाम भी बताये। हमने भी इसे मान लिया। वर्किंग कमिटी बनी जिसमे दो प्रकार की विचार-धारा चलती, यद्यपि अभी कार्यक्रम मे कोई अन्तर नही था। समाजवादियो से मत का जो भी भेद हो उसके कारण काम मे बाधा नही आती थी, पर उनके प्रचार की रीति कुछ ऐसी थी कि हमे वह अच्छी नही लगती थी। बहुत बातो मे जो नीति गाधीजी ने कांग्रेस मे १९२० से ही चला रखी थी उसका वे प्रत्यक्ष और परोक्ष रीति से विरोध करते और हम पर यह असर होता कि वे उस सारे कार्यक्रम और नीति को तहस-नहस करना चाहते हैं जिसको गाधीजी ने चलाया था—जिस पर कांग्रेस काम करती आ रही थी और जिस पर चलकर वह देश को इतना आगे ले जा चुकी थी। इस विषय मे, जहाँ तक मैं समझता हूँ, जवाहरलालजी भी उन लोगो के साथ सहमत नही थे, क्योकि बहुत-सी बातो मे गाधीजी से मतभेद होने पर भी वह उनके नेतृत्व के महत्त्व को जानते और मानते थे—उसे किसी तरह कमजोर करना नही चाहते थे। यह बात दूसरो मे नही थी। यही कारण था कि मतभेद होते हुए भी हम जवाहरलालजी के साथ काम कर सकते थे और दूसरो के साथ चलना कठिन हो जाता था। जो हो, कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ। सब लोग अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हुए।

११५—नागपुर का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और राष्ट्रभाषा का प्रश्न

मुझे लखनऊ से ही नागपुर जाना था। वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होनेवाला था जिसका मै सभापति निर्वाचित हुआ था और वह ठीक कांग्रेस के बाद तीन-चार दिनो के अन्दर ही होनेवाला था। इसलिए मै उसी गाडी से गया जिससे महात्माजी गये। उनके साथ ही वर्धा गया और वहाँ से सम्मेलन के दिन नागपुर आया।

वर्धा मे बैठकर मैने भापण लिखा। कुछ दिनो से इस बात पर बहस चल रही थी कि हिन्दी की शब्दावली मे विदेशी भाषाओं के शब्दो को लेना चाहिए या नही। सच पूछिए तो प्रश्न को यह रूप देना भी उचित नही है, क्योकि कोई भी हिन्दी का लेखक—चाहे वह कितना भी विदेशी शब्दो का विरोधी क्यो न हो—सभी विदेशी शब्दो का बहिष्कार नही करना चाहता, और न अपने लेखों अथवा भाषणो मे उनका बहिष्कार करता है। यह झगडा हिन्दी और उर्दू का है। हिन्दी मे, जैसा उसका रूप आज हो गया है और होता जा रहा है, सस्कृत के शब्दो का बाहुल्य होता है। उर्दू मे, जिस तरह वह आज बढ और फूल फल रही है, अरबी और फारसी शब्दो की बहुतायत हुआ करती है। दोनो मे बहुतेरे अच्छे सुलेखक है जो सादी और सहज भापा भी लिखते है। दोनों में कुछ ऐसे लोग भी है जो सस्कृत, फारसी या अरबी शब्दो को देख करके घबडाते है और डरते है कि इनसे हिन्दी का रूप विकृत हो जायगा और वह उर्दू बन जायगी तथा उर्दू बिगडकर हिन्दी बन जायगी। कुछ लोग ऐसे भी है जो हिन्दी को हिन्दुओ की और उर्दू को मुसलमानो की भापा मानते है। इस तरह इस झगडे मे कुछ साम्प्रदायिकता भी आ गयी है—यद्यपि बहुतेरे मुसलमान कवि और लेखक हुए, जिन्होने हिन्दी की सेवा की है तथा उसी तरह बहुतेरे हिन्दुओ ने उर्दू की सेवा की है।

कांग्रेस के विधान मे जहाँ भाषा का जिक्र है वहाँ न 'हिन्दी' शब्द का व्यवहार किया गया है न 'उर्दू' शब्द का, बल्कि वहाँ 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ही इस्तेमाल हुआ है। जब गाधीजी ने दक्षिण-भारत मे राष्ट्र-भापा का प्रचार १९१० मे आरम्भ किया था तब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तत्त्वावधान मे ही आरम्भ कराया था। उसी समय वह इन्दौर मे साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए थे। कांग्रेस के विधान मे 'हिन्दुस्तानी' शब्द का व्यवहार महात्माजी और श्री पुरुषोत्तमदास टडन ने ही किया था। उनके ही शब्द को कांग्रेस ने मान लिया था। दक्षिण-भारत मे जिस सभा के द्वारा राष्ट्रभापा-प्रचार का काम आज भी लिया जा रहा है उसका नाम दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा है। इससे स्पष्ट है कि गाधीजी ने जब से इस काम को हाथ मे लिया है, उन्होने हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भापा नही माना है। यद्यपि दोनो की शब्दावली मे अन्तर है और वह अन्तर दिन-दिन बढता जा रहा है, तथापि दोनो का व्याकरण प्राय

एक ही है और वह व्याकरण दूसरी किसी भाषा के व्याकरण से पूरा-पूरा नही मिलता। भाषा-तत्त्वविदो का कहना है कि भाषा की विभिन्नता शब्दावली से उतनी नही होती जितनी उसके वाक्यों की गढन और व्याकरण के नियमो के कारण होती है। इसलिए यह मानना अनुचित और भाषा-विज्ञान के नियमो के प्रतिकूल नही है कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा का नाम है अथवा एक ही भाषा की दो शैलियाँ है—दो विभिन्न भाषाएँ नही। 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी भी है और उर्दू भी, क्योकि वह प्राय क्लिष्ट शब्दो को काम मे नही लाती। वह अपना रूप ऐसा रखती है जिसको हिन्दीवाले और उर्दूवाले दोनो ही अपना समझ सके।

मै इस बात का हिमायती हूँ कि जिस भाषा का शब्द-भाडार जितना भरा-पूरा होगा वह भाषा उतनी ही अधिक उन्नत होगी। यदि एक ही अर्थ मे कई शब्द होंगे तो समय पाकर उनके अर्थ मे थोडा-बहुत भेद होता जायगा और उसमे बारी-कियाँ आती जायँगी। विचार की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की शक्ति ऐसी भाषा मे अधिक होती जायगी। जीती-जागती भाषा दूसरी भाषाओ के सम्पर्क से, यदि उसमे ग्रहण और सग्रह करने की शक्ति है तो, लाभ उठाती जायगी और उसका शब्द-भाण्डार बढता जायगा। वह इस बात से डरकर घोघे की तरह अपनी खपडिया के अन्दर घुसकर अपने को बन्द नही कर लेती कि बाहर की हवा से, बाहर के शब्दो से, वह पिस जायगी और अपना अस्तित्व ही खो देगी। वह हिम्मत के साथ खुलेआम सघर्ष मे आवेगी और दूसरी भाषाओ के अच्छे भावग्राही शब्दो को अपने मे मिला लेगी। हाँ, ऐसा करने मे वह अपने नियमो को, अपने रूप को, नही बदलेगी—अपनी पोशाक और अपनी सजावट को भले ही बदल ले और उसमे भले ही विचित्रता लावे।

मैने अपने भाषण का यही विषय रक्खा और हिन्दी-साहित्य-सेवियो के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया। मेरा कहना था कि हिन्दी को विदेशी शब्दो के ग्रहण करने मे हिचकना नही चाहिए—चाहे वे फारसी और अरबी के हो या अँगरेजी के पर जो शब्द हिन्दी में आवे उन्हे हिन्दी बन जाना चाहिए—अर्थात् हिन्दी मे आकर वे अपने साथ अरबी-फारसी या अँगरेजी का व्याकरण हिन्दी मे न दाखिल करे, बल्कि वे हिन्दी-व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जायँ। मेरा यही विचार आज भी है। उस समय से आज तक इस बात पर बहुत बहस छिडी रही है, पर मै अपने विचार मे अधिक दृढ होता गया हूँ। और, केवल इन तीन भाषाओ के ही शब्द नही लेने पडेगे, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनते-बनते बहुतेरे ग्रामीण शब्दो को भी अपने मे ले लेना पडेगा—जो प्रान्तीय भाषाएँ है उनकी शब्दावली के भी बहुतेरे शब्द ले लेने पडेगे।

इस सम्बन्ध का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी है जिस पर विचार कर लेना आवश्यक है। क्या आज की आधुनिक हिन्दी और उर्दू एक है या हो सकती है? व्याकरण प्राय एक होते हुए भी शब्दावली का अन्तर बहुत बढता जा रहा है। आज केवल हिन्दी अथवा उर्दू जाननेवालो की सभा मे ऐसी भाषा बोली जा सकती है जिसे

वहाँ के श्रोता न समझ सके—ऐसी सस्कृत-मिश्रित हिन्दी जिसको उर्दू जाननेवाले न समझ सके और ऐसी फारसी-अरबी-मिश्रित उर्दू जो हिन्दी-दाँ के लिए आम-फहम न हो। यह भी सभव है—बहुत कठिन नही है—कि ऐसी भाषा बोली जाय जिसको केवल हिन्दी जाननेवाले और सिर्फ उर्दू जाननेवाले अच्छी तरह समझ जायँ। मै इसी को 'हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दुस्थानी' नाम देता हूँ। बडी-बडी सभाओ के लिए, साधारण समाचारपत्रों के लिए, किस्से-कहानियो के लिए और दिल पर असर करनेवाली कविता के लिए भी इस तरह की सुगम भाषा हो सकती है, इसमे सदेह नही है। हाँ, जब उच्च कोटि की वैज्ञानिक पुस्तक लिखनी हो तो उसके लिए बहुतेरे वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों की जरूरत पड़ सकती है। ऐसे शब्द हमेशा सहज और सुबोध नही हो सकते। यह किसी भी भाषा मे नही है। अँगरेजी एक उन्नत भाषा समझी जाती है। यदि अँगरेजी मे लिखी कोई विज्ञान की पुस्तक अँगरेजी के अच्छे ज्ञाता को भी दी जाय, तो वह उसे ठीक समझ न सकेगा, क्योंकि उसमे—पक्ति-पक्ति मे इस तरह के पारिभाषिक शब्द मिलेगे, जिनको केवल अँगरेजी साहित्य का जाननेवाला साधारणत नही जानता—जानता केवल वही है जो उस विज्ञान-विद्या से परिचित है। यों तो अब इस प्रकार की कहानियाँ और ऐसे उपन्यास भी लिखे जाते है जिनमे बहुत-सी वैज्ञानिक बाते रहती है—वैज्ञानिक शब्द आ जाते है। पर मै इस समय इस प्रकार की विशेष पुस्तकों पर विचार नही कर रहा हूँ। साधारणतया किसी भी मामूली अँगरेजी जाननेवाले के सामने भौतिक विज्ञान की अथवा चिकित्सा-विषय की कोई अँगरेजी पुस्तक रख दी जाय, तो वह उसे प्राय ठीक-ठीक नही समझेगा, यद्यपि उसका व्याकरण उसके लिए सरल होगा। पर उसक बहुतेरे शब्द ऐसे होगे जो उसके लिए अपरिचित-से होगे।

इसी तरह, यदि हिन्दी और उर्दू मे इस प्रकार के वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रथ लिये जायँ तो उनकी भाषा एक भिन्न प्रकार की होगी। पारिभाषिक शब्द किसी सस्कृत (अथवा सस्कारयुक्त) भाषा से ही लिये जा सकते है, अथवा किसी संस्कृत वा सस्कार-युक्त भाषा की मदद से बनाये जा सकते है—वह भाषा चाहे सस्कृत हो या अरबी। अँगरेजी में भी इस प्रकार के शब्द बहुतायत करके लैटिन से ही बने होते है। यहाँ पर मै मानता हूँ कि इन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दो के लिए हमको सस्कृत अथवा अरबी की ओर जाना होगा—हो सकता है कि यूरोपीय भाषा के बहुतेरे शब्दो को ज्यो का त्यों ले लेना पडे। किन्तु भारतवर्ष मे तो इस प्रकार के शब्द यदि अधिकतर सस्कृत के ही होगे तो उनका ज्यादा प्रचार होगा, क्योकि यहाँ की जितनी प्रान्तीय भाषाएँ है, सभी सस्कृत के साथ गहरा सम्बन्ध रखती है। यहाँ तक कि दक्षिण-भारत की भाषाएँ भी सस्कृत से बहुत ज्यादा प्रभावित हुई है। यदि उनको भी नये शब्द लेने पड़े, जिन्हे वे स्वय नही बना सकती, तो वे सस्कृत से ही लेना पसन्द करेगी। उदाहरणार्थ, यदि हमको 'ज्योतिष' शब्द लेना पडे तो वह 'इल्मनजूम' की अपेक्षा अधिक सुगमता से हिन्दी-भाषी प्रान्तों मे समझा जायगा—बगाल, गुजरात,

महाराष्ट्र, तामिल, तेलगू, केरल, पजाब इत्यादि मे भी लोगों की समझ मे आवेगा। उसी विज्ञान के शब्द 'नक्षत्र' और 'ग्रह' को भी लोग सारे भारतवर्ष मे अधिक सुगमता से समझ लेगे। इसलिए मै समझता हूँ कि इन पारिभाषिक शब्दों के लिए राष्ट्रभाषा को, चाहे हम उसे जिस नाम से पुकारे, हमको सस्कृत पर ही निर्भर करना होगा। हो सकता है कि विदेश से कुछ शब्द ऐसे आ गये है जो प्रचलित हो गये है। उनको वैसे ही रहने देना उचित और अनिवार्य है। पर जहाँ नये शब्द गढने हो वहाँ सस्कृत की सहायता लेना ही उचित और सुकर है। इसमे उर्दूवालो का यदि आग्रह हो तो वे जैसे चाहे अपने शब्द बना ले। पर वे ध्यान रक्खे कि उनके वे शब्द सार्वदेशिक न हो सकेगे—सिर्फ उर्दू के ही रह जायँगे। इसलिए, जहाँ तक मामूली बोलचाल और समाचार-पत्रों की भाषा का सम्बन्ध है, हम ऐसी ही भाषा व्यवहार मे ला सकते है जो हिन्दी और उर्दू दोनो के लिए ग्राह्य हो। पर जहाँ पारिभाषिक शब्दों का काम पडेगा वहाँ दोनो विलग हो सकती है—यद्यपि यह भी आवश्यक या अनिवार्य नही है। और, जैसा ऊपर कहा गया है, वह (पारिभाषिक) तभी सर्वमान्य और सार्वदेशिक शब्द हो सकता है जब वह सस्कृत की सहायता से बना हो।

राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध विशेषकर प्रतिदिन के कारबार से ही रहता है। इसलिए, जहाँ तक मै समझ सकता हूँ, वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हिन्दी और उर्दू दोनो ही अपनी समझ सके। वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रथो की, शायद उच्च कोटि के साहित्य की भी, भाषा हिन्दी और उर्दू मे अलग-अलग होगी। यदि हम इस विभेद को मान ले तो हिन्दी-उर्दू का झगडा बहुलाश में मिट सकता है। हम तो सारे भारत के आपस के व्यवहार के लिए एक राष्ट्रभाषा चाहते है—वह अँगरेजी नही हो सकती, वह हिन्दी ही हो सकती है, चाहे उसे हम हिन्दुस्तानी कहे या हिन्दी कहे अथवा उर्दू कहे। आज की प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं के स्थान को उसे नही लेना है, वे अपने-अपने स्थान पर ज्यो की त्यों कायम रहकर प्रान्तीय काम मे और प्रान्तीय साहित्य मे व्यवहृत होती रहेगी। सार्वदेशिक व्यवहार के लिए ही हमको राष्ट्र-भाषा चाहिए। यदि उसको हम फारसी-अरबी के बहुत-से अप्रचलित शब्दो से भरकर कठिन बना देंगे तो वह बगाल, आसाम, उत्कल, आन्ध्र, तामिल, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि मे मुश्किल से प्रवेश पा सकेगी। अतएव उसको वहाँ के लिए सुगम बनाने मे जहाँ तक हो सके इन प्रान्तीय भाषाओ के प्रचलित शब्दो को लेना हितकर और सहायक होगा। साथ ही, हम यह भी नही भूल सकते कि पजाब, सीमा-प्रान्त और कुछ पश्चिमी युक्तप्रदेश की भाषा मे भी उर्दू का पुट अधिक है—विशेषकर शिक्षित मुसलमानो मे वहाँ फारसी-अरबी के शब्द अधिक आसानी से बोले और समझे जाते है। राष्ट्रभाषा ऐसे लोगो को भी अपने दायरे के बाहर नही कर सकती। इसलिए राष्ट्रभाषा को उदारनीति ग्रहण करनी पडेगी और बहिष्कार-नीति छोड़नी पडेगी।

मैने स्वय अपने देशव्यापी दौरे मे देखा है कि मुझे दो प्रकार की हिन्दी

बोलनी पडती है। जब मैं सीमाप्रान्त और पजाब मे गया—विशेषकर ऐसी सभाओ मे जहाँ मुसलमानो की सख्या अधिक थी—तो मैं फारसी-मिश्रित हिन्दी बोलकर अपने विचारो को व्यक्त कर सका और लोगो को समझा सका। बगाल, महाराष्ट्र इत्यादि और दक्षिण-भारत मे भी, जहाँ कुछ हिन्दी समझी जाती थी, मैं सस्कृत-बहुल हिन्दी ही बोलकर अपना काम कर सका। मैं न तो अरबी-फारसी का आलिम हूँ और न सस्कृत का पण्डित। अरबी का ज्ञान तो बिल्कुल नही है। फारसी का थोडा ज्ञान है। सस्कृत का भी वैसा ही अन्दाज का परिचय है। पर मैं दोनो प्रकार की भाषाएँ कुछ-कुछ बोल सकता हूँ। दोनो प्रकार के श्रोताओ मे मेरे भाषण आसानी से समझ लिये जाते है। इसका एक विशेष कारण इन भाषाओ का अपना अज्ञान ही मैं समझता हूँ। इसलिए, मैं मानता हूँ कि मेरे जैसे लोगो के लिए—और ऐसे लोगो की सख्या अधिक है और रहेगी—ऐसी राष्ट्रभाषा का प्रयोग सहज है। आलिमो और पण्डितों के लिए उसमे अधिक कठिनाई है और रहेगी, क्योकि जहाँ कही शब्द की कमी मालूम हुई, वे झट सस्कृत या अरबी की शरण मे दौड जाते है और मेरे-जैसे लोगो की वहाँ तक पहुँच नही होती, इसलिए हम अपनी छोटी निधि मे से ही काम की चीज खोज निकालने को बाध्य होते है, जो अधिकतर मेरे-जैसे लोगो के लिए विशेष परिचित ही होगी।

मैंने यहाँ पर राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी अपने विचारों को विस्तार-पूर्वक कह दिया, क्योकि सम्मेलन से इनका सम्बन्ध है। मैंने इसी प्रकार के विचारों को अपने भाषण मे रखा। सम्मेलन राष्ट्रभाषा-प्रचार का काम भी करता आया है। इसलिए उसे दो बातो पर ध्यान रखना पडता है। एक ओर उसे हिन्दी-साहित्य मे उच्च कोटि के ग्रथो के निर्माण पर और दूसरी ओर भाषा के प्रचार पर भी दृष्टि रखनी पडती है। इन दोनो उद्देश्यो मे प्राय. पार्थक्य अथवा विरोध न होना चाहिए, पर कही-कही होना असम्भव भी नही है। आगे चलकर सम्मेलन के अन्दर कुछ इस विषय पर मतभेद हुआ भी। नागपुर मे ही वह मतभेद दीखने लगा। पर वहाँ के कार्य-क्रम मे कोई अन्तर नही आया। सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति बना दी जिसका सभापति मैं बनाया गया। सम्मेलन मे एक प्रचार-समिति भी नियमानुसार हुआ करती है। नागपुर-सम्मेलन ने महसूस किया कि प्रचार-समिति हिन्दी-भाषी प्रान्तो मे साहित्य-प्रचार का काम किया करे और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति उन प्रान्तो मे राष्ट्र-भाषा का प्रचार करे जहाँ की भाषा हिन्दी नही है। दक्षिण-भारत मे—आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक मे—दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा बहुत अच्छा काम करती आ रही है और उसके द्वारा प्रचार का काम खूब जोरो से चलाया गया है। पर दूसरे अ-हिन्दी प्रान्तो मे यह प्रचार-व्यवस्था नही हुई थी। इसलिए गुजरात, महाराष्ट्र, बगाल, आसाम, उत्कल इत्यादि प्रान्तो मे प्रचार-कार्य करने का भार इस राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को सौपा गया। मैं इसका सभापति तो बना, पर इसके नीति-निर्देश का काम गाधीजी ने लिया और अर्थ-सग्रह का सेठ जमनालाल

बजाज ने। इसमे सम्मेलन के कई प्रमुख व्यक्ति—श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, पण्डित दयाशंकर दुबे, डाक्टर बाबूराम सक्सेना प्रभृति—सदस्य बनाये गये। कुछ अ-हिन्दी प्रान्तों के प्रतिनिधि-स्वरूप वही के हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित किये गये। यह समिति तीन बरसो के लिए ही बनायी गयी थी। पर वह तीन बरस बीतने पर फिर मनोनीत कर दी गयी। १९३६ से १९४२ तक, छ बरसो मे, इस समिति ने अ-हिन्दी प्रान्तो मे—विशेषकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश के महाराष्ट्री जिलो, उत्कल और आसाम मे—बहुत काम किया। विद्यार्थियो के लिए पुस्तके बनवायी, परीक्षाएँ ली। हजारो की सख्या मे विद्यार्थियो ने परीक्षाएँ दी, और उत्तीर्ण भी हुए। सेठ पद्मपत सिंघानियाँ ने पाँच बरसो तक १५०००) वार्षिक—कुल ७५०००)—का दान देकर इसके अर्थाभाव को बहुत-कुछ दूर कर दिया। श्री काका कालेलकर, श्री सत्यनारायण, श्री श्रीमन्नारायण और दादा धर्माधिकारी के परिश्रम तथा उत्साह ने, गाधीजी के वरद हस्तों के नीचे, इसे एक व्यापक प्रभाववाली, उच्चाकाक्षावाली, सफल सस्था बना दिया।

नागपुर मे एक और सम्मेलन हुआ। गाधीजी ने देखा था कि हिन्दी-उर्दू का पारस्परिक वैमनस्य बढता जाता है। वह चाहते थे कि इन दोनो के समन्वय का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए एक ऐसी सस्था की जरूरत थी जिसमे दोनो भाषाओ के विद्वान् शरीक हो और जो बिना किसी खीचतान के केवल भाषा की अभिवृद्धि की दृष्टि से काम करे। उन्होने इसमे श्री कन्हैयालाल मुन्शी को, जो गुजराती-साहित्यकारो मे बहुत ऊँचा स्थान रखते है, लगाना चाहा। मुन्शी प्रेमचन्द और मौलवी अब्दुल हक साहब की सहायता भी लेनी चाही। सस्था (राष्ट्रभाषा-परिषद्) का अधिवेशन नागपुर मे ही किया गया। उपरोक्त सज्जन तथा दूसरे लोग निमत्रित किये गये। उसी सभा मे मौलवी अब्दुल हक साहब से मत-भेद हो गया। उन्होने सम्मेलन के बाद कुछ ऐसे लेख लिखे जिनमे गाधीजी पर भद्दा आक्रमण किया गया। इसलिए यह परिषद् मुसलमानो की सहायता न कर सकी। पर मुन्शी प्रेमचन्द और श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने, काशी के हिन्दी-मासिकपत्र 'हस' को, परिषद् की ओर से, कुछ दिनो तक चलाया। दुख की बात है कि मुन्शी प्रेमचन्द थोडे ही दिनों के बाद स्वर्गवासी हो गये। परिषद् बहुत दिनो तक जीवित न रह सकी—यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी कर दी गयी है।

११६—प्रान्तीय धारा-सभाओं का चुनाव

१९३६ का साल १९३७ मे होनेवाले प्रान्तीय धारा-सभाओ के नये विधान के अनुसार चुनाव की तैयारी मे बीता। लखनऊ मे निश्चय हो चुका था कि कॉग्रेस अपनी ओर से उमीदवार खड़ा करे और चुनाव लड़े। यह पहला अवसर था जब इस नये विधान के अनुसार करोडो स्त्री-पुरुषो को चुनाव मे भाग लेने का अवसर मिला था। उन करोड़ो मत-दाताओ का इस प्रकार सगठन करना कि वे कॉग्रेस के

सभी उमीदवारो को वोट दे, कोई आसान काम नही था। कॉंग्रेस १९३५-३६ मे पुन सगठित हो गयी थी। १९३४ मे वह केन्द्रीय असम्बली के लिए चुनाव लड चुकी थी। उसमे वह बहुत बडे अश मे विजय भी प्राप्त कर चुकी थी। पर उस चुनाव के मुकाबले मे यह चुनाव कही अधिक विस्तृत था। उसमे करीब १०० सदस्यो के चुनाव की बात थी। इसमे प्राय २००० जगहो के लिए आदमी चुनवाने थे। इसमे खर्च भी बहुत पडनेवाला था। उमीदवारो को नामजद करना भी कोई आसान काम न था।

सबसे पहला काम था एक ऐसा घोषणा-पत्र तैयार करना जो कॉंग्रेस की ओर से मतदाताओ के सामने रखा जाय और जिसको पूरा करने के लिए उनसे वोट माँगा जाय। कॉंग्रेस के प्रस्तावो और इस प्रकार की घोषणाओ का मसविदा पहले महात्माजी तैयार किया करते थे। इधर जबसे प० जवाहरलालजी सभापति हुए, यह काम उनको ही अधिक करना पडता था। उन्होने दिल फडकानेवाली भाषा मे एक बहुत सुन्दर घोषणा तैयार की। अखिल भारतीय कमिटी ने उसे मजूर कर लिया।

हमारे सामने एक दिक्कत थी। कॉंग्रेस ने अभी तक यह निश्चय नही किया था कि वह अपने सदस्यो को मन्त्रिमण्डल मे शरीक होने देगी या नही। कुछ लोग चाहते थे कि प्रान्तो मे कॉंग्रेसी-मन्त्रिमण्डल बने और जो कुछ भी अधिकार विधान-द्वारा मिले है उनका वे इस्तेमाल करे। दूसरे लोग ऐसे थे जो चाहते थे कि कॉंग्रेसी केवल अडगा-नीति से ही काम ले—न मन्त्रिमण्डल बनावे और न बनाने दे, यदि वे बन भी जायँ तो उनके कामो मे अडगा लगाते रहे। कॉंग्रेस ने विधान को नामजूर कर दिया था, पर साथ ही चुनाव मे भाग लेने की इजाजत दी थी। हाँ, यह नही बतलाया था कि चुने जाने के बाद सदस्य क्या करेगे। इसलिए इस घोषणा-पत्र मे यह साफ कहा नही जा सकता था कि हम मन्त्रिमडल बनावेगे और वहाँ रहकर अमुक-अमुक काम करेगे। उसमे यह भी कहना मुश्किल था कि हम वहाँ कुछ नही करेगे और न किसी को कुछ करने देगे। उसमे बडी होशियारी से ऐसी बाते कही गयी, जो कराची-कॉंग्रेस मे, अपने मौलिक और आर्थिक अधिकारोवाले प्रस्ताव मे, मजूर की गयी थी। ऐसा करने से, बिना इस बात का वादा किये कि हम मन्त्रिपद ग्रहण करेगे या नही करेगे, कौसिल के लिए कार्य्यक्रम बतला दिया गया। यह घोषणा सारे देश के लिए थी। इसके अनुसार सभी कॉंग्रेसी सदस्य, चाहे वे जिस सूबे मे हो, काम करेगे। इसके अलावा, प्रान्तीय कमिटियो को अधिकार दिया गया कि वे अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार यदि वहाँ के लिए कोई घोषणा निकालना चाहे तो निकाल सकती है।

इस घोषणा-पत्र में अधिकतर किसानों की दशा सुधारने की बात कही गयी थी। उसके लिए लगान कानून मे तरमीम करके उनको अपनी जमीन पर, जिसे वे जोतते-बोते है, स्थायी स्वत्व देने की बात थी। लगान कम करने पर भी जोर था।

मजदूरो की भी दशा सुधारने का वादा था—उनकी नौकरी को स्थायी बना कर, उनकी रहन-सहन की सुव्यवस्था कराकर और उनकी मजदूरी मे वृद्धि कराकर। साथ ही, मजदूर-सघों के स्थापित और सगठित करने के अधिकार दिलवाने तथा दूसरे प्रकार से उनकी अवस्था सुधारने की बात भी कही गयी थी। देश मे मद्यनिषेध कराने का वादा था। अर्थात् इसमे वे सब बातें थी जो कोई भी लोकप्रिय मिनिस्ट्री कर सकती है। हम समझते थे कि यदि हमने मत्रिपद ग्रहण किया तो ये सब काम करेंगे ही, पर यदि न भी किया तो इस तरह की बाते जो भी मिनिस्ट्री हो उसके द्वारा करा सकेंगे और करायेंगे।

दूसरा कठिन कार्य था इतने अधिक उमीदवारो को चुनना। स्पष्ट है कि यह काम अखिल भारतीय कमिटी की वर्किंग कमिटी सारे देश के लिए कर नहीं सकती थी। एक तो उसके पास इतना मसाला न होगा कि वह यदि स्वय इस बात पर विचार करने बैठे कि दो उमीदवारो मे से किसको कॉग्रेस-टिकट देना चाहिए तो इसका निर्णय वह कर सके। उसको ख्वाहमखाह प्रान्तीय कमिटिया अथवा उनकी कार्यकारिणी पर ही अधिक भरोसा करना पड़ता। तोभी यह स्पष्ट था कि कही-कही स्थानीय कमिटियो मे दलबन्दियाँ थी, और हो सकता है कि इस दलबन्दी के कारण किसी उमीदवार के साथ बेइनसाफी हो जाय, अथवा ऐसे उमीदवार चुन लिये जायँ जो जनता के सामने जवाबदेह या कामयाब न हो सके। कही-कही की प्रान्तीय कमिटियाँ चाहती भी थी कि अन्तिम निर्णय अखिल भारतीय वर्किंग कमिटी के ही हाथो मे रहे तो अच्छा होगा। इसलिए यह निश्चय हुआ कि अंतिम निर्णय अखिल भारतीय कमिटी ही करेगी। पर वर्किंग कमिटी ने भी इस काम के लिए अपने सभी सदस्यो को एकत्रित करना मुश्किल समझा। इसलिए उसने तीन सदस्यों की एक पारलेमेण्टरी कमिटी बना दी जिसके जिम्मे यह सब काम सौंप दिया गया। इस पारलेमेण्टरी कमिटी के प्रमुख बनाये गये सरदार बल्लभभाई पटेल। इसके सदस्य हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद और मैं। जब चुनाव का समय नजदीक आया तब अनुभव से पता चला कि इन सदस्यो का भी हमेशा मिलकर किसी बात का फैसला करना, समय की कमी और एक से दूसरे की दूरी के कारण, असभव हो जाता था। यदि सारी वर्किंग कमिटी के जिम्मे यह काम रहता तो शायद उसे महीनो एक स्थान पर बैठे रहना पडता। शुरू मे मुझे बम्बई मे कुछ दिनो तक इस कमिटी के काम से रहना पडा था। पर वहाँ के जलवायु की प्रतिकूलता के कारण मैं बरसात मे वहाँ न रह सका। हम तीनो ही अपने-अपने स्थान से काम करने लगे।

सदस्यो की नामजदगी प्रान्तीय कमिटियो की कार्यकारिणी कमिटी ही करती। पर वह अपने मन से मजूर किये गये सभी नामो को पारलेमेण्टरी कमिटी के पास भेज देती। कोई आदमी, जो प्रान्त के फैसले से नाराज हो, पारलेमेण्टरी कमिटी के पास अपील कर सकता था और उस सम्बन्ध के सभी कागज-पत्र, रिपोर्ट इत्यादि प्रान्त से उसके पास जाते। जिन स्थानो के सम्बन्ध मे कोई भी अपील या नाराजगी न

होती वे तो विना सकोच प्रान्तीय कमिटी के निश्चयानुसार ही रह जाते। पर जिसके सम्बन्ध मे अपील होती, पारलेमेण्टरी कमिटी उसकी जाँच करती। यदि आवश्यकता पडती तो उसके सदस्य उस स्थान पर जाकर, वहाँ के लोगो से मिलकर और उनसे दरियाफ्त करने के बाद, अन्तिम फैसला कर देते। यह काम आसान नही था। पर सतोष की बात है कि बहुत कम निश्चयो के सम्बन्ध मे ही पारलेमेण्टरी कमिटी तक अपील पहुँची। जो अपीले पहुँची भी उनमे बहुतेरो का निबटारा लिखा-पढी करके सबकी रजामन्दी से हो गया। थोड़े ही ऐसे स्थान थे जिनके लिए किसी एक आदमी या दल के खिलाफ फैसला देना पडा।

चुनाव के मामले मे दो बाते मुख्य थी। एक तो यह थी कि मनोनीत उमीदवार, कॉग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार, ठीक सचाई और ईमानदारी के साथ, काम करेगा या नही। दूसरी बात यह थी कि उसके चुने जाने की पूरी आशा है या नही। एक तीसरी बात और थी जो इन दो बातो के मुकाबले मे गौण समझी जा सकती है, पर जो अपना काफी महत्त्व रखती थी। वह यह है कि उमीदवार चुनाव के लिए जरूरी खर्च खुद कर सकेगा वा नही, और यदि नही तो उसके लिए पारलेमेण्टरी कमिटी को क्या मदद देनी पडेगी। पहली बात का निर्णय उमीदवार की पूर्वसेवाओ और कॉग्रेस के साथ उसके सम्बन्ध तथा उसकी कार्रवाइयो पर विचार करके ही हो सकता था। दूसरी बात का निर्णय जनता मे उसकी लोकप्रियता पर निर्भर था। इस लोकप्रियता के वहुतेरे कारण हो सकते थे। कोई आदमी कॉग्रेस द्वारा सेवा के कारण वहुत लोकप्रिय है, कोई किसी विशेष क्षेत्र मे दूसरे प्रकार की सेवाओ द्वारा लोकप्रिय हो गया है। कोई क्षेत्र ऐसा था जहाँ किसी खास जाति अथवा समाज के लोगो का वाहुल्य था। वहाँ सेवा के अलावा उस विशेष जाति अथवा समाज का आदमी होना ही लोकप्रियता का—अर्थात् वोट पाने की शक्ति का—कारण हो सकता था। कोई क्षेत्र ऐसा हो सकता था जहाँ अधिक काम नही हुआ है और जहाँ कॉग्रेस का प्रभाव वहुत नही है, वहाँ और कारणो से ही उमीदवार के चुने जाने की आशा हो सकती थी। इन सभी बातो का निर्णय अधिकतर प्रान्तीय कमिटियाँ ही कर सकती थी। इसलिए उनकी ही बाते मान्य होती।

सबसे बडी कठिनाई वहाँ पडती जहाँ कॉग्रेस के दो सेवक एक ही स्थान के लिए उमीदवार हो जाते और उनमे से कोई हटने को तैयार न होता। सेवा की दृष्टि से दोनो मे भेद करना असभव नही तो कठिन जरूर होता। जनता मे भी दोनो के प्रति प्रेम और श्रद्धा होती। ऐसी अवस्था मे किसी एक को नाराज करके ही फैसला देना पडता। पैसे का सवाल भी कुछ हल्का न था। २००० स्थानो के लिए चुनाव का खर्च वहुत पडता है। थोडा-थोडा भी खर्च पडे तो बहुत हो जाता है। प्रतिद्वन्द्विता के कारण भी खर्च कुछ बढ जा सकता है। यदि प्रतिद्वन्द्वी धनी हुआ और अधिक खर्च करने पर उतारू हो गया, तो अपनी ओर से भी खर्च की मात्रा बढ़ा देनी पडती है, क्योकि प्रतिद्वन्द्वी के प्रचार का प्रतिकार करना आवश्यक है।

इस बात का सतोष है कि इन सब कठिनाइयों को पारलेमेण्टरी कमिटी, सरदार वल्लभभाई के नेतृत्व मे, हल कर सकी। मुझे अखिल भारतीय चुनावो के अलावा अपन सूबे का काम भी देखना था। मै जब से कॉग्रेस का सभापति हुआ था, सूबे मे कॉग्रेस का काम कुछ भी नही कर सकता था। जैसा पहले कहा है, बराबर सारे देश म दौड-धूप करता रह गया। अपने सूबे मे तो उस दौरे मे भी नही आ सका था। १९३० से ही सत्याग्रह के काम मे हमारा सूबा सलग्न था। उस समय मुझे अपने सूबे मे बहुत घूमने का मौका मिला था। एक बार १९३१ मे गाधी-अर्विन-पैक्ट के समय मे भी कुछ स्थानो मे भ्रमण कर सका था। १९३४ मे, केवल भूकम्प-सम्बन्धी काम के लिए ही, जहाँ जा सका वहाँ गया। उसके बाद सभापति बनकर तो और-और सूबो मे ही घूमता रहा। इस तरह प्राय पाँच-छ बरसो से मेरा और सूबे का सम्पर्क बहुत कम हो गया था। तोभी मुझे यह काम तो देखना ही था। शायद मै इस साल सूबा-कमिटी का सभापति भी चुना गया था। इसलिए सूबे के उमीदवारो के चुनाव मे मुझे बहुत समय देना पडा और बहुत कष्ट भी उठाना पड़ा। ऊपर जितनी बाते मैने कही है, सबका अनुभव और सब पर निर्णय सूबे की वर्किंग कमिटी को करना पड़ा जिसका मै सभापति था।

हमारे सूबे मे एक और बात है जो प्राय दूसरे सूबो मे शायद बहुत मात्रा मे नही देखी जाती है। जिला-कमिटियाँ अधिकतर निर्णय प्रान्तीय वर्किंग कमिटी पर ही छोडना चाहती थी, क्योकि वे समझती थी कि यदि वे फैसला करेंगी तो आपस के मतभेद बढ जायँगे और इस कारण चुनाव मे कठिनाई भी बढ जायगी। पर प्रान्तीय वर्किंग कमिटी के लिए फैसला देना आसान नही था, क्योकि वह भी स्थानीय परिस्थिति से पर्याप्त परिचय नही रखती थी। तोभी मै समझता हूँ कि प्रान्तीय कार्यकारिणी के जिम्मे यह काम छोडना अच्छा न हुआ। उसके प्राय. सभी निर्णय सर्वसम्मति से हुए। कुछ मे मतभेद हुआ और कभी-कभी यह मतभेद तीव्र भी हो गया, पर अन्त मे सभी बाते सबकी राय से तय हो सकी। मुझे कई निश्चयो के सम्बन्ध मे बडी कठिनाई से अपने को मनाना पडा। पर मैने अपने निजी विचारो को—जिनका सम्बन्ध व्यक्ति से ही था—दबा दिया और कमिटी के बहुमत को ही मान लिया। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैने कभी यह नौबत भी न आने दी कि मेरे कारण किसी नाम के सम्बन्ध मे मत लेने की जरूरत पडे। हाँ, जहाँ जरूरत होती, अपनी राय बता देता; पर उसको सयत-भाषा मे बतलाता जिसमे कटुता न आने पावे। जो हो, सूबे की नामजदगी एक प्रकार से हो गयी।

सूबे मे हमने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे ही लोग विशेषकर लिये जायँ जो काँग्रेस के काम करनेवाले सेवक है। एक तो ऐसे ही लोगो पर अधिक भरोसा किया जा सकता था, क्योकि उन्होने अपने काम से अपनी विश्वसनीयता का परिचय दे दिया था और उनसे आशा भी थी कि कॉग्रेस की जैसी आज्ञा होगी वैसा ही वे करेंगे। पर कही-कही परिस्थिति ने इसके लिए भी मजबूर किया कि ऐसे लोग

भी लिये जायँ जो कॉंग्रेस के साथ सहानुभूति तो रखते थे और जिन्होंने उसकी सेवा भी कुछ की थी, पर जो कार्यकर्त्ताओ मे नही समझे जा सकते थे—यह स्थानीय दिक्कतो के कारण, और कही-कही खर्च के खयाल से भी, करना पडा।

एक विशेष अवस्था हमारे सूबे मे थी। यहाँ पर किसान-सभा काम करती आ रही थी। वह किस तरह १९३३-३४ मे, स्वामी सहजानन्द सरस्वती के अधिनायकत्व मे, प्रोत्साहित की गयी, इसका जिक्र कुछ ऊपर आ गया है। वह इन तीन-चार बरसों मे कही-कही—गया और पटना जिलो मे विशेषकर—जनता मे जोरो से काम कर सकी थी। कॉंग्रेस का और किसान-सभा का विरोध नही था। दोनो के अनेकानेक और प्रभावशाली कार्यकर्त्ता एक ही थे। जहाँ जैसी जरूरत पडती, कॉंग्रेस उनकी मदद भी करती थी। जब चुनाव के लिए उमीदवार नामजद किये जाने लगे तो स्वामी सहजानन्द, जो प्रान्तीय वर्किंग कमिटी के सदस्य थे, कुछ ऐसे लोगो के ले लिये जाने पर जोर देने लगे जो किसान-सभा से विशेष सम्बन्ध रखते थे। और सदस्यो का ऐसे लोगों से कोई विशेष विरोध नही था, पर कही-कही ऐसा मौका आया कि किसान-सभा के कार्य्यकर्त्ता और कॉंग्रेस के कार्य्यकर्त्ता मे ही मुकाबला हो गया। तो भी, कार्य्यकारिणी ने इस बात को भी सँभाल लिया। अन्त मे जो बाते तय हुई, वे ऐसी ही हुई जिनको सब लोगो ने पसन्द और मजूर किया।

एक और चीज है जिसका जिक्र करना आवश्यक है। उमीदवारो के चुनने मे हमको इस बात पर ध्यान रखना पडा कि कौन उमीदवार किस जाति का है। कॉंग्रेस के लिए यह कोई सन्तोष की बात नही थी; पर परिस्थिति के कारण हम इससे अपने को अलग नही रख सकते थे। इस सूबे के लिए यह दुःख और शर्म की बात है कि हम इस नामजदगी मे जाति को एकदम भूल न सके और हमे यह सोचना पडा कि अमुक स्थान मे अमुक जाति के उमीदवार के चुने जाने की अधिक सम्भावना है तथा यह भी देखना पडा कि यदि अमुक उमीदवार को हम नही नामजद करते तो इसका असर उस जाति के लोगो पर तो बुरा पडेगा ही, चुनाव के लिए भी बुरा होगा। हमको यह भी सोचना पडता था कि जितने उमीदवार नामजद किये गये उनमे सभी जातियो के उमीदवार लिये गये वा नही—यदि लिये गये तो इतनी सख्या मे लिये गये वा नही कि हम उस जाति के लोगो को सन्तुष्ट कर सके। ये बाते राष्ट्रीय सस्था के लिए गौरवप्रद नही है। पर हमको चुनाव भी जीतना था और साथ ही हमको इस बात का सन्तोष भी था कि सभी जातियों मे कॉंग्रेसी काम करनेवाले ऐसे मौजूद थे कि उनको हम कॉंग्रेस की नीति की दृष्टि से चुन भी सकते थे। इसलिए किसी के चुनने मे हमे अधिक चोट भी नही लगती, क्योंकि जिनको हम नामजद करते वे पाय. और विचारो से भी योग्य होते। पर सिद्धान्त की दृष्टि से इस विचार का आने देना ही ठीक न था।

पूना मे जो समझौता दलित जातियो (हरिजनों) के साथ हुआ था उसमे यह निश्चय हुआ था कि हरिजनो के निमित्त सुरक्षित स्थानो के लिए एक प्राथमिक

चुनाव हो जिसमे केवल हरिजन ही भाग लेगे। इस चुनाव मे यदि चार या इससे कम हरिजन उमीदवार हुए तो वोट लेने की जरूरत नही होगी, सबके सब नामजद समझे जायँगे। यदि इससे अधिक हुए तो केवल हरिजन लोग वोट देकर जिन चार को चाहे चुन लेगे। फिर दूसरे चुनाव मे हरिजन और दूसरे सभी लोग वोट देगे और जिसको सबसे अधिक वोट मिलेगा वही चुना जायगा। इसका नतीजा यह होता था कि सवर्ण हिन्दुओ को अन्तिम चुनाव मे भाग लेने का मौका मिलता था, पर वे जिसको चाहे उमे नही चुन सकते थे, वे उन्ही चार मे से एक को वोट दे सकते थे जिनको हरिजनो ने पहले चुनाव मे चुन लिया है। इस समझौते का यह फल होता था कि हरिजनो को दो बार वोट देने का हक मिल जाता था। साथ ही, हरिजन उमीदवारो को एक बार केवल हरिजन मतदाताओ मे और दूसरी बार हरिजन मतदाताओ तथा सवर्ण मतदाताओ मे प्रचार करना पडता, जो आसान नही था, क्योंकि इसमे खर्च बहुत पडना। इस सूबे मे हरिजनो की सोलह जगहे थी। हमने प्रयत्न किया कि उन सभी जगहो पर काँग्रेसी उमीदवार खडे किये जायँ और वे ही जीते भी। इसलिए जो उनके प्रमुख काम करनेवाले और प्रभाववाले लोग थे उनसे राय ले करके ही हमने अपने हरिजन उमीदवार खडे किये। इसका नतीजा यह हुआ कि काँग्रेस को ऐसे हरिजन मिल गये जो उसके नियमानुकूल काम करना चाहते थे। हरिजनो ने भी उन्हे पसन्द किया, क्योकि वे उनकी राय से ही चुने गये थे। इसमे खर्च भी बहुत कम हो गया, क्योकि अधिकाश स्थानों मे केवल एक ही हरिजन उमीदवार खडा हुआ जो पहले चुनाव मे बिना विरोध चुना गया और दूसरे चुनाव मे एक ही उमीदवार होने के कारण उसके नाम पर वोट लेने-देने की बात ही नही हुई। हाँ, चन्द जगहे ऐसी हुई जहाँ चुनाव लड़ना पडा, पर अन्त मे १६ मे १५ जगहे काँग्रेस उमीदवारो को ही मिली। और सूबो मे यह इतनी खूबी से न हो सका, जिसका नतीजा यह हुआ कि हरिजनो के एक से अधिक दल हो गये। कुछ काँग्रेस के साथ हुए और कुछ काँग्रेस के विरोधी। इस विरोध के कारण हरिजनो को काँग्रेस के प्रति अश्रद्धा भी हुई। हम इन सब कठिनाइयो से बच गये। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ उनमे शिक्षा का बहुत अभाव है, इसलिए उनमे ऐसे लोग बहुत नही थे जो अपनी महत्त्वाकाक्षा के लिए अपना अलग सगठन आवश्यक समझते।

नामजदगी हो जाने के बाद सारे देश मे प्रचार का काम सगठित करना आवश्यक था। इसके लिए पैसे जमा करने का काम भी पारलेमेण्टरी कमिटी के ही जिम्मे था। यह काम विशेषकर सरदार बल्लभभाई ने ही किया। आवश्यकतानुसार प्रान्तीय कमिटियो को मदद दी गयी। प्रान्तीय कमिटियो ने अपना-अपना अलग प्रबन्ध भी यथा-साध्य किया। बिहार मे, जैसा ऊपर कहा गया है, अधिक उमीदवार ऐसे ही थे, जो काँग्रेस-कार्यकर्त्ता थे। काँग्रेस-कार्यकर्त्ता, विशेषकर बिहार मे, पैसेवाले नही है। जिनके पास घर मे कुछ खाने-पीने लायक है भी, वे भी चुनाव के लिए बहुत ज्यादा खर्च करने योग्य नही है। तो भी जिससे जहाँ तक हो सका उसने अपना खर्च किया।

प्रान्त की ओर से वही मदद दी गयी जहाँ बहुत जरूरत समझी गयी। सारे सूबे मे जो प्रचार हुआ उसका खर्च प्रान्त ने दिया और विशेष क्षेत्रो का खर्च वहाँ के उमीदवार ने। जिस उमीदवार को मदद की जरूरत हुई, प्रान्त ने उसको मदद की। इस तरह से प्रान्त को खर्च तो करना पडा, पर यदि हम यह विचार करे कि कितने क्षेत्रो मे प्रान्त ने कितने खर्च से सफलता प्राप्त की, तो वह खर्च बहुत नही जान पडता। कुछ खर्च तो अनिवार्य हूं। क्षेत्र बहुत विस्तृत हैं। इतना तो अवश्य करना ही चाहिए कि उमीदवार और दूसरे कांग्रेसी कार्यकर्त्ता सभी जगहों मे जाकर वहाँ की जनता तक कांग्रेस का सन्देशा पहुँचा दे तथा मतदाताओ के साथ उमीदवार की मुलाकात हो जाय। इसमे ही बहुत खर्च पडता था।

कांग्रेस का घोषणापत्र और कांग्रेस-सम्बन्धी दूसरा साहित्य छापकर बाँटना भी आवश्यक है। वह केवल चुनाव के लिए ही नही, जनता की शिक्षा और ज्ञानवृद्धि के लिए भी। इस प्रकार के खर्च तो हर हालत मे अनिवार्य है। पर इसकी भी जरूरत थी कि केवल सभाओं द्वारा ही प्रचार न किया जाय। वोट के लिए प्रत्येक मतदाता तक भी कही-कही पहुँचना अधिक आवश्यक था—विशेषकर जहाँ कोई जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी था। इसमे बहुत खर्च पडता था। आजकल के चुनाव मोटर के बिना तो हो ही नही सकते; क्योकि बिना तेज सवारी के सभी जगहो मे पहुँचना असम्भव-सा है। जब प्रतिद्वन्द्वी वहाँ बार बार पहुँच रहा है तो हमको भी वैसा ही करना पडता है। तो भी मेरा अनुमान है कि बिहार मे खर्च बहुत अधिक नही पडा और हमने अपना काम किफायत से निबाहा। पर हमे यह तो मानना ही पडेगा कि हमने चाहे जितना भी कम खर्च किया, गाधीजी के आदर्श से तो वह बहुत नीचे ही दीख पडा।

गाधीजी का विचार तो यह था कि कांग्रेस पर लोगो का इतना विश्वास होना चाहिए—यह विश्वास कांग्रेस अपनी निःस्वार्थ सेवा द्वारा ही अर्जित कर सकती है—और उसके उमीदवार ऐसे सच्चे और लोकप्रिय सेवक होने चाहिए कि कांग्रेस को अपनी ओर से केवल घोषणा-पत्र छापकर बाँट देना और अपने उमीदवारो के नाम प्रकाशित कर देना ही काफी हो—जनता मे इतना उत्साह होना चाहिए कि वह, बिना किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन के, ठीक समय पर जाकर अपना वोट कांग्रेस के उमीदवारो के पक्ष मे दे दे। इसका अर्थ यह है कि चुनाव के समय का प्रचार उतना अधिक आवश्यक नही जितना जनता के बीच हमेशा रहकर उसकी सेवा करना। जनता की सेवा ही प्रचार का सबसे अधिक बलवान् साधन होना चाहिए।

बात तो ठीक है, पर अभी हमने इतनी सेवा नही की है। जिस हद तक हमारी सेवा पहुँची है उसी हद तक हम लोकप्रिय बन सके है और उसी अनुपात से चुनाव मे हमको कम कठिनाइयो का सामना करना पडा है। पिछले बीस बरसो की सेवा बेकार नही गयी है, पर उसको अधिक विस्तृत और स्थायी होना चाहिए। इसमे जहाँ स्वार्थ की मात्रा आती जायगी, हमारी कठिनाइयाँ आगे बढती जायँगी।

यह खेद के साथ लिखना पडता है कि चुनावो के अनुभव ने मुझे यह मानने

पर मजबूर कर दिया है कि बहुतेरे कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ता अपनी सेवाओ का मूल्य आँकने लगे है—उनके बदले मे कुछ न कुछ खोजने लगे है—चाहे वह असम्बली या कौन्सिल की मेम्बरी हो, चाहे वह जिला-बोर्ड या म्युनिसिपैलिटी की सदस्यता वा कोई दूसरा पद हो, चाहे और कुछ न हो तो कॉंग्रेस-कमिटियो के अन्दर ही कोई प्रतिष्ठा और अधिकार का स्थान हो! इसमे कोई शक नही कि इन स्थानो पर जाकर मनुष्य सेवा कर सकता है—कही-कही तो सेवा की शक्ति बढ भी जाती है। यदि इस भावना से उन पदो या स्थानो की इच्छा की जाय तो ठीक है। पर कौन कह सकता है कि इस इच्छा मे सेवा-भाव का प्राबल्य है अथवा अपनी महत्त्वाकांक्षा का? यह तो शायद मनुष्य का हृदय भी ठीक नही बता सकता, क्योकि वह अपने को अक्सर ऐसे मामलो मे धोखा दे देता है और इस प्रकार मनुष्य अपने मन को ही समझा लेता है कि वह महत्त्वाकाक्षा से प्रभावित न होकर सेवा के लिए ही लालायित है।

गाधीजी ने एक अवसर पर कहा था कि जो आदमी कॉंग्रेस के सभापतित्व के लिए लालायित हो उसे सभापति नही बनाना चाहिए। जो इसे प्रतिष्ठा के लिए नही, सेवा के लिए स्वीकार करता है वह इसके लिए इच्छा नही करता—अवसर आ जाने पर उसे शिरोधार्य कर लेता है। यही बात उन सभी स्थानो के लिए होनी चाहिए जिनके लिए जनता चुनकर सेवक नियुक्त करती है। पर आज की प्रचलित पद्धति ऐसी है कि अपना ढोल अपने राम को ही पीटना पड़ता है! स्वभाव का स्थान महत्त्वाकाक्षा लेती है। हम इन स्थानों को अपने जीवन मे अपने लिए उन्नति का साधन मानते है और ससार की होड मे इन्हे अपने को आगे बढाने का एक जरिया समझते है। यह हमारी सभ्यता और सस्कृति के प्रतिकूल है, पर आधुनिक पाश्चात्य विचारों के अनुकूल ही है। आज इससे बचना कठिन हो गया है। हम देखते है कि हमारे सामने आज यह आदर्श रखने मे भी सकोच होता है कि चुनाव के लिए किसी को स्वयं नही खडा होना चाहिए—जिनको चुनने का अधिकार है उन पर ही योग्य व्यक्ति को खोज निकालने का भार डाल देना चाहिए—यदि उनकी दृष्टि हम पर पड जाय और वे हमे चुन ले तो उनकी आज्ञा मानकर अपनी शक्ति भर उनकी सेवा, जो उस स्थान से सम्भव हो, कर देनी चाहिए। ससार मे सच्ची प्रजातान्त्रिक व्यवस्था तब तक नही हो सकती जब तक कुछ इस प्रकार की बात न चलायी जाय। इसके लिए त्याग की भावना दृढ होनी चाहिए, भोग की भावना कमजोर करनी चाहिए; हमारा ध्येय होना चाहिए—सेवा, न कि प्रतिष्ठा अथवा दूसरे प्रकार का स्वार्थ।

इधर पारलेमेण्टरी कमिटी इस तरह से चुनाव की तैयारी मे लगी थी, उधर पडित जवाहरलालजी देश के भिन्न-भिन्न स्थानो का दौरा करके लोगो मे उत्साह पैदा कर रहे थे। उन्होने इस समय जैसे परिश्रम और उत्साह से दौरा करके लोगो को जगाया, शायद वैसा जबरदस्त प्रचार किसी सभापति ने अपने सभापतित्व-काल मे न किया होगा। उनका कहना था, और वह ठीक ही था, कि इस प्रकार के चुनाव मे, जहाँ

फा० ५९

करोडों आदमियो से वोट लेने थे, एक-एक वोटर तक पहुँचने की आशा व्यर्थ है, और अगर हम पहुँच भी सके तो इसका भरोसा नही किया जा सकता कि ठीक समय पर हमारे पहुँचने का फल मिलेगा। सबसे अधिक आवश्यकता है वायुमण्डल को वदल देने की जिससे यदि कोई बाहर निकलने का प्रयत्न भी करे तो न निकल सके। उन्होने ऐसा ही वायुमण्डल तैयार करने मे अथक परिश्रम किया। नतीजा वहुत अच्छा हुआ।

११७—फैजपुर में कॉंग्रेस का सबसे पहला ग्रामीण अधिवेशन

लखनऊ का अधिवेशन अप्रैल मे हुआ था। वहाँ एक निश्चय यह भी हुआ था कि कराची का वह नियम बदल दिया जाय जिसके अनुसार दिसम्बर मे कॉंग्रेस का सालाना जल्सा न करके फरवरी-मार्च मे करने का निश्चय किया गया था। इसलिए इसके वाद का वार्षिक अधिवेशन १९३६ के दिसम्बर मे ही होने को था। यह केवल आठ महीनों के भीतर ही पड़ता था। देश ने जवाहरलालजी को तीसरी बार सभापति फिर चुना। यह अधिवेशन फैजपुर मे हुआ। यह स्थान बम्बई प्रान्त—कॉंग्रेसी महाराष्ट्र प्रान्त—के पूरब खानदेश-जिले मे है। यह एक गाँवमात्र है या कस्वा कहे तो एक छोटा कस्बा। गाधीजी ने विचार प्रकट किया था कि कॉंग्रेस का अधिवेशन गाँवों मे हुआ करे तो जनता को उससे विशेष लाभ पहुँच सकता है। पहली बात तो यह होगी कि गॉव के लोगों को उसके प्रबन्ध मे भाग लेना पडेगा और इस तरह उनके लिए उसकी सब कार्रवाइयो मे रस पैदा होगा। दूसरी बात यह होगी कि अतिथियो के स्वागत-सत्कार और रहन-सहन के लिए जो इन्तजाम किया जायगा उससे गॉव-वालों को आर्थिक लाभ भी पहुँचेगा। गाधीजी चाहते थे कि प्रबन्ध भी ऐसा हो कि उसमे गाँव की चीजों से ही काम लिया जाय। इस तरह वह ग्रामोद्योगो के प्रोत्साहन का कारण भी हो। उन्होंने महाराष्ट्र के लोगो से अनुरोध किया कि वे इस कॉंग्रेस का प्रबन्ध यथासाध्य ग्रामोद्योगों द्वारा उत्पन्न वा उपस्थित की हुई वस्तुओ से ही करें। काम कठिन था, पर स्वागत-समिति ने यथासम्भव प्रयत्न किया।

आजकल कॉंग्रेस का अधिवेशन एक बहुत बडे पैमाने पर करना पडता है। जहाँ-कही भी वह किया जाय, बहुत विशाल आयोजन करना पडता है। गाँवो मे इस आयोजन का विस्तार और भी वढ जाता है। वहाँ तो कोई चीज मिलती नही, सब कुछ जुटाना ही पडता है। जहाँ लाखो आदमी जमा होनेवाले है, वहाँ उनके लिए केवल पानी ही जुटाना एक मुश्किल काम हो जाता है। उनके ठहरने और खाने का, रोशनी और सफ़ाई का, प्रबन्ध कुछ कम कठिन नही होता। साथ ही, जहाँ इतने लोग इकट्ठे हो वहाँ उनके देखने योग्य कुछ कला की चीजो का होना भी आवश्यक होता है। गाधीजी की आज्ञा से वहाँ यथाशक्ति गाँव की चीजो का ही व्यवहार किया गया।

बगाल की 'विश्वभारती' के प्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दलाल वसु ने वहाँ जाकर कॉंग्रेस-नगर और पडाल तथा प्रदर्शनी की सजावट इत्यादि का बहुत सुन्दर इन्तजाम

कराया। तारीफ की बात यह थी कि सजावट के लिए गॉव मे मिलनेवाले बॉस और लकडी से ही काम लिया गया था। जो फाटक बने थे, या दूसरी सजावट की चीजे बनी थी, उनकी सादगी मे भी बडी खूबसूरती थी। यह देखकर लोगो को आश्चर्य हुआ कि इन छोटी-मोटी मामूली चीजो से कलाकार कितनी विचित्रता और रोचकता पैदा कर सकता है। आखिर प्रकृति की सुन्दरता तो इन्ही चीजो की बनी होती है। हम क्या प्रकृति से भी अधिक सुन्दर कोई चीज बना सकते है? पर हमारी दृष्टि आज दूषित हो गयी है। हम प्रकृति के सौन्दर्य को ठीक समझ नही सकते। हम कला को प्रकृति से कोई अलग वस्तु मान बैठते है। जो हो, फैजपुर की विशेषता वहॉ की सरलता की सुन्दरता थी।

पानी के लिए वहाँ लोगों ने बहुत बडा कुँआ खुदवाया जो कॉग्रेस के बाद भी वहॉ की जनता को लाभ पहुँचाता रहेगा। रहने के लिए झोपडे बनवाये जिनमे गॉव के ही खर-पात, बॉस, चटाई इत्यादि का उपयोग हुआ था। इस प्रकार फैजपुर का अधिवेशन पहला ग्रामीण अधिवेशन हुआ जिसमे ग्रामोद्योगो की ही प्रधानता रही। इनमे खादी का स्थान तो प्रमुख रहता ही, और खादी का ही सभी जगहो मे बोलबाला रहा।

पर अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ, जब बहुत सर्दी पडा करती है। इसलिए बाहर के आये हुए हजारो-हजार लोगो को बहुत कष्ट हुआ, क्योकि उस छोटे स्थान मे ऐसे आगन्तुकों के ठहरने के लिए भी कोई मकान या धर्मशाला या झोपडे तक भी नही मिल सकते थे। वे हजारों की सख्या मे यों ही खुले मैदान और खेतो मे रात को पड रहते थे। गाधीजी को यह बात बहुत लगी। उन्होने उस नियम को फिर बदलवा दिया। तब से फिर कॉग्रेस मार्च (वसन्त) मे होती आ रही है।

फैजपुर का अधिवेशन चुनाव के चन्द दिन ही पहले हुआ था। इसलिए यहाँ चुनाव के सम्बन्ध मे बहुत उत्साह था। कई जगहो के कितने ही प्रमुख कार्यकर्त्ता, अपने स्थान पर चुनाव के प्रबन्ध मे लगे रहने के कारण, नही आये। यहाँ भी नये विधान को नामजूर करने तथा चुनाव मे भाग लेने की बात की गयी। इस चीज को अखिल भारतीय कमिटी के लिए छोड दिया गया कि चुनाव के बाद वह निश्चय करे कि मन्त्रिमण्डल मे शरीक होने के सम्बन्ध मे कॉग्रेस की क्या नीति होगी। जवाहरलालजी के विचार इसके विरोधी थे और मालूम थे, पर वही पता लग गया कि कॉग्रेस मन्त्रि-मण्डल बनाने के पक्ष मे है और यदि प्रस्ताव उपस्थित होता तो उसे वह मजूर करती। परन्तु अभी यह समय उस निश्चय तक पहुँचने का नही था, इसलिए वह अधिकार अखिल भारतीय कमिटी को ही देकर रख छोडा गया।

इसी अधिवेशन के कुछ पहले, श्री एम० एन० राय (मानवेन्द्रनाथ राय), विदेश से लौटने के बाद, सजा काटकर जेल से निकले थे। वह इस अधिवेशन मे पहले-पहल शरीक हुए। हो सकता है कि जब वह इतने विख्यात नही थे, विदेश जाने के पहले, कॉग्रेस मे शरीक हुए हों; पर इधर यह उनका पहला ही अवसर उसमे शरीक

होने का था। हमसे भी पहले-पहल वही मुलाकात हुई। अभी उनके विचारो से देश परिचित नही था और कॉंग्रेस मे स्वाभाविक कौतूहल था। वह युक्तप्रदेश की ओर से प्रतिनिधि और अखिल भारतीय कमिटी के सदस्य भी चुन लिये गये थे। इस तरह उनको कॉंग्रेस मे अच्छी तरह भाग लेने का सुअवसर मिल गया था।

११८—चुनाव का दौरा और नतीजा

कॉंग्रेस के बाद सब लोग अपने-अपने सूबे के चुनाव मे भाग लेने के लिए गये। वही हमने पडित जवाहरलाल से बिहार के कुछ भागो मे दौरा करने का वचन ले लिया। वह चन्द दिनो के बाद ही बिहार मे दौरा करने आये। मै भी दौरा करने योग्य हो गया था। अपने लिए भी मैंने यात्राक्रम बनाया। सभी जगहों मे जवाहरलालजी का जाना सम्भव नही था; क्योकि उनको तो सारे देश मे दौरा करना था। इसलिए हमने ऐसा प्रबन्ध किया कि जहाँ वह न जायँ वहाँ मै जाऊँ। मै उनके साथ दौरे में नही गया। मैंने अपना दौरा अलग आरम्भ किया। इस तरह, हम दोनो ने मिलकर प्राय सारे सूबे का दौरा कर लिया। पडित गोविन्दवल्लभ पंत प्रभृति दूसरे नेता भी आये। जहाँ-जहाँ कमजोरी दीख पड़ी, वहाँ वे गये। जनता मे अपूर्व उत्साह था। दौरे के बाद हमारे दिल में सफलता के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का शक-शुबहा नही रह गया। जब चुनाव का नतीजा निकला तब मालूम हो गया कि हमने जितनी आशा की थी उससे भी अधिक सफलता मिली। ऊपर कहा जा चुका है कि हरिजनो के १६ सुरक्षित स्थानो मे से १५ पर कॉंग्रेसी उमीदवार चुने गये। स्त्रियो के लिए जो सुरक्षित स्थान है उनमे तीनो गैर-मुस्लिम जगहे कॉंग्रेस को मिली। मजदूरो के लिए सुरक्षित जगहो मे से एक को छोड सभी कॉंग्रेस के उमीदवारों को ही मिली। आदिवासियो की जगहो मे भी चन्द को छोड़कर सभी कॉंग्रेसी लोगो ने ही जीत ली। हाँ, जमीन्दारो की जगहे कॉंग्रेस को नही मिली। पर एक के सिवा और किसी के लिए कॉंग्रेस ने उमीदवार भी नही खडा किया था, उसमे भी कॉंग्रेस की हार हुई। हम यह जानते भी थे, इसलिए हताश होने का यह कोई कारण न हुआ।

बिहार की असम्बली मे मुसलमानो के लिए ३९ या ४० जगहे सुरक्षित है। चुनाव के बहुत पहले से ही कॉंग्रेसी मुसलमानो और दूसरे राष्ट्रीय विचारवाले मुसलमानों मे बातचीत चलती रही। कुछ का विचार था कि जहाँ तक हो सके, कॉंग्रेस की ओर से ही सभी जगहों पर उमीदवार खडे किये जायँ। कुछ का विचार था कि राष्ट्रीय मुस्लिम जमायतों—जैसे जमाअत-उलेमा—के साथ समझौता कर लिया जाय जिससे कॉंग्रेसी और दूसरे दल में कोई विरोध न हो। परन्तु कॉंग्रेसी मुसलमान ही एकमत नही थे, इसलिए कॉंग्रेस-कमिटी कुछ मुश्किल मे थी। तो भी चन्द जगहो के लिए कॉंग्रेसी उमीदवार खड़े किये गये। इनमे से चन्द के लिए राष्ट्रीय मुसलमानो ने मुकाबले मे उमीदवार नही खड़े किये। चन्द जगहो मे मुकाबला हुआ भी। पर राष्ट्रीय मुसलमानों के अलावा कुछ दूसरे मुसलमान-दल भी थे—उन्होने भी चुनाव मे भाग

लिया। मुस्लिम लीग का कोई जोर नही था। जहाँ तक मुझे याद है, लीग की ओर से शायद ही कोई उमीदवार खडा किया गया था। जमाअत-उलेमा की मदद से एक दल बना जिसके खास मददगार हुए जमाअत-उलेमा के मान्य नेता और इमारत-शरायत के नायब-अमीर मौलाना अबुल महासिन महम्मद सज्जाद। इसी दल मे मिस्टर महम्मद युनुस शरीक हुए। मुसलमानों का यही दल सबसे जबरदस्त दल मालूम पडता था। इसी दल के साथ काँग्रेस की बातचीत हुई जिसका नतीजा यह हुआ कि कॉग्रेस ने चन्द जगहो के लिए ही उमीदवार खडे किये। कई ऐसे मुसलमान, जो हर तरह से काँग्रेसी समझे जा सकते थे और जिन्होंने कॉग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार जेल-यात्रा तक की थी, उस दल की ओर से खड़े हुए। उस दल को काफी सफलता मिली। असम्वली मे मुसलमानों की सबसे अधिक सख्या इसी दल की थी। पीछे जब मुस्लिम लीग का जोर बढा तो शायद अब यह बात नही रह गयी है; पर वह तो असम्वली की बैठक होने पर ही मालूम होगा कि किसके साथ अधिक मुसलमान सदस्य हैं। युनिवर्सिटी की जगह श्री सच्चिदानन्दसिंह ने कॉग्रेस-उमीदवार को हराकर ले ली।

विहार का चुनाव पहले ही समाप्त हो गया। इसलिए यहाँ के कतिपय कार्यकर्त्ता सयुक्त-प्रदेश मे चले गये। यहाँ की सफलता की बात वहाँ पहले पहुँच चुकी थी और इन लोगों ने भी जाकर कुछ काम किया। मै भी चन्द दिनों मे वहाँ गया। चन्द दिनो के लिए मध्यप्रदेश मे भी गया। वहाँ के लोगो ने जहाँ मुझे ले जाना मुनासिब समझा, ले गये। मध्यप्रदेश मे विलासपुर जिले म मुझसे अधिक काम लिया गया। वहाँ से एक दिन के लिए जवलपुर-जिले मे कटनी के पास के क्षेत्र मे भी जाना पडा। वहाँ विलासपुर के एक क्षेत्र मे श्री राघवेन्द्र राव काँग्रेस के उमीदवार का मुकावला कर रहे थे। उसमे कॉग्रेस की हार हुई, पर दूसरी जगहों मे जहाँ मै गया, काँग्रेस की जीत हुई। उसी तरह कटनी मे भी काँग्रेस की जीत रही। युक्तप्रदेश मे अवध के कई जिलों मे मै गया। फिर धामपुर-जिले मे गया जहाँ बहुत जोरदार मुकाबला था। धामपुर से कुछ दूर तराई मे जाना था जहाँ मुश्किल से मोटर पहुँच सकी। लोगों का कहना था कि वहाँ कोई कॉग्रेसी नेता पहले नही आया था। इसलिए वहाँ बहुत बडी भीड जमा हुई थी। लोगों मे काफी उत्साह था। जाना अच्छा रहा, क्योंकि वहाँ कॉग्रेस की जीत महज चन्द वोटो से ही हुई।

युक्तप्रदेश से मै फिर महाराष्ट्र और कर्नाटक चला गया। महाराष्ट्र मे कई दिनो तक दौरा किया। पर वहाँ उतनी सफलता नही मिली जितनी और जगहो मे। एक स्थान पर तो प्रतिद्वन्द्वी ने हमारे पहुँचने के पहले ही सभा मे, जो मेरे लिए एकत्र हुई थी, भाषण करके लोगो को अपने-अपने घर चले जाने के लिए कह दिया। उन्होने कृपा करके कारण भी बता दिया कि मै नही पहुँच सका और वहाँ नही आनेवाला हूँ! शायद यह भी कह दिया हो कि कोई काँग्रेसी कार्यकर्त्ता ही यह सन्देश लेकर आया है तो आश्चर्य नही! पर और जगहो में सभाएँ खूब हुई। बहुतेरी जगहे मिली भी, पर जितनी आशा थी उतनी नही। सबसे अधिक हार रत्नागिरि मे हुई जहाँ से लोग

बहुत आशा रखते थे। महाराष्ट्र से मै कर्नाटक चला गया। कई जिलो मे घूमा। वहाँ अच्छी सफलता मिली। एक स्थान मे हार हुई जहाँ के सम्बन्ध मे वहाँ के लोग बहुत आशा रखते थे। वहाँ के उमीदवार भी कॉग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ता श्री हनुमन्त राव कौजलजी थे। पर चुनाव मे इस तरह की बाते हुआ ही करती है।

इस समय तक और जगहो मे चुनाव का काम प्राय समाप्त हो चुका था। मै आन्ध्र के एक ही जिले—'बेलारी'—मे जा सका। वही पर दौरा समाप्त करके वर्धा वापस आ गया। इस तरह मेरा दूसरा दौरा महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेशो के कई जिलों का हुआ। कई परिचित स्थानों को दुबारा देखने का अवसर मिला। इस तरह सारे देश मे चुनाव-सघर्ष समाप्त हुआ। कॉंग्रेस की जीत बम्बई, मद्रास, मध्य-प्रदेश, युक्तप्रदेश, बिहार, उडीसा और आसाम मे काफी हुई। पजाब, बगाल और सिन्ध मे भी कॉंग्रेसी लोग चुने गये; पर उनकी सख्या इतनी नही थी कि और दलो से वह अधिक हो। सीमाप्रान्त मे भी कॉंग्रेस का सबसे बडा दल रहा। पर एकबारगी बहुमत कॉंग्रेस को उस समय नही मिला।

चुनाव के बाद अब यह निश्चय करने का अवसर आ गया कि कॉग्रेस मन्त्रिपद लेगी वा नही। इतने सूबो मे बहुमत पाकर क्या वह मन्त्रिपद लेकर काम करेगी वा बिना पद लिये ही—इस विषय पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक दिल्ली मे की गयी। सभापति का विचार हुआ कि सभी कॉंग्रेसी मेम्बर वहाँ उस अवसर पर बुलाये जायँ और सभी कॉग्रेस-सदस्यो का भी एक जल्सा किया जाय जिसमे वे कॉग्रेस के प्रति अपनी श्रद्धा और वफादारी की सौगन्द ले। यह परिषद् (convention) बडे उत्साह के साथ हुई। इस परिषद् मे सभी उपस्थित सदस्यो ने एक साथ कॉंग्रेस के आज्ञापालन और देशोद्धार के काम मे लगे रहने की प्रतिज्ञा की। वही अखिल भारतीय कमिटी की भी बैठक हुई जिसमे यह निश्चय हुआ कि कॉंग्रेस मन्त्रिमण्डल तभी बनायेगी जब गवर्नर इस बात का वादा कर दे कि जो विशेष अधिकार उनको विधान द्वारा दिये गये है उनका वह व्यवहार न करेंगे, बल्कि सब बातो मे मन्त्रियो की सलाह से ही काम करेंगे। गाधीजी ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि इस प्रकार का वादा कराये बिना कॉंग्रेस को मन्त्रिपद नही लेना चाहिए, क्योंकि विधान मे गवर्नरों के लिए बहुत अधिकार सुरक्षित रखे गये है—यदि वे उनका व्यवहार करेंगे तो कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल कोई बडा और महत्त्व का काम नही कर सकेगा, इसलिए यद्यपि कॉग्रेस को मन्त्रिमण्डल बनाने से इनकार नही करना चाहिए तथापि वह तभी स्वीकार करे जब गवर्नर उपरोक्त वादा कर दे।

जिस समय विधान बन रहा था, इन सुरक्षित अधिकारों के सम्बन्ध मे बहुत टीका-टिप्पणी हुई थी। उस विधान के नामजूर होने के कारणों मे गवर्नर के इस प्रकार के अधिकार एक विशेष कारण थे। उस समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने भारत के इस विचार पर ध्यान नही दिया और अपनी इच्छा के अनुसार विधान बना दिया। अब गाधीजी की इस सूझ ने प्रान्तीय गवर्नरों के इन अधिकारों को निकम्मा कर देना

चाहा, क्योंकि पुस्तक मे यदि ये अधिकार लिखे रह भी जायँ और गवर्नर इन्हे काम मे न लावे, तो विधान की एक बहुत बडी शिकायत की बात दूर हो जाय। हममे से जो लोग मन्त्रिपद लेने के जबरदस्त हिमायती थे वे भी इससे नाराज हुए, क्योंकि वे समझते थे कि इस अपरोक्ष रीति से ब्रिटिश गवर्नमेण्ट विधान की उन धाराओ को रद नही करेगी और यदि कॉंग्रेस इस शर्त पर अडी रही तो मन्त्रिमडल नही बनेगे। पर जो लोग मन्त्रिमण्डल बनने के विरोधी थे वे खुश थे, क्योंकि वे भी समझते थे कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस शर्त को नही मानेगी और इस तरह मन्त्रिमण्डल नही बनेगा। गाधीजी इस पर अडे रहे। उन्होने साफ कह दिया कि उनके मत मे मन्त्रिपद न लेना बडी भूल होगी, पर उससे भी बढकर यह भूल होगी कि मन्त्रिपद बिना इस शर्त के लिये जायँ। अन्त मे यही बात मजूर हुई। कॉंग्रेसी मेम्बरो को आदेश दिया गया कि वे अपने नेता चुन ले—जब नेता को गवर्नर मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए बुलावे तो वही यह शर्त पेश करे और कहे कि गवर्नर यदि अपने विशेष अधिकारो को व्यवहार मे न लाने का प्रकाश्य रूप से वादा करें तो वह मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार है अन्यथा नही।

१९३७ की पहली अप्रैल से नये विधान के अनुसार मन्त्रिमडल बन जाने चाहिए थे। उसी दिन सभी सूबो का शासन भी उस विधान के अनुसार आरभ हो जाना चाहिए था। कॉंग्रेस के इस निश्चय के बाद, गवर्नरो को और उनको आदेश देनेवाले वाइसराय को अब सोचना पडा कि वे क्या करे। विधान के अनुसार उन्हे उस दल के नेता को, जो सबसे बड़ा वहाँ की असम्बली मे था, कह देना था कि वह मन्त्रि-मण्डल बनावे। असम्बली के पार्टी-मेम्बरो को भी अपना नेता चुन लेना था। इस-लिए सबसे पहले सभी सूबों के मेम्बरों के लिए यह आवश्यक था कि अपने-अपने स्थान पर एक बार मिलकर नेता चुन ले। बिहार मे पार्टी और प्रान्तीय कमिटी की बैठक एक ही दिन हुई जिसमे नेता का चुनाव करना था। मै नही चाहता था कि इस विषय मे आपस मे दलबन्दियाँ हो। मैं समझता था कि सर्वसम्मति से नेता का चुना जाना ही सबसे अच्छा होगा। मैंने देखा कि कुछ लोग किसी व्यक्तिविशेष के सम्बन्ध मे आपस में बाते कर रहे थे। मेरे पास भी कुछ लोग आये। मैंने दल-बन्दी करने की मनाही की और यही राय दी कि जिस किसी के सम्बन्ध मे वे बाते करते हों, पहले उससे ही पूछ ले कि इस बात को क्या वह पसन्द करते है। जब सभा बैठी तो उसने यह निश्चय किया कि मै ही हर जिले के प्रमुख लोगो से अलग-अलग बाते कर लूँ और जैसी लोगो की राय मालूम हो उसके अनुसार निर्णय दे दूँ तो वोटावोटी की नौबत न आवे।

मैंने सब बातों पर विचार कर अपनी राय निर्धारित कर ली थी कि श्री श्रीकृष्ण सिंह ही पार्टी के नेता बनाये जायँ। यह निश्चय करने मे मुझे इस बात से काफी मदद मिली थी कि दूसरे व्यक्ति भी—श्री अनुग्रहनारायण सिंह, जिनके सम्बन्ध मे कुछ लोग बाते कर रहे थे—मुझसे निजी तौर पर कह चुके थे कि

वह इस पद को नही चाहते और जो लोग उनके बारे मे औरो से कह रहे है वे उनकी इच्छा के अनुसार काम नही कर रहे है। तीसरे सज्जन, जिनके सम्बन्ध मे कुछ विचार होता था, डाक्टर सैयद महमूद थे। वह कई बरसो से अखिल भारतीय कमिटी और वर्किंगकमिटी के मेम्बर रह चुके थे। खिलाफत कमिटी के दिनो मे उसके प्रधान मत्री भी रहे थे। अखिल भारतीय कॉग्रेस कमिटी के मत्री रह चुके थे। राष्ट्रीय विचारो के वह पक्के और पुराने पोषक तथा समर्थक रहे है। उनका त्याग किसी से कम नही रहा है। तथापि, वह बिहार-सूबे मे, विशेपकर सूबे के कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ताओ मे, उपरोक्त दो सज्जनो के मुकाबले कम लोकप्रिय रहे है। सूबे के बाहर अधिक काम करने के कारण उनसे सबका उतना परिचय नही है जितना इन दो सज्जनो से। इन दोनो मे भी बाबू श्रीकृष्ण सिह अपनी वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा अपने को अधिक लोकप्रिय बना सके है। त्याग की मात्रा और निर्भीकता मे भी वह लासानी है। अनुग्रह बाबू की सगठन-शक्ति और आफिस चलाने की शक्ति के सभी कायल है। इन्ही कारणो से मेरा विचार श्रीकृष्ण बाबू के पक्ष मे था। जब मैंने सभी जिलो के लोगो से बाते की तो अधिकाश लोगो की भी राय मेरी राय से मिल गयी। श्री रामदयालु सिंह भी प्रान्त के एक ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति है कि उनके सम्बन्ध मे भी कुछ लोगो का विचार हो सकता था, पर इसमे शक नही कि कुछ लोग उनका काफी विरोध भी करनेवाले थे, जिनमे उनके अपने जिले के भी कुछ लोग थे। कुछ लोग मुझसे नाराज हुए और कहने लगे कि मैंने एक सज्जन के सम्बन्ध मे प्रचार करके जिले के लोगो से उनको मनवा लिया। बात ऐसी नही थी, पर यदि होती भी तो मुझे इसका अफसोस या इसकी शर्म नही होती, क्योकि जहाँ तक मै समझ सकता और देख सकता था, जिले के लोग श्रीकृष्ण बाबू और अनुग्रह बाबू मे से ही एक को नेता बनाना चाहते थे, पर अनुग्रह बाबू इस होड़ मे पडना नही चाहते थे। इसलिए, यदि मैंने कुछ किया भी हो तो उसका असर इतना ही मात्र था कि मैंने दो नाम प्रस्तावित नही होने दिया। अन्त मे एक ही नाम आया और वह श्रीकृष्ण बाबू का, जिसको लोगो ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।

पीछे इस बात से मुसलमानों मे—विशेषकर कॉंग्रेस के बाहर के मुसलमानो मे—कुछ कटुता बढी। उन लोगो ने अपनी यह राय भी जाहिर की कि डाक्टर महमूद केवल मुसलमान होने के कारण नेता नही बनाये गये—यद्यपि वह अखिल भारतीय कमिटी मे औरो के मुकाबले अधिक विख्यात थे और अधिक काम कर चुके थे। यह बात मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब तक पहुँचायी गयी। मै आज भी जब सब बातो पर विचार करता हूँ तो मुझे ऐसा नही मालूम होता कि डाक्टर साहब को नेता न बनाने मे मैंने कुछ भूल की। इसका अर्थ यह नही है कि उनके प्रति मेरा वह प्रेम और आदर नही है जो श्रीकृष्ण बाबू के प्रति है। मै उनके गुणो का कायल हूँ। पर जब ऐसा समय आ जाता है कि दो या अधिक मित्रो मे से किसी एक को ही किसी स्थान के लिए देश की दृष्टि से चुनना पड़ता है, तो उनमे से

भी एक को निकाल लेना ही पडता है। पर यदि कोई यह कहे कि एक-एक करके वे सब बाते बता और सुझा दी जायँ जिनके कारण 'क' लिया गया और 'ख' नही, तो यह असभव नही तो कठिन अवश्य है। यह कठिनाई इस कारण से नही होती कि हम सब बाते किसी के सम्बन्ध मे कहना नही चाहते। मेरा अनुभव ह कि ऐसे मामलो मे सब सोच-विचार करके आदमी एक निश्चय पर पहुँचता है और उसके सब कारणो को वह स्वय भी इतना नही जानता कि स्पष्ट रूप से सबके सामने उन्हे रख सके—तब भी उसके अपने हृदय मे सन्तोष रहता है कि वह ठीक कर रहा है। यही बात यहाँ भी है। मुझे इस बात का सन्तोष है कि जब पीछे यह बात शिकायत के रूप मे मौलाना अबुल कलाम आजाद के सामने रखी गयी तो उन्होने शिकायत करनेवालो से यही कहा कि यदि वह मेरे स्थान पर होते तो वह भी सब विचार करके शायद वही फैसला करते जो मैंने किया था।

बिहार मे यह पहला मरहला इस तरह से खूबी के साथ तय हो गया। पर सभी सूबो मे ऐसा नही हुआ। कई जगहो मे, जैसे मध्यप्रदेश और उडीसा मे, आपस मे काफी मनोमालिन्य हो गया जिसका नतीजा पीछे मालूम हुआ जब आपस की दलबन्दियाँ फूटकर निकल आयी। युक्तप्रान्त में शायद किसी किस्म का मतभेद न हुआ। बम्बई मे एक ऐसे सज्जन नेता बनाये गये जिनके चरित्र और योग्यता के बारे मे तो किसी को सन्देह न था, पर जो वहाँ के अधिक विख्यात लोगो मे नही थे। यह थे बाला साहब खेर। यह हमेशा अपने को पीछे रखा करते थे। यद्यपि विचार के पक्के और काम मे निपुण थे तथापि इनको बाहर के लोग कम ही जानते थे। इसका एक घटना से प्रमाण मिलता है। फैजपुर-कांग्रेस के समय इनके जिम्मे स्टेशन पर कॉग्रेस-यात्रियो से मिलने और उनका स्वागत करने का काम था। वहाँ भी जो लोग इनको पहले से नही जानते थे वे शायद ही जान सके कि बम्बई-सूबे के भावी प्रधान मत्री—वह भी एक अत्यन्त सफल और कार्यदक्ष प्रधान मत्री—उनका स्वागत कर रहे हैं, उनके असबाब को गाडियो पर लदवा रहे है अथवा खुद आगे बढकर उनको गाडियो पर सवार करा रहे है। युक्तप्रदेश मे भी प० गोविन्दवल्लभ पत को सभी जानते और चाहते थे। केन्द्रीय असम्बली मे उन्होने जिस तरह काम किया था उससे वहाँ या दूसरे सूबो के लोगो के दिल मे यह खयाल ही नही उठ सकता था कि उनके सिवा वहाँ कोई दूसरा इस पद पर चुना जा सकता है। यही बात मद्रास-प्रान्त के मत्री श्री राजगोपालाचारी के सम्बन्ध मे थी।

गवर्नरो ने अपने-अपने सूबे मे, जहाँ कॉग्रेस का बहुमत था अथवा जहाँ सबसे बडा दल कॉंग्रेसियो का था, कॉग्रेस-पार्टी के नेता को बुलाया और विधानानुसार उनको मत्रिमण्डल बनाने मे सहायता देने को कहा। उन नेताओ ने अपनी ओर से वही बात पेश की जिसका आदेश अखिल भारतीय कमिटी से उनको मिला था। गवर्नर कही भी इस बात पर राजी नही हुए कि वे अपने विशेष और सुरक्षित अधिकारो को काम मे नही लावेगे। उनका कहना था कि विधान के बदलने का अधिकार उनको

नहीं था और वे उसे इस तरह वादा करके परोक्ष रीति से नहीं बदल सकते। जहाँ तक मुझे मालूम है, सबसे पहले मद्रास के गवर्नर ने ही राजाजी को बुलाया। जो बात वहाँ हो गयी वही सभी जगहों में दुहरायी गयी। वहाँ की खबर अखबारों में छप गयी कि राजाजी ने गवर्नर के इनकार करने पर मन्त्रिमण्डल बनाने से इनकार किया। यही सब जगहों में हुआ।

पर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने इस तरह से इस विधान को, जिसके बनाने में उसने कई साल लगाये थे और जिसके सम्बन्ध में इतना प्रचार किया गया था, जन्म लेने के पहले ही मरने देना पसन्द नहीं किया। उसके कर्मचारियों के हृदय में शायद आशा लगी थी कि काँग्रेसवाले मन्त्रिपद के लोभ का संवरण नहीं कर सकेंगे, इसलिए अगर १ अप्रैल को नहीं तो कुछ दिनों में उनमें फूट डालकर पीछे उनका बहुमत इधर-उधर कर दिया जा सकेगा। इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे जिस तरह से हो, जिस-किसी का हो, चन्द दिनों के लिए ही सही, असेम्बली के बहुमत के विरुद्ध ही क्यों न हो मन्त्रिमण्डल बन जाना चाहिए—किसी न किसी को प्रधान मन्त्री और उसके साथ कुछ औरों को जुटाकर १ अप्रैल को मन्त्रिमण्डल के नाम अवश्य प्रकाशित करा देने चाहिए। अब यही कोशिश सभी सूबों में होने लगी। किन्तु यह काँग्रेस के लिए बड़े गौरव की बात रही कि किसी भी सूबे में एक भी काँग्रेसी ऐसा न मिला जो इस चकमे में आकर मन्त्रिपद स्वीकार करे। इसलिए, काँग्रेस के बाहर के लोगों में से ही कुछ लोगों को नियुक्त करना अत्यावश्यक हो गया। गवर्नर ऐसा कर भी सकते थे, क्योंकि विधान के अनुसार, छः महीनों तक, असेम्बली की बैठक कराये बिना भी शासन का काम, गवर्नर की अनुमति और उनके बजट मंजूर कर देने से चल सकता था। उन्होंने इसी आशा से सभी जगहों में मन्त्रिमण्डल बना दिये कि इन पाँच-छः महीनों में शायद हवा बदल जाय—शायद काँग्रेसियों का कुछ दाव बदल जाय।

बिहार-सूबे में गवर्नर ने यह काम मि० मुहम्मद यूनुस को सुपुर्द किया। यह सज्जन मुसलमानों की इण्डिपेण्डेण्ट-पार्टी की ओर से चुने गये थे जिसके प्रमुख सहायक थे मौलाना अबुल महासिन मुहम्मद सज्जाद। मौलाना सज्जाद जमीयत-उलेमा के प्रमुख व्यक्ति थे। समझा जाता था कि काँग्रेस के साथ उनकी पूरी हमदर्दी है। चुनाव में भी उनसे यदि सुलह नहीं तो कोई झगड़ा भी नहीं हुआ था। कितने ही काँग्रेसी मुसलमानों ने उनकी पार्टी से इसलिए अपने नाम लिखाये थे कि वे उस तरह आसानी से चुने जा सकेंगे—विशेषकर जब वे यह समझते थे कि काँग्रेस की नीति से मौलाना सज्जाद बहुलांश में सहमत हैं। पर इस मौके पर मौलाना चूके। उन्होंने अपनी पार्टी से निश्चय किया कि वह मन्त्रिमण्डल बनाये। मालूम नहीं कि वहाँ क्या बातें हुईं। तरह-तरह की बातें उस समय की हवा में थीं। कुछ लोग कहते थे, काँग्रेसी विचारवाले मुसलमानों ने विरोध किया पर उनकी संख्या औरों के मुकाबले एक या दो घटती थी। कुछ लोग कहते थे पार्टी को आखिरी फैसला देने का मौका

ही नही मिला, क्योकि जब एक जगह मे बैठकर पार्टी इस विषय पर विचार कर रही थी कि वह मन्त्रिमण्डल बनावे या न बनावे तब मि० युनुस गवर्नर के पास जाकर वादा कर आये कि वह मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार है तथा गवर्नर के कहने पर उन्होने मन्त्रियो के नाम भी दे दिये, जिनको गवर्नर ने मजूर कर लिया, और तब उन्होने आकर पार्टी की सभा मे—जो उनका इनजार कर रही थी—यह खबर दी कि मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति हो गयी। पार्टी इसके बाद कुछ न बोल सकी—शायद उसने भी अब इस विषय पर कुछ कहना फजूल समझा। मालूम नहीं, सच क्या है।

इस सम्बन्ध मे बिहार मे एक बडी बात हो गयी। हमको खबर मिली कि मि० युनुस कॉग्रेस के दूसरे मेम्बरो को तो नही फोड सके है, पर वह हरिजन-मेम्बर पर बहुत जोर डाल रहे है और उन्होने श्री जगजीवनराम को मन्त्रिमण्डल मे एक स्थान देना मजूर किया है। यह भी खबर लगी कि वह श्री जगजीवनराम को साथ लेकर गवर्नर के पास गये भी है अथवा कही अन्यत्र उनसे बाते करने के लिए उन्हे ले गये है। सब लोग कुछ चिन्तित होने लगे कि शायद एक कॉग्रेसी आदमी को भी फोडने मे वह सफल न हो जायँ। पर मुझे इस बात की चिन्ता नही थी, क्योकि मुझे पहले ही खबर मिल चुकी थी कि मि० युनुस की कोशिश जरूर है, मगर श्री जगजीवनराम इस तरह बहकावे मे आनेवाले नही है। अन्त मे ऐसा ही हुआ। मन्त्रिमण्डल बना, पर उसमे शामिल होने से श्री जगजीवनराम ने साफ इनकार कर दिया—कोई भी दूसरा कॉग्रेसी आदमी शरीक न हुआ। इस तरह यह पहला जबरदस्त प्रयत्न असफल रहा। मिनिस्ट्री बनने से हमे कई चिन्ता नही थी, क्योकि हम जानते थे कि छ महीनो के अन्दर या तो मिनिस्ट्री टूटेगी या विधान ही रद होगा या उसे बदलना पडेगा। कारण यह कि इतने अधिक बहुमत से कॉग्रेसी चुने गये है कि कोई दूसरी पार्टी या सभी दूसरे लोग मिलकर भी असम्बली मे कॉग्रेस का मुकाबला नही कर सकेंगे—यदि असम्बली और कौन्सिल दोनो का सयुक्त अधिवेशन भी हो, तो भी कॉग्रेस का ही बहुमत रहेगा। जिस दिन मिनिस्ट्री बनी उस दिन पटने मे कुछ लोगो ने मि० युनुस के विरुद्ध प्रदर्शन किया जिनमे मुख्य थे श्री जयप्रकाशनारायण। वह गिरफ्तार कर लिये गये। उन पर मुकदमा चलने के बाद उनको कुछ सजा भी मिली। पर पीछे मि० युनुस ने मीयाद पूरी होने के पहले ही उनको छोड दिया।

इसी तरह और सूबों मे भी मन्त्रिमण्डल बन गया। कम से कम यह दिखलाने के लिए हो गया कि नये विधान के अनुसार शासन होने लगा। पर यह बात गवर्नर लोग जानते थे और मन्त्री लोग भी कि यह चन्दरोजा तमाशा है। वे लोग इस प्रयत्न मे थे कि यदि वे फोडफाड कर बहुमत न बना सकेगे तो कोई न कोई रास्ता कॉग्रेस के साथ मेल करने का निकालना ही चाहिए। कॉग्रेस मे जो लोग मन्त्रिमण्डल बनाने के विरोधी थे, खुश थे कि किसी तरह कॉग्रेस तो इसमे नही पड़ी और उनकी अडगा-

नीति के काम में आने का अब भी मौका है। जो पक्ष में थे वे यह समझते थे कि आज नहीं तो चन्द दिनों के बाद कॉंग्रेसी मंत्री होंगे ही और जब होंगे तब गवर्नर के विशेषाधिकारों को स्थगित करा करके ही होंगे। इसलिए, इस समय, इस सम्बन्ध में, कॉंग्रेसी निश्चिन्त थे। मंत्रिमण्डल अपने को लोकप्रिय बनाने की फिक्र में था और गवर्नर लोग तथा वायसराय इस जिच्च के हल निकालने में लगे थे। गवर्नमेण्ट की ओर से जब-तब विज्ञप्तियाँ निकलतीं और कॉंग्रेस की ओर से उनको ना-काफी बताकर छोड़ दिया जाता।

तीन महीनों के बाद वायसराय ने एक विज्ञप्ति निकाली जिस पर वर्किंग कमिटी ने विचार करके कुछ और स्पष्टीकरण चाहा तथा कॉंग्रेस-पार्टी के नेताओं को आदेश दिया कि यदि वह स्पष्टीकरण उनको सन्तोषदायक मालूम हो तो वे मंत्रिपद ग्रहण कर सकते हैं। बात यह थी कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट यह बात साफ-साफ शब्दों में तो कह नहीं सकती थी कि विधान की कुछ धाराएँ उड़ा दी गयीं, क्योंकि उसको यह कहने का अधिकार भी नहीं था। पर उसने अपनी नीति घुमा-फिराकर बना दी कि अधिकार रखते हुए भी गवर्नर उनसे काम नहीं लेंगे। चूँकि यह बात स्पष्ट शब्दों में नहीं कही गयी थी, स्पष्टीकरण आवश्यक था। वर्किंग कमिटी के इस निश्चय के बाद मालूम हो गया कि अब शीघ्र ही फिर कॉंग्रेसी लोग मंत्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाये जायँगे!

इसी समय बिहार-प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन सारन-जिले के 'मसरक' गाँव में करने का निश्चय हुआ था। प्रोफेसर अब्दुल बारी इसके सभापति मनोनीत हुए थे। वहाँ हम सब गये और कान्फ्रेन्स का काम समाप्त करके छपरे पहुँचे। वहीं मालूम हुआ कि गवर्नर ने श्री बाबू को बुला भेजा है और एक चपरासी पत्र लेकर वहीं आकर उनसे मिला। वहाँ हम लोगों को मौका मिला कि मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध में हम कुछ बातें कर लें। पर अभी तक हम यही निश्चय कर सकते थे कि वर्किंग कमिटी के आदेशानुसार यदि स्पष्टीकरण संतोषजनक होता है तो हम मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार हैं—यदि गवर्नर मंत्रिमण्डल बनाने को कहें तो इसके लिए समय लेकर श्रीकृष्ण बाबू वापस आ जायँगे और तब हम लोग एकत्र बैठकर विचार कर लेंगे कि कौन-कौन मंत्रिमण्डल में लिये जायँ। छपरे में कुछ प्रारंभिक बातें हो गयीं। विचार-विनिमय भी हो गया जिसके आधार पर हम चन्द आदमी, जो वहाँ मिले थे, इस बीच में सोच सकेंगे।

मंत्रियों को चुनना कठिन समस्या थी। पहली बात तो यह थी कि कितने मंत्री हों। मेरा विचार था कि इसके पहले चार आदमी थे जो शासन के सारे काम को सँभालते थे और जो सभी विभागों की निगरानी कर लिया करते थे। इनमें दो तो गवर्नर के एकजिक्युटिव-कौन्सिल-मेम्बर हुआ करते थे और दो मिनिस्टर। इसलिए मैं समझता था कि जब इस नये विधान के पहले चार आदमी सब काम सँभाल लेते थे तो अब भी चार मंत्रियों को ही सब काम सँभाल लेना चाहिए। अधिक मंत्री बनाने

से खर्च अधिक होगा और कुछ ऐसा मालूम होगा कि ये लोग अपने लिए पद पाने की अभिलाषा से आये है तथा जितना हो सकता है उतने पद पैदा करके आपस मे बँटवारा कर रहे है। जहाँ-जहाँ मन्त्रिमडल पक्के तौर पर बना था, मन्त्रियो की सख्या अधिक रखी गयी थी और हमने इस बात पर कुछ टीका भी की थी। यद्यपि कॉंग्रेस के मन्त्रियो के लिए अखिल भारतीय कमिटी ने मकान और सवारी के अलावा ५००) मासिक नियत कर दिया था, और इस तरह खर्च बहुत कम हो जाता था, तो भी मै इस विचार मे दृढ था कि मन्त्रियो की सख्या अधिक न होनी चाहिए—विशेष-कर बिहार मे चार से अधिक की गुजाइश नही है। मुझे यह कह देना उचित मालूम होता है कि पीछे मैने देखा कि मेरा विचार गलत था, क्योकि हमारे सभी मत्री इस प्रकार के काम मे अभी नवसिखुए थे और पहले का कुछ विशेष अनुभव नही रखते थे। इसके अलावा हमारे मन्त्रियो को पहले के चलाये हुए ढर्रे पर ही काम नही करना था—लकीर नही पीटनी थी, उनको बहुतेरे नये प्रोग्राम चलाने थे, इसलिए उन प्रोग्रामो के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल करने और विचार निश्चित करने मे समय लगनेवाला था। अत कुछ दिनो के अनुभव के बाद मैंने सोचा कि शायद चार से अधिक मत्री रखना ही अच्छा होता। पर उस दिन मै अपने विचार मे दृढ था और सोचता था कि चार से अधिक मत्री रखना बिहार के लिए उचित न होगा।

इसके अलावा एक बात और थी जिसका कुछ न कुछ असर इस निश्चय पर पहुँचने मे जरूर पडता था। हम लोग सोच रहे थे कि प्रात मे कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्ति है जिनके सम्बन्ध मे किसी किस्म का मतभेद नही हो सकता, पर जब हम उनसे आगे बढते थे तो कुछ ऐसे लोग सामने आ जाते थे जिनमे से चुनाव करने मे—किनको लेना, किनको न लेना, यह निश्चय करने मे—काफी कठिनाई सामने आती थी। इसलिए भी विचार होता कि उन प्रमुख व्यक्तियो तक ही यदि हम अपना चुनाव परिमित रखे तो बुरा न होगा।

एक-दो और बातो का भी उल्लेख उचित होगा। इस विषय मे प्राय सभी सहमत हो गये थे कि एक हरिजन का मत्री बनना आवश्यक है। यदि और विचारो को छोड़ भी दिया जाय, तो भी उन्होने मि० यूनुस की बात न मानकर—बहुत बड़े प्रलोभन का लोभ सवरण करके—मन्त्रिपद के लिए अपना दावा साबित कर दिया है। इसलिए यह एक निर्विवाद बात सबके मन मे खुद-बखुद तय हो चुकी थी।

हजारीबाग के श्री रामनारायणसिंह चाहते थे कि छोटानागपुर की ओर से वहाँ का कोई मत्री अवश्य नियुक्त किया जाय। उनका कहना था कि सूबे का वह हिस्सा पिछड़ा हुआ माना जाता है और कॉंग्रेस भी उसकी ओर पूरा ध्यान नही देती। इसकी शिकायत वह हमसे मित्र-भाव से बराबर किया करते थे कि मै भी उस हिस्से पर काफी ध्यान नही देता हूँ। इसके समर्थन मे वह कहा करते थे कि मै वहाँ जाकर कभी कुछ दिनो के लिए नही रहता हूँ। मै भी उनसे मजाक मे

कहा करता था कि पिछले बीस-बाइस बरसो मे जितना मै एक साथ छोटानागपुर मे रहा हूँ उतना किसी दूसरे एक स्थान मे नही, क्योकि जेल-जीवन बराबर हजारीबाग मे ही काटना पडा है! यह मजाक के लिए तो ठीक उत्तर होता, पर उनको इससे सन्तोष नही हो पाता। इसलिए उन्होने जोर लगाया कि छोटानागपुर का भी एक मत्री अवश्य होना चाहिए। वह स्वय वहाँ के प्रमुख काम करनेवाले थे। उस समय वह केन्द्रीय असम्बली के मेम्बर थे। प्रान्तीय चुनाव के समय वह प्रान्तीय असम्वली के लिए खडे नही हुए थे। इसलिए, यदि वह मत्री बनाये जाते तो इसका यह अर्थ होता कि कही जगह खाली करके उनके स्थान पर कुछ दिनो के अन्दर प्रान्तीय असम्बली का मेम्बर भी बनवाना पडता। जो चुने हुए कॉग्रेसी लोग थे, वे इसे बहुत बुरा मानते, क्योकि वे यह मानते और ठीक ही मानते कि उनमे कोई इस पद के योग्य नही समझा गया, इसलिए चुने हुए लोगो को छोडकर बाहर से एक आदमी लेना पडा है। इन विचारो से उनको मन्त्रिमण्डल मे लेना असभव हो गया। इससे वह बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होने मेरे पास कई पत्र भी भेजे जिनका मैने उत्तर तो दिया, पर शायद उन्हे सन्तोष न दे सका। सार्वजनिक जीवन मे ऐसा कभी-कभी करना पडता है। मुझ-जैसे आदमी के लिए, जिसे किसी के साथ कटुता पैदा करने मे बहुत दु ख होता है, ऐसा अनचाहा काम भारी मुश्किल पेश कर देता है। पर कर्त्तव्य की दृष्टि से आज भी मै समझता हूँ कि इस सम्बन्ध मे मेरा जो निश्चय हुआ वह ठीक ही हुआ।

अन्त मे, हमको एक और कठिनाई सुलझानी थी। हरिजनो मे दो प्रमुख कॉग्रेसी थे—एक श्री जगलाल चौधरी, जो १९२० मे कलकत्ता-मेडिकल-कालेज के अन्तिम दर्जे मे पढ रहे थे और कुछ महीनो मे ही एम० बी० पास करके डाक्टर हो जानेवाले थे, पर कॉग्रेस की पुकार पर परीक्षा छोडकर तब से बराबर एकचित्त हो कॉग्रेस की सेवा मे, विशेषत रचनात्मक काम मे, लगे रहे—सत्याग्रह मे भी भाग लेकर जेल-यात्रा कर आये थे, दूसरे श्री जगजीवनराम, जो बडे उत्साही और सुयोग्य कार्यकर्त्ता थे, थोडे दिनो से ही कॉग्रेस का काम करने पर भी काफी प्रभाव रखते थे और मि० यूनुस की दी हुई मिनिस्ट्री ठुकरा चुके थे। सब बातो पर बहुत सोचने के बाद हमने श्री जगलाल चौधरी को ही मत्री और श्री जगजीवनराम को पारलेमेण्टरी सेक्रेटरी बनाने का निश्चय किया।

११९—कॉंग्रेसी मंत्रिमण्डलों का निर्माण

इस तरह, हमने निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्णसिंह प्रधान मत्री हो। उनके साथ डाक्टर सैयद महमूद, श्री अनुग्रहनारायणसिंह और श्री जगलाल चौधरी मत्री हो तथा चार मत्रियो के साथ आठ पारलेमेण्टरी सेक्रेटरी हो। श्री रामदयालुसिंह स्पीकर मुकर्रर हो ही चुके थे और प्रो० अब्दुल बारी डिपुटी-स्पीकर। पारलेमेण्टरी सेक्रेटरियो मे श्री कृष्णवल्लभसहाय, श्री शार्ङ्गधरसिंह, श्री जीमूतवाहन सेन, श्री

विनोदानद झा, श्री शिवनन्दन मडल, श्री जगजीवनराम और श्री सदीदुल हक नियुक्त किये गये। उस समय मैंने समझा कि ये नियुक्तियाँ ठीक की गयी थी और पीछे भी मुझे अपनी राय बदलने का मौका न हुआ—यद्यपि कुछ लोगो का विचार था कि इससे बेहतर चुनाव हो सकते थे। जहाँ तक मैं समझ सका, सभी मन्त्रियो की भी इस बात मे मेरे साथ सहमति थी।

मै दो बातो का कहना भूल गया—यद्यपि उनको पहले ही कहना चाहता था। एक बात का सम्बन्ध था प्रान्तीय लेजिसलेटिव-कौन्सिल के चुनाव के साथ और दूसरी बात थी असम्बली के सभापति या स्पीकर के चुनाव की। कौन्सिल के मत-दाता अधिकतर ऐसे ही लोग है जो धनी-वर्ग के है, अर्थात् जिनमे जमीन्दारी का अधिक माल देनेवालो अथवा काफी इनकम-टैक्स देनेवालो की ही सख्या ज्यादा है। इसलिए हमको जैसे जमीन्दारी की जगहो के चुनाव मे जीतने की आशा नही थी वैसे ही इन जगहो के जीतने मे भी कम आशा थी। पर इसमे दो तरह से सदस्य चुने जाते है—कुछ तो ऐसे होते है जो मतदाता द्वारा चुने जाते है और कुछ असम्बली के मेम्बरो द्वारा। असम्बली द्वारा चुने जानेवाले लोगो मे तो कांग्रेसी लोग काफी लोगो को चुन ले सकते थे, पर मतदाताओ मे उनके उतने अधिक मददगार शायद नही थे। इसलिए हमने पहले से ही सोच रखा था कि हम सभी जगहो के लिए उमीदवार नही खडे करेगे। पर जो चन्द जगहे मिल सकती थी, उनके लिए हमने खडे किये और जीते भी, पर हमारी शक्ति असम्बली द्वारा ही प्रदर्शित हो सकती थी।

स्पीकर का चुनाव करने के लिए एक दिन असम्बली की बैठक हुई। उस दिन के लिए गवर्नर ने श्री सच्चिदानन्दसिह को सभापति नियुक्त कर दिया था। मै भी उसी एक दिन असम्बली मे गया। उसके पहले कभी बिहार-असम्बली मे नही गया था। उसके बाद भी फिर कभी जाने का सुअवसर नही मिला। खैर, श्री रामदयालुसिह चुने गये। चुनाव के बाद श्री सच्चिदानन्दसिह ने एक मजेदार भाषण किया जिसमे उन्होने रामदयालु बाबू का स्वागत करते हुए मेरे एक भाषण का उद्धरण दिया था। उस उद्धरण मे कहा गया था कि जो उमीदवार कॉग्रेस की तरफ से चुने जाते है वे तो कॉग्रेस के नियत्रण मे और उसकी नीतियो तथा नियमो के बन्धन मे रहेगे, पर जो स्वतन्त्र रूप से चुने जाने के लिए खडे हुए है वे छुट्टे सॉड है जिन पर किसी प्रकार का बधन अथवा नियन्त्रण नही है। मेरे इसी वाक्य को लेकर उन्होने बडा मजाक किया था।

इस तरह मिनिस्ट्री मुकर्रर हो गयी। मैने नियक्ति के दिन ही मन्त्रियो से कहा कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि कुछ दिनो तक सभी मत्री एक ही साथ रहे, यदि ऐसा न हो सके तो किसी न किसी बहाने वे प्रतिदिन आपस मे मिलकर अपने सभी विभागो के सम्बन्ध मे बे-जाब्ता तरीके पर विचार-विनिमय कर लिया करे, इस तरह सभी विभागो के काम से सबका परिचय रहेगा और सभी को

किसी भी महत्त्वपूर्ण निश्चय पर पहुँचने के पहले दूसरो के विचारो एवं अनुभवो का लाभ मिल जायगा—विशेषकर जब कभी कोई महत्त्वपूर्ण विषय उपस्थित हो अथवा किसी विशेष स्थान के लिए कोई नई नियुक्ति करनी हो तो वे आपस मे जरूर विचार-विमर्श कर लिया करे। यह इसलिए भी आवश्यक था कि अभी इस तरह के काम मे सभी अनुभवहीन थे और सबके लिए यह आवश्यक था कि हमेशा चौकन्ने रहकर एक दूसरे के अनुभवो से लाभ उठाते रहे। पर खेद है कि ऐसा हो नही सका। पीछे मालूम हुआ कि सब मन्त्रियों को अपने विभाग के सिवा दूसरे विभागो की सभी बातो की जानकारी नही रहती थी। इससे कही-कही कुछ शिकायते भी पैदा हो गयी। बम्बई मे श्री खेर ने इस नीति को शुरू से ही बर्ता। वहाँ के मत्री प्राय प्रतिदिन एकत्र मिल लिया करते और इस प्रकार एक दूसरे की कार्रवाइयो से पूरी तरह परिचित रहते। युक्तप्रदेश और मद्रास मे तो श्री गोविन्दवल्लभ पन्त और श्री राजगोपालाचारी का ऐसा व्यक्तित्व ही था कि वे स्वय मन्त्रियो की कार्रवाइयो से अपने को पूरी तरह परिचित रखते; इस तरह वहाँ भी ठीक काम चलता रहा।

मुझे मिनिस्ट्री के सिलसिले मे उड़ीसा भी जाना पड़ा। वहाँ पार्टी के नेता के चुनाव के समय आपस का मतभेद मालूम हुआ था। यह बात पारलेमेण्टरी कमिटी तक आयी थी। प० नीलकण्ठदास उडीसा के प्रमुख व्यक्तियो मे है। १९२१ से ही उन्होने कांग्रेस मे बहुत काम किया था। वह स्वर्गीय प० गोपबन्धुदास के सहकर्मियो मे से थे। १९३०-३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे हम लोगों के साथ ही हजारीबाग जेल मे थे। उन दिनो भी उनकी राय मालूम होती थी कि जो नया विधान बने उसमे कांग्रेस को मन्त्रिपद स्वीकार करना चाहिए। जब १९३४ मे केन्द्रीय असम्बली के लिए चुनाव हुआ तो वह उडीसा के क्षेत्र से कांग्रेसी सदस्य चुने गये थे। १९३७ मे नये विधान के अनुसार, जब बिहार से उडीसा अलग हो चुका था, उसकी असम्बली के लिए सदस्यो का चुनाव हुआ तो वह स्वय किसी क्षेत्र से प्रान्तीय असम्बली के लिए खडे नही हुए। पर जब कांग्रेस का बहुमत हो गया और यह मालूम हो गया कि जब कभी कांग्रेस मन्त्रिपद लेगी तो असम्बली का नेता ही प्रधान मत्री होगा, तब उन्होने वहाँ के मेम्बरो से नेता चुने जाने की इच्छा प्रकट की। प्रान्तीय चुनाव मे उन्होने परिश्रम भी किया था। उस चुनाव की सफलता मे उनका हाथ था। पर वहाँ के सदस्यो के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि किसी ऐसे आदमी को, जो असम्बली का सदस्य नही था, असम्बली-पार्टी का नेता वे कैसे चुने। असम्बली-पार्टी के नेता को असम्बली मे हाजिर रहना चाहिए। वहाँ रहकर ही वह अपना काम पूरा कर सकता है। इसके अलावा, यदि गवर्नर बुलावेगा तो वह असम्बली के किसी सदस्य को ही बुलाना चाहेगा, और किसी बाहर के व्यक्ति को बुलाने मे उसे दिक्कत होगी। यह दूसरी बात है कि बाहर का आदमी भी इस शर्त पर मिनिस्टर हो सकता है कि छ महीनो के अन्दर वह कही से सदस्य चुना जायगा। पर प०

नीलकण्ठदास केवल मंत्री होना नही चाहते थे। वह प्रधान मत्री ही हो सकते थे; क्योकि वही पद उनके योग्य था। पारलेमेण्टरी कमिटी की राय हुई थी कि मेम्बरो मे से ही कोई नेता चुना जा सकता है। इसलिए श्री विश्वनाथदास ही नेता चुने गये, जो ब्रह्मपुर-जिले के रहनेवाले है और जो पहले मद्रास-असम्वली के मेम्बर रह चुके थे जब उनका यह जिला मद्रास-प्रान्त का भाग था।

मुझे इसलिए जाना पडा कि वहाँ आपस के इन झगडो से कुछ मतभेद होने का भय था। मै वहाँ गया। सबसे नाजुक प्रश्न यह उठा कि मुसलमानो मे मत्री कौन बनाया जाय। वहाँ की असम्बली मे मुसलमानो की सख्या बहुत थोडी है। जो चन्दरोजा मिनिस्ट्री बनी थी उसमे एक मुसलमान सज्जन मिनिस्टर थे। दूसरा कोई ऐसा व्यक्ति नही नजर आया जो कांग्रेस की ओर से चुना गया हो और मिनिस्टर का काम कर सकता हो। जो ऐसे व्यक्ति थे, जिनमे काम चलाने की योग्यता थी, कांग्रेस-टिकट पर चुने नही गये थे और अब भी कांग्रेस मे शरीक होने के लिए तैयार न थे। मै दो या तीन दिनो तक कटक मे ठहरा रहा। इस बात की पूरी कोशिश हुई कि कोई उपयुक्त मुसलमान मत्री बनाया जाय, पर इसमे सफलता नही हुई। अन्त मे, बिना किसी मुसलमान के ही उस समय मत्रिमण्डल बना दिया गया, पर इस बात का अतिम निर्णय पीछे मौलाना आजाद से पूछ करके करने पर छोड दिया गया।

युक्त-प्रदेश मे भी मुसलमान मिनिस्टर के सम्बन्ध मे दिक्कत थी, क्योकि वहाँ भी कांग्रेस-टिकट पर एक ही दो मुसलमान चुने गये थे, दूसरे लोग स्वतन्त्र रूप से चुने गये थे। मौलाना आजाद ने वहाँ के सम्बन्ध मे बाते की थी। कुछ मुसलमान—जो कांग्रेस से सहानुभूति रखते थे, पर कांग्रेस की ओर से चुने नही गये थे—मौलाना के साथ कुछ समझौते के लिए तैयार थे। यदि वह समझौता हो गया होता, तो शायद जो झगडा लीग के साथ उठ खडा हुआ वह नही होता। पर उस समय प्रान्त के प्रमुख कांग्रेसी इस बात पर राजी नही हुए। मौलाना को भी वहाँ ठहरने का पूरा समय न मिला—बम्बई चला जाना पडा। इसलिए वहाँ के मत्रिमडल मे एक कांग्रेसी मुसलमान श्री रफी अहमद किदवई और—दूसरे जो कांग्रेस-टिकट पर नही चुने गये थे—हाफिज अहमद इब्राहिम मिनिस्टर बनाये गये। यहाँ यह कह देना उचित है कि हाफिज साहब ने असम्बली से इस्तीफा दे दिया और फिर कांग्रेस-टिकट पर चुन लिये गये। बम्बई की दिक्कत मौलाना की राय से तय हो गयी और मिस्टर नूरी मिनिस्टर बने। इसी तरह मध्यप्रदेश मे भी मिस्टर शरीफ मिनिस्टर हुए।

मुसलमान-मिनिस्टरो के सम्बन्ध मे इतना लिखना इसलिए आवश्यक हो गया कि पीछे चलकर मुस्लिम लीग ने इस विषय को लेकर बहुत हो-हल्ला मचाया। उस समय तक कांग्रेसी और दूसरे लोग, चुनावो मे तथा विधान के अनुसार बनी हुई मिनिस्ट्रियो मे, इँगलैड के मत्रिमडल-जैसा ही चित्र देख रहे थे। वे लोग वहाँ की रीति-नीति के अनुसार ही यहाँ के मत्रिमडल का भी सगठन और उसकी कार्रवाइयाँ

करना चाहते थे। इसी कारण सभी सगठित दलो ने अपने-अपने उमीदवार खडे किये थे। चुनाव के समय कुछ नये दल भी वने थे, जैसे विहार की इण्डिपेण्डेण्ट-पार्टी। चुनाव के वाद जव एक पार्टी—काँग्रेस का वहुमत कई सूवो मे जवरदस्त हो गया तो उसको अपने दल के वाहर से किसी को मत्री वनाने की वात इस प्रकार की विवान-कार्य-प्रणाली के विरुद्ध मालूम हुई। साथ ही, काँग्रेस-दल मे भी मुसलमान थे। उनको छोडकर वाहर जाना उनके प्रति अन्याय होता था। चुनाव तक मुस्लिम-लीग का कुछ वैसा जोर भी नही था। वहुत कम जगहो के लिए मुस्लिम-लीग ने उमीदवार खडे किये थे। जहाँ उसके उमीदवार खडे हुए, वहुत सफल भी नही हुए थे। इस कारण, मुस्लिम-लीग के लिए, मत्री वनाना, प्राय सभी जगहो मे, जहाँ काँग्रेस का वहुमत था, अवैव होता। काँग्रेस ने एक घोषणा-पत्र के अनुसार चुनाव को लडकर जीता था। उसके अनुसार काम करना उसका कर्त्तव्य था। उसी के सभी मेम्वरो ने सौगन्द ली थी कि उसके आज्ञानुसार वे काम करेंगे और जव आज्ञा होगी तब पद-त्याग कर देंगे।

काँग्रेस के पास पद-त्याग का एक अस्त्र था जिसके द्वारा वह, वैध रीति से मतभेद होने पर, गवर्नर को दवा सकती थी। यदि वह किसी गैर-काँग्रेसी को, विना इन शर्तों को कवूल कराये, मत्री वना देती तो उसके हाथ मे कोई दूसरा शस्त्र रह ही नही जाता जिसके द्वारा गवर्नर पर वह अपना प्रभाव जता सकती। वैधानिक मत्रि-मडल मे सभी की समान जवावदेही मानी जाती है, जिसका अर्थ यह होता है कि चाहे किसी भी मत्री ने कोई भी काम किया हो उसकी जवावदेही उसके सभी साथियो पर है। इस तरह सभी एक दूसरे की मदद करते हैं और एक दूसरे की कारवाइयो पर अकुश भी रखते हैं। यदि मतभेद हो गया तो जो वहुमत से अलग राय रखता है उसे हट जाना पडता है। यदि दो सस्थाओ की आज्ञाओ को मानने के लिए वाध्य अथवा वचनवद्ध मत्री कही किसी मत्रिमडल मे हो, और उन दोनो सस्थाओं ने एक साथ मिलकर काम करने का निश्चय और प्रवन्ध न कर लिया हो, तो हो सकता है कि दोनो सस्थाओ की विरोवी आज्ञाएँ आवे और मत्री लोग अपनी-अपनी सस्था की आज्ञा का पालन करे, तो मत्रिमडल की कारवाइयो मे ही विरोध पैदा हो जाय। इसलिए, यह आवश्यक था कि मत्रिमडल के सभी मत्री किसी एक ही सस्था के हुक्म मानने के लिए वाध्य या वचनवद्ध हो, अथवा आपस मे कम से कम कुछ ऐसा समझौता हो जिससे इस प्रकार के विरोधी कार्यक्रम उपस्थित न हो सके, और अगर हो भी तो उनका निपटारा शीघ्रता और विना कटुता के हो जाय। जव किसी धारा-सभा मे, जहाँ इस तरह का वैधानिक मत्रिमडल काम करता हो, किसी एक दल का वहुमत नही होता और मत्रिमण्डल एक से अधिक दलो मे से लिये हुए लोगो से वनता है, तव वहाँ पहले से उन दलों मे वातचीत करके इसके लिए रास्ता तय कर लिया जाता है। फिर जव कभी मतभेद हुआ तो जिस दल के मत्री मे मतभेद होता है वह मत्रिमडल से अपने मत्री को हटा लेता है और दूसरे मत्रियो को अपने दल की सहायता से वचित कर देता

है। यहाँ पर यह बात इसलिए नही हुई कि यहाँ कॉंग्रेस का इतना बडा बहुमत था कि और सभी दल यदि एक साथ मिलते तो भी कॉंग्रेस अकेले ही उन सबसे कही अधिक सदस्यो को अपनी तरफ से खडा कर सकती और सबको अकेले ही वोट मे हरा देती। यहाँ किसी दूसरे दल के साथ समझौते का प्रश्न उठता ही नही था। तो भी जहाँ तक मुसलमानो का सवाल था, हमने प्रयत्न किया कि दूसरे दल के मुसलमानो के साथ हम समझौता कर ले, पर हुआ नही।

हमने उस समय समझा था और आज भी मेरी वही राय है कि वैधानिक विचार से कॉंग्रेस ने कोई गलती नही की। हाँ, यह दूसरी बात है कि उसको इँगलैंड के विधान का अनुसरण नही करना चाहिए था और जो प्रजातन्त्र के प्रचलित नियम तथा रीति-नीति है उनसे अलग अपना नियम और अपनी रीति-नीति बनानी चाहिए थी। किसी ने उस समय इस तरह की बात कही भी नही और मै नही जानता कि मुस्लिम-लीग के सिवा आज भी कोई विचार-शील व्यक्ति अथवा सस्था है जो यह कहे कि भारतवर्ष मे प्रजातन्त्र नही चल सकता और नही चलना चाहिए। यदि प्रजातन्त्र न चलना हो तो देश कोई दूसरा विधान, जो उचित समझे, बनावे। पर जब तक प्रचलित प्रजातन्त्रो के रास्ते पर हमको चलना है, उस प्रजातन्त्र के नियमो और रीति-नीति से हम अपने को-अलग नही कर सकते। मै यह भी मानता हूँ कि देश कभी प्रजातन्त्र को छोड किसी अन्य प्रकार के विधान को मानेगा और इसमे, मै मानता हूँ, हिन्दू और मुसलमान तथा सभी दूसरे लोग सहमत होगे। प्रजातन्त्र छोडने का अर्थ होता है किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक गुट के हाथो मे भारत के भाग्य का निर्णय सौप देना—भारत के शासन की बागडोर दे देना। मै नही मानता कि मुसलमान भी यह चाहते है कि जनता के हाथो मे अधिकार न देकर किसी एक व्यक्ति वा गुट के- हाथो मे दे दिया जाय। दूसरे किसी की ओर से किसी सस्था ने आज तक इस तरह की बात कही भी नही है कि भारत मे प्रजातन्त्र नही होना चाहिए और नही चल सकता है। यह थोडे दिनो से केवल मुस्लिम-लीग ने कहा है, और वह भी पूरे भारतवर्ष के लिए ही, केवल उसके सूबो के ही लिए नही, क्योकि जब से पाकिस्तान की बात उठायी गयी है तब से उसमे भी यह बात नही कही गयी है कि पाकिस्तान मे अथवा उस दूसरे हिस्से मे—जिसे लीग के लोग हिन्दुस्तान कहते है—प्रजातन्त्र से अलग कोई दूसरा शासन-विधान होगा। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, दोनो मे वहाँ की जनता द्वारा मनोनीत सदस्य ही शासन करेगे—कोई एक व्यक्ति अथवा गुट नही। जो हो, मन्त्रिमडल बनने के बाद—सच पूछिए तो कॉंग्रेस-मन्त्रिमडल के इस्तीफा के बाद—इस तरह की बाते अधिक होने लगी है।

ठीक जुलाई १९३७ मे तो नही—जब और सूबो मे चन्दरोजा मन्त्रिमडलो ने इस्तीफे दे दिये और कॉंग्रेसी मन्त्रिमडल बन गये, पर उसके कुछ बाद, सीमा-प्रान्त मे भी, वहाँ के मन्त्रिमडल को इस्तीफा देना पडा। उस सूबे मे, चुनाव के समय, कॉंग्रेस-दल के लोग ही सबसे अधिक चुने गये थे, पर उनकी सख्या इतनी ज्यादा नही थी—जैसा

दूसरे सूबो मे हुआ था—कि वह अकेले ही और सभी दलो को वोट मे हरा दे। इसलिए वहाँ का मत्रिमडल और लोगो को मिलाकर कुछ देर तक चलता रहा, पर वह भी देर तक टिक न सका—उसे असम्बली की बैठक के बाद इस्तीफा देना पडा। दूसरे सूबो मे असम्बली की बैठक के पहले ही चन्दरोजा मत्रिमडलो ने इस्तीफे दे दिये। मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ मुझे वहाँ भी जाना पडा और वहाँ के मत्रिमडल के सगठन मे मदद करनी पडी। इसमे कुछ अधिक कठिनाई नही पडी। जो कुछ करना था, मौलाना साहब ने ही किया। सबसे बडी बात यह थी कि डाक्टर खाँ साहब और खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ के रहते कुछ अधिक करने की जरूरत ही नही थी। मैने त। इस अवसर को उस सूबे मे जाने के लिए एक बहानामात्र मान"।

१२०—सीमा-प्रान्त का सफर

सरहदी सूबे मे मेरे जाने का यह पहला ही अवसर था। हम लोग पहले सीधे अबटाबाद गये जहाँ उन दिनो गवर्नर रहते थे और जहाँ मत्रिमडल बनने की बाते हो रही थी। यह एक पहाडी स्थान है जहाँ गर्मियो के कारण वहाँ की असम्बली की बैठक होती है। जाने के समय वहाँ पहुँचने पर बाजाब्ता जलूस की तैयारी थी। मौलाना साहब तो जलूस मे शरीक नही हुए—मुझे होना पडा। पर रास्ते मे ही पानी जोरो से बरसने लगा। हम ,सब भीग गये। जलूस भी तितर-बितर हो गया। मत्रिमडल के सगठन का काम पूरा करके हम लोग चन्द जगहों मे चले गये। मानसेहरा एक जगह है जो पहाड पर है और जहाँ पर डाक-बँगले से चारों ओर का बहुत ही सुन्दर दृश्य देखने मे आता है। हम लोग वहाँ थोडी देर के लिए गये। वहाँ से हम पेशावर आये। फिर खाँ साहब के गाँव 'उत्मानजई' मे, चरसदा होते हुए, गये। उनके बँगले पर कुछ देर तक ठहरे। वहाँ से आजाद इलाके को देखते हुए फिर पेशावर लौटे। दूसरे दिन हम दूसरी तरफ एक चक्कर लगा आये। फिर खैबर की घाटी पार करके अफगानिस्तान की सरहद तक पहुँचे जहाँ ब्रिटिश-सरकार और अफगान-सरकार के सन्तरी अपनी-अपनी सरहद पर डटे पहरा देते रहते है। खैबर की घाटी एक विचित्र सौन्दर्य से पूर्ण घाटी है—यो तो पहाड बिलकुल बिना घास-पात और पेड-पौधे के है, गर्मियो मे मानो आग-से जलते रहते है; पर पहाडों के बीच होकर रास्ता बहुत ही सुन्दर और सुहावना मालूम होता है।

तमाम घाटी-भर मे, जो कई मील लम्बी है, बचाव के लिए फौजी प्रबन्ध है। एक बडा किला बीच मे है और एक जमसद मे जहाँ घाटी आरम्भ होती है। सडक के पास ही पास रेल भी चलती है जिसके बनाने मे बहुत बुद्धि, कौशल और पैसे लगे होगे। सारी घाटी मे, सड़क को छोडकर, ब्रिटिश की कोई चीज नही है। सुना कि केवल सडक और उसके आसपास दोनो ओर की कुछ फुट चौडी जमीन ही ब्रिटिश की है तथा पास की आबादी सारी की सारी आजाद कौमो की है जो अपने स्थान पर स्वतन्त्र है। उस आजाद इलाके मे ब्रिटिश कानून नही चलता। इसलिए सड़क से चन्द फुट

बाहर यदि कोई वाकया हो जाय तो उसकी जाँच ब्रिटिश अधिकारी नही कर सकते। सुनने मे आया कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि कोई यात्री सडक से हटकर आजाद इलाके मे चला जाता है तो उसे वहाँ के लोग, अपने हक को कायम रखने और जताने के लिए, गोली मार देते है। हमने यह भी देखा कि आजाद इलाके के लोग जब घर से बाहर जाते है तो अपने साथ बन्दूक उसी तरह ले जाते है जिस तरह हमारे सूबे मे कही-कही के लोग लाठी-डण्डे लेकर निकलते है।

वहाँ के गाँव भी कुछ अनूठे ढग के है। हर गाँव मे एक ऊँचा स्थान बना होता है जो प्राय किसी मकान मे एक गुम्बद-जैसा रहता है जहाँ से आदमी चारो तरफ दूर तक देख सकता है। कबीले के लोग वहाँ से बराबर इस बात को देखा करते है कि कही किसी तरफ से कोई गाँव पर हमला करने तो नही आ रहा है। वहाँ के लोग देखने मे बहुत गरीब मालूम होते थे, क्योकि जमीन उस पहाडी इलाके मे कुछ बहुत अच्छी नही मालूम होती थी। पानी की बहुत दिक्कत थी। ये आजाद कबीले विशेषकर इस पहाडी इलाके मे ही रहते है। पेशावर जिले के चरसद्दा के आसपास की जमीन, जहाँ स्वात और दूसरी नदियाँ है, बहुत अच्छी मालूम होती थी, मगर पहाडी जमीन उपजाऊ नही है। आजाद कबीलो की गरीबी ही उनकी अव्यवस्थित दशा का विशेष कारण है। मै नही जानता कि उनकी आर्थिक दशा सुधार कर कभी उनके जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का कोई भी प्रयत्न किया गया है। शायद ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की नीति उनको सदा अव्यवस्थित रहने देने की ही है, क्योकि यदि इस ओर ध्यान दिया गया होता तो जितना खर्च वहाँ फौजी काम के लिए किया गया है और किया जाता रहता है उतने खर्च मे अब तक वह भू-भाग हरा-भरा बन गया होता—कबीले-वाले दूसरे सूबो के लोगो के साथ सभी बातों मे मुक़ाबला करते होते। शायद जब तक वे आजाद है तब तक ऐसा करना ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के लिए सम्भव नही। पर सुव्यवस्थित जीवनवाले आजाद अच्छे पडोसी भी तो हो सकते है। उन्हे आजाद रहने देकर भी उनकी शिक्षा और सुव्यवस्था मे वह खर्च किया जा सकता था जो खर्च उनको समय-समय पर तोपो और हवाई-जहाजो के गोलो का शिकार बनाकर दबाने मे किया जाता है। वह खर्च उनके और भारत के—दोनो के लिए—ज्यादा लाभदायक होता।

सीमाप्रान्त से लौटते समय मै और मेरे साथी बाबू मथुराप्रसाद, जो मेरे साथ वहाँ गये थे, दोनो ही, रास्ते मे पडे तक्षशिला के खुदे हुए खँडहरो को देखने गये। वहाँ खुदाई से निकली हुई चीजो को वहाँ के अजायबघर मे देखा। खँडहरो को तो घूम-घूमकर देखा। देखने से मालूम हुआ कि एक बहुत ही विस्तृत शहर वहाँ था, जिसमे चौडी सडके थी और सडको के दोनो बगल मकान बने थे—मकानों मे रहन-सहन और आराम के लिए सभी प्रकार का प्रबन्ध था। सब कुछ देखने से मालूम होता था कि ये एक अत्यन्त उन्नत स्थान के खँड़हर है। ये प्राचीन भारत के उन स्मारको मे है जिनके कारण आज भी हम अपना सिर ऊँचा रख सकते है। यहाँ एक जगत्-प्रसिद्ध विद्यापीठ स्थापित

था, जहाँ भारतवर्ष के बाहर से भी विद्यार्थी आया करते थे। यहाँ के विद्यार्थी भारतवर्ष के सभी स्थानो मे जाकर अपनी कीर्ति फैलाये हुए थे। हमने यह भी सुना कि सारे सीमा-प्रान्त मे बौद्धकालीन स्मारक पाये जाते है। यदि हम वहाँ कुछ दिन ठहर सकते तो इस प्रकार के स्मारको को देख सकते, पर इसके लिए समय नही था। हमको इसके लिए भी समय न मिला कि हम कोहाट और डेरा-इस्माइल-खाँ के इलाके तक जा सके। इसलिए हम केवल हजारा और पेशावर के कुछ हिस्सो को देखकर ही अफसोस के साथ वापस आये।

हम-जैसे बिहारी के लिए, जिसको दानापुर की फौजी छावनी के सिवा और कही कोई विशेष फौजी सामान या सैनिक पडाव देखने का मौका नही मिलता, सीमा-प्रान्त एक बडे फौजी अड्डे के समान जान पडा। जहाँ जाइए, जिधर जाइए, फौजी छावनी मौजूद है—फौजी सडके और फौजी अड्डे हर तरफ सामने आ जाते है। यह सिलसिला पजाब से ही शुरू होता है और जैसे-जैसे पश्चिम की ओर बढते जाइए, यह फौजी नजारे बढते जाते है। सीमाप्रान्त तो मानो सारा का सारा फौजी अड्डा ही है।

खैबर की घाटी देखकर एक बात चित्त मे आये बिना नही रह सकती। यह एक ऐसी घाटी है जहाँ बचाव बहुत आसानी से किया जा सकता था—विशेषकर जब हवाई-जहाज नही थे। ईश्वर ने इस देश को उत्तर की ओर हिमालय खडा करके, पूर्वीय और पश्चिमीय सीमाओ पर पहाडी श्रेणियो की दीवारे खडी करके, एक ऐसी हदबन्दी कर दी है जिसे तोडकर कोई मनुष्य बाहर से भारत पर हमला नही कर सकता। इस तरह, एक तरफ प्रकृति ने जमीनी हमले से इस देश को सुरक्षित बना दिया और दूसरी तरफ समुद्र ने इसके लिए एक जबरदस्त खाई का काम किया। पर, तो भी, हम इस देश के लोग इतने अभागे है कि इस बनी-बनायी घाटी की भी, आपस की फूट के कारण, रक्षा न कर सके। अँगरेजो के पहले, आज तक जितनी चढाइयाँ भारत पर हुई, प्राय सभी इस घाटी के द्वारा ही हुई है। अँगरेज भी बराबर डरते रहे है कि कही रूस उस रास्ते से भारत पर चढाई न कर दे। इसीलिए वहाँ फौज की इतनी तैयारी है। रूस का भय कम होने पर उनको जर्मन का डर बना रहता है। शायद मुसलमानी देशों से भी वे डरते है। शायद अब, जब हवाई-जहाजो का बोल-बाला हो गया, उस घाटी का महत्त्व उतना न रहे, परन्तु इस पर दुख हुए बिना नही रह सकता कि रक्षा की सभी सामग्रियाँ ईश्वर जुटा भी दे और मनुष्य अपने निकम्मापन से उनका सदुपयोग न कर सके, तो उसकी रक्षा नही हो सकती। खैबर की घाटी और भारत का इतिहास इसके साक्षी है कि जो अपनी मदद नही करता उसकी मदद ईश्वर भी नही कर सकता, और जो ईश्वर-प्रदत्त साधनो को भी काम मे लाने की योग्यता नही रखता उसका पतन अवश्यम्भावी है। जैसे कन्याकुमारी मे पहुँचकर भारत की महत्ता का आभास आँखो के सामने झलक गया था, वैसे ही खैबर की घाटी को देखकर भारतवासियो की अकर्मण्यता का चित्र आँखों के सामने नाचने लगा।

१२१—मंत्रिमण्डल की कुछ वैधानिक कठिनाइयाँ

मन्त्रिमण्डल का काम आरम्भ हो गया और चलने लगा। बिहार मे एक प्रश्न शीघ्र ही सामने आया जिसका सुलझाना कुछ कठिन था और जिसने पीछे हमारे लिए दिक्कतें पेश की। जब मिस्टर युनुस मिनिस्टर हुए, उन्होंने सर सुलतान अहमद को बिहार का अडवोकेट-जेनरल नियुक्त कर दिया। सर सुलतान कई वर्षों से सरकारी अडवोकेट थे। नये विधान मे गवर्नमेण्ट-अडवोकेट की जगह अडवोकेट-जेनरल नियुक्त करना था। वह उसी समय गवर्नमेण्ट आफ इंडिया मे कुछ दिनो के लिए वायसराय के एकजिक्युटिव कौन्सिल के मेम्बर नियुक्त हो गये। सुना गया कि उन्होंने वायसराय की कौन्सिल मे कांग्रेस के साथ समझौता कर लेने की बात पर जोर भी दिया था। जब वायसराय का वक्तव्य निकलने के बाद कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना तब भी वह वायसराय की कौन्सिल के मेम्बर थे। बिहार-मन्त्रिमण्डल के सामने यह प्रश्न आया कि वह नये सिरे से अडवोकेट-जेनरल की नियुक्ति करे अथवा मिस्टर युनुस की नियुक्ति को ही बहाल रखे।

अडवोकेट-जेनरल गवर्नमेण्ट और मन्त्रिमण्डल का प्रधान कानूनी सलाहकार होता है। नये विधान मे उसको बिना मेम्बर हुए ही असम्बली और कौन्सिल मे किसी विषय पर भाषण करने का अधिकार है। यह अधिकार इसलिए दिया गया कि कोई कानूनी बहस उठ जाने पर एक ऐसा आदमी होना चाहिए जो अधिकार-पूर्वक गवर्नमेण्ट और मन्त्रिमण्डल की ओर से बातें कर सके। इँगलैंड मे सबसे बड़ा कानूनी अफसर, जो सभी जजो के भी ऊपर समझा जाता है, लार्ड-चान्सलर होता है। वह लार्ड-सभा मे सभापति का काम करता है। जब उस सभा के सामने कानूनी तौर पर अपील पेश होती है तब भी वह सभापतित्व करता है। इसलिए वह हमेशा एक नामी कानूनदाँ आदमी हुआ करता है। यह तो हुई जजो के सरदार की बात। सबसे बडा कानूनी सलाह देने-वाला अटर्नी-जेनरल भी मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य हुआ करता है। वह कामन्स-सभा का मेम्बर होता है। इन दोनो स्थानो पर मन्त्रिमण्डल के साथ ही नियुक्ति हुआ करती है, अर्थात् जो प्रधान मन्त्री होता है वही अपने अन्य साथी मन्त्रियो के साथ-साथ इनकी नियुक्ति के लिए भी नाम दिया करता है और उन्हे ही सम्राट् मुकर्रर कर देते हैं।

हमारे यहाँ लोगो का विचार हुआ कि इँगलैंड मे जो अटर्नी-जेनरल का स्थान है वही स्थान अडवोकेट-जेनरल का भी होना चाहिए, उसकी नियुक्ति और इस्तीफा भी मन्त्रिमण्डल के साथ ही होना चाहिए। यदि गवर्नर के साथ मतभेद होने के कारण, अथवा असम्बली के अविश्वास प्रकट करने के कारण, मन्त्रिमण्डल इस्तीफा दे तो उसे भी हटना चाहिए। और, जो नया मन्त्रिमण्डल बने उसे नये आदमी को उस स्थान पर नियुक्त करने का अधिकार होना चाहिए—जैसा इँगलैंड मे है। इसके लिए काफी कारण भी है। मन्त्रिमण्डल को ऐसा कानूनदाँ सलाहकार रखने का अधिकार होना चाहिए जिस पर उसका विश्वास तो हो ही, वह उसके विचारो तथा कार्यक्रम से

पूरी तरह परिचित एव सहमत हो, ताकि वह मन्त्रिमण्डल के कार्यक्रम चलाने मे, कानूनी तौर पर हर तरह से, पूरी मदद कर सके। बिहार मे मन्त्रिमण्डल के आगे सबसे बडा प्रश्न लगान-कानून के सशोधन का था। इस विषय मे मत-भेद की काफी जगह थी। मन्त्रिमण्डल का विचार था कि कोई पक्का कांग्रेसी, जिसका विचार मन्त्रिमण्डल के विचारो से मिलता हो, अडवोकेट-जेनरल होना चाहिए। सर सुलतान कुछ ऐसे आदमी नही थे जो मन्त्रिमण्डल के हाँ मे हाँ मिलाया करेगे। यदि कही किसी विषय मे मन्त्रि-मण्डल से उनका मत-भेद हो गया तो फिर मन्त्रिमण्डल को उनके विचारो और उनकी योग्यता का लाभ नही मिलेगा। इसी कारण, इँगलैड मे भी अटर्नी-जेनरल मन्त्रिमण्डल की पार्टी का ही आदमी हुआ करता है। यह सोचकर मन्त्रिमण्डल ने मेरी राय से निश्चय किया कि वह अपना अडवोकेट-जेनरल नियुक्त करेगा। वह इस परिपाटी को चलाना भी चाहता था कि उसको अपना कानूनी सलाहकार चुनने और मुकर्रर करने का अधिकार होना चाहिए। यदि यह परिपाटी चल जाय तो यह केवल कांग्रेस के लिए ही नही होगी—चाहे जिस दल के लोग हो, जब अपना मन्त्रिमण्डल बनावेगे तब अपना सलाहकार मुकर्रर करेगे, इस परिपाटी से लाभ उठायेगे।

यही प्रश्न बम्बई-प्रान्त मे भी उपस्थित हुआ। वहाँ एक अँगरेज अडवोकेट-जेनरल थे। कांग्रेस जिनको नियुक्त करना चाहती थी वह सज्जन उस समय कही विदेश गये हुए थे। जब यह बात गवर्नर से कही गयी तो उन्होने यह मजूर करना नही चाहा कि मन्त्रिमण्डल को अडवोकेट-जेनरल नियुक्त करने का अधिकार है। पर उन्होने सर सुलतान को शायद सब बाते लिख भेजी। सर सुलतान ने सिमले से इस्तीफा लिख भेजा। इत्तफाक से केन्द्रीय सरकार मे काम करनेवाली उनकी अवधि भी किसी कारण से बढ गयी। इसलिए, देखने मे तो मामला सुलझ गया और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने श्री बलदेवसहाय को अडवोकेट-जेनरल नियुक्त कर दिया; पर आगे चलकर मुसलमानो ने इस बात को हिन्दू-मुसलमान-झगडे का रूप दे दिया। कुछ कहने लगे कि सर सुलतान केवल इसलिए हटा दिये गये कि वह मुसलमान है। मै तो इस विचार-विमर्श के समय मन्त्रिमण्डल के साथ बराबर रहा, इसलिए मै कह सकता हूँ कि इस नियुक्ति के समय हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न किसी के ध्यान मे एक मिनट के लिए भी न आया। प्रश्न यही था कि राजनीतिक दृष्टि से, और विशेषत लगान-कानून के सुधार को सामने रखते हुए, किससे अधिक मदद मिलेगी तथा कानूनी सलाहकार की नियुक्ति मे इँगलैड की परिपाटी चलाना अच्छा होगा वा नही। उसी परिपाटी के अनुसार विधान मे ऐसे सशोधन कराने का सबका विचार था कि गवर्नर केवल वैधानिक गवर्नर रह जाय और सभी अधिकार मन्त्रिमण्डल के हाथ मे आ जायँ। जब विधान मे सशोधन अभी नही हो सकता तो कांग्रेस ने गवर्नरो से 'विशेष अधिकारो को न बर्तने का' वादा लेकर उस कमी को एक प्रकार से दूर कराया था। यह एक विषय और था जिसमे यहाँ का विधान इँगलैड के विधान के नजदीक पहुँचाया जा सकना और कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने उसी उद्देश्य से इस बात पर जोर दिया।

बम्बई मे अँगरेज अडवोकेट-जेनरल ने इस्तीफा दे दिया। किसी ने फिर इसकी शिकायत कुछ नही सुनी। पर बिहार मे इसका वैधानिक रूप तह मे डाल दिया गया, इसका साम्प्रदायिक महत्त्व हो गया। अफसोस की बात है, पर हम इस बात को आज भी मानते है कि ऐसा करने मे मन्त्रिमण्डल ने साम्प्रदायिक विचारो को अपने नजदीक नही आने दिया। जब लगान-कानून का सशोधन पेश हुआ तो यह बात स्पष्ट हो गयी। पर जहॉ साम्प्रदायिक बाते उठा दी जाती है वहॉ हमारी ऑखे और सब चीजो को देखने मे असमर्थ हो जाती है।

१२२—किसानों और जमीन्दारों का समझौता

मन्त्रिमण्डल बनाने के बाद मेरे ऊपर इसकी जवाबदेही रही कि यथासाध्य मै उनकी, विशेषकर बिहार मे, आवश्यकतानुमार सहायता करूँ। शुरू मे ही मेरे सामने दो प्रश्न आ गये। युक्तप्रदेश मे प्रधान मत्री पडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने चाहा कि कानपुर मे मिल-मजदूरो की स्थिति के सम्बन्ध मे जॉच की जाय और उनकी हालत सुधारने का भी प्रयत्न किया जाय। इसके लिए वह एक कमिटी बनाना चाहते थे। उन्होने मुझे उसका अध्यक्ष बनाना चाहा। काम जरूरी था, पर मुझमे इसके लिए कोई विशेष योग्यता नही थी, क्योकि मैने न तो कभी मजदूरो के बीच कुछ काम किया था और न उनके विशेष प्रश्नो का अध्ययन ही। पन्तजी का विचार था कि एक प्रकार से यही मेरी विशेष योग्यता थी, क्योकि मै सब बातो को जानकर जो मुझे उचित जान पडेगा, कह सकूँगा और पूर्वार्जित कर्मो या विचारो के बन्धन से मुक्त होने के कारण मै परिस्थिति के अध्ययन के आधार पर ही अपनी राय कायम करूँगा। इसके अलावा, वह यह भी समझते थे कि मुझमे मजदूर और मिल-मालिक दोनो पक्षों का विश्वास होगा और मेरी नियुक्ति से दोनों सन्तुष्ट होगे। मै पहले तो बहुत इनकार करता रहा, पर मुझे अन्त मे इस पद को स्वीकार करना पडा। जिस समय मै सीमा-प्रान्त मे वहॉ के मन्त्रिमण्डल के सगठन के लिए जा रहा था, मै लखनऊ मे कुछ देर के लिए ठहर गया। एक प्रकार से इस कमिटी के काम का श्रीगणेश उसी समय हो गया, यद्यपि कार्यारम्भ उधर से लौटने के बाद ही हुआ।

दूसरा काम जो मुझे शीघ्र शुरू करना पडा वह था अपने सूबे के किसानो और जमीन्दारो से बातचीत करके, लगान-कानून के सशोधन के लिए, यदि हो सके तो दोनो को एकमत कर देना। इसका आरम्भ भी मन्त्रिमण्डल बनने के थोडे ही दिनो के बाद हुआ। जिस समय हम लोग १९३०-३४ के सत्याग्रह मे लगे थे, बिहार के गवर्नर के प्रोत्साहन से यहॉ एक पार्टी बनी थी जिसका नाम था युनाइटेड-पार्टी। उस समय नये विधान के सम्बन्ध मे इँगलैड मे बाते चल रही थी। यह समझा जाता था कि नये विधान मे कुछ न कुछ अधिकार तो जनता के प्रतिनिधियो को मिलेगा ही। इसलिए यदि कोई ऐसी पार्टी बने, जो जनता द्वारा निर्वाचित हो सके और जो कॉग्रेस-जैसी बिलकुल स्वतन्त्र न हो, तो गवर्नमेण्ट के लिए भी वह सुविधाजनक होगी। इसी

विचार से उस पार्टी के जन्म देने मे उस समय के गवर्नर ने हाथ बँटाया था। उसी उद्देश्य से उस समय की कौन्सिल मे जमीन्दारों की ओर से एक बिल पेश किया गया था जिसके द्वारा लगान-कानून मे कुछ सशोधन पेश किये गये थे। ये सशोधन किसानो के हक मे ठीक थे। उमीद की गयी थी कि इस तरह किसान, जिनकी सख्या स्वभावत मतदाताओ मे बहुत अधिक होगी, युनाइटेड-पार्टी के पक्ष मे कर लिये जायँगे और वह पार्टी चुनाव मे सफल हो सकेगी। कुछ दूरदर्शी जमीन्दार यह भी जरूर सोचते थे कि जब इस प्रकार से किसानो के हाथ मे अधिकार जा ही रहा है तो उनको खुश रखना ही हमारे लिए हितकर होगा। कुछ ऐसे भी जमीन्दार जरूर होगे जो किसानो की माँगों को न्याय्य मानते होंगे और इसलिए कानून मे सशोधन जरूरी समझते होगे। जो हो, कुछ ऐसे लोग भी, जो पहले किसानों मे कुछ काम किया करते थे और जो किसानों के पथ-प्रदर्शक तथा नेता समझे जाते थे, इस पार्टी मे शरीक हो गये।

स्वामी सहजानन्द ने किसान-सभा को जाग्रत बनाकर इसी बिल का विरोध किया। उस विरोध के लिए किसान सगठित भी हो गये। उन दिनो कॉग्रेस गैर-कानूनी सस्था थी। उसके नाम से कोई काम नही हो सकता था। उसके कार्यकर्त्ता भी बहुत बडी सख्या मे, जो इस काम को कर सकते थे, जेलो मे बन्द थे। इस विरोध का नतीजा यह हुआ कि सशोधनो मे और सशोधन हुआ। अन्त मे, जब हम लोग १९३४ मे जेल से बाहर निकले तो हम लोगों से भी बाते हुई कि सशोधन सबकी राय से किये जायँ। हम लोगो के आदमी उन दिनो कौन्सिल मे नही थे। बात इतनी आगे तक पहुँच गयी थी कि हम कॉग्रेस की ओर से विशेष कुछ कर भी नही सकते थे। जो कुछ सशोधन हुआ और उससे जो कुछ लाभ पहुँच सकता था वह किसानो को मिला, पर मामला तय नही हुआ। चुनाव के समय तक पार्टी भी कुछ असगठित हो गयी। चुनाव से यह भी पता चल गया कि किसानों को जमीन्दारो से मिलाने का प्रयत्न भी सफल नही हुआ। कॉंग्रेस के घोषणा-पत्र मे किसानो की दशा सुधारने पर जोर दिया गया था। जमीन्दार भी जानते थे कि इस विषय मे मन्त्रिमण्डल जरूर और जल्दी कुछ न कुछ करेगा ही। वे भी चाहते थे कि यदि सलाह से कोई बात हो जाय तो उनके लिए भी अच्छा होगा, क्योकि तब वे इस बदनामी से बच जायँगे कि वे अपने स्वत्वो पर चिपके रहे और कॉंग्रेस ने जबरदस्ती कानून बनाकर किसानो की भलाई की। मिनिस्ट्री बनने के बाद ही उनके कुछ मुखिया मन्त्रि-मण्डल से मिले। उन्होने यह सवाल पैदा किया कि लगान-कानून और किसानो की दशा सुधारने के सम्बन्ध मे गवर्नमेण्ट जो कुछ करना चाहे उसके लिए जमीन्दारो से बाते कर ले। वे तैयार भी थे कि यथासाध्य वे सहायता करेगे। मन्त्रिमण्डल की राय हुई, जिससे मै भी सहमत था, कि लगान-कानून के सशोधन के सम्बन्ध मे यदि कोई चीज बातचीत से तय हो जाय तो अच्छा होगा, क्योकि उस हालत मे जो भी कानून बनेगा वह जल्द और आसानी से असम्बली तथा कौन्सिल मे पास हो सकेगा। उससे किसानो को गवर्नमेण्ट जल्द से जल्द लाभ भी दिलवा सकेगी और आपस का वैमनस्य

भी घटेगा। जमीन्दार विरोध करके कानून का बनाना रोक तो नही सकेंगे, क्योकि कॉग्रेस का बहुत बडा बहुमत था, पर हर कदम पर वैध तरीके से बहस-मुबाहसे के द्वारा कुछ समय तक रोक सकेंगे।

कॉंग्रेस का निश्चय था नये विधान को नामजूर करने अर्थात् उसे विफल बनाने का। हो सकता है कि जल्द ही कुछ अनुभव के बाद मन्त्रिपद छोड़ देने का निश्चय करना पडे, इसलिए जो कुछ हो सके और जहॉ तक जल्द हो सके, जनता की सेवा और भलाई हो जाय तो ठीक रहेगा। इसके अलावा जमीन्दार धनी है, अपना प्रबन्ध कर लेने की शक्ति रखते है; पर किसान गरीब है और उतने सगठित नही है। कानून बनने पर भी उसको बेकार बनाने के हजारो तरीके वकील निकाल सकते है। यदि सशोधन झगडे के बाद होगा तो गवर्नमेण्ट की कोशिशो के बाद भी उससे लाभ उठाने मे किसानो को बडी कठिनाइयो का सामना करना पड़ सकता है। इन सब विचारों से मन्त्रिमण्डल ने, मेरी सम्मति से, चाहा कि यदि कोई बात सुलह से तय हो सके तो अच्छा होगा। हाँ, यदि सुलह के प्रयत्न से कोई सन्तोषजनक फल न निकले तो फिर जैसा मुनासिब होगा, किया जायगा। सुलह के प्रयत्न से, विशेषकर जब जमीन्दार भी उसे चाहते थे, लाभ ही होगा। इसलिए सोचा गया कि समय पाकर मैं उनसे बातचीत आरम्भ करूँ। पारलेमेण्टरी-कमिटी के एक सदस्य मौलाना आजाद भी थे। जमीन्दार उनसे भी मिले। उन्होने भी इस बात को पसन्द किया। इस तरह मौलाना आजाद और मैं, दोनो मिलकर, पटने मे जमीन्दारो के प्रतिनिधियो से बाते करने लगे।

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न यह भी था कि किसान-सभा अथवा उसके मुख्य कार्यकर्त्ताओं से हमारा क्या सम्बन्ध रहेगा। हम यह मानते थे कि कॉंग्रेस के प्रति किसानो का पूरा विश्वास था और हम भी उनके हितो का विचार करके, उनकी भलाई के लिए, जो कुछ हो सकता था, कर सकेंगे। हम जमीन्दारो और किसानो को छोड दे और वे आपस मे समझौता कर ले तो यह सबसे अच्छा होगा। पर जहॉ तक हम देख और समझ सकते थे, इसकी आशा नही होती थी कि दोनों पक्ष किसी बात पर राजी हो सकेंगे। इसलिए हमको बीच मे पडना ही पडेगा। हम कॉग्रेस को इसके लिए योग्य भी समझते थे। हम जानते थे कि जब कोई बात समझौते से तय होती है तो उसमे किसी पक्ष की पूरी बात नही मानी जा सकती, दोनों को कुछ न कुछ उतरना या झुकना पडता है। इसलिए उन दोनो पर भार न छोडकर यदि कॉग्रेस ही यह काम कर ले तो बुरा न होगा। इसका एक नतीजा तो किसानो के हक मे यह जरूर रहेगा कि जो रियायत उनको मिलेगी उसे वे खुले पेशानी ले सकेंगे और उससे जो ज्यादा वे जरूरी समझेंगे उसे मॉगते रहेगे, क्योकि वे किसी समझौते के बन्धन से बँधे नही होंगे। यह बात जमीन्दारो से भी कह दी गयी। उन्होने भी इसे समझ लिया कि हम किसान-सभा की ओर से बाते नही कर रहे है, यद्यपि उनके नेताओं से भी हम सभी बातों मे बराबर राय लेते रहेगे।

एक दूसरी वात और तय कर लेनी थी। क्या यह समझौता केवल लगान-कानून के सम्वन्ध मे ही होगा अथवा यह अन्य विषयों से भी सम्वन्ध रखेगा। गवर्नमेण्ट को आमदनी वढाने की जरूरत थी। उसके लिए वह एक नया 'कर' वैठाना चाहती थी। जिसमे जमीन्दारों को विशेष देना पडेगा। हमने सोच लिया कि हो सके तो उसको भी हम समझौता द्वारा ही तय कर लेगें। कई दिनो तक वातचीत चली। सदाकत-आश्रम मे ही वैठक होती। मै कुछ अस्वस्थ भी था। इसलिए लोग मुझे आने-जाने के कष्ट से वचा देना भी चाहते थे। सभी प्रश्नो पर हम जमीन्दारो की राय सुन लेते, मन्त्रिमण्डल से भी वाते कर लेते, उनकी राय अच्छी तरह समझ लेते, किसानो के नेताओ से भी वातें करके उनकी राय भी जान लेते। इस तरह, सव दृष्टिकोणों से पूरी तरह विचार करने के वाद, कुछ तय कर लेते जिसे हम और जमीन्दार दोनो स्वीकार करते।

तीन-चार प्रश्न मुख्य थे। लगान मे जो कमी होनी चाहिए वह किस तरह और किस परिमाण मे हो कि किसी के साथ वेइन्साफी न हो और सवको लाभ भी पहुँच सके। यह सरसरी तौर पर रुपये मे कुछ आने लगान कर देने से हो सकता था। पर सारे सूवे की एक-सी स्थिति नही थी। सूवे मे काश्तकारी जमीन पर चार आने से वीस-पचीस रुपये वीघे तक लगान लगता है। कही हाल मे ही मालगुजारी मे वढती या इजाफा हुआ है और कही नही हुआ है—कही इजाफा वहुत अधिक हुआ है, कही वहुत थोडा और कही विलकुल नही। कही भावली लगान वदल कर नकदी कर दिया गया है और कही तो ऐसा हुआ ही नही है। यदि सभी जगहो मे हरसट्ठे एक ही दर से लगान घटा दिया जाय तो कुछ किसान वहुत मुनाफे मे रह जायँगे, कुछ को केवल नाम-निहादी रियायत मिलेगी, कुछ जमीन्दारो के प्रति अन्याय हो जायगा और कुछ मजे मे वच जायँगे। खासकर जो किसान, वहुत कड़ा लगान होने के कारण, वहुत कष्ट मे है उनको वहुत थोडी रियायत मिलेगी, या इसे यो कहे तो अत्युक्ति न होगी कि जिस किसान पर अधिक वोझ है वह तो प्राय वैसा का वैसा ही वोझ ढोता रह जायगा और जिस पर वोझ कम है उस पर और भी कम हो जायगा—जिसको रियायत की सवसे अधिक जरूरत है उसे वह नही के वरावर मिलेगी और जिस पर पहले से ही किफायत लगान है उसको और भी अधिक रियायन मिल जायगी। इसलिए सरासरी लगान घटाने की वात जमीन्दारो ने और हमने नामजूर कर दी। एक ऐसा नुस्खा निकाला गया जिससे खासकर वहाँ अधिक रियायत मिले जहाँ वहुत अधिक लगान हो गया है, चाहे वह इजाफा के कारण हो या भावली से नकदी लगान कर देने के कारण, और जहाँ कम है वहाँ कम रियायत मिले या विलकुल न मिले। हमने मोटामोटी हिसाव लगाकर सोचा था कि इस तरह सारे सूवे के लगान मे एक रुपये मे चार आना घट जायगा। कही-कही तो रुपये मे आठ-दस आने तक की कमी होगी और कही-कही विलकुल नही। जिस जमीन्दार ने जितनी शक्ति से काम लिया होगा और जितना लगान वढाया होगा उसकी आमदनी

उसी मात्रा मे अधिक या कम होगी। जिसने कम बढाया होगा उसकी आमदनी कम घटेगी। अन्त मे, जब गवर्नमेण्ट के कर्मचारियो ने लगान मे कमी की कार्रवाई की और लगान मे कमी की गयी, तो मालूम हुआ कि हम लोगो का वह अन्दाजी हिसाब—कि सूबे मे एक-चौथाई लगान कम हो जायगा—प्राय ठीक ही निकला।

दूसरा प्रश्न था किसानों के अपनी काश्तकारी हस्तान्तरित करने का। बगाल-लगान-कानून के अनुसार, जो बिहार मे भी लागू होता था, यह हक उनको मामूली तौर पर नही था। इसलिए कोई काश्तकार काश्तकारी बेच नही सकता था। पर वकीलो की बुद्धि और जजो के फैसले ने कानून को घोल-मट्ठा बना रखा था। जो आदमी कानूनदाँ न होता उसके लिए यह समझ लेना आसान न था कि काश्तकारी जमीन किस हालत मे और किस तरह से हस्तान्तरित की जा सकती है—एकबारगी बेचकर या सूद-भरना लगाकर या जरपेशगी करके, और यदि हस्तान्तरित की जा सकती है तो किस मात्रा मे—सब की सब जमीन या उसका कुछ हिस्सामात्र, और यदि हिस्सामात्र ही तो वह भी कितना ? ऐसे बहुतेरे जटिल प्रश्न उठे थे। समय-समय पर हाइकोर्ट के फैसले भी हुए थे, कभी दो जजो ने फैसला किया तो उस पर पुर्नविचार तीन या पाँच जजो ने किया, कभी फैसला बदला गया तो कभी उसमे कुछ और नयी बारीकी ला दी गयी। बगाल से बिहार के अलग हो जाने पर यहाँ के हाइकोर्ट ने अपना ही विचार रखा, जो हमेशा कलकत्ते के विचार से नही मिलता था। इसलिए यह आवश्यक था कि इस विषय मे कानून साफ हो जाय जिसे सभी लोग, विशेषकर किसान, आसानी से समझ सके। इसके दो तरीके थे, या तो हस्तान्तरित करने का अधिकार बिलकुल न दिया जाय और कानूनन इसे एकबारगी बन्द कर दिया जाय, या यह अधिकार पूरा-पूरा दे दिया जाय और इसमे किसी प्रकार की रुकावट न रहे। किसान-सभा के लोग निर्विवाद रूप से जमीन बेचने की मुकम्मिल आजादी चाहते थे। जमीन्दार इसे मजूर नही करते थे, क्योकि उनका दावा था कि जमीन उनकी है और उन्होने केवल आबाद करने के लिए ही उसे किसान को दी हैं, इसलिए किसानो को हक बेचने का नही है—हाँ, यदि जमीन्दार बेचने की अनुमति दे दे तो वे बेच सके। इस विषय मे किसान-सभा का बहुत ही जोर था।

मेरा अपना विचार था और आज भी है कि बिना रोक-टोक यदि जमीन बेचने का हक किसानो को दे दिया जाय, तो इसका नतीजा यह होगा कि छोटे-छोटे किसानो के हाथ से जमीन निकलकर दूसरों के हाथ मे चली जायगी, इसलिए उनकी रक्षा के खयाल से उनको यह अधिकार पूरी तरह नही मिलना चाहिए। मै समझता हूँ कि आज भी इस बात की यदि जाँच की जाय तो पता लग जायगा कि इस तरह बहुत-सी जमीन कुछ दिनो के बाद गरीबो के हाथ से निकलकर धनी लोगो के हाथो मे चली जायगी और खेत-हीन मजदूरो की सख्या बहुत बढ जायगी। यह मेरा व्यक्तिगत विचार था। पर मै जानता था कि जितने बोलनेवाले किसान थे, इसके विरोधी थे। जमीन्दारो ने भी अपने सशोधनवाले कानून मे एक प्रकार से हस्तान्तरित

करने के अधिकार को पूरा-पूरा मान लिया था—केवल एक शर्त रखी थी कि जमीन विक्री करने पर उनको कुछ मिल जाया करे। हमने भी उनसे तय किया कि बेचने का अधिकार अवैध हो जाय, पर जो सलामी जमीन्दार को मिलती थी वह और भी कम हो जाय।

तीसरी बात यह थी कि लगान यदि बाकी रह जाय तो जमीन्दार को बिहार मे यह हक नही था कि लगान बाकी रखने के कारण किसान को वह खेत से बेदखल कर दे। वह अदालत मे बाकी लगान के लिए नालिश करके डिग्री हासिल कर सकता था और उस डिग्री को जारी कराकर उसके सारे जोत को नीलाम करवा सकता था। किसानो की शिकायत थी कि थोडा माल बाकी रह जाने पर भी सारा जोत नीलाम हो जाया करता है जिससे उनका बहुत नुकसान होता है। जमीन्दारो का कहना था कि बगल के सूबे युक्तप्रदेश मे बाकी लगान के लिए रैयत अपनी जमीन से बेदखल किया जा सकता है, यहाँ तो उससे बहुत कम कडाई होती है, यदि किसानो पर इतना दबाव भी न रहेगा तो वे लगान देने मे बहुत आनाकानी करेंगे और वसूल करने मे जमीन्दार की दिक्कत और भी बढ जायगी। इसके बारे मे यह तय हुआ कि लगान जितना बाकी पडे उतनी ही कीमत की जमीन नीलाम की जाय, सारा जोत नही। हाँ, जो रैयत बराबर लगान बाकी रखता चले और अदालत उसे इस तरह का हमेशा बाकी लगानेवाला असामी करार दे तो उसका सारा जोत नीलाम किया जा सकता है।

चौथी बात भावली के सम्बन्ध मे थी। बिहार के पटना, गया और कुछ हिस्सा मुंगेर के जिलो मे बहुत करके यह प्रथा जारी थी कि पैदा हुए गल्ले के एक हिस्से के रूप मे लगान नगदी होकर मिलता था। अक्सर आधी पैदावार जमीन्दार को और आधी किसान को बाँट दी जाती थी। बाँटने के भी दो तरीके थे। खेत मे जो कुछ गल्ला पैदा होता था, जमीन्दार के सामने ही दौनी-ओसौनी करके खलिहान मे तैयार किया जाता था। फिर तौलकर उसके दो हिस्से कर दिये जाते थे जिनमे से एक किसान लेता था और दूसरा जमीन्दार; इसे भावली-बटाई कहते थे। दूसरा तरीका यह था कि जब फसल पककर करीब-करीब तैयार हो जाती तो जमीन्दार का एक गुमाश्ता या खुद जमीन्दार खेत के एक छोटे हिस्से की फसल काटकर देख लेता कि कितना गल्ला हुआ और उसी हिसाब से सारे खेत की पैदावार कूत ली जाती, जिसका आधा जमीन्दार का समझा जाता जो वह समय पर वसूल कर लेता। इसे दानाबन्दी कहते थे। बटाई मे रैयतो की शिकायत थी कि जब तक जमीन्दार का आदमी हाजिर न रहे वे फसल को काट नही सकते, जब जमीन्दार उनको कष्ट पहुँचाना चाहते तब दानाबन्दी करने जाते ही नही अथवा और किसी कारण से यदि देर कर देते है तो वे (किसान) अपने खलिहान मे तैयार गल्ला रखकर भी अन्न के बिना कष्ट पाते है, और यदि वे जमीन्दार की गैरहाजिरी मे गल्ला तैयार करके अपने घर उठा ले जायँ तो जमीन्दार उन पर दबाव डालकर उनसे मनमाना वसूल

कर लेते हैं, और दबग जमीन्दार तो कई तरह के झूठे दावे भी कर देते हैं। दानाबन्दी के सम्बन्ध मे भी रैयतो की शिकायत होती कि हमारे खेतो की पैदावार का मनमाना तखमीना लगाकर दानाबन्दी कर दी जाती है और नाम के लिए तो पैदावार का आधा ही जमीन्दार को देने की बात होती है, पर वास्तव मे हमे उनको बहुत अधिक देना पड़ता है। कानून मे पहले एक दफा थी जिसके द्वारा रैयत और जमीन्दार दोनों को यह हक दिया गया था कि अगर वे भावली रखना न चाहे तो अदालत के द्वारा भावली को नकदी बनवा सकते हैं। अदालत, सब बातो पर विचार करके, जिनमे पिछले कई वर्षो की वसूली का औसत भी एक मुख्य जुज था, जो मुनासिब समझे, नकदी लगान मुकर्रर कर दे सकती है।

१९१४–१८ के योरपीय महायुद्ध के बाद बडी महँगी का समय आया। किसानो को गल्ले का आधा हिस्सा देना जब्र मालूम हुआ। बहुतेरो ने अदालत-द्वारा नकदी लगान मुकर्रर करा लिया। पर महँगी मे गल्ले की कीमत ज्यादा होने के कारण वसूली का औसत भी ज्यादा हुआ। जब १९२९–३० के बाद बहुत सस्ती आ गयी तो वह नकदी लगान किसी तरह अब पैदावार से अदा नही हो सकता था। लगान घटाने के कारणो मे यह एक मुख्य कारण था। ऊपर कहा गया है कि जहाँ लगान ज्यादा हो गया था वहाँ ज्यादा घटाया गया। अब इस सशोधन से निश्चय किया गया कि रैयत की दर्खास्त पर भावली के बदले मे नकदी लगान जरूर कर दिया जाय और मालिक का हिस्सा भी आठ आने के बदले कुछ कम कर दिया जाय। कुछ कम कर भी दिया गया।

लगान-कानून के मुख्य सशोधन यही थे। इसके अलावा गवर्नमेण्ट एक नया 'कर'—एग्रिकल्चरल इनकम टैक्स—लगाना चाहती थी। उसके सम्बन्ध मे भी जमीन्दारो से समझौता हुआ कि वह किस पर लगाया जायगा, उसकी क्या दर होगी और उससे कौन बच सकेंगे। यह सब मैंने मोटा-मोटी बतला दिया। पर इन सबमे तफसीली बाते बहुत थी जिनके तय करने मे बहुत समय लगा। मेरे और मौलाना आजाद के साथ बाते तय हो जाने के बाद कानून बनाने और कानून के शब्दो को ठीक करने मे भी बहुत समय लगा। बहुत बात-चीत भी करनी पडी। प्रधान मत्री ने कानून बनाते समय उन लोगों से बातचीत तय की। इस समझौते का यह असर हुआ कि यह कानून दोनों पक्षों की सम्मति से चन्द महीनो के अन्दर ही पास हो सके, और १९३८ मे ही गवर्नमेण्ट ने अपने बहुतेरे अफसरो को—जो बिलकुल नये थे और केवल इसी काम के लिए बहाल किये गये थे—तानात कर दिया कि वे नये कानून के अनुसार रैयतो के लगान घटाकर उनके खतियान (Records of right) को दुरुस्त कर दे।

जब १९३९ के नवम्बर मे काँग्रेसी मत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया तो बिहार मे लगान घटाकर खतियान दुरुस्त करने का काम प्राय पूरा हो चुका था और नया 'कर' भी जमीन्दारों पर लग चुका था। ऐसा और किसी सूबे मे नही हो पाया।

युक्तप्रदेश मे सुलह नही हुई। वहाँ कानून बनाने मे कदम-कदम पर जमीन्दारो के विरोध का मुकावला करना पडा। यद्यपि इस्तीफा के कुछ पहले तक कानून वहाँ पास हो चुका था तथापि उस पर गवर्नर की मजूरी इस्तीफा के बाद मिली। मुझे नही मालूम कि उसके अनुसार कहाँ तक और कब कार्रवाई की गयी। उडीसा मे कानून पास ही न हो सका। मद्रास मे मन्त्रिमण्डल ने एक कमिटी मुकर्रर की। उसने बहुत परिश्रम से रिपोर्ट तैयार की। लेकिन इस पर काम होने के पहले ही मन्त्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। वह रिपोर्ट ज्यों की त्यो पडी रह गयी। बगाल मे यद्यपि कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल नही था तथापि वहाँ भी एक कमिटी बनी। उसने भी रिपोर्ट दी जिस पर अभी तक कोई काम नही हुआ है। बिहार मे इस समझौते से किसानो को जल्द से जल्द रियायत दी जा सकी। चूँकि सब बातें समझौते से तय हुई थी, इसलिए आपस मे वैमनस्य वहुत नही बढा—यद्यपि यह मानना पडेगा कि मन्त्रिमण्डल पर दोनो पक्ष वार करते रहे, जमीन्दार भी शिकायत करते और किसान-सभा के लोग भी। मेरा विश्वास है कि यदि किसान-सभा के लोग बुद्धिमानी से काम लेते और मन्त्रिमण्डल की कार्रवाई से लाभ उठाते हुए अपनी और-और शिकायतों के भी दूर करने के प्रयत्न मे लगे रहते, तो मन्त्रिमण्डल और भी काम कर सकता। पर उन्होंने ऐसा नही किया। वे जमीन्दारो से भी अधिक मन्त्रिमण्डल पर ही वार करते रहे। उसकी दिक्कतो के वढाने मे उनका काफी हाथ रहा।

एक चीज के बारे मे कोई माकूल बात तय नही हो पायी थी जिसके कारण मन्त्रिमण्डल को काफी तकलीफ उठानी पडी और किसान-सभा को भी उसकी शिकायत या वदनामी करने का काफी मौका मिला। जो जमीन बाकी लगान के लिए नीलाम कराकर जमीन्दार खरीद लेता है वह अगर किसी भी काश्तकार रैयत के साथ बन्दोवस्त कर दी जाय, तो बन्दोबस्ती के साथ ही उस रैयत को काश्तकारी का हक हो जाता है। कई जगहो मे जमीन्दारो के पास इस तरह की नीलाम मे खरीदी हुई रैयती जमीन बहुत पडी थी। इसे कानूनी भाषा मे 'बकाश्त मालिक' कहते है। वे रैयतो को काश्तकारी हक नही देना चाहते थे, क्योकि एक बार काश्त-कारी हक हो जाने पर रैयत का जमीन पर पूरा हक हो जाता है। वह उसके मरने के बाद उसके वारिस को भी मिलती है। मालिक केवल लगान वसूल कर सकता है, रैयत को बेदखल नही कर सकता और अब तो वसूली मे सारे जमा को नीलाम नही करा सकता था। इसलिए जमीन्दार, यदि हो सके तो, उसे स्वय जोतना चाहते थे अथवा किसी न किसी उपाय से बाजाब्ता बन्दोबस्त करके रैयत को काश्तकारी हक हासिल होने देना नही चाहते थे। उधर रैयत देखते थे कि अगर हम काश्तकारी हक पर बहुत जोर देते है तो जमीन्दार जमीन देता ही नही, अपने कब्जे मे रख लेता है। इसलिए वहुतेरे रैयत इस हक की ओर ध्यान न देकर, साल-भर के लिए ही सही, जोतने के लिए जमीन लेते और फिर जमीन्दार साल के अन्त मे चाहे वापस ले लेता या इस शर्त पर छोड़ देता कि वे हक-काश्तकारी का दावा न करे। इस

तरह, ऐसी जमीन बहुत थी जिस पर कानूनी तौर से तो हक-काश्तकारी हो गया होगा, पर उस हक के साबित करने का कोई साधन या प्रमाण रैयत के पास नही था। बडी जमीन्दारियो मे, नीलाम मे खरीदी हुई जमीन अकसर फिर बन्दोबस्त कर दी जाती होगी, क्योकि वे सारी जमीन को खुद आबाद कराने का भार नही ले सकती। पर छोटे-छोटे जमीन्दार इसे आसानी से कर सकते थे। कुछ बडे जमीन्दार भी अब मोटर-वाले हलो के द्वारा बडे पैमाने पर खेती करने की बाते सोच रहे थे। इसलिए वे बकाश्त जमीन को किसानो के कब्जे मे नही जाने देना चाहते थे। इस झगडे का कोई निपटारा उस समय नही हो सका। कई जगहो मे किसानो ने इस तरह की बकाश्त जमीन पर जाकर सत्याग्रह द्वारा कब्जा करना चाहा। गवर्नमेण्ट को यह रोकना पडा। जब तक कॉग्रेस-मन्त्रिमण्डल रहा, यह झगडा जारी रहा। इसके कारण उसे बहुत शिकायते और गालियाँ सुननी पड़ी। पर कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा के बाद यह झगडा खुद-बखुद खत्म हो गया-सा मालूम पडता है, क्योकि इसके बाद सत्याग्रह की बात कही सुनने मे नही आयी। इस समझौते के आधार पर किसान-सभा के कुछ लोगो ने मन्त्रिमण्डल के साथ मेरी भी काफी शिकायत जहाँ-तहाँ फैलायी। पर मै समझता हूँ कि इस समझौते के द्वारा हमने किसानो के लिए जितनी रियायत दिलवा दी उतनी किसी सूबे मे नही मिली।

किसान-सभा समझौते मे शरीक नही थी। उसको पूरा हक था कि इससे जो लाभ हो उसे वह ले ले और बाकी के लिए अपनी माँगे बनाये रखे, मन्त्रिमण्डल और जमीन्दारों पर उनके लिए तकाजा करती रहे और बेकार झगडे मे अपनी शक्ति का अपव्यय न करके उसे रचनात्मक रीति से किसानो की दशा सुधारने मे लगावे। पर दुर्भाग्यवश उसकी शक्ति का बडा हिस्सा मन्त्रिमण्डल के विरोध मे ही खर्च हुआ। जहाँ सत्याग्रह ठाना गया वहाँ मन्त्रिमण्डल को काफी कष्ट उठाना पडा, बदनामी भी उठानी पडी।

१२३—कानपुर की मजदूर-कमिटी और मेरी सख्त बीमारी

इस समझौते को पूरा करते-करते मै बीमार पड गया। कुछ दिनो के लिए, १९३७–३८ के जाड़ो मे, अपने गाँव चला गया। कुछ आराम करके मुझे फिर कानपुर की मजदूर-कमिटी के काम मे लगना था, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। मै वर्किंग कमिटी की बैठक मे वर्धा गया। वही से कानपुर आनेवाला था। रास्ते मे शायद कुछ खाने मे गलती हो गयी। पीछे शक हो गया कि खाने मे जहर का असर आ गया था। जब लखनऊ होते कानपुर पहुँचा तो तबीयत खराब हो गयी। पर कमिटी का काम करता गया। जहाँ तक जाँच का काम था, समाप्त किया। इस कमिटी मे कुछ मुझ-जैसे तटस्थ लोगो के अलावा मिल-मालिक और मजदूर दोनो के प्रतिनिधि भी मेम्बर थे। जल्दी ही हमे इस बात का अनुभव हुआ कि दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो को साथ लेकर कमिटी का काम पूरा करना कठिन

होगा, यदि ऐसे लोग मेम्बर होते जो मिल-मालिको और मजदूरो की बात समझ-बूझकर अपनी राय दे सकते—जो सीधे उनके ऐसे प्रतिनिधि न होते जिनको उनके कहने के मुताबिक ही राय देनी पडे, तो इतनी कठिनाई न होती। वहाँ भी शायद उनपर ऐसी मजबूरी नही थी। पर सारी जाँच एक ही जगह और उस जगह के भी एक ही प्रकार के कारखाने के सम्बन्ध मे थी। वही के मिल-मालिको और वही के मजदूरो के प्रतिनिधियो के लिए अपनी नैतिक जिम्मेदारी भी आ जाती थी कि वे उनके ही विचारो का प्रतिनिधित्व करे। इन विचारो से गवर्नमेण्ट ने श्री शिवराव को एक सदस्य मुकर्रर कर दिया जिनको मद्रास-प्रान्त मे मजदूर-सगठन का काफी अनुभव था। प्रो० रुद्र पहले से ही मेम्बर थे। यद्यपि मिल-मालिक और मजदूर-सभा के प्रतिनिधि जाॅच-कमिटी के सामने पेश होनेवाले कागजो और गवाहियो के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ और जिरह वगैरह कर सकते थे, और उन्होने किया भी, तथापि अन्तिम रिपोर्ट का भार हम तीनो पर ही रह गया। मै बीमार होने पर भी इजहार लेने वगैरह का काम समाप्त कर सका। हाँ, मिलो मे घूमकर मै सब बाते देख न सका, क्योकि बहुत कमजोर हो गया था। इसलिए काम समाप्त करके मै पटने आया। सोचा कि कुछ आराम करके, और मेम्बरो से मिलकर, रिपोर्ट तैयार की जायगी।

पटने मे प्रान्तीय कमिटी की बैठक थी। उसमे उस लगान-कानून-सम्बन्धी समझौते पर विचार होनेवाला था। वहाँ बहुत बहस हुई। प्रान्तीय कमिटी ने उसे बहुत बडे बहुमत से मजूर किया। पर मुझे अभी कानपुर की कमजोरी सता रही थी। यहाँ भी काफी परिश्रम पडा। मै प्राय दो बार काम करते-करते बेहोश हो गया। पर मैने अपनी इस दशा को किसी पर जाहिर नही होने दिया। मै चाहता था कि उसी दिन काम पूरा करके, आराम करने के लिए, जीरादेई चला जाऊँ। उसी इरादे से चला भी। अनुग्रह बाबू गया-जिले मे किसी काम से गये थे। वहाँ दाऊद-नगर के पास, रात के समय, उनकी मोटर सडक की पटरी से उतरकर दरख्त से लड गयी। वह बहुत सख्त घायल हो गये। उनके साथ पडित पारसनाथ त्रिपाठी थे जो वही मर गये। मोटर चलानेवाला भी घायल हुआ, पर विशेष नही, अनुग्रह बाबू किसी तरह पटने लाकर अस्पताल मे रखे गये। मेरे कानपुर जाने के पहले ही यह घटना हो चुकी थी। मै उनके कष्ट को देखकर बहुत दुखी रहता। मैने सोचा कि जीरादेई जाने के समय उनको अस्पताल मे देखकर उधर ही से स्टीमर पर चला जाऊँगा—ऐसा ही किया भी। पर स्टीमर पर पहुंचते-पहुँचते कुछ ऐसा परीशान हो गया कि वहाँ जाकर तुरत लेट गया। बडी कठिनाई से किसी तरह सोनपुर की गाडी मे सवार हो सका। पर इत्तफाक से मेरे भतीजा जनार्दन जमशेदपुर से छुट्टी मे उसी गाडी से घर आ रहे थे। उन्होंने मेरे लिए जगह बनायी।

हम दोनो भटापोखर-स्टेशन पर रात के नौ बजे पहुँचे। वहाँ रेल से उतरते ही जोरों से क आना शुरू हो गया, जैसा कानपुर मे भी हुआ था। मै किसी तरह पालकी पर जीरादेई पहुँचा। मै सोचता था कि वहाँ कुछ दिन आराम कर लेने से सब अच्छा

हो जायगा। पर रात को हालत खराब हो गयी। जनार्दन और मृत्युञ्जय उस दिन वही थे। हालत बिगडती देख पटने मे खबर कर दी। सीवान के डाक्टर सवेरे पहुँचे। कुछ देर के बाद छपरे से भी डाक्टर सूर आ गये। सबको शक था कि खाने मे जहर का असर था। वे उसी की चिकित्सा करने लगे। रात मे पटने से डाक्टर बनर्जी और डाक्टर शरण भी पहुँच गये। दो-तीन दिनो मे हालत सुधरी। मगर अब जोरो से दमा का दौरा शुरू हो गया। डाक्टर घोषाल भी पटने से पहुँच गये थे। एक सप्ताह तक वही पर दवा होती रही। ज्यों ही डाक्टरो ने देखा कि मै पटने लाने लायक हो गया हूँ, वे मुझे पटने ले आये। यहाँ मै अस्पताल मे ही रखा गया। घर के लोग भी साथ थे। बीमारी कुछ दिनों तक जोर पर रही। पर आहिस्ता-आहिस्ता कम हुई। कुछ दिनो मे मै भी उसी काटेज मे ले जाया गया जहाँ अनुग्रह बाबू थे। यद्यपि हम दोनो एक ही जगह थे—वह नीचे के कमरे मे और मै ऊपर के, तथापि हम लोग कई दिनो तक मिल नही सके। वह तो चारपाई पर करवट भी नही बदल सकते थे। मै सीढी पर उतर-चढ नही सकता था। वही प्राय दो महीनों तक मै रहा। आहिस्ता-आहिस्ता कुछ शक्ति भी शरीर मे आयी। कुछ दिनो के बाद मै नीचे उतर कर आता और अनुग्रह बाबू के पास बैठता। वह चारपाई पर लेटे-लेटे सरकारी कागजो को देखकर उन पर हुक्म लिखा करते। शुरू के चन्द दिनो को छोडकर, जब वह एकदम लाचार थे और कुछ काम नही कर सकते थे, उन्होने बराबर काम जारी रखा।

१२४—मन्त्रिमण्डल का इस्तीफा और हरिपुरा-काँग्रेस

जब हम दोनो उसी मकान मे थे, हरिपुरा-कॉंग्रेस का अधिवेशन हुआ। हम दोनो नही जा सके। कांग्रेस ने जुलाई १९३७ मे मन्त्रिमण्डल बनाया था। हरिपुरा-अधिवेशन १९३८ की फरवरी मे हुआ। उन सात-आठ महीनो मे मन्त्रिमण्डल ने अपना काम सभी सूबो मे जोरो से शुरू कर दिया था। पर अभी तक कोई काम पूरा नही हो सका था। इसी समय एक अडचन आ पडी। कॉंग्रेस के चुनाव-पत्र मे एक वादा यह भी था कि हम राजबन्दी लोगों को छुडायेगे। इसका प्रयत्न वे करने लगे, पर पूरी सफलता न होती। इसी बीच अण्डमन-टापू के राजबन्दियो ने अनशन आरम्भ कर दिया। बहुत कष्ट के बाद भारत-सरकार इस बात पर राजी हुई कि वे टापू से हटाकर हिन्दुस्तान मे अपने-अपने सूबे मे भेज दिये जायँ। जब वे यहाँ आ गये तो अब प्राय प्रान्तीय सरकारो के अधिकार मे हो गये। इस तरह उनको मुक्त करने का प्रश्न आया। मन्त्रिमण्डल उन्हे छोडना चाहता था। पर गवर्नर इस पर राजी नही होते थे। मेरी बीमारी की हालत मे ही मौलाना अबुलकलाम आजाद पटने आकर मुझसे अस्पताल मे मिले। मै उनसे बहुत बाते न कर सका। वह यहाँ से जाकर सरदार बल्लभभाई और महात्माजी से मिले। सबका फैसला हुआ कि गवर्नर यदि राजबन्दियो को छोडने पर राजी न हो तो मन्त्री लोग इस्तीफा दे दे। युक्तप्रदेश और

बिहार मे, मन्त्रिमण्डल ने बहुत जोर लगाया, पर गवर्नर राजी न हुए। अन्त मे, हरिपुरा-कांग्रेस मे जाने के पहले, मन्त्रिमण्डल ने दोनो जगहो मे इस्तीफा दे दिया। उसे गवर्नर ने उस समय मजूर नही किया। यह कहकर बात टाल रखी कि जब तक वह इस बात पर विचार करते है और दूसरे मत्री ढूँढते है तब तक वे काम जारी रखे। बिहार के और मत्री लोग तो हरिपुरा चले गये, सिर्फ अनुग्रह बाबू चारपाई पर पडे काम करते रहे। मै भी वही उनका साथ देता रहा।

इस इस्तीफा का असर देखना था। यद्यपि एक प्रकार से वायसराय और गवर्नरो ने अपने विशेष अधिकार को काम मे न लाने का वचन दे दिया था तथापि यह पहला ही अवसर था जब उन्होने उसे काम मे लाना चाहा। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने, युक्तप्रान्त और बिहार मे, उसे नही माना, पदत्याग कर दिया। यह बात सारे देश मे और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पर भी जाहिर हो गयी कि कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपनी बात पर अडा रहेगा, यदि वह ऐसा न करने पावेगा तो पद-त्याग कर देगा—अपनी बात न छोडेगा। यह पहला इम्तहान था जिसमे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और मन्त्रिमण्डल दोनो की परीक्षा हो रही थी। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने मन्त्रिमण्डल की बात मान ली और राजबन्दियो को छोडने का भार उन पर ही दे दिया। वहाँ हरिपुरा मे इस्तीफा की खबर पहुँचते ही वायुमण्डल एकदम बदल गया। जो लोग मन्त्रि-पद के विरोधी थे, और कहा करते थे कि मन्त्रि-पद ग्रहण कर लेने पर ये लोग अपनी जगहो के साथ चिपके रह जायँगे तथा अपने वादे भी भूल जायँगे, उनकी भी आँखे खुल गयी—यदि वे सचमुच ऐसा मानते थे तो उनको भी अपने विचार बदलने पडे। मै तो कांग्रेस मे जा ही न सका, पर जो कुछ सुना उससे मालूम हुआ कि इस इस्तीफा के कारण जो थोडा-बहुत विरोध मन्त्रि-पद ग्रहण करने के सम्बन्ध मे था वह अब जाता रहा।

हरिपुरा-कांग्रेस का समारोह भी अपूर्व था। श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापति थे। वहाँ का प्रबन्ध इतने बडे पैमाने पर और इतने खर्च के साथ किया गया था कि उसका मुकाबला अभी तक और किसी अधिवेशन ने नही किया। हम लोगो के अस्पताल मे रहते-रहते ही हरिपुरा से लोग वापस आ गये। इस्तीफे भी वापस हो गये। मन्त्रिमण्डल फिर काम करने लगा। अभी तक जो कार्यक्रम बन चुके थे उनका काम सात-आठ महीनो मे पूरा नही हो पाया था, इसलिए मन्त्रिमण्डल का फिर अपनी जगह पर आ जाना अच्छा ही हुआ। अब अधिक उत्साह के साथ काम होने लगा, क्योकि कोई कह नही सकता था कि कब और किस विषय को लेकर फिर इस्तीफा देना पडे, इसलिए जो कुछ हो सके, कर गुजरना ही अच्छा होगा।

१२५—बिहार की मजदूर-कमिटी

मन्त्रिमण्डल ने निश्चय किया कि बिहार के मजदूरो की हालत जॉचने और सुधारने के लिए एक कमिटी बनायी जाय। कानपुर का काम एक प्रकार से समाप्त हो चुका था। इसलिए मै अब इस काम को अपने हाथ मे ले सकता था। कमिटी नियुक्त

हुई। मै उसका अध्यक्ष बनाया गया। अपनी अस्वस्थता के कारण कानपुर का काम मैं अपने सन्तोष के लायक नही कर सका था। वहाँ की रिपोर्ट पर जब गवर्नमेण्ट ने कार्रवाई करनी चाही तो मिल-मालिको का विरोध हुआ। मजदूरो की ओर से हडताले हुई। नतीजा यह हुआ कि बहुत दिनो तक कशमकश चलता रहा। मुझे मालूम नही कि हमारी सिफारिशों मे कितनी मजूर हो सकी। मुझे इसका अफसोस बना ही रह गया कि यदि मैं स्वस्थ होता और समय कुछ अधिक लगा सकता तथा कानपुर जाकर रिपोर्ट देने के पहले दोनों पक्षो से खुलकर बाते कर लेता, तो शायद रिपोर्ट का इतना जबरदस्त विरोध न होता, हो सकता है कि सिफारिशो मे भी कुछ हेरफेर होता—कम से कम जो भी सिफारिशे होतीं, मिल-मालिकों मे इतना कडवापन नही आता।

जो हो, अब तो वह बात बन नही सकती थी। पर बिहार मे फिर उसी प्रकार का काम मुझे करना पडा और वहाँ से भी यहाँ की समस्या अधिक जटिल थी, क्योकि वहाँ तो केवल एक ही शहर के एक ही प्रकार के कारखानो के मजदूरो की हालत जाँचनी थी। पर यहाँ कमिटी के जिम्मे सभी प्रकार के मजदूरो की—जो कारखानो मे काम कर रहे थे—हालत जाँची गयी। जहाँ तक मै समझता हूँ, जितने प्रकार के कारखाने हिन्दुस्थान मे है प्राय सभी प्रकार के बिहार मे मौजूद है। शायद बहुत चीजो मे बिहार और सभी सूबो से इस बात मे बढा हुआ है। यहाँ पर खानों का काम बहुत फैला हुआ है। कोयले की खाने इतनी है जितनी किसी भी दूसरे प्रदेश मे नही, या यो कहे कि कोयले की जितनी खाने बिहार मे है उतनी सारे हिन्दुस्थान के अन्य सभी सूबो को मिलाकर भी नही है तो ठीक ही होगा। यही हालत लोहे और ताँबे की खानों की है। अबरख की खाने भी इतनी है कि और किसी भी सूबे मे उतनी नही है, सब सूबो को मिलाकर भी नही—शायद सारे ससार के और किसी देश मे इतनी नही जितनी बिहार मे है। और कई चीजे भी थोडी-बहुत बिहार की खानो से ही निकलती है।

ऊख की खेती भी यहाँ काफी होती है। पिछले बारह वर्षो मे चीनी के कारखाने भी बहुत बन गये है। युक्त-प्रदेश को छोडकर और किसी सूबे मे उतने कारखाने नही है जितने बिहार मे। जमशेदपुर मे ताता-कम्पनी का लोहे का कारखाना हिन्दुस्थान का ही नही, एशिया का सबसे बडा कारखाना माना जाता है और ससार के बडे से बडे कारखानों मे एक है। वहाँ और भी बहुत किस्म के कारखाने है—टिन के पत्तर बनाने के लिए—तार, टेलीफोन और बिजली के तार बनाने के लिए—खेती के औजार (फावडा, गैता वगैरह) बनाने के लिए—लोहे के तार और काँटे बनाने के लिए, अनेकानेक कारखाने है। कई तो जमशेदपुर के आस-पास भी बने है। इसके अलावा और भी लोहे के कारखाने दूसरे स्थानो मे है। लाह की खेती छोटानागपुर के जगलो मे विशेष होती है। जितनी लाह बिहार मे पैदा होती है उतनी और कही नही। लाही से लाह बनाने के कारखाने स्वाभाविक रीति से छोटानागपुर और सताल-परगने मे है, जहाँ जगलो से काफी लाही मिलती है। जहाँ-तहाँ जूट बुनने और रूई से कपडा बनाने के कुछ कारखाने भी है, पर और सूबो के मुकाबले मे कम है।

इस तरह बिहार की कमिटी को प्राय सभी प्रकार के मजदूरों की हालत जाँचनी थी। जमशेदपुर के कारखानो के मजदूर एक आधुनिक ढग के नये बने हुए बडे शहर मे रहते है। वहाँ के कारखाने दिन-रात चौबीसो घटे काम करते है, साल मे एक दिन भी बन्द नही होते। कुछ मजदूर ऐसे है जो गाँवो मे अपने-अपने घरो मे रहते है और साल मे चार-पॉच महीने ही चीनी के कारखानो मे काम करते है। कुछ मजूर और जगहो की तरह विभिन्न कारखानों मे आवश्यकतानुसार बराबर कुछ न कुछ करते रहते है। फिर खानो के अन्दर काम करनेवालो की हालत इन सबसे भिन्न है, क्योकि वहाँ का काम ही दूसरे ढग का है। खानो मे भी सब काम करनेवाले न तो एक तरह का काम करते है और न उनके रहन-सहन का एक-सा तरीका ही है। झरिया मे कोयले की खानो का जमघट है। चन्द मीलों के अन्दर बहुतेरी खाने है। इसलिए वहाँ मजदूरो की आबादी कुछ मिली-जुली-सी है। अबरक की खाने, एक दूसरी से अलग, जगलो मे और पहाडियो पर दूर-दूर है। इसलिए उनके मजदूरो के रहने का किसी एक स्थान मे प्रबन्ध नही है। झरिया मे तमाम कारखानो के मजदूरो के लिए एक ही पानी-कल से पानी मिलने का प्रबन्ध है। ऐसा अबरक-खानवालो के लिए नही है और शायद हो भी नही सकता है। इस तरह बहुत प्रकार के कामो के कारण बहुत तरह के मजदूर है। उनके रहन-सहन के प्रबन्ध मे और मजदूरी मे भी स्वभावत बहुत अन्तर है। बिहार-कमिटी को इन सबकी जाँच करके सिफारिश करनी थी। काम के विस्तार और गुरुता को देखकर मै सहम गया, पर छुटकारा न पा सका। मैने भी सोच लिया था कि समय अधिक लगे तो लगे, पर इसे अच्छी तरह से और पूरा-पूरा करना चाहिए। ऐसा ही किया भी गया।

इसके अलावा और भी प्रश्न उपस्थित थे जिनके सम्बन्ध मे मुझे कुछ न कुछ करना पडा। मन्त्रिमण्डल बनते ही ऊख-सम्बन्धी एक प्रश्न उसके सामने उपस्थित हो गया जिस पर उसे शीघ्रता से कुछ करना ही था। बिहार मे चीनी के बहुतेरे कारखाने बन जाने के कारण यहाँ के किसान ऊख की खेती बहुत करते है और ऊख को कारखानो के हाथ बेच देते है। कारखानो के बनने के पहले काश्तकार उतनी ही ऊख की खेती करता था जितनी को वह खुद अपने कोल्हू से पेर कर गुड बना सकता था। खेती के काम का कुछ ऐसा सिलसिला है कि जिन दिनो मे ऊख पेरने का काम होता है उन दिनो मे बैलो को और दूसरा काम बहुत नही रहता, क्योकि ऊख पेरने का काम कार्तिक के बाद शुरु होता है जब रबी बोने का काम खत्म हो गया रहता है। इसलिए किसान उतने ही अन्दाज से ऊख बोया करते थे जितने को वे अपने बैलो से पेर सके। इस तरह ऊख की खेती का दूसरी फसलो के साथ एक स्वाभाविक निपात हो जाया करता था। जब से कारखाने बन गये, किसान ऊख पेरने के झगडे से छुट्टी पा गये। वे उसे कारखाने तक या नजदीक के स्टेशन तक पहुँचा देने का ही काम करते और पेरने का काम कारखाने कर लेते। ऊख से नगद पैसे भी मिलते है। इसलिए ऊख की खेती बहुत बढ़ गयी। अगर किसी कारण कारखाने ऊख न ले तो किसान बिलकुल

बेबस हो जाते है। उनकी साल-भर की कमाई बरबाद हो जाती है। ऐसी परिस्थिति १९३४ मे हुई थी जब भूकम्प के कारण बहुतेरे कारखाने बेकार हो गये थे। गवर्नमेण्ट और रिलीफ-कमिटी को, खेतो मे लगी ऊख की फसल को बचाने के लिए, काश्तकारो को फिर कोल्हू चलाने के लिए प्रोत्साहन देना पडा था। लाखो रुपये खर्च करके कोल्हू बाँटे गये थे। तो भी इन कोल्हुओ से काम पूरा होनेवाला न था। पर कुछ दिनो के बाद कारखानो की मरम्मत हो सकी। वे चालू हो गये। किसानो की फसल का कुछ हिस्सा बच सका। किसानों को ऊख का दाम कारखानेवाले दिया करते है। गवर्नमेण्ट ने देखा कि किसान कारखानो के इतने परवश है कि वे जब चाहे तब दाम घटा सकते है। इसलिए कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनने के बहुत पहले से ही ऊख का दाम मुकर्रर करने का अधिकार कानून द्वारा गवर्नमेण्ट ने अपने ही हाथ मे ले रखा था। वह कह दिया करती कि इतने आने फी मन से कम दाम पर कोई ऊख नही खरीद सकता—हॉं, कोई यदि अधिक देना चाहे तो दे सकता है। इस तरह किसानो को एक रकम अवश्य मिल जाती। यदि कारखानो मे होड हुई तो उससे अधिक भी मिल सकती थी।

१९३६ मे किसी कारण ऊख की खेती कम हुई। कारखानो मे खूब होड हुई। इससे किसानो को अधिक दाम मिले। उन्होने दूसरे साल ऊख की खेती अधिक कर दी। १९३७ मे इतनी ऊख थी कि मालूम होता था, कारखाने सब ऊख नहीं ले सकेगे। चीनी का दाम भी इतना गिर गया कि गवर्नमेण्ट का मुकर्रर किया हुआ दाम भी बहुत कम था, कारखाने उतने दाम पर भी ऊख लेने को तैयार नही थे। नतीजा यह हुआ कि किसान बहुत तबाह हुए। उसी समय चन्दरोजा मिनिस्ट्री बनी थी। उसने भी कुछ कोशिश की, पर वह अप्रैल मे आयी जब ऊख का काम प्राय समाप्ति पर रहता है। उसके पहले से ही हमने कारखानेवालों से बातचीत करनी शुरू कर दी थी कि वे किसी तरह से ऊख जरूर ले ले। कुछ राजी भी हुए। अपने इलाके की ऊख उन्होने ले ली। जब तक वह खत्म न हुई, कारखाने चलते रहे, यद्यपि मामूली तौर पर आधे अप्रैल के बाद ऊख से चीनी की मात्रा कम निकलती है। जब जुलाई मे कॉंग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बना तो उसे इस विषय पर विचार करना था कि जो अनुभव किसानो को १९३७ के मार्च-अप्रैल मे हुआ था और उन्हे जो कार्रवाई उस समय करनी पडी थी उसका सामना उनको फिर न करना पडे। इस सम्बन्ध मे मेरी और इस विभाग के मन्त्री डाक्टर महमूद से बाते हुई और एक कान्फ्रेन्स भी की गई। देखा गया कि ऊख की खेती सबसे अधिक युक्तप्रान्त और बिहार मे ही होती है। इसलिए जो कुछ करना हो, दोनो सूबे मिलकर करे तो ठीक होगा। दोनो के सामने समस्या एक थी। दोनो मे कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे। इसलिए दोनो सूबे के मन्त्रिमण्डलो ने मिलकर एक कान्फ्रेन्स की। उसी मे अपना कार्यक्रम भी ठीक किया। मुझे भी उसमे भाग लेना पड़ा था। चूँकि हिन्दुस्तान मे जितनी चीनी बनती है उसका तीन-चौथाई से भी ज्यादा हिस्सा इन्ही दोनो प्रान्तो मे बनता है, इसलिए लोगो ने सोचा कि ये दोनो मिलकर जैसा प्रबन्ध चाहेगे, कर सकेंगे।

दोनो सूबो ने कानून बनाये। उसके अनुसार केवल ऊख का ही नही, चीनी का भी दाम ठीक करने का अधिकार गवर्नमेण्ट ने अपने हाथो मे लिया। कुछ कारखानेवालो ने विरोध किया। पर अन्त मे सब राजी हुए। कारखानेवालो का एक सघ बना। वही सभी कारखानो पर नियत्रण रखता। जो कारखाना सघ मे शरीक न हो उसे ऊख पेरने की सनद (लाइसेंस) गवर्नमेण्ट न देगी। इस तरह, जो न भी चाहते थे उनको भी मजबूरन उस सघ मे शरीक होना पडा। किसानो को उस साल दाम ठीक मिला। मेरे दिल मे कुछ सन्देह था, क्योकि मै समझता था कि कारखानो के साथ यदि ज्यादा सख्ती की जायगी तो हो सकता है कि वे इन दो सूबो के बाहर के कारखानो के साथ, जहाँ किसी तरह का हस्तक्षेप या प्रतिबन्ध नही था, मुकाबला न कर सके। इसलिए मैने कहा कि बेहतर हो यदि सभी सूबो के साथ मिलकर कुछ किया जाय। भारत-सरकार कुछ करने पर तैयार नही थी। इसलिए सूबो के साथ ही बातचीत हो सकती थी। दूसरे सूबो के मत्रिमण्डल—कॉग्रेसी मत्रिमण्डल भी—इन दोनो के साथ मिलकर अपने यहॉ के कारखानो को नियत्रित करने पर राजी न हुए। इसका नतीजा यह हुआ कि उन सूबो के कारखानो को, विशेषकर देशी रियासतो के कारखानो को, बहुत सुविधा मिल गयी। वहॉ नये कारखाने बने। पुरानो ने बहुत मुनाफा किया। बिहार के एक-दो कारखाने बिक कर सूबे से बाहर चले गये। पर इसमे कुछ सन्देह नही कि जो कुछ कॉग्रेसी मत्रिमण्डल ने किया उससे किसानो को उस समय बहुत लाभ पहुँचा। और, जब तक कॉग्रेसी मत्रिमण्डल रहा, लाभ होता रहा।

१२६—बिहार में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य और बाढ़-सम्मेलन

शिक्षा का विषय अत्यन्त महत्त्व रखता है। डाक्टर महमूद इस विभाग के चार्ज मे थे। उन्होने चाहा कि मुझे वह पटना-युनिवर्सिटी के सिनेट का मेम्बर बना दे। मैने सिनेट की मेम्बरी से सन् १९२१ मे इस्तीफा दे दिया था। उन्होने बहुत जिद किया कि मुझे यह फिर से स्वीकार कर लेना चाहिए। श्री सच्चिदानन्दसिंह वाइस-चान्सलर थे। उन्होने भी इसरार किया। इसलिए मैने मेम्बरी ले ली। सिनेट की बैठक मे मैने एक प्रस्ताव पेश किया। उसका आशय यह था कि गवर्नमेण्ट शिक्षा की योजना सुधारने के प्रश्न पर विचार करे और इसके लिए एक किमटी नियुक्त करे जो प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की योजना बनावे। इस प्रस्ताव के उपस्थित करने के समय मै बीमार था। बडी मुश्किल से सिनेट की बैठक मे जा सका। पर मैने अपना भाषण लिख लिया था। एक मित्र ने उसे पढ दिया। उसमे प्रचलित शिक्षा-पद्धति की कडी समालोचना थी। कुछ सदस्यों ने, जिसमे विशेष शिक्षक ही थे, टीका की। पर प्रस्ताव सर्वसम्मति से मजूर हुआ। कुछ दिनो के बाद जब वह प्रस्ताव गवर्नमेण्ट के पास भेजा गया तो उसे मजूर करके मत्रिमण्डल ने एक कमिटी बना दी। मै भी उसका एक सदस्य बनाया गया। अध्यक्ष बनाये गये बम्बईवाले श्री के० टी० शाह।

मेरे प्रस्ताव के उपस्थित होने के पहले ही महात्मा गाधी ने एक योजना उपस्थित करके शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न को सारे देश की जनता के सामने ला दिया था। उन्होने कई लेख 'हरिजन' मे लिखे। उनकी योजना की मुख्य बात यह थी कि बच्चो की शिक्षा, जो आज केवल अक्षरो द्वारा दी जाती है, केवल अक्षरो अर्थात् पुस्तको द्वारा ही न दी जाकर कुछ हुनर या हाथ की कला द्वारा दी जाय। उनका कहना था कि यदि ऐसा किया जायगा तो बच्चे जो काम करके कमायेगे उसी से प्राथमिक शिक्षा का खर्च भी निकल आवेगा। उन्होने इस तरह एक तीर से दो शिकार करने की योजना बना दी। उसके अनुसार शिक्षा भी आज की शिक्षा से बेहतर होगी और उसके लिए खर्च भी गवर्नमेण्ट को नही करना पडेगा। इसके पहले जब कभी यह प्रश्न उठाया जाता था कि सभी बच्चो की नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो गवर्नमेण्ट की ओर से यही उज्र पेश किया जाता था कि उसके पास इतने रुपये नही कि वह इसे कर सके। स्वर्गीय गोखले के समय से ही इस बात पर जनता की ओर से जोर दिया जाता रहा और गवर्नमेण्ट द्रव्याभाव के बहाने से विरोध करती आ रही थी। कही-कही नि शुल्क शिक्षा का और कही-कही नि शुल्क एव अनिवार्य शिक्षा का भी प्रयोग किया गया था। पर वह इतने कम स्थानो मे और इतने छोटे पैमाने पर ब्रिटिश भारत मे हुआ था कि उससे यह आशा नही की जा सकती थी कि यह प्रयोग सारे भारत मे कभी पूरा हो सकेगा।

बिहार के छपरा-जिले मे कुछ हद तक नि.शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। इसमे मुख्य दिलचस्पी लेनेवाले दो व्यक्ति थे, मेरे भाई साहब बाबू महेन्द्रप्रसाद और छपरा-जिले के स्कूलो के उन दिनो के डिस्ट्रिक्ट-इन्सपेक्टर बाबू राधिकाप्रसाद। पर गवर्नमेण्ट ने यद्यपि इसे नामजूर नही किया तथापि कभी इसे बहुत प्रोत्साहन भी नही दिया। किसी तरह से यह प्रयोग चल रहा था। गाधीजी ने अपनी योजना से हलचल-सी मचा दी। उन्होने कुछ ऐसे लोगों का, जो शिक्षा से प्रेम रखते है और उसके प्रचार मे तत्पर रहते है, एक सम्मेलन वर्धा मे किया। वहाँ उनकी योजना पर विचार हुआ। सम्मेलन ने एक उपसमिति बना दी। जामे-मिल्लिया (दिल्ली) के प्रमुख डाक्टर जाकिर हुसेन उसके अध्यक्ष हुए। सब-कमिटी ने एक योजना तैयार की। वह वर्धा-योजना के नाम से प्रख्यात हुई। गाधीजी की योजना का ही उस सब-कमिटी ने बहुत अशो मे समर्थन किया और प्राथमिक शिक्षा-दस्तकारियो द्वारा देने की सिफारिश की। सब-कमिटी खर्च के सम्बन्ध मे उस हद तक जाने को तैयार नही थी जहाँ तक गाधीजी का विचार था, पर वह भी इसका विरोध नही करती कि खर्च का कुछ अश यदि बच्चो की दस्तकारियों से निकल आवे तो निकाल लेना चाहिए।

इस तरह जो शिक्षा-शास्त्री वहाँ जमा हुए उन्होने योरप और अमेरिका के शिक्षा-शास्त्रियो के विचारों से गाधीजी के विचारो को पुष्टि दी। और मालूम हुआ कि बिना उनके विचारो और पुस्तकों का मनन किये ही गाधीजी ने जो कुछ कहा है वही आधुनिक शास्त्रियो के भी विचार है। इसलिए जब मैंने अपना प्रस्ताव पेश

किया था तो मेरे दिल मे यह बात भी थी कि वर्धा-योजना पर भी यह कमिटी विचार करेगी। यदि इसकी राय भी उससे मिल गयी तो गाधीजी जो कराना चाहते थे वह बिहार मे गवर्नमेण्ट आसानी से कर सकेगी। मैंने इस कमिटी का मेम्बर होना स्वीकार कर लिया। इसका काम भी जारी हो गया। पर इस कमिटी के काम का भार इसके अध्यक्ष श्री के० टी० शाह पर ही अधिक रहा।

बिहार-सरकार के शिक्षा-विभाग ने एक और कमिटी मुकर्रर की। उसका भी मै एक सदस्य बनाया गया। हिन्दी-हिन्दुस्थानी के सम्बन्ध मे, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नागपुर-अधिवेशन मे, मैंने अपने विचार प्रकट किये थे। बिहार मे यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यहाँ की पाठ्य-पुस्तको मे ऐसी भाषा कहाँ तक चल सकती है जिसे हिन्दी और उर्दू जाननेवाले दोनो ही मान्य समझे, और इसके लिए शब्दकोष बनाने का भी प्रयत्न किया जाय। डाक्टर महमूद ने मुझे ही इसका प्रमुख बनाया, पर मैंने इसे स्वीकार नही किया, क्योकि मेरे पास दूसरे काम बहुत हो गये थे, इसलिए मै इसमे न तो काफी समय दे सकता था और न ऐसे गुरुतर काम की योग्यता अपने मे समझता था। इसलिए इसके अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब बनाये गये। इसका काम भी आरभ हुआ। इस प्रकार मेरे जिम्मे अपने सूबे मे बहुत काम आ गया। वर्किंग कमिटी द्वारा नियुक्त पारलेमेण्टरी कमिटी का मेम्बर तो मै था ही। १९३७ से १९३९ तक का बहुत समय प्राय इन्ही कामो मे लगा। समय काफी लगा; क्योकि जिन प्रश्नो पर विचार करना था वे गम्भीर थे और उनका निपटारा आसानी से नही किया जा सकता था। जो सिफारिशे होती उनका भी असर काफी पडता। इसलिए यद्यपि मै मत्रिमण्डल मे नही था तथापि अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार यथासाध्य मदद देना मेरा आवश्यक कर्त्तव्य हो गया था।

एक और विषय था जिस पर बहुत विचार किया गया, पर कुछ रास्ता अभी तक नही निकला। वह है बिहार के कुछ हिस्सो मे बाढ के प्रकोप का। छपरा और पटने के बीच मे सरयू, गगा, सोन और गडक नाम की चार बडी-बडी नदियो का सगम है। जब कभी इन नदियो के उद्गम-स्थान अथवा रास्ते मे लगातार बहुत बरसात हो जाती है तो इनमे एक साथ ही बाढ आ जाने से इनके आसपास के स्थानो की हालत बहुत ही खराब हो जाया करती है। ऐसा पहले से ही होता चला आ रहा है। पर १९३४ के भूकम्प के बाद से बाढ का प्रकोप बढ़ गया है। कुछ लोगो का अनुमान है कि भूकम्प के कारण नदियो की गहराई कम हो गयी है, उनमे उनका पानी निकाल ले जाने की अब शक्ति नही रह गयी जितना वे पहले निकाल ले जाया करती थी। इसलिए अब पानी दूर तक बाहर फैल जाता है और जहाँ जाता है वहाँ पानी की गहराई भी अधिक होती है। पर इस इलाके के अलावा, जहाँ नदियो के जमघट के कारण अक्सर बाढ आया करती है, बिहार के—विशेषकर उत्तर-बिहार के—और भी हिस्से है जहाँ बाढ बहुत आया करती है। बाढ के कारणो मे, लोगो का मत है, एक जबरदस्त कारण रेलवे के बाँध भी है जो पानी को रोक देते है और उसे आसानी से बहकर निकलने

नही देते। इन बाँधों मे काफी पुल और पानी के निकास के रास्ते नही है। कही-कही तो इन बाँधो के कारण बहुत अनर्थ हो जाया करता है। रेलवेवाले, लोगो की कुछ सुनते नही। रेलवे के अलावा दूसरे भी बाँध है जो खास तौर से पानी रोकने के लिए ही बनाये गये है। उनके असर के सम्बन्ध मे भी मतभेद की गुंजाइश है। इसमे सन्देह नही कि बाढ का प्रश्न बिहार के लिए बहुत महत्त्व रखता है। मैंने इस सम्बन्ध के कुछ लेख लिखे थे और जब कॉग्रसी मन्त्रिमण्डल बना तो उसको इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक जान पडा। उसने एक सम्मेलन किया जिसमे अनुभवी इन्जीनियरो और जनता के प्रतिनिधियों को बुलाया। बहुत विचार-विमर्श हुआ। पर कोई सतोषजनक फल नही निकला, क्योकि न तो कारण के सम्बन्ध मे सब एकमत हो सके और न उपाय के सम्बन्ध मे। कान्फ्रेन्स मे मै बीमारी के कारण शरीक न हो सका। पर मेरे विचार वहाँ पेश हुए थे। बिहार के ये बडे-बडे प्रश्न थे जिनसे मेरा विशेष सम्बन्ध था। इनके अलावा और बहुतेरे छोटे-मोटे प्रश्न हुआ करते जिनके सम्बन्ध मे मेरी राय लोग पूछ लिया करते। दूसरी जगहो के मन्त्रिमण्डलों से मेरा उतना सम्बन्ध न रहा जितना बिहार के। यह स्वाभाविक था।

१२७—गांधी-सेवा-संघ

मै अस्पताल मे मार्च के अन्तिम सप्ताह तक रह गया। जब तबीयत कुछ अच्छी हो गयी और ताकत भी आ गयी तो वहाँ से निकला। गाधी-सेवा-सघ का वार्षिक सम्मेलन उस साल उडीसा मे, पुरी के पास 'डेलाग' गाँव मे, होनेवाला था। वही मै सीधे चला गया। महात्माजी भी वहाँ आनेवाले थे। मेरी बहन, मृत्युञ्जय की माँ और मेरी भौजाई भी साथ गयी। वहाँ हम लोग कई दिनो तक रहे। दूसरे सम्मेलनो की तरह यहाँ भी तात्त्विक विषयो पर चर्चा होती रही। सब लोग मिलकर एक साथ चर्खा चलाते। सध्या के समय जनता जमा हो जाती तो कुछ लोग व्याख्यान देते। गाधी-सेवा-सघ-सम्मेलन चार-पाँच ही बार हुए, पर इनका महत्त्व यह था कि वहाँ गाधीजी के समक्ष सभी सदस्यो को कई दिनो तक रहने का सुअवसर मिल जाता। सिद्धान्त की बातो पर आपस मे बहुत बहस होती। उपस्थित विषयो पर गाधीजी की सम्मति मिल जाती। जो सदस्य जहाँ जिस काम मे लगा रहता वहाँ उत्साह के साथ जाकर फिर काम करता।

सघ के सदस्य अधिकतर रचनात्मक काम मे ही लगे थे। कोई चर्खा-सघ द्वारा अथवा स्वतन्त्र रूप से खादी और चरखे के प्रचार-कार्य मे लगा था, तो कोई हरिजन-सेवा मे अपना समय लगा रहा था। कोई ग्राम्य उद्योगो को ही पुनर्जीवित और सगठित करना अपना मुख्य कर्तव्य मानकर उसी मे सलग्न था, तो कुछ लोग वर्धा-योजना के प्रचारार्थ स्थापित तालीमी सघ मे शिक्षा-प्रचार का काम कर रहा था। कुछ लोग गो-सेवा मे लगे थे जिसमे मुर्दा पशुओ की खाल निकालने, पकाने और उससे जूते, बाकस इत्यादि सामान बनवाना भी शामिल थे। विशेषकर इन्ही सब प्रवृत्तियो मे,

जिनके लिए गाधीजी ने प्रेरणा दी थी, सघ के लोग दत्तचित्त थे। कुछ ऐसे भी जरूर थे जो कॉग्रेस के 'सगठन का काम करते थे, जहॉ-तहॉ कॉग्रेस-कमिटियो की सेवा कर रहे थे। पर ऐसे सदस्यों की सख्या बहुत कम थी। वहॉ भी उनसे अधिकतर रचनात्मक काम करते रहने की ही अपेक्षा रहती थी। जब कौन्सिलो का चुनाव होने लगा और कुछ सदस्य उमीदवार बनाये गये तो इस विषय पर सघ के सम्मेलन मे बहुत चर्चा हुई थी। कुछ लोगो का विचार था कि सघ के लोगों को इस काम मे नही पड़ना चाहिए। पर सघ ने कुछ को इजाजत दी थी। इस विषय पर, मुझे जहॉ तक स्मरण है, दो सम्मेलनो मे विचार होता रहा। अब तो उसके सदस्य श्री जगलाल चौधरी मत्री और श्रीकृष्णवल्लभ सहाय पारलेमेण्टरी सेक्रेटरी हो गये थे। सघ ने उनसे वादा ले लिया था कि सघ से उनको जो निर्वाह-व्यय मिलेगा उसी से उनको सन्तुष्ट रहना पडेगा। इसलिए जब उनको कुछ वेतन के रूप मे मिलने लगा तो उन लोगो का निर्वाह-व्यय सघ की ओर से बन्द कर दिया गया। जो वेतन उन्हे मिलता था उसका भी पूरा-पूरा हिसाब वे सघ को देने लगे। सघ की सदस्यता, नैतिक-दृष्टि से, मनुष्य को—यदि वह सचाई से काम लेता—ऊँचा उठा सकती थी। उससे आशा रखी जाती थी कि गाधीजी के सत्य-अहिसा-सम्बन्धी सिद्धान्तो को वह यथासाध्य अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करेगा। सघ-सदस्यो मे से बहुतेरो का जीवन हम सबके लिए आदर्श हो सकता है।

इस सघ का उद्देश्य कभी कोई राजनीतिक दल तैयार करने का नही था। इसने कभी ऐसा किया भी नही। कभी इस सघ की ओर से किसी ने किसी चुनाव मे भाग नही लिया, चाहे वह कॉग्रेस का हो या म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड या असम्बली या कौन्सिल का। अधिकाश तो इन सभी सस्थाओ से अपने को अलग रखते थे। वे किसी चुनाव से सम्बन्ध नही रखते थे। अगर कही कोई चुनाव मे आता भी तो व्यक्तिगत रूप से, अपनी सेवा के बल पर, न कि सघ की सदस्यता से लाभ उठाकर। सघ मे सेठ जमनालाल बजाज, सरदार बल्लभभाई पटेल और मुझ-जैसे लोग भी थे जो कॉग्रेस की वर्किंग कमिटी के सदस्य थे तथा अपने-अपने स्थान मे कॉग्रेस के काम मे प्रमुख भाग लेते थे। स्वय गाधीजी सदस्य तो नही थे, पर मार्ग-प्रदर्शक तो थे ही। तो भी यह कहना बिलकुल बेबुनियाद था कि जैसे काँग्रेस के अन्दर स्वराज्य-पार्टी अथवा काँग्रेस-सोशलिस्ट-पार्टी बनी थी वैसी ही सस्था यह भी थी। इसका उद्देश्य सेवक तैयार करना था, उनके द्वारा रचनात्मक काम मे यथासाध्य मदद पहुँचाना था। उन सेवकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने जीवन और उदाहरण से गाधीजी के सिद्धान्तो का यथासाध्य प्रचार करते रहेगे। पर कुछ लोगो ने उस पर यह आक्षेप लगाया कि वह भी एक दल है। रामगढ-काँग्रेस के कुछ पहले जो सघ का वार्षिक अधिवेशन बगाल मे हुआ था, उसमे सघ को विघटित करने का निश्चय कर लिया गया।

१२८—ग्रामसुधार-योजना और नासिक में निवास

उडीसा मे ही हम लोगो को मालूम हुआ कि वहाँ की असम्बली की कॉग्रेस-पार्टी के अन्दर बहुत मतभेद चल रहा है—मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध कुछ लोगो को शिकायते है। सरदार बल्लभभाई और मै, पारलेमेण्टरी कमिटी के दो मेम्बर वहाँ मौजूद थे। हमने उचित समझा कि दोनों पक्षो से बाते कर ली जायँ और हो सके तो इस झगडे को तय कर दिया जाय। एक तरफ मन्त्रिमण्डल था और दूसरी ओर पडित नीलकण्ठदास, पडित गोदावरीश मिश्र प्रभृति थे। श्री गोपबन्धु चौधरी किसी दल के नही थे। वहाँ पर हमने सभी बाते सुनकर अपनी राय दे दी। श्री गोपबन्धुदास को, जो गाधी-सेवा-सघ की ओर से वही कटक मे आश्रम बनाकर रचनात्मक काम मे लगे हुए थे और कॉग्रेस-कमिटी से अलग हो गये थे, कॉग्रेस का काम सँभालने के लिए, दोनो पक्षो की राय से, कहा गया। हम समझते थे कि झगडा शान्त हो जायगा। पर ऐसा हुआ नही। पीछे इसके बहुत बुरे फल देखने मे आये जिसका जिक्र समय पर आवेगा।

एक घटना वहाँ हो गयी जो वर्णनीय है। जो लोग सम्मेलन मे गये थे उनमे से कुछ श्री जगदीश के दर्शनार्थ पुरी चले गये। उनमे हमारे घर की स्त्रियाँ भी थी। उनके सम्बन्ध मे तो नही, पर दूसरो के सम्बन्ध मे महात्माजी को इससे बहुत दु:ख हुआ। श्री जगन्नाथजी का मदिर अभी तक हरिजनो के लिए नही खुला है, अर्थात् हरिजन वहाँ उस तरह दर्शन-पूजा नही कर सकते जिस तरह सवर्ण हिन्दू। महात्माजी स्वय ऐसे मदिर मे नही जाते जहाँ हरिजन नही जा सकते है। उनका विचार है कि यदि उनको दर्शन-पूजा का अधिकार नही है तो हमे भी न होना चाहिए। इसलिए जब सम्मेलन मे आये हुए निकटवर्ती लोगो के सम्बन्ध मे उन्होने सुना कि वे भी दर्शनार्थ गये तो उनको चोट लगी। पुरी जाना वह बुरा नही मानते थे और न दर्शन-पूजा ही। पर दर्शन-पूजा हम वही तक करे जहाँ तक करने का अधिकार हरिजनो को भी है। इस बात की चर्चा वहाँ चली। जो लोग अपने को गाधीजी का अनुयायी समझते है उनको भी इतनी सख्ती कुछ खटकी। पर इससे हरिजनो के प्रति गाधीजी के प्रेम और सहानुभूति की गहराई का पता लग गया।

अस्पताल से निकलने पर डाक्टरो की राय थी कि मुझे अभी कुछ और आराम कर लेने की जरूरत है। इसलिए जब गर्मी शुरू हुई तो मैने निश्चय किया कि कुछ दिनो तक किसी स्वास्थ्यकर स्थान मे जाकर रह जाऊँ। इसलिए मैने नासिक मे जाकर रहने का निश्चय किया। वहाँ पर सेठ बिडला का एक मकान था जिसका वह 'खासकर हवा बदलने के लिए निवासस्थान' की तरह इस्तेमाल करते है। मैने वही जाकर ठहरने का निश्चय किया। सेठ रामेश्वरदास बिडला ने बम्बई से भी सब प्रबन्ध कर दिया। नासिक जाने का विचार एक और कारण से हुआ। मई के महीने मे बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। सोचा कि नासिक बम्बई के नजदीक है, वहाँ से आसानी से सभा मे शरीक हो सकूँगा।

नासिक जाने के पहले एक और काम था जिसके सम्बन्ध मे मुझे कुछ कर लेना था। बिहार-मन्त्रिमण्डल का विचार था कि गाँवो के सुधार के लिए सरकारी तौर पर कुछ काम किया जाय। इसके लिए वह एक विभाग बनाना चाहता था। इसके लिए एक ऐसी योजना बनानी थी जिसके अनुसार काम किया जाय। इस काम के लिए एक ऐसा आदमी भी चाहिए था जो उस दृष्टि से इस काम को चलावे जिसे मन्त्रिमण्डल पसन्द करता था। अब तक ग्राम-सुधार का काम गवर्नमेण्ट की ओर से कुछ भी नही हुआ था। यह पहला प्रोग्राम था। इसमे विशेषकर गाँवो के रहनेवालो की हालत हर तरह से सुधारने का ही विचार था। अब तक जो लोग सरकारी काम किया करते थे वे एक प्रकार से जनता के मालिक और शासक बनकर ही किया करते थे। जरूरत थी कि कुछ लोग सेवक बनकर काम करे। यही काम इस विभाग के जिम्मे लगाने का निश्चय किया गया। मैने एक योजना बनायी। गवर्नमेण्ट ने पडित प्रजापति मिश्र को इस विभाग का चार्ज दिया। दूसरे कार्यकर्त्ताओ की नियुक्ति भी हुई। इनमे बहुतेरे काँग्रेसी कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये। इसका यह कारण नही था कि कॉग्रेसी लोगो को नौकरी देनी थी। वह काम ही ऐसा था जिसका थोडा-बहुत अनुभव अगर किसी को था तो कॉग्रेसी कार्यकर्त्ताओ को ही, दूसरो को नही, क्योकि किसी ने बिहार-प्रान्त मे इस प्रकार का कोई काम किया ही न था। पर इनके साथ-साथ दूसरे लोग भी नियुक्त किये गये। समझा गया कि सबको कुछ दिनो के लिए शिक्षा देकर तैयार कर दिया जायगा। जो योजना मै बना रहा था वह पूरी नही हो पायी थी, इसीलिए पडित प्रजापति मिश्र नासिक मे जाकर मुझसे मिले। वही पर हमने उसे पूरा किया। जब तक यह विभाग काम करता रहा, उसी साँचे पर काम हुआ। मेरा विचार है कि इससे जनता की भलाई हो रही थी, पर मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा देने के बाद इसका रुख आहिस्ता-आहिस्ता बदलने लगा। अन्त मे गवर्नमेण्ट ने इसे तोड दिया।

नासिक-यात्रा मे मेरे साथ श्री चक्रधरशरण नही जा सके। उनका स्थान श्री अम्बिकाकान्तसिंह ने लिया। एक और साथी मिले जिनका कुछ जिक्र कर देना आवश्यक मालूम होता है। वह थे एक सज्जन जिनका नाम था श्री देवरातजी ब्रह्मचारी। वह कर्नाटक-प्रदेश मे समुद्र के किनारे पर बसे गोकर्ण नामक तीर्थस्थान के ब्राह्मण थे। मुजफ्फरपुर मे सुहृद-सघ के वार्षिकोत्सव मे मै गया था। वही उनसे पहली मुलाकात हुई थी। वहाँ उन्होने एक प्रशसापत्र की तरह की चीज तैयार की थी जिसको पढ सुनाया था। सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। पर वहाँ उनसे अधिक बाते या परिचय नही हो सका था। एक दिन मै सदाकत-आश्रम मे बैठा था। मेरी बहन भी थी। उस दिन कोई पुण्यतिथि थी जिस कारण बहुत लोग गगास्नान के लिए आये थे। मैने देखा कि वह सज्जन भी उनमे थे। बहन का खयाल उनकी ओर गया। उनका आदर-सत्कार उन्होने किया। जब बाते हुई तो उनकी विद्वत्ता इत्यादि का कुछ पता चला। मैने उनको निमन्त्रण दिया कि आप मेरे साथ कुछ दिनो तक रहे। उन्होने उसे स्वीकार किया। वह यो ही भ्रमण करते-करते बिहार आ गये थे। मै जीरादेई गया। वह भी

वहाँ आये। कुछ दिनो तक हम लोग साथ रहे। उनको मैंने नासिक भी बुला लिया। वह वैदिक ब्राह्मण थे। वेद उनको प्राय मुखस्थ थे। उपनिषद् तो वह बिना पुस्तक देखे ही सुना जाते थे। उनसे मालूम हुआ कि कर्नाटक मे आज भी यह परिपाटी है। वहाँ ब्राह्मण वेदो और उपनिषदो को कठस्थ कर लेते है। वे अपना काम करते हुए, खेती करने के समय भी, इनका पाठ किया करते है। उस समय वह एक नक्शा बना रहे थे जिसमे वह वेदो के अनुसार सृष्टि-क्रम एक चन्द्रमा के रूप मे दिखलाना चाहते थे। उसी मे वह उपयुक्त ऋचाओ और मत्रो को इस प्रकार लिखाते थे कि समझने-वाला पुरुष-मत्रो को भी पढ सके और बहुत-कुछ उस चित्र से भी समझ ले। उनका कहना था कि इस काम मे उन्होने कई बरस लगाये है, पर वह अभी तक पूरा नही हुआ था। वह इस काम को अपने पर्यटन मे ही कर रहे थे। उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति और विद्वत्ता का यह एक दृश्य प्रमाण था, क्योकि उनके पास एक भी पुस्तक नही थी और उन्होने सब कुछ अपनी स्मृति से ही तैयार किया था। नासिक मे हम लोग घूमते-फिरते, खूब टहलते और वह सध्या के समय उपनिषद् की व्याख्या करते। वह योगी थे। उनका विचार था कि मै यदि कुछ क्रिया नियम-पूर्वक किया करूँ तो दमा छूट जाय। मैंने धौति-क्रिया उनकी देख-रेख मे आरम्भ की। पर नासिक मे कुल पन्द्रह-सोलह दिन ही रह सका। उसके बाद बम्बई जाना पडा। वहाँ बहुत बीमार पड गया।

देवरातजी का समागम बहुत ही अच्छा रहा। वही मालूम हुआ कि वह पहले कुछ दिनो तक श्री रमण महर्षि के साथ तिरूवन्नमलय मे भी रह चुके है। श्री महर्षि की जीवनी मे उनकी विद्वत्ता और उनके प्रेममय नाट्य का जिक्र है। वह महर्षि के साथ रहनेवाले उद्भट विद्वान् गणपति शास्त्री के शिष्य थे। इसी सम्पर्क से वहाँ आश्रम मे जाकर कुछ बरस पहले रहे थे। वह गोकर्ण मे एक पाठशाला और गोशाला चला रहे है। उत्तर-भारत मे तो भ्रमण के लिए वह चले आये थे। हिन्दी भी उन्होने अच्छी सीख ली थी। उनकी भाषा सुनकर उनके सम्बन्ध मे कोई ऐसा नही कह सकता था कि वह दक्षिण-भारत के रहनेवाले है। उनके साथ नासिक से हम त्र्यम्बक भी दर्शनार्थ गये। यह स्थान गोदावरी का उद्गम-स्थल समझा जाता है। पहाड पर मुझे कुर्सी पर बिठाकर ले गये, क्योकि मै इतनी ऊँचाई पर चढ नही सकता था। आसपास की पहाडियो मे पुरानी गुफाएँ है जिनको मैंने जाकर देखा। इनसे ही उन पुराने दिनो की कला के साथ उस युग के तपस्वियो के जीवन का भी कुछ पता चलता है। मैंने इस तरह बहुत जगहो का भ्रमण किया है और उन्हे देखा है, पर मेरा काम दूसरा है और जी हमेशा उसी की ओर लगा रहता है। इसलिए इन दृश्यो पर न तो मै बहुत ध्यान देता हूँ और न मुझे इनका बहुत स्मरण ही रहता है।

नासिक मे कई और चीजे देखने को मिली। वही वह सरकारी छापाखाना है जहाँ नोट, सभी प्रकार के अदालती और पोस्ट-आफिस के स्टाम्प छपते है। कारखाना बहुत बडा है। पहरा सख्त है। कागज की कीमत बहुत है, क्योकि कागज के टुकडो

मे ही ये सब बनते है। वहाँ एक अँगरेज अफसर था जो योरपवाली १९१४–१८ की बडी लडाई मे फौजी आदमी था। वहाँ घायल होकर लँगडा हो गया था। उसने हमको सभी जगहो मे ले जाकर सब कुछ एक-एक करके दिखलाया। हमने पोस्ट-कार्ड और लिफाफे छपते और बनते देखे। पोस्ट-आफिस के टिकट बनते भी देखे। नोट छपते देखे। उस सारी प्रक्रिया को देखा जहाँ सबसे पहले नोट का मान-चित्र बनाया जाता है। इसके लिए कलाकार लोग नियुक्त है जो हमेशा इसी काम मे लगे रहते है। उसी मान-चित्र के आधार पर, जब वह मजूर हो चुकता है, नोट छापने का सामान तैयार किया जाता है। दूसरी एक और चीज देखी जो छोटी है, पर जिसका भी महत्त्व इन्ही चीजो-जैसा है। दियासलाई पर 'कर' लगाया गया है। उसके वसूल करने का तरीका यह है कि प्रत्येक दियासलाई की पेटी या डिब्बी पर एक कागज की पतली धारी-सी साट दी जाती है और जब तक वह न तोडी जाय, अन्दर से सलाई नही निकाली जा सकती। कारखाने से कोई पेटी उस धारी के साटे बिना बाहर नही जा सकती। कारखानेवाले 'कर' अदा करते ही उस धारी को सरकार से खरीद सकते है। वह धारी भी, जो लम्बे फीते के रूप की होती है, इसी कारखाने मे छपती है। मैने ऊपर कहा है कि यहाँ कागज की बहुत कीमत है। कागज का हिसाब बडी कडाई से रखा जाता है। एक इच कागज भी इधर से उधर नही हो सकता, क्योकि यदि ऐसा न किया जाय तो कौन कह सकता है कि खोये हुए कागज पर नोट छपकर निकल नही गया है। इसलिए यदि कही छपाई की गलती से या किसी दूसरे कारण से कोई टुकडा खराब भी हो जाता है तो वह भी उतनी ही हिफाजत से रखा जाता है जितनी हिफाजत से ठीक छपा हुआ नोट। सभी काम करनेवालो को कारखाने मे जाने के समय और वहाँ से निकलने के समय सब कपडे खोलकर अपनी पूरी जामा-तलाशी देनी पडती है। कोई आदमी बिना वैसी तलाशी के अन्दर नही जा सकता है। हमारे साथ उन्होने इस नियम का सख्ती से बर्ताव नही किया, पर हमारे साथ भी उनके कई अफसर सभी जगहो मे रहे। एक विचित्र बात यह थी कि यद्यपि वहाँ काम करनेवाले न मालूम कितने लाखो-करोडों के नोट छापते होगे और प्रतिदिन छापकर जहाँ-तहाँ भेजते होगे, पर उन बेचारो की मजदूरी प्राय वही है जो दूसरे कारखानो मे मिलती है! उनमे बहुतेरे काफी गरीबी की जिन्दगी काटते है! जो प्रतिदिन लाखो का कागजी नोट बनाता है वह शायद एक रुपया रोजाना पाता होगा! कैसी विचित्र लीला है! कैसा आज का ससार है!

१२९—मध्यप्रदेश के मंत्रिमण्डल का दुःखद झगड़ा

नासिक से मै बम्बई गया। वहाँ वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। हरिपुरा-कॉंग्रेस के बाद अखिल भारतीय कमिटी का यह पहला अधिवेशन था जिसमे श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापतित्व करनेवाले थे। आठ-दस महीनो से कॉंग्रेसी-मत्रिमण्डल काम करते आ रहे थे। कुछ लोग उसकी कडी टीकाएँ

करते आ रहे थे। कही-कही कॉंग्रेसी लोग ही उनके विरुद्ध आपस मे दलबन्दी कर रहे थे जिससे उनके काम मे कुछ कठिनाई भी पड रही थी। मुमकिन था कि इस विषय पर वहॉ विचार हो, यद्यपि हरिपुरा के समय दो सूबो मे उनके इस्तीफा देने से वायुमण्डल मे बहुत फर्क पड गया था। तो भी जो लोग असन्तुष्ट थे, अपनी हरकतो से बाज नही आ रहे थे। मै तो वहॉ जाकर बीमार पड गया। अधिवेशन मे शरीक न हो सका। एक काम महत्त्व का हुआ। वही निश्चय हुआ कि सारे देश-भर के लिए एक प्लैनिङ्ग-कमिटी बनाई जाय, जो सभी सूबो से राय और मदद लेकर एक कार्यक्रम बनावे, जिसके अनुसार सभी सूबो मे मन्त्रिमण्डल काम करे। पडित जवाहरलाल नेहरू इसके सभापति और प्रोफेसर के० टी० शाह मन्त्री बनाये गये। सभी सूबो के कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल इस कमिटी की पूरी मदद करने लगे। दूसरे सूबो के लोगो ने भी मदद देना मजूर किया। यह कमिटी कई उपसमितियो मे बैंटकर काम करती रही। इसकी रिपोर्ट् प्राय तैयार हो चुकी थी। पर पूरी तैयार होने के पहले ही कॉंग्रेस का गवर्नमेण्ट से झगडा छिड गया। वह रिपोर्ट पास होकर देश के सामने न आ सकी।

बम्बई मे मुझे 'ब्रोङ्को न्युमोनिया' हो गया। ज्वर बहुत बढ गया। खॉसी भी काफी जबरदस्त हो गयी। मै वहॉं बिडलाहाउस में ठहरा था। उन लोगो ने हर तरह से मेरी शुश्रूषा का प्रबन्ध किया। एक छोटी घटना उल्लेखनीय है। उन दिनो हिटलर द्वारा निकाले गये बहुतेरे यहूदी इधर-उधर देश छोडकर चले गये थे। इनमे कुछ डाक्टर थे जो बम्बई आकर अपना पेशा कर रहे थे। उनमे से एक बिडला-हाउस में आया-जाया करता था। उसी ने मेरी चिकित्सा आरम्भ की। दो-तीन दिनो तक उसकी दवा हुई। पर अभी कुछ आराम नही हो रहा था। सुना कि बम्बई के कुछ मित्र डाक्टर, जिनमे श्री पुरुषोत्तम पटेल (अब स्वर्गीय) भी थे, यह जानकर कुछ रुष्ट हुए हैं कि उन लोगो को न बुलाकर एक जर्मन डाक्टर की चिकित्सा हो रही है। जब यह खबर मिली तो वे बुलाये गये। पीछे डाक्टर गिल्डर भी आये, जो उन दिनों बम्बई के एक मन्त्री थे। उन लोगो की दवा होने लगी। जब मै अच्छा न हुआ तो महात्माजी की राय हुई, और मै भी उससे सहमत हुआ, कि मै वर्धा चला जाऊँ। बम्बई की हवा मे नमी रहती है जो मै बर्दाश्त नही कर सकता। इसलिए मै वर्धा चला गया। डाक्टरो की रजिश इस बात से थी कि उन लोगो के रहते किसी अनजान विदेशी डाक्टर की चिकित्सा क्यो करायी गयी। इसमे उनका प्रेम टपकता था। साथ ही यह भी इससे जाहिर होता था कि वहॉं के डाक्टर अपने कौशल पर इतना विश्वास रखते है और इतने देशाभिमानी है कि वे मेरे-जैसे एक देश-सेवक की चिकित्सा दूसरो के हाथो देखना सहन नही कर सके। वर्धा मे भी पहुँचकर मै तुरन्त अच्छा नही हुआ। वहॉं से तार देकर पटने से डाक्टर बनर्जी और डाक्टर शरण को बुलाना पडा। डाक्टर शरण तो नही आ सके, पर डाक्टर दामोदरप्रसाद के साथ डाक्टर बनर्जी वर्धा गये। वे दो या तीन दिनो तक वहॉं ठहरे। तबीयत अच्छी होने पर मै वही ठहर गया।

बम्बई में ही मालूम हुआ था कि मध्यप्रदेश के मन्त्रिमण्डल मे आपस का

बहुत मतभेद हो गया है। एक दूसरे की शिकायते करते है। उसी समय पारलेमेण्टरी कमिटी ने निश्चय किया कि वह इस बात की जाँच करेगी। उन दिनो पचमढी मे गवर्नमेण्ट रहा करती थी। इसलिए सरदार बल्लभभाई और मौलाना साहब वहाँ गये। मै नही जा सका, क्योकि मै बीमार था। झगडा प्रधान मत्री डाक्टर खरे और पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र मे था। हिन्दुस्थानी मध्यप्रदेश मे मत्रिमण्डल बनने के पहले दो दल थे—एक मे पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र समझे जाते थे और दूसरे मे पडित रविशकर शुक्ल। जिस समय १९३७ मे असम्बली का चुनाव हुआ था उसी समय एक मुकदमा पडित द्वारकाप्रसाद के खिलाफ चलने की खबर निकली। उन्होने वर्किंग कमिटी को खबर दे दी कि चूँकि उनके विरुद्ध मुकदमे की बात चल रही है, इसलिए जब तक वह उससे निकलकर अपने चरित्र की सफाई न दे दे तब तक वह कॉग्रेस के सभी पदो से अलग रहने को तैयार है। वहाँ कोई भी काँग्रेस-पार्टी का नेता नही हो सकता था जब तक उसे हिन्दुस्थानी विभाग के मेम्बरो की पूरी सहायता न मिले। पडित द्वारकाप्रसाद ने डाक्टर खरे की मदद की। उनकी मदद से ही वह नता चुने गये। जब मत्रिमण्डल बनने का समय आया तो उनको ही गवर्नर ने मत्रिमण्डल बनाने का आदेश किया। जो मुकदमा पडित द्वारकाप्रसाद पर चलनेवाला था उसे बेबुनियाद समझकर वहाँ के हाकिमो ने उठा लिया। उसके बाद पडित द्वारकाप्रसादजी भी मत्रिमण्डल मे आये। इस तरह यह समझा जाता था कि उनकी और डाक्टर खरे की बडी मित्रता थी। बात भी ऐसी ही थी। पडित रविशकर शुक्ल भी मत्री बने थे। काँग्रेस के काम मे वह पडित द्वारकाप्रसाद के प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे। मत्रिमण्डल के काम मे शुक्लजी और मिश्रजी की राय बहुत-सी बातो मे एक हुई। दोनों का डाक्टर खरे से मतभेद हुआ। यदि इतना ही रहता तो कोई हर्ज नही; क्योकि मित्रता एक अलग चीज है और देश-सेवा-सम्बन्धी मतभेद दूसरी चीज। डाक्टर खरे ने मिश्रजी की शिकायत की और मिश्रजी ने भी डाक्टर साहब की।

इन्ही शिकायतों को दूर करने के लिए सरदार पचमढी गये। वहॉ पर कुछ बाते तय हुई। आशा की गयी कि मामला तय हो जायगा और दोनो काम चलाने लगेगे। पर बात ऐसी नही हुई। डाक्टर खरे अपना विचार नही बदल सके। उन्होन सोच लिया कि मिश्रजी के साथ उनकी नही निभेगी। उधर मिश्रजी के साथ काम करते-करते शुक्लजी उनके साथ अधिक मिल-जुल गये। ऐसा मालूम हुआ कि डाक्टर खरे उन दोनो को किसी न किसी तरह मत्रिमण्डल से हटावेगे। पर जो प्रयत्न इस झगडे को हटाने का हुआ वह विफल हुआ। आपस का वैमनस्य बढता ही गया। मै अच्छा होकर वर्धा मे ही आराम कर रहा था कि एक दिन अचानक खबर मिली, झगडे ने उग्र रूप धारण कर लिया है! पारलेमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी की बैठक उसके दो ही दिनो के बाद होनेवाली थी। डाक्टर खरे उसके पहले ही मत्रिमण्डल तोड़कर अपनी पसन्द का नया मत्रिमण्डल बना लेना चाहते थे। उन्होने इसके लिए गवर्नर की मदद ली। जब मुझे खबर मिली तो मैंने उनको एक पत्र लिखा कि वह ऐसी कोई

कार्रवाई न करे—दो ही दिनो मे होनेवाली पारलेमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी का इन्तजार कर लेवे। वह पत्र उनके पास रात को गया। उस रात को उन्होने मन्त्रि-मण्डल का इस्तीफा देकर गवर्नर से मजूर करा लिया और नया मन्त्रिमण्डल बना भी लिया। मेरा पत्र उनके पास किसी तरीके से रात मे पहुँचने न पाया। दूसरे दिन सवेरे नया मन्त्रिमण्डल बन गया। उसमे पहले के ये दोनो मत्री नही थे। कुछ नये लोग लिये गये थे। सब बाते इतनी जल्दबाजी मे रातो-रात हुई कि नागपुर के नजदीक रहते हुए भी हमको पूरी खबर मन्त्रिमण्डल के पुन सगठित हो जाने के बाद मिली। जब दूसरे दिन पारलेमेण्टरी कमिटी की बैठक हुई तो इसे सब लोगो ने बहुत बुरा माना। दोनो पक्षों के लोग बुलाये गये। जो नये मत्री बने थे वे भी बुलाये गये। श्री सुभाषचन्द्र बोस भी पहुँच गये थे। यद्यपि वह पारलेमेण्टरी कमिटी के मेम्बर नही थे तथापि वह कॉंग्रेस के अध्यक्ष थे, इसलिए सबके ऊपर थे। उनकी हाजिरी मे दोनों पक्ष की बाते सुनी गयी। कमिटी का विचार हुआ कि इस तरह से नया मन्त्रिमण्डल बना लेना बेजा हुआ है, विशेषकर जब तुरत ही पारलेमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। नये मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियो से कहा गया कि वे इस्तीफा दे दे। ये बाते होते-हवाते रात बहुत बीत गयी थी। पर उसी समय टेलीफोन द्वारा डाक्टर खरे ने गवर्नर को खबर दे दी कि वह और उनके साथ नये मत्री इस्तीफा दे रहे है। दूसरे दिन उन्होने इस्तीफा लिखकर भेज भी दिया। वैसा ही दूसरो ने किया। अब नया मन्त्रिमण्डल बनाने का निश्चय हुआ। उसमे पडित रविशकर शुक्ल प्रधान मत्री बने और पडित द्वारकाप्रसाद भी एक मत्री हुए। डाक्टर खरे उसमे नही आये। वहाँ की असम्बली की कॉंग्रेस-पार्टी की बैठक वर्धा मे हुई जिसमे सुभाष बाबू और हम लोग भी हाजिर थे। उसने शुक्लजी को ही अपना नेता चुना। इसलिए वही प्रधान मत्री बने।

इस सारी कार्रवाई से वहाँ बडी हलचल मच गयी। डाक्टर खरे बहुत गुस्से मे आ गये। उन्होने बहुत जोरो से पारलेमेण्टरी कमिटी और महात्माजी की शिकायत की। सारी कार्रवाई की कडे शब्दो मे निन्दा भी की। वह महाराष्ट्री ब्राह्मण है। शुक्लजी और मिश्रजी उत्तर-भारत के हिन्दी-भाषी कान्यकुब्ज ब्राह्मण है। वहाँ और दूसरे स्थानो मे भी महाराष्ट्री और अ-महाराष्ट्री का झगडा उठ खडा हुआ। कुछ दिनो तक ऐसा मालूम होता था कि कॉंग्रेस के अन्दर बडी भारी फूट फैल जायगी। डाक्टर खरे की कार्रवाइयाँ ऐसी हुई कि कुछ दिनों बाद उन पर अनुशासन की कार्रवाई करनी पडी। उनको कॉंग्रेस से बहिष्कृत करना पडा। यह झगडा चल ही रहा था कि एक पुस्तिका निकली। उसमे डाक्टर खरे की बातो का समर्थन किया गया था। जो कार्रवाई वर्किंग कमिटी ने की थी उसकी निन्दा भी थी। सारी बाते अखिल भारतीय कमिटी के सामने आनेवाली थी। सुभाष बाबू कई दिनो तक वर्धा मे और उसके बाद नागपुर मे ठहरे रहे। उन्होंने एक बहुत बडा बयान तैयार किया जिसमे सारी बाते लिखी हुई थी। वह बयान एक पुस्तक के रूप मे छाप दिया गया। अखिल भारतीय कमिटी

की बैठक के समय वह बाँटा भी गया। इस सारे मामले पर विचार हुआ। तब डाक्टर खरे को कॉंग्रेस से निकालने का निश्चय हुआ। मैं डाक्टर खरे को १९३४ से ही अच्छी तरह जानने लगा था, जब उन्होंने केन्द्रीय असम्बली के चुनाव में डाक्टर मुंजे का मुकाबला किया था। उस समय उन्होंने बहुत जोश के साथ काँग्रेस के पक्ष का समर्थन किया था। जब श्री अभ्यंकर का स्वर्गवास हो गया तो मराठी-भाषी मध्यप्रदेश के वही नेता माने जाने लगे। हम सबके साथ उनका बहुत अच्छा व्यवहार था। प्रान्तीय असम्बली के चुनाव के समय उनकी ही राय से सब बातें पारलेमेण्टरी कमिटी ने की। मन्त्रिमण्डल के संगठन में भी वही बराबर मुख्य समझे जाते रहे। इस प्रकार पारलेमेण्टरी कमिटी के लोगों का उन पर विश्वास था और उनके साथ व्यवहार भी अच्छा था। जब मैं सभापति की हैसियत से उनके सूबे में गया था तो उन्हीं के यहाँ ठहरा था। उन्होंने ही दौरे में मेरा साथ दिया था। इस तरह वह सबके मान्य थे। पर इस मामले में, न मालूम क्यों, उन्होंने ऐसा विचार बना लिया। जो झगड़ा उनका मिश्रजी के साथ हुआ उसमें पारलेमेण्टरी कमिटी को भी घसीटकर उन्होंने नाथ दिया। महात्मा गाधी को भी उन्होंने अछूता न छोड़ा। यह सारी घटना बड़ी दुःखद हुई, क्योंकि उनके जैसा एक योग्य आदमी काँग्रेस का विरोधी बन गया। उसके बाद उन्होंने काँग्रेस को हर मौके पर नीचा दिखाने का प्रयत्न किया है। उनके ऐसे-ऐसे बयान हुए हैं और ऐसी-ऐसी बातें उन्होंने काँग्रेस के सम्बन्ध में कही हैं जैसी शायद काँग्रेस के कट्टर विरोधी भी नहीं कहते होंगे। हम लोगों की नजरों के सामने काँग्रेस की प्रतिष्ठा और उसके अनुशासन की रक्षा के सिवा कोई दूसरी बात नहीं थी। सच पूछिए तो मैं जितना डाक्टर खरे को जानता था और उनके प्रति जितनी श्रद्धा रखता था उतनी मिश्रजी के प्रति नहीं, क्योंकि मिश्रजी के साथ काम करने का उतना मौका नहीं आया था। डाक्टर खरे भी मिश्रजी के बड़े श्रद्धालु थे और उन पर बहुत भरोसा किया करते थे। पर कुछ विषयों में मतभेद हो जाने के कारण वह उनसे इतने बिगड़ गये कि दोनों का एक मंत्रिमण्डल में रहना असम्भव हो गया। उनको वहाँ से निकलवा देने पर वह तुल गये—और वह निकलवाना भी गवर्नर की मदद से! जो हो, इस दुःखद घटना का परिणाम अच्छा नहीं हुआ। जो झगड़ा उस समय खड़ा हुआ वह अभी तक खत्म नहीं हुआ है—यद्यपि अब वह मराठी और अ-मराठी झगड़े का रूप नहीं रह गया है। हाँ, दूसरे तरीक़े से, समय बीतते-बीतते, बातें ठंडी पड़ गयी। पर डाक्टर खरे काँग्रेस से अलग हो ही गये हैं और शायद रहेंगे ही।

१३०—आसाम और उड़ीसा के मंत्रिमण्डल की कुछ बातें

अखिल भारतीय कमिटी की उसी बैठक में, जिसमें डाक्टर खरे के हटाये जाने का प्रस्ताव पास हुआ, कुछ बहस मन्त्रिमण्डलों के सम्बन्ध में भी हुई थी। इससे यह पता चला कि कुछ लोग काँग्रेस के अन्दर भी मन्त्रिमण्डलों से नाखुश थे और चाहे जिस तरह हो, उन पर कुछ न कुछ आरोप लगाना ही चाहते थे। पर यद्यपि उस बहस

मे बहुत बाते कही गयी और जो लोग अपने को वामपन्थी कहा करते थे उन्होने बहुत जोर लगाया तथापि अखिल भारतीय कमिटी ने मन्त्रिमण्डलो की निन्दा नही की और काम चलने दिया।

एक तरफ तो जहाँ मन्त्रिमण्डल बन गये थे वहाँ इस तरह उन पर हमले किये जा रहे थे, दूसरी तरफ जहाँ कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल नही था वहाँ कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनान का प्रयत्न भी चलता रहा। आसाम उन सूबो मे है जहाँ विधान के अनुसार हिन्दू और मुसलमान के अलावा अँगरेजो और आदिवासियो की खासी सख्या असम्बली मे है। कॉंग्रेस ने अ-मुस्लिम जगहो मे काफी सफलता चुनाव के समय पा ली थी, कॉंग्रेसी लोग ही सबसे अधिक सख्या मे चुने गये थे, सारी असम्बली मे उनकी ही पार्टी सबसे बडी थी, पर सारी असम्बली मे उनका अकेला बहुमत नही था। जब और कॉंग्रेसी सूबो मे चन्दरोजा मन्त्रिमण्डल बना था तब वहाँ भी बना था, पर और जगहो से वहाँ यह विभिन्नता थी कि अकेले कॉंग्रेसी लोग वहाँ बहुमत नही रखते थे, इसलिए यदि दूसरे लोग सबके सब मिल जायँ तो वे अल्पमतवाले हो जाते थे। अत जब कुछ महीनो के बाद दूसरी जगहों मे मन्त्रिमण्डल बने तब वहाँ नही बन सका और कुछ दिनो तक वहाँ का गैर-कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल दूसरो को मिलाकर अपना बहुमत कायम रख सका। यह बहुमत स्थायी नही था। १९३८ के पिछले भाग मे वहाँ की स्थिति ऐसी हो गयी कि उस मन्त्रिमण्डल के साथ बहुमत नही रह गया। वहाँ भी ऐसा मौका आ गया कि दूसरे दलो के लोगो के साथ मिलकर कॉंग्रेस अपना बहुमत बना सकती थी और इस तरह कुछ दूसरे लोगो के साथ वह मन्त्रिमण्डल भी बना सकती थी। ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर वहाँ के लोगो ने पारलेमेण्टरी कमिटी और कॉंग्रेस के सभापति की आज्ञा जाननी चाही। स्वय सभापति सुभाषचन्द्र बोस और पारलेमेण्टरी कमिटी के वह सदस्य मौलाना आजाद, जिनके जिम्मे उस सूबे की देखभाल सौपी गयी थी, वहाँ गये। मंत्रिमण्डल बनाने के पक्ष मे श्री सुभाषचन्द्र बोस बहुत जोरो से थे। पर मौलाना साहब इसे नापसन्द करते थे। मुझसे और सरदार बल्लभभाई पटेल से टेलीफोन द्वारा राय पूछी गयी। हम दोनो दो स्थानो मे थे। इसलिए बाते करके कोई राय नही दे सकते थे। जो जहाँ था वही से उसने अपनी राय दे दी। मैने मौलाना साहब के साथ अपनी राय दी। सरदार ने सुभाष बाबू की बात मान ली। हमारे सामने प्रश्न सिद्धान्त का था। कॉंग्रेस ने मन्त्रिपद सिद्धान्तत लिया था। वह केवल पद के लिए पद नही लेना चाहती थी। जहाँ उसका अपना बहुमत नही था वहाँ उसे दूसरे विचारवाले लोगो के ऊपर भरोसा करना पडता था। हम समझते थे कि वहाँ उस तरह स्वतत्रता और निर्भीकता के साथ काम नही हो सकता था जिस तरह उन सूबो मे जहाँ कॉंग्रेस के पास अपना बहुमत था। इसी बहुमत के बल पर बिहार और युक्तप्रान्त मे इस्तीफा देकर मन्त्रिमण्डल राज-बदियो को रिहा करा सका था। इसी बहुमत के बल पर उडीसा मे सर जौन डन को गवर्नर होने से रोक दिया था। क्या ऐसा अवसर आने पर आसाम मे दूसरो के बल पर कॉंग्रेस इस तरह का कोई जबरदस्त काम कर सकेगी? इसमे सदेह था।

इसलिए मै समझता था कि वहाँ पद तो मिलेगा और हो सकता है कि मामूली तौर पर मन्त्रिमण्डल का काम भी चले, पर किसी गभीर अवसर पर हम कांँग्रेस की नीति को न चला सकेगे। पर सुभाष बाबू का विचार था कि पद ले लेने से कांँग्रेस की शक्ति बढ जायगी और जो लोग उस समय अलग थे वे उसके साथ आ जायँगे, इसलिए पद ले लेना ही ठीक होगा। सरदार ने सभापति की बात रख दी। वहाँ ठीक उसी समय मन्त्रिमण्डल बना, जब दो-चार दिनो के अन्दर ही अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। आसाम से लौटते रास्ते मे सुभाष बाबू की तबीयत कुछ खराब हो गयी। वह उस बैठक मे देर करके पहुँचे थे।

ऊपर उड़ीसा का जिक्र आया है। वहाँ मि० डेन सिविल-सर्विस के ऊँचे पदाधिकारी थे। वहाँ के गवर्नर छुट्टी पर जाने लगे, मि० डेन की नियुक्ति उनके स्थान पर कुछ महीनो के लिए की गयी। मन्त्रिमण्डल ने कहा कि जो अफसर हमारे अधीन काम करता रहा है और हो सकता है कि गवर्नरी की अवधि पूरी हो जाने पर फिर उसे हमारी अधीनता मे ही काम करना पडे उसे गवर्नर नही बनाना चाहिए, क्योकि जो आज हमारे अधीन है वह कल हमारे ऊपर हो जाय तो उसी के अधीन हमे काम करना पडेगा, यह ठीक नही है—काम करने मे कठिनाई आ सकती है और सिविल सर्विस के लोगों पर मन्त्रिमण्डल का अनुशासन ठीक नही चल सकेगा। मन्त्रिमण्डल ने धमकी दी कि यदि मि० डेन गवर्नर नियुक्त किये जायँगे तो मत्री अपने पद पर नही रह सकेगे, मन्त्रिमण्डल इस्तीफा दे देगा। मि० डेन से मन्त्रियो का कोई व्यक्तिगत झगडा नही था, यद्यपि कुछ दिन पहले उनसे किसी विषय पर मतभेद हो गया था। वे इस बात का केवल सिद्धान्तत विरोध कर रहे थे। नतीजा यह हुआ कि गवर्नर ने छुट्टी नही ली। अत स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति का मौका उस समय नही आया। दूसरे सूबो मे, जहाँ-कही गवर्नर ने छुट्टी ली और स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति का मौका आया, उस सूबे के सिविलियन को यह पद न मिला, दूसरे सूबे से ही कोई लाया गया। खैर, सिद्धान्त की बात तो ठीक थी। पर यह विचारने की बात है कि यदि किसी सिविलियन को ही गवर्नर होना है तो चार महीनो के लिए। इतने दिनो के लिए ही अक्सर गवर्नर छुट्टी लिया करते है। दूसरे सूबे से किसी सिविलियन को लाकर गवर्नर बनाना सूबे के लिए कहाँ तक हितकर है? चार महीनो मे तो वह सूबे की हालत की वाकफियत भी नही हासिल कर सकता है। इसका नतीजा यही होगा कि वह केवल जगह टॉडकर बैठेगा, कुछ कर नही सकेगा। सबसे अच्छा तरीका तो यह होगा कि उसी सूबे का कोई गैर-सरकारी आदमी गवर्नर बन जाय जो सूबे की सब बाते जानता हो और अन्य प्रकार से भी योग्य हो। पर यह तो एक छोटी त्रुटि विधान मे है—इससे बहुत बडी-बडी त्रुटियाँ उसमे है जिनके कारण वह सारा का सारा बदलना ही पडेगा।

१३१—त्रिपुरी-काँग्रेस के पहले और उसके बाद की कुछ बातें

अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त हुई, पर अभी वर्किंग कमिटी के सदस्य वही थे—जब योरप की खबर आयी कि हिटलर चेकोस्लोवाकिया पर चढाई करना चाहता है और इँगलैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन वहाँ हिटलर से मिलने गये है। जो समाचार मिले उनसे इसका भय हुआ कि इँगलैण्ड और जर्मनी मे कही युद्ध न छिड जाय। वर्किंग कमिटी इसीलिए वहाँ ठहर गयी और इस बात पर विचार करने लगी कि लडाई यदि छिड जाय तो कॉग्रेस को क्या करना चाहिए। इसमे शक नही मालूम होता था कि हिटलर का चेकोस्लोवाकिया पर चढाई करना अनुचित है। यह उतना ही अनुचित है जितना इटली का अबीसीनिया पर चढाई करना अनुचित था—यद्यपि यहाँ हिटलर को यह कहने का बहाना था कि कुछ जर्मन चेकोस्लोवाकिया मे है जिनके साथ वहाँ की गवर्नमेण्ट का बर्ताव ठीक नही था और जो जर्मनी के साथ रहना चाहते थे। चेकोस्लोवाकिया मे तीन प्रकार के लोग बसते थे—कुछ जर्मन, कुछ चेक, कुछ स्लावेक। यह देश प्रथम योरपीय महासमर के पहले आस्ट्रिया के साम्राज्य के अधीन था। उस युद्ध के बाद यह स्वतन्त्र हुआ था। वह साम्राज्य जब टुकडे-टुकडे किया गया था तब यह एक टुकडा अलग स्वतन्त्र देश के रूप मे कायम कर दिया गया था। जिस समय अबीसीनिया की लडाई चल रही थी और इटली उस पर आक्रमण करके उसे अपने कब्जे मे कर लेने के प्रयत्न मे लगा था, कॉग्रेस ने अबीसीनिया के साथ हमदर्दी दिखायी थी। हमदर्दी तो ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट भी दिखलाती थी। कॉग्रेस ने निश्चय किया था कि साम्राज्य की लडाई मे वह ब्रिटेन की मदद नही करेगी। उस समय भी प्रश्न उठा था कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य अबीसीनिया-जैसे कमजोर देश की मदद के लिए इटली से युद्ध ठान दे तो कॉग्रेस मुश्किल मे पडेगी, क्योकि कॉग्रेस को अबीसीनिया की सहायता अभीष्ट थी, पर ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता नही। वही प्रश्न इस समय फिर उपस्थित हुआ। साथ ही, यह भी विचारने की बात थी कि काँग्रेस क्या मदद दे सकती है। एक तो कॉग्रेस ने अहिंसा के सिद्धान्तो को मान लिया है। उस सिद्धान्त को मानते हुए वह सशस्त्र युद्ध मे मदद कर सकती है या नही, यह जटिल प्रश्न उपस्थित होता था। साथ ही, हम यह भी देखते थे कि काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल कई सूबो मे काम कर रहे है और उनका सारा काम अहिसा के सिद्धान्त पर नही चल रहा है। कही-कही बलवा-फसाद के समय कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल के आधिपत्य मे भी गोली चलानी पडी थी। पुलिस और जेलखाने अपने-अपने काम कर ही रहे थे। भारतीय शासन मे काँग्रेस का अधिकार नही था, पर वहाँ भी उसकी ओर से फौज का विरोध इस आधार पर कभी नही किया गया था कि हम अहिसा के माननेवाले है और सशस्त्र फौज हमको नही चाहिए। इसके अलावा, यदि सचमुच लडाई छिड जाय तो वह हमारे काबू के बाहर की चीज होगी और कॉग्रेस को मजबूरन उसकी मदद या विरोध करना ही पडेगा। ये सब प्रश्न एक

साथ अचानक हमारे सामने आ गये। महात्माजी भी वहाँ उपस्थित थे, पर उन दिनो प० जवाहरलाल नेहरू योरप गये हुए थे। इसलिए महात्माजी की राय तो मिल सकती थी, पर जवाहरलालजी की राय नही मालूम हो सकती थी। सब पहलुओ पर विचार होता रहा। विशेषकर यह सवाल तो सामने था ही कि हम कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल को क्या आदेश देगे। उसी समय वर्किंग कमिटी के मेम्बरो के बीच इस विषय पर मतभेद मालूम हुआ। पर बहुत कोशिश के बाद भी सभापति की क्या राय थी और वह क्या आदेश देते, हम नही जान सके। हम अभी विचार कर ही रहे थे कि उधर से खबर आ गयी कि उस समय इँगलैण्ड और फ्रान्स ने किसी तरह जर्मनी के साथ अपनी बात बना ली और अब लडाई नही छिडेगी।

यह वर्ष भी प्राय समाप्त होने पर आ गया। इस वर्ष मे कॉग्रेस के लोग विशेषकर मन्त्रिमण्डल के काम मे ही लगे रहे। जहॉ-तहॉ कॉग्रेस-कमिटियो मे भी झगडे हुए। काँग्रेस के चुनाव बहुत जोश के साथ लडे गये। इन दो-तीन वर्षो मे कॉग्रेसी मेम्बर खूब बने; क्योकि कार्यकर्त्ताओ ने इसमे बहुत जोर लगाया। पहले तो कुछ दिनो तक कॉग्रेस गैर-कानूनी हो गयी थी, इसीलिए जब वह फिर काम करने लगी तो लोगो मे बहुत जोश था। उसके बाद नये विधान के अनुसार असम्बली का चुनाव होनेवाला था। काँग्रेस की ओर से नामजदगी के लिए लोगो ने उत्साह दिखलाया। कुछ ने यह भी शायद सोचा कि उनके विचारवाले यदि कॉग्रेस मे आ जायँगे तो वे अपने विचारवालो को नामजद करा सकेगे। इसी तरह के और कारण भी होते गये और कॉग्रेस की मेम्बरी बहुत बढ गयी थी। अब कॉग्रेस के प्रतिनिधियो, अखिल भारतीय कमिटी और काँग्रेस के सभापति के चुनाव का समय भी नजदीक आ गया। कुछ लोगो का विचार था कि इस बार मौलाना अबुल कलाम आजाद ही सभापति चुने जायँ। कुछ लोग सुभाष बाबू को चाहते थे कि वही फिर चुने जायँ। सुना गया कि सुभाष बाबू की भी इच्छा थी कि वह दुबारा चुने जायँ। पर यह बात वर्किंग कमिटी के सदस्यो के सामने नही आयी थी। हरिपुरा-कॉग्रेस के पहले सबकी राय से और विशेषकर महात्माजी की अनुमति तथा आशीर्वाद के साथ सुभाष बाबू सर्व-सम्मति से चुने गये थे। यदि वह अपनी इच्छा महात्माजी से प्रकट करते और हम सब मिलकर राय करते तो शायद कोई रास्ता निकल गया होता और बात आगे न बढती। पर उन्होने या उनके समर्थको ने ऐसा नही किया। पीछे इस कारण बहुत बुरी तरह झगडा उठ खडा हुआ।

१९३९ के मार्च मे काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मध्यप्रदेश मे, जबलपुर के नजदीक त्रिपुरी मे, होनेवाला था। जनवरी मे वर्किंग कमिटी की एक बैठक बारदोली मे हुई। महात्माजी इधर कई वर्षों से हर साल के जाडे का एक महीना बारदोली मे बिताते है। उन दिनों वह वही थे। इसलिए बैठक भी वही की गयी। जहॉ तक मुझे स्मरण है, वहाँ कोई विशेष महत्त्व का प्रश्न उपस्थित नही था। वहाँ से रवाना होने के समय हमने जो थोडी-बहुत आपस मे चर्चा की उससे मैने समझा कि इस बार

मौलाना साहब को ही सभापति हम लोग चुने। सुभाष बाबू से इस सम्बन्ध मे कोई बात नही हुई थी। शायद उन्होने महात्माजी से भी बाते नही की। पर हमने यह सुना कि वह जहाँ-कही गये थे, अपने विचारवाले कांग्रेसी लोगो से वह अपने सम्बन्ध मे बाते करते थे। महात्माजी से मौलाना की बाते हुई और वह राजी भी हुए कि वही सभापति चुने जायँ। पर हमने सुना कि पीछे उन्होने अपनी राय बदल दी और महात्माजी से अपनी अनिच्छा प्रकट की। मै पटने मे पहुँच गया था। सरदार बल्लभभाई का तार मिला कि डा० पट्टाभि सीतारमैया के समर्थन के लिए वक्तव्य पर मेरा दस्तखत चाहिए। मैने मजूर कर लिया। तब मुझे मालूम हुआ कि डा० पट्टाभि ही चुने जाने चाहिए। यह निश्चय सरदार ने महात्माजी की सम्मति से किया था। अब बात जाहिर हो गयी कि मौलाना सभापति होना नही चाहते और मुकाबला डा० पट्टाभि सीतारमैया और श्री सुभाष बोस मे है।

यो तो हर साल दो-चार नाम सभापति के चुनाव के लिए उपस्थित किये जाते है और उन्ही मे से एक चुना जाता है, पर इधर कई वर्षो से कभी दो का मुकाबला नही होता था। प्राय सभी सूबो के लोग, यो ही बिना किसी के बतलाये, मान लेते थे कि इस बार अमुक व्यक्ति को चुनना चाहिए, वही चुना भी जाता था। जो दूसरे नाम रहते थे उनके सम्बन्ध मे कोई खास प्रयत्न नही किया जाता था। जहाँ-तहाँ कुछ वोट उनको मिल भी जाते तो उसका अर्थ कोई यह नही लगाता कि दूसरे के मुकाबले मे एक आदमी चुना गया है। इस बार चुनाव का रूप दूसरा हो गया। मालूम हुआ कि दो आदमियो मे मुकाबला है। इतना ही नही, कुछ ऐसा भी मालूम हुआ कि एक ओर उस विचार के लोग है जो गाधीजी के विचारो से सहमत है और दूसरी ओर वे लोग है जो गाधीजी के कार्यक्रम मे विश्वास नही रखते। यद्यपि गाधीजी बम्बई-कांग्रेस के समय से ही कांग्रेस से अलग हो गये थे तथापि अभी तक उनकी ही विचारधारा कांग्रेस मे काम कर रही थी, सब बातों मे उनकी राय से ही काम होता आ रहा था। जब कभी मतभेद होता तो वही सब मुश्किलों का हल निकालते और अन्त मे सभी झगडों का वही निपटारा करते। इस बार मालूम हुआ कि मानो कुछ नया होनेवाला है और इसीलिए ऐसे आदमी का चुनाव होना चाहिए जो अपना कार्यक्रम खुद बतावेगा और अपने बनाये रास्ते से कांग्रेस को ले चलना चाहेगा। ये बाते थी तो सही, पर चुनाव के समय स्पष्ट नही हुई। गाधीजी ने अपनी ओर से कोई वक्तव्य नही निकाला। यदि मौलाना रह गये होते तो इसमे कोई सदेह नही था कि वह बहुत बडे बहुमत से चुने जाते, क्योकि साधारण कांग्रेसी लोग उनको चाहते थे और वह गाधीजी के कार्यक्रम से अलग होना भी नही चाहते थे। उन्होने यह नही समझा कि इस चुनाव मे डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया एक विचारधारा और एक कार्यक्रम के प्रतीक-स्वरूप चुनाव के उमीदवार है। खैर, चुनाव हुआ। नतीजा यह हुआ कि एक बडे बहुमत से श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये।

कई बरसो से कांग्रेस के कुछ पहले वर्किंग कमिटी की बैठक हुआ करती है

जिसमे कॉंग्रेस के समय होनेवाली विषय-निर्वाचिनी के लिए प्रस्तावो का मसविदा तैयार किया जाता है। इस बार भी वैसा ही होना था। वर्किंग कमिटी मे जो लोग थे उनमे बहुत ज्यादा ऐसे ही लोग थे, जो सुभाष बाबू की राय से—जहाँ तक वह मालूम थी—सहमत नही थे। हमने सोचा कि अच्छा हो यदि सुभाष बाबू अपने विचार के लोगो से सलाह करके प्रस्ताव तैयार करे, क्योकि उनको ही कॉंग्रेस का भार लेना होगा और उनके लिए तथा हम लोगो के लिए भी, जो गाधी-विचारधारा मे विश्वास करनेवाले थे, यही अच्छा होगा। वर्किंग कमिटी के सदस्य रहकर और उन प्रस्तावों के तैयार करने मे मदद देकर यदि हम कॉंग्रेस के अधिवेशन के समय उन प्रस्तावो का विरोध करेगे तो यह हमारे लिए अनुचित होगा। सुभाष बाबू को भी हमारी हाजिरी से सकोच होगा और अपनी इच्छा के अनुसार वह प्रस्ताव नही बनवा सकेंगे, क्योंकि वर्किंग कमिटी मे हम लोगो का बहुमत था। इसलिए हमने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया और इस तरह उनको पूरा मौका दे दिया कि वह अपनी इच्छा के अनुसार अपनी वर्किंग कमिटी बना ले और उसी की मदद से प्रस्ताव भी तैयार करे। ऐसा होने से, उन प्रस्तावो को देखने के बाद यदि हम भी उनसे सहमत न होगे, तो कॉंग्रेस मे उनका विरोध करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे। प्रजातत्र का साधारण नियम भी यही है कि जिसके साथ बहुमत हो वही उसके चलाने का भार ले और बहुमत की मर्जी के मुताबिक कार्यक्रम बनावे।

हम लोग वर्धा गये, जहाँ वर्किंग कमिटी होनेवाली थी। गये भी समय पर ताकि सब बाते मुकाबले में हो जायँगी और हमारी इस कार्रवाई से कोई गलत-फहमी नही होगी। पर अभाग्यवश सुभाष बाबू बीमार हो गये, वहाँ गये ही नही। वर्किंग कमिटी के सदस्यों का इस्तीफा ज्यो का त्यो पडा रहा। यदि चाहते तो उनकी गैर-हाजिरी मे हम अपने विचार के अनुसार प्रस्ताव तैयार कर लेते और उन्हे विषय-निर्वाचिनी के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करते। पर हमने यह मुनासिब नही समझा, क्योकि सभापति के चुनाव का अर्थ हमने यह समझा कि प्रतिनिधियो का बहुमत सुभाष बाबू से सहमत है और हमारे लिए उचित है कि हम उनको पूरा मौका दें ताकि वह जिस तरह मुनासिब समझे, काम चलावे। नतीजा यह हुआ कि वर्किंग कमिटी की बैठक स्थगित करनी पडी। हम त्रिपुरी का इन्तजार करने लगे। कॉंग्रेस के लोगो मे इस चुनाव और उसके बाद की घटनाओ के सम्बन्ध मे चर्चा और वादविवाद हो रहा था।

उधर काठियावाड में एक दूसरी परिस्थिति पैदा हो रही थी। वहाँ कई रियासतों मे प्रजा और राजा के बीच मन-मुटाव हो गया था। सरदार वल्लभभाई इसमे दिलचस्पी ले रहे थे। वहाँ के लोग उनकी राय से ही काम कर रहे थे। कॉंग्रेस की नीति अभी तक यही थी कि वह स्वय सीधे तौर पर रजवाडों के मामलो मे हस्तक्षेप नही करेगी; पर देशी राज्यो की जनता की प्रजातत्रात्मक इच्छा के साथ वह सहानुभूति रखती है और कॉंग्रेसी लोग व्यक्तिगत रूप से उनकी सहायता भी

कर सकते है। इसी नीति के अनुसार डा० पट्टाभि सीतारमैया रियासती प्रजामण्डल के सभापति हुए थे और पण्डित जवाहरलालजी भी सभापति हुए है। महात्माजी तो मानो सभी बातो मे पूछे जाते थे और अपनी सम्मति तथा आदेश से उनको चलाते थे। गुजरात और काठियावाड की रियासतो मे सरदार बल्लभभाई बडी तत्परता और लगन से काम करते थे। जहाँ जरूरत पडती वहाँ जाते भी थे। सेठ जमनालालजी विशेषकर राजपूताने के रजवाडो के सम्बन्ध मे काम करते और प्रजामण्डल स्थापित कराने मे सहायता देते।

इस समय काठियावाड की रियासत राजकोट मे जो राजा-प्रजा मे अनबन हुई उसमे सरदार बल्लभभाई पडे और उनके बीचवान होने से कुछ बाते तय हुई जिन्हे राजा ने मजूर किया। इस समझौते से महात्माजी भी सहमत थे। पीछे राजा और राज्याधिकारी समझौते की शर्तो को पूरा करने से मुकर गये। महात्माजी को यह बात बुरी मालूम हुई। वह प्रतिज्ञा और वचन की बडी मर्यादा रखते है। किसी की की हुई प्रतिज्ञा को भग होते देख उनको आन्तरिक कष्ट होता है। विशेषकर सार्वजनिक मामलो मे की गयी प्रतिज्ञाओ की प्रतिष्ठा और भी ज्यादा है। उन्होने चाहा कि जो बात एक बार तय हो गयी है उसे रियासत को पूरा करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने पूरा प्रयत्न किया। स्वय राजकोट चले गये। जब वह सफल नही हुए तो उन्होने अनशन आरभ कर दिया। अनशन उनके लिए कोई नयी चीज नही थी। जब वह दक्षिण अफ्रिका से लौटकर हिन्दुस्थान मे काम शुरू कर रहे थे तब अहमदाबाद के मजदूरो ने हडताल की थी। उस हडताल मे मजदूरो ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक उनकी माँगे पूरी न होंगी, वे काम नही करेगे। प्रतिज्ञा करते समय शायद मजदूरो ने प्रतिज्ञा का महत्त्व नही समझा था। भारतवर्ष के लिए भी गाधीजी बिलकुल नये थे। किसी ने प्रतिज्ञा पर इतना जोर उस समय तक नही दिया था। जब मजदूरो को कष्ट होने लगा तो वे काम पर वापिस जाने लगे। गाधीजी इस बात को बर्दाश्त नही कर सके। उन्होने अनशन शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि एक ओर मजदूर भी अड गये और दूसरी ओर मिल-मालिक भी नरम हो गये। सन्तोषप्रद समझौता हो गया। उसी नीति के अनुसार उन्होने राजकोट-राज्य से प्रतिज्ञा पूरी कराने के लिए अनशन आरभ कर दिया। यह अनशन ठीक उन्ही दिनो मे हुआ जब त्रिपुरी मे काँग्रेस हो रही थी। इसी कारण गाधीजी त्रिपुरी मे नही आ सके। वहाँ जो कुछ हुआ, उनकी गैरहाजिरी मे ही हुआ।

गाधीजी के अनशन का नतीजा यह हुआ कि इस मामले मे वायसराय लार्ड लिनलिथगो पडे। एक तरह से उस समय मामला तय हो गया। गाधीजी ने अन्न-ग्रहण किया; पर उन्होने इस अनशन से मार्मिक नैतिक सिद्धान्त निकाले, जिनका जिक्र उन्होने अधिकतर 'हरिजन' साप्ताहिक मे किया। उनका विचार हुआ कि यह अनशन अहिंसात्मक नही था। उन्होने पुनर्विचार के बाद अपनी भूल समझी और जैसा उनका तरीका है, इस बात को प्रकाशित भी कर दिया। जिस सूक्ष्मता के साथ

वह ऐसे नैतिक प्रश्नो पर विचार करते है और जहाँ-कही उनके हृदय मे किसी विषय की कोई कारंवाई बाल-भर भी सत्य से हटी हुई मालूम होती है, उसे तुरन्त स्वीकार करके उससे बाज आने मे जरा भी नही हिचकते। यह वही करते है और कर सकते है; दूसरा कोई राजनीतिक पुरुष इन विषयो पर उस उच्च नैतिक दृष्टिकोण से न तो नजर डालता है और न छोटी से छोटी त्रुटि के कारण कार्यक्रम को बदल देता है।

त्रिपुरी-कॉग्रेस का अधिवेशन एक अजीब और दु खद स्थिति मे हुआ। चुनाव के बाद समाचार-पत्रो मे जो वादविवाद हुआ उससे आपस मे काफी कटुता आ गयी थी। सुभाष बाबू के समर्थक लोग हम लोगो पर यह दोषारोपण कर रहे थे कि उनके बहुमत से चुने जाने के कारण हम लोग रुष्ट हो गये है, उनको नीचा दिखाना चाहते है, इसीलिए हमने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया है और हर तरह उनके रास्ते मे अडगा लगा रहे है। हम यह समझते थे कि यदि सचमुच बहुमत उनके साथ है तो कॉग्रेस चलाने का पूरा भार उनको उठाना चाहिए और ऐसे ही लोगो की वर्किंग कमिटी बनाकर कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए जो उनसे पूरी तरह सहमत हो; हम उनसे बहुत बातो मे सहमत नही थे और हमारे लिए उनके साथ मिलकर काम करना कठिन था—यदि सिद्धान्त और कार्यक्रम मे हमारे साथ उनका मतभेद नही था तो उनको चुनाव मे लडना ही उचित नही था—यदि उनके साथ बहुमत नही था और वह लोगो की गैर-समझ के कारण अथवा किसी दूसरे कारण से चुने गये थे तो वह चुनाव ही गलत था। जो हो, हम चाहते थे कि बात साफ हो जाय। हम नही चाहते थे कि कार्यक्रम वह और उनके विचार के लोग बनावे, और उसकी जवाबदेही हमारे सिर पर रहे, हम यह भी न कह सके कि हम उससे सहमत नही है। इन्ही विचारो से हमने कॉग्रेस के जल्से से पहले ही इस्तीफा दे दिया था। पर जैसा ऊपर कहा गया है, वह इस्तीफा मजूर नही हुआ; त्रिपुरी-कॉग्रेस के समय पुरानी वर्किंग कमिटी बनी रही।

त्रिपुरी मे अधिवेशन के पहले और अधिवेशन के समय आपस मे बहुत कशमकश थी। कार्यकर्त्ताओ मे तीव्र मतभेद था। दुर्भाग्यवश सुभाष बाबू बीमार भी थे। त्रिपुरी मे वह बहुत खिन्नावस्था मे पहुँचे थे। वहाँ की स्वागतकारिणी ने बहुत बडे समारोह का प्रबन्ध किया था। सभापति के जलूस के लिए सारे सूबे से उतने हाथी जमा किये थे जितने वर्षों से कॉंग्रेस के अधिवेशन होते आ रहे थे। बहुतेरे हाथी उस सूबे के रजवाडो के थे। प्रतिनिधियो के रहने आदि का भी अच्छा प्रबन्ध हुआ था। सभापति के लिए एक अलग ही कैम्प था जिसमे काफी लोग ठहरे थे। वर्किंग कमिटी के सदस्य दूसरे कैम्प मे ठहराये गये थे और प्रतिनिधि अपने-अपने सूबे के लिए बने कैम्पो मे ठहरे थे। प्रतिनिधियो के कैम्पो मे गरमागरम बहस चल रही थी। वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक होना भी कठिन था, क्योकि मनोनीत सभापति बीमार थे और आपस का मनमुटाव भी काफी बढ गया था। हमने वहाँ भी बहुत प्रयत्न किया कि मनोनीत सभापति नयी कार्यकारिणी बना ले और हम लोगो

को मुक्त कर दे, ताकि हम स्वतन्त्रतापूर्वक काँग्रेस के काम मे भाग ले सके। पर ऐसा नही हुआ। जो कार्यक्रम वह देना चाहते थे वह पहले तो हमको पूरा मालूम ही नही था और जहाँ तक मालूम था, हम उससे सहमत नही थे। ऐसी अवस्था मे कार्यकारिणी को अपना प्रस्ताव तैयार करना पडा। उसमे हमने सारी स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए यही कहा कि सभापतिजी यदि चाहे तो अपनी मर्जी के अनुसार कार्यकारिणी बनाकर अपना कार्यक्रम काँग्रेस मे मजूर करा ले, और यदि वह ऐसा करने को तैयार नही है तो कार्यक्रम और कार्यकारिणी गाधीजी की राय से बनावे। इन दोनों मे से वह कोई भी नही करना चाहते थे, क्योंकि वह जानते थे कि यद्यपि बहुमत से वह चुने गये है तथापि उनके कार्यक्रम को खुली काँग्रेस मजूर नही करेगी। ऐसी स्थिति मे उनको या तो फिर गाधीजी के कार्यक्रम को स्वीकार करके उसी के अनुसार चलना होगा या इस्तीफा देना पडेगा। वह गाधी-मतवालो के कार्यक्रम को भी स्वीकार नही करना चाहते थे और उनको छोडना भी नही चाहते थे। वह चाहते थे कि वे लोग उनके कार्यक्रम की जवाबदेही ले और उसे चलावे। हम लोगों मे से कुछ आदमी जब-तब जाकर इन बातो के सम्बन्ध मे उनसे परामर्श करते, पर कोई रास्ता न निकला और अन्त मे यही निश्चय हुआ कि हम लोग अपना प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी समिति के सामने रख देंगे—सभापति जो उचित समझेंगे, करेंगे।

विषय-निर्वाचिनी की बैठक मे सुभाष बाबू अस्वस्थावस्था मे किसी तरह लाये गये। वह मच पर लेटे रहे। उनकी पूजनीया माता और उनके परिवार की लड़कियाँ उनकी देखभाल करती रही। उनके भाई डाक्टर सुनील बोस तथा दूसरे डाक्टर भी बराबर उन्हे देखते रहे। उन्होने लेटे-लेटे छोटा-सा भाषण भी दिया जिसमे अपनी राय और अपना दृष्टिकोण बतला दिया। हम लोगो का प्रस्ताव भी रखा गया और बहुमत से वही स्वीकृत हुआ। बात स्पष्ट हो गयी कि विषय-निर्वाचिनी समिति मे, जिसके सदस्य अखिल भारतीय काँग्रेस-कमिटी के सदस्य ही हुआ करते है, उनका बहुमत नही है और उन्ही लोगों के साथ अखिल भारतीय कमिटी के रूप मे जब तक दूसरा अधिवेशन न हो और नये सदस्य न चुन लिये जायँ, सभापति को काम करना होगा। पर अभी काँग्रेस के खुले अधिवेशन मे प्रतिनिधियो का क्या रुख होगा—मालूम नही था। हम जानते थे कि वहाँ भी बहुत बड़ा बहुमत हमारे साथ होगा तो भी जब तक अधिवेशन न हो ले, इसको कोई निश्चित रूप से नही कह सकता था। अब अधिवेशन के समय दो प्रस्ताव पेश होंगे—एक सभापति की ओर से, दूसरा हम लोगो की ओर से, और यही देखना था कि खुले जल्से मे क्या नतीजा निकलता है।

खुले अधिवेशन का समय आ गया। सुभाष बाबू अधिवेशन मे शरीक नही हुए। इसलिए उनके स्थान पर मौलाना अबुल कलाम आजाद बैठे। यह तभी हुआ जब बहुत इन्तजार के बाद भी मनोनीत सभापति नही पहुँचे। उनकी अस्वस्थता का

हाल सब लोगो को मालूम था और वहाँ भी सब बाते बता दी गयी। अधिवेशन आरभ हुआ। सभापति का भाषण पढकर सुना दिया गया। इजिप्ट (मिस्र) से कुछ प्रतिनिधि काँग्रेस देखने आये थे, उनका स्वागत किया गया। उन्होंने इजिप्ट की ओर से काँग्रेस के प्रति ओर भारत के आजादी-आन्दोलन के साथ सहानुभूति दिखलायी। उसके बाद बाजाब्ता कार्यक्रम आरभ होने को था जब कुछ लोगो की ओर से कहा गया कि सभापति की गैरहाजिरी मे प्रस्ताव न पेश किया जाय। सारे देश के लोग एकत्र थे। इतने बडे अधिवेशन को स्थगित करना ठीक नही मालूम पडा। सभापति ने कहा कि प्रस्ताव उपस्थित कर दिया जायगा और ज्यादा बहस तथा मतप्रदर्शन दूसरे दिन होंगे जब आशा की जाती थी कि सभापति आ जायँगे। उनकी इस बात को कुछ लोगों ने पसन्द नही किया। कुछ लोगो ने शोर मचाना शुरू किया। शोर करनेवालों की सख्या बहुत नही थी। पर बड़ी सभा को भी थोड़े लोग गडबडी मे डाल दे सकते है। उस समय प० जवाहरलालजी मच पर खडे थे। उन्होने लोगो को शान्त करने का पूरा प्रयत्न किया। पर शोर मचानेवाले शान्त होने के बदले अपने स्थान से आगे बढ़ने लगे और मंच के नजदीक आ पहुँचे तथा अधिक शोर मचाने लगे। जवाहरलालजी अपने स्थान से हटे नही। वह लाउड स्पीकर द्वारा पचास हजार उपस्थित जनता से और दूसरे प्रतिनिधियों से आग्रह करते रहे कि वे अपने-अपने स्थान पर शान्त बैठे रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि जो थोडे लोग शोर मचा रहे थे वे आगे तो बढे, पर उनका साथ दूसरो ने नही दिया और उस समूह मे वे मुट्ठी-भर दीखने लगे। वे मच के नजदीक पहुँचकर कुछ देर तक शोर करते रहे; पर जवाहरलालजी अपने स्थान से डिगे नहीं। अन्त मे वे लोग थककर चुप हो गये। उसके बाद सभा की कार्रवाई ठीक चली। दोनो प्रस्ताव उपस्थित कर दिये गये। बहस और मत लेने की बात दूसरे दिन के लिए रख छोडी गयी।

हमने देखा कि इस प्रदर्शन से उपस्थित जनता और दूसरे प्रतिनिधि रुष्ट हुए। जिन लोगो ने प्रदर्शन द्वारा जनता और प्रतिनिधियो को अपनी ओर खीचने की बात सोची थी उनका प्रयत्न केवल निष्फल ही नही हुआ, बल्कि उनके लिए हानिकारक भी हुआ, क्योंकि जो थोडे लोग उनका साथ भी देनेवाले थे वे भी उनकी इस कार्रवाई से रज होकर दूसरी ओर चले गये। दूसरे दिन इस विषय पर विचार करने के लिए अधिवेशन उस खुले पडाल मे न करके विषय-निर्वाचिनी के खीमे मे किया गया। वहाँ केवल प्रतिनिधि ही आने दिये गये जिससे मत लेने मे सुविधा हो और किसी को शिकायत न रह जाय। वहाँ पूरी बहस के बाद मत लिया गया। बहुत बडे बहुमत से हम लोगोवाला प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। खुले अधिवेशन मे दूसरे प्रस्ताव, जिनके सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही था, पास करके अधिवेशन समाप्त हुआ।

अधिवेशन तो समाप्त हुआ, पर कटुता और भी बढ गयी। किसी बात को हम तय नही कर सके। काँग्रेस के अधिवेशन ने ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया जिसको सभापति नही चाहते थे। इतना ही नही, उसने सभापति के प्रस्ताव को नामजूर कर

दिया। अब प्रश्न यह था कि सभापति क्या करते हैं। यदि उस प्रस्ताव को वह मान लेते हैं तो उनको नयी कार्यकारिणी ऐसी बनानी होगी जिस पर गाधीजी का विश्वास हो और जिससे वह सहमत भी हो। त्रिपुरी मे बीमार रहने के कारण सुभाष बाबू ने वहाँ नयी कार्यकारिणी नही बनायी, जैसा सभापति किया करते है। वह तथा हम सब लोग अपने-अपने स्थान को वापस गये।

त्रिपुरी मे जो निश्चय हुआ उसके अनुसार सुभाष बाबू काम नही करना चाहते थे। उनका स्वास्थ्य भी ऐसा नही था कि इस विषय मे कुछ दिनो तक उनके साथ विचार कर कोई फैसला किया जा सके। शायद महात्माजी के साथ उनका कुछ पत्र-व्यवहार होता रहा। पर कोई बात तय नही हो पायी। उन्होने अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करनी चाही जो कलकत्ते मे होनेवाली थी। उसके पहले मै उनसे एक बार उनकी बीमारी की हालत मे, झरिया के जामाडूवा-कोलियरी मे जाकर, मिला भी जहाँ वह अपने भाई के साथ स्वास्थ्य सुधार रहे थे। पर मुझसे कोई खुलकर बाते नही हुई। अखिल भारतीय कमिटी कलकत्ते मे हुई। महात्माजी भी कलकत्ते गये, यद्यपि वह कमिटी की बैठक मे शरीक नही हुए। महात्माजी सोदपुर के खादी-प्रतिष्ठान मे ठहरे और हम लोग शहर मे। सुभाष बाबू और महात्माजी मे कई बार बाते हुई जिनमे हम भी अक्सर शरीक रहे। पर कोई नतीजा नही निकला। अब साफ हो गया कि सुभाष बाबू सभापति नही रह सकेंगे, क्योकि अखिल भारतीय कमिटी का बहुमत उनके साथ नही था। अब प्रश्न हुआ कि सभापति बने कौन। सरदार वल्लभभाई से सुभाष बाबू तथा दूसरे लोग भी असन्तुष्ट थे, क्योकि वह सबसे बाते साफ-साफ करते है और किसी की खुशामद करके उसे सन्तुष्ट करने की कला कभी उन्होने सीखी ही नही है। प० जवाहरलालजी इन सारी बातो से कुछ ऊब-से गये थे, यद्यपि उनके सामने भी कोई दूसरा रास्ता नजर नही आता था तथापि वह सभापति का पद लेना पसन्द नही कर सकते थे। मौलाना अबुल कलाम आजाद हम लोगो के विचारो से पूरा सहमत थे, पर दुर्भाग्यवश प्रयाग-स्टेशन के प्लाटफार्म पर गिर जाने से पैर के जख्मी होने के कारण चारपाई पर पडे थे। उन पर भार डालना मुनासिब नही मालूम होता था और इस अस्वस्थता मे वह उसे स्वीकार भी नही करते।

लोगो का खयाल हुआ कि सुभाष बाबू के इस्तीफा देने पर मै ही सभापति बनाया जाऊँ। मुझे यह बात बिलकुल पसन्द नही थी। एक तो मै इस तरह के झगडे से हमेशा बचना चाहता हूँ—मै समझता था कि जब तक फिर कांग्रेस न हो और नया सभापति न चुन लिया जाय तब तक गडबडी मचती ही रहेगी और मै इस झझट को नही सँभाल सकूँगा, क्योकि मेरा मिजाज ही ऐसा नही है कि झगडे कर सकूँ, दूसरे त्रिपुरी के बाद बिहार मे ही कांग्रेस आमन्त्रित थी और मुझे उसके लिए भी प्रबन्ध करना था, मुझे उसी मे समय लगाना पडेगा, और यदि मै अखिल भारतीय काम मे ही फँसा रहा तो अपने सूबे का काम बिगड जायगा। इन सब विचारो से मै नही चाहता था कि सभापति मै बनाया जाऊँ। पर जब महात्माजी

ने दूसरा कोई उपाय न देखकर मुझे आज्ञा दी कि मुझे यह भार उठाना ही पडेगा तब मै इनकार नही कर सका।

अखिल भारतीय कमिटी की पहले दिन की बैठक किसी तरह समाप्त हुई जिसमे कोई विशेष काम नही हुआ। हम सब जब पडाल से अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हो रहे थे तो हमने सुना कि पडित गोविन्दवल्लभ पत के साथ, जिन्होने त्रिपुरी का प्रस्ताव काँग्रेस के सामने उपस्थित किया था, और श्री भूलाभाई देसाई के साथ कुछ लोगो ने बुरा बर्ताव किया तथा श्री कृपालानीजी को भी कुछ लोगो ने घेर लिया था और मालूम होता था कि उनके साथ भी कुछ बुरा बर्ताव करेगे। इन बातो की खबर मुझे उस समय तो नही मिली, पर शहर मे यह खबर फैल गयी। उत्तर-भारत के रहनेवाले बहुत रोष मे आ गये। जवाहरलालजी को इसका पता लग गया और उन लोगों ने समझा-बुझाकर रोक लिया, नही तो दूसरे दिन सभा के पहले ही मारपीट हो जाती। दूसरे दिन सभा मे सुभाष बाबू नही आये। उन्होने केवल अपना इस्तीफा भेज दिया। कमिटी ने उसे मजूर कर मुझे सभापति चुन लिया। मै ज्योही खडा हुआ और आगे की कार्रवाई शुरू ही करनेवाला था कि कुछ लोग जोरो से शोर मचाने लग गये। जो दृश्य त्रिपुरी मे हुआ था वही फिर छोटे पैमाने पर होने लगा। मैं अपने स्थान पर खडा रहा। जब तक शोर-गुल खत्म नही हुआ, मै खडा ही रह गया। जब शोर-गुल खत्म हो गया, तो कुछ थोडा काम करके मैंने सभा बर्खास्त कर दी। वहाँ से चलने के समय कुछ वालण्टियर मेरी रक्षा के लिए मेरे चारो ओर हो लिये। उनमे से एक-दो ने रक्षा के बहाने मेरी बडी पकड ली और खीचाखीची करने लगे। तब तक दूसरे बचाने लगे। मुझे कुछ चोट नही लगी। परन्तु बडी का बटन टूट गया। मै गाडी पर सवार कर अपने स्थान पर पहुँचा दिया गया। मैंने इसका जिक्र किसी से नही किया; क्योकि इससे वैमनस्य और बढता। रात की गाडी से जब मै रवाना हुआ तो मुझे स्टेशन पर मालूम हुआ कि डाक्टर विधानचन्द्र राय के घर पर कुछ लोगों ने जाकर शोर-गुल मचाया और कुछ चीजे तोड-फोड भी दी। जो नयी वर्किंग कमिटी बनी उसके सदस्यों मे बगाल के डाक्टर विधानचन्द्र राय और डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष थे। पडित जवाहरलाल नेहरू ने उस समय सदस्य होना स्वीकार नही किया, यद्यपि उन्होने हर तरह से मदद देने का वचन दिया।

१३२—एक अत्यन्त अप्रिय कार्य

कलकत्ते की बैठक मे कोई विशेष काम नही हो सका था। इसलिए अखिल भारतीय कमिटी की एक दूसरी बैठक करना आवश्यक था। एक बैठक बम्बई मे थोडे ही दिनों के बाद की गयी। त्रिपुरी मे, जैसा ऊपर कहा गया है, मुख्य प्रस्ताव में पडित गोविन्दवल्लभ पत ने मुख्य भाग लिया था। पतजी युक्तप्रान्त के प्रधान मत्री थे। हम लोगों के विरोधियों ने इस बात का वहाँ और पीछे भी बहुत प्रचार किया था कि काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल सुभाष बाबू के विरोधी थे और उन लोगो ने ही त्रिपुरी मे

अपने प्रभाव से तथा अपनी पद-मर्यादा से अनुचित लाभ उठाकर त्रिपुरी का प्रस्ताव पास कराया है। कुछ और कारणों से कुछ लोग मन्त्रिमण्डलो से असन्तुष्ट थे। इस प्रकार से एक दल ऐसा पैदा हो गया था जो मन्त्रिमण्डलों की शिकायत और उनके रास्ते मे अडचने पैदा किया करता था। मन्त्रिमण्डल सभी प्रान्तो मे, जहाँ कॉग्रेसी मेम्बरो का बहुमत था, कॉंग्रेस की आज्ञा के अनुसार काम कर रहे थे। पारलेमेण्टरी कमिटी कभी उनके कामो मे हस्तक्षेप नही करती थी, पर इस बात पर निगहबानी रखती थी कि जो घोषणा और वादा हमने चुनाव के पहले कांग्रेस की ओर से किया था वह पूरा किया जाय। मन्त्रिमण्डल भी यथासाध्य इस प्रयत्न मे लगे हुए थे। मेरा विचार है कि अपने अधिकार के अन्दर और विद्यमान परिस्थिति मे जो कुछ हो सकता था, वे कर रहे थे। पर कांग्रेस के अन्दर के लोगो मे से ही कुछ उनका विरोध करने लगे थे। वह विरोध क्रियात्मक रूप धारण करता जाता था। हम लोग कांँग्रेस-विरोधियो के विरोध को समझ सकते थे। कॉग्रेसियो के विरोध-विचार भी समझ मे आते थे। यथासाध्य उनको मिलाने का प्रयत्न मन्त्रिमण्डल किया करते थे। पर अब परिस्थिति कुछ इस तरह की पैदा कर दी गयी कि सुभाष बाबू के सभी अनुयायी और मन्त्रिमण्डलो के विरोधी एक साथ होकर काम करने लगे। लोगो की मनोवृत्ति ऐसी दीखने लगी कि कांग्रेस के अन्दर जो झगडा त्रिपुरी के पहले और बाद हुआ उसको मन्त्रिमण्डलो के विरुद्ध काम मे लाकर मन्त्रिमण्डलों को तिरस्कृत किया जाय और इस तरह उनकी अप्रतिष्ठा की जाय। इसमे डाक्टर खरे और उनके कुछ साथी भी, जैसे मध्य-प्रदेश के मन्त्रिमण्डल के विरोधी, शरीक हो गये। कुछ लोगो का विचार दीखने लगा कि मन्त्रिमण्डलो को तोडना सुभाष बाबू के विरोधियो को नीचा दिखाना होगा। हम लोगों के खिलाफ कुछ कहना-करना मुश्किल था, पर मन्त्रिमण्डलो के खिलाफ कुछ कह देना और कर देना आसान था, क्योकि उनको दिन-रात कुछ न कुछ करना पडता था, और किसी चीज को लेकर उसमे छिद्र निकालना कुछ मुश्किल नही है। हम लोगों का कहना था कि यदि मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध किसी कांँग्रेसी को कोई शिकायत हो तो कॉग्रेस की कमिटियों के सामने पेश करे। पारलेमेण्टरी कमिटी, वर्किंग कमिटी और जरूरत पडने पर अखिल भारतीय कमिटी भी उन शिकायतो की जॉच करके उन्हे दूर करने के लिए तैयार थी। पर उन शिकायतो को लेकर केवल मत ही प्रकट करना नही, बल्कि मन्त्रिमण्डल को नीचा दिखाने की कार्रवाई करना किसी भी कॉग्रेसी के लिए अनुचित था। इस तरह के प्रदर्शन देश मे बढते जा रहे थे जिससे मन्त्रिमण्डलो को और उनके साथ-साथ कांँग्रेस की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुँचता था।

बम्बई की बैठक मे एक प्रस्ताव रखा गया जिसमे इस तरह के क्रियात्मक विरोध की निन्दा की गयी और उसे न करने का कांँग्रेसियो को आदेश दिया गया। इस प्रस्ताव का जोरो से विरोध सुभाष बाबू और उनके अनुयायियो ने किया। पर प्रस्ताव बहुत बडे बहुमत से स्वीकार हो गया। हम समझते थे कि कॉग्रेसी लोग इस

प्रस्ताव को मान लेगे और इस तरह की वात और कार्रवाई अव नही होगी। पर ऐसा हुआ नही। वहुत जल्द इस तरह की वाते हुई जिनसे हमको अनुशासन-भग के लिए सुभाप वावू के विरुद्ध कार्रवाई करनी पडी।

इस दु खद कहानी के पहले एक सुखद घटना का उल्लेख आवश्यक है। इधर कई वर्षों से गाधी-सेवा-सघ का एक सालाना उत्सव हुआ करता था जिसमे उसके सभी सदस्य सभी प्रान्तो से एक निश्चित स्थान पर इकट्ठा होकर कई दिनो तक महत्त्व के सिद्धान्तो और प्रश्नों पर चर्चा किया करते थे। इसमे गाधीजी भी शरीक होते थे। जहाँ वैठक होती थी उस स्थान मे सदस्य लोग कुछ सार्वजनिक सेवा का काम भी किया करते थे। खादी, सूत-कताई आदि का प्रदर्शन भी हुआ करता था। इस वार गाधी-सेवा-सघ का अधिवेशन वेतिया (चम्पारन) के पास वृन्दावन मे होनेवाला था। वहाँ कुछ दिनो से पडित प्रजापति मिश्र ने एक आश्रम खोल रखा था। उसी इलाके मे वर्धा-योजना के अनुसार, विहार-गवर्नमेण्ट की ओर से, प्राथमिक पाठशालाएँ भी खोली गयी थी। वहाँ के कार्यकर्त्ताओ ने वडे उत्साह के साथ अधिवेशन के लिए वडी तैयारी की थी। महात्माजी को एक थैली भेट करने की योजना वनायी गयी थी। इस अधिवेशन की तिथि इस तरह रखी गयी थी कि कलकत्ते से अखिल भारतीय कमिटी की वैठक के वाद महात्माजी और हम सव सीधे वहाँ आ जावे। इसीलिए अखिल भारतीय कमिटी की वैठक समाप्त करके महात्माजी के साथ ही मै भी कलकत्ते से वेतिया के लिए रवाना हुआ। वहुतेरे सदस्य, जो गाधी-सेवा-सघ के मेम्बर नही थे, अधिवेशन मे शरीक होने के लिए आये। उस अवसर पर सघ के अधिवेशन के अलावा तालीमी सघ की भी, जो वर्धा-शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने मे लगा था, वैठक वहाँ की गयी थी। उसके सभापति होनेवाले थे वम्वई प्रान्त के प्रधान और शिक्षा मत्री श्रीयुत खेर। वह भी हमारे साथ कलकत्ते से वहाँ आये। अधिवेशन वडे समारोह से हुआ। लोगो ने भी वडा उत्साह दिखाया। एक तो गाधीजी को चम्पारन की जनता खूव प्रेम और भक्तिभाव से देखती है, दूसरे इस प्रकार की इतनी वडी कोई दूसरी सभा वहाँ कभी हुई नही थी, इतने लोग वाहर से वहाँ कभी आये नही थे। दोनो पक्षो मे, आनेवालो और स्वागत करनेवालों मे, काफी उत्साह था। सभी वाते वहुत अच्छी तरह से समाप्त हुईं। गाधीजी को थैली भी दी गयी जिसको उन्होने कुछ हरिजन-सेवा और कुछ दूसरे कामो के लिए वाँट दिया। हरिजन-सेवा के लिए रुपये तो हरिजन-सेवक-सघ को दे दिये गये। स्थानीय कामो के लिए जो था वह स्थानीय आदमियो के हाथो मे दे दिया गया। एक अच्छी रकम विहार मे मजदूर-सगठन करने के लिए अलग करके रख दी गयी।

अखिल भारतीय कमिटी की उस वैठक के थोडे ही दिनो के वाद, जिसमे निश्चय किया गया था कि कोई भी कांग्रेसी किसी ऐसे क्रियात्मक कार्य मे भाग न ले जिससे कांग्रेस तथा मन्त्रिमण्डलो की प्रतिष्ठा मे ठेस लगे, श्री सुभापचन्द्र वोस ने घोषणा की कि कांग्रेस-कमिटी के इस निश्चय के विरुद्ध सारे देश मे जवरदस्त प्रदर्शन

किया जाय। ऊपर कहा जा चुका है कि यह निश्चय बहुत बडे बहुमत से स्वीकृत हुआ था। अब उस निश्चय की सीधी अवहेलना पर प्रदर्शन करनेवाले तुल गये। घोषणा समाचार-पत्रों मे पढकर मैंने सभापति की हैसियत से सुभाष बाबू को तार दिया कि इस प्रकार की अवहेलना उचित नही है और वह इससे बाज आवे। पर उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया और अपने निश्चय के अनुसार इस प्रकार के प्रदर्शन कराये जिनमे कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ता भी बहुत जगहो मे शरीक हुए। हमारे सामने अब यह विकट प्रश्न उपस्थित हो गया कि इस तरह की अवहेलना कॉंग्रेस कब तक बर्दाश्त कर सकती है। कॉंग्रेस के अन्दर मतभेद निपटाने का एकमात्र रास्ता यह है कि उस प्रश्न पर सम्मति ले ली जाय। पर जब तक उसका निश्चय बहुमत द्वारा बदलवा न दिया जाय तब तक किसी कॉंग्रेसी को, कॉंग्रेस के निश्चय के विरुद्ध विचार रखते हुए और मतभेद प्रदर्शित करते हुए भी, कोई विरोधी कार्रवाई नही करनी चाहिए—विशेषकर ऐसी कोई कार्रवाई जिसमे कॉंग्रेस की प्रतिष्ठा को ठेस लगती हो। इस प्रदर्शन मे भाग लेनेवालो ने ठीक ऐसा ही किया था। हमारे लिए अनिवार्य हो गया कि हम अनुशासन की कार्रवाई करे।

वर्किंग कमिटी की बैठक की गयी। सुभाष बाबू से कैफियत मॉंगी गयी। उन्होने कैफियत मे अपनी कार्रवाई की पुष्टि की और उसका समर्थन किया। वर्किंग कमिटी ने बहुत विचार के बाद निश्चय किया कि सुभाष बाबू का काम ऐसा है जिस पर उसको मजबूरी अनुशासन की कार्रवाई करनी चाहिए। यह निश्चय कुछ आसान नही था, क्योकि सुभाष बाबू कॉंग्रेस के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वह कॉंग्रेस के सभापति दो बार चुने गये और हो चुके थे। मतभेद के कारण इस समय वह उस पद से हट गये थे। पर उनकी देश-सेवा, निर्भीकता और त्याग के सभी कायल थे। ऐसे आदमी पर अनुशासन की कार्रवाई कैसे की जाय? सबको खटकता था। न मालूम क्यो, मेरा कुछ भीतरी प्रेम भी उनके साथ था, यद्यपि मुझे उनके साथ मिलकर कोई काम करने का मौका नही मिला था और न हम दोनो मे किसी समय उतनी घनिष्ठता ही हुई थी। हॉं, उनके भाई श्री शरत्चन्द्र बोस को मै पढने के समय से ही जानता था, क्योकि हम दोनों एक ही समय प्रेसिडेन्सी-कालेज मे पढते थे और एक ही होस्टल मे रहा करते थे—उनके साथ कुछ घनिष्ठता थी और उनके प्रति मेरा कुछ आदर और प्रेम भी था। पर प्रश्न यह था कि कॉंग्रेस के सारे सगठन मे इस प्रकार से धक्का लगने देना क्या उचित होगा—क्या अपने व्यक्तिगत भावो के कारण इस सार्वजनिक और सार्वदेशिक सस्था की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचानेवाले के साथ अनुशासन की कार्रवाई न की जाय? जैसा ऐसे अवसरो पर हुआ करता है, सस्था के प्रति कर्तव्य-पालन की भावना व्यक्तिगत भावो को दबाने के लिए मजबूर करती है। हम सबने बहुत दु ख के साथ, पर कर्तव्य-भावना की प्रेरणा से विवश होकर, सुभाष बाबू को कॉंग्रेस-कमिटी से एक अवधि के लिए खारिज कर दिया। जिन दूसरे लोगो ने उनका उस प्रदर्शन मे साथ दिया था, उनके साथ भी कुछ कार्रवाई करना आवश्यक था।

पर वर्किंग कमिटी ने इसको खुद न करके प्रान्तीय कमिटियो पर छोड दिया कि वे जाँच कर जहाँ जैसा मुनासिब समझे कार्रवाई करे।

सुभाष बाबू त्रिपुरी के समय से ही नये दल का सगठन कर रहे थे, जिसको उन्होने 'फारवर्ड ब्लाक' नाम दिया था। अब, वह अधिक जोरों से सगठित किया गया। इसके बाद उस दल और कांग्रेस के बीच खुल्लमखुल्ला विरोध चलने लगा। प्रान्तीय कमिटियों ने भी जहाँ-तहाँ कुछ लोगों पर अनुशासन की कार्रवाइयाँ की। आपस का झगड़ा और भी बढ गया। कांग्रेस का विरोध उस दल की ओर से सब जगहों मे होने लगा।

१३३—उड़ीसा और मध्यप्रदेश के मंत्रिमण्डल की कुछ और बातें

मेरा इस बार का सभापति होना मेरे लिए दु खद रहा, क्योकि ऐसा वातावरण पैदा हो गया कि सभी जगहो मे झगडे ही चलते रहे और दूसरा काम कठिन हो गया। दो झगडे और हुए जिनका जिक्र कर देना अच्छा होगा। एक उडीसा का और दूसरा मध्यप्रदेश का। इनके सम्बन्ध की कुछ बातो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह बतलाया गया है कि कुछ लोग जहाँ-तहाँ मन्त्रिमण्डलो के विरुद्ध बहुत बाते करने लग गये थे। इस तरह के कुछ लोग उडीसा मे थे जिन्होने वहाँ के मन्त्रि-मण्डल की शिकायते शुरू कर दी थी। यह भी मै ऊपर कह चुका हूँ कि जब 'डेलाग' मे, १९३८ के मार्च या अप्रैल मे, हरिपुरा-कांग्रेस के बाद ही, गाधी-सेवा-सघ की वार्षिक बैठक हुई थी, तो इस तरह की शिकायते आयी थी। वहाँ सरदार बल्लभ-भाई मौजूद थे। मै भी था। हमने दोनो पक्षों को बुलाकर आपस मे मेल-मिलाप करा देने का प्रयत्न किया। जो कुछ शिकायते थी उनकी थोडी-बहुत सरसरी जाँच भी कर ली। हम आशा करते थे कि मामला निबट जायगा, पर भीतर ही भीतर आग सुलगती रही। पारलेमेण्टरी कमिटी के सामने बात आयी। उसके सभापति सरदार पटेल ने अन्त मे यह कहा कि शिकायत करनेवाले शिकायते ठीक-ठीक लिखकर दे तब वह जाँच करायेंगे, पर दोनों पक्षों को समझ लेना चाहिए कि शिकायत यदि ठीक निकलेगी तो मत्री पर और अगर झूठी साबित होगी तो शिकायत करनेवाले पर कार्रवाई की जायगी। त्रिपुरी-कांग्रेस के कुछ पहले कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट के नाते, सुभाष बाबू के पास भी शिकायत पहुँची। इन सब कारणो से जाँच करना आवश्यक हो गया। सुभाष बाबू ने मुझे जाँच करने का काम सुपुर्द किया। मैंने जाँच शुरू की, पर वह पूरी नही हो सकी। मुझे एक बार से अधिक उडीसा जाना पडा। कई दिनो तक दोनो पक्षों की बाते सुननी पडी। गवाहियाँ लेनी पडी। बहुत कागजो को पढना पडा। जब मेरी रिपोर्ट तैयार हुई, सुभाष बाबू सभापतित्व से इस्तीफा दे चुके थे—मै प्रेसिडेण्ट हो चुका था। मेरी लम्बी रिपोर्ट एक अदालती फैसले का रूप रखती थी। उसे पारलेमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी ने मजूर किया। मुख्य शिकायते गलत

साबित हुई। शिकायत करनेवाले पर कार्रवाई की गयी। पर कुछ दिनो के बाद उनके माफी मॉग लेने पर अनुशासन की सजा उठा दी गयी।

इस चीज को यहॉ इतने विस्तार के साथ लिख देना इसलिए आवश्यक था कि शिकायत करनेवालों के पीछे जो लोग मददगार थे उन्होने पीछे चलकर कॉग्रेस के विरुद्ध खुले आम काम किया। पडित नीलकठदास और पडित गोदावरीश मिश्र उनमें मुख्य थे। वे श्री विश्वनाथदास प्रधान मत्री का विरोध आरम्भ से ही करते थे। ये दोनों सज्जन १९२०-२१ से ही कॉंग्रेस की सेवा करते आ रहे थे। उडीसा-प्रान्त के लोगो मे दोनों की प्रतिष्ठा थी। जब १९३७ मे प्रान्तीय असम्वली के लिए चुनाव हुआ, पडित नीलकठदास केन्द्रीय असम्बली के मेम्बर थे। उन्होने प्रान्तीय असम्वली के लिए उम्मीदवारी की दर्खास्त नही दी, पर चुनाव मे उन्होने पूरा भाग लिया। कॉग्रेस की ओर से प्रचार मे काम भी किया। पडित गोदावरीश मिश्र प्रान्तीय असम्बली के लिए खडे हुए और चुने भी गये। चुनाव हो जाने के बाद जब मन्त्रिमण्डल बनने का अवसर आया तो वहॉ की असम्बली के सदस्यो ने पडित नीलकण्ठदास को, जो उस असम्बली के सदस्य नही थे, नेता न चुनकर श्री विश्वनाथदास को नेता चुन लिया। जब मन्त्रिमण्डल बना तब नेता चुने जाने के कारण स्वभावत वही प्रधान मत्री बने। पडित नीलकठदास इससे बहुत रुष्ट थे। जो शिकायते आती थी वे ऐसी होती थी जिनसे श्री विश्वनाथदास के नैतिक चरित्र और ईमानदारी पर हमला होता था। इसीलिए जॉच के पहले इस बात की चेतावनी देनी पडी थी कि यदि शिकायत साबित न होगी तो मुद्दई पर कार्रवाई की जायगी। शिकायत करनेवाले मुद्दई पडित नीलकठदास के साथ काम करनेवाले सज्जन थे, पीछे शायद वह उनसे अलग हो गये। उस समय उन लोगों का कुछ बस न चला, क्योकि शिकायत गलत और बेबुनियाद साबित हो गयी। कॉग्रेस से सुभाष बाबू के अलग हो जाने पर पडित नीलकठदास ने उनका साथ दिया और केन्द्रीय असम्बली मे भी उनकी कार्रवाई ऐसी हुई जैसी कॉग्रेसी सदस्य द्वारा नही होनी चाहिए थी। वह कॉग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके केन्द्रीय असम्बली के सदस्य चुने गये थे। उसमे उन्होने वादा किया था कि वह कॉग्रेस के अनुशासन को मानेगे। पर कुछ दिनो के बाद उन्होने ऐसा करने से इनकार कर दिया। कॉग्रेस पार्टी से वह अलग हो गये। जब योरपीय महायुद्ध आरम्भ होने के बाद कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफा दिया तो उडीसा का मन्त्रिमण्डल भी, और जगहो की तरह, टूट गया। पडित नीलकठदास और पडित गोदावरीश मिश्र इस बात की चिन्ता मे लगे रहे कि किसी न किसी तरह वहॉं मन्त्रिमण्डल बने। पर जब कॉग्रेसी सदस्यो के बहुमत ने उनका साथ नही दिया तो वहॉ की जमीन्दार-पार्टी के साथ मिलकर, जिसके नेता पारलाकिमेडी के महाराज बहादुर थे, उन्होने मन्त्रिमण्डल कायम कराया जिसमे श्री गोदावरीश मिश्र मत्री हुए और महाराजा प्रधान मत्री! कुछ कॉग्रेसी लोगों को उन्होने फोड लिया, पर अधिकाश को जेलो मे वन्द करके किसी प्रकार उन्होने अपना बहुमत कर लिया है और अब भी मन्त्रिमण्डल कायम है।

पर जिस समय ये पक्तियाँ लिखी जा रही है (१९ जून १९४४), समाचार-पत्रो से मालूम होता है कि महाराज और मिश्रजी मे कुछ अनवन हो गयी है और मन्त्रिमण्डल सकट मे है। सुना है कि पडित नीलकण्ठदास और पडित गोदावरीश मिश्र मे भी अब वह सद्भाव नही है जो कांग्रेस के प्रति विरोध करके मन्त्रिमण्डल बनाने के समय दोनों मे था।

मध्यप्रदेश की भी कुछ इसी प्रकार की शिकायते थी जिसका सकेत पहले दे चुका हूँ। कुछ तो ऐसी बाते थी जो मन्त्रिमण्डल बनने के पहले की थी। मन्त्रिमण्डल बनने के समय डाक्टर खरे और पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र एक साथ थे, दोनो मे काफी घनिष्ठता थी, प्रतिद्वन्द्वी उस समय समझे जाते थे श्री रविशकर शुक्ल। पर डाक्टर खरे की नीति और तौर-तरीके से मिश्रजी तथा दूसरे इतने ऊब गये थे और डाक्टर खरे उनसे इतने विरक्त हो गये थे कि अब मिश्रजी और शुक्लजी एक साथ होकर काम कर रहे थे और डाक्टर खरे उनके विरुद्ध। इसी कारण से वहाँ का मन्त्रिमण्डल टूटा था। डाक्टर खरे को अलग होना पडा था और आपस के झगडे अभी तक उसी गति से चल रहे थे। डाक्टर खरे हट तो गये थे, पर उनके कुछ साथी और सहयोगी अभी तक उस झगडे को चलाये जा रहे थे। उसमे से कुछ लोगों ने पुरानी गदी शिकायतों और कुछ नयी बातों को लेकर, पारलेमेण्टरी कमिटी तथा वर्किंग कमिटी के सामने, मन्त्रिमण्डल और विशेषकर मिश्रजी के विरुद्ध, शिकायते पेश की। पहले श्री भूलाभाई देसाई को इन शिकायतो की जाँच का भार सौपा गया। पर उनसे मुद्दई लोगो का मतभेद हो गया। अन्त मे मुझे प्रेसिडेण्ट की हैसियत से इस मामले को भी देखना पडा। मैंने इसमे भी दोनों पक्षों की बाते सुनकर, बहुत से कागजो को देखकर, फैसला दिया जो वर्किंग कमिटी के सामने पेश होकर मजूर किया गया। कुछ लोग फैसले के बाद भी बहुत कुछ लिखते-बोलते रहे, पर एक बार फैसला हो जाने और पत्रो मे छप जाने पर मामला ठढा पड गया।

मेरा अधिक समय इस प्रकार के कामो मे ही लगा जिससे जी घबराता था और ठीक तरह से रचनात्मक काम करने का मौका नही मिलता था। इस बार प्रेसिडेण्ट होने का एक और नतीजा यह निकला कि अपने सूबे के साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध रहा करता था वह कम हो गया। समयाभाव से मै सूबे के कामो और बातो मे उतनी दिलचस्पी न ले सका और न सूबे का दौरा ही कर सका। १९३४-३५-३६ मे भी जब प्रेसिडेण्ट था और सूबों के दौरे मे ही सारा समय लगा दिया था, बिहार मे कुछ भी समय न दे सका। वही बात इस बार भी हुई, यद्यपि इस बार दौरा करने का मौका नही मिला। किन्तु इस बार बिहार मे कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। इसलिए रुपये जमा करने के लिए कही-कही जरूर जाना पडा। जब अखिल भारतीय काम से छुट्टी मिलती, इधर दौड जाता, या यों कहिये कि दोनो के बीच मे मै इधर-उधर दौड़ता रहा।

१३४—रामगढ़-कॉंग्रेस के लिए स्थान का चुनाव

त्रिपुरी से लौटते ही हमको यह सोचना था कि बिहार मे कॉंग्रेस का अधिवेशन कहॉं किया जाय। इधर कई बरसों से जल्सा किसी गॉंव मे हुआ करता था। हम भी चाहते थे कि कही गॉंव मे ही करे। मेरा विचार पहले यह हुआ कि अधिवेशन सोनपुर मे किया जाय। वह तीन जिलो के सीवाने पर है। वहॉं प्रतिवर्ष बहुत बडा, भारतप्रसिद्ध, मेला लगा करता है। उसमे देश-भर से लाखो आदमी आते है। लाखो की सख्या मे मवेशी, घोडे-हाथी और दूसरे जानवर, बिक्री के लिए लाये जाते है। इसलिए वहॉं बहुत बगीचे है। लाखों लोगो के लिए जल का प्रबन्ध आसान नही है, इसलिए बहुतेरे कुँएँ बनाये गये है। मेले के समय पानीकल भी जारी किया जाता है जिसको जिला बोर्ड ने बना रखा है। मेला कार्तिकी पूर्णिमा को हुआ करता है। कॉंग्रेस का अधिवेशन प्राय तीन महीने बाद होता। इसलिए मेले मे हम बॉंस, खर, चटाई इत्यादि बहुत सामान सस्ता खरीद सकते थे। प्रतिनिधियो के निवास-स्थान का निर्माण मेले के बाद भी शुरू करके आसानी से पूरा कर सकते थे। इन सुविधाओ के सिवा गण्डक नदी के किनारे होने के कारण बॉंस, लकडी, फूस वगैरह नदी द्वारा आसानी से लाये जा सकते थे। गगा से उत्तर के जिले, बिहार मे कॉंग्रेस के कार्य-कलाप के लिए, बहुत जानदार जिले समझे जाते है। पहले दो बार कॉंग्रेस के अधिवेशन बिहार मे हो चुके थे, पर दोनो बार गगा से दक्खिन ही—पटने और गया मे। उत्तर के लोग बहुत चाहते थे कि उत्तर-बिहार मे भी एक अधिवेशन हो। इन सब विचारो से मेरा खयाल था कि यही अधिवेशन किया जाय। पर सबकी राय लेनी थी। सबसे अधिक यह देखना था कि जो नगर हम बसावेंगे उसके बसाने मे स्वास्थ्य की दृष्टि से कहॉं अधिक सुविधा होगी। इसलिए त्रिपुरी से लौटकर हम दो-चार आदमी उन सभी जगहो को देखने गये जो अधिवेशन के लिए उपयुक्त समझी जाती थी। त्रिपुरी मे ही मैंने श्री रामदास गुलारी को आमन्त्रित कर दिया था कि बिहार के कॉंग्रेस-निर्माण मे सहायता देने के लिए उनको आना चाहिए। उन्होने इस निमत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। गुलारीजी एक अनुभवी इजीनियर है। पर अब महात्मा गाधी के साथ सेवाग्राम मे रहा करते है। फैजपुर मे जब पहले-पहल देहात मे कॉंग्रेस का अधिवेशन करने का महात्माजी का विचार हुआ तो वहॉं निर्माणकार्य मे मदद देने के लिए गुलारीजी ही गये थे। त्रिपुरी मे भी उन्होने ही कॉंग्रेस-नगर-निर्माण का कार्य कराया था। उनके अनुभव से लाभ उठाने के लिए ही मैंने उनको निमत्रण दे दिया था। वह ठीक समय पर आ गये। स्थान चुनने मे भी शरीक रहे। वह भी उन सभी जगहो पर गये जिनको हम उपयुक्त समझते थे।

हम लोगो ने पटना-जिले मे राजग्रह को भी इस काम के लिए देखा। वह बहुत ही प्राचीन और ऐतिहासिक स्थान है। उसको जरासध की राजधानी और बुद्धदेव का निवास-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। बौद्ध और जैन काल मे भी

उसे बडी प्रसिद्धि मिल चुकी है। नालन्दा का वह महान् विद्यापीठ भी वहाँ से थोडी ही दूर पर है जहाँ किसी समय हजारो विद्यार्थी और भिक्षु विद्याभ्यास किया करते थे—जहाँ से विद्वान् भिक्षु और परिव्राजक प्रचारक बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ तिब्बत, चीन प्रभृति देशो मे गये थे—जहाँ के ध्वस्त विहारो और भग्नावशेषो की खुदाई से निकली हुई इमारते और किस्म-किस्म के सरजाम आज भी लोगो को चकित करते है। ऐतिहासिक दृष्टि से जगह बहुत ही उपयुक्त और प्राकृतिक दृष्टि से भी रमणीय तथा स्वास्थ्य-प्रद थी। पर आधुनिक सुविधाओ का अभाव! सबसे अधिक वहाँ पहुँचने की कठिनाई! पानी की भी कमी! इन कारणो से उसे छोड देना पडा। पीछे यह भी खयाल हुआ कि पटने के पास ही फुलवारी-शरीफ मे अधिवेशन किया जाय। पर यह स्थान पटने के इतना निकट था कि वह शहर का ही अधिवेशन समझा जाता, पर शहर की सुविधाएँ वहाँ नही मिलती।

उधर छोटानागपुर के लोगो का, विशेषत हजारीबाग के बहादुर कॉग्रेसी बाबू रामनारायणसिह का, बहुत जोर था कि कोई स्थान छोटानागपुर मे ही चुना जाय। उनकी हमेशा शिकायत रहा करती थी कि हम लोग छोटानागपुर के साथ लापरवाही बरतते है। अस्तु, छोटानागपुर भी ध्यान मे रखा गया। हम लोगो ने अन्त मे हजारीबाग जिले के रामगढ को ही पसन्द किया। इसका विशेष यश श्री रामदास गुलारी को ही है, क्योकि उन्होने इस स्थान को स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक उपयोगी समझा। मेरी भी धारणा थी कि उन सुन्दर सुहावने जगलो के बीच दामोदर नदी के किनारे का अधिवेशन अपने ढग का निराला होगा।

स्थान चुन तो लिया गया, पर अधिवेशन के लिए निश्चित स्थान पर जगल था! उसको साफ कराना था और वहाँ प्राय. सब कुछ जुटाना था। आरभ से ही मैने श्री अम्बिकाकान्तसिह को वहाँ भेज दिया और वह वहाँ रहकर बडे परिश्रम और लगन के साथ काम करने लगे। मै भी कुछ दिनो तक रॉची मे ठहरा रहा जहाँ से रामगढ प्राय ३०-३२ मील की दूरी पर है। नक्शा वगैरह गुलारीजी बनाने लगे। जगल कटने लगा। काम आगे बढ़ने लगा। मै इधर-उधर रुपये जमा करने के लिए और-और भाइयो के साथ घूमने लगा। उनमे मुख्यत , मेरे साथ प्राय सभी जगहो मे जानेवाले, बाबू मथुराप्रसाद थे। दौड-धूप करता रहा। बरसात मे काम बहुत आगे नही बढ सकता था। पर तो भी सबका खाका तो तैयार ही कर लिया गया। मै रामगढ मे-ही था। उस समय भी दमा से रुग्ण था। उसी जगह यह खबर मिली कि जर्मनी ने पोलैड पर चढाई कर दी और इँगलैड तथा फ्रान्स के साथ भी उसकी लडाई छिड गयी! उस समय जर्मनी ने, लडाई के कुछ दिन पूर्व, रूस के साथ समझौता कर लिया था।

१३५—कॉंग्रेस और योरप का दूसरा महायुद्ध

इस विषय पर बहुत विचार करने के बाद, १९३८ के सितम्बर मे, बिना किसी फैसले पर पहुँचे हुए ही, वर्किंग कमिटी ने बात वही छोड दी थी, क्योकि लडाई

छिडी नही और चेम्बरलेन ने चेकोस्लोवाकिया को हिटलर का शिकार छोडकर सुलह कर लिया। अब कॉंग्रेस को कुछ निश्चय करना होगा! उधर जवाहरलालजी इस समय चीन गये हुए थे। गाधीजी की वाइसराय से मुलाकात हुई। वर्किंग कमिटी की बैठक वर्धा मे की गयी। मै बीमार तो था, पर किसी तरह से वर्धा पहुॅच गया। महात्माजी ने श्री महादेव देसाई को भेजा कि चाहे जिस तरह हो सके, मुझे वह जरूर वर्धा ले आवे। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनो तक चली। इसी बीच मे श्री जवाहरलाल नेहरू भी चीन से वापस आ गये। मामला बहुत गहन था। यह सोचा गया कि यद्यपि श्री सुभाषचन्द्र बोस कॉग्रेस से अलग है तो भी इस मौके पर उन्हे भी बुलाना चाहिए और उनकी राय भी लेनी चाहिए। कॉग्रेस के दूसरे प्रमुख व्यक्ति भी, जो वर्किंग कमिटी के साथ नही थे, बुला लिये गये।

गाधीजी ने वाइसराय से मुलाकात के बाद एक वक्तव्य प्रकाशित किया था जिसमे उन्होंने इॅगलैड के प्रति सहानुभूति दिखलाई थी और यह भी कहा था कि हमको इॅगलैड की मदद बिना शर्त करनी चाहिए। इससे कुछ लोगो को गलतफहमी हुई। पीछे जब कॉग्रेस-कमिटी की ओर से इस बात की मॉग पेश की गयी कि ब्रिटिश सरकार युद्ध-विषयक और युद्धोत्तर शान्ति-सम्बन्धी अपने विचार तथा उद्देश्य साफ बतला दे तभी हिन्दुस्थान दिल खोलकर मदद कर सकेगा, तो ॲंगरेजो को यह कहने का मौका मिला कि गाधीजी अपने प्रकाशित वक्तव्य से हट गये। कॉग्रेसियो मे बहुतो को यह बात पसन्द नही आयी कि इस तरह बिना शर्त मदद इस साम्राज्यवादी लडाई मे देना उन्होंने स्वीकार कर लिया था। बात यह थी कि दोनो पक्षो का विचार आशिक था। गाधीजी ने यह कभी नही सोचा था कि हिन्दुस्थान से रुपये और आदमी की मदद दी जायगी। वह समझते थे कि इस युद्ध मे हिन्दुस्थान-ऐसे पराधीन देश की सहानुभूति ॲंगरेजो के लिए एक ऐसी कीमती चीज होगी जो सारे ससार की सहानुभूति उनके साथ ला सकेगी। उन्होने इसी सहानुभूति की बात सोची थी, पर इसमे शक नही कि उस समय इस तरह के बयान से लोगो मे कुछ खलबली पैदा हुई थी।

वर्किंग कमिटी के सामने प्रश्न था कि वह इस युद्ध के सम्बन्ध मे क्या रुख रखेगी, कॉंग्रेस युद्ध मे मदद करेगी कि नही, यदि करेगी तो बिना शर्त के अथवा किसी शर्त के पूरा होने पर? मदद का रूप क्या होगा? कॉग्रेस ने अपने ध्येय मे अहिंसा को ही साधन माना है। इस हिसात्मक युद्ध मे एक अहिसात्मक सस्था कैसे और कौन-सी मदद कर सकती है? इत्यादि-इत्यादि। कमिटी कई दिनो के विचार के बाद एक निश्चय पर पहुॅची और एक ठहराव स्वीकार किया। उसमे नात्सीवाद और फासिस्टवाद के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कमिटी ने साम्राज्यवाद के प्रति भी अपना विरोध जताया और ब्रिटिश-राज्य से आग्रह किया कि भारतवर्ष की जनता को इस युद्ध मे दिल से मददगार बनाने के लिए वह युद्ध-सम्बन्धी अपने उद्देश्यो को साफ-साफ बतला दे।

इस ठहराव की भाषा बहुत ही सुन्दर और भाव भी अत्यन्त परिष्कृत तथा उपयुक्त थे। इसका श्रेय विशेषकर प० जवाहरलाल को ही था जिन्होने मसविदा तैयार किया था। उसी अधिवेशन मे यह स्पष्ट हो गया कि कॉंग्रेस अपनी अहिंसा की नीसि के कारण इस युद्ध मे ब्रिटिश सरकार की मदद करने से इनकार नही कर सकती और यदि मौका मिला तो वह हथियार की मदद करने से भी नही हिचकेगी। यह कह देना इसलिए आवश्यक है कि इसके बाद जब-जब मौका आया, कॉंग्रेस के अँगरेज विरोधी—विशेषकर भारतमत्री मि० एमरी और भारत-सरकार के उच्च कर्मचारी जिनमे लार्ड लिनलिथगो भी शामिल थे—यह कहने से न हिचके कि गाधीजी की अहिंसा के कारण ही कॉंग्रेस मदद नही देती। यह ठीक है कि उस बैठक मे यह बात इतनी स्पष्ट नही हुई थी, पर उस ठहराव से यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश-सरकार यदि सन्तोषजनक तरीके से अपने उद्देश्यो को प्रकट कर देगी तो कॉंग्रेस को मदद देनी ही पडेगी और उस मदद का रूप हिंसात्मक हुए बिना नही रहेगा। उस समय सारे देश मे—विशेषकर कॉंग्रेसी लोगो मे से बहुतेरो मे—ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति थी और यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादी इसका थोडा भी परिचय दे देते कि वे सचमुच यह लडाई प्रजातत्र के लिए कर रहे थे, जैसा कि उस समय इँगलैंड के कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञ और समाचारपत्र गला फाड-फाडकर चिल्ला रहे थे, तो भारत के प्राय सभी लोग उनके साथ दिल खोल करके हो जाते। परन्तु दुनिया की सहानुभूति पाने के लिए तो यह लडाई प्रजातत्र स्थापित करने के लिए की जा रही थी, और वास्तविक रूप मे वह ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा तथा पुष्टि के लिए ही की जा रही थी, जैसा पीछे स्पष्ट होता गया !

इस प्रस्ताव के बाद मुझे प्रेसिडेण्ट की हैसियत से दो बार लार्ड लिनलिथगो से मिलने का मौका मिला—एक बार प० जवाहरलालजी के साथ और दूसरी बार महात्मा गाधी तथा मि० जिन्ना के साथ। उस समय लार्ड लिनलियगो भारत के सभी दलो और सभी तरह के विचारवाले लोगो से मिलकर लडाई मे हिन्दुस्थान की मदद की बात करते थे और चाहते थे कि हिन्दुस्थान के लोग राजीखुशी से मदद करे और किसी प्रकार की गडबडी न होने दे। लडाई शुरू होते ही विना किसी से पूछे और परामर्श किये ही उन्होने ब्रिटिश-सरकार की ओर से घोषणा कर दी थी कि हिन्दुस्थान भी लडाई मे शरीक है ! हिन्दुस्थान की धारा-सभा (लेजिसलेटिव असम्बली) कायम थी। सभी सूबो मे १९३५ के विधान के अनुसार मन्त्रिमण्डल काम कर रहे थे, जिनमे ११ मे से ८ सूबों मे कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित थे। किसी से न पूछा गया और न राय ली गयी, मानो हिन्दुस्थान की किसी सस्था अथवा किसी व्यक्ति को इस लडाई से कोई सम्बन्ध ही न था! बिना पूछताछ के ही हिन्दुस्थान को भी लडाको मे दाखिल कर दिया गया! कॉंग्रेस-कमिटी भी बहुत क्षुब्ध थी। हिन्दुस्थान के दूसरे लोग भी इसे पसन्द नही करते थे। ऐसी अवस्था मे जब तक उनका मतलब स्पष्ट न हो जाय, कुछ भी किसी के लिए करना न सभव था और न उचित।

लार्ड लिनलिथगो पीछे इसीलिए लोगो से राय-बात करने लगे। उन्होने देश की राजनीतिक सस्थाओं को सतुष्ट करने के लिए यह योजना भी रखी कि उनकी (वाइसराय की) कार्यकारिणी (एग्जिक्युटिव) कौन्सिल की सदस्य-सख्या बढा दी जायगी और उसमे अधिक हिन्दुस्थानी ले लिये जायँगे, पर साथ ही वह इस बात पर दृढ रहे कि उनके नये या पुराने सदस्यो के अधिकार मे कोई परिवर्तन नही होगा, उनके विचार से ये सदस्य अपने-अपने विभाग के सरदारमात्र है, इनको कोई स्वतत्र अधिकार प्राप्त नही है और कौन्सिल की बैठक तो केवल सभी सदस्यो को एक-दूसरे विभाग की कार्रवाइयो से परिचित कराने के लिए ही होती है, वहाँ कुछ बातो पर वे सिर्फ विचार कर सकते है, पर सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के निपटारे का भार अन्त मे वाइसराय पर ही है और उनको ही अधिकार भी प्राप्त है—लडाई के जमाने मे वह कोई वैधानिक परिवर्तन करने की सभावना नही देखते थे और इसलिए जो कुछ हो सकता था वह १९३५ के विधान के अन्दर ही हो सकता था।

कॉंग्रेस की माँगे दो थी। ब्रिटिश-सरकार के लडाई के उद्देश्यो के स्पष्टीकरण के साथ-साथ भारत की स्वतत्रता के सम्बन्ध मे कॉंग्रेस चाहती थी कि भविष्य की योजना के लक्ष्य को स्पष्ट तरीके से स्वतत्रता का रूप दे दिया जाय और साथ ही साथ अभी तत्काल भारत के प्रतिनिधियो को ऐसे शासन-सम्बन्धी अधिकार मिल जायँ जिनके द्वारा वे सचमुच भारत की इच्छा के अनुसार यहाँ प्रबन्ध कर सके और सच्ची मदद लडाई मे भी कर सके। भविष्य की घोषणा के महत्त्व को कुछ कम भी कर दिया जाय तो भी जब तक तत्काल अधिकार न मिल जायँगे, लडाई मे जनता की दिलचस्पी न होगी और वह दिल से मदद नही कर सकेगी। उस समय से आज तक कॉंग्रेस की नीति लडाई मे बाधा पहुँचाने की कभी नही रही है। कॉंग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी ससार के लिए कोई श्रेयस्कर वस्तु नही मानती है—उसने कम से कम पिछले २०-२५ बरसो मे कभी नही माना है—वह साम्राज्यवाद के बदले मे सच्चे प्रजातत्रवाद की हिमायती रही है और है—वह चाहती है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद परिवर्तित होकर सच्चे प्रजातत्रवाद का रूप उन देशो और उपनिवेशो के लिए धारण कर ले जो आज इस साम्राज्यवाद की एँडियो के नीचे कुचले जा रहे है, जिनमे भारत मुख्य है और स्वाभाविक रीति से यहाँ की राष्ट्रीय सस्थाएँ इसी उद्देश्य को प्राप्त करना अपना कर्त्तव्य मानती है। अँगरेज भी इस उद्देश्य की निन्दा नही करते, वे भी इनकी स्वतत्रता अपना उद्देश्य मानते है। वे केवल यह कहते है कि अभी भारत तथा दूसरे देश जो उनके कब्जे मे है इस योग्य नही हुए है कि उनको स्वतत्रता दी जा सके और इसलिए अँगरेज अपना कर्त्तव्य समझते है कि उनको जब तक यह योग्यता प्राप्त न हो जाय तब तक उनके शासन का भार अपने ऊपर वे रखे। हम भारतवासी इस बात को मानने के लिए तैयार नही है और यही हमारे मतभेद तथा सघर्ष का कारण है। लडाई के आरभ मे प्रजातत्र की लम्बी-चौडी बाते की गयी, कॉंग्रेस ने एक प्रश्न करके इस प्रचार का भडाफोड कर दिया।

प्रश्न केवल इतना ही था कि क्या यह प्रजातंत्र भारत के लिए भी होगा—एशिया और अफ्रिका की पददलित जातियो के लिए भी होगा—अथवा केवल अँगरेजो और योरपनिवासियो के लिए ही होगा—यदि एशिया और अफ्रिका के लोगो के लिए भी होगा तो खुलकर स्पष्ट शब्दो मे कह दिया जाय, और इसका आश्वासन अभी यथासाध्य अधिकार सौपकर अमली तरीके से सभी लोगो को दे दिया जाय।

१९३९ के नवम्बर से १९४२ तक इसी प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर कॉग्रेस और हिन्दुस्थान को नही मिला। शब्दो के आडम्बर मे पहले असली मकसद को छुपा रखने का प्रयत्न किया गया। वह मकसद था ब्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ग बनाये रखने का। जैसे-जैसे समय बीतता गया, यह बात साफ होती गयी। उस समय लार्ड लिनलिथगो ने हजार कोशिशे की, पर कोई भी राजनीतिक दल उनके प्रस्ताव से सन्तुष्ट नही हुआ। हॉ, मुस्लिम लीग को खुश करने के लिए उन्होने कुछ दिन के बाद एक घोषणा कर दी कि १९३५ के विधान पर लडाई के बाद सरेनव से विचार किया जायगा। उस विधान का कॉंग्रेस ने भी जबरदस्त विरोध किया था और शायद कुछ नरमदलवालो के सिवा किसी राजनीतिक दल ने उसके अनुसार काम करने की रजामन्दी जाहिर नही की थी। इसलिए, लडाई के बाद उसको एक प्रकार से आमूल सशोधित और परिवर्तित करने का वादा करके उन्होने केवल मुस्लिम लीग को ही नही, शायद दूसरो को भी सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया हो। पर ऐसा मालूम नही होता, क्योकि उनकी उस समय की और पीछे की कार्रवाइयो से एक ही नतीजा निकलता है। वह चाहते थे कि कॉंग्रेस के मुकाबले मे वह एक दूसरी सस्था खडी कर दे और इधर हिन्दुस्थान से कहे कि जब तक ये दोनो मिलकर एक मॉग पेश नही करती, हम कुछ भी करने से मजबूर है तथा उधर दूसरी ओर दुनिया को भी बता सके कि अँगरेज तो अधिकार देने के लिए तैयार है मगर हिन्दुस्थान के लोग इतने नालायक है कि वे आपस मे मेल ही नही कर सकते, इसलिए वहाँ ब्रिटिश सरकार का अधिकार अक्षुण्ग रखना आवश्यक एव अनिवार्य है। इसमे लार्ड लिनलिथगो अपने समय मे बहुत हद तक सफल भी हुए है। उस समय इन मुलाकातो का नतीजा यही निकला कि कोई सन्तोषजनक उत्तर हमको ब्रिटिश सरकार की ओर से नही मिला। जो घोषणा उन्होने गवर्नमेण्ट की तरफ से निकाली थी उसके सम्बन्ध मे हमको साफ-साफ कह देना पड़ा कि उससे हम सन्तुष्ट नही है।

वाइसराय से मिलने के बाद हमको यह भी निश्चय करना पडा कि कॉंग्रेसी लोग मन्त्रिमण्डल मे नही रह सकते और शासन का भार सूबो मे भी अपने ऊपर नही रख सकते। इस निश्चय पर बहुत सोच-विचार के बाद ही वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी पहुँची थी। कुछ लोग कॉंग्रेस के अन्दर ऐसे थे जो इस नीति को पसन्द नही करते थे। उनका विचार था कि जो थोडे-बहुत अधिकार हमारे हाथ मे आये है उनको छोडना नही चाहिए। वे यह भी सोचते थे कि अपने हाथो मे इन अधिकारो को रखकर हम देश की अधिक सेवा कर सकेगे और लडाई से जो नुक-

सान हमे पहुँच सकता है उससे बचने मे अथवा लडाई से जो लाभ हम उठा सकते है उसे प्राप्त करने मे—दोनो ही मे, अधिकार रखकर ही, हम अधिक कारगर हो सकते है। पर ऐसे लोगो की सख्या बहुत कम थी। अधिक लोगो का विचार था कि जैसे-जैसे लडाई गरुआती जायगी, सूबो के अधिकार केन्द्रीय सरकार अपने हाथो मे लेती जायगी, मन्त्रिमण्डल अपने सूबो मे कुछ काम बनाने का अधिकार तो रख नही सकेगे, पर जो कुछ बिगडेगा उसकी जवाबदेही उनके सिर पर आती जायगी—केन्द्रीय सरकार मे हिन्दुस्थानियों को कोई अधिकार मिलता नही दीखता, इसलिए वहाँ से जो कोई भी हिन्दुस्थानी सदस्य वाइसराय के साथ काम करेगा उसे युद्धमत्री और वाइसराय के हाँ मे हाँ मिलाने के सिवा और कुछ करने का मौका नही मिलेगा, वह चाहे भी तो प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों की कोई विशेष मदद न कर सकेगा, लडाई के लिए जनता से पूरी मदद की आशा की जायगी, जनता खुशी से मदद देगी नही, क्योकि उसके सामने न तो भविष्य की कोई उज्ज्वल आशा है और न वर्तमान मे उसके प्रतिनिधियो को कोई अधिकार है, इसलिए जब वह ब्रिटिश सरकार के आज्ञानुकूल मदद नही दे सकेगी तो मन्त्रिमण्डलों को जनता के साथ कुछ जोर-जबरदस्ती भी करनी पडेगी, यह कोई भी सच्ची लोकसेवा का व्रत लेनेवाली सस्था ऐसी अवस्था मे नही करेगी, इसलिए कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल भी ऐसा करने मे असमर्थ होगे—ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को भी लड़ाई लड़ना ही है और उसे मदद—चाहे वह खुशी से दी जाय अथवा जबरदस्ती ली जाय—मिलनी ही चाहिए, वह मन्त्रिमण्डलो से इस मदद की आशा रखेगी ही और यदि उसकी आशा पूरी न होगी तो स्वभावत क्षोभ होगा—अत अच्छा यही होगा कि हम इस सूखी जवाबदेही को अपने ऊपर न ले, नही तो हमको जनता और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट दोनो के लात-जूते सहने पडेगे और अगर वह न सहना पडा तो कम से कम दोनो की फटकार अवश्य खानी पडेगी—विशेषकर ऐसी दशा मे जब हम कांग्रेसी लोग उस परिस्थिति को, जो आज कायम है और जो लडाई के कारण और भी जटिल हो जानेवाली है, सँभालने की शक्ति से वचित रखे जा रहे है, और यदि किसी का यह विचार हो कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट सचमुच भारतवर्ष के साथ न्याय करना तथा उसे स्वतन्त्र बना देना चाहती है, तो इसका सबूत उसकी कार्रवाइयो से मिल जायगा और यदि वह नही चाहती है तो कांग्रेस का हट जाना ही ठीक होगा।

वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने निश्चय कर लिया कि कांग्रेस के प्रश्नो का यदि सन्तोषजनक उत्तर नही मिला तो उसे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो को इस्तीफा देकर हट जाने के लिए मशविरा देना पडेगा। वर्धा मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुई। उसने वर्किंग कमिटी को अधिकार दे दिया कि इस बात का वह निर्णय करे और आवश्यकता पडने पर मन्त्रिमण्डलो को इस्तीफा देने का आदेश दे। जब वाइसराय से बातचीत और गवर्नमेण्ट की घोषणा के बाद से वर्किंग कमिटी को सन्तोष नही हुआ तो उसने कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को सूचना दे दी कि अपने-अपने प्रान्त की

धारा-सभाओ मे वे देश की माँग का समर्थन करावे और उसके बाद इस्तीफा दे दे। उन्होने ऐसा ही किया। १९३९ के नवम्बर मे सभी सूबों के काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल टूट गये। कांग्रेस का बहुमत इतना था कि कोई दूसरा मन्त्रिमण्डल बन नही सकता था; क्योंकि बनते ही उस पर अविश्वास प्रकट किया जा सकता था। साथ ही, शायद गवर्नर लोग और वाइसराय यही पसन्द करते थे कि इस प्रकार के मन्त्रिमण्डल के बनिस्बत, जो कभी चूँ-चे ही कर सकते थे, किसी भी मन्त्रिमण्डल का न रहना ही उनके लिए अच्छा होगा—उनको अपनी मनमानी करने का पूरा मौका रहेगा। इसलिए उन्होने उन सभी सूबों मे विधान की ९३वी धारा के अनुसार अनुशासन अपने हाथो मे ले लिया। अब केवल काम-काज चलाने का ही नही, नये कानून बनाने और पुराने को बदलने या रद करने का भी पूरा अधिकार गवर्नरो के हाथ मे आ गया। लडाई आरभ होते ही ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने १९३५ के विधान मे एक दिन मे सशोधन कर लिया था जिसका नतीजा यह होता था कि जब कभी वाइसराय चाहे, प्रान्तीय सरकारों के अधिकार अपने हाथो मे कर सकते है अथवा उनसे अपनी आज्ञाओ का पालन करा सकते है। यह युद्ध की नाजुक परिस्थिति के नाम पर किया गया था, पर मतलब साफ था और जब मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया तो उनका रास्ता और भी साफ हो गया।

कुछ लोग आज भी जोर देकर कहते है कि यदि मन्त्रिमण्डल इस्तीफा न दिये होते और अपने स्थानो पर डटे रहते तो जो धाँधली और ज्यादतियाँ लडाई के नाम पर सूबो मे हुई है और की गयी है वे नही होने पाती। जो लोग इस तरह की बाते करते है वे विधान के इस सशोधन को भूल जाते है और यह भी भूल जाते है कि जहाँ मन्त्रिमण्डल कायम रहे है वहाँ भी केन्द्रीय सरकार की धाँधली चली है—बगाल का मन्त्रिमण्डल इसका जीता-जागता सबूत है। वहाँ मन्त्रिमण्डल बनाने और तोडने मे गवर्नर ने पूरा हाथ बँटाया है। वहाँ की जनता लाखो की सख्या मे दाना-दाना बगैर मरी है—मन्त्रिमण्डल न उन कारणो को ही दूर कर सका जिनसे वहाँ का भयकर दुर्भिक्ष पैदा हुआ और न अकाल पड जाने पर तब तक जनता की कुछ सहायता ही कर सका जब तक केन्द्रीय सरकार ने इसमे हाथ नही लगाया—सब तथा-कथित अधिकारो के रहते हुए भी न श्री फजलुल हक का और न सर नाजिमुद्दीन का मन्त्रिमण्डल बगाल को इस विपत्ति से बचा सका। इसी सिलसिले मे पजाब और सिन्ध के मन्त्रिमण्डलो की बेकसी भी साफ साबित हो गयी। उनको केन्द्रीय गवर्नमेण्ट ने दबाकर उनसे महँगी और गल्ले के निर्यात के सम्बन्ध मे कार्रवाई करायी। जब हम सूबा-सरकार के अधिकार के विषय मे विचार करते है तो हमे इससे मतलब नही है कि वह सरकार सही काम कर रही थी या गलत। अगर अधिकार है तो सही करने का है और गलत करने का भी। गलत करने पर ही, अधिकार है या नही, ठीक पता चलता है। हो सकता है, जिन मामलो मे केन्द्रीय सरकार ने उनको दबाया, उसने ठीक ही दबाया और वह गलत काम कर रही थी। पर इससे यह बात साबित

हुए बिना नही रह सकती कि प्रान्तीय सरकारो के अधिकार सीमित है और लडाई के आर्डिनेन्सों के जमाने मे केन्द्रीय सरकार उनसे जो चाहे वह करा सकती है। याद रहे, ये मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश सरकार की मदद करने का दावा बराबर करते रहे है और मदद करते भी रहे है। तो भी केन्द्रीय सरकार ने उनको दबाने मे हिचक नही दिखलायी। कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल अगर अपनी जगह पर रह गये होते और कॉंग्रेस का ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता सन्तोषप्रद नही हुआ होता—जैसा नही हो सका—तो इसमे जरा भी सन्देह की गुंजाइश नही है कि उनको बहुतेरे ऐसे कामो के करने पर मजबूर किया जाता, जिनको न तो कॉंग्रेस और न वे स्वय पसन्द करते। उनको मजबूर होकर कुछ दिनो मे ही इस्तीफा देना पडता और नही तो गवर्नर के हॉं मे हॉं मिलाकर अपने विचार और सिद्धान्तो के विरुद्ध उनकी फरमॉं-बरदारी करनी ही पडती।

उस निश्चय के प्राय पॉंच बरसो के बाद, जब ये पक्तियॉं लिखी जा रही है, उन घटनाओ का और ब्रिटिश नीति का सिहावलोकन करके हम एक ही नतीजे पर पहुँच सकते है और वह यह है कि साम्राज्यवाद की लडाई इँगलैड लड रहा है, चाहे दूसरे जो समझते हो। उसका उद्देश्य है—श्री चर्चिल के शब्दो मे, 'जो उसका है उसे अपने कब्जे मे रखना'। इतना ही नही, ब्रिटिश साम्राज्य यदि जर्मनी को हराकर निष्कटक, एकछत्र और अधिक जबरदस्त न बनाया जा सके, तो कम से कम इसको अपना स्थान योरप, एशिया और अफ्रिका मे ज्यों का त्यो कायम रखना चाहिए। ऐसी अवस्था मे भारत के लिए कौन-सी आशा हो सकती है? कॉंग्रेस के दिल मे जो सन्देह १९३९ मे था उसका समर्थन उसके बाद की सभी घटनाओ ने और ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के शब्दजालो ने—विशेषकर श्री चर्चिल और श्री एमरी के कलाबाजी-भरे उद्‌गारों ने—स्पष्ट रूप से गला फाड-फाडकर किया है। इसलिए, मैने उस समय भी समझा था, और आज तो यह धारणा और भी दृढ हो गई है, कि हम मन्त्रिमण्डल मे रहकर देश का हित करने मे बिलकुल असमर्थ थे—हम अपने को देश के लिए केवल अनर्थ का साधन ही बना सकते थे।

इन धारणाओ के बावजूद मै यह नही कह सकता कि मै उन दिनो इँगलैड की हार को पसन्द करता। चाहे जिन कारणो से हो, जर्मनी की जीत मजूर नही थी। उसने चेकोस्लोवाकिया के साथ ज्यादती की थी, और ज्यादती की थी इसलिए कि वह उसके मुकाबले कमजोर देश था। जब जर्मनी ने उस देश के साथ ज्यादती की तब दूसरे लोग भी कुछ न कुछ लाभ उठाने के लोभ का सवरण न कर सके। उनमे हगरी और पोलैंड मुख्य थे। इसलिए, जब जर्मनी ने उलटे पोलैंड पर भी ज्यादती शुरू कर दी तब मन मे कुछ ऐसा भी भाव उठता था कि ठीक ही किया—पोलैंड को, 'जैसे को तैसा' मिला! फिर जब उसने हालैंड, बेलजियम, डेनमार्क और नार्वे पर भी चढाई कर दी तो मेरे दिल पर इसका बहुत असर पडा। मुझे मालूम होने लगा कि किसी भी कमजोर देश को जर्मनी स्वतत्र नही रहने देगा। अँगरेजो

के प्रति जो थोडा-सा गुस्सा था वह कम हो गया और मुझे ऐसा भान होने लगा कि हमको ब्रिटिश की मदद करनी चाहिए जिससे वह जर्मनी को हरा सके और इस अन्यायी शक्ति का दमन कर सके। यह भाव इतना प्रबल हो गया कि मैंने एक छोटे बयान मे अपने उद्गार को प्रकाशित भी कर दिया। मेरा खयाल है कि बहुतेरे दूसरे काँग्रेसी लोगो के विचार भी इसी प्रकार के थे। हम ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की त्रुटियो और हिन्दुस्थान के प्रति उसके अन्यायो को याद रखते हुए भी जर्मनी की धाँधली से इतने स्तभित हो गये कि ब्रिटिश साम्राज्य की करतूतो को प्राय भूल-सा गये। इसलिए यह कहना—जैसा आज बहुतेरे अँगरेज और उनके पिट्ठू कह दिया करते है—कि कॉग्रेस के लोग इँगलैड की कमजोरी को महसूस करके अपने पुराने वैर का बदला लेना और उसकी विपत्ति से लाभ उठाना चाहते थे, बिलकुल असत्य है। बावजूद हजार शिकायतो के, लडाई के आरभ के समय से १९४० की जुलाई तक—जब बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक मे काँग्रेस की ओर से यह कहा गया कि अगर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट हिन्दुस्थान की भावी स्वतत्रता की घोषणा कर दे और उसे शासन मे तत्काल अधिकार दे दे तो भारत एकमत होकर लडाई मे मदद करेगा—प्राय किसी काँग्रेसी के दिल मे ब्रिटिश सरकार के प्रति कटुता नही थी और उस समय तक सभी कॉग्रेसी लोग ब्रिटेन की मदद करना अपना कर्त्तव्य ही मानते थे। हाँ, उस कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए अधिकार चाहते थे जिसके बिना जनता को उत्साहित करना सभव नही था।

जब बम्बई की उस बैठक के बाद, जिसके कारण गाधीजी को कॉग्रेस से अपने को अलग कर लेना पडा था और उनको अलग करके भी वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय कमिटी ने लडाई मे सक्रिय मदद की प्रतिज्ञा की थी, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने उस प्रस्ताव को इतनी जल्दी मे ठुकरा दिया, तब बहुतेरो के दिल मे क्षोभ पैदा हुआ, और वह क्षोभ श्री एमरी तथा चर्चिल की बातो से दिन-दिन बढता ही गया है। इसमे भी सन्देह नही कि जितने कम दाम पर इँगलैड उस वक्त सौदा कर सकता था उतने पर शायद फिर कभी न कर सकेगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि अपने पशुबल से वह भारतवर्ष को कुछ दिनों तक दबाये रखे। यदि उस समय समझौता हो गया होता तो शायद जापान को भी इस लड़ाई मे कूदने के पहले कुछ और विचार कर लेना पडता। यदि जापान को यह विश्वास हो जाता कि हिन्दुस्थान ब्रिटिश सरकार के साथ हर तरह से, तन-मन-धन से, है तो उसकी हिम्मत पूर्व एशिया पर एकबारगी धावा बोलने की उस तरह नही होती जिस तरह हुई। यदि वह ऐसी हिम्मत करता भी तो कौन कह सकता है कि उसे उतनी सफलता मिलती जितनी मिली। हिन्दुस्थान की आजादी के साथ-साथ बरमा की स्वतन्त्रता का मसला भी तय हो गया होता। यदि बरमा की बात हो गयी होती तो मलाया और सिंगापुर की वह दशा न होती जो हुई। इसलिए, मैं मानता हूँ कि जितनी अदूरदर्शिता ब्रिटेन ने उस समय की उतनी शायद उसने अपने इतिहास मे एक अवसर को छोड़कर और कभी नही की। वह अवसर था

जब उसने अमेरिका के उपनिवेशो की माँग अठारहवी शताब्दी मे ठुकराई थी। उसका नतीजा उसके लिए अच्छा नही हुआ, यद्यपि वह ससार के लिए शायद अच्छा ही हुआ। और, इसका नतीजा, कौन कह सकता है, क्या होगा? हो सकता है, इँगलैड के लिए यह उससे भी बुरा हो जो अमेरिका मे हुआ और ससार के लिए भी उससे अधिक लाभकर। अस्तु, यह तो भविष्य की बात है, सस्मरण की नही, और इसके लिए यह स्थान भी नही है। यहाँ तो इतना ही कह देना काफी है कि प्रचार के लिए चाहे कॉंग्रेस पर जो भी दोष लगाया जाय, सत्य का तकाजा यही रहेगा कि कॉंग्रेस ने हर कदम पर इस बात की कोशिश की है कि भारत प्रतिष्ठापूर्वक और सफलतापूर्वक अधिकार के साथ ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और प्रजातत्रवादी देशो को सहायता देने के योग्य बना दिया जाय, लेकिन हर कदम पर उसको केवल नकारात्मक उत्तर ही नही मिला, हमेशा उसका तिरस्कार भी किया गया। अन्त मे, ऊबकर उसे १९४२ के अगस्त का निश्चय करना पडा जिसका जिक्र आगे आवेगा।

लडाई आरम्भ हो जाने के बाद कुछ समय तक यह अनिश्चित-सा हो गया कि कॉंग्रेस का अधिवेशन होगा कि नही और होगा तो कब होगा। कॉंग्रेस का नियम फिर बदल गया था और निश्चय हो गया था कि दिसम्बर मे ही सालाना बैठक हो। यह साफ हो गया कि अब दिसम्बर मे बैठक नही होगी। पर थोडे ही दिनो मे यह भी साफ हो गया कि बैठक अवश्य करनी ही चाहिए। इसलिए, अब निश्चय हुआ कि मार्च मे सालाना इजलास किया जाय। रामगढ मे अब फिर जोरो से तैयारी होने लगी। मै वहाँ बहुत समय नही दे सकता था, क्योकि मुझ पर अखिल भारतीय कमिटी के काम का बोझ भी था। पर अब वहाँ केवल श्री अम्बिकाकान्त ही नही रह गये, मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा के बाद दूसरे लोग भी वहाँ जाने के लिए फुर्सत पा गये—विशेषकर अनुग्रह बाबू, श्री कृष्णवल्लभसहाय और श्री रामनारायणसिंह की सेवा भी उपलब्ध हो गयी। इसलिए मै बहुत हद तक निश्चिन्त भी हो गया।

१३६—रामगढ़-कॉंग्रेस का बरसाती अधिवेशन

रामगढ मे लकडी-बॉस की कमी नही थी। मजदूर भी काफी मिलते थे। इसलिए जगल साफ करके झोपडी बनवाने का काम जोरो से जारी हो गया। पर श्री रामदास गुलारी अस्वस्थ हो गये। अब उनका वहाँ रहना कठिन हो गया। सौभाग्य से ठीक उसी समय विलायत से इजीनियरी की उच्च परीक्षा पास करके श्री रामजीप्रसाद वर्मा वापस आ गये। यह लडकपन से ही कॉंग्रेस के साथ थे। १९३० मे जेल गये थे। वहाँ बेत भी खाया था। पढने मे तेज थे, इसलिए कालेज के प्रिंसिपल ने उनको फिर इजीनियरिंग कालेज मे, जहाँ वह पहले पढ रहे थे, भरती कर लिया। वहाँ से अच्छी तरह से अन्तिम परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर इजीनियर हो गये। कुछ दिनो तक, इधर-उधर कुछ पैसे कमाकर, अधिक शिक्षा के लिए इँगलैड जाने का इनका विचार हुआ। वहाँ जाकर खूब अच्छी तरह से बडी-बडी परीक्षाएँ पास कर ली। ठीक वहाँ से इनके

चलने के समय ही लडाई शुरू हो गयी। पर किसी तरह हिन्दुस्थान पहुँच गये। पहुँचते ही रामगढ के मुख्य इजीनियर का काम इन्होने सँभाल लिया। इसलिए जो चिन्ता और दिक्कत श्री गुलारीजी के चले जाने पर होती वह बहुत अशों तक न होने पायी। रहने के लिए झोपडे, खुले अधिवेशन के लिए पडाल और विषय-निर्वाचिनी के लिए भी पडाल बनवाने के अलावा प्रदर्शनी के लिए भी झोपडे बनवाने थे। पानी का प्रबन्ध करना था। रोशनी के लिए इतजाम करना था। प्रत्येक का भार किसी न किसी पर दिया गया। पर निर्माण का सारा काम इन्जीनियरिंग-विभाग पर ही रहा। वह ठीक तरह से समय के अन्दर पूरा भी हो गया।

हमने जिस जगह को कॉग्रेस के लिए चुना था वहाँ एक-दो छोटे-मोटे कुएँ तो थे, पर इस योग्य नही थे कि जितने आदमी आवेगे उतने मे से शताश के लिए भी पूरा पानी दे सकेगे। दामोदर नदी के किनारे पर स्थान था, पर दामोदर उन दिनो प्रायः सूखा-सा रहता है—वही दामोदर जो बाढ आने पर भयकर रूप धारण कर लेता है और बिहार से निकलकर बगाल मे, विशेषकर बर्दवान-जिले मे, भारी विपत्ति और सकट का कारण बन जाता है। रामगढ मे, जाड़े और गर्मियो मे, एक पतली धारा द्वारा ही—जिसे आदमी बिना धोती भिगाये आसानी से पार कर सकता है—वह अपना अस्तित्व जताता रहता है। पर यद्यपि ऊपर की धारा पतली और छिछली रहती है तथापि बालू के नीचे जल की मात्रा काफी रहती है। यदि पानी निकालने और रोकने का प्रबन्ध किया जा सके तो वह स्रोत अटूट होता है। इसलिए यह निश्चय किया गया कि नदी से ही पानी निकालने का प्रबन्ध किया जाय। कुएँ द्वारा भी शायद हो सकता था, पर पथरीली पहाड़ी जमीन होने के कारण यह निश्चय करना कठिन था कि वह कुँआ कहाँ खोदा जाय और खोदने पर भी उसमे काफी पानी मिलेगा। नदी मे कुँआ खोदना आसान था और बहुत नजदीक पानी मिल जाता था। इसलिए नदी मे कुँआ खोदकर पम्प लगाया गया। पानी साफ करने के लिए बडी-बड़ी टकियाँ पक्की बनायी गयी जिनमे एक समय एक लाख आदमियो के लिए दो या तीन दिनो तक के खर्च-भर काफी पानी रह सके। सारे 'नगर' मे पाइप लगाकर पानी पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया। इस प्रबन्ध के लिए गया-म्युनिसिपैलिटी और भागलपुर-म्युनिसि-पैलिटी के पानी-कल के विशेषज्ञ इजीनियरो ने बहुत परिश्रम से काम किया। पानी का प्रबन्ध ठीक हुआ। उसमे केवल एक त्रुटि रह गयी। वह यह थी कि कुएँ नदी मे थे और नदी मे अचानक पानी आ जाने पर कुएँ और पम्प दोनो बेकार हो जा सकते थे। पर यह कौन जानता था कि मार्च मे इतनी वर्षा होगी कि दामोदर मे बाढ आ जायगी!

पानी के खयाल से, और शोभा बढाने के लिए भी, हमने एक और प्रबन्ध किया। जहाँ काँग्रेस-नगर बसा था उसके पास होकर एक छोटी नदी 'हुरहुरी' वही दामोदर मे मिलती थी। इस नदी को हम लोगों ने पक्के बाँध से बाँध दिया। नतीजा यह हुआ कि एक ओर खूब तैरने लायक गहरा पानी जमा हो गया और दूसरी ओर

बाँध की ऊँचाई पर से जो पानी बहता वह एक छोटे जलप्रपात की शोभा के साथ-साथ नहानेवालों के लिए एक कौतूहल की वस्तु भी हो गया।

इरादा तो था कि गाँव की काँग्रेस मे, जहाँ तक हो सके, गाँव की चीजो का ही इस्तेमाल किया जाय, पर ऐसा हो न सका। इस नियम का उल्लघन सबसे पहले जल-कल द्वारा किया गया। अब रह गयी रोशनी की बात। इसके लिए या तो बिजली का प्रबन्ध किया जाता या किटसन-बत्तियो का। दोनो मे से एक भी देहात की चीज नही थी। तेल की मशालो, पनसाखो और गेदो से काम चलना कठिन मालूम हुआ। पर हमने यथासाध्य कोशिश की कि कोई ऐसा ही प्रबन्ध किया जाय। किन्तु न हो सका। अन्त मे बिजली की शरण लेनी पडी। इसमे एक सुविधा भी अनायास और अचानक मिल गयी। गया-कॉटन-मिल्स के मालिको ने ठीक उसी समय नया इजिन और डाइनमो वगैरह मँगाया था। उन्होने उन सब चीजो का बँधा-बँधाया और लदा-लदाया पार्सल गया मे न खोलकर अपने इजीनियर के साथ सीधे रामगढ भेज दिया। काम आसान हो गया। बिजली लग गयी।

प्रदर्शनी का काम कठिन हुआ करता है, क्योकि उसमे बहुत चीजे जुटानी पडती है। चर्खा-सघ के मत्री श्री लक्ष्मीनारायण ने इसका भार उठाया। उन्होने अखिल भारतीय चर्खा-सघ तथा ग्रामोद्योग-सघ की सहायता से खासा इन्तजाम कर लिया। हाँ, उन्होने सिद्धान्तत प्रदर्शनी के अहाते के अन्दर बिजली नही जाने दी, क्योकि प्रदर्शनी एकमात्र ग्रामोद्योग पर ही निर्भर थी।

कुछ मित्रो का विचार था कि आनेवाले प्रतिनिधियो के लिए बिहार का एक इतिहास हिन्दी मे तैयार करा दिया जाय। मुझे यह बात पसन्द आयी। त्रिपुरी मे भी इस प्रकार का इतिहास तैयार हुआ था। बिहार का इतिहास तो गौरवपूर्ण है। यह काम श्री जयचन्द्र विद्यालकार के जिम्मे किया गया। उसके छापने का भार लहेरिया-सराय के श्री रामलोचनशरण बिहारी ने लिया। इतिहास छपकर तैयार हो गया। परन्तु जहाँ तक मुझे पता लगा है, वह बहुत बिका नही। तो भी एक चीज तैयार तो हो गयी है।

बिहार मे कुछ होनहार चित्रकार तैयार हो रहे है। सबकी इच्छा हुई और मेरी भी राय हुई कि बिहार के इतिहास की कुछ गौरवपूर्ण घटनाएँ चित्रो द्वारा चित्रित कर दिखलायी जायँ। इस काम को वयोवृद्ध सिद्धहस्त कलाकार बाबू ईश्वरीप्रसाद वर्मा के नेतृत्व का लाभ मिला। वह कलकत्ता-आर्ट-स्कूल के वाइस प्रिन्सिपल थे। अब वह वहाँ से पेन्शन पाकर अपने जन्मस्थान पटने मे रह रहे है। कुछ सुन्दर मौलिक चित्र बनाये और प्रदर्शनी मे रखे गये। उनकी प्रतिलिपियाँ पुस्तकाकार प्रकाशित की गयी जिसमे चित्रित दृश्यो का ऐतिहासिक विवरण दे दिया गया। यह पुस्तक लोगों को बहुत पसन्द आयी। चित्रो को लोगो ने बहुत चाव से देखा।

कॉग्रेस का आयोजन बहुत बडे पैमाने पर, जैसा हुआ करता है, किया गया। मौलाना अबुल कलाम आजाद प्राय एकमत से सभापति चुने गये—प्रायः एकमत से

इसलिए कहा कि श्री मानवेन्द्रनाथ राय (एम० एन० राय) भी उमीदवार थे। पर उनको थोडे ही वोट मिले। बहुत बडा बहुमत मौलाना के पक्ष मे था।

काँग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले ही पटने मे वर्किंग कमिटी की बैठक हसब-मामूल की गयी। यह बैठक इसलिए की जाती है कि काँग्रेस मे उपस्थित करने के लिए कुछ प्रस्तावो का मसविदा पहले से तैयार कर लिया जाय ताकि ठीक काँग्रेस के समय इस काम मे जल्दी न करनी पडे। इस बैठक के बाद ही मै रामगढ के लिए रवाना हो गया। मुझे लोगों ने स्वागत-समिति का अध्यक्ष चुन लिया था। वह भी कुछ अजीब ढग से हो गया था। स्वागत-समिति के लोगो को ऐसा मालूम हुआ कि स्वागताध्यक्ष के चुनाव के लिए कई नाम पेश किये जा सकते है। यह बात लोगो को पसन्द नही थी, क्योकि वे इस मामले मे मतभेद का प्रदर्शन करना नही चाहते थे। किसी व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध मे कुछ कहना उचित नही है, इसलिए मै नाम नही देता हूँ। इस प्रकार के मतभेदो मे कोई डरने की बात नही होनी चाहिए—विशेषकर स्वागताध्यक्ष की जिम्मेदारी केवल स्वागत और प्रबन्ध की होती है। काँग्रेस की नीति से उसका कोई, स्वागताध्यक्ष की हैसियत से, सम्बन्ध नही होता। तो भी कुछ लोगो की राय हुई कि मै यदि इस पद को स्वीकार कर लूँ तो मतभेद नही होगा। मजबूरी मुझे मान लेना पडा। अस्तु, मै पटने से मोटर पर रवाना हुआ। रास्ते मे नालन्दा मे उतर गया। वहाँ की खुदाई से निकली हुई इमारतों और म्युजियम मे सग्रह की हुई चीजो के देखने का सुअवसर प्राप्त हो गया। मुझे खेद और लज्जा से कहना पडता है कि नालन्दा यद्यपि पटना-जिले मे ही है जहाँ मै रहा करता हूँ, मैने इसके पूर्व उन इमारतो और सामग्रियो को नही देखा था। मुझे देखकर आश्चर्य ही नही हुआ, बिहार के अतीत गौरव के प्रति श्रद्धा और भी बढ गयी। नालन्दा से कुछ आगे बढकर रजौली-डाक-बँगला पर मै दो दिनो के लिए ठहर गया। वहाँ ठहरने के दो कारण थे—एक तो कुछ आराम कर लेना जरूरी था, दूसरा था स्वागत का भाषण तैयार कर लेना। जगह भी अपने ढग की अच्छी मिल गयी। थोडी ही दूर पर जगल और पहाड उस स्थान की शोभा बढाते है। हम लोगो के मित्र और पुराने काँग्रेसी श्री गौरीशकरशरणसिह का घर उसी गाँव मे है। इसलिए बिना तरद्दुद और चिन्ता के वहाँ एकान्त मे रहकर भाषण लिखने मे सुविधा हुई। भाषण मे मैने बिहार के इतिहास का ही थोडा-सा सिहावलोकन किया था। चलते प्रश्नो और मसलो के सुलझाने अथवा उन पर मत प्रकट करने का प्रयत्न मैने जान-बूझकर छोड दिया था।

रामगढ पहुँचकर, तैयारी मे जो कमी थी उसको पूरा कराने मे ही दिन-रात लगा रहा। महात्माजी समय से पहुँच गये। उनको प्रदर्शनी का उद्घाटन करना था। इसलिए वह कुछ पहले ही आये। उनके पहुँचने के एक दिन पहले बहुत पानी बरस गया। कुछ आँधी भी आ गयी। प्रदर्शनी के काम मे कुछ बाधा पडी। पर बात सँभाल ली गयी। महात्माजी ने समय पर उद्घाटन किया। आशा की जाती थी कि अब इस वर्षा के बाद आसमान साफ रहेगा और जो कुछ होना था, हो चुका। पर होनेवाला कुछ दूसरा ही था।

हुरहुरी और दामोदर के किनारे नेताओ के लिए झोपडे बने थे जिनमे से एक मे महात्माजी, दूसरे मे सभापतिजी और अन्यान्य झोपडो मे और-और लोग ठहराये जानेवाले थे। झोपडो की बनावट अच्छी और सुन्दर थी। बॉस की चटाई की दीवार, होगला की छाजन और साखू के खभे। इसी तरह सभी झोपडो का निर्माण किया गया था—चाहे वह ठहरने के लिए हो अथवा प्रदर्शनी के लिए या कमिटी की बैठक के लिए। बीच मे अच्छी चौडी सडक बनायी गयी थी। बीच-बीच मे आवश्यकतानुसार गलियॉ बनी थी।

यह स्थान पटना-रॉची के शाह-राह पर ही था। उस शाह-राह पर दामोदर नदी पर एक बडा पुल बना हुआ है। पुल और सडक से नगर की शोभा खूब देखने मे आती थी। सडक बराबर चलती रहती है। उस समय तो और भी अधिक चालू थी। वहॉ रेल के दो स्टेशन है—एक बी० एन० आर० का स्टेशन रामगढ है, नगर से आधा मील दक्खिन, और दूसरा स्टेशन ई० आइ० आर० का रॉची-रोड, जो वहॉ से प्राय चार मील उत्तर था। दोनो रेलवे के अधिकारियो ने, भीड की सुविधा के लिए, स्टेशनो पर काफी प्रबन्ध किया था। महात्माजी रामगढ-स्टेशन पर उतरे और सभापतिजी रॉची-रोड स्टेशन पर। बडे जलूस के साथ सभापति कॉंग्रेस-नगर मे पहुँचाये गये। नगर का नाम स्वर्गीय मजहरुलहक साहब के नाम पर रखा गया था। एक विशेष फाटक स्वर्गीय दीपनारायणसिंह के नाम पर था।

जैसा मामूल है, अखिल भारतीय कमिटी और विषयनिर्वाचिनी की बैठके दो-तीन दिन पहले ही आरम्भ हुई। उन्होने अपना काम प्राय कॉंग्रेस के खुले अधिवेशन के दिन तक पूरा कर लिया था। जन-समूह वहॉ एकत्र हो गया था। पडाल बहुत सुन्दर बना था। उसको प्रकृति ने ही सुन्दर बनाया था। हमारा काम तो था स्थान चुनकर जमीन बराबर करा देना, नेताओ का मच अर्थात् प्लाटफार्म बनवा देना, रोशनी लगा देना और चारो ओर घेरा बनवा देना। पडाल के पास मे ही घनघोर जगल प्राय दो तरफ था। जगल था पहाड पर, इसलिए वहॉ से दो ओर सुन्दर उठते हुए पहाड और जगल, जहॉं तक ऑखे जा सकती थी, नजर आते थे। दूसरी ओर कॉंग्रेस के प्रतिनिधियो के निवास-स्थान आदि दूर तक फैले हुए थे जो रात के समय रोशनी से जगमग-जगमग करने लगते। प्लाटफार्म सबमे नीचे था और प्रतिनिधियो तथा दर्शको के बैठने की जगह प्राकृतिक गैलरी-जैसी बनी थी। चाहे कोई भी दर्शक कितनी ही दूरी पर क्यो न हो, वह मच पर बैठे सभापति तथा दूसरे नेताओ को ठीक देख सकता था। लाउड स्पीकर के कारण उनकी बाते सुनने मे कोई कठिनाई तो थी ही नही।

कॉंग्रेस के अधिवेशन का दिन आ गया। दर्शको के टिकट धडाधड बिक रहे थे। शायद घटे मे ६-७ हजार या इससे भी अधिक आमदनी हो रही थी। अधिवेशन सन्ध्या-समय ५ या ६ बजे से होनेवाला-था। मै सभापतिजी को लाने के लिए चला गया। पडाल के अहाते मे एक सायादार झोपडा कुछ दूर पर बना था जहॉ से मामूल के

अनुसार मुख्य नेताओं को सभापति के साथ जलूस बनाकर ले जाने का प्रबन्ध था। कुछ लोग वहाँ तक पहुँच गये, कुछ लोग आ ही रहे थे कि इतने में अचानक आकाश के एक कोने में बादल उमड़ आया और पानी बरसना आरम्भ हो गया। सभापतिजी उस झोपड़े तक पहुँच गये थे, पर अभी जलूस नहीं निकला था। पानी पड़ने लगा। चन्द मिनटों के अन्दर इतने जोर की मूसलधार वर्षा होने लगी कि वह नीची जमीन पानी से भर गयी। सभी दर्शक और प्रतिनिधि अपने-अपने स्थान पर बैठे रहे—भीगते रहे—इस आशा से कि अब पानी रुक जायगा और अधिवेशन हो सकेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। वर्षा का जोर बढ़ता ही गया। अन्त में मंच के पास नीची जमीन में इतना पानी भर गया कि वहाँ लोगों का खड़ा रहना भी कठिन हो गया। लाउड स्पीकर का सारा प्रबन्ध उसी स्थान पर था। इसलिए वह बिल्कुल बेकार हो गया। अन्त में उसी वर्षा में सभापतिजी मंच पर गये। मैं भी साथ गया। मैंने दो-चार शब्दों में स्वागत कर दिया—भाषण पढ़ने का न कोई मौका ही था और न कोई उसे सुन ही सकता। सभापतिजी ने भी दो-चार शब्द कहकर उस दिन का अधिवेशन समाप्त कर दिया। जिन लोगों ने महीनों से दिन-रात परिश्रम करके इस शुभ दिन की तैयारी की थी वे लोग बहुत निराश हुए, पर करना क्या था, अब तो देखना यह था कि प्रतिनिधियों के रहने के स्थान का क्या हाल है। यह सन्तोष का विषय है कि झोपड़े इस मूसलधार पानी को भी बर्दाश्त कर गये। प्रतिनिधि उनमें रात को पानी बरसते रहने पर भी सो सके। उनको कष्ट तो अवश्य हुआ, पर मैं समझता हूँ कि हम लोगों के साथ सबकी सहानुभूति रही, किसी को हमसे या हमारे प्रबन्ध की त्रुटियों से रंज नहीं हुआ।

दूसरे दिन पानी नहीं बरसा, यद्यपि कुछ फूहाफूही होती रही। झंडा-अभिवादन के लिए खुले मैदान में एक स्तंभ बनाया गया था जो पक्का सिमेण्ट का था। उसके सिरे पर अशोक-स्तंभ की तरह सिंहों की मूर्ति थी। उसी स्तंभ के चारों तरफ लोग जमा हो गये। काँग्रेस का अधिवेशन वहीं किया गया। पंडाल में तो पानी जमा होने के कारण बैठना या खड़ा रहना भी असम्भव था। इस खुले मैदान में स्तंभ के चबूतरे पर सभापति, महात्माजी तथा कुछ दूसरे मुख्य लोग बैठे और सब लोग चारों ओर जमीन पर बैठ गये। जो प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी ने उपस्थित किये थे, बाजाब्ता उपस्थित किये गये। पूरी बहस के बाद वे स्वीकृत हुए। जो कुछ बाजाब्ता अधिवेशन में होता वह सब किया गया, पर कुछ कम पैमाने पर, क्योंकि हमेशा आसमान का डर बना रहता था कि कहीं फिर पानी न बरसने लगे। महात्माजी का भी भाषण हुआ। अन्त में मैंने सब लोगों से असुविधाओं के लिए माफी माँगते हुए निवेदन किया कि लोग अब अपने-अपने स्थान को चले जायँ, क्योंकि नदी में पानी आ जाने के कारण हमारा पानी-कल का प्रबन्ध बेकार हो गया था, लोगों को अब नदी के गँदले पानी पर भरोसा करना पड़ेगा, हमारे खजाने में २४ घंटे से अधिक के लिए अब पानी नहीं रह गया था! लोगों ने बात मान ली। अधिवेशन समाप्त होते ही लोग जहाँ-तहाँ

के लिए रवाना होने लगे। उसी दिन, रात की गाडी से, सभापतिजी तथा दूसरे मुख्य-मुख्य नेता भी जहाँ-तहाँ चले गये।

रामगढ-काँग्रेस का निश्चय भी महत्त्व रखता है। लडाई के आरम्भ से जो नीति वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने काँग्रेस की ओर से बरती थी उसका समर्थन काँग्रेस ने कर दिया। साथ ही, यह भी साफ-साफ बता दिया कि भविष्य मे स्वराज्य के लिए हमे कुछ करना पडेगा, उसके लिए अभी से रचनात्मक कार्यक्रम को जोरो से चलाकर लोगो को तैयार किया जाय।

रामगढ-कॉग्रेस के समय रामगढ मे ही एक दूसरी बडी सभा भी हुई। उसका नाम था समझौता-विरोधी-सभा (anti-compromise conference) उसके मुखिया थे श्री सुभाषचन्द्र बोस। इस सूबे के प्रबन्धको मे मुख्य थे श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती और श्री धनराज शर्मा। जब से सुभाष बाबू से मतभेद हो गया था, उन्होने एक दूसरा नया दल कायम किया था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वे लोग कॉग्रेस-कार्यकारिणी-समिति के विरुद्ध यही प्रचार कर रहे थे कि वह ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ समझौता करने पर तुली हुई है और देश का अहित करके भी समझौता कर लेगी। इस दल मे बहुत प्रकार के लोग शरीक थे जिनमे कुछ ऐसे लोग भी थे जो सुभाष बाबू के मत और विचारो से कोई सम्बन्ध नही रखते थे, पर जो कार्यकारिणी से रुष्ट थे और यह अच्छा मौका देखकर उसके विरोध मे लग गये थे। कॉग्रेस न समझौते से कुछ डरती थी और न उसके लिए देश का अहित करना चाहती थी। यदि उसमे किसी प्रकार की उत्सुकता थी-तो सिर्फ इतनी ही कि देश का हित हो। पर उस समय इस 'स्लोगन' को खूब चलाया गया। वह कान्फ्रेन्स भी अच्छे समारोह से हुई। उसमे और कॉग्रेस के अधिवेशन मे यह अन्तर रहा कि उसका अधिवेशन, काँग्रेस के पहले होने के कारण, वर्षा शुरू होने के पहले ही समाप्त हो चुका था।

१३७—बिहार की तीन महत्त्वपूर्ण कमिटियाँ और सोनपुर-शिविर

रामगढ के निश्चय के अनुसार हम लोगो को रचनात्मक काम पर जोर देना जरूरी था। इसलिए वहाँ का काम समाप्त होते ही हमने सोच लिया कि अपने सूबे मे इसका प्रबन्ध करना चाहिए—महात्माजी के आदेशानुसार हमारे सभी स्वयसेवको को चर्खा चलाने इत्यादि की शिक्षा ले लेनी चाहिए और सगठित जीवन बिताने का भी पांठ सीख लेना चाहिए। इसलिए हमने निश्चय कर लिया कि एक शिविर खोला जाय जिसमे प्रान्तभर से प्रमुख लोग आकर एक साथ कम से कम एक सप्ताह रहे। जो चर्खा चलाना इत्यादि पूरी तरह न जानते हो उनको इसकी शिक्षा मिल जाय और प्रतिदिन विचारविमर्श करके अपने विचार भी सुस्पष्ट तथा दृढ बना लिये जायँ, और साथ ही, शिविर-जीवन से जो ऐक्य और समता का सबक मिलता है वह भी ले लिया जाय। इसके लिए स्थान हमने सोनपुर चुन लिया। तिथि मुकर्रर कर दी गयी जिस दिन वहाँ शिविर खोला जायगा। वहाँ के लोगो को इससे सन्तोष भी हुआ, क्योकि

वे कांग्रेस के पहले ही आशा करते थे कि अधिवेशन यहीं होगा। वह तो न हुआ, पर शिविर से ही उनको कुछ सन्तोष मिल गया।

मैं समझ गया था कि हो न हो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। इसलिए अपने हाथ के कामों को जल्द से जल्द समाप्त करके छुट्टी पा लेना आवश्यक समझता था। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने तीन भारी कामों में मुझे लगा दिया था। बिहार-मजदूर-जाँच-कमिटी मुकर्रर करके उसके जिम्मे बिहार के मजदूरों की हालत जाँचने और तत्सम्बन्धी सिफारिशें करने का भार सुपुर्द कर दिया था। मैं ही उसका प्रमुख था। शिक्षामन्त्री डाक्टर महमूद के बहुत जोर लगाने से पटना-यूनिवर्सिटी में फिर सिनेट का सदस्य होना पड़ा जिससे मैं १९३० के नवम्बर से ही अलग हो गया था। इसका कुछ जिक्र पहले भी आ चुका है। सिनेट में शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते समय वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की तीव्र आलोचना करते हुए मैंने बताया था कि इस सूबे में विशेषकर शिक्षा में हम हर तरह से पीछे हैं—कुछ कानूनदाँ और क्लर्की-पेशावालों तथा डाक्टरों को छोड़कर हम और किसी तरह के लोगों को तैयार नहीं कर रहे हैं और न किसी विषय में कोई नयी खोज करके अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता का ही परिचय देते हैं—कृषिप्रधान प्रदेश होने पर भी यहाँ वनस्पति-शास्त्र की पढ़ाई और कृषि-सम्बन्धी शिक्षा की कोई प्रधानता अथवा व्यवस्था नहीं है—खनिज पदार्थों में भारतवर्ष में सबसे अधिक धनी होने पर भी इस सूबे के लोगों को न तो तत्सम्बन्धी शिक्षा की कोई विशेष सुविधा प्राप्त है और न उन पदार्थों से लाभ उठाने की कोई प्रेरणा ही दी जाती है। खैर, प्रस्ताव पास हुआ और सरकार ने एक कमिटी भी बना दी जिसका पूरा विवरण पहले दिया जा चुका है। एक तीसरी हिन्दुस्तानी-कमिटी भी मेरे सभापतित्व में थी, पर जिससे मैंने अपने हाथ में बहुत काम होने के कारण इस्तीफा दे दिया था और मौलाना अबुल कलाम आजाद उसके सभापति बनाये गये थे। इसकी भी चर्चा पहले हो चुकी है। इन तीनों कमिटियों के काम को पूरा कर देना जरूरी था। शिक्षा-समिति के प्रमुख बम्बई के अर्थशास्त्री और शिक्षाशास्त्री श्री के० टी० शाह महाशय बहुत ही परिश्रमी और विचारशील पुरुष हैं और उन्होंने ही उसके काम को संभाला, यद्यपि मुझे भी काफी परिश्रम करना पड़ा, पर उनके तथा दूसरे सदस्यों के सहयोग से परिश्रम बँट जाने के कारण मैंने उतना अधिक महसूस नहीं किया। शिक्षा-कमिटी की रिपोर्ट तीन भागों में तैयार की गयी। पहले भाग में प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में सिफारिशें की गयीं। हमारी मुख्य सिफारिश वर्धा की शिक्षा-योजना से मिलती-जुलती थी—या यों कहें कि वर्धा-योजना की नींव पर ही बनी थी तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि चाहे वर्धायोजना गांधीजी के अपने मस्तिष्क की उपज ही क्यों न हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्र उसी का समर्थन करता है। शिक्षा-शास्त्रियों में डाक्टर जाकिर हुसैन, प्रोफेसर सैयदैन और स्वयं श्री के० टी० शाह उसके मुख्य सिद्धान्त के हामी थे, और जब यूरोप तथा अमेरिका के शिक्षाशास्त्री भी उसी सिद्धान्त के समर्थक हैं तो कोई

कारण नही था कि कमिटी के दूसरे सदस्य उसे मजूर न करे। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि गाधीजी की यह योजना इस प्रकार सबके द्वारा समर्थित हो सकी। केवल एक विषय मे मेरा मतभेद रहा। मै गाधीजी के साथ इस बात को भी मानता था कि भारत-जैसे गरीब देश मे विद्यार्थियो के हुनर और कला से जो कुछ स्कूलो मे हम पैदा कर सकेंगे वह इतना काफी होगा कि उसकी आमदनी से ही पूरा नही तो अधिकाश खर्च निकल आवेगा। दूसरे सदस्य इतना मानने को तैयार नही थे। कुछ का तो यह भी विचार था कि यदि हम आमदनी पर नजर रखेंगे तो उन कलाओ की ओर से ध्यान खिचकर आमदनी पर ही केन्द्रित हो जायगा और शिक्षा से बच्चो को यथोचित लाभ नही पहुँच सकेगा। जो हो, इस सम्बन्ध के मतभेद को भी हमने इस तरह मिटा दिया कि यद्यपि आमदनी की उपेक्षा नही की जा सकती तथापि *वह हमारा उद्देश्य नही है—हुनरो का सीखना शिक्षा के लिए ही होगा न कि आमदनी के लिए।* दूसरा भाग स्कूली शिक्षा से सम्बन्ध रखता था और तीसरा युनिवर्सिटी की ऊँची शिक्षा के साथ। तीनो भागो को तैयार करने के लिए अलग-अलग उपसमितियाँ बना दी गयी थी, जिनमे से प्राथमिक शिक्षा और युनिवर्सिटी की शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली उपसमितियो का सदस्य मै था। उपसमितियो की रिपोर्ट पूरी कमिटी के सामने पेश होकर मजूर की जाने पर गवर्नमेण्ट के पास भेज दी गयी।

श्री शाह से मेरी पहले की अधिक मुलाकात नही थी। इसी सिलसिले मे उनको अधिक जानने का सौभाग्य हुआ। उनकी विद्वत्ता, परिश्रमशीलता और सौहार्द से तबीयत खुश हो गयी। मै समझता हूँ कि उनसे जो मानसिक मित्रता हो गयी वह जरूरत पडने पर काम देगी। इसी प्रकार डाक्टर जाकिर हुसैन और प्रोफेसर सैयदैन से, विशेषकर प्रोफेसर सैयदैन से, इसी विषय को लेकर अधिक मुलाकात हुई। डाक्टर जाकिर हुसैन से मिलने के और भी मौके मिलते रहे है। इन दोनो के प्रति भी प्रेम और प्रतिष्ठा के भाव उत्पन्न हो गये। डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह के सम्बन्ध मे कुछ कहना मुश्किल है। वह मेरे विद्यार्थी-जीवन के समय से ही मेरे अभिभावक की तरह रहे है। उन्होने मुझे हमेशा छोटे भाई-सा प्यार किया और स्नेह दिया है। राजनीतिक विषयो मे हजार मतभेद होने पर भी उनकी इस स्नेहमयी कृपा मे कुछ भी अन्तर मैंने नही आने दिया है। इस कमिटी में एक साथ काम करने से भी हम दोनो मे इससे और अधिक क्या हो सकता था। वही बात श्री बदरीनाथ वर्मा के साथ भी है। यदि डा० सिंह बडे भाई की तरह रहे है तो श्री वर्मा छोटे भाई की तरह। उनसे राजनीतिक प्रश्न पर भी कोई मतभेद नही हुआ है। उनसे भी केवल इसी कार्य के कारण कोई विशेष परिचय की बात नही थी। डा० अमरनाथ झा से इस कमिटी मे कम ही काम पडा। कमिटी के मत्री श्री भवनाथ मुखर्जी मेरे पुराने परिचित सज्जन थे। जब मै कुछ दिनों के लिए मुजफ्फरपुर के भूमिहार-ब्राह्मण-कालेज मे अध्यापक था वह तब वहाँ विद्यार्थी थे। मैंने भी कुछ उनको पढाया था। वह अब शिक्षाशास्त्री हो गये है और इस विभाग मे ऊँचे पद पर है, पर अब भी

वह मेरे प्रति वही भाव रखते है, जिसका वहुत परिचय कमिटी के कामो मे मिला। इस कमिटी का काम तो समाप्त हो गया।

मजदूर-जॉच-कमिटी का काम अभी पूरा नही हुआ था। इसके सम्बन्ध मे कमिटी के सदस्यों को प्राय उन सभी जगहों मे जाना पडा था जहाँ वडे-वडे कारखाने है और जहाँ वहुत मजदूर काम करते है। यदि विचार करके देखा जाय तो मालूम होगा कि जितने प्रकार के और जिस पैमाने पर रग-विरग के काम इस सूवे मे मजदूर करते है उतने शायद ही किसी दूसरे प्रान्त मे करते हो। खेतिहर मजदूर की बात अलग है—वे इस कमिटी के बाहर रखे गये थे—इसको केवल कारखानो के मजदूरो की हालत जाँच करने का अधिकार दिया गया था। पर कारखाने भी अनेक प्रकार के है। उत्तर-विहार मे ऊख से चीनी बनाने के कारखाने अधिक है। दूसरे प्रकार के कारखाने विशेषकर शहर मे या उसके आस-पास रहते है अथवा मजदूरो के जमाव के कारण स्वय शहर वना लेते है जो कारखानो के साथ-साथ वढते और उन्नति करते जाते है, क्योकि देखादेखी और सुविधाओ की उपलब्धि के कारण एक वडे कारखाने के खुलते ही अनेकानेक कारखाने उस स्थान पर खुल जाते है। किन्तु ऊख के कारखाने इसके ठीक विपरीत अलग-अलग गाँवो मे होते है, क्योकि उनको ऊख से काम चलाना पडता है और वह छोटे दायरे मे पैदा नही की जा सकती है और न वहुत दूर से लायी जा सकती है। इसलिए कारखाने को कच्चे माल के पास जाना पडता है अर्थात् ऐसे स्थान मे कारखाना कायम करना पडता है जहाँ कच्चा माल पैदा हो सकता है, क्योंकि वह वहुत दिन ठहर नही सकता और वहुत दूर से ढोकर लाया नही जा सकता। कारखाना भी साल-भर नही चलता, प्राय ४-५ महीनो तक ही चलता है। गाँव मे कारखाना होने के कारण अधिकतर मजदूर अपने गाँवों से आकर ही काम करते है और छुट्टी के समय अपने घर चले जाते है। यह हुई एक किस्म। दूसरी किस्म बिहार की कोयला-खानो मे पायी जाती है। वहाँ का काम साल-भर चलता है। वहुतेरे मजदूर कुछ दूर से आकर खानों के नजदीक ही झोंपड़ों मे रहते है, जो उनके निमित्त खानों के मालिक वनवाते है। यह काम भी कुछ फैला हुआ है, यद्यपि यह फैलाव ऊख की खेती के मुकाविले नही के वरावर है। तीसरी किस्म जमशेदपुर के वडे कारखाने मे पायी जाती है। इसमे प्राय सभी प्रान्तो के लोग काम करते है जो वही रहते है। वहाँ उनकी सुविधा के लिए कम्पनी की ओर से प्रवन्ध है। प्रान्त के दूसरे हिस्सो मे कुछ और भी कारखाने है जो तरह-तरह की चीजे वनाते है। जैसे—लोहा और लाह के, कपड़ा और पाट वुनने के, चावल और तेल के इत्यादि। अवरख की खाने और कारखाने भी बहुत है। दूसरी धातुओ की खाने भी है। इन सव प्रकार के कारखानों के मजदूरो की हालत जानने और जाँचने के लिए सभी प्रकार के कारखानों और खानों को कमिटी के सदस्यो ने जाकर देखा। मजदूरों और पूँजीपतियो की वाते सुनी तथा उनके वयान लिये। मै ऊख के और कुछ दूसरे प्रकार के कारखानो को छोडकर प्राय सभी जगहो मे कमिटी के साथ-

साथ गया। बयानों और इजहारो के लेने मे शरीक रहा। यह काम खत्म करके रिपोर्ट-सम्बन्धी बहुत बाते भी हो चुकी थी। रिपोर्ट लिखने का भार कमिटी के मत्री प्रोफेसर राजेन्द्रकिशोरशरण को दिया गया था। उन्होने उसे तैयार किया था, पर उस पर कमिटी ने बैठकर अभी तक विचार नही किया था। रामगढ-काँग्रेस समाप्त होते ही इस काम को पूरा कर देने का निश्चय मैंने कर लिया था। इसलिए कमिटी की बैठक कांग्रेस के अधिवेशन के तीन-चार दिन बाद ही मुकर्रर कर दी गयी थी। रामगढ से मै पटने आया और इस कमिटी के काम मे लग गया।

कमिटी की बैठक प्राय चौहद-पन्द्रह दिनो तक चलती रही। सवेरे ७॥ बजे से १ बजे तक और फिर २॥ बजे से सध्या ७–८ बजे तक प्रतिदिन हम बैठते। इसके अलावा रात को अथवा सवेरे और दोपहर को-जो थोडा समय मिल जाता उसमे अकेले तत्सम्बन्धी अध्ययन करते। इस सिरतोड परिश्रम के बाद रिपोर्ट मजूर हुई। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि रिपोर्ट की सभी बडी सिफारिशे सर्व-सम्मति से हुई। कुछ छोटी-मोटी बातो मे चाहे थोडा-बहुत मतभेद रहा हो, पर रिपोर्ट एक स्वर से पास हुई। इसका महत्त्व इस कारण से बढ जाता है कि उसमे पूँजीपतियो के प्रतिनिधि भी थे और मजदूर-सघो के भी। कुछ लोग तटस्थ समझे जानेवाले भी थे। तीनो का मतैक्य यह बतलाता है कि हम सब इस पर तुले हुए थे कि हम ऐसी ही सिफारिशे करे जिनको एक तरफ से मजदूर और दूसरी तरफ से कार-खानो के मालिक एकबारगी अयोग्य अथवा असभव समझकर नामजूर न कर दे। इसमे सब ने पूरी मदद की। सबकी सदिच्छा और सद्भावना का ही फल यह मतैक्य हुआ। हम जानते थे कि लडाई के कारण स्थिति मे बहुत परिवर्तन हो सकता है और यद्यपि अभी उस समय तक (१९४० के अप्रैल तक) भारत मे कोई उतना बडा आर्थिक परिवर्तन देखने मे नही आता था, पर इसकी सभावना आँखो से ओझल नही थी। इसलिए हम जानते थे कि शायद ही हमारी सिफारिशे पूरी तरह काम मे लायी जायँ, तो भी हमने अपना कर्त्तव्य पूरा किया। हमने सोचा कि जो मसाला हमने तैयार किया है, जो जानकारी हासिल की है, वह इस विषय पर विचार करनेवालो के लिए काम की अवश्य होगी और यदि कॉंग्रेस को फिर अधिकार मिल सकेगा तो वह जरूर कुछ न कुछ करेगी। हमारी उमीदे पूरी नही हुई। जहाँ तक मै जानता हूँ, कमिटी की सिफारिशे दफ्तर मे ही रह गयी है, उन पर कोई काम नही किया गया। हमने मजदूर-विभाग की स्थापना की सिफारिश की थी। सुना कि इस विषय मे कुछ किया जा रहा है, पर वह भी शायद अधूरा और नाम के वास्ते ही। मजदूरो की सुविधा-सम्बन्धी एक भी सिफारिश शायद काम मे नही लायी गयी। गवर्नमेण्ट इस विषय को शायद कुछ महत्त्व नही देती। इस कमिटी के मेम्बरो मे श्री हेमैन पहले से मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। उन्होने रेलवे-बोर्ड मे काम करके, अवसर प्राप्त कर, ताता-कम्पनी के हिसाब-विभाग के प्रधान निरीक्षक का काम उठाया था। इस तरह वह उस बडे कारखाने के मुख्य लोगो में एक थे। कमिटी मे मैंने देखा कि उनकी

परिश्रम-शक्ति अद्‌भुत है और उनके विचार भी प्रगतिशील है। यदि वह और श्री एम० वी० गाधी, जो पूँजीपतियों के प्रतिनिधि-स्वरूप थे, साथ न देते तो मतैक्य नही होता। उसी तरह प्रो० अब्दुल वारी यदि मजदूरो की ओर से हमारी वात को नही मानते तो भी मतैक्य दुर्लभ हो जाता। इसलिए इन लोगो के प्रति विशेष कृतज्ञता का कारण है। अन्य लोगो मे भी श्री राधाकमल मुखर्जी और श्री राजेन्द्रकिशोर ने अपनी विद्या और अपने अध्ययन से कमिटी की रिपोर्ट मे वहुत मदद पहुँचायी। इनके अलावा श्री वाखले के वम्वई के मजदूर-सघ के अनुभवो का और श्री जगतनारायणलाल तथा श्री हरेन्द्र वहादुरचन्द्र के विहार-सम्वन्धी ज्ञान से लाभ उठाकर कमिटी ने रिपोर्ट तैयार की थी।

इस प्रसग मे एक दु.खद घटना हो गयी। कमिटी की रिपोर्ट तैयार होने के थोड़े ही दिनों वाद प्रोफेसर राजेन्द्रकिशोर का अचानक देहान्त हो गया। उनको पेट की वीमारी पहले ही से थी। हम जानते थे कि वह वहुत तकलीफ सहा करते हैं। कमिटी के काम मे उनको काफी परिश्रम करना पडा था। उस काम को वहुत योग्यता और उत्साह से उन्होंने किया था। वीमारी वढ जाने के कारण वह चिकित्सा के लिए वम्वई गये। सुना कि वही पेट चीरा गया और उसके वाद वह जाते रहे। मुझे यह वात रह-रहकर पीडा पहुँचाती है कि शायद कमिटी के परिश्रम ने ही विहार के एक होनहार, योग्य और उत्साही विद्वान् को हमसे इतना जल्द अकाल मे ही अलग कर दिया!

तीसरी कमिटी थी हिन्दुस्तानी-कमिटी जिसका काम लम्वा था; क्योकि वह एक पारिभाषिक शब्दों का कोश, और दूसरा ऐसे शब्दो का कोष जो हिन्दी और उर्दू दोनो मे ग्राह्य है, तैयार करने मे लगी थी। इसके अलावा ऊँचे दर्जो की पाठ्य-पुस्तके तैयार कराने और हिन्दुस्थानी का व्याकरण वनाने का काम भी उसने अपने हाथों मे लिया था। यह सव अलग-अलग उपसमितियों को सौपा गया था और उस समय तक पूरा नही हो सका था। यह काम १९४३ मे जाकर समाप्त हुआ। १९४२ के अगस्त से ही जेल मे रहने के कारण मै कमिटी के कामों मे शरीक न हो सका। प्राय. उस प्राथमिक कार्य के सिवा, जिसको उपसमितियो की नियुक्ति के सम्वन्ध मे करना पडा था, और किसी महत्त्व के काम मे मै भाग न ले सका। महत्त्व के काम थे दोनों कोषो और व्याकरण की तैयारी। मै इनमे से किसी एक को भी न देख सका। इस हिन्दुस्तानी कमिटी के सम्वन्ध मे हमारे प्रान्त मे और उसके वाहर भी वहुत तरह की वाते हुई और की गयी। हिन्दीवालो ने इसको हिन्दी का विरोधी समझा और पीछे उर्दूवालो ने भी उनका अनुसरण किया। मै इस वात को नही मान सकता कि मै हिन्दी का विरोधी हूँ और उसका अहित करना चाहता हूँ। इसी तरह उर्दूवाले भी डा० अब्दुल हक को उर्दू का विरोधी किसी तरह नही कह सकते, क्योकि वह उर्दू के केवल वड़े हामी ही नही है, उन्होने उसकी वहुत सेवा भी की है और आज भी कर रहे है—एक प्रकार से वह उर्दू-सम्वन्धी सभी आन्दोलनों के प्रमुख कहे जा सकते

है। तो भी दोनों पक्षो के लोगो ने कमिटी का विरोध किया। विरोध की कोई शिकायत नही, पर इस बात की शिकायत जरूर है कि बहुत बाते अनर्गल और बेबुनियाद कही गयी और उन निर्मूल बातो से जनता मे बुद्धि-भेद पैदा किया गया। जो हो, उसका काम भी समाप्त हो गया है। मालूम नही, जो कोष और व्याकरण बने उनके सम्बन्ध मे लोकमत क्या कहेगा। मै यह भी नही कह सकता कि मै खुद ही क्या कहूँगा, क्योकि उनको देखने का अभी तक मौका नही मिला है।

मजदूर-जॉच-कमिटी का काम समाप्त करके मै सीधे वर्धा चला गया जहॉ वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। पहले कह चुका हूँ कि सोनपुर मे शिविर खोलने का विचार हो गया था और तिथि भी निश्चित हो गयी थी। मै वर्धा से ठीक उसी दिन वापस आया जिस दिन शिविर खोलना था और सीधे सोनपुर चला गया। वहाँ एक सप्ताह तक रहा। सूत कातने के अलावा वहाँ एकत्र हुए लोगो के साथ प्रतिदिन बहुत बाते करनी पडती। इस तरह वह समय भी परिश्रम का ही समय रहा। प्राय १५०–२०० प्रमुख कार्यकर्त्ता वहाँ ठहरे थे। जब-तब सन्ध्या को सार्वजनिक सभा भी हो जाती जिसमे आस-पास के गॉवो के लोग भी आ जाते। मुख्यत रचनात्मक कार्यक्रम पर ही जोर दिया गया, क्योकि उसी को तैयारी का साधन हम मानते है। हम साधन इसलिए नही मानते कि हम उसके द्वारा लोगो को विद्रोह सिखाते है, पर इसलिए कि उसके द्वारा कार्यकर्त्ताओ मे वह सयम आता है जो सत्याग्रह के लिए अनिवार्य है और जनता के साथ वह सम्पर्क पैदा होता है जो किसी भी जनसमूह को साथ लेकर काम करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शिविर का काम समाप्त करके मै पटने लौटा। वहाँ एक दूसरा काम पूरा करने मे लग गया जिसको पूरा कर देना मै अपना कर्त्तव्य समझता था। यह काम था एक पचायत का जिसको मैने कबूल कर लिया था। सार्वजनिक दृष्टि से इसका महत्त्व उतना ही है जितना किसी पचायत का हो सकता है। पर इसमे जो परिश्रम पडा वह मेरे स्वास्थ्य के लिए असह्य हो उठा। रामगढ के परिश्रम के बाद से ही जो लगातार अथक परिश्रम करना पडा था—मजदूर-जॉच-कमिटी, वर्किंग कमिटी, सोनपुर-शिविर और पचायत मे—उसने मुझे क्लान्त कर दिया; काम करते-करते सिर मे चक्कर के कारण मै बेहोश-सा हो गया। डाक्टर शरण और डाक्टर बनर्जी आये। हालत देखकर कुछ चिन्तित हो गये। कई दिनो तक मै सिर के चक्कर से परेशान रहा। कुछ स्वस्थ होने पर आराम करने के लिए जीरादेई चला गया। वहाँ प्राय एक महीने तक पड़ा रहा। तब जाकर फिर कुछ काम के लायक हो सका।

१३८—मुस्लिम लीग की कुछ बातें

कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के जमाने मे ही मुस्लिम लीग ने उनका ज़ोरो से विरोध करना आरम्भ कर दिया था। उसने यह बात उठायी कि मन्त्रिमण्डल मुसलमानो के साथ न्याय नही करते, ज्यादतियाँ किया करते है। उसने एक कमिटी मुकर्रर की

जिसके सभापति पीरपुर के राजा थे। उस कमिटी ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसमे कांग्रेस द्वारा किये गये यथा-कथित जुल्मो की तालिका दी गयी। बिहार मे मि० शरीफ वैरिस्टर ने इस प्रकार की रिपोर्ट दो जिल्दों मे दो बार करके प्रकाशित की। इन रिपोर्टों मे बहुतेरी गलत, बेबुनियाद और अनर्गल बाते लिखी थी। मन्त्रिमण्डलो ने इनका खण्डन छपवाया। जहाँ असम्बली मे बाते पेश हुई, इनका पूरा-पूरा उत्तर दिया। पर मन्त्रिमण्डल जो कुछ करता या कहता उसका तो प्रचार मुसलमानो मे हो नही पाता, और लीग जो चाहती और कहती उसका प्रचार जोरो से होने लगता। लीग ने हिटलर की उसी नीति का अवलम्बन किया जिसमे प्रतिद्वन्द्वी के विरुद्ध झूठी शिकायतों का—और अगर उनमे कुछ सत्य भी हो तो उसे बहुत वढा-चढाकर तथा बार-बार दुहराकर—प्रचार किया जाता है, और वह प्रचार इतना जबरदस्त होता है कि जनता उससे प्रभावित हुए बिना रह नही सकती। इस तरह काँग्रेस के प्रति और हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों मे विद्वेष का विष फैलाया गया—इनके बीच एक बडी खाई बनायी गयी। जिस समय चुनाव हुआ था और जिस चुनाव के फलस्वरूप काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने थे, लीग का जोर बहुत कम था। बिहार मे तो लीग की ओर से कोई उमीदवार ही न हुआ। इसी तरह बहुत सूबो मे लीग का अस्तित्व ही नही था। जहाँ था भी वहाँ एक कमजोर संस्था थी। इसलिए जब काँग्रेस को मन्त्रिमण्डल बनाना पडा तो वह लीग के लोगों को मन्त्रिमण्डल मे न ले सकी, दूसरे मुसलमानो मे से ही उन लोगों को, जो चुने गये थे, मन्त्रिमण्डल मे शरीक होने का आमन्त्रण दिया।

युक्त-प्रदेश मे इस बात की कोशिश हुई कि लीग के सदस्य मन्त्रिमण्डल मे लिये जायँ, और आज ऐसा अनुमान होता है कि ऐसा अगर कर लिया गया होता तो शायद लीग को इतनी शक्ति नही मिलती। पर काँग्रेस के अन्दर ही कुछ लोग इसको पसन्द नही करते थे, इसलिए लीग के साथ समझौता नही हो सका। लीग इससे बहुत क्षुब्ध हुई। कॉग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना उसने अपना मुख्य कर्त्तव्य बना लिया। जो शिकायते पीरपुर-रिपोर्ट और शरीफ-रिपोर्ट मे छपी थी उनकी जाँच कभी किसी निष्पक्ष अदालत अथवा व्यक्ति द्वारा नही हुई थी। मैंने कॉग्रेस के प्रधान की हैसियत से मि० जिन्ना को लिखा कि हम इस बात पर तैयार है कि इनकी जाँच फेडरल-कोर्ट के चीफ-जस्टिस सर मौरिस ग्वायर अथवा किसी ऐसे ही दूसरे निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा करायी जाय और वह अपनी शिकायते उनके पास पेश करे। उत्तर मे उन्होंने इसे मंजूर नहीं किया और कहा कि मामला वाइसराय के सामने पेश है, वही जो मुनासिब समझेंगे करेंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि वाइसराय कॉग्रेस से कुछ खुश नही थे। वह तो मुस्लिम लीग की सहायता करके उसे काँग्रेस के विरुद्ध खडा करने और इस तरह उसे शक्तिशाली बनाने के लिए तैयार बैठे थे। उन्होने इस शिकायत के सम्बन्ध मे जाँच कराने की बात पर कुछ कहा ही नही और न शायद मि० जिन्ना ने ही इस पर जोर दिया। बात जहाँ की तहाँ रह गयी। पर अखबारो, परचों और व्याख्यानो

मे उन अप्रमाणित शिकायतो के प्रचार का सिलसिला जारी रहा। लार्ड लिनलिथगो ने लीग की यह बात मान ली थी कि १९३५ के विधान पर लडाई के बाद फिर नये सिरे से विचार किया जायगा और उसमे जो सारे भारत के लिए एक सघ बनाने की बात कही गयी है वह छोड दी जायगी। मुस्लिम लीग इसी सघ का विरोध कर रही थी और उसे मनचाहा आश्वासन ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने दे दिया। इन सब बातो से प्रोत्साहित होकर, जब कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया तो, मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से खुशियाँ मनाने की आज्ञा दी और मन्त्रिमण्डलो का इस्तीफा मुसलमानो का नजात (छुटकारा) समझा गया। इस प्रचार का इतना असर समझदार मुसलमानो पर भी पडा था कि बिहार के मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा दे देने के बाद मौलवी खुरशेद हसनैन (अब स्वर्गीय) ने मेरे पास मुबारकबाद का तार भेजा।

लीग ने अभी तक भारत के विभाजन की बात मजूर नही की थी। पर बहुतेरे मुसलमान इस बात को कई रूपो मे पेश कर रहे थे। जब मै १९३९ के नवम्बर-दिसम्बर मे वर्धा मे ठहरा था तब मैने इस विषय का विशेष अध्ययन किया। उस समय तक मै पाकिस्तान के सम्बन्ध मे कुछ विशेष रूप से नही जानता था। वहाँ पर इस विषय के साहित्य को मँगाया और पढा। फिर एक लम्बा नोट तैयार किया जो रामगढ-कॉग्रेस के समय 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' मे एक विशेष लेख के रूप मे छपा। पीछे वह एक पुस्तिका के रूप मे भी प्रकाशित हुआ। बहुतेरों ने उसे पढकर पाकिस्तान की बात जानी। उधर मुस्लिम लीग भी चुप नही बैठी थी। रामगढ-कॉग्रेस के चन्द दिनो के बाद ही, १९४० के मार्च मे ही, लीग का सालाना जल्सा लाहौर मे हुआ। वहाँ पर लीग ने पाकिस्तान के पक्ष मे प्रस्ताव स्वीकार किया। उसके बाद से पाकिस्तान ही मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य रह गया है। एक बरस बाद मद्रास के सालाना जल्से मे उसने पाकिस्तान की स्थापना को मुस्लिम लीग का उद्देश्य मान लिया। इस उद्देश्य को नियमावली मे भी ध्येय के रूप मे शामिल कर लिया।

१३९—वैयक्तिक सत्याग्रह : कारण और परिणाम

योरपीय युद्ध का रूप इँगलैंड के लिए भयकर होता जा रहा था। जर्मनी बडे वेग से योरप के एक देश के बाद दूसरे पर कब्जा करता जा रहा था। पोलैण्ड, बेलजियम, हालैण्ड, डेनमार्क, नार्वे इत्यादि १९४० की गर्मी के पहले ही उसके कब्जे मे आ गये। अब फ्रान्स की बारी थी। फ्रान्स भी बहुत दिनो तक टिक न सका। अन्त मे उसे भी हथियार डाल देने पडे। डकर्क से अँगरेजो की सेना बहुत नुकसान उठाकर किसी प्रकार इँगलैंड भाग सकी। इँगलैंड मे इससे लोगो मे बहुत क्षोभ पैदा हुआ। चेम्बरलेन की मिनिस्ट्री गिर गयी। उसके स्थान पर सर्वदल मिनिस्ट्री कायम हुई जिसके प्रधान मत्री विन्स्टन चर्चिल हुए और भारत-मत्री मि० एमरी। इँगलैंड बहुत बहादुरी के साथ जर्मनी के हवाई हमलो का मुकाबला कर रहा था। इटली ने, यह समझकर कि अब इँगलैंड हार ही जायगा और फ्रान्स ने हथियार डाल ही दिया

है, युद्ध मे शरीक हो जाना मुनासिव समझा। इँगलैंड के लिए यह बहुत ही कठिन घडी थी। अभी तक अमेरिका लडाई मे नही आया था और न रूस से ही जर्मनी का युद्ध छिडा था।

हमारी वर्किंग कमिटी मे इस गम्भीर स्थिति पर विचार होता रहा। वहाँ यह राय ठहरी कि एक वार और साफ-साफ इँगलैंड से कहा जाय कि वह हिन्दुस्तान का मामला निपटा ले तो यथासाध्य हर प्रकार से कॉंग्रेस उसकी मदद करेगी। वर्किंग कमिटी मे इस विपय पर वहुत वाद-विवाद हुआ। महात्माजी युद्ध मे क्रियात्मक रूप से मदद करने के पक्ष मे नही थे। वह समझते थे कि ऐसा करना कॉंग्रेस के अहिंसा के ध्येय के विरुद्ध होगा। उन्होने जो इँगलैंड की मदद की वात कही थी वह केवल नैतिक मदद की थी। उनका मानना था और इसमे कोई सन्देह नही था कि इँगलैंड यदि भारतवर्ष को स्वतत्र वना देता तो उसका नैतिक स्थान इतना ऊँचा हो जाता और ससार के सामने उसका प्रभाव इतना वढ जाता कि कोई उसका मुकावला न कर सकता—कॉंग्रेस का इतना कहना मात्र कि इँगलैंड का हिन्दुस्थान के साथ समझौता हो गया और भारतवर्ष सन्तुष्ट है; काफी होता—यो तो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट विना कॉंग्रेस की सक्रिय मदद के भी जो कुछ चाहेगी हिन्दुस्तान से ले सकेगी ओर लेगी, जैसा वह कॉंग्रेस के तटस्थ रहने पर भी कर रही थी, अतएव हमारे लिए अपने ध्येय को छोडना उचित नही, इसके अलावा यदि हिन्दुस्थान अपने ध्येय पर डटा रहेगा तो युद्धोत्तर-काल मे सारे ससार पर इसका गहरा असर पडेगा। उधर दूसरो का विचार था कि हम यदि अपनी आजादी की माँग पेश करते है तो साथ ही हमको मदद भी करनी चाहिए; कॉंग्रेस का ध्येय केवल इतना ही था कि अँगरेजो से स्वराज्य लेने के प्रयत्न मे वह अहिंसात्मक उपायो से ही काम लेगी। उसमे किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण करने पर—अथवा भारत के स्वतत्र हो जाने के वाद भी—अहिंसात्मक रहने की न तो कोई वात थी और न हमको अपनी कार्रवाई से देश के हाथ को किसी प्रकार वाँधना ही चाहिए, ऐसा करने का हमको हक भी नही है। किन्तु एक वात पर सभी सहमत थे कि स्वराज्य-प्राप्ति के काम मे और आपस के झगड़ो मे अहिंसा को नही छोडना चाहिए।

इस प्रकार, कुछ लोग अहिंसा के सिद्धान्त को सीमित और मर्य्यादित करके ब्रिटिश सरकार को मदद देने के लिए तैयार थे। पर गाधीजी और कुछ दूसरे लोग अहिंसा को अक्षुण्ण रखना भारत और ससार के लिए आवश्यक समझते थे। मेरा निजी विचार इसी पक्ष मे था, यद्यपि मुझे भी युद्ध की स्थिति से कुछ घवराहट तो थी और कभी-कभी शका भी उठती थी कि हम कुछ कर सकेगे या नही। खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ वहुत ही दृढता-पूर्वक अहिंसा के सिद्धान्त पर डटे रहे। जव वर्किंग कमिटी ने दिल्ली की वैठक मे निश्चय कर लिया कि इस शर्त पर—कि भारत की आजादी की घोपणा की जाय और तत्काल गवर्नमेण्ट को ऐसा रूप दिया जाय कि भारतीय नेताओ के हाथ मे अधिकार आ जाय—कॉंग्रेस सक्रिय मदद लडाई मे देगी, तो खाँ

साहब ने और मैंने तथा कुछ और मित्रो ने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया। परन्तु प्रेसिडेण्ट मौलाना अबुल कलाम आजाद के इस आश्वासन पर—कि अभी जब तक ब्रिटिश गवर्नमेण्ट हमारी मॉग मजूर नही करती तब तक सक्रिय मदद की और अहिंसा छोडने की बात नही आती, इसलिए हमको इस्तीफा वापस ले लेना चाहिए और जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट हमारी यह मॉग मान लेगी और हमको मदद करनी पडेगी तब हम इस्तीफा दे सकते है—मैंने और कुछ साथियो ने इस्तीफे वापस ले लिये, पर खाँ साहब इससे सन्तुष्ट नही हुए। महात्माजी ने निश्चय कर लिया कि उनका अब कॉंग्रेस के साथ सम्बन्ध नही रहेगा। इससे वर्किंग कमिटी मे तथा बाहर भी लोगो के दिल मे बडी खलबली मची।

वर्किंग कमिटी की एक दूसरी बैठक वर्धा मे की गयी। उसी के बाद पूना मे, इस विषय पर विचार करने के लिए, अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बुलायी गयी। मतभेद रह ही गया और जब पूना मे बैठक हुई तो वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव को उसने बहुमत से मजूर कर लिया। उस बैठक मे हम लोग भी शामिल थे। गाधीजी पूना नही गये थे। हमने मित्रो की ओर से अपनी राय बता दी और यह भी कह दिया कि हम वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव का विरोध नही करेंगे, तटस्थ रह जायँगे। ऐसा होने पर भी बहुत लोगो ने विरोध किया ही। यदि हम तटस्थ न रह गये होते तो शायद वह प्रस्ताव गिर गया होता। इस तरह ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को कॉंग्रेस की ओर से बाजाब्ता मदद देने का प्रस्ताव भेजा गया। आशा की जाती थी कि वह उस पर विचार करेगी और कुछ बातचीत फिर हमारे साथ करेगी। पर ऐसा नही हुआ। प्रस्ताव पास होने के चन्द दिनों के बाद ही उसकी ओर से उसकी नामजूरी की घोषणा कर दी गयी। लार्ड लिनलिथगो ने एक विज्ञप्ति मे यह कहा कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट लडाई के जमाने मे कानून नही बदल सकती, पर उसके अन्दर रहकर वह वाइसराय की कार्यकारिणी कमिटी मे हिन्दुस्थानियो मे से—विशेषकर प्रमुख राजनीतिक दलो के मुख्य लोगो मे से—चुनकर नये मेम्बर नियुक्त करेंगे तथा कौन्सिल मे अधिकाश मेम्बर हिन्दुस्तानी होगे, पर उनके अधिकार वही होगे जो अब तक कौन्सिलरो के रहे है, इसके अलावा युद्ध-सम्बन्धी बातो मे राय-मशविरा देने के लिए एक दूसरी कमिटी वह बनायेगे जिसमे भी ऐसे प्रमुख भारतीयो को स्थान देगे। इस विज्ञप्ति से यह बात स्पष्ट हो गयी कि वह भारतीयो को कोई अधिकार नही देना चाहते है, सब अधिकारो को अपने ही हाथो मे रखना चाहते है। कॉंग्रेस की माँग के मानने की तो कोई बात ही नही थी। इस तरह जो नक्शा वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने बनाया था वह बात की बात मे टूट-फूट गया।

हिंसा-अहिंसा-सम्बन्धी वाद-विवाद बहुत हो चुका था। इसलिए पूना मे अखिल भारतीय कमिटी ने इस सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव पास किया। उसमे यह बात साफ-साफ कह दी गयी कि जहॉ तक स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के

साथ हमारा प्रयत्न चल रहा है उसमे तथा भारत के अन्दर आपस के झगडों के सम्बन्ध मे कॉंग्रेस अपने अहिंसात्मक उपायो के अवलम्बन की नीति और ध्येय पर कायम है और उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा हेर-फेर न समझा जाय। यद्यपि यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ, मुझे सन्देह है कि कॉंग्रेस के अन्दर बहुत लोगो को इसका स्मरण होगा, और युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव के कारण अहिसा की नीति मे जो ढील आ गयी उसका असर दिन-दिन बढता ही गया है। ऐसा होना भी स्वाभाविक है। अहिंसा का सिद्धान्त अनोखा सिद्धान्त है। इतने बडे पैमाने पर—विशेषकर एक बडी शक्ति के हाथो से स्वराज्य प्राप्त करने मे—उसका उपयोग और भी अनोखा है। बहुतेरो ने इसे नीति-रूप से माना है और वे सचाई से इसे बर्तते हैं। थोडे ही लोग इसे एक धार्मिक विश्वास रूप से मानते हैं। इसलिए इस पर लोगो को अटल रखना कुछ सहज काम नही है। चूँकि अब तक कॉंग्रेस के अन्दर सक्रिय रूप से इसके सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही हुआ था, इसलिए जन-साधारण मे इसके प्रति किसी तरह का बुद्धि-भेद नही पैदा हुआ था। अब, जब वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी मे ही मतभेद पैदा हो गया और वह स्पष्ट रीति से लोगो को दीखने भी लगा तब, जनसाधारण मे और विशेष कर साधारण कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ताओ मे बुद्धि-भेद होना आश्चर्य की बात नही है। ऐसे मामलो मे ठीक वही हाल होता है जो जल-राशि को बाँध द्वारा रोक रखने के बाद उस बाँध मे एक छोटा छेद हो जाने पर होता है, अर्थात् जल उस छेद को खुद-ब-खुद बढाता जाता है और थोडे ही काल मे जो रोक जल पर रहती है वह हट जाती है, फिर तो एक प्रकार से बाढ़-सी आ जाती है। ऐसा ही हुआ भी।

मै पूना मे ही बहुत बीमार पड गया। न्युमोनिया-जैसा कुछ हो गया। किसी तरह वर्धा पहुँचा। बरसात के दिन थे जो मेरे लिए बराबर खराब हुआ करते है। वहाँ कुछ दिनो मे आराम हुआ तो सेठ जमनालालजी का विचार हुआ कि आराम करने के लिए मै कुछ दिन राजपूताना की सूखी हवा मे जाकर रहूँ। उन्होने वहाँ खुद मुझे ले जाने का प्रबन्ध कर लिया। पूज्य बापू ने भी उसे अच्छा समझा। मै सेठजी के साथ जयपुर गया। इत्तफाक से वहाँ भी उस समय पानी पड रहा था। रास्ते की गडबडी और बरसात के कारण कुछ तबीयत खराब हो गयी। इसलिए जयपुर मे मुझे कुछ दिनो तक ठहर जाना पडा। पहले तो डाक्टरो की और फिर वैद्य श्री नन्दकिशोर शर्मा की दवा होने लगी। सबकी राय हुई कि जयपुर से अधिक लाभ 'सीकर'-जैसे बालुकामय स्थान मे ठहरने से होगा। इसलिए सेठजी के साथ मै सीकर चला गया। वहाँ प्राय एक महीना रहा। सीकर मे ही इन आत्म-सस्मरणो का लिखना आरम्भ हुआ। उसी सहवास मे मुझे सेठ जमनालाल बजाज के जन्मस्थान को, काशी-केवास नामक गाँव मे जाकर, देखने का सुअवसर मिला। वहाँ से नजदीक ही एक स्थान है लोहागरजी, जिसे लोग तीर्थस्थान मानते है। वह पहाडियो के बीच बहुत सुन्दर बसा हुआ है। जमनालालजी एक दिन वहाँ हमको ले गये। तबीयत बहुत सुधर

गयी। हर तरह से चगा हो गया, ऐसा मालूम पडने लगा। वहाँ हमारे रहते-रहते ही बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की फिर बैठक हुई जिसमे ब्रिटिश सरकार की घोषणा पर विचार किया गया और यह निश्चय हुआ कि इसे कॉग्रेस मजूर नही कर सकती, अब कॉग्रेस को क्रियात्मक रूप से ससार के सामने अपनी नीति वना देनी चाहिए। और, वैयक्तिक सत्याग्रह का भी निश्चय हुआ।

सत्याग्रह के सचालन का भार गाधीजी पर दिया गया। उन्होंने निश्चय किया कि यद्यपि यह सत्याग्रह वैयक्तिक होगा, सामूहिक नही, तथापि कोई व्यक्ति उनमे मजूरी पाये बिना सत्याग्रह नही कर सकेगा और वह अनुमति ऐसे ही लोगों को देगे जिन्होने रचनात्मक कार्यक्रम के किसी भी एक अग को अपनाया हो तथा उसमे काम किया हो। साथ ही, यह भी निश्चय हुआ कि ऐसे ही लोगो को अनुमति दी जायगी जो प्रतिनिधित्व कर रहे हों—अर्थात् जिनकी हैसियत ऐसी हो कि वह केवल व्यक्ति न हो, अनेको के प्रतिनिधि हो, जैसे असम्वली और कौन्सिल के मेम्वर, जिला और म्युनिसिपल बोर्डो के मेम्वर, कॉग्रेस-कमिटियो के पदाधिकारी और चुने हुए मेम्बर इत्यादि। नतीजा यह हुआ कि केवल ऐसे ही लोगो को अनुमति मिली जो स्वय सूत कातते हो, अछूतपन की भावना से अपने को मुक्त कर चुके हो और कही न कही के चुने हुए सदस्य हो। आरम्भ मे असम्वली और कौन्सिलो के मेम्वरो तथा कॉग्रेस-कमिटी के पदाधिकारियो को ही इजाजत मिली। प्रान्तीय कमिटियाँ ऐसे लोगो की सूची तैयार करती और गाधीजी के पास मजूरी के लिए भेज देती। जव वह मजूर कर लेते तभी सूची मे दर्ज लोग सत्याग्रह करते।

सत्याग्रह का रूप यह होता कि सत्याग्रही घोषणा करते कि हम युद्ध मे किसी प्रकार से मदद नही कर सकते। लोगों ने इसके लिए एक नारा वना लिया—'न एक भाई न एक पाई', अर्थात् न हम अपने मे से एक भाई को भी लडाई मे भेजना चाहते है और न लडाई के लिए एक पाई की भी आर्थिक सहायता देना चाहते है। लोगो को इस बात की कडी ताकीद कर दी गयी थी कि सत्याग्रह मे कोई प्रदर्शन न किया जाय, क्योकि हम सत्याग्रह द्वारा अपने लिए यह स्वत्व प्राप्त करना चाहते है कि हम जो भी उचित समझे, देश के सामने प्रचार कर सकते है, और हमारे इस स्वत्व मे किसी प्रकार की वाधा नही पड़नी चाहिए, यहाँ तक कि लडाई के नाजुक जमाने मे भी हम चाहे तो हमको उसके विरुद्ध प्रचार का हक होना चाहिए।

इस सत्याग्रह का कुछ लोगो ने तो विरोध किया और कुछ लोगों ने मजाक उड़ाया। गर्म विचारवाले वामपथी लोगो का कहना था कि इस प्रकार के ठण्ढे सत्याग्रह से कोई लाभ नही पहुँच सकता, इससे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट किसी प्रकार प्रभावित नही हो सकती और न उसके काम मे हम इसके द्वारा कोई अडचन ही पेश कर सकते है। कुछ लोग कहते थे कि प्रचार-स्वातत्र्य और विचार-स्वातत्र्य की वात केवल धोखे की टट्टी ह—हम लडाई का विरोध करना चाहते है, पर हमको खुलकर ऐसा करने की हिम्मत नही होती है, इसलिए यह ढकोसला फैला रखा गया है। बात यह थी कि हमे

ससार को दिखलाना था कि हम ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की लडाई मे उसका साथ नही दे रहे है और यह हम बिना किसी प्रकार के शोर-गुल और हगामा के दिखला देना चाहते थे। यदि सामूहिक सत्याग्रह किया जाता तो बहुत शोर-गुल के बिना काम होना कठिन था, और प्रतिनिधित्व करनेवालो को ही सत्याग्रह की अनुमति देकर हम यह दिखला रहे थे कि वह केवल एक व्यक्ति नही है, उसके पीछे उसे चुननेवाले लोग अर्थात् असख्य नर-नारी भी है और यह सत्याग्रह उन सबकी ओर से हो रहा है, वह व्यक्ति केवल निमित्तमात्र है, सत्याग्रह सब कर रहे है। इन्ही कारणो से प्रदर्शन सख्ती से रोका गया था। साथ ही, प्रतिनिधियो के चुनने मे भी पूरी कडाई बरती गयी थी। ऐसे लोग जिनका जाना अपेक्षित था, पर जो किसी कारण से सत्याग्रह मे शरीक नही हो सकते थे, दर्खास्त देकर छुट्टी ले लेते थे।

बिहार मे, अपने स्वास्थ्य के कारण, मेरे लिए सत्याग्रह मे शरीक होने का अर्थ अपनी बीमारी की देखभाल का भार गवर्नमेण्ट के ऊपर डालना था। इसलिए गाधीजी ने मुझे स्वय रोक लिया। पहले दिन, जब श्री बाबू और अनुग्रह बाबू का, पटने मे दो स्थानो पर, एक के कुछ देर बाद दूसरे का, सत्याग्रह करना निश्चित हुआ था और निश्चय के अनुसार श्री बाबू सत्याग्रह करने के लिए बॉकीपुर के मैदान मे पहुँचे, तो वहाँ बहुत लोग जमा हो गये जिनमे विद्यार्थी अधिक थे। वहॉ पर कुछ शोर-गुल हुआ जो जेल के फाटक तक, जहॉ श्री बाबू को गिरफ्तार करके ले गये, जारी रहा। मैने देखा कि यह आरम्भ गाधीजी की हिदायतो के खिलाफ हुआ और यदि इसे प्रोत्साहन मिला तो पीछे इसे सँभालना मुश्किल हो जायगा तथा अपने ही लोग अनुशासन की धज्जी उडा देगे। यह सोचकर मैने अनुग्रह बाबू के सत्याग्रह को और सारे सूबे के सत्याग्रह को उस समय तक के लिए बन्द कर दिया जब तक लोग सत्याग्रह के मर्म को पूरी तरह समझ न ले और गाधीजी के आज्ञानुसार अक्षरश सब बाते ठीक-ठीक करने को तैयार न हो जायँ। यह बात सारे सूबे मे फैल गयी। लोगो ने समझ लिया कि इस तरह की बाते नही चलने पावेगी। मेरे पास दूसरे ही दिन लोगो ने आकर बतलाया कि अब वैसी गलती नही होने पावेगी और सारे सूबे मे सत्याग्रह स्थगित हो जाने से सारे सूबे की बदनामी होगी। मैने देख लिया कि वातावरण दुरुस्त हो गया, दो दिनो के बाद से ही फिर इजाजत दे दी। इसका फल यह हुआ कि सारे सूबे मे पूरी शान्ति के साथ, जैसा गाधीजी चाहते थे, सत्याग्रह चलता रहा।

प्रधान मन्त्री (श्री बाबू) से आरम्भ करके असम्बली और कौन्सिलो के अधिकाश मेम्बर, जिला-बोर्डो और म्युनिसिपैलिटियों के बहुतेरे सदस्य, कॉग्रेस-कमिटियों के अनेक पदाधिकारी और कुछ सदस्य, कई हजार की सख्या मे, सत्याग्रह करके जेल चले गये। गवर्नमेण्ट की कुछ ऐसी नीति थी कि प्राय सभी लोगो को एक वरस की सजा दी जाती थी। इसमे से प्राय. सभी लोगों को तीन महीने की माफी, जिसको जेल की भाषा मे 'मार्का' कहते है, मिलती गयी। सभी लोग सजा पाने के प्राय नव महीनो के वाद छूटते गये। मै तो बाहर रह गया था और अधिक समय गाधीजी के

साथ ही वर्धा मे बिताना पडा। इसका एक कारण यह भी था कि कॉंग्रेस के प्रेसिडेण्ट के जेल चले जाने के बाद कॉंग्रेस के सगठन का सारा भार एक प्रकार से उन पर ही आ पड़ा—यद्यपि मत्री आचार्य कृपालानीजी भी बाहर रख लिये गये थे। काम मे सहायता पाने के लिए कृपालानीजी के और मेरे वही रहने का आग्रह महात्माजी करते थे। हमने ऐसा ही किया भी।

कॉंग्रेस के लोगों ने मत्री का पद तो छोड ही दिया था। अब, जहॉं-जहॉं पहले कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे वहॉं दफा ९३ के अनुसार गवर्नर शासन कर रहे थे। कुछ दिनो तक उन्होंने रास्ता देखा कि शायद कॉंग्रेसवाले फिर वापस आ जायँ, पर जब इसकी कोई आशा नही दीख पडी तो असम्बली इत्यादि के मेम्बरो को जो वेतन मिलता था उसे उन्होने बन्द कर दिया। यद्यपि असम्बली के स्पीकर लोगो के साथ के चपरासी इत्यादि नही हटाये गये और वे कुछ न कुछ काम भी करते रहे तथापि उनके भी मुशाहरे बन्द कर दिये गये। कॉंग्रेस ने जिला-बोर्डो और म्युनिसिपैलिटियो से कॉंग्रेसी लोगो को हट जाने का आदेश नही दिया था। बहुतेरी जगहो मे कॉंग्रेसी लोग इनके चेयर-मैन और वाइस-चेयरमैन थे। इनका काम सभी कॉंग्रेसी सदस्य मिलकर करते रहे। ऐसा भी देखा गया कि कुछ लोग, सत्याग्रह के कारण अच्छे सदस्यो के हट जाने से नाजायज लाभ उठाकर उनके स्थानो पर जा बैठे। कुछ हम लोगो की ऐसी भूल भी हुई कि जहॉं हमारे चेयरमैन इत्यादि के सत्याग्रह मे चले जाने के कारण जगह खाली हुई वहॉं हमने उन रिक्त स्थानो को ऐसे लोगो से भर देने की इजाजत भी दे दी, जिनसे आशा की जाती थी कि वे हमारे अनुशासन को मानेगे। कही-कही नये चुनाव भी हुए और उन स्थानो पर, अगर साफ-साफ नही तो परोक्ष रीति से, कॉंग्रेसी लोग आ गये। नतीजा यह हुआ कि इन बोर्डो पर जैसा चाहिए वैसा कॉंग्रेस का अनुशासन नही रह सका। बहुत तरह की शिकायते भी सुनने मे आने लगी। कॉंग्रेस के अन्दर जो दलबन्दियॉं थी वे भी अब बाहर फूट पडी। इस प्रकार, कॉंग्रेस की बदनामी होने लगी।

मेरे अपने सूबे मे सब का भार मेरे ऊपर था। मैं अधिकतर वर्धा मे रहने के कारण बहुत-कुछ कर नही सकता था। इसलिए मैंने रोक-थाम के खयाल से एक छोटी कमिटी बना दी। उसी को इन बोर्डो की निगरानी का काम सौप दिया। मुझे खेद है कि बहुत प्रयत्न के बाद भी अवस्था नही सुधरी। मैंने निश्चय किया कि बिहार मे इन सभी बोर्डो से कॉंग्रेसी लोगो को हटा लेने मे ही कल्याण है। पर इस निश्चय पर पहुँचने के कुछ ही दिनो के बाद प्रान्त के प्रमुख लोगो के छूटने का समय था। इसलिए उनके छूटने तक इसको स्थगित रखा कि उनकी भी राय ले लेना उचित होगा। उनके छूटने पर उनसे राय लेकर मैंने यह आज्ञा दे दी कि सभी कॉंग्रेसी लोग जिला-बोर्डो और म्युनिसिपैलिटियो से हट जायँ। उसके बाद ही फिर अस्वस्थता के कारण मैं वर्धा चला गया। वहॉं रिपोर्ट पहुँची कि अधिकाश लोगो ने तो आज्ञा का पालन किया, पर कुछ लोगो ने उसे नही भी माना। ऐसे लोगो की सख्या बहुत ज्यादा नही थी। जिला-कमिटियो तथा प्रान्तीय कमिटी ने ऐसे लोगो के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की।

बहुतेरे लोग काँग्रेस से निकाल दिये गये। यह सब १९४१ के नवम्बर-दिसम्बर की बात है। १९४० के नवम्बर से १९४१ के बीच तक कुछ और बाते हुई जिनका जिक्र कर देना उचित होगा।

१४०—मेरी मैसूर-यात्रा

मैंने ऊपर कहा है, बहुत समय मेरा उन दिनो वर्धा मे ही बीता। जब मै वहाँ था, मैसूर-कॉंग्रेस के श्री दासप्पा वर्धा आये। उन्होने महात्माजी से यह कहा कि वह अपना सालाना जल्सा करना चाहते है जिसमे मुझे जाना चाहिए। मेरे जिम्मे उसके उद्घाटन का काम सौपा गया। महात्माजी ने उनके अनुरोध को मान लिया। मुझे वहाँ जाने की आज्ञा मिली। यह सम्मेलन 'हरिहर' नामक स्थान पर तुंगभद्रा नदी के किनारे हुआ था। दृश्य सुन्दर था। लोगो मे उत्साह भी काफी था। सम्मेलन, प्रदर्शनी इत्यादि के काम के अलावा श्री दासप्पा मुझे मैसूर के कुछ सुन्दर और पुरातत्त्व-सम्बन्धी महत्त्व रखनेवाले स्थानों को दिखला देना चाहते थे। मैं भी यह चाहता ही था। वहाँ जाने के पहले ही श्री दासप्पा से बाते हो चुकी थी। उन्होंने कार्यक्रम भी बना लिया था। बॅगलोर और मैसूर के अलावा मै उन प्राचीन मन्दिरो को भी देखने गया, जो जैन-काल और हिन्दू-काल की स्थापत्य-कला के अच्छे से अच्छे नमूने है। श्रवण गोलबेला और हलेबीड के दृश्य अद्भुत है। वे ससार के उन चकित करनेवाले स्थानों मे है जिनको न देखना मानो मनुष्य की कृतियो के उत्तमोत्तम नमूनों को न देखना है। तीर्थङ्कर महावीर की बहुत विशाल मूर्ति एक पहाड की चोटी पर पहाड काटकर बनायी गयी है जो बहुत दूर से, प्राय १०-१५ मीलो से, नजर आने लगती है। तारीफ यह कि उतनी बडी मूर्ति कुछ अलग से तैयार करके वहाँ चोटी पर बैठायी नही गयी है, बल्कि वह पहाड की ऊँची चोटी को ही काटकर बना दी गयी है और चारों ओर की पहाडी काटकर समतल कर दी गयी है। मूर्ति ऐसी सुन्दर बनी है कि चाहे आप मीलो की दूरी से देखिए या नजदीक जाकर, उसके सभी अग ऐसे अनुपात से बनाये गये मालूम होगे कि कही कुछ भी त्रुटि नजर न आयेगी। प्रत्येक अग, पैर की अँगुलियो से लेकर नाक-कान तक, अपने-अपने स्थान पर ठीक अनुपात मे बना दीख पड़ता है। यह जैनो का एक बहुत बड़ा तीर्थ है जहाँ समस्त भारतवर्ष के जैन दर्शन करने जाते है। मुझे यह बात जानकर प्रसन्नता हुई कि आरा के श्री निर्मलकुमार जैन, परिवार के साथ, वहाँ अक्सर जाया करते है। वहाँ के लोग उनके सम्बन्ध मे मुझसे पूछ-ताछ कर रहे थे। यह जानकर मुझे और भी अचम्भा हुआ कि उसी मूर्ति की नकल पर, कुछ छोटे पैमाने पर, उन्होने आरा के नजदीक कही जैनी विधवाओ के लिए जो आश्रम खोल रखा है उसमे भी एक मूर्ति बनवायी है; फर्क इतना ही है कि जहाँ यह पहाडी मूर्ति प्राय ६०-७० फुट की होगी वहाँ आरा की मूर्ति २०-२२ फुट की। यह दृश्य तो विशाल-मूर्ति-निर्माण-कला का नमूना है।

अब हलेबीड मे कुछ ऐसे नमूने मिले जिनमे बारीकी की हद हो गयी है। वहाँ

के मन्दिरो म पुराणो कथाएँ की मूर्तियो द्वारा अकित और प्रदर्शित की गयी है। ये मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और मधुर है। कुछ पन्द्रह-बीस फुट की ऊँचाई पर एक मूर्ति बनी थी जिसमे कोई फल या फूल दिखलाया गया था और उस पर एक मधुमक्खी बैठी थी। नीचे से देखने मे ऐसा मालूम होता था कि वह सचमुच मधुमक्खी है जिसके पॉव और पख भी है। पर वास्तव मे उसी पत्थर पर, जिसको काटकर फूल या फल बनाया गया था, यह मधुमक्खी भी उसी प्रकार बनायी गयी थी—कोई अलग से बनाकर वहाँ बैठायी नही गयी थी। दक्खिन के मन्दिरो मे पत्थर की बनी जजीरे अक्सर देखने मे आती है। किसी धातु की जजीर बनाना मुश्किल नही है, क्योकि उसकी एक-एक कडी अलग-अलग बनाकर एक दूसरे मे गूँथ दी जाती है और तब जोड या मुँह दबाकर अथवा गर्म करके फॉक बन्द कर दिया जाता है। किन्तु पत्थर की जजीर मे ऐसा नही हो सकता। उसमे कडियाँ अलग-अलग नही बनायी जा सकती। एक ही पत्थर के लम्बे टुकडे को काटकर एक दूसरे मे गुँथी हुई कडियाँ बनानी पडती है। काम काफी मुश्किल है, क्योकि यदि कही एक टॉकी या छेनी भी जोर की लग गयी और कडी टूट गयी तो सारी जजीर बिखरकर खराब हो गयी। दूसरे मदिरो मे मैने जजीर देखी थी, पर उनका आकार बडा था। हलेबीड मे मैने एक मूर्ति कुछ ऊँचाई पर देखी। वह अनेक आभूषणो से सुसज्जित की गयी थी। सब आभूषण पत्थर के थे और उसी एक पत्थर के टुकडे मे से, जिसमे से मूर्ति निकाली गयी थी, काट करके बनाये गये थे। वह मूर्ति एक बहुत छोटी-सी झुलनी या नकबेसर पहने हुई थी, वह भी पत्थर की थी, बहुत ही छोटी और नाक मे एक छोटे छेद से लटक रही थी। जो बाली नाक मे थी वह भी बहुत बारीक थी और नाक के छेद मे वह चारो तरफ घुमायी जा सकती थी। उस नथुनी का व्यास आध इच से ज्यादा न होगा और इसी से नाक के छेद का भी अन्दाजा किया जा सकता है। विशालता और बारीकी, दोनो के सुन्दर से सुन्दर नमूनो का वर्णन पढकर पाठक समझ सकते है कि वहाँ थोडे मे ही कितनी कला और कलाकारो की कितनी कृतियो के नमूने हम देख सकते है। पत्थरो पर इस प्रकार के विशाल और सूक्ष्म काम हम अजन्ता और एलोरा मे देख सकते है। अजन्ता मे चित्रणकला का अद्भुत विकास देखने मे आता है और एलोरा मे पहाड काटकर बनाया गया महान् मन्दिर तथा सुन्दर एव बारीक मूर्ति-निर्माण-कला का चमत्कारपूर्ण नमूना!

तीसरा अद्भुत दृश्य प्राकृतिक था। वह है गिरिसप्पा का जलप्रपात। यह ऐसे स्थान मे है जहाँ ब्रिटिश और मैसूर राज्यो की सरहद मिलती है। प्राय एक हजार फुट की ऊँचाई से जल गिरता है। इसको एक ओर ब्रिटिश राज्य के एक कोने से और दूसरी ओर मैसूर-राज्य के एक कोने से हम देख सकते है। पर मैसूर-राज्य मे से देखने पर दृश्य अधिक सुन्दर और सुहावना मालूम होता है। वहाँ ठहरने और बैठकर दृश्य देखने का भी अच्छा और सुन्दर स्थान राज्य की ओर से बना दिया गया है। मै कुछ देर तक बैठकर इस प्राकृतिक चमत्कार को देखता रहा। उन दिनो वहाँ से बिजली निकालने के लिए

कारखाना बनाने और दूर-दूर तक बिजली पहुँचाने का प्रबन्ध मैसूर-राज्य की ओर से किया जा रहा था। बहुत-से मजदूर वहाँ से कई मील की दूरी तक काम करते मिले। मालूम नहीं कि इस प्राकृतिक चमत्कार पर इस मानुषिक बलात्कार का क्या असर पड़ा है और वह शोभा अब भी है या नहीं।

१४१—बिहार-शरीफ का दंगा और हिन्दुस्तानी जहाजी कम्पनी की स्थापना

मैं चन्द दिनों के लिए पटने आया था और फिर वर्धा वापस गया। जिस दिन पटने से जानेवाला था उसी रात को यह सुना कि बिहार-शरीफ में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कुछ अनबन है, पर ऐसा नहीं मालूम हुआ कि कोई बड़ी बात है जिसका नतीजा भयंकर खून-खराबा हो सकता है। वर्धा पहुँचने के एक दिन बाद ही अखबारों से मालूम हुआ और फिर तार पहुँचा कि बिहार में भयंकर दंगा-फसाद हो गया है। गांधीजी की राय हुई और मैंने भी सोचा कि ऐसी अवस्था में मुझे तुरत बिहार जाना चाहिए। मैं वापसी गाड़ी से रवाना हो गया। पटने पहुँचने पर मालूम हुआ कि शाह महम्मद उजैर मुनीमी और मथुरा बाबू कई दिनों से बिहार-शरीफ में ही हैं और वहाँ की स्थिति बहुत खराब हो गयी है, कई हिन्दू और मुसलमानों का खून हो चुका है तथा बलवा केवल बिहार-शरीफ शहर में ही—जहाँ आरम्भ हुआ था—सीमित न रहकर गाँवों में भी फैलता जा रहा है। मुझे याद था कि १९१८ में इसी प्रकार शाहाबाद के एक गाँव (पीरो) में आरम्भ होकर उस जिले के सिवा आसपास के जिलों के कुछ भागों में भी फसाद फैल गया था। इसलिए मैं और भी चिहुँका। इत्तफाक से उसी दिन प्रोफेसर अबदुल बारी भी, जो बाहर थे, पटने पहुँच गये। हमने मोटर और लारी साथ लिया। उन पर बिहार-विद्यापीठ के अध्यापकों और विद्यार्थियों को तथा कुछ दूसरे कार्य्यकर्त्ताओं को सवार करा लिया। उसी दिन बिहार-शरीफ की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचने पर जब शाह उजैर मुनीमी और मथुरा बाबू से भेंट हुई तो सब हाल मालूम हुआ। बहुतेरे खून हो चुके थे, पर अब स्थिति कुछ सुधरने लग गयी थी। गवर्नमेण्ट ने पुलिस का भी काफी प्रबन्ध कर लिया था। जिला-मजिस्ट्रेट और कमिश्नर तथा पुलिस के बड़े-बड़े अफसर भी पहुँच गये थे। शाह साहब और मथुरा बाबू अपनी जान पर जोखिम लेकर जहाँ-जहाँ हंगामा होता, पहुँच जाते और बलवा-फसाद रोकते। कहीं-कहीं बलवाइयों के उपद्रव के बाद पहुँचते और वहाँ लाशों को स्वयं उठा-उठाकर यथास्थान भिजवाने में सहायता करते।

हम लोग पहुँचते ही चारों ओर के गाँवों में, जहाँ-जहाँ से कुछ खराब खबर आती, फैल गये। लोगों में ढाढ़स पैदा करने और गलत अफवाहों को रोकने तथा शान्ति स्थापित करने में सबके सब लग गये। तीन-चार दिनों में स्थिति काफी सुधर गयी। वहीं पर प्रान्तीय मुस्लिम लीग के सभापति खाँ-बहादुर महम्मद सैयद इसमाइल से बातें हुई। हम दोनों एक दिन के लिए पटने आये। वहाँ एक बड़ी सार्वजनिक सभा में हम दोनों

ने भाषण किये। मै फिर बिहार-शरीफ वापस गया। कुछ दिनो तक वहॉ रह कर, जहॉ-जहाँ लूट-मार और खून-खराबा हुआ था वहॉ जाकर, लोगो से भेंट की और उन्हे शान्त किया। जो दृश्य देखने मे आये, बहुत ही भयानक और दर्दनाक थे। हिन्दू या मुसलमान, जब इस प्रकार के झगडे मे पड जाते है तब, धर्म और मनुष्यता दोनो भूल जाते है। वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते है। इस झगडे मे हिन्दू और मुसलमान दोनो मारे गये थे, पर मुसलमानो की सख्या अधिक थी। यदि यह झगडा रुका न होता तो स्थिति और भी भयकर हो गयी होती। शान्ति-स्थापना के बाद मै फिर वर्धा वापस गया।

वहॉ एक और काम मैने अपने ऊपर ले लिया था अथवा यह कहना बेहतर होगा कि मेरे ऊपर वह काम डाल दिया गया था। सिंधिया-स्टीम-नाविगेशन-कम्पनी हिन्दुस्तानियो की जहाजी कम्पनी है। उसके जहाज विशेषकर हिन्दुस्तान और बरमा के बीच तथा हिन्दुस्तान के समुद्रतट के बन्दरगाहो मे ही अधिक आया-जाया और माल ढोया करते है। वह कम्पनी चाहती थी कि जहाज बनाने का एक कारखाना खोला जाय। उसने विशाखापट्टनम् (विजगापटम) को, जो आन्ध्र-प्रदेश मे है, इसके लिए उपयुक्त स्थान चुन लिया था। उसके डाइरेक्टरो मे प्रमुख है सेठ बालचन्द-हीराचन्द और सेठ शान्तिकुमार नरोत्तम मुरारजी। उनकी यह राय हुई कि मै इसकी नीव डालूँ। मै उस समय कोई भी काम गाधीजी की आज्ञा के बिना नही करता था। इसलिए उन्होने गाधीजी से कहा। मुझे आज्ञा मिली कि मै वहाँ जाऊँ। इस सिलसिले मे मुझे भारतीय जहाजी वाणिज्य के इतिहास के अध्ययन का मौका मिला। यो तो थोडा-बहुत जानता था कि ब्रिटिशो ने किस तरह इस फैले हुए व्यापार को हिन्दुस्तानियो के हाथ से जबरदस्ती छीन लिया था, पर इस बार के अध्ययन से मेरा इस विषय का ज्ञान और भी अधिक बढ गया। इसके अध्ययन मे कम्पनी के लोगो ने पुस्तके आदि भी पहुँचा दी थी, इसलिए स्वाध्याय मे बहुत सुविधा भी हो गयी थी। मैने उस अवसर पर वहाँ जो भाषण किया उसमे सारे इतिहास और वर्तमान स्थिति इत्यादि का सिंहावलोकन किया। कम्पनी की ओर से बडा समारोह किया गया था। उसके सभी डाइरेक्टर वहॉ आये थे। सारे हिन्दुस्तान से बहुतेरे प्रमुख लोग आमन्त्रित किये गये थे। सरकारी नौ-सेना के अफसर भी उपस्थित थे। बहुत धूमधाम के साथ यह महोत्सव समाप्त हुआ। उन लोगो ने सार्वजनिक काम के लिए मुझे कुछ रुपये भी दिये जिनको मैने उनकी इच्छा के अनुसार उन संस्थाओं को दे दिया जो उस काम मे लगी थी। कुछ सामान उन्होने मेरे साथ कर दिया जिसको मैने वापसी ट्रेन मे कुछ दूर चले आने पर देखा।

१४२—ढाका-जिले में दंगे की जाँच और बंगाली-बिहारी-समस्या

वाल्टेयर से, जो विशाखापट्टनम् के पास मे ही है, रवाना होकर श्री मथुरा बाबू के साथ मै सीधे ढाका जाने के लिए कलकत्ते पहुँचा। रास्ते मे कटक मे भी

कुछ देर के लिए ठहरा था। ढाका जाने का कारण यह था कि वहाँ भी भयकर हिन्दू-मुस्लिम दगा हो चुका था। वहाँ दगा ढाका शहर से आरम्भ होकर कई गाँवो तक मे जा पहुँचा था। गाँव के गाँव लूट लिये गये और जला दिये गये थे। ढाका मे तो खून भी काफी हुए थे। जिस दिन मै पहुँचा, वातावरण शान्त था। वहाँ जाने के पूर्व ही कलकत्ते मे उस समय के प्रधान मत्री श्री फजलुल हक और सर नाजिमुद्दीन से मेरी मुलाकात हो गयी थी। श्री फजलुल हक को मै उसी समय से जानता था जब मै कलकत्ता हाइकोर्ट मे वकालत किया करता था। सर नाजिमुद्दीन से, बगाल की जेलो मे अनशन कर रहे राजनीतिक कैदियो के सम्बन्ध मे बातें करने के लिए, भेंट हो चुकी थी।

मै ढाका मे वहाँ के प्रमुख लोगो से मिला। हिन्दुओ पर बहुत जुल्म हुए थे। अत उनमे स्वाभाविक रोष था। मुसलमानो ने वहाँ के नवाब साहब के महल मे मुझसे मुलाकात के लिए एक चाय-पार्टी दी। वही सबसे बातें हुई। पुराने कॉग्रेसी, जो उस समय वहाँ की जिला-कमिटी के सभापति थे, श्री श्रीशचन्द्र चटर्जी के घर पर मै ठहरा था। ढाका से कुछ दूर उन गाँवो को जाकर देखा जो लूट लिये और जला दिये गये थे। दृश्य भयकर था। बगाल के मकान अक्सर पक्के नही होते, फूस या टिन से छाये जाते है। दीवार बाँस आदि की टट्टी की होती है, जो लकडी के खभो के सहारे खडी रहती है। जमीन की नमी या सील से बचने के लिए मकान के भीतर का फर्श कही-कही सिमेण्ट का बना होता है। ऐसे गाँव भी देखने मे आये जहाँ केवल लकडी के जले हुए खभों के टुकडो अथवा निशान तथा सिमेण्ट के फर्श के सिवा और कुछ भी देखने को न मिला। हालत बिहार-शरीफ से भी खराब थी, पर ढाका-जिले का उससे किसी तरह मुकाबला नही हो सकता था। बिहार मे हिन्दुओ की आबादी अधिक है, वहाँ मुसलमान ही अधिक मारे या लूटे गये थे। ढाका मे मुसल्मानो की आबादी अधिक है, वहाँ हिन्दू ही अधिक मारे या लूटे गये थे। पर जिस तरह लूटना और जलाना ढाका मे हुआ था उसका कुछ भी मुकाबला बिहार नही कर सकता था।

दो-तीन दिनो तक उन दिहातो मे घूम-घूमकर देखने के बाद मै फिर ढाका लौटा। दिहातों मे घूमते-घूमते दो गाँवो मे मुझे अपने गाँव जीरादेई के दो आदमियो से मुलाकात हो गयी। ये यहाँ काम की तलाश मे आये थे। बहुतेरे बिहारियो की तरह ये भी यहाँ से कुछ पैदा करके बिहार आया-जाया करते थे। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस तरह आसाम की यात्रा मे सारन-जिले के आदमियो से मुलाकात हो गयी थी उसी तरह बगाल के दिहातो मे भी हमारे प्रदेश के लोग फैले हुए है। गरीब बिहारी मजदूरो मे बहुत हिम्मत और अध्यवसाय है जो वहाँ के पढे-लिखे लोगो मे नही देखा जाता। शिक्षितवर्ग के लोग प्रान्त के बाहर बहुत कम मिलते है, पर अशिक्षित मजदूर एक ओर बम्बई मे मुझे इत्तफाक से मिल गये है तो दूसरी ओर बरमा और बगाल तथा आसाम मे फैले हुए है। अँगरेजी शिक्षा हमारे प्रान्त के लोगो को कायर और निकम्मा बना देती है क्या ?

इस सम्बन्ध मे एक और बात याद आ जाती है। ये गरीब बेचारे सुदूर बरमा, बगाल, आसाम इत्यादि मे जाकर मजदूरी करते है, वहाँ के खेतो को आबाद करते है और फसल तैयार होने पर काटते है, पालकी ढोते है, बैलगाडी हॉकते है, मिट्टी काटने के काम पर तो मानो इन लोगों का एकछत्र राज्य है—गाँवो मे तालाब खोदना, कुँआ बनाना, मकान बनाना इत्यादि जितने आवश्यक काम है सभी करते है—धनी लोगो के घरो मे नौकरी करते है, खिदमतगारी और पहरेदारी दोनो काम बहुत करके इनके ही हाथों मे है। इस तरह बगाल, आसाम इत्यादि से बिहार के गाँवों मे बहुत पैसे आया करते है—विशेषकर सारन-जिले मे। जीरादेई गॉव के पोस्ट-आफिस मे, जब कमासुत लोग बाहर गये रहते है तब, प्राय प्रति सप्ताह ४-५ हजार रुपये मनीआर्डर के जरिये आया करते है। लोगो ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार से बिहार के गाँवों मे बाहर से प्राय ५ करोड सालाना आया करता था। कुछ बगाली भाइयो का कहना था कि बिहार के लोग बगालियो की शिकायत करते है कि वे बिहार मे आकर बहुत धन पैदा किया करते है—जब बिहारी इतने अधिक पैसे बगाल से लाते है। यह बात सच है कि बिहारी इस बात की शिकायत किया करते है—विशेषकर शिक्षित बिहारी, जिनको बगालियो के साथ सरकारी दफ्तरो और वकालतखानों मे मुकाबला करना पडता है। मालूम नही कि इस तरह सरकारी दफ्तरो के क्लर्क, राजे-रजवाडो की नौकरी करनेवाले बाबू, कालेजो और स्कूलो के शिक्षक, वकील, डाक्टर इत्यादि बिहार से कितना ले जाते है, क्योकि इनके रुपये तो गरीबो की तरह छोटे-छोटे मनीआर्डरों द्वारा जाते नही है, और यह कहना कठिन है कि हिसाब लगाने पर बिहार मुनाफे मे पाया जायगा या बगाल। पर एक बात स्पष्ट है। बिहारी लोग बगाल मे जाकर ऐसे आवश्यक काम करते है जिनके बिना वहाँ के लोगो का जीवन-निर्वाह ही कठिन हो जाय और जिनकी जरूरत बगाली भाई महसूस करते है। किन्तु बिहार मे बगाली ऐसे काम करते है जिनके सम्बन्ध मे शिक्षित बिहारी चाहते है और कहते है कि बगाली अगर उन कामो पर न आवे तो बिहारियो का कुछ नुकसान नही होगा और वे खुद ही सभी कामो को सँभाल लेगे। इसके अलावा, जितना सैकडों बिहारी एँडी-चोटी का पसीना एक करके और मलेरिया इत्यादि के शिकार बनकर पैदा करते है उतना एक बगाली हुकूमत की कुर्सी पर बैठकर आराम करते हुए पैदा कर लेता है। जो हो, इस प्रकार का मनमुटाव बहुत दिनो से चला आ रहा है। नौकरी-पेशा लोगों मे बिहारी और बगाली की काफी होड है। गरीबों की बात तो शायद ही किसी के ध्यान मे आती है।

इसी झगडे के कारण, कॉंग्रेस-मिनिस्ट्री के समय मे, बिहार मे बहुत आन्दोलन हुआ। एक ओर बिहारियो की शिकायत थी कि अनेक विभागो के दफ्तरो मे और सरकारी ओहदो पर उसी समय से—जब बगाल और बिहार एक साथ थे—बगालियो ने कब्जा कर लिया है और अलग सूबा कायम होने के प्राय तीस बरसो के बाद भी उनका वैसा ही आधिपत्य है। दूसरी ओर बगालियो का कहना था कि बहुतेरे

बगाली प्राय भाषा तो बँगला बोलते है, पर वे बिहार के निवासी है अथवा बिहार मे बस गये है, इसलिए उन्हे सरकारी नौकरियाँ देने मे किसी प्रकार का बगाली-बिहारी भेद-भाव करना अनुचित है—उनकी शिकायत थी कि इस प्रकार का भेद-भाव किया जाता है। यह शिकायत काँग्रेस तक पहुँची और जिस समय श्री सुभाषचन्द्र बोस काँग्रेस-प्रेसिडेण्ट थे उस समय वर्किंग कमिटी ने जाँच कर रिपोर्ट देने का भार मेरे ऊपर डाला। मैंन सब बातों की जाँच-पडताल करके एक लम्बी रिपोर्ट दी जिसमे इतिहास के अलावा आगे के लिए सुझाव भी पेश किये कि सबके साथ इन्साफ का बर्ताव किस तरह किया जा सकता है। वर्किंग कमिटी ने मेरी रिपोर्ट को न्याययुक्त समझकर मजूर किया और कॉग्रेसी मन्त्रिमण्डल को उसी के अनुसार काम करने का आदेश दिया। मेरा अनुमान है कि मेरी सिफारिशों को दोनो पक्षों ने मजूर किया। यद्यपि किसी एक पक्ष की सभी मॉगे उसमे मजूर नही की गयी थी तथापि लोगो ने यह समझ लिया कि जो मैंने कहा है वह एक प्रकार से ठीक ही है।

अस्तु, जब मै दिहातों से लौटकर ढाका-शहर मे पहुँचा तो मालूम हुआ कि ढाका के दगे के सम्बन्ध मे गवर्नमेण्ट ने जॉच कराने का निश्चय किया है और सरकार की ओर से बगाल के स्टैण्डिग कौन्सल मेरे पुराने दिली दोस्त श्री योगेन्द्रनारायण मजुमदार पैरवी के लिए भेजे गये है। बहुत दिनों से भेट नही हुई थी और इस सुयोग को अच्छा समझकर मै उनसे मिलने गया। वह नदी मे एक छोटे स्टीमर पर ही ठहरे हुए थे। उनसे बाते कर ही रहा था कि खबर आयी, ढाका-शहर मे फिर खून-खराबा शुरू हो गया और एक या दो आदमियो को छुरा घोंप दिया गया। मुझे दूसरे ही दिन चला आना था। रात को भी यह काम जारी रहा। सवेरे मालूम हुआ कि शहर मे काफी हलचल है और कई आदमी छुरो के शिकार हो गये है। ऐसा मालूम होता था कि हिन्दुओ को यदि यह पता लग गया कि मुसलमानो ने किसी मुहल्ले मे एक या दो हिन्दुओं को छुरा भोंक दिया तो दो-चार घटों के भीतर ही कही न कही किसी मुहल्ले मे उतने ही मुसलमानों को छुरे भोंक दिये जाते थे। इसी तरह की होड हिन्दू-मुसलमान कर रहे थे। इस प्रकार की होड के कारण ही छुरा मारनेवाले इस बात का विचार नही करते थे कि जो मारा गया उसने क्या कसूर किया था। मारनेवाले तो सुरक्षित बच जाते थे और चुपचाप अपनी राह जानेवाले निरीह बेकसूर—हिन्दू हो या मुसलमान—बिना कारण मारे जाते। दोपहर को हमारे रवाना होने तक ८–१० खून हो चुके थे। जाँच का काम इस परिस्थिति मे होना असम्भव था। इसलिए वह स्थगित कर दिया गया और जिस जहाज से मै लौटा उसी जहाज से योगेन्द्र बाबू भी कलकत्ते आये।

कलकत्ते से मै सीधे पटना वापस आया। मै पटने मे १९४१ के जून के अन्तिम दिनो मे पहुँचा। रास्ते मे ही जो खॉसी-दमा शुरू हुआ था वह बहुत बढ गया। ज्वर भी हो आया। मै पटने मे ही रुक गया। बरसात भी शुरू हो गयी जो मेरे स्वास्थ्य के लिए बहुत खराब होती है। प्राय दो महीनों तक मै वही पडा रहा।

अन्त मे, जैसा ऊपर कह चुका हूँ, व्यक्तिगत सत्याग्रह मे कैद हुए लोग छूटने लगे। विशेषकर श्री बाबू, अनुग्रह बाबू इत्यादि प्रमुख लोग छूट गये। उनसे भेंट करके और जिला-बोर्डों तथा म्युनिसिपैलिटियों से कांग्रेसी मेम्बरो को निकल आने का आदेश देकर मै स्वास्थ्य-सुधार के लिए वर्धा चला गया।

१४३—युद्ध की विषम स्थिति से क्रिप्स-योजना का शुभागमन

जब मै ढाका मे था तभी जर्मनी ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। बहुत जोरो से रूस मे जर्मन सेना प्रवेश करके आगे बढने लगी। थोडे ही दिनो मे रूस के बहुत बडे हिस्से पर जर्मनो ने कब्जा कर लिया। यह लडाई बहुत बडे पैमाने पर हो रही थी। रूस के उत्तरी छोर से लेकर दक्खिनी छोर तक जर्मन और रूसी सेनाओ का भिडन्त हो रहा था। जर्मनी ने पश्चिम मे स्पेन और पुर्तगाल, उत्तर मे स्वीडन और दक्खिन मे इटली को छोडकर योरप के प्राय सभी देशो पर कब्जा कर लिया था। स्पेन मे फ्राको का आधिपत्य था, जिसको डिक्टेटर बनाने मे जर्मनी ने बहुत मदद दी थी, इसलिए वह जर्मनी का बहुत कृतज्ञ था। स्वीडन बहुत कुछ दब गया था। इटली भी जर्मनी के साथ लडाई मे शरीक हो गया था। उक्त विजित देशो मे कुछ लोग लुक-छुपकर छापे मारने की गोरिल्ला-लडाई जहाँ-तहाँ जर्मनों के साथ कर रहे थे, पर अधिकतर स्थानों मे जर्मन शासन चल रहा था अथवा जर्मनी ने ऐसे लोगों के हाथो मे अधिकार दे रखा था जो उसकी ओर से शासन कर रहे थे।

अमेरिका की सहानुभूति इँगलैंड के साथ थी। जहाज, हथियार इत्यादि द्वारा वह अँगरेजों को मदद भी पहुँचा रहा था, पर खुले खजाने अभी लडाई मे नही उतरा था। उधर जापान भी चीन के बहुत बडे हिस्से को अपने पजे मे कस चुका था और दिन-दिन आगे बढता जा रहा था। अमेरिका तो चीन की मदद करना चाहता था, पर उसको मदद पहुँचाने का एक ही रास्ता था जो खतरे से खाली न था। वह रास्ता था बरमा होकर। अँगरेज जापान को नाखुश नही करना चाहते थे, इसलिए उन्होने बरमा का रास्ता बन्द कर दिया। चीन एक प्रकार से लाचार होता जा रहा था। जापान इस ताक मे था कि मौका पाकर अमेरिका से बदला लें। यह मौका १९४१ के जाडो के आरम्भ मे उसने ढूँढ निकाला और अमेरिका के पर्ल-हार्बर पर धावा बोलकर अमेरिका की जलसेना को भारी क्षति पहुँचायी। उसने इँगलैंड और हालैंड से भी लडाई ठान दी तथा जर्मनी और इटली के साथ दोस्ती गाँठ ली। १९४१ के नवम्बर से आरम्भ करके थोडे ही दिनो मे उसने दक्खिन-पूरब एशिया के बहुत बडे हिस्से पर सिक्का जमा लिया। डच-उपनिवेश—जैसे जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और दूसरे टापू—उसकी धाक मे आ गये। अँगरेजो से सिंहपुर (सिंगापुर) उसने जल्द ही जीत लिया। मलाया पर दखल जमाते हुए वह बरमा की ओर आगे बढा। शीघ्र ही मोलमीन, रगून, माडले प्रभृति बरमी शहरो को हथियाकर प्राय सारे बरमा को हडप लिया। लडाई छेडने के एक-दो दिनो के अन्दर ही उसने ब्रिटिश जल-सेना

को सिंगापुर के नजदीक कही एक लडाई मे गहरी शिकस्त दी। 'प्रिन्स आफ वेल्स' नामक बहुत बडे जहाज पर अँगरेजी एडमिरल फिलिप बहुत गर्व करके यह घोपणा करते हुए निकला था कि वह जापानी जल-सेना की तलाश में जा रहा है। उसे जापान ने डुबा दिया।

उत्तर-अफ्रिका मे इटालियन लोगो के कुछ उपनिवेश है ही। वहाँ भी अँगरेजों से लडाई ठन गयी और जर्मन पहुँच गये। उन्होने चन्द महीनों के भीतर ही उत्तर-अफ्रिका को, प्राय इजिप्ट (मिस्र) की सीमा तक, अपने चगुल मे कर लिया। ऐसा मालूम होता था कि कोई भी देश अब जर्मनी और जापान की सेनाओ की बाढ को रोक न सकेगा। जाडों के कारण रूस में जर्मन सेना को कुछ रुक जाना पडा, पर वह पीछे न हटी, जहाँ तक पहुँच गयी थी वही डटी रही। १९४२ के आरभिक महीनों मे ऐसी परिस्थिति मालूम होती थी कि लडाई मे अमेरिका के आ जाने से ब्रिटेन की जान तो लौट आयी, पर अभी जापानी और जर्मन सेना का मुकाबला कोई नही कर सकता था। अमेरिका बहुत बडे पैमाने पर युद्ध-सामग्री, जल-सेना और स्थलसेना तैयार करने लगा। वह उन सभी देशों को अस्त्र-शस्त्रों की मदद पहुँचाने लगा जो मित्रों की ओर से लडना चाहते थे। उसकी पूरी शक्ति के सगठित रूप से लडाई मे पूरी मदद पहुँचाने मे समय अपेक्षित था और १९४२ के आरभिक महीनो तक वह समय नही पहुँचा था।

जर्मनी के खिलाफ यह शिकायत की जाती थी कि जो देश उसका साथ देने को तैयार नही होते उन पर धावा बोलकर वह कब्जा कर लेता। पर इस दोष से अँगरेज और मित्र-देश भी बरी नही थे। उनको डर था कि जर्मन और जापानी सेनाओ का सगम हिन्दुस्थान मे किसी समय हो सकता है। उसी को रोकने के लिए अँगरेज एक ओर बरमा की सीमा पर लडना चाहते थे और दूसरी ओर इजिप्ट के पास दूसरा मोरचा बनाना चाहते थे। एक और भी मोरचा अरब और ईरान मे बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होने अरब और ईरान पर कब्जा कर लिया। ईरान के बादशाह रजाशाह पहलवी को, जिसने १९१४–१८ के युद्धोत्तर-काल मे ईरान को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न किया था और जो वहाँ के लोगो की उन्नति करने मे बहुत-कुछ सफल भी हुआ था, तख्त से उतारकर निर्वासित कर दिया। फिर क्या, रूसी और अँगरेजी तथा अमेरिकन सेनाओ का एक बहुत बडा अड्डा उस देश मे बन गया। विपत्ति-काल मे दुश्मन भी दोस्त बन जाते है! मि० चर्चिल ने रूस के साथ, जिसका विरोध उन्होने अपने सारे जीवन मे किया था और जिसको न मालूम कितनी गालियाँ दी थी, दोस्ती कर ली। ऐसा मालूम हुआ कि सारी पिछली बातें दोनो भूल गये!

ऐसी स्थिति मे इँगलैंड ने यह सोचा कि हिन्दुस्तान के साथ कुछ तय कर लेना चाहिए। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, जो इँगलैंड के राजदूत बनाकर उस समय रूस मे भेजे गये थे जब रूस और जर्मनी के बीच मित्रता थी तथा जिन्होने रूस को बहुत-

कुछ जर्मनी के विरुद्ध उभाडने मे मदद की थी, लडाई ठन जाने पर इँगलैंड वापस आ गये। तब वहाँ की युद्ध-परिषद् के वह प्रमुख सदस्य बन गये। अपने प्रगतिशील विचारो के कारण वह लेबर-पार्टी (मजदूर-दल) से भी अलग कर दिये गये थे। पर इस कठिन समय मे, अपनी योग्यता के कारण, और विशेषकर रूस मे जो कीति कमा चुके थे उसके कारण, वह बहुत ही लोकप्रिय हो गये। उन्होने ब्रिटिश कैबिनेट को इस बात के लिए तैयार किया कि भारत के साथ कुछ समझौता कर लेना चाहिए। कैबिनेट ने, जिसमे लेबर-दल और लिबरल-दल के लोग भी शरीक थे एक योजना तैयार की। उसे लेकर सर क्रिप्स हिन्दुस्तान आये। यह योजना पहले प्रकट नही की गयी। बहुत ही धूमधाम के साथ यह कहते हुए कि भारतवर्ष के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योजना है—इसे भारतवर्ष द्वारा मजूर करा लेने का बीडा उठाकर वह १९४२ के मार्च मे हिन्दुस्तान पहुँचे। पहुँचते ही काँग्रेस-प्रेसिडेण्ट मौलाना आजाद और गाधीजी तथा दूसरे नेताओ से मुलाकात शुरू कर दी। कुछ दिनो के बाद योजना प्रकाशित भी कर दी गयी। वर्किंग कमिटी की बैठक दिल्ली मे हुई। हम सभी वहाँ प्राय दो-तीन सप्ताह इस पर विचार करते रहे। आरम्भ मे कुछ समय तक गाधीजी भी दिल्ली मे रहे। पर कस्तूरबा गाधी की अस्वस्थता के कारण वह सेवाग्राम चले गये। काँग्रेस की ओर से बातचीत मौलाना आजाद और पडित जवाहरलाल नेहरू करते रहे। वर्किंग कमिटी के सभी सदस्य देहली मे ठहरे थे। जो बाते होती उन पर विचार करने के लिए बराबर वर्किंग कमिटी की बैठके होती रही।

क्रिप्स-योजना दो मुख्य भागो मे विभक्त की जा सकती है। उसके पहले भाग मे हिन्दुस्तान का भावी विधान बनाने का तरीका बतलाया गया है। दूसरे मे यह बतलाया गया है कि तत्काल भारत-सरकार का काम चलाने के लिए वाइसराय की वर्तमान कौन्सिल मे क्या परिवर्तन होगा। इसमे भविष्य के सम्बन्ध मे यह साफ-साफ कह दिया गया था कि लडाई के बाद हिन्दुस्तान को वही स्थान मिलेगा जो दूसरे उपनिवेशो को है और यदि वह चाहे तो साम्राज्य से अलग हो जाने का भी उसे अधिकार होगा—विधान बनाने के लिए परिषद् बनेगी जिसे प्रान्तीय धारा-सभाएँ चुनेगी—प्रत्येक प्रान्त को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो भारतीय सघ (युनियन) से अपने को अलग कर ले, और यदि किसी प्रान्त ने ऐसा किया तो ब्रिटिश सरकार का उसके साथ वही सम्बन्ध रहेगा जो बाकी भारत अथवा भारतीय युनियन के साथ होगा। इस प्रकार इस योजना ने मुस्लिम लीग की माँग मान ली और पाकिस्तान की स्थापना को सूबो पर छोड रखा। तत्काल के सम्बन्ध मे इस योजना मे यह नही कहा गया था कि वाइसराय की कौन्सिल को क्या अधिकार दिया जायगा। उसमे केवल इतना ही था कि उसे सेना-सम्बन्धी और युद्ध-सम्बन्धी कोई अधिकार नही होगा जिसका अर्थ लोगो ने आम तौर से यही लगाया कि अन्य विभागो और महकमो मे कौन्सिल को अधिकार मिलेगा। पूछने पर क्रिप्स महोदय ने कुछ ऐसा ही कह भी दिया।

गाधीजी को इस योजना से सन्तोष नही हुआ। उन्होंने मुलाकात मे सर क्रिप्स से ऐसा ही कह भी दिया। वर्किंग कमिटी के विचार मे भी यह योजना मान्य नही जँची, पर उसने उस पर बहुत समय देकर विचार किया। भविष्य के सम्बन्ध मे यद्यपि एक प्रकार से पाकिस्तान की बात को योजना मान लेती थी और उसे वर्किंग कमिटी मानना नही चाहती थी तथापि वर्किंग कमिटी यह समझती थी और उसने अपने निश्चय मे कहा भी कि यह बात यदि साबित हो जाय कि किसी सूबे के लोग अलग होना चाहते है तो उसे वह जबरदस्ती अपने साथ रखना भी आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के विरुद्ध समझती है। उसका विशेष ध्यान तो तात्कालिक काम के लिए प्रस्तावित कौन्सिल पर था, क्योकि वह मानती थी कि लडाई के जमाने मे सारा बोझ उस पर पडेगा और उसमे यदि कुछ अधिकार भारतीयो को नही मिलता है तो इस बोझ को भारत के हित की दृष्टि से भारतीय लोगो के लिए उठाना केवल अनुचित ही नही, बल्कि असम्भव अथवा कम से कम कठिन तो अवश्य होगा। इस-लिए उसने उस बात को पूरी तरह साफ कर लेना चाहा कि सेना और युद्ध से सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी अधिकार कौन्सिल को होगा या नही अथवा सब कुछ वाइसराय और जगी लाट के हाथो मे ही रहेगा। बातचीत के बाद उन्होने कुछ थोडा-सा नाम-निहादी अधिकार कौन्सिल के हिन्दुस्तानी मेम्बर के हाथ मे देना भी स्वीकार किया, पर जब पूछा गया कि वह अधिकार कौन-सा और कितना होगा, तो मालूम हुआ कि वह बिलकुल नाम-मात्र होगा जिसमे कुछ भी अधिकार वस्तुत हस्तान्तरित नही होगा।

कमिटी को जब यह बात साफ-साफ मालूम हो गयी तो उसने यह निश्चय किया कि वह योजना को मजूर नही करेगी। पर अभी तक उसकी यही धारणा थी कि फौज और लडाई छोडकर दूसरे विषयों मे कौन्सिल को पूरा अधिकार होगा तथा वाइसराय उसकी राय के मुताबिक ही काम किया करेगा। साथ ही, यह भी जाहिर था कि लडाई के दिनों मे दूसरे विभागो मे कुछ विशेष काम तो होगा नही, और लडाई ऐसी चीज है जिसके चलाने मे गवर्नमेण्ट की सारी शक्ति लगानी पडेगी, दूसरे विभागो को भी उसी काम मे लग जाना पडेगा, इस तरह वह भी एक प्रकार से सेना और लडाई के विभाग के ही अधीन हो जायँगे, इसलिए उनमे अधिकार मिलने का भी कोई महत्त्व नही रह जायगा। कमिटी के यह निश्चय कर लेने के पहले ही जब यह सब बाते कही गयी थी तो सर क्रिप्स ने कहा था कि कमिटी अपने निश्चय को स्थगित रखे और वह कैबिनेट के पास इस सम्बन्ध मे लिखा-पढी करेगें। इसी लिखा-पढी का यह नतीजा था कि सेना-सम्बन्धी नाम-निहादी अधिकार देने की बात हुई थी। जब इस पर भी विचार करने के बाद कमिटी इसी नतीजे पर पहुँची कि कुछ भी वास्तविक अधिकार नही मिलता तो उसके सामने योजना को नामजूर करने के सिवा दूसरा रास्ता नही रह गया। उसने यह निश्चय कर भी लिया। ठीक इसी अवसर पर प्रेसिडेण्ट रूसवेल्ट के विशेष दूत कर्नल जौन्सन दिल्ली पहुँचे। पडित

जवाहरलाल नेहरू से उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने कहा कि कुछ समय दीजिए, मैं भी कोशिश करके देखूँ कि कुछ हो सकता है या नही। उनकी कोशिश का नतीजा यह हुआ कि जो बात सर क्रिप्स ने सेना के सम्बन्ध मे लिखा-पढी के बाद कही थी, उसके रूप मे परिवर्तन हुआ। कैबिनेट का प्रस्ताव था कि सेना-सम्बन्धी कुछ बातों को छोडकर और सभी बाते जगी लाट के अधीन होगी। अब यह प्रस्ताव आया कि निम्नलिखित बाते जगी लाट के अधीन होगी और बाकी सब बाते मेम्बर के अधीन।

देखने मे बात अच्छी लगी, पर प्रश्न यह था कि निम्नलिखित बातो मे कौन कौन-सी बाते होंगी। पूछने पर कुछ विभागो के नाम बता दिये गये। कर्नल जौन्सन भी इस बात को नही जानते थे कि विभागो के नाम जो दिये गये थे उनके बाहर कौन बाते रह गयी थी जो मेम्बर के अधिकार मे आवेगी। अन्त मे, बहुत पूछ-ताछ के बाद, मालूम हुआ कि केवल वही बाते होगी जो कैबिनेट के प्रस्ताव मे पहले कही गयी थी, उनसे कुछ भी ज्यादा नही। इससे स्पष्ट हो गया कि यह शब्दाडम्बर मात्र था, कोई वास्तविक अन्तर नही था। यह हम लोगो को बुरा मालूम हुआ। इस पर भी हम सोचने लगे कि सेना-विषयक और युद्ध-सम्बन्धी अधिकार यदि नही मिलते है तो न सही, पर यदि दूसरे विभागों पर अधिकार मिलते है तो उस पर ही सन्तोष किया जा सकता है। परन्तु यह जान लेना चाहिए कि वह भी कहाँ तक वास्तविक रूप मे मिलता है। पूछने पर सर क्रिप्स ने कहा कि इस सम्बन्ध मे वाइसराय से ही बात करनी होगी, क्योकि यह बात उनकी कौन्सिल से सम्बन्ध रखती है और जब कानून नही बदलता है तो प्रचलित विधान के अनुसार उनके जो अधिकार है उनके सम्बन्ध मे वही कुछ कह सकते है। जब यह कहा गया कि कैबिनेट उनको आदेश दे कि वह अपने अधिकारो को काम मे न लावे और उन विषयो मे कौन्सिल की राय के अनुसार ही काम किया करे, तो उत्तर मिला कि कैबिनेट इस प्रकार का आदेश नही दे सकता है। हम लोगो को यह पूरा-पूरा मालूम था कि कौन्सिल के मेम्बरो की कोई हैसियत वाइसराय नही मानते थे। वह मानते और कहा भी करते थे कि मेम्बरों को कोई अधिकार नही है, अन्त मे सारा अधिकार वाइसराय को ही है और उसे वह छोडना नही चाहते है।

जब यह जाहिर हो गया कि उन विभागो मे भी अधिकार नही मिलता और जो बाते सर क्रिप्स ने पहले कही थी कि कैबिनेट की तरह कौन्सिल भी अधिकार रखेगी और काम करेगी, वह केवल वागाडम्बर था, उसमे कुछ भी तथ्य नही था, तो वर्किंग कमिटी उसे नामजूर करने के सिवा दूसरा कुछ कर नही सकी, वैसा ही प्रस्ताव पास करके भेज दिया गया। सर क्रिप्स ने भी उसी दिन घोषणा कर दी कि वह वापस जा रहे है और जो बात कैबिनेट की ओर से हिन्दुस्तान के सामने पेश की गयी थी वह वापस ली जाती है। मुस्लिम लीग कॉंग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी और जैसे ही हमारा फैसला हो गया उसने भी योजना को नामजूर किया;

पर कारण यह बतलाया कि उसमे पाकिस्तान नही दिया गया है, केवल उसकी सम्भावना है और वह इतने ही मात्र से सन्तुष्ट नही है।

इस तरह, कॉंग्रेस और लीग, दोनो ही ने योजना को नामजूर किया। कॉंग्रेस वर्किंग कमिटी मानती थी कि पाकिस्तान की सम्भावना बताना भी ठीक नही था—यदि कोई प्रान्त सचमुच अलग होने की इच्छा रखता है और इसका पूरा सबूत मिल जाय तो उसे जबरदस्ती साथ रखना आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा, तो भी उसने योजना को इस कारण से नामजूर नही किया था। उसकी नामजूरी का कारण यह था कि तत्काल कुछ अधिकार नही मिल रहे थे, यद्यपि कौन्सिल पर लडाई मे मदद करने का भार पूरा-पूरा आ जाता था, जिसका अर्थ इतना मात्र था कि चन्दा और 'कर' उगाहने तथा रँगरूट भर्ती करने और कराने के अलावा उसको कोई दूसरा अधिकार नही मिलता। लीग की नामजूरी का कारण तत्काल मिलनेवाले अधिकार से सम्बन्ध नही रखता था। वह कारण तो केवल लीगी मुसलमानो की राय के अनुसार तुरन्त पाकिस्तान कायम न करना मात्र था।

वर्किंग कमिटी के अन्दर श्री राजगोपालाचारी का विचार था कि क्रिप्स-योजना को मान लेना चाहिए। उन्होने ही इस बात पर जोर दिया था कि उसके द्वारा वाइसराय की कौन्सिल के सदस्यो को फौज और लडाई छोडकर अन्य सब विभागों पर पूरा अधिकार मिल जाता है। पर जब अन्त मे यह साफ हो गया कि उस विषय मे भी कुछ अन्तर होनेवाला नही है और वाइसराय अपनी मनमानी करने के अधिकार मे किसी प्रकार की कमी आने देना नही चाहते है, तो उनका मुँह भी बन्द हो गया। वर्किंग कमिटी के इस निश्चय के सम्बन्ध मे कॉंग्रेस के अन्दर भी कुछ लोगो को बहुत गलतफहमी रही, जैसा पीछे जाकर मालूम हुआ। पर हमारे दिल मे कभी कोई सन्देह नही रहा। सर क्रिप्स ने भी कुछ ऐसी बाते कही जो निराधार थी। उन्होने अपने एक बयान मे यह कह दिया कि इसकी नामजूरी हिन्दू-मुस्लिम झगडो के कारण हुई, कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग एक राय न हो सकी तो दोनो ने इसे नामजूर कर दिया। उनके बयान का आशय था, कि इस नामजूरी का दोष कॉंग्रेस पर ही है। बात यह थी कि वर्किंग कमिटी के सामने इस विषय मे हिन्दू-मुस्लिम झगडे या मतभेद की बात उस रूप मे आयी ही नही जिस रूप मे लोगो ने बताया। पाकिस्तान-सम्बन्धी घोषणा के सम्बन्ध मे वर्किंग कमिटी का योजना से मतभेद जरूर था, पर उसने उस कारण से उसे नामजूर नही किया था। उसकी नामजूरी का कारण, जैसा पहले भी सक्षेप मे कहा गया है, बस एक ही था और वह यह कि इसके द्वारा हिन्दुस्तानी कौन्सिलरों के हाथो मे कोई अधिकार नही मिलता था, इसलिए इस युद्ध-काल मे यह जवाबदेही लेकर वे देश का हित नही कर सकेगे और लडाई की मदद करने की जिम्मेदारी उनके सिर पर आ जायगी। यह भी गलत है कि उसमे हिन्दू और मुसलमानों की सख्या कितनी होगी—इस बात पर मतभेद हुआ, जैसा कुछ विरोधियों के बयान से मालूम होता था। पर कौन्सिल मे कितने मेम्बर होगे, उनमे कितने हिन्दू और कितने मुसलमान

होगें, कितने कॉग्रेसी और कितने लीगी रहेगे—यह सवाल एक बार भी हमारे सामने नही आया। इसका मौका भी नही था, क्योकि यह सवाल तो तब उठता जब हम निश्चय कर लेते कि कौन्सिल मे हमे जाना चाहिए। हमने जब वहाँ जाने से ही इनकार कर दिया तब हमारी सख्या उसमे कितनी होगी, यह प्रश्न कैसे उठ सकता था और कभी उठा भी नही था। पर हमारे विरुद्ध इस प्रकार का प्रचार बहुत किया गया।

१४४—क्रिप्स-योजना की नामंजूरी के बाद

क्रिप्स-योजना की नामजूरी वर्किंग कमिटी ने की थी। अब उस पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी का जलसा होना आवश्यक हो गया। वह इलाहाबाद मे थोडे ही दिनो के बाद हुआ। यह बात अब स्पष्ट दीखने लगी कि मामला नामजूरी तक ही नही रहेगा, कॉग्रेस को अपनी नीति बताने के लिए कुछ और भी करना पडेगा। जापान तेजी से आगे बढता आ रहा था। अँगरेजी फौज उसका मुकाबला नही कर सकती थी। हिन्दुस्तान मे उस मुकाबले के लिए पूरी तैयारी भी नही थी। खूब तेजी के साथ अँगरेजी और अमेरिकन फौजे यहाँ लायी जा रही थी। अस्त्र-शस्त्र भी लाये जा रहे थे। पर अभी ऐसा नही मालूम होता था कि मुकाबला कामयाब हो सकेगा। देश के सामने प्रश्न यह था कि जापान यदि आ गया तो क्या हिन्दुस्तान उसके सामने सिर नवाकर उसका स्वागत करेगा अथवा उसका मुकाबला करेगा। अँगरेजी गवर्नमेण्ट, जिसने हिन्दुस्तान की रक्षा का भार अपने ऊपर ले रखा था, असमर्थ मालूम पडती थी। पर इस असमर्थता के बावजूद वह हमारे साथ कुछ समझौता करके हमको इसका मौका नही देना चाहती थी कि हम भी अपने देश की रक्षा मे हाथ बँटा सके। गाधीजी की, अहिंसात्मक रूप से मुकाबला करने की, नीति को वर्किंग कमिटी ने एक तरह मे छोड दिया था। वह शस्त्र के साथ, अँगरेजी फौज के कधे से कधा मिलाकर जापान का मुकाबला करने की अपनी तैयारी घोषित कर चुकी थी और करना भी चाहती थी। पर वह ऐसा तभी कर सकती थी जब वह भी ब्रिटिशो की बराबरी में अधिकार-पूर्वक काम करे। ब्रिटिश यह पसन्द नही करते थे। वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान जो कुछ मदद दे सकता है दे, पर उसे वे अपनी गुलामी से बरी करना नही चाहते थे। मिस्टर चर्चिल ने ऐसा बार-बार कहा भी था कि ब्रिटेन किसी नये देश को अपने कब्जे मे करने की लालच नही करता, पर साथ ही साथ जो उसका है उसे छोडना भी नही चाहता। यह स्पष्ट था कि भारत तो उसका था ही और उसे इस विपत्ति-काल मे भी वह छोडना नही चाहता था। कठिन घडी मे उन्होंने फ्रान्स से कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य और फ्रेञ्च साम्राज्य दोनो मिला दिये जायँ—वही ब्रिटिश साम्राज्य जिसको कितनी लडाइयो और कितनी खूँरेजियो के बाद ब्रिटेन ने फ्रान्स से जीता था! पर भारतीयो का अपने मुकाबले में बैठना ब्रिटेन नही सह सकता था—उनको अपने देश मे अधिकार-पूर्वक जापानियो के साथ मुकाबला करने का मौका देने के लिए वह तैयार नही था!

ऐसी अवस्था मे हमारे सामने प्रश्न यह था कि हम अपनी रक्षा किस प्रकार करे। लोगो मे उत्साह यदि न रहा तो जापानी आसानी से कब्जा कर लेगे। हो सकता है कि कुछ लोग ऐसे हों जो यह समझते हो कि इँगलैंड अगर किसी तरह हटा और जापानी आकर बैठ भी जायँ, तो विशेष चिन्ता की वात न होगी, उनके साथ हम पीछे निपट लेगे। हो सकता है कि कुछ लोग जापान से मदद लेकर अँगरेजो को हटाने मे कोई हानि न देखते हो। पर वर्किंग कमिटी के अन्दर अथवा प्रमुख कॉंग्रेसी लोगो मे कोई भी ऐसा न था जो जापान को मदद देकर अथवा तटस्थ रहकर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को इस देश से वाहर करना चाहता हो। इसका कारण यह नही था कि वे ब्रिटिश को जापान से वेहतर समझते थे। हम जापान को ब्रिटेन से कदापि वेहतर नही समझते थे। उसका जो वर्त्ताव चीन के साथ हुआ था, वह जिस तरह चीन को दवाकर उसके वहुत वडे भूभाग को अपनी मुट्ठी मे किये हुए था, उसका एक ही अर्थ हो सकता था और वह यह था कि वह भी ब्रिटेन की तरह अपना साम्राज्य विस्तृत और स्थिर करना चाहता था। एक साम्राज्य से निकलकर दूसरे साम्राज्य के कब्जे मे जाने मे कोई वुद्धिमानी नही थी। वह तो चढी कडाही से उछलकर आग मे कूद पडने के समान ही था। इसलिए हमारा निश्चय था कि हमको जापान का मुकावला करना ही होगा। अपने सिद्धान्त छोडने पर भी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट कॉंग्रेस को सशस्त्र और साधिकार मुकावले का मौका देना नही चाहती थी। हमारे लिए अपने तरीके से मुकावला करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नही था। उस मुकावले की तैयारी का, जनता मे शत्रु के मुकावले के लिए उत्साह वढाने के सिवा, दूसरा कोई तरीका न था। क्या वह देश नवागन्तुक जापानियो के मुकावले के लिए तैयार किया जा सकता था जो स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य का मुकावला करने मे असमर्थ था अथवा मुकावला नही करना चाहता था? हम समझते थे कि ऐसी स्थिति मे, मुकावले के लिए भारतीयों के हृदय मे स्वतन्त्रता की आग धधकाने के अतिरिक्त, दूसरा कोई उपाय नही हो सकता।

किन्तु इसका नतीजा ब्रिटिश और जापान दोनो के विरुद्ध पडता था। फिर भी इसका दोष हमारे सिर पर नही था, वह था ब्रिटिश के सिर पर। उन्होने हमे स्वतत्रता देने से—वह सीमित स्वतत्रता भी जिस पर हम तत्काल के लिए राजी थे—इनकार कर दिया। ब्रिटिश मे और जापानी मे हमारी नजरो के अन्दर क्या अन्तर रह जाता था? एक ने हमारी स्वतत्रता छीन रखी थी, और इस विपत्ति-काल मे जापान से मुकावला करने के लिए भी उसे हमे देने पर राजी नही था, दूसरा हमारी स्वतत्रता छीनकर अपना साम्राज्य कायम करना चाहता था! हमारी ऑखो मे दोनो एक-से ही थे। कहने के लिए तो अँगरेज कहते थे, लडाई मे हमारी मदद करो, लडाई के वाद औपनिवेशिक स्वतत्रता तुमको मिलेगी, और जापानी भी कहते थे, हमारी मदद करो, हम तुमको स्वतत्र वना देगे! किसकी वात हम मानते? इसलिए हमने निश्चय किया कि दोनों मे किसी की वात पर हम विश्वास नही कर सकते, हमको अपनी

स्वतत्रता लेने के लिए खुद तैयार हो जाना चाहिए—चाहे अँगरेज इसे बुरा क्यो न माने।

गाधीजी ने इन विचारो से प्रभावित होकर जोरदार लेख लिखना आरम्भ कर दिया। इलाहाबाद मे होनेवाली आल-इण्डिया-कॉग्रेस-कमिटी के लिए एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार करके उन्होने श्री मीरा बहन के हाथ वहाँ भेजा। वर्किंग कमिटी मे इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि वहाँ दो मन है—एक तो गाधीजी के मसविदा के पक्ष मे और दूसरा वह जो उतनी दूर नही जाना चाहता था उसे मजूर नही करता था। उसमे सशोधन करने का बहुत प्रयास किया गया, पर वह सफल न हुआ। अन्त मे, ऐक्य कायम रखने के लिए, हमने अपना विरोध हटा लिया और जो कुछ भी औरो ने मुनासिब समझा उसे ही मजूर कर लिया। यह बात वर्किंग कमिटी मे हुई। देश का रुख अधिक गाधीजी के साथ था। यदि वही मसविदा आल-इण्डिया-कमिटी मे पेश कर दिया गया होता तो शायद वह मजूर तो हो जाता, पर आपस का मतभेद भी खूब प्रदर्शित कर देता। अगर अपनी ओर से कुछ करना ही था तो वह इस तरह आपस की फूट को घोषित करके नही किया जा सकता था। इसलिए इस मतभेद को दबा देना ही उचित जान पडा और गाधीजी का प्रस्ताव किसी रूप मे पेश न हुआ। हाँ, जो प्रस्ताव हुआ उसमे भी गाधीजी के भावो का काफी समावेश था। जब गाधीजी ने उसे देखा तो उन्होने कहा कि यद्यपि वह उसे पूरा पसन्द नही करते थे तो भी उसमे उनके लिए काम करने का काफी मौका था, इसलिए वह उसे एक प्रकार से मजूर करते है।

१४५—युद्धयुग में देश की स्थिति और बिहार का दौरा

मै प्रयाग से सीधे वर्धा चला गया। मुझे ऐसा मालूम होता था कि अब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ मुठभेड हुए बिना न रहेगा। गाधीजी जबरदस्त लेख लिख ही रहे थे। देश मे बडी अशान्ति थी। हम लोगो के दिल मे भी जलन थी। मैने सोच लिया था कि एक बार सारे सूबे का दौरा करना उचित है। एक तो लोगो को गाधीजी की बाते बता देना आवश्यक था और आनेवाले विकट समय के लिए लोगो को तैयार करना था। दूसरे, जापान के आगे बढते जाने के कारण लोगों मे जो आतक फैलता जाता था उसका प्रतिरोध करना था और जनता को यह भी बताना था कि यदि वह कही हिन्दुस्तान की भूमि पर पहुँच गया तो हमारा क्या कर्तव्य होगा।

इन दिनो गवर्नमेण्ट की ओर से भी काफी धाँधली मच रही थी। समुद्र के किनारे के गाँवो मे, जहाँ यह भय था कि जापानी सेना उतर सकती है, जो थोडी-बहुत फौजी तैयारी हो रही थी उसके अलावा यह नीति भी बरती जा रही थी कि जापानी सेना अगर पहुँच ही गयी तो ऐसा कर दिया जाय कि उसे कोई चीज हाथ न लगने पावे। इसलिए नावो की जब्ती हो रही थी। कही-कही उन्हे बर्बाद कर देने

का काम भी जारी था। विशेषकर बगाल मे, जहाँ नावों द्वारा ही सब काम हुआ करते है, इसका असर बहुत बुरा पड रहा था। लोगो का आना-जाना, या सामान को ढोकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बाजारो मे मामूली खरीद-फरोख्त का काम भी, एक प्रकार से सब रुक गया था। जो धान या चावल गाँवो मे था उसे भी सरकार अपने कब्जे मे कर रही थी ताकि वह दुश्मन के हाथ न लगने पावे। जिसे अँगरेजी मे Scarched earth policy—अर्थात् दुश्मन के हाथ मे कोई चीज न पडने देने के लिए सभी चीजो को भस्मीभूत कर देने की नीति—कहते हैं उसकी पूरी तैयारी की जा रही थी। बिहार मे छोटानागपुर से लेकर सोन नदी तक एक बडे मोर्चे की तैयारी हो रही थी। इसके लिए बहुत जगहो पर हवाई अड्डे और हवाई जहाज के उतरने के लिए रास्ते बनाये जा रहे थे। हजारो बीघे जमीन जहाँ-तहाँ सरकार ले रही थी। उस पर बसी हुई प्रजा और उसे जोतनेवाले किसान परीशान थे। कहा जाता था कि जमीन और मकान वगैरह जो उनको खाली करने पडते थे उसके लिए उन्हे मुआवजा मिलेगा, पर अभी तक कही किसी को कुछ मिल नही रहा था। सब काम बहुत तेजी से चलाया जा रहा था। उत्तरी बिहार और छोटा-नागपुर मे बहुत बडी अँगरेजी और अमेरिकन सेना जुट रही थी। मालूम नही, कितने लाख लोग आ चुके थे—कितने और आनेवाले थे। आसाम की सीमा पर लडाई पहुँच जाने के कारण उधर सेना के काम मे ही रेलगाडियो के अधिक लग जाने से जन-साधारण का कही रेल पर आना-जाना कठिन हो गया था। विशेषकर बी० एन० डब्लू० रेलवे (अब ओ० टी० रेलवे) मे, जो उत्तर-बिहार (तिरहुत) होकर अवध मे जाती है, बडी तकलीफ थी। उसमे फौजी गाडियाँ बहुत चलती थी। उनमे कई तो घायलो को आसाम के मोर्चे से लाद-लादकर उत्तर-भारत के किसी स्थान पर ले जाया करती। बहुतेरे लोग पूरब की तरफ से बिहार, सयुक्तप्रान्त तथा इनसे भी और पच्छिम की ओर भागे जा रहे थे। इन सब चीजो को देखकर लोगो मे और भी घबराहट फैल रही थी। स्थान-स्थान पर भागते हुए लोगो के ठहरने के लिए अड्डे बनाये जा रहे थे, नयी सडके निकाली जा रही थी और स्थान-स्थान पर उनके लिए अन्न-पानी वगैरह जमा रखने का प्रयत्न हो रहा था। इसमे दूरदर्शिता तो अवश्य थी, पर साथ ही जनता कुछ ऐसा समझने लगी कि लडाई न करके यह सब तैयारियाँ भागने के लिए ही हो रही है! जन साधारण क्या जाने कि आज का मोर्चा कितना फैला हुआ होता है और उसमे कितने प्रकार की लडाइयाँ हुआ करती है।

सबका नतीजा यह था कि सारे देश मे भारी खलबली थी। मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था और वह निश्चय वर्धा मे और भी दृढ हो गया कि मुझे सारे प्रान्त का दौरा करना चाहिए। अब मेरा स्वास्थ्य ऐसा नही था कि मै जैसे पहले सूबे के छोटे-छोटे स्थानो मे भी जाया करता था वैसे अब भी जा सकूँ और तूफानी दौरे मे एक दिन मे सात-सात आठ-आठ सभाओ मे भाषण करूँ। इसलिए मैंने निश्चय किया कि हर जिले के एक या दो मुख्य स्थानो मे ही जाऊँगा, वहाँ सार्वजनिक सभा के अलावा

कांग्रेस-कार्यकर्ताओ की विशेष सभा की जायगी। अन्न और वस्त्र का सकट भी बढ रहा था। इस सम्बन्ध मे भी व्यापारियो तथा जन-साधारण से राय-बात करके जानकारी हासिल करना आवश्यक था। इसलिए यह भी सोचा गया कि ऐसे लोगो के साथ अलग मुलाकात की जाय। ऐसा ही कार्यक्रम बनाकर मैंने सारे सूबे का दौरा अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में आरम्भ कर दिया और जून के अन्तिम सप्ताह तक समाप्त किया।

यह बात प्रकट हो गयी थी कि गाधीजी ने वर्किंग कमिटी के लिए कोई प्रस्ताव प्रयाग में भेजा था। पुलिस इसकी ताक मे थी कि उसकी नकल किसी तरह उसे मिल जाय, पर उस समय शायद उसे नही मिली। कुछ दिनो के बाद एक दिन अचानक 'स्वराज्य-भवन' की तलाशी हुई। वहाँ से पुलिस न केवल मसविदा की नकल ले गयी, बल्कि उसके साथ वर्किंग कमिटी मे हुई बहस का वह सक्षिप्त नोट भी ले गयी जो आफिस के काम के लिए रखा गया था। इस मसविदा और नोट का, गवर्नमेण्ट ने अपनी उस पुस्तिका मे, जिसे अगस्त के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर मत्री रिचर्ड टोटनहम ने लिखा था, खूब इस्तेमाल किया। मुझे कुछ सन्देह होता है कि पुलिस को मसविदा का पता लगने देने का कारण कुछ हद तक मै हूँ। मैंने ऊपर बताया है कि गाधीजी के मसविदा मे कुछ सशोधन करने का प्रयत्न मैंने किया था। मेरी प्रति, जिस पर यह सशोधन मैंने किया था, आफिस मे रह गयी। मैं प्रयाग से सीधे वर्धा गया। रवाना होने के समय इस प्रति को साथ लेना भूल गया। स्टेशन पर अथवा रास्ते मे यह बात याद आयी। मैंने आफिस के लोगो से कह दिया या लिख दिया कि उसे वे तुरन्त वर्धा भेज दे; क्योकि मैं समझता था कि गाधीजी शायद उसे देखना चाहे। आफिस से वह प्रति उसी दिन डाक से भेज दी गयी। अगर रास्ते मे पुलिस उसे रोक न लेती तो मेरे वर्धा पहुँचने के बाद दूसरे ही दिन वह पहुँच जाती। पर वह मुझे मिली नही। मैंने मान लिया कि आफिसवालो ने उसे भेजा ही न होगा। पीछे जब आफिस की तलाशी हुई तब मैंने दरियाफ्त किया। मालूम हुआ कि उन्होने उसे उसी दिन डाक से मेरे पास वर्धा भेज दिया था। शायद, इसी प्रति को देखकर पुलिस ने निश्चय किया होगा कि तलाशी लेने से कुछ मसाला मिल जायगा।

जो हो, वर्धा से बिहार लौटकर मैंने दौरा शुरू किया। इस बात मे किसी तरह का सन्देह मेरे दिल में नही रह गया था कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ हमारा टटा होगा ही। मैंने खुलकर साफ-साफ अपने सभी भाषणो मे यह बात कही। अभी तक हमारे पास कोई कार्यक्रम नही था। इसलिए मै कार्यक्रम नही बता सकता था और नही बतलाया। पर इतना अवश्य कहा कि यह भद्र अवज्ञा का ही रूप धारण करेगा। साथ ही, बिलकुल अहिंसात्मक होगा। और यह भी कहा कि पहले के आन्दोलनो से यह कही अधिक उग्र होगा। उन दिनो जापान की ओर से रेडियो द्वारा इस बात का जोरो मे प्रचार किया जा रहा था कि जापान भारत को आजाद करने का प्रयत्न कर रहा है और वह हर तरह से भारत की मदद करेगा। इस बात पर भी मैंने अपने सभी भाषणो मे कहा

कि जापान की बात का विश्वास नही करना चाहिए—विशेषकर जब हम देखते है कि उसने अपने पडोसी चीन का गला दबा रखा है और अधिकाधिक प्रचण्ड होता जा रहा है—हमको ब्रिटिश और जापान दोनों के चगुलो से भारत को आजाद करना है, उसे एक से बचाकर दूसरे के कब्जे मे जाने देना हम हरगिज पसन्द नही कर सकते, इसलिए हमारा सग्राम दोनो के साथ होगा और वह अहिसात्मक ही होगा। मेरे भाषण जोरदार और उग्र हुआ करते थे। मैं भी समझता था और लोग भी मुझसे कहा करते थे कि पहले मेरे भाषण बहुत ठढे हुआ करते थे, पर इस बार तो मैं आग उगला करता हूँ।

१९३० के सत्याग्रह के आरम्भ के पहले एक बार पटने के युवको मे कुछ गर्मी आयी। वे कोई छोटी-सी बात लेकर, जिसका मुझे आज स्मरण नही है, सत्याग्रह की बात करने लगे। सार्वजनिक सभा मे गर्मागर्म भाषण हो रहे थे। कई वक्ताओ के बाद मुझे कुछ कहने का मौका मिला। जब मैं उठा तो एक युवक साथी ने आहिस्ता कहा कि अब लोगो के उत्साह पर मैं भीगा हुआ कम्बल डाल दूँगा। मैंने यह सुन लिया और इसी को लेकर लोगो को बतलाया कि मेरे भीगा कम्बल डालने के बाद भी अगर गर्मी ज्यो की त्यो बनी रही, तो मैं समझूँगा कि वह स्वस्थ एव शक्तिशाली आदमी की गर्मी है और जो उत्साह प्रदर्शित किया जा रहा है वह सच्चा उत्साह है, नही तो मैं उस गर्मी को त्रिदोष से पीडित मनुष्य का ज्वर समझूँगा और उस प्रदर्शन को उसका प्रलापमात्र।

इस बार मेरे भाषणो मे वह भीगा कम्बल कही किसी तरह देखने मे नही आया। उसके विपरीत उनमे काफी उत्साहवर्धक और उन्मादोत्पादक मसाला रहा करता था। साथ ही, मैं रचनात्मक काम भी करता जाता था। व्यापारियो और जनता से अन्न-वस्त्र के सकट से बचने और बचाने की बात भी करता जाता था। मेरा विश्वास है कि यदि गवर्नमेण्ट जनता का सहयोग लेती तो इस सकट का वह भयकर रूप नही होता जो हुआ और आज तक भी है। हमारा उद्देश्य ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के विरुद्ध लोगो को उभाडने का नही था और न यह था कि उसके रास्ते मे हम रोड़े अटकाये अथवा जैसे-तैसे उसको परेशान करे। हमारा उद्देश्य था कि लोगो को हम इस बात के लिए तैयार करे कि वे जापान का मुकाबला कर सके, और चूँकि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इसका मौका हमको नही देती, हम उससे भी समय पाकर लडकर यह मौका लेना चाहते थे। इसलिए हम अव्यवस्थित तरीके से उसे हैरान करना नही चाहते थे। अपनी इस नीति को इसलिए क्रियात्मक रूप से दिखला देने और प्रमाणित कर देने का एक मौका मुझे मिल गया।

ऊपर कह चुका हूँ कि उन दिनो स्थान-स्थान पर हवाई जहाज के अड्डे तथा फौज के लिए छावनियाँ बनाने को जनता की जमीन ली जा रही थी। मैं गया मे पहुँचा तो सुना कि शहर से थोडी ही दूर पर, जहाँ पहले से ही अड्डा था, और भी बहुत-सी जमीन ली जा रही है और हजारो आदमी बेघरबार और बेखेत के हो गये

कुर्सी पर वाये से दायें—(१) विद्यावती (मृत्युञ्जयप्रसाद की पत्नी) (२) चन्द्रमुखी (जनार्दनप्रसाद की पत्नी) (३) भगवतीदेवी (वहन), (४) राजेन्द्रप्रसाद, (५) राजवशीदेवी (राजेन्द्र वाबू की पत्नी), (६) देवी (महेन्द्र वाबू की स्त्री), (७) कमलावती (धनञ्जयप्रसाद की पत्नी), खडे हुए दाये से बाये—(८) मृत्यञ्जयप्रसाद, (९) जनार्दनप्रमाद वर्मा (१०) धनञ्जयप्रमाद वर्मा तथा देशरत्न के पोते, पोतियाँ और घर के नोकर।

हैं, उनको कुछ मुआवजा भी नही मिला है, इन कारणो से उनमे रोष है। मैं वहाँ गया। सुनते ही हजारो की तायदाद मे लोग जमा हो गये। उनकी दशा सचमुच दयनीय थी। कई गाँव पस्त कर दिये गये थे। कई और पस्त किये जाने को थे। खेतो की आबादी रोक दी गयी थी। अड्डे बनाने के लिए जमीन तैयार की जा रही थी। वहाँ हजारो मजदूर काम कर रहे थे। बहुत-सी लारियाँ सामान ढोकर पहुँचा रही थी। जिनके घर और जमीन ले ली गयी थी वे इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। उनका पुरसाँ-हाल कोई न था। मेरे पहुँचते ही लोगो ने अपना सब दुखडा कह सुनाया। अगर सरकारी अथवा लडाई के काम मे रोडे अटकाना हमारा उद्देश्य होता तो इससे बढकर दूसरा अच्छा अवसर नही मिलता। पर मैंने लोगो को समझाया कि लडाई के काम के लिए गवर्नमेण्ट ऐसा किये बिना बचाव का इन्तजाम नही कर सकती, इसलिए उनको मुआवजा लेकर अपना कुछ दूसरा प्रबन्ध सोचना चाहिए और मैं मुआवजा दिलाने का प्रयत्न करूँगा। मैंने कह तो दिया, पर मैं नही जानता था कि गवर्नमेण्ट मेरी बात सुनेगी।

मैंने पटना लौटते ही गवर्नमेण्ट-ऐडवाइजर को पत्र लिखा जिसमे सब बाते साफ-साफ बता दी, और मुआवजा किस तरह का होना चाहिए, यह भी बतलाया—यह भी लिखा कि मुआवजा बाँटने मे भी गडबडी हुआ करती है, इसलिए बाँटने के समय कांग्रेस के आदमी बुला लिये जायँ और उनके सामने रुपये बाँटे जायँ। कुछ जमीन तो ऐसी थी जिस पर मकान बननेवाले थे अथवा जहाज उतरने के लिए मजबूत सडके बनानी थी, वह तो वापस होने पर भी किसान के काम की नही रह जायगी, पर अधिकाश जमीन केवल समतल करके रखी जायगी और उसमे घास उग जायगी, दूसरा कोई परिवर्तन नही होगा। गवर्नमेण्ट को मैंने यह लिखा कि लडाई का काम जब खत्म हो जाय तब जमीन जिसकी थी उसी को वापस कर दी जाय और वह यथासाध्य किसान के काम लायक बना कर वापस की जाय, इस बीच मे उस जमीन से, किसान जो पैदा करता वह भी उसे दिया जाय—जो जमीन वापस नही होने को है और जो मकान वगैरह गिरा दिये जा रहे थे उनकी कीमत नगद दे दी जाय तथा नगद बाँटने और फसल का मुआवजा निर्धारित करने और चुकाने के समय कांग्रेस के कार्यकर्ताओ से मदद ली जाय।

मेरा पत्र पाते ही कमिश्नर ने इस पर कार्रवाई की। मेरी सिफारिशो को उन्होंने मान लिया और मेरे पास धन्यवाद का पत्र भेजा, जिसमे यह लिखा था कि वहाँ की जटिल परिस्थिति को मैंने बहुत ठीक तरह से सँभाल लिया।

मैं जब मानभूम-जिले मे गया तो वहाँ भी ऐसी ही स्थिति थी। वहाँ के कलक्टर ने भी वैसा ही किया जैसा पटना-डिवीजन के कमिश्नर ने किया था। इन बातो को इतने विस्तार से इसलिए लिखना पडा कि जब आन्दोलन आरम्भ हुआ तो गवर्नमेण्ट ने हम लोगों पर झूठा इलजाम लगाया कि हम लोग जापान की मदद करना और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को हर तरह से परेशान करना चाहते थे। पीछे गवर्नमेण्ट ने जापान की

नष्ट करने के अभियोग को निराधार होने के कारण वापस ले लिया। पर हमारे मुस्लिम लीग के भाई अब भी उसे ढोये जा रहे हैं और वैसा कहने से बाज नहीं आते!

अस्तु, मैं दौरे पर था तभी वर्धा में वर्किंग कमिटी की बैठक की नोटिस मिल गयी। मैंने दौरे का कार्यक्रम भी ऐसा बना लिया था कि उसे समाप्त करके सीधे वर्धा चला जाऊँ। जून के अन्तिम दिनो मे वहाँ चला भी गया। वहाँ-पहले तो चर्खा-संघ की बैठक थी और उसके बाद वर्किंग कमिटी की। कई दिन वहीं रह जाना पड़ा। खादी की उत्पत्ति का बहुत विस्तार करने का आयोजन सोचा गया, क्योंकि ऐसा दीखने लगा था कि मिलो से जो कपड़ा जन-साधारण को मिला करता था वह लड़ाई के कारण बहुत अंशो मे अब उपलब्ध नहीं था, कारण यह कि अधिकतर फौजी काम के लिए ही उनको कपड़ा बनाना पड़ रहा था और जो वस्त्र-संकट था वह चर्खा-कर्घा द्वारा दूर किया जा सकता था। इसलिए कई दिनों के विचार के बाद चर्खा-संघ ने बहुत बड़े पैमाने पर काम बढ़ाने का निश्चय किया। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनो तक होती रही। अन्त मे हम इस निश्चय पर पहुँचे कि अहिंसात्मक भद्र अवज्ञा हमको करनी ही होगी, और इस बात की आज्ञा देने के लिए अगस्त के आरम्भ मे बम्बइ मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की जाय।

१४६—१९४२ की क्रान्ति के पूर्व की बातें

वर्किंग कमिटी मे बहुत बहस हुई। वहाँ मतभेद कुछ स्पष्ट हो गया। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि डाक्टर सैयद महमूद सत्याग्रह के विरुद्ध थे। पीछे जाकर उन्होंने एक गलती की जिसका जिक्र जरूरी नहीं है, पर उनका यह कहना सत्य था कि वह सत्याग्रह के विरुद्ध थे। उन्होंने अपना विरोध कमिटी में साफ-साफ बतला दिया था। अब जुलाई का महीना करीब-करीब आधा बीत चुका था। पानी बरसना जोरों से आरम्भ हो चुका था। हसब-मामूल दमा का दौरा भी उसके साथ ही साथ शुरू हो गया था। पर मैं सभी बैठकों मे शामिल होता रहा। इतनी बातें हुईं, पर वर्किंग कमिटी ने सत्याग्रह का कोई कार्यक्रम निर्धारित नहीं किया। मुझे यही बात खटकती थी। गांधीजी से मैंने कहा भी कि कार्यक्रम का कुछ निर्देश भी वह करें, पर उन्होंने साफ-साफ उत्तर दिया कि उनका दिमाग इस तरह काम नहीं करता—जब यह एकबारगी निश्चय हो जायगा कि सत्याग्रह करना ही होगा तभी वह कार्यक्रम के सम्बन्ध में सोच सकेंगे और उसे निर्धारित कर सकेंगे, अभी तो अखिल भारतीय कमिटी को फैसला करना है—वर्किंग कमिटी बिल्कुल एकमत नहीं है और उसके बाद गवर्नमेण्ट क्या करेगी, यह भी मालूम नहीं—ऐसी अनिश्चित अवस्था मे वह कार्यक्रम के सम्बन्ध मे अभी कुछ भी निर्धारित नहीं कर सकेंगे, पर इतना अवश्य था कि इस बार का सत्याग्रह बहुत उग्र होगा, केवल जेल जाना ही काफी न होगा, उससे कहीं अधिक त्याग की जरूरत पड़ेगी, आवश्यकता होने पर धन-धान्य घर-द्वार सब कुछ स्वाहा करना होगा—चर्खा-संघ मे जो पचीस-तीस लाख या इससे भी अधिक रुपये लगे

है उन पर भी हमला हो सकता है और यद्यपि हमने काम बढाने का निश्चय किया है तथापि सारा चर्खा-सघ और उसके धन-जन दोनो ही आहुति मे पड जा सकते है, पर अभी सत्याग्रह के रूप का चित्र उनके सामने नही आया है और इस पर वह अभी अपना दिमाग भी लगाना नही चाहते है, क्योकि जब तक निश्चय न हो जाय कि सत्याग्रह अनिवार्य है और करना ही पडेगा तब तक कार्यक्रम बनाने मे उनका दिमाग काम ही नही करेगा। हम लोगो को यह एक भारी त्रुटि मालूम होती थी, पर कार्यक्रम तो गाधीजी को ही बनाना था और हमको मजबूरन उनकी बात मान लेनी पडी।

वर्धा से रवाना होने के पहले मै गाधीजी से बिदा लेने सेवाग्राम गया। वहाँ और कई आदमी थे। उनमे से किसी ने कार्यक्रम की बात छेड दी, यह प्रश्न किया कि तार और टेलीफोन का तार काटना अथवा रेल की पटरी उखाड देना अहिसा के अन्दर आ सकता है या नही। प्रश्न सामयिक था, क्योकि मै जानता हूँ कि जब-जब सत्याग्रह की बात चली है, कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया है और उन्होने इस प्रश्न को छेडा है। प्रश्न पूछते ही मैंने गाधीजी से कहा कि यह प्रश्न बारबार उठा करता है—१९३० के आन्दोलन मे भी, जब महात्माजी और दूसरे बहुत-से लोग जेल मे चले गये थे तथा पडित मोतीलालजी स्थानापन्न प्रेसिडेण्ट थे और मै वर्किंग कमिटी के मेम्बर की हैसियत से प्रयाग गया था, तो लोगो ने इस प्रश्न को उठाया था और जहाँ-तहाँ तार और टेलीफोन के तार लोगो ने काट भी दिये थे, पर यह सब बहुत कम जगहो मे ही हो पाया था और उस समय यह रोक दिया गया था, इसलिए इसमे कोई आश्चर्य की बात नही कि आज भी जब हम सत्याग्रह की बात सोच रहे है तो इस तरह का विचार कुछ लोगों के दिल मे उठ रहा हो—महात्माजी को चाहिए कि कार्यक्रम बनाते समय इस सम्बन्ध मे कुछ साफ-साफ आदेश दे। गाधीजी ने कहा कि लोहा-लकडी काटने-तोडने मे हिसा-अहिसा की बात नही उठती है, हम तो रोज साधारण रीति से लोहा-लकडी काटते-तोडते रहते है, पर रेल की पटरी उखाड लेना अथवा तार काट देना दूसरी बात है—किस उद्देश्य से यह काम किया जाता है, किस तरह से किया जाता है और इसका फल क्या होता है, इन बातो पर इसका हिसात्मक और अहिसात्मक होना निर्भर है, यदि इससे हत्या हो अथवा बेकसूर लोगो पर विपत्ति आवे तो यह हिसात्मक होगा, पर हम ऐसी परिस्थिति का अनुमान कर सकते है जब यह अहिसात्मक भी हो सकता है।

हमने उनके कहने का आशय यह समझा कि इसे अहिसात्मक होना बहुत करके इस पर निर्भर होगा कि इसके कारण किसी की जान पर खतरा न हो और जो कोई भी ऐसा काम करे वह उसकी जवाबदेही अपने ऊपर साफ-साफ और सीधे ले ले ताकि दूसरो को, जिनका इससे कोई सरोकार न रहा हो, इसका फल भुगतना न पडे। ये बाते यो ही हो गयी, कोई कार्यक्रम उस समय निर्धारित न हुआ, न होने की बात ही थी। जब गवर्नमेण्ट ने यह अभियोग लगाया कि हम लोगो ने रेल-तार तोडने का कार्यक्रम बनाया था तो गाधीजी ने उत्तर मे कहा था कि गवर्नमेण्ट

ने एक बातचीत अथवा बहस (theoretical discussion) को कार्यक्रम मान लेने की भूल की है। गाधीजी की यह बात बिलकुल सत्य थी और हमने उस समय इस कार्यक्रम को अथवा किसी भी कार्यक्रम को निर्धारित नही किया था।

वर्धा से मै पटने के लिए रवाना हुआ। पहले से ही दो-तीन जगहो मे जाने का वादा कर रखा था। उनमे गोंदिया एक स्थान था, इसलिए गोदिया मे उतर गया और वहाँ से सभा इत्यादि करके रात की गाडी से रवाना हो गया। दूसरे दिन रात को बनारस पहुँचा। वहाँ पर भारतीय इतिहास-परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक कर लेनी थी। अब यह एक प्रकार से निश्चित-सा था कि थोडे ही दिनो मे आन्दोलन उग्र रूप धारण कर लेगा। इसलिए परिषद्-सम्बन्धी कुछ काम कर लेना जरूरी था। उसमे एक आवश्यक काम कुछ रुपये जमा कर लेना था और जो जिल्दे प्राय तैयार कही जाती थी उनके छपवाने इत्यादि के सम्बन्ध मे श्री जयचन्द्र विद्यालकार से बाते कर लेनी थी। कुछ रकम गोदिया मे मिली थी, उसे जमा कर दिया और दूसरे कामो का प्रबन्ध करके काशी से मै पटने मे न ठहरकर सीधे मुँगेर-जिले मे तारापुर चला गया। वहाँ किसान-कान्फ्रेन्स होनेवाली थी, जिसको लोगो ने मेरे लिए ही कई बार स्थगित कर रखा था। श्री कृपालानीजी भी वहाँ उसका उद्घाटन करने के लिए आये थे और श्री कृष्णवल्लभसहाय सभापति होनेवाले थे। दूसरे प्रमुख व्यक्ति श्री बाबू, अनुग्रह बाबू प्रभृति भी आये थे। रास्ते भर सभी जगहों मे खूब पानी बरसता आया और बरसात का जो असर मेरे स्वास्थ्य पर पडता है वह अपना काम कर ही रहा था। मै तारापुर पहुँच तो गया, पर दमा का दौरा हो रहा था। कान्फ्रेन्स का काम शुरू हुआ। मेरे कुछ कहने की बारी आयी। मैंने कुछ कहना आरम्भ किया कि इतने मे अचानक घटा उमड आयी और जोरों से वर्षा होने लगी। रामगढ-कॉंग्रेस की तरह कान्फ्रेन्स का काम रुक गया। हम लोग किसी तरह भीगते-भीगते डाक-बँगले मे पहुँचे जहाँ ठहरे हुए थे। रात वहाँ बिताकर दूसरे दिन सवेरे ही मै पटने के लिए रवाना हो गया। पटना पहुँचते-पहुँचते दमा खूब जोर पकड गया और ज्वर भी हो आया। उस दिन से १२ या १५ दिनो के बाद ही बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मुझे यह चिन्ता लगी कि उस समय तक अच्छा हो जाना चाहिए।

बम्बई जाने के पहले प्रान्तीय कॉंग्रेस-कमिटी की एक बैठक कर लेना उचित मालूम हुआ जिसमे वर्धा के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे, जिस पर बम्बई मे विचार होनेवाला था, प्रान्त के लोगो की राय मालूम हो जाय। प्रान्तीय कमिटी का जलसा सदाकत आश्रम मे ३१ जुलाई को हुआ। मेरी तबीयत बहुत खराब थी, बहुत कमजोर था। मैंने कमिटी के सामने एक जोरदार भाषण किया जो उन्ही भाषणो का साराश-मात्र था जो सारे सूबे के दौरे मे हुए थे। एक बात और थी, वह यह कि वर्धा मे जो बाते हुई थी उन्हे भी मैंने लोगो को सुना दिया। सभी लोग समझ गये थे कि बम्बई मे जो निश्चय होगा वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। इस जल्से के बाद एक-दो

दिनो के अन्दर ही, अखिल भारतीय कमिटी के सदस्य तथा अनेक कॉग्रेसी, दर्शक होकर बम्बई के जल्से मे शरीक होने को, रवाना हो गये। मै इतना बीमार था कि वहाँ जा न सका और पटने मे ही पडा रहा।

अखबारो मे जोरो से खबर छपा करती थी कि गवर्नमेण्ट की ओर से तैयारियाँ हो रही है और बम्बई मे ही सब लोग गिरफ्तार कर लिये जायँगे। इधर-उधर से यह भी खबर पहुँच रही थी कि बिहार मे भी तैयारी है और जो कैम्पजेल बन्द थी वह साफ करके तैयार कर ली गयी है। बम्बई मे ५ अगस्त (१९४२ ई०) से वर्किंग कमिटी की बैठक शुरू हुई और ७ अगस्त से अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मै रेडियो और अखबारो मे खबरे सुना और पढा करता था। जो प्रस्ताव ८ अगस्त की रात को अखिल भारतीय कमिटी मे पास किया गया वह भी वर्किंग कमिटी द्वारा स्वीकृत होने के बाद अखबारो मे आ गया। खबर बहुत गर्म थी कि बम्बई मे ही सबको गिरफ्तार कर आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही दबा दिया जायगा। मैने सोचा कि यदि ऐसा हुआ तो जनता के सामने कोई कार्य-क्रम नही रह जायगा। इसलिए, कम से कम अपने सूबे के लिए, मै कुछ कार्यक्रम बना दूँ। इतनी शक्ति नही थी कि बैठकर बहुत लिख सकूँ। इसलिए जो मित्र वहाँ मौजूद थे उनसे बाते करके मसविदा तैयार करने को कहा। इनमे मुख्य थे प्रान्तीय कमिटी के मत्री श्री दीपनारायणसिंह और श्री मथुराप्रसाद। अनुग्रह बाबू भी बम्बई नही गये थे, पटने मे ही थे। जब मसविदा तैयार किया गया तो उसे अनुग्रह बाबू के साथ मैने देखकर कुछ अदल-बदल कर ठीक कर दिया। उसे छपवाने का प्रबन्ध भी कर दिया गया। यह निश्चय हुआ कि अगर सचमुच सब लोग गिरफ्तार हो गये तो जो लोग रह जायँगे वे उसी के अनुसार काम करेगे। यों तो गाधीजी ने बारबार कह रखा था कि नेता लोग अगर गिरफ्तार हो गये और कोई कार्यक्रम न दे सके तो उस हालत मे हर एक कॉंग्रेसी अपने को नेता समझे और अहिसा के सिद्धान्त के अन्दर रहकर जो कुछ भी सत्याग्रह के रूप मे कर सकता हो करे—इस सग्राम को अन्तिम सग्राम समझकर कोई कुछ उठा न रखे, पर अहिसा को किसी तरह न छोडे। हमने जो कार्यक्रम बनाया उसमे भी इस बात पर जोर दिया कि अहिसा को नही छोडना चाहिए। उसमे सत्याग्रह के लिए कार्यक्रम भी बताया जो पूर्व के सत्याग्रहों के कार्यक्रम से सिद्धान्तत भिन्न नही था, पर अधिक उग्र जरूर था।

इसी बीच मे एक दिन दिल्ली से एक समाचार छपा कि ८ अगस्त के बाद कॉग्रेस के लोगो की गिरफ्तारी नही होगी और गवर्नमेण्ट इस बात का इन्तजार करेगी कि कॉग्रेस क्या करती है—कॉंग्रेस की ओर से भी यह बात कही जा रही थी कि कोई कदम उठाने के पहले गाधीजी वाइसराय से एक बार और बातचीत करेगे, जब वहाँ कुछ नही होगा तभी कोई कदम उठाने की राय देगे। इस समाचार को हमने सच मान लिया और समझ लिया कि अब तुरन्त कुछ होनेवाला नही है, बम्बई गये हुए लोगो के लौटने तक हमको इन्तजार करना चाहिए—हो सकता है कि वे

लोग वहाँ से निर्धारित कार्यक्रम भी साथ लावे, यदि ऐसा हुआ तो हमारे द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम को काम मे लाना अनुचित नही तो अनावश्यक होगा। इस तरह हमने निश्चय कर लिया कि अव ११ अगस्त के पहले, जव वम्वई से लोगो के लौटने की आशा थी, हमको कुछ नही करना है। इसी निश्चय के अनुसार अनुग्रह वावू रायवरेली चले गये जहाँ उनके भाई वीमार थे और दीप वावू मुजफ्फरपुर-जिले मे पहले से मुकर्रर किये गये कुछ काम को पूरा करने। मै, मथुरा वावू और श्री चक्रधरशरण के साथ आश्रम मे ठहरा रहा।

१४७—१९४२ के तूफानी दिन

८ अगस्त (१९४२ ई०) की रात को प्राय १० वजे के वाद भारतीय कमिटी ने प्रस्ताव मजूर किया। सुना कि गाधीजी का लम्वा भाषण हुआ जिसमे उन्होने 'करो या मरो' का मत्र लोगों को दिया। साथ ही, उन्होने वाइसराय से मिलने तथा एक वार और समझौते के लिए प्रयत्न करने की वात भी कही। अन्य नेताओ के भी भाषण हुए जिनमे सरदार वल्लभभाई के भाषण की लोगो ने वहुत प्रशसा की। ९ अगस्त (१९४२ ई०) को सवेरे मै 'सर्चलाइट' मे वम्वई की कार्रवाई पढ रहा था, मथुरा वावू शहर चले गये थे कि इतने मे डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर आर्चर पहुँचे। मै चारपाई पर था। उन्होने मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्वन्ध मे पूछताछ की और यह पूछा कि मेरा कार्यक्रम क्या है। मै तो समझ गया था कि इनके आने का कारण क्या था, क्योकि रेडियो मे गाधीजी तथा वर्किंग कमिटी के सदस्यो की गिरफ्तारी की खवर सक्षेप मे आ चुकी थी। मेरी वीमारी देखकर उन्होने गवर्नमेण्ट से पूछा कि ऐसी अवस्था मे क्या किया जाय। वहाँ से हुक्म आया कि सिविल सर्जन से दिखलाओ और पूछो कि वहाँ से वह दूर ले जाने योग्य है या नही। सिविल सर्जन को मि० आर्चर जाकर ले आये।

इसी वीच मे मेरे घर के डेरे पर खवर पहुँच गयी। वहाँ से वहन और मृत्युंजय की माँ वगैरह पहुँच गयी। सिविल सर्जन की राय हुई कि मै सफर के लायक नहीं हूँ। इसलिए मुझे ११-१२ वजे दिन के करीव वाँकीपुर-जेल मे ही ले गये। पानी खूव वरस रहा था। खवर शहर मे फैल गयी। सदाकत-आश्रम से मेरे रवाना होने के पहले ही कुछ लोग, जिनमे विद्यार्थी मुख्य थे, आश्रम पहुँच गये। केवल मुझे ही गिरफ्तार करने का हुक्म था। मि० आर्चर का तौर-तरीका अच्छा था। उन्होने किसी तरह की न तो जल्दी की और न कोई वेअदवी या वदतमीजी। जेल मे मेरे लिए सव प्रवन्ध ठीक करके मथुरा वावू और चक्रधर वापस गये कि इतने ही मे श्री फूलनप्रसाद वर्मा भी गिरफ्तार होकर वहाँ पहुँच गये। इस तरह प्राय १—१॥ वजे के पहले ही निश्चित हो गया कि मै अकेला नही रहूँगा और कम से कम एक साथी रात को मेरी देखभाल करने के लिए जरूर रहेगे। मथुरा वावू ने भी मि० आर्चर से वातचीत की और वह भी सन्ध्या के पहले ही आ पहुँचे।

दूसरे दिन तो और लोग भी आने लगे। बम्बई से लौटने पर श्री बाबू, सत्यनारायण बाबू, महामाया बाबू आदि भी आ गये। अनुग्रह बाबू भी आये। पटने मे जोरो से प्रदर्शन होने लगा। बडे-बडे जलूस निकलने लगे। कचहरियाँ बन्द हो गयी और एक बहुत बडा जलूस गवर्नमेण्ट-हाउस के दरवाजे तक नारा लगाता हुआ जा पहुँचा। रात हो गई थी, इसलिए और कुछ उस दिन नही हुआ, पर खबर मशहूर थी कि दूसरे दिन सेक्रेटेरियट पर झडा चढाने के लिए जलूस जायगा।

जेल मे खबर मिलने का साधन एक ही था और वह था गिरफ्तार होकर नये लोगो का आना। अखबार अभी तक बन्द नही थे, पर उनसे थोडी खबर मिलती। सेक्रेटेरियट पर जलूस गया। गोली चली। ८–९ युवक शहीद हो गये। बहुतेरे घायल हुए जिनको लोगों ने अस्पताल पहुँचाया। उस जलूस मे से ४०–५० लडके गिरफ्तार करके बॉकीपुर-जेल मे उसी रात को लाये गये। उनसे गोलीकाड की बाते मालूम हुई। रात-भर सारे शहर मे जलूस निकलते रहे। जेल के अन्दर भी जलूसो की आवाज पहुँचती रही। उसी दिन तार और टेलीफोन तोडने का काम आरम्भ हो गया। हमने सुना कि पटने मे टेलीफोन बन्द हो गया। जेल-आफिस मे भी टेलीफोन का आना-जाना रुक गया। जो लडके सेक्रेटेरियट के जलूस से गिरफ्तार करके लाये गये थे वे किसी तरह बॉकीपुर-जेल मे रात-भर रखे गये, दूसरे दिन उन्हे कैम्पजेल मे भेजने की तैयारी होने लगी। जेल की कैफियत यह थी कि पहले से ही वह ठसाठस भरी थी। मामूली कैदियो की सख्या सारे सूबे मे बहुत बढी हुई थी, क्योकि डकैतियाँ कई बरस पहले से ही लडाई के जमाने मे बहुत बढ़ गयी थी और चोरी इत्यादि भी ज्यादा हो रही थी। कैदियो मे बहुतेरे अभी हाजती (undertrial) थे जिनके मुकदमे की जाँच अभी तक नही हुई थी। इसलिए जब राजनीतिक कैदियो की सख्या बढने लगी तो उनके लिए स्थान कम पड गया। जो ऊँचे दर्जे मे रखे जानेवाले थे वे तो बॉकीपुर-जेल मे रखे गये और दूसरो को कैम्प-जेल भेजने का प्रबन्ध था। जब तक लडके कैम्प-जेल मे नही भेजे गये, शहर की बडी जमात जेल के फाटक पर और सड़को पर खडी थी। बॉकीपुर-जेल मे दोमहला मकान सडक के किनारे की ओर ही है। उस पर से लडको ने सडक पर जमी हुई भीड से कुछ बाते भी की। जब तीन बजे के करीब उनको ले जाने के लिए लारियाँ लायी गयी, उनमे वे सवार कराये गये। पहली लारी आगे बढ़ी तो जनता लारी पर टूट पडी, लडको को छुडा लिया और लारी मे आग लगा दी। दूसरी लारियो को फिर आगे नही बढ़ाया, उनमे सवार लडको को उतारकर फिर जेल मे ले आये। कुछ देर मे फौज बुलायी गयी। उसने रास्ता साफ किया। आगे-पीछे फौजी गाडियो के बीच मे कैदियो की लारियाँ कैम्प-जेल पहुँचायी गयी।

जो लोग 'ए' वर्ग मे रखे जाते थे उनकी सख्या भी बढती ही जाती थी और उनके लिए जेल के अस्पताल के सिवा दूसरा स्थान नही था। उनको भी हजारीबाग ले जाने की बात थी, पर तब तक रेलगाडियो का आना-जाना बन्द हो गया, इसलिए

उनका वहाँ जाना अनिश्चित काल तक के लिए रुक गया। प्राय एक महीना बाद तक वे लोग उस छोटे-से अस्पताल में ही रहे और कुछ लोग इधर-उधर भी रखे गये। बाँकीपुर की जेल पटना-जंक्शन-स्टेशन के नजदीक ही है। वहाँ से गाड़ियों के आने-जाने और विशेषकर रेल की सीटी की आवाज खूब सुनने में आ जाती है। यह सब महीनों तक बन्द रहा। केवल एक इंजिन की सीटी सुनने में आया करती जो डब्बों को इधर-उधर स्टेशन पर हटाया करता होगा। उसकी आवाज भी हम लोगों ने पहचान ली थी। हम उससे इस भ्रम में नहीं पड़ते थे कि गाड़ियाँ चलने लगीं। प्राय. एक महीने के बाद सभी लोग हजारीबाग ले जाये गये। मैं वहाँ जाने के लायक नहीं था। वहाँ का जलवायु भी मेरे अनुकूल नहीं पड़ता। इसलिए मैं पटने में ही रखा गया।

जेल में पहुँचने के दो-चार दिनों के बाद यह खबर उड़ी कि मुझे कहीं बाहर ले जायँगे जहाँ वर्किंग कमिटी के दूसरे सदस्य रखे गये थे। रेलों का चलना बन्द हो चुका था इसलिए ले जाने का एक ही उपाय था—हवाई-जहाज। डाक्टरों से राय ली गयी तो उन्होंने राय दी कि मेरी अवस्था ऐसी नहीं कि हवाई जहाज का सफ़र बर्दाश्त कर सकूँ। इसलिए यह विचार भी स्थगित हो गया। प्राय दस महीनों के बाद जून १९४३ में, एक दिन अचानक मेजर मर्डक—जिन्होंने मुझे गिरफ्तारी के समय देखा था और हजारीबाग न ले जाने की राय दी थी—जेल में आ गये। उन्होंने मुझसे कहा कि हमें गवर्नमेण्ट का हुक्म मिला है कि मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तुरन्त रिपोर्ट दें। गर्मियों में, विशेषकर जून के शुरू में, मैं बहुत स्वस्थ रहा करता हूँ। उस समय बहुत अच्छा था। इसलिए, ऐसे समय में, जब स्वास्थ्य के बारे में कोई खराब रिपोर्ट नहीं गयी होगी, डाक्टर का आना आश्चर्यजनक अवश्य था। मैंने ताड़ लिया कि मुझे कहीं दूसरी जगह भेजना चाहते हैं। मैंने डाक्टर से पूछा तो उसने कहा कि बाजाब्ता खबर तो उसको नहीं थी और न वह दे सकता था, पर बेज़ाब्ता तौर से वह कह सकता था कि कुछ ऐसी ही बात थी। कुछ और अधिक पूछने पर उसने यह भी कहा कि मैं हजारीबाग नहीं भेजा जाऊँगा, दक्खिन पूना की ओर जाना होगा। पीछे जेल से निकलने पर यह खबर मिली कि अहमद-नगर के किले में भी मेरे भेजे जाने की बात थी और मेरे लिए वहाँ कमरा ठीक किया गया था; पर न मालूम क्यों, फिर कुछ हुआ नहीं। कुछ दिनों के बाद, जब डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिलने आया, पूछने पर उसने कहा कि न मालूम क्यों बात आगे न बढ़ी।

जेल जाने के समय मेरी चिकित्सा वैद्यराज ब्रजबिहारी चौबेजी कर रहे थे। जेल में उनकी चिकित्सा होना सम्भव नहीं था। न मालूम गवर्नमेण्ट कहने पर भी इसकी इजाजत देगी या नहीं, और मैं कोई खास मह्लियत माँगना पसन्द भी नहीं करता था। इसलिए वहाँ पहुँचते ही डाक्टरी दवा शुरू हो गयी। बाहर रहने पर पटने के नामी डाक्टर श्री त्रिदिवनाथ बनर्जी (टी० एन० बनर्जी), जो उन दिनों

मेडिकल-कालेज के प्रिन्सिपल थे, और डाक्टर रघुनाथशरण तथा डाक्टर दामोदर-प्रसाद मुझे देखा करते है। गवर्नमेण्ट ने आज्ञा दे दी कि जब कभी जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट, जो वहाँ के सिविल सर्जन उन दिनो हुआ करते थे, जब जरूरत समझे तब डाक्टर बनर्जी को बुला लिया करे। इसलिए जब-तब डाक्टर बनर्जी आया करते थे। तबीयत कुछ ज्यादा खराब हुई तो डाक्टर शरण और डाक्टर दस्तीदार भी खास करके बुला लिये जाते थे। इस तरह, मै जब-जब बीमार पडा, वे डाक्टर आते रहे जो पटने मे सबसे अच्छे समझे जाते है और जिन्होने बहुत बरसो से मेरी चिकित्सा की है। इस बात की शिकायत कभी न हुई कि मेरी बीमारी पर पूरा ध्यान नही दिया गया। इसी तरह मेरे खान-पान, रहन-सहन इत्यादि के सम्बन्ध मे भी कभी किसी किस्म की शिकायत नही हुई। गवर्नमेण्ट के हुक्म से, मेरे साथ रहने के लिए, शुरू से ही मथुरा बाबू और चक्रधर बाबू बाँकीपुर-जेल मे ही रहने दिये गये। पीछे वाल्मीकि को भी मेरे साथ रहने दिया। दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरी खातिर नही। कुछ तो गिरफ्तार करके वहाँ सीधे लाये जाते। पर कुछ दिनो के बाद यह बन्द हो गया और गिरफ्तार करके लोग सीधे कैम्प-जेल भेज दिये जाते थे। कुछ लोग कभी-कभी बीमार पड जाने पर हजारीबाग-जेल से, अथवा किसी दूसरी जेल से भी, पटने के बडे अस्पताल मे भेजे जाते। वे पहले बाँकीपुर-जेल मे आते, वहाँ से फिर अस्पताल भेजे जाते। इसी तरह अस्पताल से लौटने के समय भी बाँकीपुर-जेल होकर ही वापस जाते। हजारीबाग से आनेवाले इन बीमार कैदियो के सिवा दूसरा कोई जरिया हालचाल मिलने का नही था। कुछ दिनो के बाद यह भी बन्द हो गया। जिनको अस्पताल जाना होता, वे सीधे अस्पताल मे ही भेज दिये जाते। तो भी जेल मे न मालूम किस तरह, बिना पूछे, जानने की कोशिश किये बिना ही, खबर पहुँच ही जाती है। गवर्नमेण्ट समझती थी कि ससार को यह बात मालूम नही है कि वर्किंग कमिटी के मेम्बर कहाँ रखे गये है। पता नहीं कि बाहरवालो को कब मालूम हुआ कि वे लोग अहमदनगर-किले मे है, पर हम लोगों को तो बाँकीपुर-जेल मे गिरफ्तारी के चन्द दिनों के अन्दर ही यह मालूम हो गया था। स्थानीय अखबार हमारी गिरफ्तारी के चन्द दिनो बाद तक तो निकलते रहे, पर बहुत जल्द सब के सब बन्द हो गये। बिहार-गवर्नमेण्ट 'पटना-डेलीन्युज' के नाम से एक दैनिक (अँगरेजी) पर्चा निकालने लगी जिससे कुछ खबरे मिल जाती। एक विशेष बात उससे यह मालूम हुई कि गवर्नमेण्ट ने किस जिले पर कितना सामूहिक जुर्माना किया या प्युनिटिव-टैक्स लगाया। हमने देखा कि चन्द महीनो के अन्दर प्राय २६ लाख जुर्माना किया गया।

१४८—१९४२ के जेलजीवन की कुछ बातें

बाँकीपुर का जेल-जीवन मेरे लिए किसी तरह कष्टप्रद न हुआ। यो तो किसी एक जगह बन्द रहना ही कष्टप्रद होता है, पर मैने अपने को कुछ ऐसा बना लिया

हूँ या ऐसा पाया है कि जेल में पहुँचने के बाद मैं बाहर की चिन्ता भूल जाता हूँ—जो कुछ बाहर होता है अथवा हो सकता है उससे कोई सम्पर्क नहीं रखता। बाहर से कोई कैदी आता और उससे भेंट होती तो वह बाहर का हाल कहता। दूसरी जेलों से आये हुए लोग उन जेलों का हाल कहते। जब अखबार फिर निकलने और हम लोगों को मिलने लगे तो उनसे भी देश की बातें मालूम हो जातीं। पर मैं एक प्रकार से इन बातों को केवल सुन लेता, दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं रखता। एक-दो मित्रों ने बाहर से खबर भेजने और वहाँ से मेरी राय जानने का भी प्रयत्न किया, पर मैंने इसे प्रोत्साहन नहीं दिया, तबसे फिर किसी ने ऐसा प्रयत्न नहीं किया। शुरू में कई महीनों तक बीमार रहा। बरसात और जाड़ों में अक्सर अस्वस्थ रहा। केवल मार्च के बाद से जून तक अच्छा रहा करता। पर हमेशा अस्वस्थता ऐसी नहीं होती कि बिल्कुल चारपाई पर पड़ जाऊँ। ऐसा भी हुआ, पर हमेशा नहीं। इसलिए सूत कातने और लिखने-पढ़ने का समय मिला। आगे चलकर यह सहूलियत और भी अधिक हो गयी—जब बाहर से कैदियों का आना-जाना बन्द हो गया और मेरे साथ भी दो-तीन आदमियों से अधिक न रह गये।

घर के लोगों से बराबर मुलाकात होती रही। छोटे-छोटे बच्चे भी उनके साथ आ जाया करते, उनको इसका ज्ञान तो शायद नहीं था कि मैं कहाँ हूँ और क्यों एक जगह में बन्द हूँ, पर सुना कि मुलाकात के दिन मेरे पास आने के लिए वे उत्सुक रहा करते थे। चिरजीव अरुण मेरा पोता ढाई साल का था, पर वह जब जेल के फाटक के अन्दर घुसता तो वहाँ से सीधे दौड़ता हुआ अस्पताल-वार्ड के मेरे कमरे में आ जाता। दो-चार बार आने के बाद ही उसने रास्ता भी पहचान लिया और मेरा कमरा भी। उससे बड़ी जो लड़कियाँ थीं वे तो रास्ता और कमरा जानती ही थीं। मेरे पास पहुँचकर उन बच्चों की फरमाइश होती—बाबा, कुछ खिलाओ! मैं उनके लिए कुछ तैयार रखता। आध घंटे तक रहकर और इधर-उधर दौड़-धूप करके कुछ खाकर वे चले जाते। जाने के समय जेल के अहाते में खिले हुए सुन्दर फूल अगर पसन्द आ जाते तो तोड़ लेते। जेल के अधिकारी न हरकतों से रुष्ट नहीं होते थे, बल्कि बच्चों की चंचलता देखकर खुश होते और हँसते। जब-तब अरुण मेरा हाथ पकड़कर चलते समय कहता—'तुहूँ चलऽ बाबा'। छोटी अवस्था का बचपन भी कैसा सुन्दर, निरीह और निश्चिन्त हुआ करता है!

जेल में एक समय बहुत चिन्ता का बीता। वह था जब महात्माजी ने उपवास किया। इसकी खबर तो अखबारों से मिल गयी। हमने गवर्नमेण्ट को लिखा कि वहाँ की खबर मुझे तार द्वारा दी जाती रहे। कुछ मित्रों को तार भिजवाने के लिए भी कहला भेजा। तार आने लगे। पर जब तक वह सी० आई० डी० (खुफिया पुलिस) द्वारा पास न हो जाय, मुझे मिलता नहीं। इसमें देर लगती और जेल-आफिस में पहुँचने के प्राय २४ घंटों बाद तार मिलता। उधर भी उतनी ही खबर लोग भेजने को पाते जितनी गवर्नमेण्ट की बुलेटिन में छपती, वह तो 'पटना-डेली

न्युज' मे सवेरे ही हमको मिल जाती, इसलिए तार और भी बेकार हो गया। चन्द दिनो के बाद तार मँगाना बन्द कर दिया। एक दिन यह खबर पहुँच गयी कि महात्माजी की हालत बहुत खराब है। शहर मे तो खबर उड गयी कि वह अब रहे ही नही ! हम लोगो को यह खबर जेल मे नही मिली। जब 'पटना-डेली न्युज' आया तो मालूम हुआ कि अभी वह बचे है और हालत कुछ सुधरने लगी है। हम लोग चिन्ता करते और प्रार्थना करते। ईश्वर की दया से खतरे के घटे निकल गये। मालूम होने लगा कि वह अब सकट की अवधि को पार कर जायँगे। अन्त मे यह शुभ समाचार सुनने को मिला कि यह यज्ञ भी सम्पूर्ण हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और लार्ड लिनलिथगो की-नीति और कडाई का पूरा प्रदर्शन हो गया।

जेल का जीवन एक प्रकार से बिना किसी महत्त्वपूर्ण घटना के बीतता रहा। बाहर जो कुछ जनता, सरकारी कर्मचारियो, पुलिस, फौज और मजिस्ट्रेटो द्वारा हुआ उसकी खबर कुछ-कुछ मिलती रही। वह भयकर और रोमाचकारी थी। पर हम लाचार थे और सुन लेने के सिवा दूसरा कुछ हो नही सकता था। जो नये आर्डिनेन्स बन गये थे उनके द्वारा धाँधली खूब चल रही थी। वह धाँधली केवल राजनीतिक मामलो मे ही नही, मामूली मुकदमो मे भी। यहाँ दो उदाहरण देता हूँ।

हमारे जेल चले आने के चन्द दिनों के अन्दर ही पटना-जिले के किसी गाँव मे दो दलो मे, किसी जमीन या किसी और चीज के लिए, मार-पीट हुई। एक आदमी मारा गया। पुलिस के लिए, उन दिनो किसी भी मुकदमे मे सजा दिलवा देने का, सबसे सीधा रास्ता यह था कि उसे वह राजनीतिक करार दे दे। उसने इसे भी राजनीतिक जामा पहना दिया। खून का कारण यह बताया गया कि जिस आदमी का खून किया गया था वह फौज मे भरती हुआ था, चूँकि दूसरे पक्ष के लोग कॉंग्रेसी थे इसलिए उन्होने उसे फौज मे भरती होने से मना किया, जब उसने उनकी एक न सुनी तो उसका खून कर दिया ! मामला सीधे स्पेशल जज के सामने पेश हुआ। उसका फैसला हुआ कि जिस आदमी का खून हुआ था वह कभी फौज मे भरती हुआ ही न था, इसलिए उसके खून का कारण वह नही हो सकता—पर कारण जो हो, खून तो हुआ ही है, इसलिए आठ आदमियो को फाँसी की सजा दी जाय। आर्डिनेन्स के अनुसार भी फाँसी की मजूरी हाइकोर्ट के एक जज द्वारा होनी चाहिए थी। इसके लिए एक जज खास करके नियुक्त किये गये थे। उन्होने ७ आदमियो को छोड दिया, पर एक की फाँसी की सजा बहाल रखी। उसकी ओर से प्रीवी कौन्सिल मे भी अपील की गयी, पर वह नामजूर हो गयी। जेल मे जब तक हम लोग रहे, एक काम हममे से किसी को करना पडता था। उसे हम खुशी से कर भी देते थे। जब किसी मामूली कैदी को जेल से अपील करने का इरादा होता तो वह किसी न किसी तरह हम लोगो के पास पहुँच जाता और अपील की दर्खास्त लिखवा ले जाता। फाँसीवाले आदमी की ओर से दया की दर्खास्त मुझे लिखनी पडती। जेल के अधिकारी, फाँसीवालो की ओर से दया की दर्खास्त भिजवाने मे, मैने देखा, अक्सर कुछ दिलचस्पी लेते है। मुझे

याद है कि उन्होने दो मामलो मे मुझसे दर्खास्त का मसविदा लिख देने को कहा था। यह पहला फाँसी का मामला था। इसको पुलिस ने पोलिटिकल करार दिया था। पोलिटिकल होने के कारण ही फाँसी की सजा हुई थी। मैने दर्खास्त लिख दी। गवर्नर ने फाँसी की जगह डामल-हौस की सजा कर दी। उसकी जान बच गयी। पुलिस ने जो पोलिटिकल शक्ल देकर सजा दिलवा दी उसका एक अच्छा फल यह हुआ कि जब फिर १९४६ मे कॉंग्रेस-मिनिस्ट्री हुई तो दूसरे राजनीतिक कैदियो के साथ वह आदमी भी छूट गया। छूटते ही मेरे पास आकर सदाकत-आश्रम मे मुझसे भेट कर गया। एक औरत को भी फाँसी की सजा हुई थी। उसकी दर्खास्त जेलर ने खुद आकर मुझसे लिखवायी थी। उसकी सजा भी फाँसी की न रहकर कालापानी की हो गयी थी।

एक दूसरा मुकदमा डकैती का था। मुजरिम पोलिटिकल करार नही दिया गया था। पर उन दिनो मामूली मुकदमो की जाँच भी आर्डिनेन्स के अनुसार ही हुआ करती थी। मैजिस्ट्रेट के अधिकार बढा दिये गये थे। वे लम्बी-लम्बी सजाएँ दे सकते थे। एक आदमी था जिसकी उम्र साठ से कम न होगी। उसके हाथ मे कुछ ऐब था जिससे उसकी अँगुलियाँ पूरी खुलती न थी। पैर का लँगडा होने के कारण मुश्किल से चल सकता था, दौडने की तो बात ही नही हो सकती थी। जेल मे भी बीमार था। अस्पताल मे ही था जहाँ मै था। मुकदमा यह था कि पटना-राँची-रोड पर, जो बहुत चालू सडक है, एक आदमी बैलगाडी पर बोरो मे भरकर चावल ले जा रहा था। कुछ डाकुओं ने गाडी रोककर चावल लूट लिया। वे बोरो को पीठ पर लेकर खेतो से होकर भाग निकले। गाडीवाले ने शोर मचाया तो कुछ आसपास के लोग आ गये। सबने डाकुओं का पीछा किया। प्राय १-१॥ मील दूर जाने पर खेतो मे बोरे फेककर डाकू चम्पत हो जाना चाहते थे, पर लोगो ने उन्हे पकड लिया। उन्ही डाकुओ मे से उपरोक्त अष्टावक्रजी भी थे। चूँकि वह बहुत बीमार था, इसलिए मैजिस्ट्रेट ने जेल के अस्पताल मे आकर ही उससे बयान लिया और उसे सात साल की सजा दे दी। मै जब अस्पताल के अपने वार्ड से बाहर निकला तो वह पैर पकडकर रोने लगा। मैने उसे अपील करने को कहा। उसने जेलर से कहकर फैसले की नकल मँगायी। मैने अपील की दर्खास्त लिख दी। वह हाइकोर्ट से छूट गया। जजो ने सारी घटना को असम्भव समझा और इन गरीबो की गिरफ्तारी का कारण भी डकैती के बदले कुछ और ही समझा। मुझे यह देखकर पूरा विश्वास हो गया कि इन्साफ सचमुच अन्धा होता है—कम से कम आर्डिनेन्सो के मातहत काम करनेवाले मजिस्ट्रेटो ने तो उसे अन्धा बना दिया था। अगर ऐसा न होता तो अष्टावक्र को देखने के बाद कोई भी आँखवाला आदमी इस बात का विश्वास नही कर सकता कि वह गाडी पर से लूटकर चावल का बोरा पीठ पर लादे १-१॥ मील तक धान के खेतो से होते हुए भागने के बाद पीछा करनेवालो द्वारा पकडा जाय। जिस आदमी के हाथ की अँगुलियाँ नही खुलती, जिसका हाथ सीधा नही हो सकता, जिसके पैर ऐसे लँगडे थे कि वह मुश्किल से चल सकता और जिसकी अवस्था ६० बरस की हो, वह दो मन चावल

का बोरा पीठ पर लेकर एक-डेढ मील भाग सका होगा, इसका विश्वास अन्धा ही कर सकता था। पर मजिस्ट्रेट ने विश्वास करके सात साल की सजा उसे दे दी थी।

राजनीतिक मुकदमो का तो कहना ही क्या। पटना-जिले का कुछ हिस्सा बरसात मे पानी से भर जाता है। उसे 'टाल' कहते हे। बरसात मे रेल पर से ही, जहाँ तक आँखे देख सकती है, जल ही जल नजर आता है। इस टाल मे जो गाँव है वे बरसात मे दुनिया से एक प्रकार से अलग हो जाते है। वहाँ से बाहर निकलने के लिए नाव के सिवा दूसरा कोई जरिया नही। यो ही दूसरे मौसम मे भी इन गावो म हफ्ते मे एक बार डाकिया डाक ले जाया करता है। बरसात मे तो शायद महीने म एक-आध बार डाकिया पहुँच जाता हो तो बहुत है। ऐसे ही एक छोटे गाँव के लोगा का, वहाँ के एक जुजवी जमीन्दार के साथ, कई बरसो से झगडा चला आता था। इस आन्दोलन को गनीमत समझ कर उन्होने वहाँ के प्रमुख किसानो पर पुलिस से राजनीतिक मुकदमा चलवा दिया। वे गिरफ्तार कर जेल मे लाये गये। जब उनका मुकदमा दौरा-सपुर्द हो गया तो वे बाँकीपुर-जेल मे ही रखे गये। सेसन मे इतने मुकदमे थे कि इस मुकदमे की सुनवाई १९४४ के जून-जुलाई के पहले न हो सकी। वे लोग प्राय दो बरसो तक तो हाजत मे ही पडे रहे। उन पर जुर्म बडे सगीन लगाये गये थे—उस गाँव के लोगो ने, बम्बई के ८ अगस्त के प्रस्ताव के बाद, काँग्रेस के हुक्म से, अपने और आसपास के गाँवो मे ब्रिटिश राज्य उठाकर अपना राज्य कायम कर लिया है—एक आदमी राजा हो गया था, दूसरा मत्री, तीसरा सेनापति, इस तरह और लोग भी इस राज्य-स्थापना मे मदद करते थे और इस राज्य को चलाने के लिए लोगो पर 'कर' लगाया था। जो कडे से कडे दफा हो सकते है, सभी उन पर लगाये गये थे और उनकी सजा फाँसी तथा माल-जायदाद की जब्ती हो सकती थी। राजा, मत्री और सेनापति अपने अन्य साथियो के साथ बाँकीपुर-जेल मे लाये गये। सेनापति इतना बीमार थे कि इन दो बरसो मे उनका अधिक समय अस्पताल मे ही बीता। मुकदमा सेसन-जज के सामने पेश हुआ। पुलिस का बयान यह हुआ कि बम्बई की खबर पाकर इन लोगों ने अपना राज्य कायम कर लिया, उस गाँव मे तथा आस-पास के गाँवो मे लोगो से 'कर' वसूलने लगे और जो 'कर' नही देता उसका घर-माल लूट लेते। उन लोगो का जवाब था कि सारा मुकदमा झूठा है, वे लोग काँग्रेस के साथ कोई सम्बन्ध नही रखते थे, बम्बई के फैसले का उनको कुछ पता ही न था, गाँव के उस छोटे जुजवी जमीन्दार ने अपना वैर साधने के लिए उन्हे झूठे मुकदमे मे फँसा दिया है। सेसन-जज का फैसला हुआ कि मुकदमा बिलकुल झूठा और बे-बुनियाद है, उस जमीन्दार ने ही इसे खडा कराया है, क्योकि ऐसे गाँव मे—जिसका सम्बन्ध बरसात मे बाकी दुनिया से एक प्रकार से टूट जाना है—बम्बई के फैसले और आन्दोलन की खबर भी न पहुँची होगी, क्योकि जिस दिन वहाँ स्वतत्र राज्य-स्थापना की बात कही जाती थी उस दिन तक पटना-शहर मे भी आन्दोलन ने अभी जोर नही

पकडा था। अन्त मे, सबके सब छूट गये, पर दो बरसो तक हाजत मे रहने और मुकदमे मे बहुत खर्च करने के बाद।

एक दूसरा मिसाल और लीजिए। १८–२० बरस का एक लडका था। राज-नीति से उसका कोई सम्बन्ध न था। देखने मे जरा अच्छा था। पुलिस को उससे कुछ रज था। वह छोटी-मोटी मामूली चोरियाँ करनेवाला अथवा पाकिटमार-सा कुछ होगा। ९ अगस्त का आन्दोलन आरम्भ होने के कुछ पहले ही, वह बिना टिकट रेल पर जाने के लिए गिरफ्तार हुआ। इसी बीच मे आन्दोलन शुरू हुआ। पुलिस ने उसे कुछ दिनों के लिए जेल मे रख देने का सीधा उपाय यह समझा कि थाना लूटने, रेल तोडने, तार काटने इत्यादि के मुकदमो मे वह मुजरिम बना दिया जाय। पुलिस ने शायद सोचा कि इस तरह एक पाकिटमार की निगरानी का भार कुछ बरसो के लिए उसके सिर से उतर जायगा। टिकटवाले मुकदमे मे उसकी एक हफ्ता कैद की सजा हुई जो बहुत जल्द समाप्त हो गयी। किन्तु उस पर और कई मुकदमे थे। वह राजनीतिक हाजतियो के साथ जेल मे रखा गया। एक मुकदमा हुआ जिसमे उसने बयान किया कि वकूआ के बहुत पहले से वह जेल मे बन्द रहा है। मजिस्ट्रेट ने उसकी बात मान ली और रिहाई कर दी। परन्तु उस पर और भी इस प्रकार के आन्दोलन-सम्बन्धी मुकदमे थे, इसलिए वह छूटा नही। दो-तीन मुकदमे हुए और सबमे वह बरी होता गया, पर छूटा नही। इस तरह कई महीने बीत गये। एक और मुकदमा चला। उसका सम्बन्ध भी आन्दोलन से था। पर उसके यह बयान करने पर भी कि वह वकूआ के बहुत पहले से ही जेल मे रहा है और जेल का रजिस्टर माँगकर देख लेने से ही यह बात साबित हो जायगी, मजिस्ट्रेट ने कई बरसो की कैद की सजा उसे दे दी। अपील भी नामजूर हो गयी। पर उसकी ओर से एक दर्खास्त तैयार की गयी जिसमे सब बाते लिखी गयी—उसकी गिरफ्तारी की तारीख, वकूआ की तारीख, दूसरे मुकदमो का हाल जिनमे वह छोड दिया गया था, सब बाते खोल-कर लिखी गयी और कहा गया कि जेल का रजिस्टर मँगाकर देखा जाय कि वकूआ के दिन वह जेल मे था या नही। जिला-मजिस्ट्रेट जेल देखने आया तो उसने दर्खास्त उसको दी। जिला-मजिस्ट्रेट को आश्चर्य हुआ, पर वह दर्खास्त साथ लेता गया। मालूम हुआ कि उसने कागजो को मँगाकर देखा और उसे मालूम हो गया कि वह आदमी गलत सजा पाकर जेल मे सड रहा है। उसने गवर्नमेण्ट को लिखा और उसकी रिहाई का हुक्म मँगवाया।

इस तरह की धाँधलियाँ न मालूम कितनी ही हुई जिनके शिकार राजनीतिक लोग तो हुए ही, दूसरे लोगो की सख्या भी कम न रही। राजनीतिक लोगो की सजा की बात क्या कहूँ! कहाँ तक कहूँ? ऐसे लोगो को भी देखा जिनको २५-२५ साल की सजा मिली थी। ऐसे भी थे जिनको ५० बरस से भी अधिक लम्बी सजा मिली थी। एसे लोगो की सख्या भी कम न थी जिनको १० बरस अथवा दामुल (डामल हौस) की सजा दी गयी थी। साल दो साल और चार साल की तो बात ही क्या!

जब कलकत्ता हाइकोर्ट ने उस आर्डिनेन्स को, जिसके अनुसार ये मुकदमे चलाये गये थे, गैर-कानूनी बता दिया और लार्ड लिनलिथगो को नया आर्डिनेन्स बनाना पडा तथा इन मुकदमो के अभियुक्तो को अपील का मौका मिला, तो हाइकोर्ट ने बहुतेरो को छोड दिया। बहुतेरो की सजाएँ कम कर दी गयी। बहुतेरे तो यह कहकर छोड दिये गये कि जितनी सजा वे भुगत चुके है, काफी है। शुरू मे ही, जब आन्दोलन जोरो पर था और मुकदमो का अभी आरम्भ ही हो रहा था, इस धाँधली के कुछ नमूने सामने आ गये, जिनमे से एक का जिक्र ऊपर किया गया है जिसमे आठ आदमियो को फाँसी की सजा जिला-जज ने दे दी थी।

इसके पहले के आन्दोलनो मे कॉंग्रेसी लोग अदालतो मे अपना बचाव नही किया करते थे। उस समय भी धाँधलियाँ तो हुआ करती थी, पर सजाओ मे कुछ मर्यादा रहती और इतनी लम्बी-लम्बी सजाएँ नही होती। जुर्माने मे बडी-बडी रकमे कही-कही ली जाती, पर आम तौर से लोग इन बातो की परवा नही करते और गाधीजी ने बचाव करने की जो मनाही कर दी थी उसे लोग मानते। इस बार के मुकदमो का रुख कुछ दूसरा था। इनमे बहुत लम्बी-लम्बी सजाएँ—फाँसी तक की—होती या होनेवाली थी। इसलिए यह प्रश्न उठा कि बचाव किया जाय या नही। बाँकीपुर-जेल मे ही ऐसे लोग थे जिनको फाँसी की सजा मिली। १९३०-३१ और १९३२-३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे भी जुर्मानो की वसूली मे बहुत धाँधली होने लगी थी। थोडी रकम के लिए घर का सब धन-माल कानूनी तरीके पर केवल जब्त ही नही किया जाने लगा, बल्कि गैर-कानूनी तौर पर लूटा भी जाने लगा। किसी ने बिना किसी से राय लिये ही हाइकोर्ट तक मामले को पहुँचा दिया। वहाँ से हुक्म हो गया कि इजमाल हिन्दू-खानदान का माल किसी एक आदमी के जुर्माने मे जब्त नही किया जा सकता। नतीजा इसका यह हुआ कि जुर्माने की वसूली की धाँधली बहुत कम हो गयी, क्योकि सभी जगहो मे लोगो को मालूम हो गया कि ऐसी नजीर कायम हो गयी है। इस बार जब मुझसे लोगों ने पूछा कि ऐसे सगीन मुकदमो मे बचाव किया जाय या नही, तो मैने राय दी कि बचाव जरूर किया जाय। कुछ लोगो को यह बात पसन्द नही आयी और कुछ लोगो को इसका पता ही न था कि मैने ऐसी राय दी है। इसलिए कुछ लोगो ने कोई बचाव नही किया और जो सजा हुई उसे हँसते-हँसते झेल ली। इनमे श्री जगलाल चौधरीजी थे जिनको दस साल की सजा मिली—और यह भी तब, जब उनका एक जवान लडका गोलियो का शिकार बन चुका था और उनकी गिरफ्तारी थाने पर हुई थी जहाँ उसके शव की तलाश मे वह गये थे।

जब नये आर्डिनेन्स के अनुसार अपील का मौका मिला तो उसमे भी मैने राय दी कि अपीले की जायँ। मैने यह राय दो कारणो से दी—एक कारण तो यह था कि मै समझता था कि बचाव करने से मजिस्ट्रेटो की धाँधली शायद कुछ कम हो और दूसरा कारण यह था कि मैने देखा कि इस आन्दोलन मे बहुतेरे ऐसे लोग

भी गिरफ्तार हुए थे जिनका कॉंग्रेस से कभी कोई सरोकार नही था और जो हर हालत मे अपना बचाव करते ही। कॉंग्रेसी लोगो मे भी ऐसे लोग थे जो अपना बचाव करना चाहते थे। सजाएँ भी कडी होनेवाली थी। इसलिए मैंने सोचा कि इनको यदि रोका जाय तो असन्तोष फैलेगा और हो सकता है कि रोकने पर भी बहुतेरे लोग बचाव करे। ऐसी अवस्था मे बचाव करने देना ही ठीक मालूम हुआ। मै जानता था और अपने विश्वास को, जिनसे भेंट होती थी उनसे, कह भी देता था कि यद्यपि उनकी सजाएँ लम्बी है तथापि वे और मेरे ऐसे लोग भी जो विना मीयाद के जेल मे रखे गये है, छूटेंगे सब एक ही समय। हो सकता है कि हम कुछ पहले छूट जायँ, पर-हम जब तक उनको भी छुडा न लेंगे, बाहर नही रह सकेंगे। बात भी ऐसी ही थी। हम इतने लोगो को लम्बी सजा भुगतने के लिए छोडकर खुद कैसे बाहर रह सकते थे? मुझे इस बात से सन्तोष हुआ कि जब महात्मा गाधीजी बाहर निकले तो उन्होने भी मुकदमो मे बचाव करने का ही आदेश दिया। चिन्ता उन लोगो के बारे मे होती जिनको फाँसी की सजा होती। जो कैद है वे तो कुछ आगे-पीछे जेल से निकाले जा सकते है, पर जिनको फॉसी की सजा दी गयी है वे तो सदा के लिए चले जायँगे। पटने मे कई आदमियो को फाँसी की सजा हुई, पर किसी न किसी तरह सबके सब बच गये। कुछ समय तो अपील वगैरह में लगा। पीछे जब हम लोग छूट गये और महात्मा गाधी फाँसीवाले मुकदमो के बारे मे लार्ड वेवल से बातें करने लगे, तो औरों के साथ पटनावालो की फाँसी की सजा भी डामलहौस (दामुल) मे वदल दी गयी, और कॉंग्रेस-मिनिस्ट्री आने पर वे छूट गये। पर मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर इत्यादि मे कई आदमी फॉसी पड ही गये। अगर वे भी सहसा लटका न दिये जाते तो अन्त मे छूटते ही, पर यद्यपि उनके साथ एक ही मुकदमे मे सजा पाये हुए लोग पीछे छूट गये तथापि वे लोग चले ही गये। उन लोगो को, जो फाँसी की सजा पा चुके थे, आज बाहर देखकर एक प्रकार की प्रसन्नता होती है और इस बात पर अफसोस भी होता है कि दूसरो को इसी तरह हम लोग नही बचा सके।

१४९—१९४२ की उत्तेजनाओं के परिणाम

इस बार जेल मे ९ अगस्त (१९४२) को मैं लाया गया। वहॉ से १९४५ मे १५ जून को निकला। जैसा ऊपर कह आया हूँ, शुरू मे मथुरा बाबू और श्री चक्रधरशरण मेरे साथ रहे, दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरे लिए नही। १९४३ के अक्टूबर मे श्री चक्रधरशरण हजारीबाग भेज दिये गये। मार्च १९४४ मे मथुरा बाबू की रिहाई हो गयी। उसके बाद ३ दिसम्बर १९४४ तक मेरे साथ केवल वाल्मीकि ही रहे। नये आर्डिनेन्स के अनुसार, गवर्नमेण्ट की ओर से, एक कमिटी हर छठे महीने आती और नजरबन्द लोगों से मिलती। जिनके लिए वह सिफारिश करती वे छोड दिये जाते। यह कमिटी पहली बार १९४४ के मार्च मे आयी। मथुरा बाबू उसी की सिफारिश पर अचानक छोड दिये गये। मुझसे कमिटी के मेम्बरो ने पूछा था कि

क्या मै छूटना चाहता हूँ, तो मैंने उत्तर दिया था कि अकेला नही, सब लोगो के साथ ही। इस पर उन्होंने पूछा कि यदि छोड दिया जाऊँ तो मुझे आश्चर्य होगा क्या ? मैंने उत्तर दिया था कि जरूर—बहुत आश्चर्य होगा। उन्होंने पूछा कि तोड-फोड का कार्यक्रम अगर कॉंग्रेस ने नही दिया तो लोगो को कैसे मालूम हुआ और यह बात सारे देश मे एक छोर से दूसरे छोर तक इतना जल्द कैसे फैल गयी। मैंने उत्तर दिया कि ८ अगस्त के प्रस्ताव के साथ-साथ गवर्नमेण्ट की एक विज्ञप्ति ९ अगस्त (१९४२) के सवेरे के समाचार-पत्रो मे निकली थी, जिसमे गवर्नमेण्ट ने गाधीजी और वर्किंग कमिटी के लोगो की गिरफ्तारी के कारण बताकर लोगो को यह समझाने की कोशिश की थी कि गवर्नमेण्ट की यह कार्रवाई उचित है—उसी मे यह बात साफ-साफ लिखी थी कि कॉंग्रेस की ओर से इस बार रेल-तार आदि तोडने-काटने का भी कार्यक्रम दिया गया है—उसी दिन या उसके दूसरे दिन मि० एमरी ने रेडियो पर भाषण किया था जिसमे भी यह बात कही गयी थी और यह भाषण भी अखबारो मे छपा था—कॉंग्रेस की ओर से कोई कार्यक्रम नही निकला था—लोगो ने समझ लिया कि यही कार्यक्रम होगा और गवर्नमेण्ट की ही बात पर विश्वास करके लोगो ने काम शुरू कर दिया।

मेरा आज भी विश्वास है कि इस कार्यक्रम का इतना अधिक और इतनी तेजी से प्रचार इसी कारण से हुआ। लोगो के दिल मे पहले से ही, जैसा मैंने ऊपर कहा है, १९३० से ही, इस तरह की बाते उठा करती थी, इस बार उसको पुष्टि मिल गयी और जन-साधारण ने उसे ठीक मान लिया। इसके दो जबरदस्त प्रमाण मुझे जेल मे उसी उमय मिल गये। मै समझ गया कि यह बात जोरो से चलेगी। मेरी गिरफ्तारी के थोडे ही दिन बाद फूलन बाबू जेल मे पहुँचे थे। उन्होंने कहा कि जब मेरी गिरफ्तारी की बात शहर मे पहुँची तो कुछ लोग उनके (फूलन बाबू के) पास पहुँचे और उनसे पूछा कि कार्यक्रम क्या है। लोग समझते थे कि मेरे साथ उनकी मुलाकात हुई होगी और मैंने कुछ बताया होगा। पर उनकी मेरी बहुत दिनो से मुलाकात हुई ही न थी, इसलिए वह कुछ नही बता सके। पर उसी दिन कुछ घटे पहले पत्रो मे गवर्नमेण्ट की विज्ञप्ति छप चुकी थी और लोगो का ध्यान उस ओर आ गया था। दो दिनो के बाद जब कुछ लडके सेक्रेटेरियट के गोली-काण्ड के बाद गिरफ्तार होकर बाँकीपुर-जेल मे लाये गये तो मैंने देखा कि वे सबके सब तार-टेलीफोन और रेल तथा सडको को तोडना-काटना और किसी तरह यातायात बन्द कर देना कार्यक्रम मे दाखिल समझते थे। जैसा ऊपर कह आया हूँ, जब जेल के फाटक के नजदीक एक लारी मे गिरफ्तार कुछ विद्यार्थी कही भेजे जा रहे थे तो जनता द्वारा वे बचा लिये गये और लारी जला दी गयी, फिर बाकी लारियो से उतारकर दूसरे छात्र कुछ देर के लिए जेल के अन्दर पुन लाये गये। मै बीमार तो था, पर तोभी मैंने उनको यह समझाने की कोशिश की कि यह अच्छा नही हुआ। इस पर उनका उत्तर यही मिला कि जब टेलीफोन-तार आदि तोडना और रेल

रोकना ठीक है तब तो लारी को भी बेकार कर देना उसी कार्यक्रम के अन्दर है, इसलिए यह भी ठीक होना ही चाहिए। मेरे बहुत कहने पर भी मेरी बात उनको जँची नही, यद्यपि मेरे लिहाज से वे कुछ अधिक बोले नही। वे तो जेल मे कुछ दिनो तक बन्द रहे, इसलिए उन्होंने तो इस कार्यक्रम को नही चलाया होगा। पर यह स्पष्ट था कि लोगो को यह विश्वास हो गया था कि यह तोड-फोड भी कार्यक्रम मे है।

इसी कारण, इतना जल्द, प्राय मुगलसराय से आसनसोल तक, ई० आई० आर० की मुख्य लाइन मे, गाडियो का आना-जाना बहुत दिनो तक बन्द रहा। इसी तरह पटना-गया-ब्रैन्च-लाइन भी बेकार कर दी गयी थी। केवल ग्रैण्डकौर्ड-लाइन मे बहुत नुकसान नही हुआ था, इसलिए उसकी गाडियो का आना-जाना बन्द नही हुआ। गगा के उत्तर तरफ बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे (अब ओ० टी० रेलवे) मे, इधर बनारस से लेकर कटिहार तक और उधर गोरखपुर-बस्ती से लेकर वहाँ तक की लाइन जहाँ छपरे मे वह बनारस-लाइन से मिल जाती है, बहुत तोड-फोड हुआ था—प्राय सभी जगहो पर इतने स्टेशन तोड-फोड दिये गये थे और लाइन भी इस कदर बर्बाद कर दी गयी थी कि कई महीनों तक गाडियाँ न चल सकी। इन्ही कारणो से, बिहार के बाहर के लोगो का विचार है कि समस्त बिहार और सयुक्तप्रान्त के पूरबी जिलो मे ही आन्दोलन का रूप सबसे ज्यादा उग्र और जबरदस्त रहा, अत यही सबसे अधिक गवर्नमेण्ट की सख्ती भी हुई। न मालूम कितने ही आदमी पुलिस और फौज की गोलियो के शिकार हुए। कितनो के घर जलाये और लूटे गये। कितनो को अन्य प्रकार की अकथनीय यातनाएँ सहनी पडी। जेल जानेवालों की सख्या का तो हमे कुछ ठीक पता भी न चला। हम इतना ही जानते है कि बिहार मे बहुतेरे मामूली कैदियो को राजनीतिक कैदियों के लिए जगह खाली करनी पडी और इस तरह मीयाद से पहले ही बहुतेरे छोडे गये। बहुतेरे तो, जिन पर सगीन जुर्म लगे हुए थे, हाजत से ही छोड दिये गये। लोगों का कहना है कि भागलपुर-जिले मे बाँका-सबडिवीजन के ३०–४० डकैत इसलिए छोड दिये गये कि वे बाहर जाकर डकैतियाँ करे ताकि जनता कांग्रेस से ऊब जाय। सुना कि उनमे से कुछ ने बाहर निकलकर आन्दोलन मे भाग लिया—एक को तो फाँसी की सजा हुई और दूसरे कइयो को दूसरी कडी सजाएँ मिली। मैंने जेल से छूटने के बाद गवर्नर से मुलाकात होने पर यह बात कही थी। उन्होंने जाँच भी करायी थी। मालूम हुआ कि बहुतेरे डकैत इस तरह बाँका मे छोड दिये गये थे। मैंने सुना कि आरम्भ मे, जब तक आन्दोलन जोरो पर था, चोरी-डकैती एकबारगी बन्द हो गयी थी।

आन्दोलनकारी लोगो ने कुछ डाकखाने या रजिस्टरी-आफिस वगैरह दखल कर लिये। कही-कही कुछ मे उन्होने आग भी लगा दी। पर शुरू मे जब आन्दोलन जोरो पर था तो यह भी सुनने मे आया कि जहाँ-कही रुपये मिले उन लोगो ने उनमे से एक नही लिया। चाँदी के रुपये तो उन दिनो देखने को भी कम ही मिला करते थे, इसलिए प्राय नोट ही मिलते। लोग उन नोटों को जला देते, उनसे व्यक्तिगत

लाभ उठाने का अथवा उन्हे आन्दोलन के लिए खर्च करने का खयाल भी किसी को न होता। पर कुछ दिनो के बाद यह बात न रही। कुछ लोग इस तरह से आये हुए धन का सग्रह आन्दोलन के लिए करने लग गये। यहाँ तक कि आन्दोलन के नाम पर डकैतियाँ भी की गयी। मालूम नही, इन डकैतियो मे मिला हुआ धन किसके पास गया और किसने उसे किस तरह खर्च किया। पर यह सब बहुत बाद मे हुआ जब आन्दोलन एक प्रकार से बन्द हो गया था। आन्दोलन के जोर के दिनो मे तो गवर्नमेण्ट के कर्मचारी ही लोगो को लूटखसोट के लिए आमत्रित करते। डाकखाना-वाले तो डाकखाने का लुट जाना ही अच्छा समझते—उनको यह कहने का बहाना मिल जाता कि जो रुपये जमा थे, लोग लूट ले गये, चाहे वे रुपये सचमुच लुटे हो या नही, पर गवर्नमेण्ट को नही मिले। बहुत जगहो मे, शुरू मे, थानावाले भी जनता के साथ मिल गये। लोगो के पहुँचते ही वे थाने पर झडा फहराने देते और उनके साथ मिलकर नारे लगाते। ऐसे थानेदारो के साथ जनता का भी अच्छा व्यवहार होता। सुना है कि कही-कही थानेदार को नाव या किसी दूसरी सवारी पर सवार कराकर जिले के सदर शहर मे लोगो ने पहुँचवा दिया और थाने पर कब्जा कर लिया। जहाँ थानेदार की ओर से ज्यादती हुई वही पर थानेदार के साथ जनता ने सख्ती की। कुछ जगहो मे वे मार डाले गये, पर ऐसी कम जगहे थी। कोई-कोई थानेदार बहुत जालिम साबित हुए, और जब फौज आ गयी तब तो पुलिस का रुख ही बदल गया—उन्होने बहुत जुल्म किया जिसका वर्णन करना भी कठिन है। इस जुल्म मे अधिकतर दारोगा वगैरह ऊपर के अफसर अधिक भाग लेते थे—सिपाही कान्सटेबुल ने कम भाग लिया।

यह सब कुछ जानने के बाद यह मानना पडेगा कि जनता ने रेल-तार तो खूब तोडा और सरकारी मकानो को भी क्षति पहुँचायी, पर जितना विस्तार आन्दोलन का था उतने अनुपात मे जनता ने सरकारी कर्मचारियो के साथ ज्यादा सख्ती नही की। जान ले लेना या मारपीट करना भी बहुत कम ही हुआ। ऐसा मालूम होता है कि जनता की धारणा हो गयी थी कि किसी आदमी को मारना-पीटना अथवा जान से मार डालना अहिसा के सिद्धान्त के विरुद्ध है, पर रेल-तार-मकान इत्यादि बेजान चीजो को तोडना-फोडना अथवा जला देना भी अहिसा के अन्दर ही है। यद्यपि गवर्नमेण्ट के कुछ आदमी मारे गये तथापि उनकी सख्या बहुत कम थी। जब हम यह देखते है कि बहुत दूर-दूर तक और बहुत समय तक आन्दोलन फैला और चलता रहा तब ध्यान मे आता है कि जनता अगर चाहती तो बहुत-से लोगो को आसानी से मार सकती थी। इससे तो यही मालूम होता है कि जनता ने जान-बूझकर कितनो ही को छोड दिया। अगर वह ऐसा न करती तो न मालूम कितने और थानेदार कत्ल हो गये होते। फिर भी इन थोडे-से लोगो के बदले मे गवर्नमेण्ट ने न मालूम कितनों को गोलियो का शिकार बना डाला। यदि दोनो ओर के मरे हुओ की सख्या का ठीक पता लगता तो अनुपात एक के बदले ७५ नही तो ५०—६०

जरूर पड़ता। पर यह तो अनुमान मात्र है। ठीक सख्या न तो मालूम हुई है और न शायद मालूम होगी ही। तोभी यह तो मानना ही पडेगा कि आन्दोलन बिलकुल अहिंसात्मक न रह सका और जनता भी इस बन्धन से बाहर निकल गयी।

आन्दोलन का जोर तो प्राय एक से दो महीने तक ही रहा। उसके बाद उसका असर जो कुछ रह गया हो, पर लोग आक्रमण न करके अपने बचाव मे ही लग गये और गवर्नमेण्ट के दमनचक्र का शिकार बनते रहे। कुछ लोगो ने पट पडे हुए आन्दोलन को फिर से उभाड़ने का बहुत प्रयत्न किया पर उस प्रयत्न का कोई विशेष फल देखने मे नही आया—वह फिर उठा या चला नही। इक्के-दुक्के वाकया कही-कही हुए, पर उनका असर न तो गवर्नमेण्ट पर कुछ पडा और न जनता की ही उनमे कोई विशेष दिलचस्पी रही—हॉ, उनके कारण दमन का जोर जारी रहा और जनता को बहुत-कुछ सहते रहना पडा। कुछ लोग जेल मे नही आये बाहर ही काम करते रहे। कुछ लोग जेल से निकलने पर इस प्रकार के प्रयत्न मे लगे रहे। पर थोड़े ही समय के बाद यह स्पष्ट हो गया कि प्रयत्न करनेवाले लोग अब इस समय जनता मे फिर जोश नही पैदा कर सकेगे और आन्दोलन फिर जारी नही किया जा सकेगा। जो लोग इस तरह के प्रयत्न मे लगे हुए थे वे लुक-छिपकर ही काम कर सकते थे। इस आन्दोलन मे इस प्रकार के बहुतेरे लोग थे। कुछ दिनो के बाद तो उन लोगो को अपनी रक्षा के सिवा दूसरा काम करने का न तो समय मिलता और न साधन। फरार रहना ही एक ऐसा काम हो गया जो उनकी सारी शक्ति और सारा समय ले लेता। तब भी बहुतेरों ने बहुत बहादुरी से काम लिया। कही-कही जबरदस्त सगठन भी कर दिया जिसको हजार कोशिश के बाद भी गवर्नमेण्ट तोड न सकी और उनका पता भी न पा सकी। जब कॉग्रेस-मन्त्रिमण्डल बन गये उन सब लोगों पर से मुकदमे और गिरफ्तारी के वारंट उठा लिये गये, तभी वे बाहर निकले या तभी गवर्नमेण्ट के कर्मचारी उनका पता पा सके। इस कार्यपटुता और बहादुरी के लिए वे प्रशसा के पात्र है। पर मेरा अपना विश्वास है कि यदि लुक-छुपकर काम न किया गया होता तो उनमे से कुछ लोग जरूर मारे जाते, फॉसी पड़ते अथवा दूसरे प्रकार के कठोर दमन के शिकार बनते, परन्तु निरीह जनता पर जितना जुल्म हुआ उतना न होता और आन्दोलन भी कही अधिक आगे बढ़ गया होता तथा जल्द दबाया भी न जा सकता। जनता के सामने भी ऐसे लोग हमेशा मौजूद पाये जाते जिनको वह अपना नेता मानती—जिनकी बातों पर वह खुशी-खुशी जान देती और धन लुटाती। लुक-छुपकर काम करने का यह असर हुआ कि काम बहुत व्यापक रूप मे न हो सका—थोड़े लोगो की कार्रवाइयों का प्रतिफल बहुतेरे दूसरे बेकसूर लोगों को भोगना पड़ा। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि रेल-तार तोडनेवाले लोग सामने आकर काम करते और अपने कामो को कबूल कर लेते तो दूसरे लोगो की हिम्मत कही अधिक बढ जाती—मुमकिन है कि एक के बदले सैकड़ो दूसरे लोग उसी काम के लिए तैयार हो जाते और सजा भी उन्ही

लोगो को मिलती जो कबूल करते, बेकसूर बहुत-कुछ बच जाते। जो हो, यह तो अहिंसा के सिद्धान्त की बात है। जो लोग उसमे विश्वास नही रखते उनको भला उसकी पाबन्दी कैसे पसन्द हो सकती है। जहाँ तक जनता की हिम्मत बढी थी वह खुले-आम विद्रोह के कारण ही बढी थी—वह नीति जारी रहती तो और भी बहुत कुछ बढ़ती।

१५०—बंगाल का अकाल और भारत की अखंडता

जेल मे रहते-रहते बगाल के भयकर अकाल का हाल हमारे सुनने मे आया। १९४३ की गर्मियो मे चावल और खूराक की चीजो का दाम इतना बढ गया कि लोगों के लिए अन्न खरीदना कठिन होने लगा। जब मै बचपन मे छपरे और पटने मे पढता था तो एक बार अकाल पडा था। मुझे याद है कि गवर्नमेण्ट की ओर से जहाँ-तहाँ लोगों को काम कराकर मदद देने के लिए बडे-बडे तालाब खुदवाये गये थे। मेरे गाँव से कुछ दूर पर एक बडा तालाब खोदा गया था। जहाँ-तहाँ गरीबो के लिए पका हुआ अन्न भी बाँटा जाता था। उस समय तक अच्छा चावल रुपये मे १५ सेर बिका करता था। उसके बाद से घटकर ९-१० सेर का हो गया। उसके बाद एक बार और कुछ महँगी हुई तो वह और भी घटकर रुपये मे ५–६ सेर बिकने लगा। १९४३ मे रुपये मे सवा सेर या डेढ सेर मामूली तौर से चावल का दाम हो गया। जेल मे हम लोगो को अखबारों से कुछ खबर मिलने लगी। आहिस्ता-आहिस्ता बगाल की हालत और भी बिगडी। कुछ लोगो के वहाँ भूखो मरने की खबर होने लगी। थोडे ही दिनों मे यह बात मालूम होने लगी कि कलकत्ते की सडको पर लोगो की लाशे मिलती है। कुछ दिन बाद अखबारो मे मृतकों की तसवीरे भी छपने लगी। इस दिशा मे सबसे पहले 'स्टेट्स्मैन' ने काम शुरू किया। दूसरे हिन्दुस्तानी पत्रो मे भी बहुत तसवीरे छपी। जनता की ओर से लोगो को मदद पहुँचाने का प्रयत्न होने लगा। मै शुरू मे अखबारो मे इन खबरों को पढता और तसवीरे भी देखता। पर कुछ दिन बाद स्थिति की भयकरता इतनी बढ गयी कि मेरे लिए तसवीरो को देखना और खबर पढना भी असह्य हो गया। मैने अखबार पढना बन्द कर दिया। जेल मे बैठे-बैठे कोई कर ही क्या सकता था। पटने मे श्री प्रफुल्लरजन (पी० आर०) दास ने पीडितो की सहायता के लिए कुछ रुपये जमा करने का प्रयत्न किया। उन्होने एक अपील निकाली। मैने सोचा, यह काम ऐसा है जिसमे और कुछ नही तो अपने पत्र द्वारा लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ तो थोडा सन्तोष होगा। मैने एक पत्र श्री दास महाशय के नाम लिखा जिसमे उनकी अपील का समर्थन किया। फसल तैयार होने के समय जनता से अन्न-दान के लिए अपील करके कुछ अन्न जमा करने का रास्ता भी सुझाया। कुछ दिनो के बाद गवर्नमेण्ट का हुक्म आया कि मेरा पत्र श्री दास के पास नही भेजा गया, रोक लिया गया। इसकी खबर बाहर किसी को शायद आज तक न होगी।

बगाल की स्थिति इतनी बिगडी कि न मालूम कितने लाख लोग मरे। जन-नायकों का मत है कि ५० लाख के लगभग लोगो को अकाल ही काल का कवल बनना पडा। सरकारी अनुमान भी शायद १५-२० लाख का है। जो दर्दनाक घटनाएँ हुईं वे अवर्णनीय हैं। कारण जो हो, शुरू मे गवर्नमेण्ट कुछ नही कर सकी। सर नाजिमुद्दीन प्रधान मत्री थे और खूराक के मत्री श्री सोहरावर्दी। गवर्नर थे सर हर्बर्ट, वडे लाट थे लार्ड लिनलिथगो। मुझे आश्चर्य होता कि इतनी दुरवस्था मे भी वहाँ की जनता चुपचाप कैसे सब कुछ सह रही है। कम से कम मत्रिमण्डल कैसे खुद काम कर सकता है और असम्बली के मेम्बर ही उसे कैसे चलने देते हैं। पर लडाई का जमाना था। आर्डिनेन्सो की हुकूमत थी। मुस्लिम लीग के हाथो मे अधिकार था। कोई कुछ कर न सका। लार्ड लिनलिथगो ने कॉग्रेसी लोगो को दबाने मे तो काफी तेजी और तनदेही से काम किया था; पर जब बगाल मे इतने लोग मरे जितने इस महायुद्ध-भर मे दुनिया के सभी देशो को मिला कर भी न मारे गये होंगे, तो उनसे इतना भी न हो सका कि एक दिन के लिए भी वह बगाल जाते। उनके चले जाने पर जब लार्ड वावेल गवर्नर-जेनरल (वाइसराय) होकर आये तो आते ही बगाल गये। वहाँ फौज को उन्होंने हुक्म दिया कि लोगो को मदद पहुँचाने का काम वह करे। सर हर्बर्ट बीमार पड गये। उनकी जगह पर बिहार के गवर्नर वहाँ भेजे गये। इन्होंने भी स्थिति सँभालने मे मदद की। किसी तरह से, कई महीनो के बाद, हालत कुछ बदली। लोगो का सडको पर बे-मौत मरना बन्द हुआ।

जन-श्रुति कहती है कि इस विपत्ति से बहुतेरो ने, जिनका काम जनता की रक्षा करना था और जिनके जिम्मे यह काम दिया गया था, बहुत रुपये कमाये और कितने तो मालामाल हो गये। इसके कारणो मे एक प्रधान कारण यह भी कहा जाता है कि गवर्नमेण्ट ने लडाई के कारण लोगों से धान-चावल ले लिया था और उनकी छोटी-छोटी नौकाएँ भी ले ली थी। शत्रु को कुछ न मिलने देने के लिए समुद्र-तट के स्थानो को साधन-हीन अथवा 'मरुभूमि' बना देने की जो नीति (Scorched earth policy), जापानी आक्रमण के कारण, बरती गयी थी वह इस अकाल के लिए कम जवाबदेह नही थी। उस समय लार्ड वावेल ही फौजी लाट थे। उस नीति की जवाबदेही उन पर ही थी। इसीलिए बडे लाट होकर पहुँचते ही उन्होंने, उस नीति के कारण उपस्थित स्थिति के सँभालने मे, फौज द्वारा मदद करना आवश्यक माना। इसी से स्थिति कुछ सँभली भी।

बिहार मे भी अन्न का दाम वैसे ही बहुत बढ गया था। तीस रुपये मन चावल बिकने लगा था। पर बिहार मे बगाल-जैसी हालत नही हुई। यहाँ भूखो मरने-वालो की खबर अखबारो मे कम से कम देखने मे नही आयी। एक बात इस अकाल से स्पष्ट हो गयी और वह यह कि इस विपत्ति मे सारे भारत के लोग बगाल की मदद के लिए ठीक उसी तरह दौड पडे जैसे बिहार मे भयकर भूकम्प के बाद। फर्क इतना ही था कि इस समय लडाई के कारण लोगो के पास साधन नही थे। रुपये होने

पर भी लोगों को सरकारी मदद बिना अन्न नही मिल सकता था। अगर कही दूर अन्न मिलता भी तो सरकारी आज्ञा और मदद बिना वह बगाल पहुँचाया नही जा सकता, क्योकि रेल-स्टीमर इत्यादि यातायात के सभी साधनो पर नियत्रण था। इसलिए इच्छा रहते भी जितनी मदद की जरूरत थी उतनी लोग न पहुँचा सके। इसके अलावा यह विपत्ति बहुत दूर मे फैली हुई थी और बहुत दिनो तक टिकी रही। भूकम्प तो चन्द मिनटो का मामला था। उसके बाद केवल उसके असर को ही दूर करना था। यहाँ तो विपत्ति ही महीनो तक अपना काम करती रही। उसके ऊपर युद्ध-कालीन नियत्रण अपनी करामात कर ही रहा था। भारतवर्ष एक है। उसकी जनता एक है। इसका एक अकाट्य प्रमाण इस विपत्ति ने दिया। पर क्या इसका असर उन पर भी पडा जो इसे विभाजित करना चाहते है?

१५१—जेल में ग्रन्थ-लेखन का काम

इस बार जेल मे मैंने कुछ लिखा भी। यो तो १९३० मे भी मैंने कुछ लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह पूरा न हो सका था—पीछे जो कुछ लिखा भी था वह खो गया। मैंने पहले से पाकिस्तान-सम्बन्धी कुछ अध्ययन किया था। वहाँ जाकर विचार हुआ कि इस विषय का विशेप रूप से अध्ययन करूँ। कुछ ऐसी पुस्तकें, जो पाकिस्तान के समर्थन मे लिखी गयी थी, मँगायी गयी। उनके पढने के बाद विचार हुआ कि इस बात को देखना चाहिए कि जिस आधार पर यह मॉग पेश की जाती है वह कहाँ तक ठीक है। इसके बाद यह विचार हुआ कि यह भी देखना जरूरी है कि 'मुस्लिम लीग' पाकिस्तान किसे कहती है—उसकी मॉग यदि कोई मान लेना चाहे तो उसे क्या देना होगा और मुस्लिम लीग को क्या मिलेगा—क्या पाकिस्तान अपने पॉवो पर खडा हो सकेगा? अन्त मे मैंने सोचा कि इस विषय पर कुछ लिखने की गुजाइश है—यद्यपि इसका पता नही था कि हम लोग कब जेल के बाहर जा सकेंगे और जो कुछ मै लिखूँगा वह कभी छपेगा या नही, तो भी अपने विचारो को साफ-साफ ऐसे रूप मे लिपिबद्ध कर देना, जो दूसरो की समझ मे आ जाय, ठीक जँचा। मैंने निश्चय किया कि कुछ लिखूँ। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यदि इस सम्बन्ध की सभी बाते देश के सामने—विशेषकर मुसलमानो के सामने—आ जायँ तो जिस तरह विशेष अध्ययन के बाद उसके चलने मे मुझे शक हो गया है उसी तरह दूसरे भी इसे अव्यवहार्य समझ लेंगे। इसलिए मैंने निश्चय किया कि उन्ही बातो को कलमबन्द करूँ जिनसे यह अव्यवहार्यता मालूम हो जाय। पाकिस्तान को अव्यावहारिक सिद्ध करनेवाला वह भाग लिख जाने के बाद इसके आधार के सम्बन्ध मे भी लिखना उचित जान पडा, अर्थात् भारत मे हिन्दू-मुसलमान दो-दो राष्ट्र है, इसलिए उसका विभाजन करके दो स्वतत्र देश और राष्ट्र स्थापित कर देना चाहिए। इस तरह, जैसे-जैसे लिखता गया, पुस्तक का आकार बढता गया। काम बहुत तेजी से नही हो रहा था। एक तो स्वास्थ्य ऐसा नही था कि बहुत परिश्रम कर सकूँ। जब बीमार पड़

जाता तो महीनो न कुछ पढ पाता और न लिख पाता। जब अच्छा रहता तो पढता और लिखता। कुछ जल्दी करने की जरूरत भी नही जान पडती थी, क्योकि इसकी आशा तो थी नही कि जेल मे रहते-रहते कोई पुस्तक प्रकाशित करने की इजाजत मिलेगी, और अभी छूटने का कोई करीना भी नही नजर आता था। इसलिए आहिस्ता-आहिस्ता थोडा-थोडा करके लिखा।

इसी बीच मे कोई साथी जेल से रिहा होकर बाहर निकले। उन्होने किसी समाचारपत्रवाले से कह दिया कि मै पाकिस्तान के सम्बन्ध मे एक पुस्तक लिख रहा हूँ। यह बात प्रकाशित हो गयी। सरकारी कर्मचारी कभी-कभी जेल मे आया करते है। कमिश्नर आये। उन्होने पूछा कि मेरी पुस्तक कहाँ तक लिखी जा चुकी है। मैने कहा कि करीब-करीब पूरी हो चुकी है। उन्होने उसे देखना चाहा। मैने हस्तलिखित बहियाँ उनके हाथ मे दे दी। एक तो मै कुछ महीन छोटे अक्षरो मे लिखने का आदी हूँ, दूसरे—कागज की कमी के कारण, पन्ने के दोनो ओर लिखा था। चूँकि पुस्तक थोडा-थोडा करके लिखी गयी थी—जहाँ कोई नयी बात सामने आ गयी अथवा किसी नयी पुस्तक से मालूम हो गयी उसे यथास्थान चस्पाँ कर देता, इस तरह जहाँ थोडी भी जगह छोडी गयी थीं वह भी बिलकुल भर गयी थी और कही-कही तो पढे जाने की सुविधा के लिए दूसरे रग की रोशनाई से भी काम लेना पडा था—इसलिए किसी भी दूसरे के लिए हस्तलिखित पुस्तक पढना काफी मुश्किल था। कमिश्नर ने पूछा कि क्या पुस्तक छपवाने का इरादा है। मैने उत्तर दिया कि अगर गवर्नमेण्ट इजाजत देगी तो छपाई जायगी। इस पर उन्होने कहा कि पुस्तक बगैर देखे गवर्नमेण्ट इजाजत नही देगी—जैसी हस्तलिखित पुस्तक की हालत है वैसी हालत मे उसे गवर्नमेण्ट का देख सकना भी कठिन है—गवर्नमेण्ट तो टाइप की हुई प्रति ही देख सकेगी। इस पर मैने कहा कि टाइप कराने का साधन तो मेरे पास नही है, पर यदि गवर्नमेण्ट इसकी सुविधा देगी तो टाइप करा लूँगा।

इस बातचीत के बाद मैने गवर्नमेण्ट को लिखा कि टाइप कराने के लिए मुझे सुविधा दी जाय और इसके लिए तीन तरीकों मे गवर्नमेण्ट जो चाहे अख्तियार करे। पहला तरीका यह होगा कि मेरे सहायक श्री चक्रधरशरण को टाइप करने का मौका दे जो मेरे अक्षरो से खूब परिचित है। वह उस समय तक रिहा हो चुके थे। इसलिए वह जेल के अन्दर तो आ नही सकते थे, न उनसे मेरी मुलाकात हो सकती थी, न जब तक गवर्नमेण्ट मजूरी देगी तब तक पुस्तक जेल के बाहर भेजी जा सकेगी। इसलिए उनको जेलर के दफ्तर मे बैठकर टाइप करना होगा और हस्तलिखित तथा टाइप की हुई प्रति को जेलर के पास ही रख छोडना होगा। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि गवर्नमेण्ट अपने किसी कर्मचारी को इस काम के लिए नियुक्त कर दे और इसका जो खर्च होगा वह मै दूँगा। तीसरा तरीका यह हो सकता है कि अगर कोई टाइप करना जाननेवाला कैदी हो तो उसे बाँकीपुर-जेल मे बुला दिया जाय और वह टाइप कर दे। सोचने के बाद मुझे स्मरण हो आया कि काँग्रेसी

कार्यकर्त्ता जमशेदपुर-लेबर-युनियन के मत्री श्री माइकेल जौन टाइप करना जानते हैं—वह आन्दोलन के कारण इस समय दूसरी बार गिरफ्तार होकर और सजा पाकर हजारीबाग-जेल मे है। मैने लिखा कि यदि वह बॉकीपुर बुला दिये जायें तो वह इस काम को कर सकेगे। मैने इसे ही सबसे अधिक सुविधाजनक बताया, क्योकि जैसा घना और बारीक लिखा गया था वैसा पढने मे टाइप करनेवाले को काफी दिक्कत होगी, उसको बार बार मुझसे पूछना पडेगा। इसलिए यदि वह मेरे नजदीक रहे तो सुविधा होगी। इसके अलावा एक सुविधा यह भी होगी कि गवनमेण्ट की मजूरी के पहले बाहर के किसी आदमी को पुस्तक देखने का मौका नही मिलेगा।

गवर्नमेण्ट ने मेरी बात मान ली और श्री जौन को बॉकीपुर-जल मे भेज दिया। उन्होने बहुत परिश्रम करके, जहॉ तक मै लिख चुका था, टाइप कर दिया। इत्तफाक से यह काम सन् १९४५ ई० मे तारीख १४ जून की सन्ध्या को समाप्त हुआ। उसी दिन, रात को, हम लोगो को मालूम हो गया कि मै कल १५ जून को ही सवेरे छोड दिया जाऊँगा। अब यह प्रश्न हुआ कि हस्तलिखित और टाइप की हुई प्रतियो का क्या होगा ? क्या दोनो मेरे साथ बाहर आने पावेगी या गवर्नमेण्ट उनको देख लेने के बाद ही बाहर जाने की इजाजत देगी ? सुपरिण्टेण्डेण्ट, बिना सरकारी आज्ञा के, बाहर ले जाने की इजाजत, अपनी जवाबदेही पर नही देना चाहते थे। पर गवर्नमेण्ट से पूछने पर उन्होने जाने देने की आज्ञा दे दी। इस तरह, जब मै बाहर निकला, तैयार पुस्तक के साथ निकला।

ऊपर मै कह चुका हूँ कि १९४४ के मार्च से नवम्बर तक मै प्राय अकेला ही बॉकीपुर-जेल मे था, केवल एक वाल्मीकि ही मेरे साथ था। जब जॉच-कमिटी के लोग अक्टूबर मे आये तो उनको यह बात मालूम हुई कि मै अकेला ही हूँ। उन्होने गवर्नमेण्ट के पास लिखा कि एक साथी मेरे पास रखना उचित होगा। नाम पूछने पर मैने कई मित्रो के नाम बताये। गवर्नमेण्ट ने श्री फूलनप्रसाद वर्मा को भेज दिया। वह भी १९४५ के आरम्भ मे रिहा हो गये। उसके बाद श्री मणीन्द्रकुमार घोष को हजारीबाग से बॉकीपुर मेरे साथ रहने के लिए भेजा। वह एक बडे परिश्रमी और विचारशील सज्जन है। आँकडो से डरते नही है। मेरी पुस्तक देखकर उनकी इच्छा हुई कि वह हस्तलिखित प्रति पढे। मैने उसे पढने को दिया। साथ ही, यह बेगार उन पर लाद दिया कि वह ऑकडो को जॉच जायँ ताकि अगर कही कोई भूल रह गयी हो तो वह दुरुस्त हो जाय। बहुत परिश्रम करके उन्होने इस काम को पूरा किया। पुस्तक पढते-पढते उनको ऐसा जँचा कि एक कमी रह गयी है—मैने पुस्तक मे यह नही दिखलाया है, कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या किस तरह जटिल होती गयी है और किस तरह वह यहॉ तक पहुँच गयी है कि मुस्लिम लीग को उसे सुलझाने का एकमात्र उपाय देश का विभाजन ही सूझ रहा है।

मै पहले कह चुका हूँ कि जेल से मेरे छूटने के दिन ही टाइप करने का काम समाप्त हुआ था। जब टाइप हो रहा था तो मुझे कुछ नया लिखने का समय नही

मिलता था, क्योंकि जो टाइप होता जाता था उसे एक बार देख लेना जरूरी मालूम होता था। टाइप करने के समय मे भी कुछ नया जोडना ही जाता था। श्री जौन को भी अक्सर मुझसे कुछ न कुछ पूछते ही रहना पडता था। इसलिए मै वहाँ पुस्तक का एक भाग और लिखकर मनी बाबू की बात को पूरा न कर सका, पर उसे भूला नही। जेल से बाहर निकलने के बाद जब १९४५ के अगस्त मे स्वास्थ्य सुधारने के लिए पिलानी (राजपूताना) गया तब उस भाग को लिखकर पूरा किया। श्री चक्रधर-शरण ने टाइप किया। पिलानी से बम्बई जाते हुए, रेल मे, उसका अधिकाश देखकर, मथुरा बाबू की मदद से, प्रेस के लिए तैयार कर सका। बम्बई पहुँचने तक प्राय पुस्तक प्रेस के लिए तैयार हो गयी। वही उसका नामकरण हुआ--'इण्डिया डिवाइ-डेड' (India Divided)। छपने के लिए पुस्तक प्रेस मे दे दी गयी। १९४६ की जनवरी के आरम्भ मे ही पुस्तक छपकर प्रकाशित हुई। एक महीने के अन्दर ही पहले सस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयी। तीन-चार महीनो मे दूसरी बार वह फिर छपी और बिकी।

जेल मे मैने एक चीज और लिखी। जब मै १९४० मे स्वास्थ्यसुधार के लिए सीकर (जयपुर-राज्य) गया था तो मैने एक दिन अपने सस्मरण लिखने का विचार किया और लिखना भी आरम्भ कर दिया। किसी से यह बात कही नही। मथुरा बाबू को भी, जो दिन-रात साथ रहते थे, इसका पता कुछ दिनो तक नही लगा कि मै कुछ लिख रहा हूँ। मेरी आदत है कि सवेरे ४-४॥ बजे जाग जाया करता हूँ। उसी समय उठकर प्रतिदिन कुछ न कुछ लिख देता और दूसरो के जागने के पहले ही लिखना खत्म कर देता। वहाँ थोडा ही लिखा जा सका। वहाँ से लौटने पर फिर समय ही न मिला। दो बरसो के बाद जब जेल मे कुछ तबीयत सुधरी तो साथ के लोगों ने आग्रह किया कि मै उसे पूरा कर दूँ। मैने कहाँ तक लिखा था, यह भी ठीक याद न था। हस्तलिखित प्रति को घर से जेल मे मँगाना अच्छा नही मालूम हुआ, क्योंकि बिना सी० आई० डी० के पढे कोई चीज मुझे मिल नही सकती थी और मालूम नही कि पढने के बाद भी गवर्नमेण्ट उसे अन्दर लाने की इजाजत देती या नही। इसलिए मैने अन्दाज से ही वहाँ से आगे की बाते लिखना आरम्भ कर दिया, जहाँ तक मै समझता था कि सीकर मे लिख चुका हूँ। आहिस्ता-आहिस्ता वह भी बहुत-कुछ लिखा जा चुका। समाप्त भी शायद हो जाता, पर पीछे 'इण्डिया डिवाइडेड' मे ही सारा समय लगने लगा। अत सस्मरण को रख छोडा।

कभी-कभी दिल मे यह विचार भी उठता कि इस सस्मरण की जरूरत या उपयोगिता ही क्या है। मैने जो कुछ किया है या पाया है वह दूसरो के साये मे रहकर ही—पहले अपने भाई के और पीछे महात्मा गाधीजी के। मेरी कोई ऐसी हस्ती नही कि मेरा हाल दूसरो के लिए जानना जरूरी हो अथवा उससे दूसरे कुछ सीख सके। हाँ, मै सार्वजनिक कामो मे, विशेषकर कॉंग्रेस-सम्बन्धी कामो मे, लगा रहा हूँ। यदि उनके सम्बन्ध मे अपने सस्मरण लिख दूँ तो शायद लोगो को

(१) सरदार वल्लभभाई पटेल, (२) राजेन्द्रप्रसाद, (३) शंकरराव देव, (४) आचार्य कृपालानी, (५) खान अब्दुल गफ्फार खाँ, (६) प्रफुल्ल घोष (७) जवाहरलाल नेहरू, (८) सरोजिनी नायडू, (९) मौलाना अबुल कलाम आजाद, (१०) डा० पट्टाभि सीतारामैया, (११) भूलाभाई देसाई, (१२) किरणशंकर राय, (१३) गोपीनाथ बारदोलाई, (१४) गोविन्दवल्लभ पन्त, (१५) हरेकृष्ण मेहताब।

—पूना, सितम्बर १९४५

कुछ बात मालूम हो जायँ। पर इतिहास की दृष्टि से इस सस्मरण का कुछ मूल्य नही, क्योकि मैंने इतने लम्बे सार्वजनिक जीवन मे बहुत-कुछ लिखा नही है। अगर कुछ लिखा भी है तो उसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित नही रखी। और लोगो ने सार्वजनिक घटनाओ के सम्बन्ध की सामयिक सामग्री जमा करायी है, मैंने वह भी नही किया है। कुछ लोगो के महत्त्वपूर्ण पत्रव्यवहार दूसरो के साथ हुए हैं। मैंने स्वभाव से ही ऐसा कुछ नही किया है। और, यदि कुछ किया भी हो तो उसकी भी प्रतियाँ मेरे पास नही है। कुछ लोग रोजनामचा लिखा करते है, जिसमे सभी घटनाओ का प्रतिदिन उल्लेख हुआ करता है। मैंने यह अभ्यास ही नही किया कि रोजनामचा लिखा करूँ। इसलिए अपनी स्मरणशक्ति के सिवा सस्मरण लिखने का कोई दूसरा साधन भी मेरे पास नही था। इतिहास की दृष्टि से, केवल स्मरण-शक्ति पर निर्भर सस्मरण की भी, कोई विशेष प्रामाणिकता नही हो सकती है। इन्ही कारणो से कभी-कभी यह विचार उठता कि मेरा सस्मरण लिखना केवल अहम्मन्यता है, इससे दूसरो को कोई लाभ नही पहुँच सकता। तो भी, जब एक बार काम शुरू कर दिया तो उसे पूरा कर देना ही ठीक जँचा, प्रकाशित करने और न करने की बात पीछे देखी जायगी।

इस प्रकार, रामगढ-कॉग्रेस के समय तक के सस्मरण मै जेल मे लिख सका। एक प्रकार से यह सस्मरण सच्चा सस्मरण है, क्योकि इसमे केवल उन्ही बातो का उल्लेख है जो लिखते समय स्मृति मे आ गयी। इसलिए बहुत सम्भव है कि बहुतेरी महत्त्वपूर्ण बातो और घटनाओ का जिक्र ही न हो—कही-कही देश-काल के निर्देश मे भी भूल हो—कुछ बातो का जो गलत असर दिल पर रह गया है वही इसमे आ गया हो। पर एक बात मै कह सकता हूँ—जान बूझकर कोई गलत बात नही लिखी गयी है। मित्रो का अनुरोध है कि यह सस्मरण प्रकाशित किया ही जाय। उन्होने दूसरो को इसे दिखलाया। जो ऐसी चीजो के परखने के अधिकारी है उनकी भी राय हुई कि इसे प्रकाशित करना ही चाहिए—विशेषकर इसलिए कि मैंने इसे हिन्दी मे लिखा है। इसीलिए बाकी हिस्सा, जेल से बाहर निकलने के बाद, १९४६ के जुलाई-अगस्त मे, पिलानी मे बैठ कर लिख रहा हूँ।

१५२—मेरी रिहाई और कुछ दुःखद मौतें

जेल मे रहते हुए ही एक और भयकर एव दु खद विपत्ति आयी। यह बिहार पर ही आयी। मलेरिया का प्रकोप १९४४ मे बहुत जोरो से हुआ। बहुतेरे लोग मरने लगे। अखबारो मे इसकी खबर छपने लगी। इत्तफाक से श्री बाबू, अनुग्रह बाबू और दूसरे प्रमुख कॉग्रेसी लोग इस समय तक रिहा हो चुके थे। उन्होने जनता की मदद का काम शुरू किया। डाक्टरो ने डाक्टर टी० एन० बनर्जी की अध्यक्षता मे अपनी कमिटी बनाकर सेवा-कार्य आरम्भ किया। भूकम्प के समय कुछ रुपये बच गये थे। पहले ही कह चुका हूँ कि इस प्रकार की विपत्तियो के समय जनता की

सेवा के लिए एक ट्रस्ट बनाकर वे रुपये रख छोडे गये थे। जब कही बाढ वगैरह आती तो थोडा-बहुत सहायतार्थ उसमे से खर्च होता था। यह खर्च कुछ ज्यादा नही होता था। जो रुपये थे उनके ब्याज से ही यह काम हो जाया करता था। रुपयो का बहुत अश चर्खा-सघ को कर्ज दे दिया गया था। उसी से समय पर ब्याज के रुपये आ जाते जो बक मे पडे रहते और समय-समय पर खर्च किये जाते। १९४२ के अगस्त मे चर्खा-सघ का काम बिहार मे गवर्नमेण्ट ने एक प्रकार से बन्द कर दिया था। बक मे मेरे नाम के सभी खाते जब्त थे जिनमे एक खाता सहायता-कोष का भी था। मलेरिया का हाल पढकर मैंने गवर्नमेण्ट को लिखा कि जब्त रुपयो को सहायतार्थ खर्च करने की इजाजत दी जाय, और पहली रकम मैंने डाक्टरो की कमिटी को देने के लिए माँगी। गवर्नमेण्ट ने इसे मजूर कर लिया। रुपये उनको दे दिये गये। पीछे अनुग्रह बाबू ने जब सहायक-समिति का निर्माण किया तो उनको भी रुपये देने की इजाजत गवर्नमेण्ट ने दी। अन्त मे तो जो भी ट्रस्ट का पावना चर्खा-सघ के जिम्मे था, गवर्नमेण्ट ने सहायता-कार्य के लिए चर्खा-सघ के जब्त रुपयो मे से सब रकम दे दी। पर उतना सब खर्च नही हुआ। रुपयो का अधिकांश अब भी जमा है। मुझे इससे सन्तोष हुआ कि इस बार बगाल के अकाल के समय की तरह गवर्नमेण्ट ने जेल के अन्दर से कुछ सहायता पहुँचाने की इच्छा को विफल नही होने दिया।

इसी सिलसिले मे 'इण्डियन नेशन' ने यह लिखना शुरू किया कि सहायता-कार्य को सगठित रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि मै रिहा कर दिया जाऊँ। उसने मेरी रिहाई पर बहुत जोर दिया। जहाँ-तहाँ से जनता की ओर से भी ऐसी आवाज उठने लगी। मुझे यह बात अच्छी न लगी। मै राजनीतिक कारण से जेल मे लाया गया था। जब तक उसका कुछ निपटारा न हो जाय और हमारे सभी साथियो के छोडे जाने का रास्ता साफ न हो जाय, मै इस तरह मलेरिया-पीडित लोगो की सहायता के बहाने छूटना नही चाहता था। मै यह भी समझता था कि जो लोग बाहर है—जिनमे श्री बाबू, अनुग्रह बाबू, मथुरा बाबू प्रभृति है—सब काम सँभाल सकते है, मेरी कोई खास जरूरत भी नही है। मुझे ऐसा भी लगा कि कही गवर्नमेण्ट यह न समझ ले कि यह आन्दोलन मेरे छूटने के लिए ही एक बहाना ढूँढकर किया जा रहा है और यह मेरी अनुमति से अथवा कम से कम मेरे मित्रो की अनुमति से किया जा रहा है। मैंने गवर्नमेण्ट को एक पत्र लिख दिया कि यह आन्दोलन मेरी दृष्टि मे अनावश्यक है और मै इस तरह छूटना नही चाहता हूँ। पर जब मै बाहर निकला तो मालूम हुआ कि उस समय गवर्नर मुझे छोड देने का विचार कर रहे थे। किन्तु, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, जिसके हुक्म से ही वर्किंग कमिटी के लोग नजरबन्द रखे गये थे, शायद वर्किंग कमिटी के सदस्यो को अभी छोडना नही चाहती थी। यह भी मालूम हुआ कि गवर्नर ने कुछ लोगो से कहा भी कि मै खुद नही चाहता कि छोड दिया जाऊँ तो छूटने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है।

जो हो, उस समय, अर्थात् १९४४ की बरसात मे, छूटने की जो बात थी वह पूरी नही हुई। मै निश्चिन्त अपना काम करता रहा। इस तरह समय कटते कुछ देर न लगी। १९४५ मे १५ जून को मै छोड दिया गया।

इस बार गिरफ्तारी के समय ही हम समझ चुके थे कि जेल-यात्रा लम्बी होगी। उसके लिए अपने चित्त को तैयार कर लिया था। जैसे-जैसे आन्दोलन बढा और लम्बी-लम्बी सजाएँ लोगो को दी जाने लगी तो यह धारणा और भी पुष्ट हो गयी। हर बार जेल-यात्रा मे कुछ लोग जेलो मे मर भी जाते है। इस बार भी ऐसे लोगो की सख्या काफी रही। यह जानकर हमको विशेष दुख हुआ कि राची-जिले के टाना भगत लोगों मे से बहुतेरे जेलो मे मरे। इनके अलावा और लोग भी काफी मरे। पर जेल के अन्दर मरनेवालो की अपेक्षा बाहर गोलियो द्वारा मारे जानेवाले लोगो की सख्या कही ज्यादा थी। जिन लोगो ने इस प्रकार देश-हित के लिए अपने प्राणो को निछावर किया उनमे बहुत कम ऐसे थे जिनको मै जानता था। इसका विशेष कारण यह था कि मुख्य कॉग्रेसी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार करके जेलो मे रख दिये गये। जो बाहर रह गये वे बहुत ख्याति पाये हुए लोग नही थे। इसके अलावा इस लहर मे बहुतेरे नये लोग आये थे जो पहले कभी कॉग्रेस मे काम तो नही करते थे, पर इसे स्वराज्य के लिए गाधीजी की अन्तिम लडाई समझकर आ जुटे थे। यह तो मैने अपने सूबे के बारे मे कहा। सूबे के बाहर कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्तियो की मृत्यु हुई जिनका स्थान कभी भरा नही जा सकता। इनमे सबसे पहले, गिरफ्तारी के चन्द दिनो के अन्दर ही मरनेवाले, श्री महादेव भाई देसाई थे। वह गाधीजी के साथ ही गिरफ्तार होकर आगाखाँ के महल (पूना) मे उनके साथ ही रखे गये थे। वहाँ अचानक एक दिन हृदयगति रुक जाने से चल बसे। इसका असर पूज्य महात्माजी के दिल पर बहुत ही भारी पडा, क्योकि वह उनके दाहिने हाथ थे। जब से वह महात्माजी की सेवा मे आये थे तब से उन्होने अपने जीवन को गाधीजी की शिक्षा और सिद्धान्तो के अनुसार ढालने का सतत प्रयत्न किया था। इसमे बहुत सफलता भी प्राप्त की थी। साथ ही उनकी लिखने की शैली भी अद्भुत थी। उसे भी उन्होने गाधीजी की शैली से मिला लिया था। परिश्रम इतना ज्यादा कर सकते थे कि शायद दो-तीन आदमी मिलकर भी उनके बराबर काम नही कर सकते थे। काम भी सब प्रकार के। कपडे और कमोड साफ करना, नाजुक से नाजुक बातो को लेकर दूत का काम करना और सुन्दर से सुन्दर लेखो के लिखने का काम भी, उनके लिए सब बराबर था। सब कुछ समान सहूलियत और तेजी के साथ खुशी-खुशी कर लिया करते थे। स्वभाव के इतने सरल और सहृदय थे कि शायद ही कभी किसी से उनका कोई झगडा हुआ हो। हमारा उनसे परिचय पहले-पहल चम्पारन मे हुआ था जब महात्माजी ने उनको, उनकी पत्नी श्रीमती दुर्गा बहन के साथ ही, वहाँ अपनी खोली हुई एक पाठशाला मे काम करने के लिए भेजा था। जो प्रेम और सद्भाव उस समय पैदा हुआ वह बराबर बना रहा। उनकी इस प्रकार अचानक मृत्यु से मुझे भी काफी चोट लगी।

दूसरी मृत्यु श्री कस्तूरबा गाधी की थी जो १९४४ की फरवरी मे हुई। वह भी आगा-खॉ-महल मे महात्माजी के साथ ही थी। बहुत दिनो तक बीमार थी। अन्त मे चल बसी। गाधीजी की सहधर्मिणी होने का उनका सौभाग्य उनके जीवन के अन्तिम दिन तक बना रहा। गाधीजी की गोद मे ही उनका महाप्रस्थान हुआ। वैसी सौभाग्यवती दूसरी कौन हो सकती है ? उनको सभी लोग 'बा' कहा करते थे। वह सचमुच सबकी 'बा' (माता) थी। वह पहले-पहल १९१७ मे चम्पारन पहुँची। उसी समय हम लोगो का उनके साथ पहला परिचय हुआ। वहाँ उनके पहुँचने के पहले हम लोगो के लिए भोजन बनाने के वास्ते एक ब्राह्मण रखा गया था। उनके पहुँचते ही गाधीजी की आज्ञा हुई कि अब ब्राह्मण की जरूरत नही रही, वही सबके लिए रसोई बना लेगी। हम लोगो की सख्या भी काफी थी। शायद १४–१५ आदमी थे। हम लोगो को यह अनुचित मालूम हुआ कि हम सबकी रसोई बनाने का भार उन पर डाला जाय। हमको ऐसा भी मालूम हुआ कि जैसी दुबली-पतली और कमजोर वह दीखती थी, उनसे यह काम हो भी न सकेगा। पर गाधीजी हमारे उज्र को सुननेवाले कब थे। उन्होने कहा कि चिन्ता न करो, वह सब कर सकती है, उनको ऐसे काम का अभ्यास है। दूसरे लोग उनकी कुछ मदद कर दिया करते थे—खासकर भारी कडाही और बटलोई के उतारने इत्यादि मे। पर बहुत प्रेम से वह सबके लिए रसोई बनाती। उस समय जिस प्रेम से उन्होने हमको पहले-पहल खिलाया था उसी प्रेम के साथ जब तक वह जीती रही और जब-जब हमसे भेट हुई, उन्होने खिलाया। साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम मे हो चाहे मगनवाडी या सेवाग्राम के आश्रम मे हो, अथवा कही सफर मे ही क्यो न हो, बापू के पास पहुँचने पर, विशेषकर अगर साथ रहने का सुअवसर मिला तो, माता का स्नेह उनसे हमेशा मिलता रहा। उनके अन्तिम दिनो की दुःखद कहानी गाधीजी के उन पत्रो मे पढी जा सकती है जो उन्होने गवर्नमेण्ट को लिखे थे। वे पत्र श्री बनमाला पारिख तथा डाक्टर सुशीला नैयर द्वारा लिखित 'हमारी बा' नामक पुस्तिका मे छपे है। वह हिन्दू महिला की आदर्श मूर्ति, भारतीय सस्कृति की प्रतीक और प्रेम की पुतली थी। वह सचमुच 'बा' थी और 'बा' बनी रही। एक बार गाधीजी ने मुझसे कहा था—"बा को बा कहने मे मुझे भी बडा आनन्द आता है।" पति-पत्नी का जो प्रचलित सम्बन्ध हुआ करता है वह तो दोनो ने स्वेच्छापूर्वक छोड दिया था। वह सचमुच उनकी भी 'बा' बन गयी थी।

हम लोगो को जेल मे ही मौलाना अबुल कलाम आजाद के पत्नी-वियोग का समाचार मिला था। यह जानकर और भी दुःख हुआ था कि अन्त काल मे मौलाना से उनकी मुलाकात नही होने दी गयी। वह पर्दे मे रहा करती थी, इसलिए उनसे हमारी मुलाकात नही थी, पर मौलाना के दुःख का मै अनुमान कर सकता था। श्री रजीत पडित (आर० एस० पडित) से तो काफी घनिष्ठता थी और उनकी मृत्यु भी एक बहुत दुःखद घटना हुई। जेलो मे गवर्नमेण्ट की नीति कुछ ऐसी हुआ करती है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। नियम था कि केवल निकट के सम्बन्धियो के

साथ ही पत्र-व्यवहार हो सकता है। मेरे पास कभी-कभी ऐसे लोगों के पत्र आ जाया करते जिनसे किसी प्रकार का मेरा तअल्लुक नही था। पर मौलाना के पास और बहन विजयलक्ष्मी के पास मेरे समवेदना के तार नही जा सके।

अपने सूबे के मित्रो मे सबसे दु:खद वियोग श्री रामदयालुसिंह का हुआ। पढने के समय ही उनसे परिचय हुआ था जो पीछे घनिष्ठ प्रेम के रूप मे परिणत हो गया। उनका स्वास्थ्य कई बरसो से खराब रहा करता था। इसी कारण से वह आन्दोलन में भाग लेने योग्य न थे। गवर्नमेण्ट ने भी यही समझकर उनको गिरफ्तार नही किया था। हमारी रिहाई के कुछ महीने पहले ही उनकी भी मृत्यु हो गयी। जो मित्रता प्राय ३५-३६ बरसो से चली आ रही थी उसका ऐहिक धागा टूट गया। हमारे प्रान्त की वह एक विभूति थे। उनका स्थान भी खाली रहेगा। कॉंग्रेस के बाहर, पर जिनसे हमारा बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था, ऐसे दो सज्जन थे जिनसे भी फिर मुलाकात नही हुई। एक तो वैद्यराज व्रजविहारी चौबे थे जो आयुर्वेद के अगाध विद्वान् थे और जिनकी कृपा हम पर बराबर बनी रही थी। मै कह चुका हूँ कि मेरी गिरफ्तारी के समय वही मेरी चिकित्सा कर रहे थे और जिस समय गिरफ्तारी हुई उस समय वह सदाकत-आश्रम पहुँच गये थे। मुझे यह कभी नही भूल सकता कि मेरी गिरफ्तारी से वह कितने दुखी और चिन्तित हुए। उन्होने औषधि आदि साथ कर दी और अपनी सरलता मे यह भी कहा कि अगर आप बुरा न माने तो मैं गवर्नर से जाकर मिलूँ और आपके बारे मे कहूँ। वह यह नही जानते थे कि गिरफ्तारी का हुक्म गवर्नर ने ही दिया था और गवर्नर को भी उसे स्थगित रखने का अधिकार नही था। दूसरे सर गणेशदत्तसिंह थे। उनसे कलकत्ते मे, जब मैं पढता था, पहले-पहल परिचय हुआ था। वहाँ वह वकालत करते थे। उसी समय से उन्होने मेरे ऊपर जो प्रेम दरसाना आरम्भ किया वह अन्त तक ज्यो का त्यो बना रहा। पीछे राजनीतिक बातो को लेकर उनसे काफी मतभेद हुआ और मैंने उनकी कई कार्रवाइयो की काफी बडी टीका की, पर उस प्रेम मे कोई अन्तर नही आया। अन्त मे वह बहुत बीमार रहा करते थे। मैं जब तक बाहर था तब तक जब कभी पटने मे रहने का मौका होता, जाकर उनसे बराबर भेट किया करता था। उन्होने बहुत दिनो तक मिनिस्ट्री की। उसमे उनकी कार्रवाइयो की ठीक टिप्पणी करनेवाले बहुत हुए जिनमे एक मैं भी था। पर मैंने यह देखा कि चाहे वह मिनिस्टर रहे तब, चाहे अपने अन्तिम दिनो मे जब वह सारे काम-धाम से अलग हो गये थे, वह इसकी चिन्ता हमेशा किया करते थे कि हमारे ऐसे सार्वजनिक कामो मे लगे लोगो का स्वास्थ्य ठीक रहे। इसलिए हम लोगो का जेल जाना वह पसन्द नही करते थे। जब कभी उन्हे जेल से किसी की बीमारी की खबर मिलती तो वह और भी चिन्तित हो जाया करते। अपनी मिनिस्ट्री के समय मे अपने मुशाहरे का बहुत बडा अश सार्वजनिक काम मे लगा देने का निश्चय उन्होने शुरू मे ही कर लिया। इस तरह से कई लाख की रकम ट्रस्ट मे दे डाली। यह हमारे लिए एक नमूना था जिसका अनुसरण और किसी ने नही किया। कॉंग्रेसी मिनिस्टरो का तो मुशाहरा ही ५००) कर

दिया गया जिसमे से बचाने की गुंजाइश कम थी, पर तो भी मै जानता हूँ कि कुछ ऐसे है जिन्होने पैसे-पैसे का हिसाब रखा और उसमे से बचाकर सार्वजनिक कामो मे लगाया। तीसरे साथी, जिनसे फिर भेट होनेवाली नही थी, श्री निरमूनारायणसिह थे। इनसे भी पढने के समय से ही परिचय था। सार्वजनिक प्रश्नो पर बहुत मतभेद रहते हुए भी प्रेम बराबर बना रहा। अपने घर मे सबसे बडी भतीजी गिरिजा भी मेरे जेल मे रहते-रहते ही चली गयी। उसका भी स्वास्थ्य बहुत दिनो से खराब ही रहा करता था। मेरे होश होने के बाद मेरे घर मे वही सबसे पहले पैदा हुई थी। मैने उसी को सबसे पहले बचपन मे खेलाया था। वह प्रेम बहुत रखती थी। जेल मे आकर मिली थी। पर कौन जानता था कि वह आखिरी मुलाकात थी। वह बडी भाग्यशालिनी थी। पति और पुत्रो को अपने सामने देखते-देखते चली गयी। अपने घर मे गृहिणी रहकर उसने जिस प्रकार सब लोगो को सुख पहुँचाया था उसे सभी याद रखेगे।

१५३—अस्थायी केन्द्रीय सरकार कायम होने से पहले की कुछ बातें

जेल मे समय काटना बहुतो के लिए बडा कठिन काम हो जाया करता है। इसलिए अगर कुछ अनमना—दिलबहलाव का सामान—मिल जाय तो उसे बहुत लोग पसन्द करते है। हजारीबाग-जेल मे हमारे साथियो ने एक बिल्ली के बच्चे को पाल रखा था। वह लोगो से इतना हिलमिल गया था कि निसकोच चारपाई पर जाकर सो रहा करता था। खाने के समय कही से घूमता-फिरता आकर गोद मे बैठ जाता और जो कुछ दिया जाता उसे खाता। लिखने-पढने के समय हाथ मे से कलम-पेन्सिल छीन लेने मे भी न हिचकता। अपने जन्म से ही वह कभी जेल के बाहर नही गया था। हमेशा बडे और जवान लोगो की सगति मे ही रहा। उसने आदमी के बच्चे को कभी देखा ही न था। हजारीबाग-जेल मे हमारे साथियो मे से एक आदमी बीमार पडे। उनके बाल-बच्चे उनसे मिलने आये। उन छोटे बच्चो को देखते ही वह इतना डर गया कि किसी की गोद मे से, जहाँ वह उस समय बैठा था, कूदकर भागा और कही दूर जाकर छिप रहा। उन बच्चो के चले जाने के बाद भी कुछ देर तक वापस नही आया।

इस बार बाँकीपुर-जेल मे कुछ मामूली कैदियों ने मैना चिडिया के बच्चे को पाल रखा। वह आदमियो के हाथ पर, कधे पर, सिर पर निडरता से बैठ जाता। कैदी काम करते रहते, वह वहाँ डटा रहता। उसका हम लोगों से भी परिचय हो गया। वह हमारे कमरे मे भी आने लगा। कुछ दिनो के बाद वह अधिकतर वही रहने लगा। चर्खा चलाने के समय सामने बैठ जाता और निकलते हुए धागे को चोच से मारकर तोड देता। रात को मसहरी पर बैठ जाता और वही रात-भर रहता। सवेरे उडकर बाहर जाता और फिर घूमघाम कर वापस आ जाता। एक दिन उडकर कही गया और

फिर नही लौटा। न मालूम कही उडकर चला गया अथवा किसी चिडिया या दूसरे जानवर ने उसे मार डाला। दूसरे मैना भी लोगो ने पालने का प्रयत्न किया, पर हमने प्रोत्साहन नही दिया। इस तरह लिखते-पढते, चर्खा कातते, बीमार पडते, लोगो के और आन्दोलन के समाचार सुनते-सुनाते और पुराणो की कथा सुनते—जिनमे वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, चैतन्यचरित इत्यादि ग्रन्थ मुख्य थे—समय बीतते कुछ मालूम न हुआ। प्राय तीन बरसो के बाद १५ जून को हम छूटे।

हम लोगो के रिहा होने के कुछ दिनो पहले से ही इस बात की बहुत चर्चा चल रही थी कि अब वर्किंग कमिटी के सदस्य छोड दिये जायँगे। अहमदनगर-किले मे जो लोग थे उनमे से कुछ लोग दूसरे स्थानो मे भेजे जा चुके थे। ऐसा मालूम होता था कि यह सब छोडने की तैयारी है। इस बात की घोषणा हुई कि १४-६-४५ की सध्या को लार्ड वावेल अपनी कोई नयी योजना देश के सामने रखेंगे—यह योजना रेडियो द्वारा सारे देश को उसी रात मे बतलायी जायगी। ऐसा ही हुआ। योजना के साथ-साथ यह भी उन्होने रेडियो पर कहा कि वर्किंग कमिटी के सदस्यो को छोडने की आज्ञा दे दी गयी है, तारीख १५ जून के सवेरे सब छोडे जायँगे। रेडियो की बात सुनकर कुछ लोग तो उसी रात को हमारे छोडे जाने की आशा से जेल के दरवाजे पर आये। अधिकारियो के यह कहने पर भी कि उस रात को छोडने का हुक्म नही है, वे कुछ देर तक वहाँ ठहरे रहे। १५ जून को एक भारी भीड जमा हो गयी। जेल मे इतने दिनो तक रहने के बाद वहाँ से निकलने के समय मन मे कितनी भावनाएँ उठने लगी। हम लोग जिस दिन जेल मे गये थे उसी दिन से मामूली कैदियो को हम लोगो के साथ, न मालूम किस कारण से, प्रेम-सा हो गया—हमारे ऊपर उनका बहुत विश्वास हो गया। वे हम लोगो को जेल के अधिकारियो से भी बडा समझते थे। जब कोई कष्ट होता तो हजार पहरा रहने पर भी किसी न किसी तरह हमारे पास पहुँच जाते। हमारे हजार समझाने पर कि हमारा कोई अधिकार नही है, वे यह बात मानने को तैयार नही होते। मै इतना और भी कहूँगा कि जब तक हम उस जेल मे रहे, उनके साथ अधिकारियो का बर्ताव भी अच्छा ही रहा। यो तो जेलो मे कैदियो के साथ बर्ताव सख्ती का—प्रेम का नही, सजा देने का—सुधारने का नही, हुआ ही करता है। पर उनमे जो पुराने थे वे कहा भी करते थे कि बहुत-से अधिकारियो का रुख बहुत कुछ बदल गया था। इत्तफाक से उस जेल के अधिकारी भी अधिकाश अच्छे ही रहे। वे उन लोगो मे से नही थ जो सारे सूबे मे अपनी करतूतो के कारण बदनाम हो चुके थे। इस तरह, यद्यपि मामूली कैदियो के साथ हमारा कोई सम्बन्ध होना आवश्यक नही था तो एक अजीब सम्बन्ध हो गया था। हमारे छूटने की खबर से न मालूम उनके दिल मे खुशी हुई या तकलीफ। मै इतना कह सकता हूँ कि बहुतेरो को आशा जरूर हुई कि वे भी कुछ दिनों में छूट जायँगे। हमने इस तरह की आशा उन्हे किसी तरह से दिलायी नही थी। पर मै कह सकता हूँ कि उनमे से बहुतेरों को हमारे छूटने के बाद निराशा हुई होगी।

जेल से वाहर निकलते ही हमको वम्वई जाना पडा, क्योकि वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक हुई जिसमे वावेल-योजना पर विचार करना था। वम्वई मे वाते थोडी ही हुईं और सिमले से महात्माजी तथा सभापति मौलाना आजाद की वुलाहट आ गयी। उनको वहाँ जाना पडा। मैं पटने लौट आया। पर यहाँ दो-चार दिन भी ठहर न सका, क्योकि सिमले से मेरी वुलाहट आ गयी—वही वर्किंग कमिटी की बैठक होगी। सिमले मे प्राय दो सप्ताह तक रहना पड़ा। हमारी ओर से लार्ड वावेल के साथ कभी मौलाना, कभी पडित जवाहरलाल और कभी महात्मा गाधी की वाते होती। मुस्लिम लीग की ओर से मिस्टर जिन्ना, और उनके साथी, वाइसराय से वाते करते। पर मुख्य काम तो वहाँ एक कान्फ्रेन्स का था जिसमे काँग्रेस और मुस्लिम लीग के सभापतियों के अलावा सूवो के प्रधान मत्री वुलाये गये थे। जहाँ मन्त्रिमण्डल टूट गया था—जैसा उन सभी सूवो मे हुआ था जहाँ काँग्रेमी मन्त्रिमण्डल था—वहाँ के टूटने के समय के प्रधान मत्री वुलाये गये थे।

योजना पर और दूसरी वातों पर विचार किया गया। ऐसा मालूम हुआ कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति को एक प्रकार से राष्ट्रीय सरकार का रूप दिया जायगा। काँग्रेस की ओर से हमने योजना को एक प्रकार से मजूर कर लिया। नौवत काँग्रेस की ओर से नाम देने की आयी। कान्फ्रेन्स मे ११ सूवो मे से ७ के प्रधान मत्री काँग्रेसी थे। वाकी चार मे से तीन की ओर से लीगी प्रधान मत्री थे जिनमे एक आसाम था। आसाम मे काँग्रेसी के हट जाने के वाद मन्त्रिमण्डल मे हेरफेर हुआ था। वहाँ उस समय यद्यपि लीगी मन्त्रिमण्डल नही था तथापि प्रधान मत्री सर सदाउल्ला लीगी थे। चौथे सूवा—पजाव के प्रधान मत्री सर खिजिर हयात खाँ लीग से झगड कर अलग हो गये थे। योजना की एक शर्त यह थी कि वाइसराय की कौन्सिल मे हिन्दुओं और मुसलमानो की सख्या वरावर होगी—इनके अलावा दूसरे लोग भी कुछ होगे जिनमे हरिजनो के प्रतिनिधि भी रहेगे। योजना ने एक तरह से हरिजनो के प्रतिनिधियो को हिन्दू-प्रतिनिधियो से अलग मान लिया था और जो समानता हिन्दू-मुस्लिम प्रतिनिधित्व मे दी गयी थी वह अहरिजन अथवा सवर्ण हिन्दुओ के साथ ही थी।

अभी तक लडाई चल रही थी। देश की स्थिति कुछ अच्छी नही थी। हमने सोचा कि इस योजना को मानकर शायद हम उस स्थिति के सुधारने मे कुछ सफल हो सकेंगे। हमने यह कहा कि कौन्सिल, वाइसराय और कमाण्डर-इन-चीफ के अलावा, १५ आदमियो की हो जिनमे ५ सवर्ण हिन्दू, ५ मुसलमान, २ हरिजन और ३ सिख, क्रिस्तान, पारसी इत्यादि दूसरी जातियो के प्रतिनिधि हो। हमने १५ नाम भी दिये जिनमे और नामो के अलावा ५ मुसलमानो के भी नाम दिये। इनमे तीन मुस्लिम लीगी लोगो के अलावा एक काँग्रेसी मुसलमान और एक लीग के वाहर के दूसरे मुसलमान के नाम थे। यह भी कह दिया गया कि लीग यदि अपनी ओर से दूसरे नाम देना चाहे तो वह दे सकती है, उसमे हमको उज्र नही होगा। मिस्टर जिन्ना ने यह दावा पेश किया कि मुसलमानो के सभी प्रतिनिधियों को नामजद करने का लीग

को ही अधिकार होना चाहिए, वह दूसरे किसी मुसलमान का होना पसन्द नही करेगे। लार्ड वावेल को इस कठिनाई का सामना करना पडा। वह कॉंग्रेसी मुसलमान को तो छोड सकते थे, पर सर खिजिर हयात की पार्टी को नही। वह समझते थे कि सर खिजिर हयात ने और उनके पहले उस दल के नेता सर सिकन्दर हयात ने लडाई मे बहुत मदद की थी, इसलिए उनको छोडना पजाब के मुसलमानो को गवर्नमेण्ट के विरुद्ध कर देना होगा। हम लोगो को यह तो मालूम नही हुआ कि वाइसराय किन लोगो को रखना चाहते थे, पर हम समझते थे कि कॉंग्रेस और लीग की ओर से वही लिये जायँगे जिनके नाम ये सस्थाएँ देगी, चाहे दूसरो मे कुछ हेरफेर भी हो। ऐसा अनुमान किया जाता था कि उन्होने मुसलमानो मे चार नाम लीग के और एक मुसलमान पजाब की युनियनिस्ट पार्टी का लेना चाहा था। पर मिस्टर जिन्ना इस पर राजी नही हुए। कान्फ्रेन्स टूट गयी।

कान्फ्रेन्स के टूटने पर मिस्टर जिन्ना ने एक बयान दिया जिसमे उन्होने लीग के दावे बताये। उन कारणो को भी बताया जिनसे लीग को योजना नामजूर करनी पडी थी। मुख्य कारण यह था कि एकमात्र लीग ही मुसलमानो की प्रतिनिधि सस्था है और उसी को मुसलमान मेम्बरों के नामजद करने का पूरा अधिकार होना चाहिए—चूँकि लार्ड वावेल इस बात को नही मानते, इसलिए योजना मजूर नही की जा सकती। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात उन्होने यह कही कि उस प्रस्ताव के अनुसार १५ गैर-सरकारी आदमियो की कौन्सिल मे केवल पॉच ही मुसलमान होनेवाले थे—उनके विरुद्ध कॉंग्रेसी हिन्दू लोग होते, और दूसरी अल्पसख्यक जातियो के जो प्रतिनिधि होते वे हमेशा हिन्दुओ के साथ ही जाते, क्योकि दूसरी जातियो के विचार और मनोभाव कॉंग्रेस के ही साथ थे—इस तरह कौन्सिल मे मुसलमान केवल एक-तिहाई की अल्प-सख्या मे रह जाते जो लीग मजूर नही कर सकती। मार्के की बाते इसमे दो थी। एक तो यह कि आज तक सभी अल्पसख्यक जातियो के सरक्षण का भार मिस्टर जिन्ना हमेशा अपने ऊपर लिया करते थे—कहा करते थे कि कॉंग्रेस केवल सवर्ण हिन्दुओ का प्रतिनिधित्व करती है, बाकी सबकी रक्षा लीग ही कर सकती है और करती है। ऐसा कहने का कोई कारण नही था, क्योकि बार-बार अन्य अल्पसख्यक जातियो ने अपनी सस्थाओ मे लीग और भारत-विभाजन तथा पाकिस्तान की बात का स्पष्ट रीति से विरोध किया था और कॉंग्रेस के साथ अपनी सहानुभूति बतलायी थी। पर वह इस तरह की बाते कहते आ रहे थे। इन अल्पसख्यको मे वह हरिजनो को भी गिनाया करते थे और अपने को उनका हिमायती बतलाया करते थे। अब, जब कौन्सिल मे सवर्ण हिन्दुओ की सख्या केवल एक-तिहाई, मुसलमानो की भी एक-तिहाई, और बाकी तिहाई मे दो हरिजन तथा दूसरे अल्पसख्यको के रखने की बात हुई तो भण्डा-फोड हो गया। उन्होने साफ-साफ कह दिया कि दूसरे सबके सब कॉंग्रेस और हिन्दुओ के साथ है और रहेगे, वह केवल मुसलमानो पर ही भरोसा रख सकते थे, और मुसलमानो मे भी केवल उन्ही मुसलमानो पर जिनको लीग ने अर्थात् उन्होने स्वय नामजद किया

हो। दूसरी बात यह साफ हो गयी कि वह इस पर राजी नही थे कि कौन्सिल मे हिन्दुओ और मुसलमानों मे समानता हो। वह यह चाहते थे कि एक ओर केवल मुसलमान और दूसरी ओर बहुसख्यक सवर्ण हिन्दू—हरिजन तथा दूसरी सभी अल्पसख्यक जातियाँ—हो और मुसलमानो की समानता उन सभी जातियो के साथ हो। इसके साथ यह भी स्पष्ट था कि मुसलमानो का अर्थ सभी मुसलमान नही, केवल वही मुसलमान जो लीग मे शरीक थे।

लीगी मुसलमानो की उस समय यह हालत थी कि उन दो बडे-बडे सूबो मे, जहाँ उनकी आबादी ज्यादा है—पजाब और बगाल मे, लीगी मिनिस्ट्री टूट गयी थी। पजाब मे लीग से अलग होकर, मिस्टर जिन्ना से झगडकर, सर खिजिर हयात ने अलग मिनिस्ट्री बना ली थी—वह भी तब, जब भूतपूर्व प्रधान मत्री सर सिकन्दर हयात खाँ के लडके सरदार शौकत हयात खाँ लीग के साथ हो गये थे और सर खिजिर का जोरो से विरोध कर रहे थे। बगाल की मिनिस्ट्री हारकर टूट गयी थी। यदि उस समय विपक्षी दल को मौका दिया जाता, जैसा देना न्याय और वैधानिक नियम के अनुसार आवश्यक था, तो वहाँ गैरलीगी मिनिस्ट्री बन गयी होती। पर गवर्नर ने उस समय की नीति के अनुसार लीग को नाखुश करना नही चाहा—जब लीगी मिनिस्ट्री न चल सकी, तो बार बार कहने पर भी, कोई दूसरी मिनिस्ट्री बनाने का किसी को मौका न देकर, दफा ९३ के अनुसार, अधिकार अपने हाथो मे कर लिया था। सीमाप्रान्त मे काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल के हट जाने के कुछ दिनो बाद लीगी मन्त्रिमण्डल बन गया था, पर वह अपनी कार्रवाइयो से इतना बदनाम हो गया कि हम लोगो के छूटने के कुछ दिन पहले ही काँग्रेसी मेम्बरो ने असम्बली मे भाग लेकर उसे तोड डाला था, जिससे वहाँ काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम हो चुका था। एक सिन्ध ही ऐसा सूबा था जहाँ लीगी मन्त्रिमण्डल काम कर रहा था, यद्यपि वहाँ भी राष्ट्रीय मुसलमानो के नेता अल्लाहबख्श को प्रधान मत्री के पद से हटाने मे गवर्नर का सिर्फ हाथ ही नही था, बल्कि उसके लिए गवर्नर को बहुत-से अवैधानिक काम भी करने पडे थे और पीछे अल्लाहबख्श कत्ल भी कर डाले गये थे!

यह तो उन सूबो का हाल हुआ जहाँ मुसलमानो की आबादी ज्यादा है। वह तो पाकिस्तान मे आसाम को भी मिलाते है, पर वहाँ मुसलमानो की आबादी एक-तिहाई से ज्यादा नही है। काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल के हट जाने के कुछ दिनो बाद वहाँ भी लीग के सरदार सर सादुल्लाह ने मिनिस्ट्री बनायी थी, पर वह भी इतना बदनाम हो चुकी थी कि वह अपनी अन्तिम साँस गिन रही थी। ऐसी अवस्था मे यह दावा करना कि लीग ही एकमात्र मुसलमानो की प्रतिनिधि जमायत है और उसके ही नामजद किये लोग कौन्सिल मे लिये जा सकते है तथा उनकी सख्या भी इतनी होनी चाहिए कि वे अकेले ही सवर्ण हिन्दू एव हरिजन और तमाम दूसरी अल्पसख्यक जातियो के प्रतिनिधियो का अपनी सख्या के कारण विरोध कर सके, केवल मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना के लिए ही सम्भव था! इस दावे पर सिमला-कान्फ्रेन्स को असफल बताल कर

तोड देना ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के लिए ही सम्भव था। याद रखना चाहिए कि अभी लडाई चल रही थी और इँगलैड मे प्रधान मत्री के पद पर मिस्टर चर्चिल और भारत-मत्री के पद पर मिस्टर एमरी विराजमान थे।

सिमला-कान्फ्रेन्स के सम्बन्ध मे एक-दो बाते और कह देना आवश्यक जान पडता है। ऊपर कहा जा चुका है कि कॉग्रेस की वर्किंग कमिटी ने अपनी ओर से कौन्सिल के लिए नाम भी दे दिये थे। इनमे श्री भूलाभाई देसाई का नाम नही था। वह उस समय तक केन्द्रीय असम्बली मे कॉग्रेस-दल के नेता थे। उन्होने उस हैसियत से काम भी बहुत अच्छा किया था। जब से, बारदोली-सत्याग्रह के समय (१९२८) मे, वह कॉग्रेस मे खुलकर आये थे तब से जब-जब मौका हुआ, वह जेल जाने से हिचके नही थे। रुपये-पैसे से भी बराबर मदद करते आये थे। अपनी योग्यता और अपने त्याग के कारण वह बराबर वर्किंग कमिटी के भी मेम्बर रहे थे। कॉग्रेस की ओर से उनका न लिया जाना उनके लिए बहुत ही दु खदायी हुआ। यद्यपि नाम प्रकाशित नही किये गये थे तथापि बहुतो को यह बात मालूम हो गयी थी कि उनका नाम नही दिया गया था। दूसरे लोगो को भी, विशेषकर केन्द्रीय असम्बली के मेम्बरो को, यह बात बहुत खटकी थी। उनका नाम न दिये जाने का कारण यहाँ लिखना जरूरी नही है और न उचित ही है। मै इस फैसले से सन्तुष्ट नही था, दुखी था। पर कोई दूसरा रास्ता नही दीखा। श्री भूलाभाई का मेरे साथ बहुत प्रेम था। मुझ पर वह विश्वास भी रखते थे, जिसको उन्होने कई मित्रो से कहा था। कुछ दिनो के बाद, जब वह उस रोग से ग्रस्त थे जिसके कारण उनकी मृत्यु हुई, मै उनसे बम्बई मे मिला। उन्होने अपना दुख बहुत दर्द-भरे शब्दो मे कहा भी। यहाँ इतना कह देना ठीक होगा कि इसके थोडे ही दिनो के बाद, जब आजाद-हिन्द-फौज के मेजर-जनरल शाहनवाज और उनके साथियो पर दिल्ली के लाल किले मे राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और श्री भूलाभाई को उनकी ओर से पैरवी करने को कहा गया तो, उन्होने खुशी से इस मुश्किल काम को अपने हाथो मे ले लिया—यद्यपि उनका स्वास्थ्य उन दिनो कुछ अच्छा नही था। इसी मुकदमे का घोर परिश्रम एक तरह से उनकी मृत्यु का कारण हुआ, क्योकि वह मुकदमे का काम किसी तरह खत्म करके बीमार पड गये और फिर चारपाई से उठ नही पाये। मुकदमे मे उनकी प्रखर योग्यता और अद्भुत शक्ति का पता लगा। उनकी बहस ससार के बडे से बडे मुकदमो के बडे से बडे वकीलो की बहस का मुकाबला करती रहेगी। चारपाई पर पडे श्री भूलाभाई को एक सन्तोष रहा—उनके सभी मवक्किल छूट गये। उनके मरने से भारत की एक विभूति चली गयी। उनका स्थान लेनेवाला दूसरा कोई अभी नही दीखता। मुझे उनके अन्तिम दिन हमेशा स्मरण रहेगे—विशेषकर वह करुणापूर्ण भावना कि इतनी सेवा के बाद भी वर्किंग कमिटी ने उनको कौन्सिल के योग्य नही समझा। उनके मन मे पद की लालच नही थी। यदि कॉग्रेस मे वह न आये होते तो

उसे वह अनायास ही बहुत पहले पा सकते थे। उनको दु:ख इस बात का था कि हमने उनको अयोग्य समझा!

दूसरी बात जिसका जिक्र करना चाहता हूँ, निजी है। वर्किंग कमिटी के सामने नामो के चुनने का जब प्रश्न आया तो उन नाम्मो मे मेरा नाम भी आया। मै इसके लिए बिलकुल तैयार नही था। एक तो मेरा स्वास्थ्य ऐसा नही कि बहुत परिश्रम कर सकूँ। दूसरे, इस प्रकार के काम का मुझे बिलकुल तजरबा नही था। ऐसे कठिन समय मे इस भार को लेना ठीक नही जँचता था। तीसरे, मै समझता था कि बाहर रहकर जैसे मै उस समय तक काम करता आ रहा था वैसे ही काम करते रहना मेरे मिजाज के मुवाफिक था। चौथे, दिल मे कुछ नैतिक दुविधा भी मालूम होती थी। मैने अपनी कठिनाइयो को पूज्य महात्माजी के पास अकेले मे जाकर कहा। उन्होने राय दी कि मुझे मजूर कर लेना चाहिए। इसके बाद मेरे लिए कुछ कहने को नही रह गया। पर चित्त मे शान्ति पूरी नही आयी थी। इसलिए जब सिमले मे बातचीत खत्म हो गयी तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सिर से भी एक बोझ टल गया—देशहित की दृष्टि से यद्यपि उसका टूटना अच्छा नही लगा तथापि व्यक्तिगत विचार से अच्छा ही हुआ जान पडा।

१५४—पीड़ित राजबन्दियों के लिए अर्थसंग्रह का उद्योग

सिमले से मै दिल्ली आया। वहाँ बीमार पड गया। तबीयत बम्बई जाने पर ही कुछ खराब हो गयी थी। इसीलिए बम्बई से जल्द पटने चला आया था। पर पटने मे भी ठहर न सका। वहाँ से सिमला जाना पडा। सिमले मे किसी तरह काम खत्म किया। डाक्टर विधानचन्द्र राय ने, जो सिमला गये हुए थे, सलाह दी कि किसी सूखे स्थान मे कुछ दिनों के लिए चला जाना अच्छा होगा। मै इस विचार से दिल्ली मे ठहर गया कि वहाँ से पिलानी जाकर कुछ दिन आराम कर लूँ। पर दिल्ली मे अधिक बीमार हो जाने के कारण प्राय. दो सप्ताहों तक ठहर जाना पडा। वहाँ से अगस्त की पहली या दूसरी तारीख को पिलानी गया जहाँ एक महीने से कुछ अधिक ठहरा। पिलानी मे, बिडला-बन्धुओ की ओर से, हमारे ठहरने का अच्छा प्रबन्ध था। वहाँ बहन और मृत्युञ्जय की माँ के साथ बहुत आराम से रहा। मुझे आराम पहुँचाने का प्रबन्ध बिडला-बन्धुओ के मैनेजर श्री हरिश्चन्द्र ने बडी खूबी से किया था। बिडला-कालेज के प्रिन्सिपल श्री शुकदेव पाण्डेयजी तथा दूसरे अध्यापको और आचार्यो की सगति भी बहुत अच्छी रही।

जो पुस्तक (डिवाइडेड इण्डिया) जेल मे लिखी गयी थी उसका एक भाग लिखना बाकी रह गया था, यह कहा जा चुका है। पिलानी मे यह काम कर लिया गया। वहाँ बिड़ला-कालेज के पुस्तकालय मे पुस्तको का अच्छा सग्रह है। मेरे काम की प्राय सभी पुस्तके वहाँ मिल गयी। इसलिए इसे पूरा करने मे सुविधा हुई। परिश्रम तो करना पड़ा, पर काम हो गया। वही से वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी

की बैठक के लिए बम्बई जाना पडा। बम्बई की हवा मेरे लिए इतनी हानिकर होती है कि वहाँ पहुँचते ही फिर खाँसी-दमा हो गया। आखिर वर्किंग कमिटी बम्बई मे न होकर पूना मे हुई। हम लोग पूना चले गये। वहाँ भी बराबर पानी बरसता रहा। इसलिए स्वास्थ्य अच्छा नही रहा। बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद मैं पटने वापस गया। बम्बई मे किताब (डिवाइडेड इण्डिया) के छपने और प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर लिया। ऐसा मालूम हुआ कि दो-तीन महीनो के अन्दर पुस्तक प्रकाशित हो जायगी। सिमले मे ही हम लोग समझ गये थे कि प्रान्तीय और केन्द्रीय असम्बलियो का नया चुनाव शीघ्र ही होगा। मै समझता था कि उन चुनावो के पहले ही पुस्तक प्रकाशित हो जाय तो अच्छा होगा। केन्द्रीय असम्बली के चुनाव के पहले तो नही, पर प्रान्तीय चुनावो के पहले वह प्रकाशित भी हो गयी।

जब मै जेल मे था, मुझे उन लोगो की चिन्ता हुई जिनको १९४२ के आन्दोलन के कारण बहुत प्रकार के कष्ट उठाने पडे थे—विशेषकर उनके सम्बन्ध मे भी चिन्ता होती जिन पर सगीन मुकदमे चल रहे थे जिसके फलस्वरूप फाँसी अथवा लम्बी कैद की सजा मिलती थी। मुकदमों की पैरवी मे खर्च पडता था और जो लोग बाहर थे उन्होंने यथासाध्य इसका प्रबन्ध किया था। दूसरे लोगो मे बहुतेरे ऐसे थे जिनके कैद हो जाने पर उनके परिवार को बहुत कष्ट सहना पड रहा था। बहुतेरे तो ऐसा स्वास्थ्य लेकर छूटते कि उनकी चिकित्सा कराना आवश्यक होता। बाहर निकलने पर जब कुछ और बाते मालूम हुईं तो मैंने तय कर लिया कि इनके सहायतार्थ कुछ रुपया जमा करना चाहिए। पर बम्बई और सिमले की बातो तथा उसके बाद बीमार पड जाने के कारण बम्बई से लौटने तक मै कुछ विशेष नही कर पाया था। बम्बई मे मैंने इस सम्बन्ध मे कुछ मित्रो से बाते की थीं, पर वहाँ कुछ उत्साहवर्धक स्थिति नही थी। वहाँ के लोगो ने इसके पहले बहुत पैसो से देश की मदद की थी। अब एक खास सूबे के लिए अलग चन्दा उठाना कठिन था। हाँ, यदि सारे देश के लिए कुछ किया जाता तो हो सकता पर केवल एक सूबे की बात लेकर मैं उनसे कैसे कुछ कह सकता था। दूसरे लोगो का ध्यान इस ओर अभी नही गया था। इसलिए मैंने सोच लिया कि पहले अपने सूबे मे कुछ कर लिया जाय तो फिर बम्बई और कलकत्ते-जैसे बडे स्थानो मे प्रयत्न करूँगा।

मैंने पिलानी मे ही पैसे जमा करने का काम शुरू कर दिया था। अगर यो कहा जाय कि काम अनायास ही शुरू हो गया तो ज्यादा ठीक होगा। वहाँ के कालेज के प्रिन्सिपल श्री शुकदेव पाण्डेयजी तथा दूसरो से बातो ही बातो मे जिक्र आ गया था, मैंने कुछ माँगा नही था। पर ९ अगस्त (१९४५ ई०) को कालेज मे एक सभा हुई जिसमे ९ अगस्त के सम्बन्ध मे कुछ कहने के लिए मैं बुलाया गया। वही पर कालेज के आचार्यो और विद्यार्थियो की ओर से एक हजार रुपये की थैली राजनीतिक पीडितो के सहायतार्थ मुझे भेट की गयी। पिलानी से रवाना होने के पहले मै शेखावाटी के कुछ स्थानो मे गया जहाँ के लोगो का बड़ा आग्रह था। चिड़ावा, सूरजगढ़, फतहगढ़

इत्यादि कई स्थानो मे गया। सभी स्थानो मे थैलियाँ भेट की गयी। इस तरह, वहाँ से चलने के पहले, १५-१६ हजार रुपये कोप मे आ गये। पटना लौटकर मैंने सारे सूबे में दौरा करने का कार्यक्रम बनाया। पर अभी बरसात समाप्त नही हुई थी। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नही था। इसलिए निश्चय किया कि १० दिनो के लिए जीरादेई जाकर आराम करूँ और फिर दसहरे के दिन से दौरे पर निकलूँ। जीरादेई जाते समय कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जिससे मेरे दिल मे रुपये जमा होने के सम्बन्ध मे जो थोडा सन्देह था वह दूर हो गया।

गगातट के पहलेजाघाट-स्टेशन पर स्टीमर से उतरकर मैं रेल पर जा रहा था। वहाँ लोगो की भीड लग गयी थी। इस बात की सूचना लोगो को मिल गयी कि मैं उसी गाडी से जीरादेई जा रहा हूँ। इसलिए वहाँ के कॉग्रेसी लोग जमा हो गये थे। मैंने बिना सोचे-विचारे भीड देखकर लोगो से कह दिया कि मैं राजनीतिक पीडित कोप के लिए पैसा चाहता हूँ, जिससे जो कुछ हो सके वह दे दे। पटने से ही सभी जिलो को खबर दे दी गयी थी कि मैं दौरे पर इस काम के लिए निकलूँगा। हरएक जिले से एक निश्चित रकम माँगी गयी थी जिससे कम उनको कोष के लिए नही देना था। पहलेजाघाट के कार्यकर्त्ताओ ने सोचा था कि इस अवसर पर ही कुछ जमा कर लेना चाहिए। इसलिए वे जिले के 'कोटा' मे से अपना हिस्सा पूरा करने का प्रबन्ध कर रहे थे और कुछ जमा करके लाये भी थे। वह उन्होने भेट की। पर इसके अतिरिक्त उपस्थित जनता ने छोटी-छोटी रकमों से एक अच्छी रकम खडी कर दी। मैंने देखा कि लोगो मे उत्साह अद्भुत है, इससे लाभ उठाना चाहिए। इसलिए हर स्टेशन पर मैंने रुपये जमा करना शुरू कर दिया। जीरादेई मे लोगो ने स्वागत के लिए तैयारी की थी, क्योकि तीन-चार बरसो के बाद मै अपने गॉव जा रहा था। वहाँ लोगो को यह भी मालूम था कि मै पीडित-कोप के लिए रुपये भी जमा कर रहा हूँ। अत वे कुछ जमा करके थैली भी रखे हुए थे। इस प्रकार जीरादेई पहुँचते-पहुँचते लोगो ने एक अच्छी रकम भेट कर दी। इससे मेरा उत्साह बहुत बढ गया। मैं समझ गया कि रुपये काफी मिल जायँगे।

जीरादेई मे गया तो था आराम करने के लिए, पर बहुत आराम न कर सका। बहुत लोग भेट करने आते और उन पर जो कुछ बीता था उसे कह सुनाते। वहाँ रहते-रहते मैंने कुछ आसपास के लोगो के ऐसे घरों को देखा जो १९४२ मे सरकारी कर्मचारियो द्वारा जला दिये गये थे और ऐसे लोगो के परिवार से भेट भी की जो गोलियो के शिकार हुए थे। इनमे हमारे खानदान के पुराने सम्बन्धी नरेन्द्र-पुर के बाबू कृष्णकुमारसिंहजी थे जिनके भतीजे की मृत्यु पटना-सेक्रेटेरियट के गोली-काड मे हुई थी। जिस बेरहमी से घर जलाये गये थे, देखकर बहुत दुख होता और इसका अन्दाजा मिलता कि तीन बरस पहले जब ये घटनाएँ हुई थीं तब लोगों की क्या हालत हुई होगी। जीरादेई का भी एक आदमी गोली से मारा गया था। उसके परिवार के लोगो को सहायतार्थ कुछ दिया भी। जीरादेई रहते-रहते रुपये जमा करने

का काम भी जारी रहा। जो लोग भेट करने आते उनमे बहुतेरे कोष के लिए कुछ दे जाते और विस्तार-पूर्वक लोगो के कष्टो का हाल सुना जाते।

एक और काम जीरादेई मे हुआ। जबलपुर के श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने १९४०–४१ मे व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जेल मे 'कृष्णायण' लिखना आरम्भ किया था। एक बार मुझे वर्धा से पटना लौटते समय कुछ घटो के लिए उनके साथ ठहरने का अवसर मिला था तो उन्होने मेरे आग्रह से उसका कुछ अश मुझे सुनाया था। मुझे वह बहुत पसन्द आया था। उसे उन्होने १९४२–४५ की जेल-यात्रा मे पूरा किया था और जेल से मेरे निकलने पर बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी के समय कहा था कि चन्द रोज मेरे साथ रहकर उसे पढ सुनाना चाहते है। मैने उनको जीरादेई मे बुला लिया। उनके भाई और वह स्वय वहाँ आ गये थे। पुस्तक का कुछ अश उन्होने सुनाया था। मुझसे एक छोटी भूमिका लिखने का आग्रह किया जो मैने वही लिख दी। पुस्तक श्री तुलसीकृत रामायण की शैली पर दोहा और चौपाइयो मे लिखी गयी है। जिस तरह रामायण मे श्री रामचन्द्र का चरित्र-चित्रण है उसी तरह इसमे श्रीकृष्ण की जीवनी और चरित्र का चित्रण है। पुस्तक बहुत ही हृदयग्राही और सुन्दर ढग से लिखी गयी है। सुनकर बहुत आनन्द आया। मिश्रजी का सत्सङ्ग बहुत ही अच्छा रहा।

जीरादेई से मै सीधे दौरे पर निकल गया। प्राय ६–७ हफ्तो तक दौरा करता रहा। लोगो मे उत्साह बहुत था। १९४२ के दमन का कुछ भी असर देखने मे नही आता था। मालूम होता था कि जैसे रबर की गेद जितने जोर से पटकी जाती है वह उतने ही जोर से ऊपर उठती है वैसे ही दमन के कारण लोगो का जोश और भी ज्यादा हो गया है। सभाओ मे रुपयो की वर्षा होती। जो कुछ थैली के लिए लोग जमा करके पहले से रखते उसके अलावा सभाओ मे भी अच्छी रकम जमा हो जाती। दौरा बहुत सख्त था, क्योकि बहुत स्थानो मे जाना था और सभी जगहो मे भाषण करना पडता था। यद्यपि तबीयत ठीक हो गयी थी तथापि कमजोरी अभी काफी थी। भाषणो मे, लोगो का उत्साह बढाने के अलावा, आनेवाले चुनावो के सम्बन्ध मे भी मै कुछ कह देता और फिर रुपयो के लिए अपील करता। जितना 'कोटा' निश्चित था उससे कम किसी जिले ने नही दिया। अधिकाश ने 'कोटा' से कही अधिक रकम दी। हम लोगो ने सोचा था कि तीन लाख रुपये सूबे से जमा किये जायँ और दो लाख रुपये बम्बई-कलकत्ता-जैसे बाहर के बडे-बडे स्थानो से। पर सूबे के अन्दर ही पॉच लाख से अधिक रुपये आ गये। बाहर माँगने की जरूरत न रही। अभी दौरा पूरा नही हुआ था और मै थक-सा गया। दो-तीन जिले अभी बाकी थे जब कटिहार मे पहुँचकर मै बहुत बीमार पड गया। न्युमोनिया-जैसा कुछ हो गया। कई दिनो तक वहाँ ठहर जाना पडा। पटने से डाक्टर बनर्जी बुलाये गये। कुछ अच्छा होने पर वहाँ से स्पेशल ट्रेन द्वारा मै पटना पहुँचाया गया, क्योकि वहाँ से गाडियो का सिलसिला ऐसा था कि कही न कही रात गाडी मे बितानी पडती

और डाक्टर लोग इससे बचाना चाहते थे। पटने पहुँचकर भी मैं बहुत दिनो तक बीमार रहा। आहिस्ता-आहिस्ता अच्छा हुआ। इसी बीच कलकत्ते मे वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मैने यात्राक्रम ऐसा बनाया था कि स्वास्थ्य यदि मेरा साथ दिये होता तो दौरा समाप्त करके मै कलकत्ते पहुँच जाता, पर बीमार पड जाने के कारण न दौरा ही समाप्त कर सका और न कलकत्ते ही जा सका। जो जिले दौरे से वचित रह गये थे उनका दौरा कई महीनो के बाद किसी तरह कर सका, पर वह बात न रही जो उस समय थी। उस समय का उत्साह और जोश अद्भुत था।

१५५—असम्बली का चुनाव और कुछ पार्टियों के कारनामे

ऊपर कहा जा चुका है कि केन्द्रीय असम्बली के लिए पहले चुनाव हुआ। यह जनवरी तक समाप्त हो गया। इसके बाद प्रान्तीय असम्बली का चुनाव आया। केन्द्रीय असम्बली के लिए बिहार मे जितने गैर-मुस्लिम खडे किये गये थे, आसानी से जीत गये, अधिकाश तो निर्विरोध चुने गये। एक जगह विरोध हुआ, पर वहाँ भी विरोधी की जमानत जब्त हुई। पर मुस्लिम जगहो के लिए कॉग्रेस की ओर से खडे उमीदवार हार गये, सब जगहे मुस्लिम लीग को मिल गयी। यह कैफियत केवल बिहार मे ही नही रही, प्राय देश-भर मे ऐसा ही हुआ। गैर-मुस्लिम जगहो मे कॉंग्रेसी और मुस्लिम जगहो मे लीगी चुने गये।

अब प्रान्तीय चुनाव के लिए तैयारियाँ हुई। इसमे भी मुस्लिम लीग के साथ मुकाबला हुआ। कॉग्रेस तीन मुस्लिम जमायतों के साथ मिलकर लीग का मुकाबला बिहार मे कर रही थी। ये तीन जमायतें थी—जमीअत उलेमा, जमीअत मोमिन और इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी। इनमे इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी की कोई खास हैसियत नही थी और मोमिन लोगो का सगठन बहुत फैला हुआ था। उमीदवार चुनने मे बहुत देर हो गयी, क्योकि कई जमायतो को साथ चलना था। तय हुआ कि कुछ जगहो के लिए कॉग्रेसी, कुछ के लिए जमीअत उलेमा के और कुछ के लिए मोमिन उमीदवार खडे किये जायें। सबसे ज्यादा जगहे मोमिनो को दी गयी। बहुत धूमधाम से मुकाबला हुआ। लीग की ओर से हर तरह की जोर-जबरदस्ती भी की गयी। खर्च भी काफी किया गया। अन्त मे नतीजा यह हुआ कि ४० जगहो मे से ३४ लीग ने ले ली, ५ मोमिनों को मिली और १ कॉग्रेस को। जमीअत उलेमा का एक उमीदवार भी कामयाब नही हुआ। जिस जगह के बारे मे यह कहा जाता था कि उस इलाके के सभी वोटर जमीअत उलेमा के उमीदवार के मुरीद थे वहाँ भी जमीअत उलेमा के उमीदवार हार गये। कॉग्रेस को सबसे भारी धक्का यह लगा कि प्रोफेसर अब्दुल-बारी हार गये। कॉग्रेसी उमीदवारो मे डाक्टर सैयद महमूद जीते।

गैर-मुस्लिम जगहो मे और कही कोई विशेष विरोध नही हुआ। केवल छोटा-नागपुर मे—राँची और सिहभूम जिलों मे—जोरदार विरोध हुआ। जमीन्दारी जगहो पर हमने किसी को खडा ही नही किया था। छोटानागपुर मे, वहाँ के आदिम

निवासियों के बीच, कुछ दिनो से, एक सस्था काम कर रही है जिसका नाम है 'आदिवासी-महासभा'। इसके कार्यक्रम का एक मुख्य स्तम्भ यह है कि छोटानागपुर बिहार से अलहदा सूबा बना दिया जाय। इसके नेता है श्री जयपालसिह। यह स्वय रॉची-जिले के खूँटी-इलाके से खडे हुए। और-और जगहो मे—सिहभूम, रॉची, सताल-परगना इत्यादि मे—इस सभा की ओर से उमीदवार खडे किये गये। कुछ जगहे आदिवासियो के लिए, विधान के अनुसार, सुरक्षित है। जो दूसरी गैर-मुस्लिम जगहे है उनमें भी उनको खडा होने का अधिकार है। उन्होने सुरक्षित जगहो के लिए, और कुछ आम जगहो के लिए भी, उमीदवार खडे किये। कॉंग्रेस की ओर से तो सभी आम जगहों के लिए, और आदिवासियो के निमित्त सुरक्षित जगहो के लिए भी, उमीदवार खडे किये गये। इन्ही जगहो मे कडा विरोध हुआ। मै चुनाव के समय तक अच्छा हो गया था। जहाँ-जहाँ अधिक विरोध की सम्भावना थी वहाँ दौरा करने का विचार हुआ। कही-कही आदिवासियों के अतिरिक्त, मुंगेर और शाहाबाद की कुछ जगहो से, और मजदूरों के लिए सुरक्षित स्थानो से भी, रेडिकल डेमोक्राटिक-पार्टी (श्री एम० एन० राय की पार्टी) और कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से उमीदवार खडे किये गये थे।

१९४२ के क्रान्तिकारी आन्दोलन के समय मे श्री एम० एन० राय और उनकी पार्टी ने कॉंग्रेस की बडी निन्दा की थी। केवल इसी देश मे उन्होने उस आन्दोलन का विरोध नही किया था—विदेशो मे भी, विशेषकर अमेरिका मे। उनके आदमियों ने जाकर कॉंग्रेस की बहुत झूठी और गलत शिकायते की थी—गवर्नमेण्ट को भी कॉंग्रेस को दबा देने और उसके सगठन को चूर चूर कर देने की सलाह दी थी। गवर्नमेण्ट को उनकी सलाह की जरूरत नही थी, वह खुद सब कुछ कर रही थी। पर उनके प्रचार से उसको अपना दमनचक्र चलाने मे सहारा जरूर मिला। जेल मे हम लोगो के रहते-रहते ही केन्द्रीय असम्बली मे एक प्रश्न के उत्तर मे सरकार की ओर से कहा गया कि उस पार्टी को गवर्नमेण्ट की ओर से तेरह हजार रुपये की मासिक मदद दी जा रही है। उस दल के लोगो मे आपस मे भी इस विषय में झगडा हो गया और एक दल ने इस खबर से लाभ उठाकर दूसरे को जनता की नजरों मे गिराना चाहा। हम लोग जब बाहर थे तब ऐसी बाते सुना करते थे। उस दल के लोग बहुत खर्च करते भी देखे गये थे, पर निश्चय-पूर्वक कोई कुछ कह नही सकता था। १९४२ के आन्दोलन के समय उन लोगो मे कुछ मतभेद हो गया था। कुछ लोग आन्दोलन मे शरीक होना पसन्द करते थे, पर श्री एम० एन० राय और दूसरे लोग उनका जोरो से विरोध करना चाहते थे। जेल में ही हम लोगो को इसका पता लग गया था। यह भी मालूम हो गया था कि वह पार्टी गवर्नमेण्ट के रुपये से काम कर रही है। असम्बली मे तो गवर्नमेण्ट ने ही भण्डाफोड कर दिया। वही पार्टी अपने को भारत का सच्चा प्रतिनिधि बताती थी और कॉंग्रेस को देश-विदेश मे गालियाँ दिया करती थी।

कम्युनिस्ट लोगो का भी हाल कुछ विचित्र रहा। लडाई आरम्भ होने के

चन्द दिन पहले रूस और जर्मनी मे सुलह हो गयी। जब लडाई शुरू हुई तो एक ओर से जर्मनी ने पोलैण्ड पर चढाई कर दी और दूसरी ओर से उसके कुछ हिस्से पर रूस ने कब्जा कर लिया। इस प्रकार दोनो मे वडी आवभगत हो गयी। हिन्दुस्थान के कम्युनिस्ट लोग, जो अधिकतर रूस के इशारे पर ही काम किया करते है, आरम्भ मे व्रिटिश के खिलाफ ही बोलते-लिखते रहे, जिसके कारण उनकी सस्था गैर-कानूनी करार दे दी गयी थी और उनके प्रमुख व्यक्ति लुक-छुपकर काम कर रहे थे। जव तक रूस और जर्मनी के वीच लडाई नही छिडी, हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट लोग जर्मनी के हिमायती और व्रिटिश के विरोधी बने रहे। जब रूस और जर्मनी मे लडाई छिड गयी तव से उन्होने अपना रुख विलकुल बदल दिया। जैसे ही व्रिटेन और रूस एक ओर होकर जर्मनी से लडने लगे, उन्होने यह कहना शुरू कर दिया कि यह लडाई जनयुद्ध है और व्रिटेन की मदद करना सवका फर्ज है।। इस तरह कॉंग्रेस के आन्दोलन के प्रति उनका विरोध अनिवार्य हो गया। उन्होने विरोध किया भी। इस कारण कॉंग्रेसी लोगो मे—विशेपकर कॉंग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी मे—इन दोनों उक्त पार्टियों के विरुद्ध वहुत जवरदस्त भावना पैदा हो गयी थी। जेल के अन्दर तो इसका कुछ पता चलता ही था, पर वाहर निकलने पर जव सब वातो का पूरा पता चलने लगा तो यह भावना और भी जवरदस्त हो गयी।

इन्ही पार्टियो की ओर से कॉंग्रेस के विरुद्ध उमीदवार खडे किये गये थे। उनके जीतने का तो कोई करीना था ही नही, पर एक मुठभेड का मौका जरूर पैदा हो गया। कम्युनिस्टो के साथ मुठभेड हुआ भी। मुझे इस वात का अफसोस रहा कि कॉंग्रेसी लोग उनके प्रहारों को अहिंसात्मक रीति से वरदाश्त नही कर सके, कम्युनिस्टो के एक नेता को वहुत पीट भी दिया। वातावरण वहुत दूपित हो गया। हमारे सिद्धान्त को भी वहुत धक्का पहुँचा। अन्त मे दोनों दलों के लोग खूब हारे। विहार मे एक स्थान से भी उनका उमीदवार नही चुना गया। कई जगहो मे तो उनकी जमानत भी जब्त हुई।

आदिवासियो का विरोध भी हिंसा से खाली न रहा। जव मै दौरे पर निकला तो राँची-जिले मे कई आदमी मेरे सामने पेश किये गये जिनको आदिवासी-सभा के लोगो ने खूब पीटा था। वे सभाओं मे वडी तायदाद मे जमा होते और कॉंग्रेसी लोगो को मारते-पीटते। उनका विशेष ध्यान उन आदिवासियो पर होता जो कॉंग्रेस की ओर से खडे थे अथवा जो कॉंग्रेस की मदद कर रहे थे। ऐसे लोगो को उन्होने वहुत पीटा। कुछ घायलो को तो वहुत समय तक अस्पताल मे रहना पडा था। खूँटी-इलाके मे उनकी धाँधली वहुत ज्यादा थी। मैने इन वातों की सूचना गवर्नमेण्ट को दी, पर वहाँ के स्थानीय अफसरो का रुख कुछ ऐसा था कि गवर्नमेण्ट ने इन वातो पर कुछ ध्यान नही दिया। एक स्थान पर पॉच आदिवासी मार डाले गये। इस चुनाव के आन्दोलन मे मुस्लिम लीग और आदिवासी-सभा का गठवन्धन हो गया था। दोनों मिलकर काम कर रहे थे। आदिवासी-सभावाले भी 'पाकिस्तान-जिन्दावाद'

के नारे लगाया करते थे। मुस्लिम लीग के कुछ नेताओ ने पीछे इन पाँच मृत्युओ की सख्या बढाकर १००–१५० बना दी और सबके लिए कॉंग्रेस को दोषी ठहराया। यहाँ पर अधिक लिखना मुनासिब नही है, क्योकि अभी मुकदमे चल रहे है। पर इतना कह देना उचित होगा कि कॉंग्रेसी लोगों ने इससे बराबर इनकार किया है।

चुनाव का नतीजा यह हुआ कि श्री जयपालसिंह स्वय तो हार गये, पर उनके दल के तीन आदमी चुने गये—दो सिहभूम-जिले से और एक रॉंची-जिले से। सात सुरक्षित जगहो मे से उनके दल को दो जगहे मिली—एक रॉंची मे और एक सिहभूम मे तथा आम जगहो मे से एक जगह सिहभूम मे। पाँच सुरक्षित जगहे और दूसरी सभी जगहे, जहॉं पर उन्होंने मुकाबला किया, कॉंग्रेस के हाथ आयी। ईसाइयो के लिए जो सुरक्षित जगह है उसमे भी एक क्रिस्तान आये जो शायद उनके दल के है अथवा उनके मददगार है।

चुनाव-सम्बन्धी दौरे पर मै निकला और अधिकाश जगहो मे, जहॉं जाने का विचार था, गया। पर अन्तिम तीन-चार दिन दौरा न कर सका। फिर तबीयत कुछ ढीली पड गयी। उसी समय जोरो से पानी भी बरसने लगा। इत्तफाक से इन्ही दिनो मुंगेर-जिले मे जाना था। वहॉं नही जा सका। पीडित-कोष के लिए दौरा करते समय भी मुंगेर पहुँचने के पहले ही बीमार पड जाने के कारण वहॉं नही पहुँच सका था। बहुत दिनो के बाद मुंगेर-जिले के अन्य स्थानो मे तो जा सका, पर खास मुंगेर मे अभी तक नही जा सका हूँ। मेरे दौरे की विशेष जरूरत नही थी, क्योकि जनता मे बडा उत्साह था और कॉंग्रेस की जीत निश्चित थी। तो भी एक बार फिर से बहुत स्थानो मे जाना अच्छा ही रहा।

चुनाव समाप्त हो जाने पर मन्त्रिमण्डल बनना था। यद्यपि कॉंग्रेस की ओर से कोई बाजाब्ता निश्चय नही हुआ था कि कॉंग्रेस मन्त्रिमण्डल बनाने मे शरीक होगी, पर अब तो लडाई समाप्त हो चुकी थी। कॉंग्रेस ने लडाई के कारण ही मन्त्रि-पद छोडा था। अब वह कारण नही रहा। देश की परिस्थिति भी ऐसी थी कि सभी लोग चाहते थे कि कॉंग्रेस फिर मन्त्रि-पद ग्रहण करे। इस तरह कॉंग्रेसी लोग तथा कॉंग्रेस के बाहर के लोग, सभी समझे बैठे थे कि कॉंग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बनेगा ही। ऐसा ही हुआ भी। सीमा-प्रान्त, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, आसाम, उडीसा, मद्रास और बम्बई मे तो कॉंग्रेस का बहुतमत था। इनमे मन्त्रिमण्डल बनने मे कोई सन्देह नही था। पजाब मे किसी एक दल का बहुमत नही था, पर लीग के अधिक मेम्बर चुने गये थे। वहॉं कॉंग्रेस, सिख और युनियनिस्ट-पार्टी—तीनो मिलकर लीग से ज्यादा थे। इसलिए वहॉं इन तीनो की सम्मिलित पार्टी बन गयी और मन्त्रिमण्डल इनका ही बना, लीग का नही। सिन्ध मे लीग और दूसरे दलो का प्राय बराबरी का मुकाबला था। कहा जाता था कि लीग के साथ तीन अँगरेज मेम्बरो के मिल जाने पर भी दूसरो का एक या दो अधिक बहुमत था। पर सिन्ध के गवर्नर ने लीग को ही मिनिस्ट्री बनाने का निमत्रण दिया। वहॉं लीगी मिनिस्ट्री बनी जिसके सम्बन्ध मे अब भी कहा जाता

है कि उसके साथ बहुमत नही है। केवल एक बगाल मे ही युरोपियनो के साथ मिलकर लीग का बहुमत था। वहाँ भी लीगी मिनिस्ट्री बनी। बाकी सभी सूबो मे कॉंग्रेसी मत्रिमडल बने। बिहार मे पुराने चारो मिनिस्टर आरम्भ मे नियुक्त हुए। श्री जगलाल चौधरी १० बरस की सजा पाकर जेल मे थे, इसलिए चुनाव में खडे नही हुए थे। श्री बाबू, अनुग्रह बाबू और डाक्टर महमूद अपनी नियुक्ति होते ही उनको जेल से निकाल लाये और चौथी जगह पर उनको नियुक्त करा दिया। कुछ दिनों के बाद पाँच मिनिस्टर और भी नियुक्त किये गये। इस बार बिहार मे नव मिनिस्टर काम कर रहे है।

१५६—गो-सेवा-सम्बन्धी कार्य

महात्मा गाधी बहुत दिनो से गो-सेवा-सम्बन्धी अपने विचार प्रकाशित करते आ रहे है। साबरमती-आश्रम मे और सेवाग्राम मे भी गोशालाएँ चलती आयी है। सेठ जमनालाल बजाज की देख-रेख मे, वर्धा के पास ही नालवाडी मे, श्री राधाकृष्ण बजाज कई बरसों से गोशाला चला रहे है। पारनेरकरजी ने गाधीजी के विचारो के अनुसार गो-सेवा का विशेष अध्ययन और सक्रिय अनुभव प्राप्त किया है। अपने मरने के कुछ दिन पूर्व सेठ जमनालालजी ने गो-सेवा को अपना एक मुख्य कार्यक्षेत्र बना लिया था। उन्होने वर्धा मे इसके लिए नालवाडी की गो-शाला को केन्द्र बनाकर एक सस्था कायम कर ली थी। इसकी स्थापना के समय वहाँ एक सम्मेलन हुआ था जिसमे विशेषज्ञ लोग दूर-दूर से आमन्त्रित होकर आये थे। मै भी हाजिर था। मै सब प्रवृत्तियो का कुछ-कुछ अध्ययन करता आया था। पर गो-सेवा पर मैने विशेष ध्यान नही दिया था। मै इसके महत्त्व और उपयोगिता को भली भाँति समझ गया था, पर कोई सक्रिय अनुभव मैने नही पाया था। श्री बालुंजकर द्वारा सचालित नालवाडी के चर्मालय को भी जानता था। जब-तब वहाँ जाकर उसे देख आया करता था। गोशाला के साथ चर्मालय के सम्बन्ध को समझता भी था। इस विषय पर जब-तब कुछ लेख भी लिखे थे। गोशालाओं को, विशेषकर दरभगे की गोशाला को, इस ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न भी किया था। इतना होते हुए भी मै गो-सेवा-सघ का सदस्य नही बना था और न ऐसी किसी सस्था के साथ कोई विशेष सम्बन्ध ही जोडा था।

१९४६ के आरम्भ मे वर्धा से श्री जानकीदेवी बजाज और श्री राधाकृष्ण बजाज का पत्र आया कि इस बार के गो-सेवा-सम्मेलन का मै सभापति बनूँ। उसमे यह भी लिखा था कि पूज्य बापूजी की भी इच्छा है कि मै यह पद स्वीकार करूँ। यो तो श्री जानकीदेवी जी का कहना ही काफी था, तिस पर पूज्य बापू की आज्ञा! मैने स्वीकार कर लिया। ठीक समय पर वर्धा पहुँच भी गया। वहाँ पद के भार को सँभालने के लिए इस विषय पर कुछ विशेष ध्यान देना पडा। सम्मेलन मे अच्छे-अच्छे विशेषज्ञ आये थे, जिनमे सर दातार सिंह, लाला हरदेवदास (हिसार, पजाब)

और मध्यप्रान्त के सरकारी विशेषज्ञ श्री शाहीजी मुख्य थे। वही पर सब बातो को देख-सुनकर और बिहार से गये हुए दरभगा-गोशाला के प्रतिनिधि से बाते करके यह निश्चय कर लिया गया कि इस तरह का काम बिहार मे भी किया जाय तथा इसके लिए एक प्रान्तीय गो-सम्मेलन किया जाय। इसी निश्चय के अनुसार पटने मे एक गो-सम्मेलन हुआ जिसमे बिहार की सभी गोशालाओ की ओर से प्रतिनिधि आये। इनके अतिरिक्त दूसरे लोग भी आये। सर दातारसिह, लाला हरदेवसहाय, दिल्ली के सैयद रहीमतुल्लाह काजी (हिन्दू-मुस्लिम गो-रक्षा-सभा के सभापति), रावलपिडी के नजीर अहमद शरवानी और बिहार-गवर्नमेण्ट के विशेषज्ञ लोग, जो गो-सेवा मे दिलचस्पी रखते है, आये। मै ही सभापति बनाया गया। भागलपुर के रायबहादुर वशीधर ढानढनिया स्वागताध्यक्ष थे। पटना सिटी की गोशाला मे सम्मेलन हुआ। श्री जानकीदेवीजी भी पधारी।

मैने विषय का विशेष अध्ययन करके एक लम्बा भाषण लिखा। विशेषज्ञो ने तथा दूसरो ने उसे बहुत पसन्द किया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि सूबे भर की गोशालाओ और पिजरापोलो का एक सघ कायम किया जाय, उसके साथ सभी गोशालाओ को सम्बद्ध हो जाना चाहिए, सघ का एक स्थायी दफ्तर भी रहना चाहिए जिसकी रजिस्ट्री करा ली जाय और सघ के दफ्तर की देखरेख मे नमूने के लिए एक आदर्श गोशाला खोली जाय। इन्ही निश्चयों के अनुसार दफ्तर खुल गया। सदाकत-आश्रम मे एक छोटी गोशाला भी हो गयी। उसको बढाकर आदर्श गोशाला का रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि दरभगा-गोशाला के प्रबन्धक श्री धर्मपालसिह के परिश्रम और लगन से यह काम आगे बढ निकलेगा। यह एक नया काम है। इसका भार मैने उन मित्रो के भरोसे पर लिया जिन्होने इसमे काफी दिलचस्पी दिखलायी है।

मै गो-सेवा को धार्मिक दृष्टि से नही फैलाना चाहता। भारत की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को समझता हूँ। इसी तरह से हम इसमे उनकी भी मदद पा सकते है जिनमे इसके लिए वैसी धार्मिक भावना नही है जैसी हिन्दुओ, जैनो और सिखो मे पायी जाती है। मै मानता हूँ कि यही आर्थिक लाभ और उपयोगिता की भावना कुछ काम कर सकती है और सफल भी हो सकती है। निरी धार्मिक भावना मुसलमानो मे द्वेष और हिन्दुओ मे आडम्बर तथा दम्भ पैदा करती है जिससे सच्ची गो-रक्षा और गो-सेवा पीछे रह जाती है और दिखावे की मात्रा बढ जाती है। इसलिए, मैने अपने भाषण मे भी आर्थिक दृष्टिकोण से ही इस पर विचार किया। मैने बतलाया कि कृषि-प्रधान देश मे गो-जाति और गोवश का कितना महत्त्व है—किस तरह हम अपने अन्धविश्वास और अज्ञान के कारण उसकी सेवा के बदले उसका अहित कर रहे है—दूसरो की सहानुभूति प्राप्त करने के बदले उनका द्वेष एव विरोध मोल ले रहे है। हमारा विश्वास है कि ठीक तरह से, वैज्ञानिक रीति से, यदि इस विषय का अध्ययन और प्रचार किया जाय तो हम निस्सदेह सबकी सहानुभूति और मदद पा सकते है।

उदाहरण के लिए एक मोटी बात ही ले लीजिए। साल भर मे बकरीद एक या दो दिन हुआ करती है। उसी दिन जहाँ-तहाँ मुसलमान कुछ गौओ की कुर्बानी किया करते है। इसके लिए बहुत जगहो पर काफी खून-खराबा हो जाया करता है। पर हिन्दुओ की दृष्टि इस ओर नही जाती कि कसाईखानो मे रोज-रोज हजारो गाये कत्ल की जाती है—विशेषकर लश्करी छावनियो के लिए तो अच्छी-अच्छी गाये ही कत्ल की जाती है। इस महायुद्ध मे विदेशी फौजो के लिए तो न मालूम हिन्दुस्तान के कितने जानवर कत्ल कर दिये गये। धार्मिक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर कुर्बानी करनेवालो के साथ तो इतनी सख्ती और पेट या जीभ के लिए अथवा कुछ पैसे कमाने के लिए कत्ल करने या करानेवालो को कोई पूछता भी नही! बूढी, लँगडी और बेकार गायो की रक्षा के लिए गोशालाओ मे करोडो रुपये खर्च किये जा रहे है, पर इस ओर किसी का ध्यान ही नही जाता कि गाये किस तरह एक मुनाफा देनेवाला जानवर बना दी जायँ कि उन्हे किसी हिन्दू या गैर-हिन्दू को न तो बेचने की जरूरत रहे और न कत्ल करने की। आज तो गाय के दूध और बछडे से जो कुछ मिल सकता है उससे अधिक उसे वध के लिए बेच देने से मिल सकता है। जो वध करने के लिए उसे खरीदता है वह उसके मास, चमडे, हड्डी, चर्बी और सीग से उससे अधिक पैदा कर सकता है जो वह उसे पालकर उसके दूध-बछडे इत्यादि से पैदा कर सकेगा। इन्ही कारणो से गो-सेवा मे आस्था रखनेवाले हिन्दू भी वध के लिए गाय बेच डालते है और वध करनेवाले उसे खरीद लेते है। मेरा विश्वास है कि गाय यदि शास्त्रीय ढग से पाली-पोसी जाय, उसके दूध की वृद्धि की जाय, उसके गोबर-मूत्र इत्यादि का ठीक इस्तेमाल किया जाय, उसके मर जाने पर उसके चमडे, मास, चर्बी, पुट्ठे, हड्डी, सीग इत्यादि का ठीक उपयोग किया जाय, तो गोपालन नुकसान के बदले मुनाफा देनेवाला पेशा हो जाय।

इसी विचार और ध्येय को सामने रखकर काम करना है। केवल बहुत दूध देनेवाली गाय, जिसके बछडे हल जोतने और गाडी खीचने के काम के योग्य न हो, ऐसे ही देशो मे काम दे सकती है जहाँ बैलो से मास-लाभ के सिवा दूसरा काम नही लिया जाता—जहाँ बछडे भी केवल मास के लिए ही पाले जाते है, जैसे हिन्दुस्तान मे खस्सी। पर हिन्दुस्तान मे—जहाँ लोग गो-मास नही खाते, जहाँ बैलो से दूसरे बहुत-से आवश्यक काम लिये जाते है, जहाँ बैलो के बिना किसान का कोई काम चल ही नही सकता—हमे ऐसी गाये चाहिए जो काफी दूध भी दे और अच्छे बछडे भी। यह तो नस्ल पर ध्यान देने से ही हो सकता है। हमारे देश के लोग इस विषय पर काफी ध्यान देते थे। वे जरूरत के मुताबिक मवेशी भी पैदा कर लेते थे। आज भी हम देख सकते है कि एक नस्ल के जानवर बहुत बोझ ढो सकते है और बहुत परिश्रम के काम भी कर सकते है, पर वे बहुत तेज भाग नही सकते। दूसरे प्रकार के जानवर बहुत तेज भाग सकते है, पर उतना बोझ नही ढो सकते और न उतना अधिक परिश्रम ही कर सकते है जितना पहले प्रकार के। कुछ गाये ऐसी है जो बहुत दूध देती है,

पर उनके बछडे उतने अच्छे नही होते। कुछ ऐसी है जिनके बछडे तो अच्छे होते है, पर वे अधिक दूध नही देती। भारत का किसान एक गाय दूध के लिए और दूसरी बछडे के लिए नही रख सकता। उसको तो एक ही गाय से दोनो काम लेना है। इसलिए हमको ऐसी नस्लो को ही प्रोत्साहन देना होगा जो इन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक हो सके। इस प्रकार की गोशालाएँ हो जायँ जो अधिक दूध देनेवाली गाये रखे—जिनसे अच्छे काम लायक बछडे भी पैदा हो। यदि गो-सेवा का ठीक प्रबन्ध किया जाय तो गाय मुनाफा देनेवाली हो जायगी—उसका वध खुदबखुद बन्द हो जायगा। साथ ही, जो गाये बूढी और कमजोर पड जायँगी उनकी रक्षा भी, अच्छी गायो के दिये हुए मुनाफे से तथा उनके अपने मास-चाम इत्यादि के दाम से, हो सकेगी। ऐसी अवस्था मे ही गो-रक्षा और गो-सेवा मे मुनाफा और गोवध मे नुकसान होगा। तभी सब लोग—चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, धार्मिकभावना से उत्तेजित हो अथवा स्वार्थभावना से प्रेरित—गोरक्षा के काम को अपना हितकर काम मानने लगेगे। तभी सच्ची गो-सेवा और यथार्थ गो-रक्षा हो सकेगी।

१५७—भारतीय इतिहास-परिषद्

मैने ऊपर कहा है कि जेल जाने के पहले, १९४२ मे, वर्धा से लौटते समय, इतिहास-परिषद् की बैठक के लिए मै काशी मे उतर गया था। उस समय इतिहास लिखने का काम कई सज्जनो के सपुर्द किया जा चुका था। कहा जाता था कि अकबर-सम्बन्धी एक जिल्द करीब-करीब तैयार है। १९४२ मे अकबर के जन्म के ४०० बरस पूरे होते थे। ऐसा विचार था कि अकबर के जन्म-दिन पर यह खण्ड प्रकाशित हो जाय। जेल जाने के समय तक ऐसा होने मे काफी अडचने आ गयी थी। छपाई और कागज की दिक्कत तो थी ही, बमबाजियो के कारण कलकत्ता-मद्रास आदि शहरो से पुस्तकालयो और सग्रहालयो के सामान भी जहाँ-तहाँ सुरक्षित स्थानो मे हटा दिये गये थे। इस कारण, सहायक-ग्रथो के अभाव से, पुस्तक लिखने मे भी कठिनाई उपस्थित हो गयी थी। तो भी मै आशा करता था कि पुस्तक प्रकाशित हो सकेगी, पर ऐसा हो नही सका। मेरी गिरफ्तारी के कुछ दिनो बाद श्री जयचन्द्र विद्यालकार भी गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिये गये। इससे सब काम रुक गया। मेरे बाहर निकलने के कुछ पहले ही सर यदुनाथ सरकार और श्री मथुराप्रसाद ने चाहा कि इतिहास-प्रकाशन का काम फिर चलाया जाय। विद्वानो ने कुछ लिख डाला ही था, सिर्फ प्रकाशन की बात थी। दो जिल्दे तैयार थी। बम्बई के भारतीय विद्या-मन्दिर के सचालक श्री कन्हैयालालजी मुन्शी से कुछ बात चली कि प्रकाशन का भार विद्या-मन्दिर ले ले, पर अन्त मे कुछ तय न हो सका। इसलिए यह प्रबन्ध किया गया कि दो जिल्दे जो तैयार हो गयी थी वे प्रकाशित कर दी जायँ—डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार और डाक्टर अलटेकर-लिखित 'वाकाटक'-युग-सम्बन्धी छठी जिल्द तथा श्री नीलकठ

शास्त्री-लिखित गुप्त-कालीन चौथी जिल्द। छठी जिल्द छापाखाने मे भेज दी गयी थी। जेल से निकलते ही मैंने सोचा कि इस काम मे विलम्ब नही होने देना चाहिए। सिमले से लौटते ही मैं कलकत्ते गया। वहाँ सर यदुनाथ सरकार तथा डाक्टर मजुमदार से भेट की। सब बाते तय हुई। एक बार और इसी सम्बन्ध मे चन्द घटो के लिए कलकत्ते मे ठहरा। छठी जिल्द तो प्रकाशित हो गयी और चौथी अभी छापाखाने मे है।

कुछ दिनों बाद् श्री जयचन्द्र विद्यालकार जेल से रिहा हुए। मैंने समझा कि अब काम तेजी से आगे बढेगा। पर कुछ कारणों से सर यदुनाथ सरकार रुष्ट हो गये। उन्होने इस्तीफा दे दिया। बहुत कहने पर भी उन्होने उसे वापस नही लिया। श्री जयचन्द्र विद्यालकार भी अभी तक इस काम को पूरी तरह अपने हाथो मे नही ले पाये है। इसलिए काम रुका पडा है। मै इस काम मे श्री जयचन्द्रजी की प्रेरणा से, अपने स्वर्गीय मित्र श्री काशीप्रसाद जायसवाल की स्मृति के प्रति श्रद्धा के कारण, पडा था। इतिहास मे दिलचस्पी रखते हुए भी अन्य कामो का तना बोझ था कि यदि ये बाते न होती तो मै शायद अपनी प्रेरणा से यह बोझ न उठाता। तिस पर सर यदुनाथ सरकार का प्रोत्साहन मिला। आज कुछ ऐसी स्थिति हो गयी है कि यह मालूम ही नही होता कि यह काम कब पूरा हो सकेगा। पर इसे तो पूरा करना ही है। सभी विघ्न-बाधाओ के रहते हुए भी इसे पूरा कराना होगा। आगे ईश्वर जाने।

१५८—१९४६ की घोषणा और सरकारी योजना

१९४६ के मार्च मे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से घोषणा हुई कि भारत के मसले को सुलझाने के लिए भारत-मत्री लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मिस्टर ए० बी० अलेक्जेण्डर भारत आवेगे और यहाँ के नेताओ तथा वाइसराय से बाते करेगे। इस बात की घोषणा करते हुए प्रधान मत्री मिस्टर क्लिमेण्ट एटली ने यह भी कहा कि यद्यपि अल्पसख्यक लोगों के स्वत्वो की रक्षा का प्रबन्ध किया जायगा, तथापि किसी अल्पसख्यक दल को भारतीय राजनीतिक प्रगति मे बाधा नही डालने दिया जायगा और इँगलेड इस बात के लिए तैयार है कि हिन्दुस्तान आजाद हो जाय—इँगलैड यह जरूर चाहता है कि हिन्दुस्तान उसके साथ रहे, पर यह निश्चय करने का अधिकार कि वह साथ रहेगा या एकदम अलग हो जायगा हिन्दुस्तान को ही होगा। इस प्रकार घोषणा बहुत अशों मे सन्तोषजनक मालूम हुई। थोडे ही दिनो के बाद मन्त्रिमण्डल के तीनो सदस्य पहुँच गये। वाइसराय से तथा गवर्नमेण्ट के दूसरे उच्च कर्मचारियो से बाते करने के बाद उन्होने भिन्न दलों के प्रमुख लोगों से बाते शुरू की। काँग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद तथा महात्मा गाधी से भी उनकी बाते हुई। इस तरह सब दलों के लोगो से बाते करते बहुत दिन लग गये। तब उन्होने काँग्रेस के प्रेसिडेण्ट और लीग के प्रेसिडेण्ट को लिखा कि वे अपने-अपने चार-चार प्रतिनिधि

दे जिनके साथ बैठकर वे सिमले मे बाते करना चाहते है। दोनो पक्षो के आठ आदमी और वाइसराय को मिलाकर वे चार आदमी सिमले मे एकत्र हुए। कई दिनो तक बाते होती रही, पर कुछ फल नही निकला। इस पर उन्होने कान्फ्रेन्स खत्म करके घोषणा की कि दिल्ली मे वे देश के सामने अपनी योजना रखेगे। सब लोग दिल्ली वापस आ गये। दिल्ली लौटकर उन लोगो ने गवर्नमेण्ट की ओर से १६ मईवाला वक्तव्य निकाला जिसमे अपनी योजना देश के सामने रखी।

योजना के मुख्य तीन भाग थे। पहले मे युक्तियुक्त कारणो के साथ उन्होने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को अव्यवहार्य्य बतलाया और कहा कि यह नही हो सकता है—इसलिए भारत का विधान ऐसा होगा कि उसमे भारत के सूबो का एक सघ बनेगा जिसमे देशी रियासते भी शरीक हो सकेगी, इस केन्द्रीय सघ के अधिकार मे तीन विभाग होगे—फौज और बचाव, विदेशो के साथ सम्बन्ध रखनेवाले मामले, रेल-तार इत्यादि, इन तीनो विभागो के लिए जो रुपयो की जरूरत हो उसको वसूल, कर लेने का अधिकार भी होगा—अन्य विषयो में सूबो को स्वतन्त्रता रहेगी। जो ऐसे विषय है जिनका कही जिक्र न हो और जो बच गये हो वे सब सूबो के अधिकार मे होगे। दूसरे भाग मे उस विधान-निर्माण-समिति की योजना बतलायी गयी, जिसके जिम्मे विधान बनाने का काम सपुर्द किया जायगा। तीसरे मे तत्काल गवर्नमेण्ट कायम करने की बात कही।

वक्तव्य मे यह स्पष्ट कह दिया गया था कि भारतवर्ष को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अपने को अलग कर सकता है। विधान-निर्माण-समिति के सगठन का रूप निम्नलिखित प्रकार का होगा। सभी प्रान्तो की असम्बलियाँ अपने-अपने प्रान्त की आबादी के प्रत्येक १० लाख पर एक आदमी को चुन लेगी और ये लोग ही विधान-निर्माण-समिति के सदस्य होगे। उस चुनाव मे मुसलमान सदस्य तथा पजाब मे सिख सदस्य अपनी जाति के प्रतिनिधि अलग-अलग वोट देकर चुनेगे। बाकी सब लोग इकट्ठे ही वोट देकर प्रतिनिधि चुनेगे। दिल्ली-अजमेर-मेरवार के प्रतिनिधि वे ही लोग समझे जायँगे जो वहाँ से चुनकर इस समय केन्द्रीय असम्बली मे भेजे गये है और कुर्ग तथा बलूचिस्तान के प्रतिनिधि अलग से चुन लिये जायँगे। ये लोग मिलकर देशी रजवाडो के प्रतिनिधियो से बात करके तय कर लेगे कि उनके कैसे और कौन प्रतिनिधि होंगे। उनकी सख्या भी १० लाख आबादी पर एक प्रतिनिधि के अनुपात मे ही होगी। इस प्रकार ब्रिटिश भारत के कुल २९२ प्रतिनिधि होगे जिनमे २१० गैर-मुस्लिम, ७८ मुस्लिम और ४ सिख होगे। सूबे तीन भागों मे विभक्त होगे। पहले विभाग मे मद्रास, बम्बई, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उडीसा होंगे। दूसरे विभाग मे पजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान तथा तीसरे विभाग मे बगाल और आसाम होगे। ब्रिटिश भारत की विधान-निर्माण-समिति की प्रारम्भिक बैठक मे सभी सदस्य शरीक होगे। उस बैठक मे सभापति इत्यादि पदाधिकारी चुन लिये जायँगे और कार्यपद्धति निश्चित कर ली

जायगी। इसके बाद तीनो विभागो के सदस्य अलग-अलग बैठेगे। उनमे से प्रत्येक अपने विभाग मे सम्मिलित सूबो के लिए विधान तैयार करेगा। तब वह इस बात का निश्चय करेगा कि उस विभाग के लिए किसी सम्मिलित विधान की भी आवश्यकता है या नही, और यदि है तो उसके क्या विषय होगे और उसका क्या रूप होगा। अन्त मे विधान-निर्माण-समिति की फिर बैठक होगी जिसमे देशी रजवाडो के प्रतिनिधि भी शरीक होगे और अखिल भारतीय सघ का विधान तैयार किया जायगा। विधान तैयार हो जाने के बाद जब उसके अनुसार प्रान्तो की असम्बलियो का चुनाव हो जायगा तब प्रत्येक सूबे को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो अपनी असम्बली के वोट से जिस विभाग मे वह सम्मिलित किया गया है उसमे शरीक न रहकर अलग हो जाय। अल्पसख्यक जातियो के स्वत्व-सरक्षण के लिए एक अलग समिति बनायी जायगी जिसमे उनके प्रतिनिधि रहेगे और जो सरक्षण के उपाय और तरीके बतावेगी, उसके निश्चयों पर विधान-निर्माण-समिति विचार करके विधान मे उचित प्रबन्ध रखेगी। तत्काल के लिए वाइसराय फिर नये सिरे से अपनी कौन्सिल की नियुक्ति करेगे और उसमे यथासाध्य भारत के विभिन्न दलो के प्रतिनिधियो को रखेगे। यद्यपि १९३५ का विधान आज बदला नही जायगा और उसके अनुसार वाइसराय के हाथो मे ही अन्तिम अधिकार रहेगे तथापि जहाँ तक हो सकेगा, कौन्सिल की राय से ही काम चलाया जायगा और उसमे यथासाध्य हस्तक्षेप नही होगा।

इस योजना मे किसी भी दल की सभी माँगे मजूर नही की गयी थी और न सब एकबारगी नामजूर ही की गयी थी। सब दलो को कुछ न कुछ देकर खुश करने का प्रयत्न किया गया था। लीग की पाकिस्तान की माँग नामजूर तो की गयी थी, पर उसके साथ ही सूबो को इस तरह तीन विभागो मे बाँट दिया था कि जिन सूबों को मुस्लिम लीग पाकिस्तान मे मिलाना चाहती थी उनको दो विभागो मे रख दिया था और बाकी सूबो को अलग एक विभाग मे। पाकिस्तान की नामजूरी से लीग नाखुश और दूसरे लोग सन्तुष्ट थे, पर इस प्रकार सूबो का विभाजित होना लीग को पसन्द था और वह इस विभाजन मे पाकिस्तान के बीज देखने लगी। दूसरे लोग इस विभाजन को नापसन्द करते थे और इसमे पचरी की उस बारीक नोक को देखते थे जो आगे चलकर आहिस्ता-आहिस्ता घर करती हुई शायद फिर पाकिस्तान का रूप धारण कर लेगी। इस बात से यह विरोध और भी तेज हो जाता था कि इन दोनो मुस्लिम विभागो मे पजाब और बगाल के वे अश भी शरीक रखे गये थे जिनमे हिन्दुओ की बहुत अधिक आबादी थी तथा आसाम का सूबा भी उसमे शरीक किया गया था, यद्यपि आसाम मे मुसलमानो की आबादी एक-तिहाई से अधिक नही है।

इस योजना पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनो तक होती रही। बीच-बीच मे कैबिनेट-मिशन और वाइसराय से काँग्रेस-प्रेसिडेण्ट तथा कभी-कभी कुछ दूसरे मेम्बरो की मुलाकात भी होती रही। वर्किंग कमिटी ने योजना की उन त्रुटियो की ओर ध्यान आकर्षित किया जिनको वह महत्त्वपूर्ण समझती

थी। उसने यह राय जाहिर की कि उसके मत के अनुसार सूबे बाध्य नही है कि उन विभागो मे वे सम्मिलित हो जिनमे वे जोड दिये गये थे। यह तो ज़ाहिर था कि विधान बन जाने के बाद प्रत्येक सूबे को अधिकार होगा कि अपनी असम्बली की राय से वह उस विभाग से अलग हो जाय, पर वर्किंग कमिटी का कहना था कि उसके अलावा विधान बनाने के लिए विभागो की अलग बैठक मे शरीक न होने का भी प्रत्येक सूबे को अधिकार है। सूबा सरहदी ओर आसाम, दोनो ही, जबरदस्ती विभाग मे मिलाये जाने के विरुद्ध थे---इसलिए उनको यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे आरम्भ से ही विभागो से अलग रह सके। वर्किंग कमिटी का कहना था कि सारी योजना के पढने से यही अर्थ निकलता था।

मिशन ने अपनी सम्मति दी कि उसका इरादा ऐसा नही था कि आरम्भ से ही सूबे शरीक न हो, पर विधान बनने के बाद सूबो को अलग हो जाने का अवश्य अधिकार था।

वर्किंग कमिटी अपनी राय पर डटी रही। उसने निश्चय किया कि अपनी राय के अनुसार वह योजना काम मे लायेगी। उधर मुस्लिम लीग ने योजना की कडी समालोचना की। कहा कि पाकिस्तान नामजूर करना न्याययुक्त नही, पर तो भी सूबो के विभाजन मे वह पाकिस्तान का अकुर देखती है और अपने ध्येय-साधन के लिए वह योजना को मजूर करती है।

इसके बाद कुछ दिनो तक तात्कालिक गवर्नमेण्ट के सम्बन्ध मे बातचीत चलती रही। शुरू मे वाइसराय की राय थी कि १२ आदमियो की गवर्नमेण्ट बने जिनमे ५ मुसलमान, ५ हिन्दू और दो दूसरे हो। कॉग्रेस को यह बात किसी तरह मजूर नही थी। एक तो, हिन्दुओ और मुसलमानो की सख्या बराबर होती थी, यद्यपि हिन्दुओ की सख्या आबादी मे मुसलमानो की सख्या से तिगुनी है। दूसरे, सिमला-कान्फ्रेन्स के समय, १९४५ की जुलाई मे, लार्ड वेवल की योजना मे, ५ मुसलमान और हरिजन-प्रतिनिधि के अलावा, ५ हिन्दुओ को स्थान दिया गया था और दूसरे अल्पसख्यको की सख्या भी दो से अधिक थी। इस तरह, केवल हिन्दू-मुस्लिम समानता का ही सवाल न था, बल्कि लार्ड वेवल के प्रस्ताव से भी यह कही अधिक बुरा था। वेवल-प्रस्ताव को भी कॉग्रेस ने, लडाई का जमाना होने के कारण, किसी तरह, मजूर कर लिया था। अब वह लड़ाई का जमाना भी नही था। उस दबाव से कॉग्रेस इस समय मुक्त थी, तो वह इसे कैसे मजूर कर सकती थी? कॉग्रेस का विचार था कि १५ सदस्यो की गवर्नमेण्ट जब बनेगी तभी अल्पसख्यको के यथेष्ट प्रतिनिधि लिये जा सकेंगे और सबको सन्तुष्ट किया जा सकेगा।

वाइसराय ने १२ के बदले १३ की गवर्नमेण्ट बनाने की बात कही जिनमे ५ मुसलमान, एक हरिजन, ५ दूसरे हिन्दू और दो अन्य अल्पसख्यको के प्रतिनिधि होते। कॉग्रेस ने इसे भी नामजूर कर दिया। तब मिशन और वाइसराय ने विज्ञप्ति निकाली

कि कॉंग्रेस और लीग दोनो की राय से गवर्नमेण्ट बनाने का प्रयत्न विफल हो गया— अब वे अपनी ओर से प्रस्ताव रखेंगे। तारीख १५-६-४६ को उनका प्रस्ताव प्रकट किया गया, जिसमे उन्होने चौदह आदमियो के नाम दिये, जिनको वाइसराय ने गवर्नमेण्ट मे शरीक होने का निमत्रण दिया। इनमे पॉच लीगी मुसलमान, पॉच कॉंग्रेसी गैर-हरिजन हिन्दू, एक कॉंग्रेसी हरिजन, सिख, एक ईसाई और एक पारसी के नाम थे। बातचीत के दरम्यान वाइसराय ने पडित जवाहरलालजी से, जो कभी-कभी वहॉं आया-जाया करते थे, नाम पूछे थे। उन्होने कुछ नाम बताये भी थे। हरिजन और दूसरे कॉंग्रेसी लोगो के, एक के सिवा, वही नाम थे जो पडितजी ने बताये थे— ईसाई और सिख के भी नाम उनके बताये हुए ही थे—मुसलमानो मे भी चार नाम वही थे जो पडितजी न बताये थे। पर एक गैरलीगी मुसलमान के नाम के बदले मे लीगी मुसलमान का नाम और एक कॉंग्रेसी हिन्दू के बदले मे दूसरे कॉंग्रेसी हिन्दू का नाम तथा एक पारसी का नया नाम वाइसराय ने दिया था।

हम इस बात पर विचार कर ही रहे थे कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय या नही कि इसी बीच मे मिस्टर जिन्ना से वाइसराय की बाते हुई और उनके कहने पर वाइसराय ने उनकी कई बाते मान ली जो पत्रो मे किसी न किसी तरह प्रकाशित हो गयी। इस पर हम लोग चिहुँक गये। मॉंगने पर वाइसराय ने अपने पत्र के उस अश की नकल भेज दी जिसमे मिस्टर जिन्ना की मॉंगों को उन्होने मजूर किया था। इसमे महत्त्व की बाते यह थी कि १४ से अधिक गवर्नमेण्ट की सख्या नही होगी— अल्पसख्यको की जो जगहे खाली होंगी उनकी नियुक्ति मे लीग की राय ली जायगी— गवर्नमेण्ट कोई ऐसा काम नही करेगी जिसमे लीग का बहुमत भी शरीक न हो। इस तरह, गवर्नमेण्ट के सगठन मे ही नही, उसकी प्रतिदिन की कारंवाइयो मे भी लीग की अनुमति के बिना कुछ न हो सकेगा। जब हमारे दिये हुए गैर-लीगी मुसलमान के नाम को वाइसराय ने छॉंट दिया और यह साफ हो गया कि पॉच लीगी मुसलमानो की सख्या मे कमी न हो सकेगी, तो वर्किंग कमिटी यह विचार करने लगी कि काग्रेस अपनी पॉच जगहो मे से एक मे किसी राष्ट्रीय विचारवाले मुसलमान का नाम दे। हम ऐसा सोच ही रहे थे कि वाइसराय का पत्र मिल गया कि मुसलमान का नाम कॉंग्रेस न दे, क्योंकि उसकी मजूरी नही हो सकेगी। वर्किंग कमिटी इस स्थिति को कभी मजूर नही कर सकती थी, क्योंकि इसके मजूर करने का अर्थ हो जाता था कि कॉंग्रेस केवल हिन्दुओ की जमायत है और केवल मुस्लिम लीग को ही मुसलमानो का प्रनिनिधित्व प्राप्त है।

सब बातो पर विचार करके वर्किंग कमिटी ने तात्कालिक गवर्नमेण्ट बनाने की १६-६-४६ वाली योजना को नामजूर कर दिया। अब उसके सामने प्रश्न यह था कि विधान-निर्माण-समिति-सम्बन्धी योजना के बारे मे क्या किया जाय। उसके दोषो और त्रुटियो को हम बता चुके थे। उस योजना का जो अर्थ हम निकालते थे वह भी बता चुके थे। यह भी हम कह चुके थे कि अपने अर्थ के अनुसार ही हम उससे

काम लेंगे। इस प्रकार, यद्यपि अपनी सम्मति के अनुसार उसमे काम निकालने की बात कहकर हम एक प्रकार से उसे मजूर तो कर चुके थे, पर स्पष्ट शब्दो मे दो-टूक फैसला करके साफ-साफ कुछ नही कहा था। इसलिए उस पर एक बार फिर विचार करने की जरूरत पडी। कमिटी मे दो-एक आदमी छोडकर, जो उसको मजूर नही करना चाहते थे, बाकी सभी सदस्य उसे मजूर करने के पक्ष मे थे—विशेषकर महात्मा गाधी तो मजूरी का जोरो से समर्थन कर रहे थे। इसी समय एक तार आसाम से आया जिसमे यह कहा गया था कि बगाल मे विधान-निर्माण-समिति के चुनाव के लिए जो नियम बनाया गया है उसके अनुसार प्रत्येक उमीदवार को प्रतिज्ञा करनी पडेगी कि वह समिति का सदस्य होना योजना की उस धारा के अनुसार मजूर करता है जिसमे बहुतेरी दूसरी बातो के साथ-साथ सूबो के तीन विभागो का भी जिक्र है। इस तार के प्रेषक ने यह अर्थ निकाला था कि उमीदवारो को पहले से ही विभागो को मान लेने की प्रतिज्ञा कर लेनी पडेगी। आसाम, और हम सभी, विभागो मे जाने के विरोधी थे ही। इसलिए कुछ शका पैदा होने लगी, पर अभी कोई राय स्थिर नही हुई थी, क्योकि नियम अभी तक पूरे देखे नही गये थे—यद्यपि, नमूने के तौर पर, भारत-सरकार की ओर से प्रान्तो मे जो नियम भेजे गये थे उनकी नकल, हमारे पास भी, गवर्नमेण्ट ने भेज दी थी।

उस दिन का काम खत्म करने का समय हो गया था, इसलिए दूसरे दिन के विचार के लिए बात स्थगित कर दी गयी। सोचा गया कि इस बीच मे हम लोग नियमो को भी भली भाँति देख लेंगे। महात्माजी के दिल मे उक्त तार के कारण शका हो गयी। प्रार्थना के समय भाषण मे उन्होने यह बात कह दी। इसका नतीजा यह निकलता था कि कॉग्रेस उस योजना को भी मजूर नही करेगी। दूसरे दिन हम लोग मिले। हम लोगों की राय मे नियम का वह अर्थ नही निकलता था जो तार भेजने-वाले ने निकाला था। इस बीच मे महात्माजी की, कैबिनेट-मिशन के लोगो से, भेंट हुई। उन्होने भी यही कहा कि उस प्रतिज्ञा का अर्थ वह नही है, पर यदि किसी प्रकार से वह अर्थ निकलता हो और महात्माजी को नियम के शब्दो के कारण कोई नैतिक अड़चन मालूम होती हो, तो उसके शब्दो को भी वे बदलवा देंगे और साफ कर देंगे, क्योंकि उनका यह कभी आशय था ही नही।

नियम बदल भी दिया गया। हमने इसलिए उस योजना को मजूर कर लिया। इस तरह अब स्थिति यह हो गयी कि कॉग्रेस-वर्किंग कमिटी ने तारीख १६ मई (१९४६)वाली दीर्घकालीन योजना को मजूर कर लिया। यद्यपि मजूर करने मे उसकी त्रुटियो को नजरअन्दाज नही किया और न जो अर्थ वह योजना का लगाती थी उसे ही छोडा तथापि उसने तारीख १६ जून (१९४६) वाली अन्तरकालीन गवर्न-मेण्ट-सम्बन्धी योजना को नामजूर कर दिया। यह निश्चय एक पत्र द्वारा, प्रस्ताव की नकल साथ भेजकर, मिशन और वाइसराय को बता दिया गया। उस तरफ लीग ने दीर्घकालीन योजना को पहले ही मजूर कर लिया था और अन्तरकालीन योजना के सम्बन्ध

में कॉंग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी। उसी दिन वाइसराय से मि० जिन्ना की मुलाकात हुई जिस दिन कॉंग्रेस का फैसला वहाँ भेजा गया था। वाइसराय ने उनको हमारा पत्र दिखला दिया। तारीख १६ जून की योजना में एक बात यह लिखी थी कि अगर कोई दल उस योजना को नामजूर कर दे तो भी वाइसराय अन्तरकालीन गवर्नमेण्ट बनाने के प्रयत्न को जारी रखेंगे और ऐसे दलो के प्रतिनिधियो की अन्तर-कालीन गवर्नमेण्ट बनावेगे जिन्होंने १६ मई की योजना को मजूर कर लिया हो। अब स्थिति यह थी कि कॉंग्रेस और लीग दोनो ही ने १६ मई की योजना मजूर कर ली थी, इसलिए तारीख १६ जून की योजना की आठवी दफा के अनुसार इन दोनो दलो के प्रतिनिधि लेकर ही वाइसराय अन्तरकालीन गवर्नमेण्ट बना सकते थे, और वह वैसा ही करना चाहते हैं—यह बात उन्होने उसी मुलाकात में मि० जिन्ना से कह भी दी।

लीगवाले तो इसी उमीद मे बैठे थे कि कॉंग्रेस ने अगर १६ जून की योजना नामजूर कर दी तो अब अन्तरकालीन गवर्नमेण्ट मे लीग की ही प्रधानता रहेगी और कॉंग्रेसी लोगो के उससे बाहर रह जाने से लीग के हाथो मे ही अधिकार आ जायगा। मुलाकात के समय तक १६ जूनवाली योजना को लीग ने भी मजूर नही किया था, क्योंकि वह कॉंग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी। वाइसराय की यह बात उनको खटकी, तो भी उन्होने उसी रात को निश्चय किया कि लीग १६ जून की योजना भी मजूर करती है। दूसरे दिन मिशन और वाइसराय ने घोषणा कर दी कि १६ जून की योजना कॉंग्रेस ने नामजूर कर दी, इसलिए उसकी आठवी दफा के अनुसार अब, कॉंग्रेस और लीग दोनो के प्रतिनिधियों को लेकर, वाइसराय अन्तरकालीन गवर्नमेण्ट बनायेंगे—पर चूंकि मिशन को तुरन्त इँगलैंड वापस जाना है और इसके बनने मे कुछ विलम्ब हो सकता है, इसलिए तब तक केवल सरकारी अफसरों को लेकर ही काम-चलाऊ गवर्नमेण्ट बना ली जायगी। इस निश्चय के अनुसार मिशनवाले वापस चले गये। कामचलाऊ गवर्नमेण्ट बना ली गयी।

वाइसराय और मिशन के इस फैसले से लीग बहुत रुष्ट हुई। उसके प्रमुख लोगो ने कडे-कडे वक्तव्य दिये। लीग-कौन्सिल की एक बैठक बुलायी गयी। उन लोगो का कहना था कि कॉंग्रेस ने १६ मई की योजना को मजूर नही किया है—उसकी इतनी कडी समालोचना की है और उसके अर्थ का ऐसा अनर्थ किया है कि वह नामजूरी के बराबर है—उसने यह भी अपना इरादा बतला दिया है कि वह सूबो के विभाजन को नही मानती, जो उस योजना की मौलिक बात है और उसे तोडने के इरादे से ही वह विधान-निर्माण-समिति मे जाना चाहती है। इस बीच मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई जिसमे नये चुनाव मे निर्वाचित सभापति पडित जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्ष-पद ग्रहण किया। वहाँ पर कॉंग्रेस-सोशलिस्ट-दल के विरोध के बाद भी कमिटी ने वर्किंग कमिटी के निश्चय का समर्थन कर दिया। इसके बाद सभी सूबो मे असम्बलियों ने विधान-निर्माण-समिति के सदस्यो को चुन

लिया। इस चुनाव मे कॉंग्रेस ने यह नीति बरती कि कॉंग्रेस के बाहर के भी प्रमुख लोगो को उसने चुनवाया। उनके अलावा कुछ और लोग भी चुने गये। मुसलमानो म प्राय सभी प्रान्तो मे लीगी सदस्य ही असम्बली मे थे इसलिए प्राय लीगी सदस्य ही चुने गये, क्योकि मुसलमान ही मुसलमान को चुन सकते थे। सीमाप्रान्त से तीन ही मुसलमान चुने जा सकते थे—मौलाना अबुल कलाम आजाद और खॉं अब्दुल गफ्फार खॉं चुने गये। युक्तप्रदेश मे श्री रफी अहमद किदवई दिल्ली मे श्री आसफ-अली और बगाल मे श्री फजलुल हक लीग के बाहर के लोगो मे चुने जा सके। बिहार मे कोई मुसलमान नही चुना जा सका। डाक्टर अम्बेदकर बगाल से चुने गये। मुख्य कॉंग्रेसी लोग और दूसरे नामी विधानवेत्ता तथा पुराने देशभक्त लोग चुने गये। इस प्रकार से विधान-निर्माण-समिति के सदस्य चुन लिये गये। इस चुनाव मे लीग शरीक रही। उसके मेम्बरो ने अपने प्रतिनिधियो को चुना। मि० जिन्ना पजाब से चुने गये।

चुनाव हो जाने के बाद लीग-कौन्सिल की बैठक हुई। उसने निश्चय किया कि लीग १६ मई और १६ जून की दोनो योजनाओ को नामजूर करती है—अपने उन निश्चयो को, जिनमे ये मजूर की गयी थी, वापस लेती है। उसने यह भी निश्चय किया कि पाकिस्तान स्थापित करने के लिए वह सीधी कार्रवाई (Direct action) काम मे लायेगी। उसने तब तक के लिए अपने मेम्बरो को आदेश दिया कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की दी हुई उपाधियो को वे वापस कर दे। बैठक मे गरमागरम भाषण हुए जो कॉंग्रेस और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट दोनो के विरुद्ध थे। ऐसा मालूम हुआ कि वे दोनो से भिडेगे। इसके बाद ही कॉंग्रेस वर्किंग कमिटी की बैठक वर्धा मे हुई। उसने फिर साफ शब्दो मे १६ जून की योजना मजूर कर ली।

अब वाइसराय के सामने यह स्थिति आयी कि एक ओर कॉंग्रेस ने १६ मई-वाली योजना मजूर की थी और १६ जूनवाली योजना नामजूर। लीग ने अपनी कौन्सिल की बैठक मे दोनो योजनाओ को नये सिरे से नामजूर कर दिया था। इस-लिए १६ जून की ८वी दफा के अनुसार लीग को छोडकर अब अन्तरकालिक गवर्नमेण्ट बनाना लाजिमी हो गया। वाइसराय ने पडित जवाहरलाल नेहरू को अन्तरकालिक गवर्नमेण्ट के निमित्त अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए लिखा। पडितजी ने मि० जिन्ना को दरमियानी गवर्नमेण्ट मे शरीक होने के लिए निमत्रण दिया, पर उन्होने इससे इनकार कर दिया। तब पडितजी के सामने इसके सिवा दूसरा कोई चारा न रह गया कि लीग को छोडकर ही दरमियानी गवर्नमेण्ट के लिए नाम सोचे। वाइसराय से मुलाकात के बाद उन्होने नामो को सोचना शुरू किया। इस काम मे सहायता पाने के लिए उन्होने वर्किंग कमिटी की पारलेमेण्टरी सब-कमिटी की बैठक दिल्ली मे की। इसके तीन मेम्बर थे—सरदार बल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मै।

१५९—कलकत्ते का हत्याकाण्ड

हम लोग इस काम मे लगे हुए थे कि कलकत्ते से खबर आयी कि वहाँ भयकर साम्प्रदायिक दगा शुरू हो गया है। लीग की ओर से, अपनी नयी नीति के प्रचार के लिए, १६ अगस्त मुकर्रर किया गया था। उस दिन सभी जगहो मे हडताल और सभाएँ करने की आज्ञा थी। इसी निश्चय के अनुसार कलकत्ते मे भी हडताल वगैरह होने की वात थी। वगाल और सिन्ध मे लीगी मत्रिमण्डल काम कर रहे है। इन दोनो सूबो मे मत्रिमण्डल ने उस दिन आम सरकारी छुट्टी दे दी। इस तरह सभी दफ्तरो, वको इत्यादि को जवरन वन्द कर दिया। कॉग्रेस प्राय २७–२८ वरसो से हडताल मनाने के लिए दिन मुकर्रर करती आयी है—वहुत हडताले पूरी तरह कामयाव भी रही है। पर वह चाहे गवर्नमेण्ट के विरुद्ध रही हो, चाहे गवर्नमेण्ट की वागडोर उसके हाथ मे रही हो, उसने गवर्नमेण्ट के अधिकार से इस काम मे कभी लाभ नही उठाया। लीग ने इस पहले अवसर पर उस अधिकार का दुरुपयोग किया। इसका विरोध सभी लोगो ने किया। यह खास करके कहा गया कि छुट्टी हो जाने से वहुतेरे लोग वेकार रहेगे और जलूस, सभा तथा हडताल मे इतने वेकार लोग हमेशा खतरा पैदा कर सकते है। वगाल की धारा-सभाओ मे ये वाते हुई। पर मि० सुहरावर्दी प्रधान मत्री ने एक की भी न सुनी—उलटे यह कहा कि शान्ति बनाये रखने के लिए ही छुट्टी दी गयी है। उस दिन सवेरे से ही दूकाने वन्द करवाने मे जवरदस्ती शुरू हो गयी। उसके साथ-साथ लूट-पाट और खून-खरावा भी जारी हो गया।

गवर्नमेण्ट ने १६ और १७ अगस्त के दोपहर तक वलवा रोकने की कोई विशेप कार्रवाई नही की। इस वीच मे हजारो आदमी कत्ल हो चुके और हजारो मकान लूटे और जलाये गये। उसकी रोक-थाम की कोशिश की गयी, पर उपद्रव वहुत आगे वढ चुकने के वाद! चार दिनों तक खूब हत्याएँ और ज्यादतियाँ होती रही।

सुना जाता है कि ६–७ हजार आदमियो का खून हुआ है। सडको पर दो-तीन दिनो तक लाशे पडी रही। ३००० से ऊपर लाशे जहाँ-तहाँ से हटायी गयी है। यह भी खवर है कि वहुत लाशे जमीन के अन्दर के नाले मे डाल दी गयी है जिनकी दुर्गन्ध से रास्ता चलना कठिन हो गया है। इसी तरह जलाये हुए मकानो के अन्दर और हुगली नदी मे कितनी लाशे डाल दी गयी है, इसका पता नहीं। सुना जाता है कि हावडा-पुल पर से वहुतेरे लोग फेक और ढकेल कर गगा मे डुवा दिये गये। वच्चे, वूढे, वेकस स्त्रियाँ, किसी पर आततायियो ने दया नही की—सव उनके क्रूर कर्मो के शिकार वने है। आज नवॉ दिन है। अव हालत सुधर रही है। पर अव भी फौज और पुलिस का कडा पहरा है। तो भी इक्के-दुक्के कुछ न कुछ हो ही जाता है। इस तरह का कत्ल आम कलकत्ते मे कभी न हुआ था। शायद नादिरशाह के दिल्लीवाले कत्ल-आम के अलावा और कही भारतवर्प के इतिहास मे ऐसा नही

हुआ। इसका भी ठीक पता नही है कि उस कत्ल-आम म कितने लोग मारे गये थे। लीग के एक प्रमुख नेता सर फीरोज खॉ नून ने एक बार हाल ही मे कहा था कि वह ऐसी हालत पैदा कर देगे जैसी चगेज और हलाकू खॉ ने भी नही की थी। लीग की सीधी कार्रवाई का कुछ नमूना लोगो के सामने आ गया। उस दिन और जगहो मे भी जहॉ-तहॉ कुछ होता नजर आया, पर कही कोई विशेष बात नही हुई। छोटी-मोटी घटनाएँ कलकत्ते के सामने नगण्य है। पर अब सुनने मे आया है कि ढाका, बनारस, इलाहाबाद, रानीगज, दिल्ली तथा दूसरे कई स्थानो मे इस समय कुछ न कुछ हो रहा है। कुछ खून-खराबा इन सभी जगहो मे हो रहा है, पर वहॉ के सरकारी कर्मचारी स्थिति सँभालने मे लगे है। अब तो मि० सुहरावर्दी भी इस काम मे लगे है और सबसे शान्ति-स्थापना की अपीले कर रहे है। हिन्दी कहावत है—"सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज को।" कलकत्ते के बलवे के सम्बन्ध मे 'स्टेट्-स्मैन' जैसे अँगरेजी पत्र ने, जो हमेशा लीग की हिमायत करता आया है, जोरो से बारबार लिखा है कि लीगी मत्रिमण्डल शान्ति कायम रखने मे अपने को अयोग्य साबित कर चुका, उसे हटना चाहिए। इसी प्रकार को बाते इँगलैड के बहुतेरे पत्रो ने लिखी है जिनमे 'टाइम्स' भी शरीक है। देशी पत्रो की तो बात ही क्या। किन्तु इतने पर भी लीगवालो के कान मे जूँ तक नही रेगी। १९३७–३९ के कॉग्रेसी मत्रिमण्डलो के विरुद्ध जिन्होने बिना कारण इतना वावैला मचाया था वे ही लोग आज इस अभूतपूर्व हत्याकाण्ड और भीषण अत्याचार पर, जिसके कराने मे अगर उनका हाथ साफ-साफ नही रहा है तो कम से कम जिस पर से चश्मपोशी उन्होने जरूर की है, बिलकुल चुप है। मि० जिन्ना ने केवल इतना ही कहा है कि जिस किसी ने बलवा किया हो उसको सजा मिलनी चाहिए और चूँकि उनको पूरी रिपोर्ट नही मिली है इसलिए वह यह नही कह सकते कि इसमे किसका कसूर है तथा उनको विश्वास है कि लीगी लोग लीग के हुक्म के विरुद्ध नही गये होगे और यदि कोई गया होगा तो प्रान्तीय लीग उस पर अनुशासन की कार्रवाई करेगी। उनके मुख्य पत्र 'डौन' ने तो जो कुछ हुआ उसे बहुत थोडा बतलाया और देर करके खबरे छापने के अलावा कई दिनो तक इस विषय पर कुछ लिखा ही नही। इस दुर्घटना से सारे देश मे खलबली है और घबराहट है। यह भी सुनने मे आया है कि शुरू मे तो हिन्दू ही मारे गये पर पीछे जब किसी तरह की मदद उनको गवर्नमेण्ट की ओर से नही मिली तो उन्होने भी अपना बचाव किया और अब तो शायद जितने मरे है उनमे अधिक सख्या मुसलमानो की ही होगी। जो हो, चाहे हिन्दू अधिक मरे हो या मुसलमान, इसमे शक नही हो सकता कि मरनेवालो मे सबसे अधिक बेकसूर लोग है, जो दगे मे शरीक नही हुए, पर उसके शिकार बन गये। धन तो करोडो का बर्बाद हुआ है—बहुत अशो मे हिन्दुओ का ही धन बर्बाद हुआ और लूटा गया है। अभी तक वहाँ तनातनी है। देखे, आगे कलकत्ते मे और दूसरे स्थानो मे क्या होता है।

१६०—अस्थायी सरकार के पहले

इधर दरमियानी राष्ट्रीय गवर्नमेण्ट की बातचीत चल रही थी, उधर इस तरह का खून-खराबा हो रहा था। वाइसराय और पडित जवाहरलाल ने निश्चय कर लिया कि इस कारण उस काम मे रुकावट नही पडनी चाहिए। हम लोगो से राय करके पडितजी ने वाइसराय को दरमियानी राष्ट्रीय गवर्नमेण्ट के लिए नाम दे दिये जो आज ही प्रकाशित हो जायँगे। इन नामो मे मेरा नाम भी है। आज से एक सप्ताह बाद, सितम्बर के आरम्भ से, ये नामजद लोग गवर्नमेण्ट का काम सँभालने लग जायँगे। आज ही तक यह वृत्तान्त लिखकर समाप्त करना चाहता हूँ।

यो तो सिमले मे भी मेरा नाम दिया गया था। जैसा ऊपर कह आया हूँ, मै बहुत पसोपेश मे था। अन्त मे पूज्य बापू (महात्माजी) के कहने पर मैने उसे मजूर किया था। मुझे एक नैतिक अडचन बहुत सता रही थी। वह यह थी कि उस समय लडाई चल रही थी। गवर्नमेण्ट का भार लेने का अर्थ उस लड़ाई मे सहायता देना भी होता था। सिमला-कान्फ्रेन्स के भग होने के थोडे ही दिन बाद वह लडाई समाप्त हो गयी। इसलिए, जब कैबिनेट-मिशन और वाइसराय से इस बार बाते शुरू हुई तो वह नैतिक अडचन उस रूप मे अब नही रही, और पहले भी पडित जवाहर-लालजी ने मेरा नाम कह दिया था। इस तरह १६ जून की योजना मे मेरा नाम भी था, पर उसकी नामजूरी के बाद वह बात टल गयी थी। इस बीच मे जब फिर यह बात चली तो पहले यह भी सोचा गया कि दरमियानी गवर्नमेण्ट मे पडितजी के शरीक हो जाने के बाद मै ही मेरठ-कॉग्रेस के प्रेसिडेण्ट के लिए खाली रखा जाऊँ। कुछ ने यह भी सोचा कि विधान-निर्माण-समिति का सभापति मै ही बनाया जाऊँ, मुझे दरमियानी गवर्नमेण्ट मे जगह न दी जाय। मुझे इस विषय मे किसी से कुछ कहना नही था। जो कुछ भी निश्चय होता, मुझे मजूर था। पर यदि मेरी अपनी रुचि की बात पूछी जाय तो मै उन दोनो को अस्थायी गवर्नमेण्ट की मेम्बरी से ज्यादा पसन्द करता। पर यह बात मेरे पसन्द पर निर्भर नही थी। लोगो ने सब बातो पर विचार-कर मुझे यही पद देना उचित समझा। मेरा नाम दे दिया गया है। यह सब निश्चय दिल्ली मे मेरे सामने ही किया गया। मै आराम करने के लिए पिलानी चला आया था। वहाँ से एक दिन के लिए जयपुर गया था। जयपुर मे ही बुलाहट का तार मिला। वही से दिल्ली चला गया। हमारे बीच जब नामो का निश्चय हो गया तो मै पिलानी चला आया। जब तक फिर बुलाहट न हो, यही रहने का विचार था। मै समझता था कि शायद अगस्त के अन्त तक यहाँ रह सकूँगा, क्योकि इसके पहले दरमियानी गवर्नमेण्ट मे काम उठाने का समय नही होगा। पर यहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि तारीख २७ अगस्त (१९४६) को ही वर्किंग कमिटी की बैठक दिल्ली मे होनेवाली है जिसमे पूज्य महात्माजी भी आ रहे है, इसलिए अब वहाँ २७ अगस्त तक ही पहुँच जाना जरूरी है।

पिछले २६ बरसो मे दिन-रात कॉंग्रेस के काम मे लगा रहा हूँ। घर पर बीमार होकर ही गया हूँ। वहाँ के काम मे, भाई के मरने के बाद ही, कुछ थोडा समय कुछ दिनो तक देना पडा था, नही तो घर के काम मे भी एकबारगी अलहदगी रही है। अपने रहने के लिए कही कोई अलग इन्तजाम नही किया। आश्रम मे रहा या जब कही गया तो मित्रो के साथ। पटने मे मृत्युञ्जय के डेरे पर दो-चार ही रोज रहा हूँ। इस तरह एक ही प्रकार का जीवन कटा है। कभी किसी दफ्तर मे बैठकर काम नही किया। कुछ दिनो तक पटना-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन की हैसियत से दफ्तर का काम किया था, पर वह अनुभव इतना कम और थोडे दिनो का था कि उसकी कोई गिनती नही है। कॉंग्रेस के दफ्तर का काम सँभालना पडा है, पर वहाँ भी दफ्तर से अधिक जन-सम्पर्क का ही काम किया है और जाहिर है कि वह काम बिलकुल दूसरे प्रकार का है। अब एक नये प्रकार के जीवन मे प्रवेश करना है। पहले तो अपने लिए अलग खास घर लेना है। उसमे रहने और खाने-पीने आदि का इन्तजाम करना होगा। अब रुपये भी वहाँ मुशाहरे के मिलेगे। मालूम नही, इस सम्बन्ध मे कॉंग्रेस की ओर से क्या आदेश मिलेगा—हम कितना लेगे और उसे किस तरह खर्च करेगे।

इसके बाद, जो जटिल समस्याएँ सामने पेश है उनका हल किस तरह किया जायगा। मालूम नही, मुझे कौन विभाग मिलेगा। पहले सुनता था कि कृषि-विभाग और अन्न-विभाग मुझे दिये जायँगे। पता नही कि पडितजी से वाइसराय की जो बातचीत मेरे चले आने के बाद हुई उसमे मेरे लिए कौन विभाग सोचा गया। यदि वे ही विभाग रहे तो मेरे मन के मुताबिक होगे। यद्यपि अन्न-सकट बहुत कठिन है और इसका इस समय सँभालना आसान नही है।

मै चाहता था कि काम शुरू करने के पहले एक बार पटने और रॉंची से हो आता, पर शायद इसका समय नही मिलेगा। रॉंची जाने की बहुत जरूरत है। जनार्दन का बच्चा चिरजीवी सूर्य्यप्रकाश बहुत दिनो से बीमार है। उसे बीमारी के कारण बम्बई से पटने बुला लिया था। बम्बई और पटने के डाक्टर उसे आराम न कर सके। तब वह रॉंची भेजा गया है। आज से प्राय दस महीने हो गये। २॥ बरस का बच्चा बहुत कष्ट पाता आ रहा है। प्रतिदिन ज्वर हो आता है। खाँसी भी बहुत हुआ करती थी। फेफड़े की कुछ शिकायत थी। पर अब सुनते है कि वह कम है। अब कॉंख मे घाव-सा हो आया है। उसको देख लेने की बहुत इच्छा है। जनार्दन भी अब बम्बई अपनी नौकरी पर चले गये है। देखे, क्या होता है। ऐसी स्थिति मे नया काम शुरू करना पड रहा है।

नये लोगो का साथ होगा, जिनमे बहुतेरे ऐसे होगे जिन्होने या जिनके साथियो ने हमको और हमारे साथियों को जेलो मे बन्द रखा—हमारे लोगो के साथ तरह-तरह की सख्तियाँ की। पर मेरे मन मे किसी के प्रति कोई दूसरा भाव नही है और मै मानता हूँ कि मै सबको मिलाकर अपना काम कर सकूँगा। पर गवर्नमेण्ट के बाहर

भी भारी कठिनाइयों का सामना करना है। न मालूम लीग क्या-क्या करेगी और जनता का रुख क्या रहेगा। यदि हमने सचाई के साथ और निष्पक्ष होकर सबकी सेवा की तो फल अच्छा ही होगा। अपना इरादा ऐसा ही है। आगे ईश्वर के हाथ में है।

(समाप्त)

पिलानी
२८ अगस्त १९४६

परिशिष्ट

मैने सस्मरण लिखना कब आरम्भ किया और यह कैसे लिखा गया, इसका जिक्र पुस्तक के १५१वे अध्याय मे किया है। पुस्तक के अन्त मे यह भी लिखा है कि दरमियानी गवर्नमेण्ट के बनने तक का ही हाल इसमे लिखा गया है। आज से प्राय ४ महीने पहले मैने पुस्तक को पूरा किया था। इस बीच मे बहुत बाते हो गयी है जिनका महत्त्व है और जिनको इस परिशिष्ट के रूप मे दे देना अच्छा प्रतीत होता है।

तारीख २ सितम्बर १९४६ को दरमियानी गवर्नमेण्ट बनी। इसमे १२ मत्री बनाये गये जिनके नाम थे सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल, शरतचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी, आसफअली, डाक्टर मथाई, जगजीवनराम, सर शफात अहमद खॉ, सरदार बलदेवसिंह, भाभा, अलीजहीर और मै। सरदार बल्लभभाई पटेल, श्री जगजीवनराम और मै उस समय बिडला-भवन मे ठहरे हुए थे। वहॉ के लोगो ने मागलिक क्रिया के साथ हमको गवर्नमेण्ट हाउस के लिए रवाना किया। वहॉ से हम लोग पूज्य गाधीजी के पास गये और वहॉ से और साथियो के साथ गाधीजी का आशीर्वाद लेकर वाइसराय के पास अपना काम सँभालने के लिए गये। वहॉ नियमानुकूल हमको सौगध लेनी पडी। इसमे एक मुख्य बात यह थी कि हम बादशाह जार्ज और उनके वारिसो के प्रति सच्ची वफादारी बरतेगे।

हमारी सारी जिन्दगी ब्रिटिश साम्राज्य से हिन्दुस्तान को मुक्त कराने मे लगी रही है। अन्त मे ब्रिटिश बादशाह की वफादारी की सौगध कहॉ तक ठीक है, यह प्रश्न बहुतो के दिलो मे उठा करता है। बात यह है कि ब्रिटिश-विधान मे इस प्रकार की सौगध एक आवश्यक वस्तु है और प्रजातत्र का काम प्रजा की मरजी के मुताबिक चलना और चलाना भी वैसा ही आवश्यक अग है। राजा प्रजातत्र की सम्मति के विरुद्ध कुछ भी नही कर सकता और प्रजातत्र की सम्मति पारलेमेण्ट द्वारा ही जानी जाती है। प्रधान मत्री उस सम्मति के अनुसार ही काम करता है। राजा उसमे हस्तक्षेप नही कर सकता और मत्रिमण्डल के बनाये हुए भाषण देता है तथा बताये हुए काम को ही करता है। एक विधान-शास्त्री ने लिखा है कि जो भी कागज प्रधान मत्री पेश करे उस पर राजा को दस्तखत करना ही पडता है, यहॉ तक कि यदि उसके सामने राजा को फॉसी देने का हुक्मनामा भी पेश किया जाय तो राजा उस पर दस्तखत करने से इनकार नही कर सकता। इस प्रकार की एक घटना कुछ वर्ष पूर्व हुई भी जब राजा अष्टम एडवर्ड को, प्रधान मत्री बाल्डविन की सम्मति मान कर, गद्दी छोडनी पडी। जब वहॉ का विधान ऐसा है तो भारतवर्ष को स्वतत्र बनाने का प्रयत्न इस सौगध के विरोध मे नही माना जा सकता है और सब लोगो ने ऐसा ही समझा भी है। यदि बाल्डविन राजा को गद्दी छोडने की सम्मति दे सकते है तो भारतीय मत्री भी

उसे हिन्दुस्तान पर से ब्रिटिश सत्ता हटा देने की सलाह, सौगध के बावजूद, दे ही सकते है। इसलिए दोनो मे कोई विरोध नही दीखा और हम सब न सौगध ले ली।

मेरे जिम्मे अन्न और खेती विभाग दिये गये। अन्न-सकट सारे देश मे जबर्दस्त था। विशेष करके दक्षिण के उन हिस्सों मे जहाँ के लोग चावल ही खाया करते है। १९४५ मे वर्षा बहुत कम हुई और धान की फसल बहुत जगहो में, विशेष करके दक्षिण मे, मारी गयी। जाडो मे भी पानी नही बरसा। इसलिए रबी की फसल भी कम हुई। पहले से लड़ाई के जमाने मे ही अन्न की बहुत कमी हो गयी थी, क्योकि बर्मा से चावल आना बन्द हो गया था। हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो मे वहाँ के लोगो के खाने के लिए काफी अन्न नही होता है। यह कमी बर्मा के चावल से पूरी होती थी। जब उसकी आमदनी बन्द हो गयी तो बडी कठिनाई हो गयी। बगाल के भयकर अकाल के कारणो मे यह भी एक था। १९४६ के आरम्भ से ही इसका डर हुआ कि इस साल अन्न की बहुत कमी रहेगी और फिर भी कही अकाल न पड जाय। इसलिए भारत-सरकार ने विदेशो से अन्न मँगाने का इन्तजाम सोचा। आजकल दुनिया मे अन्न सकट है इसलिए एक अन्तरराष्ट्रीय सस्था बनायी गयी है जो सभी देशो मे, जहाँ कुछ अधिक अन्न मिल सकता है, पता लगाकर उन देशो मे उसे पहुँचवाने का प्रबन्ध करती है जहाँ अन्न की कमी है। इस सस्था मे भारतवर्ष भी शरीक है और उससे भारत की ओर से अन्न की माँग की गयी।

विदेशो मे और विशेष करके अमेरिका मे यहाँ का समाचार पहुँचा। वहाँ के भूतपूर्व राष्ट्रपति हूवर सभी देशो मे अन्न-सकट की स्थिति देखते-देखते हिन्दुस्तान भी पहुँचे। वे यहाँ की बुरी हालत से बहुत प्रभावित हुए और मदद देने की सलाह दी। इसके बाद ही कुछ लोग अमेरिका से गैरसरकारी तौर पर यहाँ की हालत देखने आये। इनके प्रधान थे डाक्टर शुल्ट्ज जो कृषि और अन्न-सम्बन्धी समस्याओ के विशेषज्ञ समझे जाते है। वह भी यहाँ की दुर्दशा से बहुत प्रभावित हुए। नतीजा यह हुआ कि अन्तरराष्ट्रीय सस्था ने भारतवर्ष के लिए अन्न दिया पर हम जितना चाहते थे उतना नही, उसमे बहुत कम। इसका कारण यह था कि उनके पास इससे अधिक देने की शायद गुंजाइश थी ही नही, क्योकि उनको दूसरे देशो को भी देखना था। जिस दिन मैने इस काम को सँभाला, हालत बहुत नाजुक थी और डर मालूम होता था कि किसी न किसी दिन अन्न बिना लोग मरने लग जायँगे। देश और विदेश से जो कुछ मिल सकता था उसे देश के भिन्न-भिन्न भागो मे जरूरत के मुताबिक बाँटा जा रहा था। आते ही मैने देखा कि पूज्य गाधीजी ने जो कुछ पहले कहा था वही ठीक है। उन्होने कहा था कि विदेशो पर हम बहुत भरोसा नही कर सकते, क्योकि वहाँ से अन्न लाने मे हजारों अडचने पड सकती है। हमारे लिए अपने देश और अपने लोगो पर ही भरोसा करना ठीक है। मैने तुरन्त स्थिति को समझ कर इस बात की अपील की कि जिससे जो बन पडे, अधिक अन्न पैदा करने के लिए करे—जितना कम अन्न खर्च कर सके, करे और जितना बचा करके दूसरो के लिए दे सके, दे।

विदेशो से जो कुछ आ सकता था उस पर जोर लगाया गया और देश मे जो कुछ मिल सकता था और अन्न के खर्च मे जितनी किफायत हो सकती थी, की गयी। चिन्ता दिन-रात बनी रहती। यह बात केवल मेरे ही साथ नही थी—हमारे विभाग के सभी कर्मचारी हमसे भी अधिक चिन्तित रहते थे, क्योकि अभी तक अकाल-मृत्यु से बचाने का भार तो उन पर ही था। मै तो अभी आया था।' मुझे इस बात से बडी प्रसन्नता हुई कि मेरे विभागो मे मेरे और कर्मचारियो के बीच किसी प्रकार का मतभेद नही हुआ और सभी मिल-जुलकर अपनी शक्ति भर सकट से देश को बचाने के काम मे लगे रहे। सबसे कठिन समय हम, सितम्बर से दिसम्बर तक के, चार महीने मानते थे। दिसम्बर समाप्त हो गया। ईश्वर की कृपा है कि अब तक कोई अन्न बिना मरा नही है। लोगो की खुराक बहुत कम कर दी गयी है। जो चावल के सिवा गेहूँ-मकई कभी खाते नही थे, ऐसे अन्न को किस तरह खाने के लिए तैयार किया जाता है—यह भी नही जानते थे, उनको भी हम गेहूँ-मकई दे सके है और चावल बहुत कम मात्रा मे। इस तरह उनको बहुत कम खुराक मिली है और ऐसी खुराक मिली है जिसको वह पहले जानते ही नही थे। तो भी बावजूद इन कष्टो के लोगो ने बहुत ही साहस और धीरज से सकट का समय काट लिया है। बरसात मामूली तौर पर अच्छी हुई है और धान की फसल औसत है। अब तो धान लोगो की आँखो के सामने है, कही-कही खलिहान मे आ गया है और कही-कही तो चावल भी तैयार हो गया है। अब उन हिस्सो के लोगो के लिए जहाँ चावल खाया जाता है भय कम हो गया है। पर गेहूँवाले प्रदेशो की हालत अब चिन्तित करने लगी है। चावल की कमी के कारण जहाँ तक हो सका, वहाँ से गेहूँ लेकर चावलवाले प्रदेशो मे दिया गया था। उसे अब वापस करना है। गेहूँ की फसल तैयार होने मे अभी कम से कम तीन-चार महीनो की देर है। इस बीच मे पत्थर-पानी न मालूम कितनी आसमानी आफते आ सकती है। विदेशो से, विशेष करके अमेरिका से जो गेहूँ आने की आशा थी वह पूरी नही हो रही है, क्योकि वहाँ जहाजो पर काम करनेवालो की और कोयले की खानो मे हडताल चली है। इसलिए गेहूँ की कमी हो रही है। जिस तरह ईश्वर ने चावल-सकट को हटाया, आशा है, इस सकट से भी वही त्राण देगा।

थोडे दिनो के अनुभव ने मेरा यह विश्वास और भी दृढ कर दिया है कि भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान देश को अपनी खुराक खुद पैदा करनी चाहिए। इसके लिए विदेशो पर भरोसा करना ठीक नही। यह कोई आसान समस्या नही है। हमारी आबादी बढती जा रही है। आबाद होने लायक जमीन अब बहुत नही बची है। बहुत कुछ आबाद हो चुकी है। पहले भी ५-६ करोड मन चावल हर साल बाहर से मँगाना पडता था। अब आबादी बढ जाने से अधिक अन्न की जरूरत हो गयी है और बढती जायगी। इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करना कृषिविभाग का काम है। फिर यह भी जाहिर है कि हमारे लोगो को जो भोजन मिलता है वह ऐसा नही होता कि

उससे उनका स्वास्थ्य उन्नत हो। उसमे बहुत प्रकार की कमी है जिसे पूरा करना चाहिए। इसलिए अन्न के अलावा दूध, मछली, मास, तेल, घी, फल, मूल सब्जी इत्यादि सभी चीजो को अधिक मात्रा मे पैदा करना आवश्यक है। मेरी दिलचस्पी इन विषयो मे काफी है और ऐसे प्रयत्न मे दिन-रात लगा हूँ कि यह कैसे किया जाय। गवर्नमेण्ट तो केवल कुछ मार्ग-दर्शन करा सकती है, सलाह दे सकती है—थोडी बहुत सहायता कर सकती है। पर काम तो जनता का है। हमारी जनता विशेष करके खेती का काम करती है। उसे ही इस भार को सँभालना है। जनता को किस तरह सहायता दी जाय कि वह इसे सँभाल सके। कृषिविभाग का प्रधान होने की हैसियत से मुझ इस जवाबदेही को सँभालने का प्रयत्न तो करता हूँ। सभी कर्मचारी मदद कर रहे है, पर काम इतना बडा और विस्तृत है कि प्राय चार महीनो के बाद भी अभी यह नही कह सकता कि मै यह कहाँ तक कर पाया हूँ और कहाँ तक पूरा कर सकूँगा। सकट-निवारण मे जनता ने काफी मदद की। मेरी अपील पर हजारो लोगो ने खाना कम कर दिया। उन्होने निश्चय किया कि समय-समय पर नियमित रूप से उपवास करके अन्न बचायेगे और दूसरे प्रकार से सबने मदद की थी। आशा है, अन्न की पैदावार बढाने मे भी उनकी ओर से वैसे ही मदद मिलेगी।

लार्ड वेवल इस बात के लिए बराबर कोशिश मे थे कि मुस्लिम लीग किसी तरह दरमियानी गवर्नमेण्ट मे और विधान परिषद् मे शरीक हो जाय। हमारी नियुक्ति के थोडे ही दिनो बाद उन्होने मि० जिन्ना से पत्रव्यवहार शुरू किया और एक समय आया जब प० जवाहरलाल नेहरू को उनसे बातचीत करनी पडी। भोपाल के नवाब साहब भी बीच मे पडे और इस बात की कोशिश की गयी कि कॉग्रेस और मि० जिन्ना के बीच कुछ समझौता हो जाय। पर यह प्रयत्न सफल नही हुआ। अन्त मे मि० जिन्ना ने निश्चय किया कि वाइसराय की अनुमति से, कॉग्रेस की सम्मति के बिना ही, वह अपने लोगो को दरमियानी गवर्नमेण्ट मे भेजेगे। हमने तीन जगहे खाली कर दी और मुस्लिम लीग के पॉच सदस्यो की नियुक्ति हो गयी। इस नियुक्ति के सम्बन्ध मे कुछ बाते लिख छोडना बुरा न होगा। १६ जून १९४६ के वक्तव्य मे कैबिनेट-मिशन और वाइसराय ने कहा था कि वही लोग दरमियानी गवर्नमेण्ट मे शरीक हो सकेगे जिन्होने १६ मईवाले वक्तव्य को मजूर कर लिया हो और चूँकि उस समय लीग और कांग्रेस दोनो ने ही उसे मान लिया था, दोनो के सदस्यो को लेकर ही वह दरमियानी सरकार बनायी जा सकती थी। उस समय कांग्रेस उसमे शरीक होने के लिए तैयार नही थी इसलिए उस समय दरमियानी सरकार नही बनी। इससे रुष्ट होकर लीग की कौन्सिल ने निश्चय किया कि वह अब १६ मई और १६ जून के दोनो वक्तव्यो की स्वीकृति के अपने प्रस्तावो को वापस ले लेती है।

अक्टूबर मे जब लार्ड वेवल ने लीग के मेम्बरो को नियुक्त करना चाहा तो प्रश्न यह हुआ कि क्या लीग ने १६ मईवाले वक्तव्य को मजूर कर लिया है या नही। उसके मजूर कर लेने का अर्थ यह है कि वह विधान परिषद् मे शरीक होगी और

उसकी कार्रवाई को पूरा करेगी। हम लोगो के पूछने पर लार्ड वेवल ने हम लोगो को आश्वासन दिया कि उन्होने लीग को बता दिया है कि दरमियानी गवर्नमेण्ट मे शरीक होने का अर्थ ही है कि १६ मईवाले वक्तव्य को लीग मजूर करती है।

दूसरी बात यह थी कि दरमियानी सरकार मे शरीक होने के पहले हमने यह तय कर लिया था कि हम सब कैबिनेट की तरह एक साथ मिल-जुल कर काम करेंगे। इसका अर्थ यह होता है कि हम सब की सम्मिलित जवाबदेही है अर्थात् हर एक मत्री की कार्रवाई के लिए सारी कैबिनेट जवाबदेह होगी और यदि एक को हटना पडे या हटाया जाय तो सारी कैबिनेट हटेगी। इस तरह हर एक मत्री अपनी मर्जी और इच्छा के अनुसार काम न करके सब साथ मिल करके काम करेंगे और उनको एक दूसरे के विरुद्ध फोडा न जा सकेगा। हमने इसी रीति के अनुसार काम भी शुरू किया। हमने समझा, यह एक बहुत बडा फर्क गवर्नमेण्ट की रीति मे होगा, क्योकि इस तरह वाइसराय को हस्तक्षेप करने का मौका बहुत कम रह जायगा। बात यह है कि किसी एक के साथ हस्तक्षेप का अर्थ सबके साथ हस्तक्षेप हो जाता है और सारा मन्त्रिमण्डल टूट जा सकता है।

पहले के एक्जिक्युटिव कौन्सिल के लोग अलग-अलग नियुक्त किये जाते थे और एक दूसरे के साथ उनका सम्पर्क वाइसराय के मार्फत ही होता था और एक के हटने से दूसरो पर असर नही पडता था। हमारी नियुक्ति के बाद दफ्तर के कामो और कागजो मे मन्त्रिमण्डल और उसके सदस्यो को एक्जिक्युटिव कौन्सिलर और कौन्सिल का सदस्य न कहकर कैबिनेट और कैबिनेट-मेम्बर के नाम का ही व्यवहार किया जाने लगा। सभी कागजो मे, जहाँ कौन्सिल का नाम था, काट करके कैबिनेट बना दिया गया। हमारी निजी कार्रवाई भी इसी के अनुकूल होने लगी। हम मन्त्रिगण प्रतिदिन सध्या के ५ बजे निजी तौर पर मिलते थे और सभी महत्त्वपूर्ण विषयो पर, चाहे वह किसी भी विभाग के क्यो न हो, बाते कर लेते थे और सबकी राय से निश्चय भी कर लिया करते थे। जब लीग के लोगो के आने की बात चली तो हमन आशा की कि वही तरीका रहेगा। पर ऐसा हुआ नही।

लीग ने आते ही इन दोनो बातो को नाही कर दी। कहा गया कि उसकी ओर से ऐसा कोई वचन नही दिया गया है कि १६ मई के वक्तव्य की नामजूरी के निश्चय को वह रद्द करेगी और उसने यह मजूर नही किया है कि दरमियानी सरकार के सदस्य कैबिनेट की तरह काम करेंगे। वे इस बात को मानते है कि जैसे पहले की एक्जिक्युटिव कौन्सिल काम किया करती थी उसी तरह वे अब भी काम करेंगे। प० जवाहरलालजी के निमत्रण देने पर कि वे हमारी सध्यावाली कैबिनेट की निजी बैठक मे शरीक हो, उन्होने इनकार कर दिया। अब अवस्था ऐसी है कि वे लोग और हम लोग वाइसराय की उपस्थिति मे जब कभी कैबिनेट की बाजाब्ता बैठक होती है तभी मिल सकते है और जो विषय वहाँ उपस्थित होते है उनके सम्बन्ध मे जो कुछ कहना-सुनना होता है, वही हो सकता है।

इधर दरमियानी सरकार का काम इस तरह चल रहा था, उधर कलकत्ते के हत्याकाण्ड के बाद सारे देश मे बडी खलबली मच रही थी। बम्बई, प्रयाग, ढाका इत्यादि अनेक स्थानो मे लोगो को छुरे भोके जा रहे थे और बहुतेरे बेकसूर निरीह लोग हिन्दू या मुसलमान होने के कारण राह चलते मारे जा रहे थे। बिहार के बहुत लोग कलकत्ते मे रहा करते है। उनमे से बहुतेरे कलकत्ते के हत्याकाण्ड मे मारे गये थे और दूसरी तरह से सताये गये थे। जो भाग करके वापस आये उन्होने अपने और दूसरो के दुखडे सुनाये। इसका असर बिहार के लोगो पर बहुत पडता गया। मुजफ्फर-पुर जिला के बेनीबाद गाँव से खबर उडी कि वहाँ कोई मुसलमान एक हिन्दू स्त्री को कलकत्ते मे जबर्दस्ती ले आया है। हिन्दुओ की एक भीड उस गाँव मे गयी और कई मुसलमानो को उसने मार डाला और कितनो के घर जला दिये। खबर मिलने पर वहाँ के लोगों के साथ गवर्नमेण्ट ने सख्ती की और बहुतेरे गिरफ्तार किये गये और सामूहिक जुर्माना लगाया गया। इस घटना की खबर फैलने पर मुसलमानो मे अशान्ति फैली। कुछ दिनो के बाद जोरो से खबर आयी कि नोआखाली और त्रिपुरा जिलो मे, जहाँ मुसलमानो की बहुत आबादी है, मुसलमानो ने हिन्दुओ पर हमला शुरू कर दिया है। बहुतेरे मारे गये है और गाँव के गाँव, जहाँ हिन्दू रहते थे, जला दिये गये है और हजारो की तादाद मे हिन्दू जबर्दस्ती मुसलमान बना लिये गये है। बहुतेरी स्त्रियो के साथ जबर्दस्ती शादी कर ली गयी है और बहुतेरी भगा या चुरा कर अन्यत्र हटा दी गयी है। ये वाकया दो जिलो के कई थानो मे फैले हुए थे। पहले तो ठीक पता नही चला कि इसका फैलाव कितना है। हजारो की तादाद मे हिन्दू अपने घर-द्वार को छोडकर अथवा सब कुछ बर्बाद होने और लुट जाने या जला दिये जाने के बाद भाग करके शहरो मे और दूसरे स्थानो मे आश्रय लेने आये। उन इलाको मे किसी भी हिन्दू के लिए जाना कठिन था, क्योकि इलाके भर का महासरा कर लिया गया था। वहाँ की गवर्नमेण्ट की शिकायत होने लगी कि उसने बलवाइयो को रोकने का कोई समुचित प्रबन्ध नही किया और जैसे कलकत्ते मे बलवाइयो को छोड दिया गया था वैसे ही वहाँ भी छोड दिया गया कि वे मनमानी करे। यह काण्ड कई दिनो तक चलता रहा। वहाँ के और कलकत्ते के काण्ड मे एक बहुत बडा अन्तर यह था कि कलकत्ते मे हिन्दुओ की आबादी बहुत ज्यादा है, लेकिन नोआखाली और त्रिपुरा मे मुसलमानो की। इसलिए कलकत्ते मे शुरू मे तो हिन्दू खूब पिटे, पर पीछे उन्होने अपना बचाव जोरो से किया। नोआखाली और त्रिपुरा मे ऐसा नही हो सका, क्योकि वहाँ हिन्दू बहुत कम और कमजोर है। इन घटनाओ की खबर देश भर मे फैल गयी और चारो ओर हिन्दुओ मे बडा रोष पैदा हुआ।

इन घटनाओ का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओ मे प्रतिशोध की भावना भर गयी। उधर मुस्लिम लीग के नेता लोग और समाचार पत्र दिन प्रतिदिन जहर उगला करते थे और हिन्दुओ को युद्ध के लिए ललकार रहे थे। प० जवाहरलालजी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त मे गवर्नमेण्ट के मत्री की हैसियत से सफर करने गये। वहाँ

देशरत्न

श्री चक्रधरशरण, बाबू मथुराप्रसाद, श्री वाल्मीकि चौधरी

के सरकारी राजनीतिक विभाग के कर्मचारी सीधे वाइसराय की मातहती मे काम करते है। खबर है कि कुछ हिस्सो मे गलत प्रचार से लोगो को उभाडा गया और कुछ आदमियो ने पडितजी तथा बादशाह खाँ के साथ केवल बदतमीजी ही नही की बल्कि और तरह की ज्यादतियाँ की। एक जगह तो इतना जबर्दस्त हमला हुआ कि उन लोगो की जान किसी तरह से बची और बादशाह खाँ के हाथ मे इतनी चोट आयी कि हड्डी टूट जाने के कारण महीनो तक पट्टी बाँध रखने की जरूरत हो गयी। पर बावजूद इस तरह की दुर्घटनाओ के पडितजी की यात्रा बहुत सफल रही और वहाँ के लोगो ने उनका बहुत स्वागत किया—प्रेम और उत्साह दिखलाया। इस बात का भी असर देश के हिन्दुओ पर काफी पडा। उनको ऐसा जान पडा कि मुस्लिम लीग हिन्दुओ को ब्रिटिश के साथ मिल करके दबाना चाहती है और दबाती जा रही है।

बिहार मे भारी बलवा शुरू हो गया। कई जगहो मे छोटी-मोटी घटना को लेकर हिन्दू बडी तादाद मे मुसलमानो के गाँवो पर हमला करने लगे। पटना-जिला के कई थानो के कितने ही मुसलमान मारे गये, कितनो के घर जलाये गये और कितनो के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया। यह आग मुगेर और गया जिलो के कई थानो तक पहुँच गयी। छपरा मे तो इसका आरम्भ ही हुआ था, जहाँ पहले शहर मे और पीछे कुछ गाँवो मे बहुतेरे मुसलमान मारे गये। दिल्ली मे इन दुर्घटनाओ की खबर मिली। पडित जवाहरलाल और सरदार बल्लभभाई—जो बगाल की हालत देखने कलकत्ता गये थे—पटने मे वापसी के समय रुक गये। उनके साथ मि० लियाकत-अली और सरदार निश्तर भी गये थे। वे लोग भी रुक गये। सरदार बल्लभभाई और मि० लियाकतअली तो दिल्ली के काम से वापस आ गये, पर पडित जवाहर-लाल और सरदार निश्तर बिहार मे ठहर गये। मै भी हवाई जहाज से वहाँ पहुँचा। हमारे मत्रिमण्डल के लोग बहुत जोरो से दौड-धूप कर रहे थे और पुलिस से जहाँ तक हो सकता था, बलवा रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। फौज की मदद भी माँगी थी जो कुछ देर के बाद पहुँची। पडित जवाहरलाल और मै दोनो दौड-धूप करने लगे। उधर जब गाधीजी को खबर मिली तो उन्होने घोषणा की कि यदि बिहार मे बलवा न रुका तो वह आमरण अनशन करेगे। इस समय गाधीजी नोआखाली मे हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच सद्भाव पुन स्थापित करने के लिए गये हुए थे। वही से उन्होने यह घोषणा की। नतीजा यह हुआ कि बिहार मे बलवा एकबारगी जल्द बन्द हो गया। पर जितना हो चुका था वह बहुत और भयकर था। कितने मारे गये, इसका ठीक पता अभी तक नही लगा है, पर इसमे कोई सन्देह नही कि उनकी सख्या हजारो की है। मुस्लिम लीग के लोगो ने तो बहुत बढा करके सख्या बतायी है और मि० जिन्ना ने ३०,००० के आँकडे को घोषित किया है। यह तो बिलकुल गलत है और मेरे अनुमान मे इसके दशमाश को मान लेना गलत न होगा। सख्या जो भी हो, इसमे शक नही कि बहुत जुल्म और क्रूरता की गयी है जिसके

लिए सबको लज्जित होना चाहिए। आपस के मेल-जोल के प्रयत्न मे बहुत बड़ा धक्का लगा है। इन बलवो के कारण हजारो की तादाद मे मुसलमान भाग करके शहरो और ऐसे स्थानों मे, जहाँ वे अपने को सुरक्षित समझते है, आ गये ह। वहाँ उन लोगो के रहने, खाने इत्यादि का प्रबन्ध गवर्नमेण्ट कर रही है और मुस्लिम लीग के वहुतेरे काम करनेवाले पहुँच गये है। बलवा तो चन्द दिनो के बाद ही रुक गया, पर उसका नतीजा तो अभी तक आँखो के सामने है और बहुत दिनो तक रहेगा।

इसी तरह की भयकर घटना मेरठ-जिला के गढमुक्तेश्वर के मेले के समय हो गयी। वहाँ भी बहुतेरे मुसलमान मारे गये और पीछे मुसलमानो ने हिन्दुओ से उसका कुछ बदला चुकाया। इस समय खबर है कि सीमाप्रान्त मे भी, हजारा जिले मे, कुछ कबीलो का लश्कर हिन्दुओ पर हमले कर रहा है। बहुतेरे शहरो मे छुराबाजी तो कम-वेश जारी है ही। एक भयकर स्थिति है।

इस बार मेरठ मे ही काँग्रेस होने की बात थी। जब गढमुक्तेश्वर की दुर्घटना हुई तो ऐसा शक होने लगा कि वहाँ काँग्रेस नही हो सकेगी। पर स्थिति सँभल गयी और काँग्रेस का जलसा हुआ। हाँ, जो समारोह होने को था वह नही हुआ। काँग्रेस के साथ होनेवाली प्रदर्शनी और अनेकानेक दूसरी सस्थाओ की सभाएँ नही हुई। काँग्रेस मे भी दर्शको को आने से रोक दिया गया और केवल प्रतिनिधियो को ही आने दिया गया। तो भी समारोह तो हो ही गया और कुछ न कुछ दर्शक आ ही गये। आचार्य कृपलानी के सभापतित्व मे सफलतापूर्वक काँग्रेस समाप्त हुई। महत्त्व के दो प्रस्ताव हुए। एक मे भारतवर्ष मे प्रजातत्र (Republic) कायम करने की बात कही गयी और दूसरे मे विधान परिषद् को विधान-सम्बन्धी आदेश दिय गये।

हम दिल्ली से ही मेरठ गये थे। वहाँ से लौटते ही मालूम हुआ कि इँगलैंड के मन्त्रिमण्डल ने काँग्रेसी नेता प० जवाहरलाल और सरदार बल्लभभाई को, सिखो के नेता सरदार बलदेवसिंह को और लीग के नेता मि० जिन्ना तथा मि० लियाकत-अली को बुलाया है। हम लोगो की समझ मे यह नही आया कि हमको क्यो बुलाया जा रहा है, क्योकि हमने तो १६ मईवाले वक्तव्य को मान करके काम शुरू कर ही दिया है। केवल लीग ने अभी तक अपनी अस्वीकृति के निश्चय को नही बदला है। अब विधान परिषद् की बैठक का समय नजदीक आ गया था, क्योकि वह ९ दिसम्बर से होनेवाली थी और यह बात २७ नवम्बर को पेश हुई थी। हम लोगो ने तो पहले यह कहा कि हमारे जानते वहाँ जाने की कोई जरूरत नही है, क्योकि हमारा जो मतभेद विलायती मन्त्रिमण्डल के साथ १६ मई के वक्तव्य के अर्थ के सम्बन्ध मे था वह उनको मालूम ही है और वहाँ जाने से उसमे कोई फर्क नही पडनेवाला है, पर तो भी यदि वे बुलावेगे ही तो हम चले जायँगे। प्रधान मत्री मि० अटली का तार आया कि जरूर आ जाइए और ९ दिसम्बर तक विधान परिषद् की कार्रवाई शुरू होने के पहले ही वापस चले जाइए। लीग ने पहले तो जाने का निश्चय कर लिया, पर जब मि० जिन्ना को मालूम हुआ कि काँग्रेस को कुछ आश्वासन दिया

गया है तो उन्होने जाने से इनकार कर दिया। वह उस समय करांची मे ही थ। वाइसराय वहाँ पहुँचे और दोनो मे कुछ बाते हुई और वह भी जाने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार प० जवाहरलाल, सरदार बलदेवसिंह, मि० जिन्ना और मि० लियाकतअली वाइसराय के साथ हवाई जहाज से इँगलैड गये।

कैबिनेट मिशन और वाइसराय ने बारबार आश्वासन दिया था कि १६ मई के वक्तव्य मे कोई परिवर्तन या परिवर्धन नही किया जायगा। पर इस बार उन्होने उसमे परिवर्धन और परिवर्तन दोनो ही किये और यद्यपि यह कहा जाता है कि केवल उस वक्तव्य का अर्थ साफ कर दिया गया है और उससे कुछ भी ज्यादा नही किया है फिर भी इसमे शक नही कि कुछ नयी बाते कही गयी है और कुछ पहले कही गयी बातो मे जोडा गया है। इस बार लदन मे जो बातचीत हुई उसका नतीजा तारीख ६ दिसम्बर १९४६ का वक्तव्य है जिसके सम्बन्ध मे उपरोक्त परिवर्तन और परिवर्धन की बाते कही गयी है। इस सम्बन्ध मे विचार करके अपनी राय प्रकट करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की एक विशेष बैठक बुलायी गयी।

ऊपर कहा जा चुका है कि ९ दिसम्बर को विधान परिषद् की बैठक का निश्चय कर दिया गया था और उसके सदस्यो के पास निमत्रण भेज दिये गये थे। इसलिए वह बैठक की गयी। उसकी बैठक के लिए केन्द्रीय धारा सभा के चौगोल मे एक भाग, जिसमे पुस्तकालय था, खास तौर पर बहुत अच्छी तरह सजवा करके तैयार किया गया था। विशेष करके उसमे ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि सदस्यो की बोली की प्रतिध्वनि,-जो ऐसी इमारतो मे स्वाभाविक है, न होने पावे। इसके लिए अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रबन्ध किये गये है और सदस्यो को दिल्ली की सरदी से बचाने के लिए स्थान को गर्म रखने का प्रबन्ध है। वहाँ ९ दिसम्बर से विधान परिषद् का काम शुरू हुआ।

इसके सम्बन्ध मे पहला प्रश्न यह उठा था कि जब तक स्थायी सभापति का चुनाव न हो जाय तब तक परिषद् की कारंवाई का सचालन कौन करे। निश्चय हुआ कि सदस्यो मे जो सबसे अधिक वयोवृद्ध हों वही अस्थायी सभापति हो। हमारे बिहार के डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह ही सबसे अधिक वयोवृद्ध निकले। इनकी उम्र और सर हरिसिंह गौड तथा श्री प्रकाशम् की अवस्था मे थोडा ही अन्तर था, पर वह सबसे बडे निकले। इसलिए उन्होने ही सभापति का आसन ग्रहण किया और दो-तीन दिनो तक—जब तक स्थायी सभापति का चुनाव नही हुआ, बडी खूबी के साथ काम चलाया।

अब यह प्रश्न उठा कि स्थायी सभापति किसको नियुक्त किया जाय। ऊपर कह चुका हूँ कि दरमियानी गवर्नमेण्ट मे हम लोगो की नियुक्ति के पहले विचार हुआ था कि मुझे इस काम के लिए रख छोड़ा जाय और दरमियानी गवर्नमेण्ट मे मुझे न भेजा जाय। पर अन्त मे यह विचार बदल दिया गया और मुझे वहाँ नियुक्त कराया गया। इँगलैड जाने के पहले हम लोगो ने पडित जवाहरलालजी से बाते की

को माध्यम बनाना पडा था। नागपुर की नयी युनिवर्सिटी ने निश्चय कर लिया है कि वहाँ शिक्षा का माध्यम हिन्दी और मराठी हो। बहुत लोगो को हिन्दू-विश्व-विद्यालय की यह त्रुटि बहुत खटकती है। उसकी रजत-जयन्ती के समय महात्मा गाधीजी ने हिन्दी के अभाव और अँगरेजी के प्राचुर्य्य की टीका की थी। मैंने अपने भाषण मे इस बात पर जोर दिया कि अब कोई कारण नही है कि हिन्दी को माध्यम क्यो नही बनाया जाय, क्योकि अब पाठ्य-पुस्तको की कमी नही है और जो कमी हो भी वह शीघ्र पूरी की जा सकती है। मै जहाँ तक समझ सका, उपस्थित जनता ने इसे पसन्द किया। मालूम नही, अधिकारी लोगो का क्या विचार होगा।

इस बार विश्वविद्यालय का समावर्तन सस्कार एक बडी विशेषता और महत्त्व रखता है। इसके निर्माता, कर्ता-धर्ता महामना पूज्य पडित मदनमोहन मालवीयजी का देहावसान हाल ही मे हो गया है। एक महान् कर्मठ योगी ससार से चला गया है। विश्वविद्यालय तो चिरकाल तक उनका स्मारक बना रहेगा ही। पर स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्न मे भी उनका हिस्सा उतना ही बडा रहा है। वे तीन बार कॉंग्रेस के सभापति हुए थे और मतभेद रहते हुए भी उन्होने कॉंग्रेस को कभी नही छोडा। जब-जब कॉंग्रेस कठिनाई मे पडी, उन्होने अदम्य उत्साह के साथ उसकी सहायता की।

हिन्दू महासभा के तो मालवीयजी एक प्रकार से जन्मदाता और प्राण ही थे। धार्मिक उत्थान के लिए हिन्दुओ की उन्होने जो सेवा की वह अवर्णनीय है। सभी देश-सेवको के साथ प्रेम और दया का भाव उनके लिए स्वाभाविक था। उनके उठ जाने से एक प्रकार से देश सूना हो गया है। उनके अन्तिम दिन कुछ विपत्तियो के कारण दु खपूर्ण हो गये थे। ज्येष्ठ पुत्र प० रमाकान्त मालवीय की मृत्यु से बहुत धक्का लगना स्वाभाविक है, पर अन्तिम दिनो तक वह देश को नही भूले और आज की परिस्थिति से चिन्तित और प्रसन्न दोनो ही थे। उनके जीवन से हमको बहुत कुछ सीखना है और वह हमारे सामने मार्गप्रदर्शक का काम करता रहेगा।

इसी प्रकार की एक भारी क्षति बिहार मे पूज्य बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद की मृत्यु से हुई है। इधर अस्वस्थता के कारण कई बरसो से वह सार्वजनिक कामो मे भाग लेने से बिलकुल असमर्थ हो गये थे और देश तथा सूबे को उनकी सेवा से वञ्चित हो जाना पडा था। पर जो सेवाएँ वे पहले कर चुके थे उनको स्मरण करके कोई भी देशवासी और विशेष करके बिहारी इस क्षति से दु खित हुए बिना नही रह सकता। मेरे लिए तो बडी चोट है। वह तीक्ष्ण बुद्धि, अटल दृढता और पैनी दूरदर्शिता, वह महान् त्यागशक्ति और नि स्पृहता, वह अनुपम प्रसिद्धि से बचने का निश्चय, वह निर्भयता कहाँ देखने को मिलेगी? जब हम बिहार के लोग सार्वजनिक जीवन को केवल मनोरजन का साधन मान करके उसमे कुछ थोडा समय लगा देना ही काफी समझते थे, उन्होने हमारे सामने अखड सेवा की बात रखी और हममे से बहुतेरों को उस व्रत मे व्रती बनाया। हम मे जब कभी कमजोरी आयी तो उन्होने अपने अटल निश्चय से हमको अनुप्राणित किया और व्रत मे ढीलापन लाने से बचाया।

किसानों की सेवा का आरम्भ उन्होंने उस समय किया जब नीलवरों का बोलबाला था और उनके विरुद्ध आवाज उठाना खतरे से खाली नहीं था। जब मैंने [illegible] की थी तभी से उनका प्रेम मेरे साथ हो गया था और मेरे जीवन की प्रत्येक कठिन घड़ी में वह बराबर सहायता करते रहे। उस सम्बन्ध ने इधर उनकी पुत्री के साथ मृत्युञ्जय के विवाह के कारण कुछ और रूप भी धारण कर लिया था। पर राज-नैतिक जीवन में इसका कोई असर नहीं था। भाई की मृत्यु के बाद वह एक प्रकार से मेरे घर के कारबार में भी मदद देने लगे थे और देते रहते जब तक स्वयं अस्वस्थ होकर अक्षम न हो जाते। इसलिए उनके देहावसान का समाचार सुनकर मैं दिल से बहुत दुःखी हुआ। पर महात्माजी ने जो सांत्वना का तार उनके पुत्रों को भेजा था वह मेरे लिए भी सहायक हुआ। उन्होंने लिखा था कि उनके शरीर की जो दुरवस्था हो गयी थी उसमें उनका देहावसान सुखद होना चाहिए न कि दुःखद और आत्मा तो अमर है ही। उनके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है। बात ठीक है और जो कष्ट उनको देखकर हुआ करता था वह अब नहीं होगा। ईश्वर उनके लड़कों को मदद करे।

उनके श्राद्ध के अवसर पर मृत्युञ्जय की स्त्री दिघवारा गयी जहाँ उनके भाई और माता हैं और जहाँ उनकी मृत्यु हुई थी गयी। मृत्युञ्जय भी गये थे पर श्राद्ध के बाद उसे वहाँ छोड़कर पटने चले आये। चन्द दिनों के बाद ही न मालूम उसको क्या हो गया और वह एकाएक एक-दो दिनों की बीमारी में ही चल बसी। मृत्युञ्जय बीमारी की खबर पाते ही पटने से दिघवारा के लिए रवाना हुए पर उनको रास्ते में ही उसके देहान्त की खबर मिल गयी। मैं बिहार में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबर पाकर पटने जा रहा था और रवाना होने के समय समाचार मिला। मैं वहाँ चला गया। बच्चों का कोलाहल और स्त्रियों का रोना-पीटना सुना। मृत्युञ्जय उसी दिन दरभंगा गये हुए थे। दो दिनों के बाद वहाँ से दाह-क्रिया करके लौटे। मैं पटना-जिला के गाँवों में हिन्दू-मुस्लिम-दंगा रोकने के काम में लगा रहा। जहाँ इतने लोग मारे गये थे और इतने घरों में शोक और कोलाहल था वहाँ अपना शोक एक प्रकार से भूला कर दबा-सा गया। मैं पटने में बहुत दौड़-धूप के कारण बीमार पड़ गया। इससे चन्द दिनों तक ठहर जाना पड़ा। इसी बीच में श्राद्ध का काम भी समाप्त हुआ।

एक दो महीनों के अन्दर यह दूसरा शोक था। भोली में बहुत दिनों तक कष्ट सहकर बच्चा प्रभास चला गया। जब बीमारी बहुत बढ़ी तो मुझे टेलीफोन से दिल्ली में खबर दी गई। मैं जाने की तैयारी कर ही रहा था कि खबर आयी कि वह चला गया। यह बहुत बड़ी चोट है। उसका बड़ा भाई मोहन [illegible] बरस पहले चला गया था। वह घाव अभी तक मौजूद है और जब याद आती है तो आँसू आ ही जाते हैं। अब यह दूसरी चोट निर्दय काल ने लगायी है। पर किया क्या जाय? जना-र्दन और चन्द्रमुखी तथा भाई-बहू की दशा क्या कहूँ। इन बच्चों को बचा रखना ही

होता है तो आते ही क्यो है? भगवान् की लीला समझ मे नही आती। एक तरफ विपत्ति पर विपत्ति और दूसरी तरफ एक पर एक काम के बोझ का बढता जाना। इतना भी समय नही मिलता कि दुखी परिवार के लोगो के साथ कुछ समय बिताऊँ। पर मै जानता हूँ कि इसमे भी ईश्वर का ही हाथ है। वह जो चाहे करे और करावे।

दिल्ली का जीवन कई बातो मे नया जीवन है। दफ्तर का काम करने का पहले-पहल मौका हुआ है। सुना है कि लोग मेरे काम से सन्तुष्ट है। अभी तक देश जो अन्न-सकट मे पडा रहा है उससे रिहाई तो नही हुई है पर कुछ हालत सुधरी जरूर है। दक्षिण मे चावल की कमी के कारण जो भय था वह अब कम हो गया है, पर उत्तर मे गेहूँ की कमी के कारण बढता जा रहा है। मै नही जानता कि मैने खास क्या किया, जिसके लिए मुझे बधाई या ख्याति मिलनी चाहिए। पर लोग सन्तुष्ट है और अनेको मानते है कि मैने परिस्थिति को सँभाला है। यदि कर्मचारी और जनता साथ न देती तो कोई भी कुछ नही कर सकता था। मै तो कर ही क्या सकता था? यहाँ का जीवन मेरे लिए बिलकुल एक नया अनुभव है। मकान बहुत बडा है, पर उसमे जगह बहुत कम है, क्योकि कमरे बडे-बडे पर सख्या मे कम है। अहाता बहुत बडा और फूल-गुल से सुसज्जित है। तरकारी की खेती की गयी है और अपनी उपजायी तरकारी हम लोग इस्तेमाल कर रहे है। पर खर्च काफी पडता है। जब से आया हूँ, इतना बझा रहता हूँ कि मित्रो से मिलने-जुलने का भी समय नही मिलता। कही आना-जाना तो बहुत मुश्किल से हो सकता है। अब तो और भी कठिनाई बढ गयी। पर ईश्वर की दया है कि स्वास्थ्य काम दे रहा है और अभी तक कोई ऐसी हालत नही हुई है कि काम रोकना पडे। यदि स्वास्थ्य ने साथ दिया, जैसा अभी तक रहा है, तो ईश्वर चाहेगा तो विधान परिषद् के अध्यक्ष का काम भी किसी तरह से चला ले जाऊँगा।

दिल्ली,
८ जनवरी १९४७